संस्थापक—श्रीमत् प प्र ब्र लो गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज.



यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।

भक्तों के प्रेमार्त हृदय में करो हरे ! विश्राम ।

जैसे धेनु रमें मधुवन में;

बसें मनुज निज सौख्य सदन में;

वैसे ही प्रिय ! निज जन मन में विहरो हे घनश्याम ॥

वार्षिक मूल्य— भारत में ४) विदेश में ६॥)

'तुलसी' असमय के सखा, धीरज धरम विवेक ।
साहित साहस सत्यव्रत, रामभरोसो एक ॥

साधारण प्रति भारत में ।) विदेश में ।=)

[illegible] द्वारा [illegible] प्रेस [illegible] काशी में मुद्रित और प्रकाशित ।

विषयसूची [हिंदीविभाग]

[ગુજરાતી વિભાગ]

तपस्वी महात्माओं, विशिष्ट विद्वानों और विचारशील सज्जनों द्वारा लोककल्याणार्थ संस्थापित, अखिल भारतीय—

धर्मसंघ

उद्देश्य—सब अनर्थों के मूलभूत अधर्म को मिटाकर परम कल्याण के मूलभूत, श्रुति, स्मृति, पुराणादि प्रतिपादित धर्म की संस्थापना और प्रचार करना।

सदस्यता—नीचे लिखे संकल्प के अनुसार प्रतिदिन कम से कम १०८ बार अपने इष्टमन्त्र का जप या पाठ करना, बस यही सदस्यता का नियम है। समूह में या अलग अलग जप या पाठ करने का संकल्प यह है—"तत्सदद्य धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वकं धर्मसंस्थापनार्थम् अमुकमन्त्रस्य जपं पाठं वा करिष्ये।" संस्कृत न जाननेवालों के लिए "अधर्म का नाश और धर्म की संस्थापना के लिए मैं इस मन्त्र का जप या पाठ करता हूँ।"

कर्तव्य—१ यथा संभव किसी भी मादक द्रव्य का सेवन न करना। २ शास्त्रपरंपरा से प्राप्त स्वधर्मानुकूल सन्ध्यावन्दन, बलिवैश्वदेव, अतिथिसत्कार आदि कर्म अवश्य करना। ३ यथा संभव भारतीय वेश भूषा रखना तथा पूज्यों की आज्ञा मानना। ४ हो सके, तो दूसरों को इस का अनुयायी बनाना।

विशेष—इस कार्य की उत्पत्ति और प्रेरणा गीता के अध्याय ४ श्लो० ७,८ के अनुसार है, अतः गीता का स्वाध्याय, अध्ययन और विचार सदा नियम से करना मुख्य कर्तव्य होगा।



તપસ્વી મહાત્માઓ, વિશિષ્ટ વિદ્વાનો અને વિચારશીલ સજ્જનો દ્વારા લોકકલ્યાણાર્થે સંસ્થાપિત, અખિલ ભારતીય—

ધર્મસંઘ

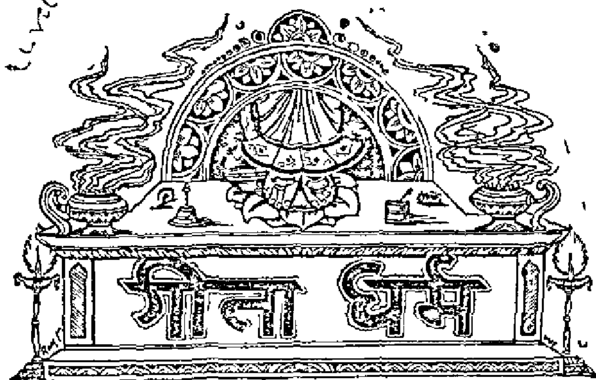
ઉદ્દેશ્ય—સર્વ અનર્થોના મૂળભૂત અધર્મને દૂર કરી પરમ કલ્યાણના મૂળભૂત, શ્રુતિ, સ્મૃતિ, પુરાણાદિ પ્રતિપાદિત ધર્મની સંસ્થાપના અને પ્રચાર કરવો.

સદસ્યતા—નીચે લખેલા સંકલ્પ અનુસાર પ્રતિદિન ઓછામાં ઓછો ૧૦૮ વાર પોતાના ઇષ્ટ મંત્રનો જપ અથવા પાઠ કરવો, બસ એજ સદસ્યતાનો નિયમ છે. સમૂહમાં કે અલગ અલગ જપ કે પાઠ કરવાનો સંકલ્પ આ છે—"तत्सदद्य धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वकं धर्मसंस्थापनार्थम् अमुकमन्त्रस्य जपं पाठं वा करिष्ये।" સંસ્કૃત નહિ જાણનારાઓ માટે "અધર્મનો નાશ અને ધર્મની સંસ્થાપના માટે હું આ મંત્રનો જપ કે પાઠ કરું છું."

કર્તવ્ય—૧ યથા સંભવ કોઇ પણ માદક પદાર્થનું સેવન નહિ કરવું. ૨ શાસ્ત્ર પરંપરાથી પ્રાપ્ત સ્વધર્માનુકૂળ સંધ્યાવંદન, બલિ વૈશ્વદેવ, અતિથિ સત્કાર આદિ કર્મ અવશ્ય કરવાં ૩ યથા સંભવ ભારતીય વેશ ભૂષા રાખવી તથા વડીલોની આજ્ઞા માનવી. ૪ બની શકે તો બીજાઓને આના અનુયાયી બનાવવા.

વિશેષ—આ કાર્યની ઉત્પત્તિ અને પ્રેરણા ગીતાના અ૦ ૪ શ્લો૦ ૭-૮ને અનુસાર છે, એટલે ગીતાનું સ્વાધ્યાય, અધ્યયન અને વિચાર સદા નિયમપૂર્વક કરવાં એ મુખ્ય કર્તવ્ય છે.

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ } जून, १९४२, काशी { अङ्क ६

बाललीला

टेरि कान्ह गोबर्धन चढ़ि गैया ।
मथि मथि पियो बारि चारिक मैं भूख न जाति अघाति न धैया ॥ १ ॥
सैलसिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यो बलभैया ।
बाँधि लकुट पट फेरि बुलाईं सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया ॥ २ ॥
बलदाऊ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया ।
किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों कूदत कपि कुरंग की नैया ॥ ३ ॥
खेलत खात परसपर डहकत छीनत कहत करत रोगदैया ।
'तुलसी' बालकेलि सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैया ॥ ४ ॥

—गोस्वामी तुलसीदास ।

गीता में मङ्गलाचरण

[ले०—श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास जगद्गुरु महामण्डलेश्वर
श्री १०८ स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज]

लौकिक व्यवहार में किसी काम का आरम्भ करते समय भगवान् अथवा अपने इष्टदेवता का नाम लेने की प्रथा आबालवृद्ध प्रसिद्ध है। इस का अभिप्राय यह है कि इष्टदेवता के आशीर्वाद से अङ्गीकृत कार्य सफलता से समाप्त हो। इस निर्विघ्न समाप्ति के लिए **'सर्वे विघ्नाः शमं यान्ति गणेश-स्तवपाठतः'** इस वाक्यानुसार प्रायः गणेशजी का स्मरण विशेष प्रचलित है; लेकिन यह कोई आवश्यक नहीं, शिव, दुर्गा आदि जिस के जो इष्टदेव हो, उन का स्मरण किया जा सकता है। शास्त्रकारों ने सभी देवताओं में यह सामर्थ्य बताई है जिस से विघ्नों का नाश हो सके, तथापि भावना का भेद ही फलभेद में कारण कहा है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान्॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥

—गी० ७-२०, २१, २२, २३

जिन का ज्ञान विविध कामनाओं से दबा हुआ है वे अपनी अपनी प्रकृति के वश होकर नाना प्रकार के नियमों का पालन करते हुए, और और देवताओं की भक्ति करते हैं। मेरे जिस देवतारूप को जो व्यक्ति श्रद्धा से पूजना चाहते है, उन की श्रद्धा को उसी देवता में लगा देता हूँ। वे श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता की उपासना करते है और मेरे ही दिये हुए उस भजन के कामनारूप फल को प्राप्त करते हैं। इन अल्प बुद्धिवाले भक्तों का ऐसा फल नाशवान् ही होता है। देवभक्त देवों के लोकों को जाते हैं और मेरे भक्त मेरे पास पहुँचते है।

पुनश्च इस प्रसंग में ४-११ का—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(जो जिस भाव से मेरी शरण आता है, मैं उस के लिए वैसा ही फल देता हूँ। सब प्रकार से मनुष्य मेरा ही मार्ग अनुसरण करते हैं) यह श्लोक भी ऊपर की बात को पुष्ट करता है।

अब सोचने की बात है कि साधारण लोगों में यह चाल है, तो गम्भीर विचार करनेवाले शास्त्रकारों का कहना ही क्या? वे तो इस बात पर बहुत ही जोर देते हैं और शायद ही कोई ऐसा प्राचीन ग्रन्थकार मिले, जिस ने ग्रन्थारंभ में मङ्गलाचरण न किया हो। इन की बातें छोड़ दें, तो भी उन

के टीका, टिप्पणी, विवरणकार अपने आदरणीय ग्रन्थकार के मङ्गलाचरण का बड़ी सूक्ष्मता से ऊहापोह करते हैं, यहाँ तक कि ऐसे मङ्गलसूचक श्लोकों से 'अनुबन्ध चतुष्टय' (ग्रन्थ के अधिकारी, विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध) आदि आवश्यक बातें निकालने की कोशिश करते हैं, चाहे वे बातें मूलकार को स्वप्न में भी न सूझी हों। कितने ही दिग्गज पण्डित जैसे नैयायिक विश्वनाथ, दिनकर, उदयनाचार्य आदि इस विषय के ग्रन्थ बनाकर मङ्गलवाद का स्वतन्त्र विषय तैयार कर गये हैं। उस के देखने से मालूम होगा कि जिस बात को आजकल के शिक्षित कहलाने वाले अकिंचित्कर समझते हैं और नास्तिक दल तो अनुपयोगी कहता है, उसे पूर्ववर्ती ग्रन्थकार कितने महत्त्व की दृष्टि से देखते थे।

इस बात को विस्तार से कहने का तात्पर्य यह दिखाना है कि गीता जैसे अति गम्भीर विषय का प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिस को कि भगवान् की साक्षात् वैखरी वाणी समझना चाहिए, उस के ग्रन्थकार ने अवश्य मङ्गल किया होगा, यह स्वतः सिद्ध है। यहाँ स्वयं ईश्वर वक्ता है और उन के मुख से जो बात कहलाई जायगी, उस का गौरव वेदवाणी से कम हो नहीं सकता। ऐसे दायित्वपूर्ण कार्य की निर्विघ्न समाप्ति होना ग्रन्थकार की चिन्ता का विषय अवश्य है।

यहाँ प्रासंगिक शङ्का उठ सकती है कि गीता स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, वह तो महाभारत के बीच में भीष्मपर्व का एक अंश है, पर इस विषय में अधिक न कहना चाहिए, केवल ऋषि मुनियों के मत का और उसी के आधार पर अनुसृत लौकिक प्रथा का हवाला देना काफी है कि गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इस लिए उस में मङ्गलाचरण होना अपरिहार्य है। यहाँ और भी एक शङ्का है कि मङ्गलाचरण करना चाहिए इस बात का भी प्रमाण क्या है? उत्तर में वक्तव्य है कि प्रस्थानत्रयी के द्रष्टा महर्षि भगवान् व्यास, भगवान् कपिल, भगवान् पतञ्जलि इन तीनों ने जैसा गीतार्थ समझा है, उस के करोड़ अंश के बराबर भी हम लोग समझते हैं, इस में संदेह है। इस लिए कपिल जी अपने साङ्ख्यसूत्रों में मङ्गलाचरण के करने के तीन हेतु देते हैं। प्रसंगानुसार उन की व्याख्या यहाँ की जाती है—

"मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात्,
फलदर्शनात्, श्रुतितश्चेति।"

अ० ५, सू० २

इस सूत्र का आधारभूत गीता में १७-२३ वाँ श्लोक है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

ॐ तत् सत्—ऐसा ब्रह्म का तीन तरह का निर्देश है, पूर्व काल में इस से ब्राह्मण, वेद और यज्ञ की उत्पत्ति हुई। सूत्र का अर्थ—शिष्ट लोगों ने आचरण किया है, उस का फल देखने में आता है और श्रुति की आज्ञा भी है, इन कारणों से मङ्गलाचरण करना चाहिए।

सूत्र के प्रथम अंश 'शिष्टाचारात्' इस अंश की व्याख्या की जाती है—

गीता का जो श्लोक ऊपर कहा है उस में 'ॐ तत् सत्' यह परमात्मा का तीन प्रकार का नाम

आया है, उस का उच्चारण करके ब्राह्मणादि प्रजा, वेद और यज्ञ इन की सृष्टि की गई है। इस से मालूम होता है कि सृष्टि के रचयिता प्रजापति ने आरम्भ में परमात्मा का नाम लिया था। अब विचारणीय बात यह है कि प्रजापति से बढ़कर हम लोगों के वास्ते शिष्ट कौन हो ?

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

आरम्भ में इस यज्ञ के साथ ही सब प्रजा उत्पन्न करके प्रजापति (ब्रह्मा) ने कहा कि इस यज्ञ से तुम अपनी वंशवृद्धि करो, यह यज्ञ ही तुम लोगों की इष्टदात्री कामधेनु हो। इस अंश से स्पष्ट है कि उस प्रजापति को अपने कार्य में अर्थात् प्रजासृष्टि में सफलता प्राप्त हुई थी, इस श्लोक में 'सहयज्ञाः' यह पद भी है, इस लिए १७–२३ और ३–१० श्लोक मिलकर यह बात प्रमाणित होती है कि मङ्गलाचरण करने में शिष्टाचार है और सफलता भी है। अब रही बात 'श्रुतिनश्च' इतने अंश की; सो तो ॐ शब्द से ही गतार्थ है, क्योंकि गीता ७, ८ में 'प्रणवः सर्ववेदेषु' ऐसा कहा है।

यदि कोई शङ्का उठाये कि शिष्टों ने जो कुछ आचरण किया है, उस का सर्वसाधारण भी क्यों अनुसरण करें ? तो उस के उत्तर में इतना कहना पर्याप्त है कि गीता इसी बात पर विशेष जोर देती है कि संसार में ज्ञानप्राप्ति का एकमात्र साधन 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इतना ही है। प्रसंगोचित श्लोक निम्नदर्शित हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, उस के अनुसार दूसरे लोग भी चलते हैं, श्रेष्ठ पुरुष जैसा निश्चय कर देते हैं, अन्य आदमी उसी के माफिक वर्ताव करते हैं। हे पार्थ, मुझे तीनों लोकों में कुछ भी कर्तव्य नहीं है और न कोई भी मिलने योग्य वस्तु अप्राप्य ही है, तथापि मैं लोकसंग्रहार्थ कर्म किया करता हूँ। क्योंकि सावधान होकर मैं कर्मों को न करूँ, तो हे अर्जुन, सब ओर से मनुष्य मेरे ही रास्ते पर चलने लगेंगे।

यहाँ ध्यान देने की बात है कि श्लोक में जो 'श्रेष्ठ' पद है, वह शिष्ट का बोधक है। सांख्यसूत्र में 'फलदर्शनात्' 'श्रुतितः' ये दो पद किसी की विप्रतिपत्ति के विषय नहीं हो सकते, क्योंकि प्रत्यक्ष परिदृश्यमान सृष्टि का अपलाप हो नहीं सकता। प्रणव परमात्मा का नाम है इस विषय में तो स्वतः वेद ही प्रमाण है। यहाँ तक मङ्गलाचरण का कर्तव्यताविषयक विवेचन किया, अब इस लेख के मुख्य विषय का प्रतिपादन किया जाता है अर्थात् गीता में मङ्गलाचरण कौन सा और कैसा है यह विचारना चाहिए।

मङ्गलाचरण प्रथम ही ग्रन्थ के आरम्भ में होता है, सो गीता का आरम्भ देखने से इस का उत्तर मिलेगा कि यहाँ धर्मशब्द निःसंदेह मङ्गलवाचक है। प्रथम श्लोक में 'धर्मक्षेत्रे' ऐसा पद न देने पर भी

आपाततः धृतराष्ट्र का जिज्ञास्य विषय मालूम हो सकता है, परंतु भगवान् व्यास निरर्थक शब्दप्रयोग करनेवाले नहीं हैं। वस्तुतस्तु जैसा कि गीता का प्रतिपाद्य विषय इसी श्लोक में सूचित किया गया है, वह क्या है ?

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥

—गी० १८।७०

जो पुरुष इस हम दोनों के धर्ममय संवाद को पढ़ेगा, उस के द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा यह मेरा मत है।

इस में कहा है कि यह गीताशास्त्र श्री कृष्ण और अर्जुन का धर्म्य संवाद है। अर्जुन का प्रश्न भी इसी विषय का है, २,७ में कहता है—'धर्मसंमूढचेताः त्वां पृच्छामि' धर्म के विषय में मोह होने से आप से पूछता हूँ। और भी भगवान् अर्जुन को उद्देश्य करके—'**स्वधर्मे निधनं श्रेयः**' '**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि**' '**ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि**' इत्यादि सामान्य भाव से आज्ञा देते हैं और '**तस्माद् युद्धस्व भारत**' '**ततो युद्धाय युज्यस्व**' इत्यादि बहुस्थल में विशेष कर्तव्यता का भी आदेश देते हैं।

फलतः धर्म शब्द का उच्चारण करने से मङ्गल तो हुआ ही, अधिकन्तु ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय भी सूचित किया। धर्म शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'धारयतीति धर्मः' इस संसार को धारण करनेवाला, जैसा कि परमात्मा है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

—गी० ७।५

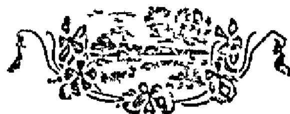
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

—गी० १०।४२

'हे महाबाहो, इस अपरा जड़ प्रकृति के अलावा जीवरूपी, चेतन परा प्रकृति भी मेरी है, जिस से संसार चलता है। हे अर्जुन, अधिक क्या यह समझो कि मैं संपूर्ण जगत् को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र से धारण किये हुए हूँ।' इन वचनों से धर्म शब्द जीव का भी वाचक है। एवं च परमात्मा और जीव इन से बढ़कर स्मरण करने योग्य और कौन सा पदार्थ मङ्गलमय होगा ?

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि वेदव्यासजी ने भी गीता के आरम्भ में मङ्गल करके लोगों को इस का मार्ग दिखाया है।

ॐ नन्दन



मुझे सच्ची श्रद्धा और सच्चा विश्वास दो

(ले०—श्री लक्ष्मीप्रसाद त्रिपाठी–'अकिञ्चन')

नाथ ! संसार में होश सँभालते ही तुम्हें, आर्त-उद्धारन, भवदुखहारन, आशरणशरण, दीनानाथ, दीनरक्षक, दीनदयालु, अघमर्षण, करुणाकर, करुणा-निधि, कृपालु, भक्तभयहारी, संकटमोचन आदि आदि अगण्य और अनेक संबोधनों द्वारा पुकारे जाते हुए सुन रहा हूँ। यदि सब की गुहारें, सारी पुकारें और समूचे करुण क्रन्दन, स्पन्दन–तुम तक पहुँच सकते हैं तो–मेरा अपना जहाँ तक अनुभव है—तुम्हारे चतुर्दिक अगण्य 'आह !' दुर्गों का निविड बहुबन्ध प्राचीर हो रहा होगा ?

उफ ! उस में तुम इस प्रकार विलुप्त हो गये होगे कि उस में से तुम्हें ढूँढ़ निकालपाना कोटानुकोटि प्रयासों से भी असंभव है ?

फिर यह कैसे विश्वास करूँ कि मुझ अभागे की पीर पुकार उन दुर्गजालों का उल्लङ्घन कर तुम्हारे तक पहुँच पायेगी और तुम उस पर तत्काल ध्यान ही दोगे ?

परंतु तुम जब सर्वसमर्थ हो तब इस पर अवि-श्वास ही कैसे करूँ ?

महाभारत के विश्वसंहारक रौद्रभावी युद्ध में, जिस में महान् पराक्रमी महारथियों के प्राणका तनिक भी मोल और विवेक नहीं था, जहाँ प्रचण्ड युद्धाग्नि में अपने प्यारे से प्यारे की प्राणाहुति देते हुए भी लोग तनिक भी भावविचलित और प्रभावित नहीं होते थे वहाँ 'भरदूल' पक्षी के अण्डे की प्राण रक्षा का ध्यान रखने वाले तुम किस का ध्यान नहीं रखते होगे ? तुम्हारी सर्वसमर्थता और करुणात्मता एवम् सर्व रक्षक भावना को सूचित करने वाला इतिहास या पुराण और आख्यानवर्णित जितना भी प्रमाण है, सब इस प्रमाण के सम्मुख नगण्य है। फिर क्या कारण है कि मेरी पुकारों पर उचित ध्यान नहीं दे पाते हो ? क्या मेरी उन पुकारों में वास्तविकता नहीं है ? क्या मैं करुण कातर नहीं हूँ ? क्या मैं ने वेदनाविह्वल होकर तुम्हें नहीं पुकारा है ? अथवा मैं उचित दया का पात्र नहीं हूँ ? या मेरे हृदय की दूषणता, कपट-भावना अथवा अन्य किसी अपराध के कारण तुम्हारी कृपा दृष्टि नहीं होती है। क्यों कि तुम्हें सर्वान्तर्यामी, सर्वान्तर्वासी और सर्वत्र सदा उपस्थित भी सुनता हूँ।

लोग कहते हैं कि तुम और तुम्हारी कृपा प्रार्थना से उपलब्ध हैं। फिर मेरी प्रार्थना क्योंकर विफल हो सकती है ?

लोग दीन की आह को भाथी की अग्नि के तुल्य बताते हैं जो कड़े लोहे को भी पिघला देती है। परंतु तुम लौहहृदय तो हो नहीं ? तुम्हें तो लोग करुण कोमलहृदय ही बताते आए हैं। तुम तो यों ही सदा कृपारस से द्रवित हो। फिर तुम्हारे विषय में कोई किसी प्रकार की प्रतिकूल बात सोचना ही व्यर्थ है।

हाँ ? अब समझा, शायद मेरी प्रार्थनाओं में सच्ची श्रद्धा और सच्चा विश्वास कम हो ? यदि यही बात है और यह यथासंभव सत्य और उचित भी है तो नाथ ! मुझे कृपाकर सच्ची श्रद्धा और सच्चा विश्वास एवम् दृढ़ लगन की भावना ही प्रदान कर दो, जिस से कभी तो तुम्हारी अनुकम्पा का प्रसाद पा सकूँ। प्रभो ! यह जीवन का दुर्गम बीहड़ कण्टकपथ-गमन मेरे लिए असह्य है। चाहे जैसे भी हो, तुम्हें मुझे इस यन्त्रणा जाल से तो उबारना ही होगा।

—

कलिकाल का जाल

(ले० स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

आर्ष ग्रन्थों में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चार युगों का वर्णन मिलता है। इन चारों में प्रधान सत्ययुग और कलियुग ये दो हैं। किसी का कहना है कि युगों का होना मनुष्यों की बुद्धि पर निर्भर है, जब जैसी बुद्धि होती है, उस समय वैसा युग आ जाता है। जब मनुष्य चोरी करता है, तो उस समय उस के लिए कलियुग वर्तता है और वही मनुष्य जब मन्दिर आदि पुण्यस्थानों में जाकर माला फेरता है, तो सत्ययुग हो जाता है। जो बात व्यक्तियों के लिए है वही जातियों तथा राष्ट्रों के लिए भी हो जाती है। उक्त कथन का अभिप्राय यह हुआ कि—"जैसी बुद्धि, वैसा युग"।

इस के विरुद्ध किसी का यह भी कथन है कि युगों का होना प्राकृतिक है, बुरे और भले रूप में युग बदल बदलकर आया करते हैं, यह ईश्वर की नियति है। जब जैसा युग—समय होता है उस समय प्राणियों की बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है, यह बात मनुष्य प्रभृति चेतन प्राणियों के लिए ही हो यह बात नहीं है, किंतु जड़ पदार्थों में भी युगधर्मानुसार परिवर्तन हो जाते हैं। जैसे जब कलिकाल आता है उस समय जल कम बरसने लगता है, पृथ्वी की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है, और वृक्षों में फल फूल भी कम आने लगते हैं। इस कथन का मतलब यह हुआ कि—"जैसा युग, वैसी बुद्धि"।

जो भी हो, इस पर विज्ञ पाठक स्वयं विचार कर देख लें कि बात क्या है ? किंतु इस में संदेह नहीं है कि आजकल का जमाना—युग हमारे लिए बहुत ही अनिष्टकर है। इसी अवाञ्छनीय काल का नाम 'कलियुग' है। आज हम इस कलिकाल के विषय में कुछ कहना चाहते हैं, जो हो रहा है उसे सभी देख, सुन और अनुभव (भोग) कर रहे हैं। हम कलियुग के दोषों का उद्भावन करना चाहते हैं, क्योंकि दोषों पर दृष्टि डालने में उन से बचने की स्वाभाविक इच्छा का होना सम्भव है।

आयाते पापिनि कलौ, सर्वधर्मविलोपिनि।
दुराचारे दुष्प्रपञ्चे, दुष्टकर्मप्रवर्तके॥
न वेदाः प्रभवस्तत्र, स्मृतीनां स्मरणं कुतः।
नानेतिहासयुक्तानां, नानामार्गप्रदर्शिनाम्॥
बहुलानां पुराणानां, विनाशो भविता विभो!
तदा लोका भविष्यन्ति, धर्मकर्मबहिर्मुखाः॥

अर्थात् दुराचारप्रवर्तक कलियुग के आने पर वेदों की जब पूछ न रहेगी, तो पुराणों का फिर ठिकाना ही क्या है ? बहुत सी असली पुस्तकें लुप्त हो जायेंगी उन की जगह नये नये धर्मग्रन्थों की कल्पना कर ली जायगी, ऐसी दशा में लोग क्यों न धर्मविमुख होंगे ?

कलियुग में लोग उच्छृङ्खल, मदोन्मत्त, सदा पापकर्मरत, कामी, लोलुप, क्रूर, निष्ठुर, दुर्मुख, शठ, अल्पायु, मन्दबुद्धि, रोगी, शोकयुक्त, श्रीरहित, निर्बल, नीच, नीचाचारपरायण, नीचसंसर्गी, परधनहरणकर्ता, परनिन्दा, परद्रोह, अपयश करनेवाले, खल, दूसरे की स्त्री के अपहरण करने में पाप तथा भय-वर्जित, निर्धन, मलिन, दीन, दरिद्री और लम्बी बीमारीवाले होंगे।

ब्राह्मणों के आचार शूद्रों जैसे होंगे। वे संध्या-वन्दन नहीं करेंगे। जो यज्ञ नहीं करने लायक होंगे, उन्हें करेंगे। वे लोभी, दुराचारी, पापकारी, असत्य-भाषी, मूर्ख, दम्भी और ठग होंगे। वे लोगों को धोखे में डालने के लिए जप तथा पूजा करेंगे। वे पाखण्डी, पण्डितंमन्य, श्रद्धा भक्ति से रहित, कुत्सित आहार करनेवाले, बुरे व्यवहार से युक्त, दास, शूद्रों के सेवक, शूद्रान्नभोजी और क्रूर होंगे। केवल जनेऊ धारण करने को ही ब्राह्मण होने का चिन्ह रखेंगे। खान पान में भक्ष्याभक्ष्य का कुछ भी नियम न रखेंगे सदा धर्मशास्त्रों की निन्दा तथा सज्जनों से द्रोह करेंगे। और सुन्दर सुन्दर सत्कथा कहेंगे तो जरूर, पर उस का मन पर कुछ भी असर न होने देंगे।

अब कलियुग का प्रभाव प्रबल हो गया है इस का परिचय निम्नलिखित दशाओं से हो जायगा— जिस समय वैदिकी और पौराणिकी दीक्षा का प्रभाव नहीं रहेगा उस समय जानना कि अब कलि प्रबल हो रहा है, जिस समय पुण्य पाप की परीक्षा वेदानुकूल न रहेगी, जब गङ्गा नदी की धारा कहीं कट जायगी, कहीं अलग हो जायगी, कहीं सूख जायगी और कहीं उस में मलिन पदार्थ आ मिलेंगे, उस समय जान लेना कि पृथ्वी तल पर कलि व्याप गया है। जिस समय म्लेच्छ जाति के लोग राजा हो जायेंगे, वे धन के लोभी बन जायँगे, जब स्त्रियाँ दुर्दान्त, कर्कशा, तथा कलहप्रिया हो जायँगी, जब मनुष्य दुनिया में स्त्रीजित, कामकिङ्कर गुरु तथा मित्रद्रोही हो जायँगे, और स्त्रियाँ पतियों की खुल्लम खुल्ला निन्दा करने लग जायँगी, उस समय कलि का प्रभाव समझ लेना। जिस समय पृथ्वी की उर्वरा शक्ति कम हो जायगी, बादल कम बरसने लगेंगे, वृक्षों में फल बहुत कम लगेंगे तब जानना कि कलियुग की अमलदारी पूरी असर कर गई। जब भाई, मित्र तथा संबन्धी जरा से धन के कारण आपस में मार पीट करने लगेंगे, और जब निन्दा तथा सजा के भय के बिना लोग चौडे मैदान मांस मद्य खाने पीने लगेंगे तब जान लेना कि कलि कलेजों में कस गया है। जब सब जातियाँ माँगने लगेंगी, ब्राह्मण लोग दर दर घूमकर आशीर्वाद-मन्त्र पढने लगेंगे, गायें मल भक्षण करने लगेंगी, और संन्यासी ज्ञान, त्याग छोडकर गृहस्थियों को मात करने लगेंगे, तब जान लेना कि कलियुग जोर पकड़ गया।

कलियुग में धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मृति आदि का नाश हो जायगा। कलि-काल में धन ही कुलीनता, आचार और गुण का कारण होगा। बलवान् (जबर्दस्त) जो कह या कर देगा वही धर्म, न्याय और व्यवस्था समझी जायगी। दाम्पत्य व्यवहार में याने स्त्री पुरुषसंबन्ध में माया ही प्रधान समझी जायगी, कर्तव्य नहीं। स्त्रीत्व में तथा पुरुषत्व में कारण रति होगी, तथा विप्रपने में कारण जनेऊ होगा। जीविका का अभाव दुर्बलता का कारण माना जायगा। पण्डिताई चपलता में समझी जायगी। विवाह में स्वेच्छा कारण होगी। स्नान शौकीनी के लिए किया जायगा। तीर्थोदकों को दूर से देख भर लेना काफी समझ लिया जायगा। केश-धारण लावण्य के लिए होगा। पेट भर लेना पुरुषार्थ समझा जायगा। कुटुम्बपालक दक्ष माना जायगा और प्रशंसा के लिए धर्मसेवन किया जायगा।

मनुष्यों की दृष्टि क्षुद्र हो जायगी, वे ओछे भाग्य-वाले होंगे, बहुत खायेंगे, कम कद के होंगे, किंतु धन न होगा, स्त्रियाँ स्वैरिणी तथा असती होंगी, देश ठगों से भर जायगा, तीर्थों में गुंडे बहुत मिलेंगे, वेद पाखण्ड से दूषित हो जायगा, राजा प्रजाभक्षक होंगे, द्विज शिश्नोदरपरायण हो जायँगे, बटु व्रतरहित और

अपवित्र होंगे। संन्यासी कुटुम्बी हो जायँगे, तपस्वी ग्रामों में रहेंगे, त्यागी धन के लोभी होंगे, गृहस्थी योधा ज्ञान छाँटने लगेंगे। लोग बहुतसन्तान, निर्लज्ज तथा कटुभाषी होंगे और उन का चोरी तथा चालाकी में सदा उत्साह रहेगा। शूद्र व्यापार करेंगे और वैश्य जूआ खेलेंगे।

जब ऐसी प्रजा से पृथ्वी भर जायगी, उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में जो ताक़तवर होगा वही राजा बन बैठेगा। ऐसा राजा प्रजा को लूटेगा, पालेगा नहीं। ऐसे दुराचारी राजा की प्रजा अनाचारी हो जायगी। लोग किसी बहाने से धर्म करेंगे, धर्मस्थानुरोध से नहीं। झूठी पण्डिताई के गर्व से सत्य कम हो जायगा, सत्य की हानि से आयुक्षय, आयुक्षय से विद्याहीनता, उस से लाभ होगा, जो लोभी, क्रोधी होंगे वे मूढ होकर कामासक्त हो जायँगे, फिर उन के भीतर एक का दूसरे का वध करने का दोष आ जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों का परस्पर साङ्कर्य हो जायगा। कपड़ों में सनिया (पटुआ) और अन्नों में कोदों रह जायगा। लोग स्त्रीमित्र बन जायँगे, गायें नष्ट हो जायँगी तथा बकरी एवं भेड़ों के दूध से काम चलाया जायगा।

जो मनुष्य प्रतिष्ठित और योग्य समझे जाते रहे वे भी लोभ के वशीभूत होंगे। युगक्षय में मनुष्य आपस में एक दूसरे को लूट लिया करेगा, और मार डालेगा। नदियों के किनारों में कुदाल से खोदकर ओषधियाँ बोई जायँगी, तिस पर भी वे निष्फल, निष्प्रभ होंगी। जिन्होंने व्रत धारण कर रक्खे होंगे वे भी लोभ के वश हो, श्राद्ध तथा शान्ति आदि मद्यनिमित्तक भोजों में भोजन करने लगेंगे। ब्राह्मण लोग यज्ञ व्रत आदि शुभ कर्म करना तो छोड़ ही देंगे प्रत्युत वेद की निन्दा भी करने लगेंगे। लोग चालाकी से सीधे सादे लोगों के, अपने संबन्धियों के और विधवाओं के धन को हड़प कर जायँगे। ब्राह्मण, भारभृत, क्षत्रिय लोककण्टक, वैश्य वञ्चक और शूद्र पण्डितमन्य हो जायँगे। कन्या न तो दी जायगी, न माँगी ही जायगी, किंतु वे स्वयं ग्राह्य हो जायँगी। परस्पर एक दूसरे का विश्वास नहीं रहेगा। चातुर्वर्ण्य नष्ट हो जायगा, उस समय एकवर्णता आ जायगी। स्त्रियाँ पतियों की सेवा करना त्याग देंगी और वे 'जहाँ देखी तवा परात, वहीं रह गये सारी रात' तथा 'जहाँ देखी रोटी, वहीं देदी बोटी' वाली कहावत के अनुसार जिस जगह या जाति में भोजन का सुभीता देखा जायगा, वहीं जा बसेंगे, या उन्हीं के हो जायँगे। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का अभिमान किसी को न रहेगा। उस समय जगत् अज्ञान तमोग्रस्त हो जायगा, न कोई श्रोता रहेगा न वक्ता। सोलह वर्ष की परमायु हो जायगी, पाँचवें छठे वर्ष कन्या पुत्र जनने लगेंगी। खरीदने और बेचने में एक दूसरे को यही चाहेगा कि मैं इसे ठग लूँ। प्रजा करभार से पीड़ित होगी। मुसाफिरी में आश्रय तो क्या पानी तक नहीं मिलने पावेगा। जगह जगह नित्य अग्निदाह होंगे। पिता 'हा पुत्र!' पुकार पुकारकर प्राण तोड़ देगा। कहाँ तक कहें, उस समय किसी को न घर में शान्ति मिलेगी, न वन में। उस समय न स्त्री की सहायता पुरुष कर सकेगा, न पिता पुत्र की, जिस समय जगत् में कोई किसी का न होगा उस समय भगवान् ही सब की रक्षा कर सकते हैं।

निःसन्देह समय बुरा है, ठीक। भलाई में तो सभी लाभ उठाते हैं, किंतु जो बुरे अवसर में अपना काम बना ले, वही बुद्धिमान् है। इस कलि में जो अपनी अवस्था भली बना लेगा, वह की अशान्ति चली गई समझना। इति।

सुखी जीवन

(ले०—पौ० श्री वासुदेव शास्त्री तैलङ्ग, शु० वे० विशारद)

शिष्य—श्रद्धेय गुरुवर्य, आज मैं जिज्ञासु की दृष्टि से आप से एक प्रश्न करना चाहता हूँ।

गुरु—वत्स, अवश्य प्रश्न कर सकते हो। जब जब शिष्यों के हृदय में प्रश्न पैदा होते हैं, तो उन को चाहिए कि किसी योग्य गुरु या अभिभावक से पूछकर संदेह का निराकरण कर लें। इसी लिए तो प्राचीन गुरुकुलों की परिपाटी स्थापित की गई थी। और वहाँ तुम्हारे समान हजारों की संख्या में विद्यार्थीगण आ आकर प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम व्यतीत करके उस में संपूर्ण वेद, वेदाङ्ग, कला, नीति आदि अध्ययन कर पीछे गुरु आज्ञा से गृहस्थाश्रम ग्रहण करते थे।

शिष्य—गुरुवर्य, पूर्व की तरह आज भी सुखसरिता का प्रवाह अविच्छिन्न, निर्मल, निर्बाध क्यों नहीं बहता। आज भी पूर्व की तरह प्रत्येक भारतीय बालकों एवं बालिकाओं का सुखी जीवन क्यों नहीं दीखता ? क्या अब भी किसी उपाय से यह बदल सकता है ? और इस के बनाने की जिम्मेदारी किस पर होनी चाहिए। यही मेरा छोटा सा प्रश्न है।

गुरु—प्रिय वत्स, इस तुम्हारे सुखी जीवन के प्रश्न में सारे संसार का कल्याण छिपा हुआ है। आज तक हजारों की संख्या में विद्यार्थी पढ़कर चले गये, किंतु ऐसा प्रश्न किसी ने भी नहीं किया। मैं तो इस में ईश्वरीय कारण ही मानता हूँ। वत्स, सुखी जीवन बनाने में कुछ भी कठिनाई नहीं। यह सुखी जीवन थोड़ी सी बातों से अपने आप बनता चला जाता है। ऐसा ही ईश्वरीय नियम है। प्रत्येक क्षण ईश्वर पर दृढ विश्वास रखना चाहिए, वही सुखी जीवनदाता है। और वही इस भयानक समय से उद्धार करनेवाला है। आपस में शक्तियाँ टक्कर ले रही हैं। इस चक्की में ईश्वर के उपासी ही सुखी हो सकेंगे तथा निरीश्वरवादी गली गली भटकते फिरेंगे, इस का आगे अच्छी प्रकार से वर्णन होगा। किंतु इस के साथ जड़ मजबूती के लिए लोकसंग्रहार्थ और भी नियम हैं जो कि ईश्वर की उपासना में सहायक ही हैं। इस लिए सुखी जीवनार्थ जिन बातों का आश्रय लेना पड़ता है, वे ये हैं,—(१) ब्रह्मचर्य, (२) स्वास्थ्यनियम, (३) प्राचीन शिक्षा, (४) सोलह संस्कार। भगवद्भक्ति, जीव और ब्रह्म का ज्ञान आदि भी सहायतार्थ होना परमावश्यक हो जाता है, तभी सर्वाङ्गीण हमारा सुखी जीवन हो सकता है।

शिष्य—गुरुवर्य, आप ने तो ऐसी उच्च बातों का संक्षेप ही में नामनिर्देश कर दिया, कृपया सबों की विशद व्याख्या तो होना आवश्यकीय है।

गुरु—शास्त्रों में कहा है कि "कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः" कुशिष्य को पढ़ाने से नाम नहीं होता, गुरु का नाम तो तुम्हारे जैसे शिष्यों से ही होता है। अच्छा, तो उसे अब सुनाता हूँ। इस समय तुम्हारा प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम है। इस लिए इसी पर सुनाता हूँ।

शास्त्रवेत्ता ऋषियों ने मनुष्य की आयु सौ वर्ष की निश्चित की है, और इसी में से चार आश्रमों की स्थापना की है।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम हैं। प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य को पचीस वर्ष तक रहना पड़ता है। दूसरे आश्रम में पचास तक, तृतीय में पचहत्तर तक और चतुर्थ में सौ तक। इस

प्रकार सौ वर्ष की आयु हो जाती है। तीनों आश्रमों का मूल कारण ब्रह्मचर्य प्रथम आश्रम है।

शिष्य—गुरुवर्य, ब्रह्मचर्य शब्द का कोई कुछ अर्थ करता है और कोई कुछ अर्थ करता है। वास्तव में इस का शास्त्र से क्या अर्थ होता है?

गुरु—ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों से बना है, ब्रह्म और चर्य। इन दोनों के अनेक अर्थ होते हैं। किंतु यहाँ इन से तीन ही अर्थ अभिप्रेत हैं। ब्रह्म शब्द से वीर्य, वेद और ईश्वर, तथा चर्य शब्द से रक्षण, अध्ययन और चिन्तन। अर्थात् वीर्यरक्षण, वेदाध्ययन और ईश्वरचिन्तन।

शिष्य—गुरुवर्य, क्या ये तीनों वेद से सिद्ध हैं? इस में कुछ प्रमाण हों, तो अच्छा हो।

गुरु—कठोपनिषद् में कहा है कि 'तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म,तदेवामृतमश्नुते' अर्थात् वही वीर्य है, वही परमात्मा है और वही अमृत कहलाता है। ऐतरेयोपनिषद् में कहा है कि 'प्रज्ञानं वै ब्रह्म' अर्थात् वेद साक्षात् परमेश्वर है और वेदान्तदर्शन में कहा है कि 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' अर्थात् अब हम परमात्मतत्त्व की विवेचना करते हैं। वत्स, तुम समझ गये होगे कि ब्रह्म से वीर्य, वेद और ईश्वर का बोध होता है।

शिष्य—आप ने ब्रह्मचर्य का अर्थ तो वेद से सिद्ध कर दिया, किंतु ब्रह्मचर्य की प्राचीनता क्या वेद से सिद्ध है?

गुरु—अथर्व वेद में कहा है कि—

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्।'

अर्थात् ब्रह्मचर्यबल से देवों ने मृत्यु पर विजय पा ली और इन्द्र को इसी से सुरों में उच्चासन मिला है। वत्स, ब्रह्मचर्य की साधना से नर से नारायण हो जाते हैं। इस की बड़ी महिमा है। भगवान् शङ्कर ने कहा है—

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

छान्दोग्य में कहा है कि—'एकनक्षत्रुरो वेदा ब्रह्मचर्यं तथैकत.' इत्यादि शास्त्रीय प्रमाणों से ब्रह्मचर्य की महिमा सिद्ध हो जाती है।

भगवान् धन्वन्तरि एक दिन शिष्यों को आयुर्वेद पढ़ा रहे थे, एक ने पूछा कि भगवन्, ऐसा उपाय कहिए जिस से कभी रोग न हो। आप ने मुस्कराते हुए कहा—'मृत्युव्याधिजरानाशं पीयूषं परमौषधं, ब्रह्मचर्यम्।' जो मनुष्य शान्ति, कान्ति, स्मृति, शील, स्वास्थ्य, उत्तम सन्तति चाहता है उसे ब्रह्मचर्य की उपासना करनी चाहिए।

शिष्य—भगवन्, जब शिवजी पर काम ने बाण छोड़ा, किंतु वह काम उन के तृतीय नेत्र से भस्म हो गया, इस का आध्यात्मिक रहस्य क्या है?

गुरु—वत्स, मनुष्य का शरीर कैलाश है, जीव शङ्कर है, मनोविकार ही काम है और विवेक ही दोषनाशक तीसरा नेत्र है। ब्रह्मचर्य को मनोविकार नष्ट करना चाहते हैं, किंतु जब विवेकदृष्टि से देखते हैं तब मनोविकार नष्ट हो जाते हैं।

शिष्य—गुरुवर्य, ब्रह्मचर्य की क्या परिभाषा होगी?

गुरु—कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥

अर्थात् कायिक, वाचिक, मानसिक पापों को छोड़ना ही ब्रह्मचर्य है। यजुर्वेद ब्राह्मण में कहा है—'यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति, यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।' अर्थात् जिस का मन में चिन्तन किया जाता है वही वाणी से निकलता है, जो कुछ वाणी से निकलता है वही कर्म किया जाता है और जैसा कर्म किया जाता है वैसा ही उस का फल मिलता है। गीता में भी कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। इसी लिए मन को रोकना पड़ता है।

शिष्य—भगवन्, ब्रह्मचर्य से क्या फल मिलता है।

गुरु—ब्रह्मचर्य से ही अनेक दुर्लभ कार्य भी सुलभ हो जाते हैं। प्रथम इस से विद्याध्ययन में सुलभता मिलती है। अथर्व संहिता में कहा है।—

'ब्रह्मचर्येण विद्या विद्यया ब्रह्मलोकम्।'

ब्रह्मचर्य से ही विद्या और विद्या से ब्रह्मलोक में सुख प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य और विद्या में वृक्ष और शाखा के समान सबन्ध है। यही कारण है कि प्राचीन महर्षियों ने ब्रह्मचर्य द्वारा सपूर्ण गुरुकुलों में विद्याप्रचार किया था। महात्मा विदुरजी कहते हैं कि 'विद्यार्थ' ब्रह्मचारी स्यात्' अर्थात् विद्याध्ययन के लिए ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। क्योंकि इस समय की विद्या कभी नहीं भूल सकती।

एक दिन देवर्षि नारद इन्द्र के पास गये, इन्द्र उस समय कुछ वेदऋचाएँ पढ़ रहे थे, बीच से भूल गये। नारदजी ने झट पूरी कर दी। इन्द्र को विस्मय हुआ, किंतु नारद ने कहा कि ब्रह्मचारी कभी विद्या नहीं भूल सकता।

शिष्य—और इस से क्या क्या होता है?

गुरु—इस से धन मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है—'नानाश्रान्ताय श्रीरास्ति' बिना पुरुषार्थ के धन नहीं मिलता। क्योंकि लक्ष्मी पुरुषार्थ के वश रहती है, लक्ष्मी सदा ब्रह्मचारी, उद्योगी के पास रहती है, व्यभिचारी के पास लक्ष्मी नहीं रहती। इस से वत्स, हर किसी को भी धनवान् बनने के लिए ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए। देश, जाति, समाज, राज्य, सेवा और आत्मसेवा बिना ब्रह्मचर्य के नहीं हो सकती।

ब्रह्मचर्य से मनुष्य दीर्घायु होता है। इस पर यजुर्वेद में कहा है—

'यो विभर्ति दाक्षायण्यं हिरण्यं सदेवेषु कृणुते दीर्घमायु:, स मानुषेषु कृणुते दीर्घमायु।'

जो शरीर में ब्रह्मचर्य धारण करता है, वह विद्वानों में दीर्घायु प्राप्त करता है और साधारण मनुष्यों में भी दीर्घायु प्राप्त करता है।

शिष्य—गुरुवर्य, इस कलि में मनुष्यों की सौ वर्ष की आयु क्यों नहीं होती? और कैसे हो सकती है, इस का उपाय?

गुरु—श्रीभागवत के अनुसार कलि में भी मनुष्य की आयु का परिमाण एक सौ बीस वर्ष का है। इस से पूर्व मरनेवाले अकाल मृत्यु से ही मरते हैं। ब्रह्मचर्य से हीन अकाल मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं।

इस के नाश से अन्तःकरण अपवित्र और दुर्बल हो जाता है। इस के नाश से बिना तेल के दीपक की तरह जीवनप्रदीप बुझ जाता है। ब्रह्मचर्यनाश से आनन्द, साहस, धैर्य, वीरत्व, तेज, शान्ति, सद्विचार सभी नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रार्थ में, युद्ध में और प्रत्येक कार्य में यही विजयी बनाता है। ब्रह्मचर्य शरीर का राजा है। इस के नाश से सभी शक्तियों का नाश हो जाता है। वत्स, यह अध्यापकों का धर्म है कि सब से पूर्व ब्रह्मचर्य की महत्ता सिखाकर विद्या पढ़ावें। आजकल नई परिपाटी से स्कूल और कालेजों का विद्यार्थीसघ बड़ा विषमय बना जा रहा है।

कहाँ है गुरु शिष्य का गौरवपूर्ण सबन्ध? कहाँ है शौच और आचार की शिक्षा? कहीं हड़ताल है, कहीं बहिष्कार है, तो कहीं उपद्रव। सयमपूर्ण जीवन और सुखी जीवन के लिए उपर्युक्त विधि ही ग्राह्य है।

इसी में है

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी संन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

काशी विश्वविद्यालय की तरफ से 'विश्वपञ्चाङ्ग' नामक एक तिथिपत्र प्रतिवर्ष प्रकाशित होता है। उस में बड़ी सुन्दर सुन्दर उपदेशपूर्ण सूक्तियाँ रहती हैं। उन में से कुछ उपदेशवचन जो हिंदुसंगठन के विषय में हैं गीताधर्म के पाठकों के समक्ष उपस्थित किये जाते हैं, ताकि उन से हिंदुसमाज के उत्थान का कार्य समझ में आ सके। यथा—

ग्रामे ग्रामे सभा कार्य्या, ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला, प्रतिपर्व महोत्सवः॥

अर्थात् अब ऐसा समय आ गया है, जब हिंदुजाति को संगठित किया जाय, उसे बलवती बनाया जाय। आर्यजाति के बलिष्ठ होने से देशभर को सुख शान्ति प्राप्त हो जायगी, इस लिए जाति को योग्य सुशिक्षित बनाने के लिए बड़े बड़े बुद्धिमान्, देशभक्त, नाना लोग जाकर हर एक ग्राम में सभा करावें, फिर ग्राम के स्थानीय लोग मिलकर बिना किसी जातीय भेदभाव के, प्रति सप्ताह सभा किया करें। क्योंकि विचारविनिमय का यह सब से अच्छा तरीका है। इसी तरह प्रति ग्राम में शाम सवेरे नियमतः कथा हुआ करे, जिस में समझाया जाय कि रामायण, महाभारत, भागवत, गीता और उपनिषद् आदि के श्रवण करने से सर्वसाधारण को आज कल के समय के अनुकूल क्या शिक्षा लेनी चाहिए। पाठशालायें भी प्रति ग्राम में अवश्य होनी चाहिएँ, क्योंकि इन्हीं के द्वारा भावी नागरिकों की नींव डाली जा सकेगी। कुश्ती, व्यायाम आदि के लिये अखाड़े भी प्रत्येक ग्राम में अवश्य होने चाहिएँ। क्योंकि बल के बिना कोई भी किसी तरह का कार्य नहीं कर सकता। धन, मान, विद्या आदि का एकमात्र पूर्ण अधिकारी बलवान् ही हो सकता है। रामनवमी, जन्माष्टमी, हनुमज्जयन्ती, शिवाजयन्ती, प्रतापजयन्ती आदि उत्सवों को धूम धाम से मनाना चाहिए, यह प्रत्येक हिंदु का पवित्र कर्तव्य है, क्योंकि वीरपूजा से राष्ट्रीय आत्मा के उद्बोधन में प्रोत्साहन मिलता है, वीरों के धर्मवीर, शूरवीर, धर्मशूरोभयवीर, भेद प्रधान हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि उद्बुद्ध भारत के प्रधान अङ्ग हिंदुओं को सभा, कथा, शाला और उत्सवों का कार्य कभी शिथिल न करना चाहिए। देश की शान्ति और रक्षा की जिम्मेदारी हिंदुओं पर ही है, वे अपनी इस पवित्र जिम्मेदारी से बच नहीं सकते। अतएव यह सच है कि हिंदु जनता योग्य बने।

अनाथा विधवा रक्ष्या, मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्यं संगठनं कृत्वा, देयं दानञ्च तद्धितम्॥

अर्थात् मनुष्य सामाजिक जीव है, जब से इस की सभ्यता का प्रारम्भ हुआ है, तब से यह साथ साथ रहता चला आता है। साथ रहने का प्रधान लाभ यह है कि एक दूसरे के सुख दुःख में हाथ बटावें। जब यह बात है तो जो समर्थ हैं, जिन के सहायकों की संख्या काफी है वे उन की मदद करें; जिन के सिर से सहायकों की छाया हट गई हो, ऐसे लोग अनाथ और विधवा स्त्रियाँ हैं। जो जाति अपने अनाथों को नहीं अपनायेगी और जो अपनी विधवाओं को नहीं सँभालेगी उस का उन्नत होना कठिन है।

अतएव, अनाथ, विधवा, मन्दिर और गायों की रक्षा में हिंदुमात्र को सदा तत्पर रहना चाहिए। धार्मिक संगठन भी करना उचित है, इस के लिए यथाशक्ति सहायता प्रदान करनी उचित है। अपनी आवश्यकताओं को यथासम्भव कम करके हिंदुसंगठन के लिए दान देने से न चूकना चाहिए।

स्त्रीणां समादरः कार्यो, दुःखितेषु दया तथा।
अहिंसका न हन्तव्या, आततायी वधार्हणः॥

अर्थात् कोई भी समाज स्त्री और पुरुष इन दोनों को मिलकर पूर्ण होता है। ये दोनो अङ्ग जितने ही हृष्ट पुष्ट होंगे समाज भी उतना ही जोरदार होगा। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हिंदुजाति में स्त्रीजाति का बड़ा अपमान होता है, कहो, तो इस विषय के ताजे तथा प्रसिद्ध उदाहरणों का एक बड़ा पोथा लिखा जा सकता है। अब समय आ गया है कि लोग स्त्रियों का संमान करना सीखें। इसी तरह आपत्तिग्रस्त लोगों की सहायता भी करनी आवश्यक है, यह मत समझो कि पौत्र के साथ, सतमंजिले महल के सजीले चौबारे में बैठकर सोने की थाली में हमारा हलुवा पूड़ी उड़ाना सदा इसी तरह जारी रहेगा। यह मत भूलो कि कुदरत किसी को सदा एकरस नहीं रहने देती। कभी तुम भी मुसीबत की लपेट में आ सकते हो। उस समय जैसे दूसरे की सहायता से तुम्हारी आपत्ति दूर होती नजर आयेगी उसी तरह आज तुम भी दूसरे की सहायता करके उस के तड़पते दिल से आशीर्वाद ले लो, क्योंकि—आज तुम्हारा रंग है।

येही दिन हैं दुवा लेलो, किसी के फन्दे मुजतरसे।
जवानी आ नहीं सकती, मेरी जाँ! फिर नये सरसे॥

साथ ही इस का भी ख्याल रक्खो कि जो अहिंसक हैं, जो किसी को नहीं सताते, उन्हें कोई परेशान न कर सके, और जो—

अग्निदो गरदश्चैव, शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैव, षडेते आततायिनः॥

के अनुसार आततायी हों, चाहे वे—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाऽविचारयन्॥

गुरु, बालक, वृद्ध और ब्राह्मण ही क्यों न हों उन्हें दण्ड देने से न छोड़ना चाहिए। अर्थात् जो शान्त हैं उन पर अनुग्रह और जो उपद्रवी हैं उन का निग्रह अवश्य होना चाहिए।

अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा।
सेव्यं सदाऽमृतमिव स्त्रीभिश्च पुरुषैस्तथा॥

अर्थात् पुरुष हो चाहे स्त्री, सब को भय कम्पादिरहित होना चाहिए। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, धैर्य और क्षमा, इन का सेवन पालन करना चाहिए। ऐसा करना तुम्हारे लिए अमृतपान का काम देगा।

कर्मणां फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातु चित्।
भवेत्पुनः पुनर्जन्म मोक्षस्तदनुसारतः॥

अर्थात् कर्म करो, क्योंकि कर्म निष्फल नहीं होते। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के अनुसार मनुष्य कर्म करता चला जाय, 'क्या होगा?' इस की परवाह न करे। कर्म करने पर जो चाहोगे वह तो होगा ही। बस कर्मकाण्ड में जुट जाओ—

उत्थातव्यं जागृतव्यं, योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥

फिर कार्य सफल क्यों न होगा?

अय बन्दे! तू उठ, बाँध कमर, क्यों डरता है।
धर आगे पग, फिर देख, खुदा क्या करता है!

उत्तमः सर्वधर्म्माणां हिन्दुधर्मोऽयमुच्यते ।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च, सर्वभूतहिते रतैः ॥

अर्थात् अपनी अपनी जगह सब धर्म ठीक हैं, हिंदुधर्म की यह आदत नहीं है कि वह किसी को बुरा बताये। किंतु विचार किया जाय, तो सब धर्मों में मनुष्य के लिए आर्य सनातनधर्म ही अधिक उपयोगी है। हिंदुधर्म में निराकार की उपासना भी है और साकार की भी। वे एक अद्वय ब्रह्म के उपासक हैं और भूत प्रेतों के भी, अधिकारीभेद से हिंदुओं में सब प्रकार की उपासना करने का स्वातन्त्र्य है। इस में वर्णाश्रमधर्म की ऐसी सुन्दर व्यवस्था है जो और किसी में पाई ही नहीं जाती। अत सब धर्मों में हिंदुधर्म उत्तम है। इस धर्म की जी जान से रक्षा करनी चाहिए, इस के संरक्षण से उस प्राचीन सभ्यता की रक्षा हो सकेगी जिस से पहले सभी जातियों ने चरित्ररक्षण करना सीखा था—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

जहाँ तक हो सके, हिंदुधर्म के प्रचार को और भी व्यापक बनाना चाहिए। जितना ही हिंदुजाति का अभ्युदय होगा उतनी ही देश में शान्ति स्थापित होगी। हिंदुजाति के बलवती होने से किसी को किसी पर अत्याचार करने का साहस न होगा। समय समय हिंदुजाति को अवश्य ही विदेशी लुटेरों ने मनभर के लूटा है, पर हम ने किसी के साथ छूटखसोट नहीं की।

धर्म और देश की उन्नति के लिए अपने आप को मिटा देना होगा। "जब बहुत से नवयुवक खाद बनकर इस भूमि में मिल जायँगे, तब उस में से अङ्कुर फूट निकलेंगे, शायद उन पर स्वाधीनता और धार्मिकता का मीठा फल लगे।" बात यह है कि जिस ने पाया, अपना आपा-अहङ्कार मिटाकर पाया है। 'स्वार्थत्याग' किसी का निष्फल नहीं जाता—

खाकसारी जाहिदों की, बेसबब होती नहीं ।
खाक में मिलता है दाना, सब्ज होने के लिए ॥

याने एक दाना मिट्टी में मिल सड़कर हजारों दाने उत्पन्न करनेवाला अङ्कुर पैदा करने में समर्थ होता है। इसी तरह एक एक महापुरुष अपनी समाधि की मिट्टी में हजारों ऋषि मुनि पैदा करने के बीज बो देता है। तुम यह समझ लो—"हमें अपने ही पञ्जर से अपनी ही पसुलियों को निकालकर और उन्हीं को जलाकर उन के प्रकाश में स्वतन्त्रता देवी के मन्दिर तक पहुँचना होगा।" जो दूसरों की बलि से देवी देवताओं को प्रसन्न करके वरदान चाहते हैं, वे कुछ नहीं पा सकेंगे। जो कुछ मिलेगा, अपना आपा होमकर मिलेगा। जैसे अच्छे खेत में बीज डालना सफल होता है उसी तरह संगठित होकर स्वार्थत्याग करना अधिक लाभप्रद है। जैसे—"आपस में लड़ झगड़कर सुख संपत्ति पाना उतना ही कठिन है जितना रामेश्वर की तरफ दौड़कर हिमालय की खोज करना, और पश्चिम की ओर चलकर सूर्य की अरुणाई देखने की इच्छा करना।"

हमारा तो आप लोगों से यही कहना है कि "आप अपने हृदय में उस भाव का प्रादुर्भाव कीजिए जिस ने महाराणा प्रताप से अरावली के पहाड़ों की खाक छनवाई और छत्रपति शिवाजी को विदेशियों द्वारा लुटेरे की पदवी दिलवाई।" अब समय आ गया है, आप लोग इस भाव को हृदय में दृढ़ कर लें कि हमें कोई कुछ भी कहे, अपना काम करना है, हजारों बन्धनों के होते हुए भी नहीं चूकना है, बन्धनों को भी तोड़ना है और काम भी करना है। हम तो

"दुःख, पीड़ा, अन्याय, दीनता, और अन्धकार की जगह सुख, स्वास्थ्य, न्याय, स्वावलम्बन और प्रकाश का राज्य चाहते हैं। हम को अपने घर में, अपने देश में स्वराज्यसिद्धि के यज्ञमण्डप मे स्वतन्त्रता देवी की आरती उतारनी हैं। हम बाजे बजाना चाहते हैं, इस लिए नहीं कि हमें किसी से द्वेष है, बल्कि इस लिए कि हमें अपने देश, धर्म और जाति से प्रेम है।

आप लोग अन्य लोगों के बहकावे में आकर धर्म को अनुपयोगी न समझने लगें। धर्म हानि की चीज नहीं है, हानि तो उस के अनुचित प्रयोग से बेजा इस्तेमाल मे होती है। धर्मनीति मनुष्य को संसार के प्रत्येक कार्य करने मे सुदृढ और योग्य बनाती है और राजनीति उसे आगे बढ़ाने मे सहायक होती है। धर्मनीति और राजनीति इन दोनों के यद्यपि मार्ग भिन्न भिन्न हैं पर इन मे एक दूसरे की पोषक है।

धर्म सुख शान्ति का साधक होना चाहिए, यह दूसरी बात है कि उसे धार्मिक पेशवाओं ने विषैला बना दिया है, इस में वस्तुतत्त्व का क्या दोष है ?, इस मे तो जो कसूर है प्रयोक्ताओं का है। ऐसे तो किसी भी अच्छी से अच्छी वस्तु को भी बिगाड़नेवाले खराब करके रख देते हैं। क्या आजकल के नेताओं ने राजनीति को भेद, विच्छेद और कटुता से नहीं भर दिया है? जब कि हम जातीय संगठन करना चाहते हैं, और अधिकारप्राप्ति के लिए हथेली पर सिर लिए फिरते हैं, जब कि हम पराधीनता के दुःख से कराह रहे हैं, ऐसी दशा में हमारे राजनैतिक अगुवा दलबंदी कर रहे हैं। समझना चाहिए कि भारत जैसे देश मे दलबंदी अपराध है, यह तो स्वतन्त्र देशों का विलास है। दूसरे स्वतन्त्र देशों में चाहे "वादे-वादे जायते तत्त्व बोधः" वचन आशीर्वाद भले ही हो, पर हमारे पराधीन देश में तो यह "वादे वादे जायते भेदबुद्धिः" रूप में अभिशाप ही सिद्ध होता है।

हमें आज ऐसे तपस्वी महापुरुष की आवश्यकता है जिस की तपश्चर्या उन के निमित्त हो जो तिरस्कृत, पतित, और पददलित हैं, जो निर्धन, निराश्रय, और निर्बल हैं। वह बोनेवाला, सींचनेवाला और देनेवाला हो, और अर्थीजन काटनेवाले तृप्त होनेवाले और पानेवाले हों।

वह धर्ममूर्ति महात्मा हमारे आर्य धर्म का प्रतिनिधि हो। उस की आत्मा में राम की मर्यादा, कृष्ण की कर्मण्यता, बुद्ध की अहिंसा, शंकर का विज्ञान, महावीर की दया, रामानुज की भक्ति, चैतन्य की भावना, ईसा की दीन बन्धुता और मुहम्मद की कट्टरता आदि अनेक धारणाएँ विद्यमान हों।

निःसंदेह देश, धर्म और जाति के उद्धार के लिए आज हम ऐसे महात्मा चाहते हैं जिन के नेत्र पक्षपात के चश्मे से न ढके हों। जिन का हृदय तरफदारी की कालिख से कलुषित न हो। हमें ऐसी आशा संन्यासिसमाज से जितनी है उतनी और किसी से नहीं। जिन का जीवनपात्र अहंकार के जल से परिपूर्ण होगा, उस में दीन दुःखितों के प्रति अनुकम्पा के लिए स्थान नहीं है। क्योंकि—

मोह द्रव्य यश स्वार्थ को, है जिस में भरमार।
रुके हुए उस हृदय में, कहाँ बसेगा प्यार॥

जिन के दिल साफ हैं, जो जगत् को भगवान् का विराट् स्वरूप मानते हैं। वे ही उस के पूजा के अधिकारी हैं। हमें अपनी हृदयवेदिका पर ऐक्यभावना के देवता को प्रतिष्ठित करके उस के सामने जो स्तोत्रपाठ करना होगा उस का प्रथम श्लोक यहाँ से प्रारम्भ होगा—

नूतन विधि से पुनः विश्व में,
भव्य काल वह आजावे।

जगती तल पर एक बार फिर,
सुख समृद्धि वह छा जावे ॥

जब हम भगवान् कृष्ण के सामने—

मोहन ! 'गीताज्ञान' सुनादो ।
पाप ताप परिपूरित भूपर,
वचनवारि बरसादो ।
म्लानभाव सुमनों में फिर से,
नवजीवन सरसादो ॥
शिथिल हिन्दुओं की नस नस में,
फिर रसधार बहादो ।
किंकर्तव्य मूढ भारत को,
कर्ममार्ग दिखलादो ॥

ऐसे वचन प्रार्थना के रूप में उपस्थित करेंगे, तो दीनोद्धार हमारी कहीं अनसुनी नहीं कर देंगे।

हम किसी प्रकार के भेदभाव के बिना उन दोनों शक्तियों का अभेदबुद्धया अनुष्ठान करेंगे, जो तामसें पालन और संहार की अधिष्ठातृ देवता हैं।

यथा पुराणोपपुराणयुक्ताः
साङ्गाश्च वेदाः स्मृतयः समस्ताः ।
शास्त्राणि सर्वाणि विलोकितानि
न क्वापि दृष्टः 'शिवविष्णुभेदः ॥'

अर्थात् विष्णु रचना के प्रधान देवता हैं और शंकर संहार के। हमें इन दोनों की ऐक्यभाव से उपासना करनी होगी। जो जाति या देश के नये नये उपाय हैं उन की रचना और जो हानिप्रद काम हैं उन का संहार करना होगा।

अवश्य ही हमारे स्तोत्रपाठ से प्रसन्न होकर देवता हमें आशीर्वाद के रूप में उद्धार के लिए यह उपदेश वरदान देंगे कि "सज्जनो ! 'कीर्ति' एक अच्छी चीज है, *परन्तु उस से अच्छी 'प्रीति' है। क्योंकि* कीर्ति में स्वार्थ है, और प्रीति में उस का त्याग होता है। तब हम निश्चय कर लेंगे कि बस, जो कुछ है "इसी में है" इति।

—※—

चित्रकार से

ले०—कविराज श्री नन्दकिशोर जोशी 'किशोर'

ओ ! सौन्दर्य के उपासक ! प्रेम के पुजारी ! कला के निर्माता ! तू किस विचार में तूलिका लिए चित्र विचित्रसा खड़ा है ? मौन ! क्यों ? इस अनुपम सौन्दर्य की प्रतिमा, माधुरी मूर्ति पर मुग्ध होकर; या उस सर्वशक्तिमान् कलाकार की कला से चकित होकर ? पर शायद हमारी बात सच नहीं ?

अरे ! तू इसे आनन्द का घर, स्वर्ग की सीढ़ी, स्वर्णशरीर, मनोहर मनोरमा मानकर मन्त्रमुग्ध सा खड़ा है। क्यों ? यह तो वास्तव में अयथार्थ है, अस्थिचर्ममय नरक का द्वार है। इस के मधुर मन्द हास को तू ऐन्द्रिक सुख मानकर तन, मन, धनयौवन आदि सर्वस्व अर्पित करने जा रहा है यह तेरी महान् भूल है। यह क्षणिक सुख तेरे जीवन का सर्वनाश कर तुझे वास्तविक सुख से कोसों दूर फेंक देगा।

अरे ! ज़रा मन में तो सोच ! जिसे तू अनुपम सौन्दर्य की प्रतिमा मानकर अपना धन खोने जा रहा है, इसे भूल यह तो तुच्छ है। हटाले इस चित्र से निज तूलिका।

कलाकार ! *जो सुन्दर है लाखों को सौन्दर्य का खजाना, क्या वह मनमोहन सौन्दर्य का भण्डार न होगा ?* बना तू उस की प्रतिमा, करके अपने को तन्मय, तभी तो मिल सकेगा तुझे वास्तविक सुख !!

गीतामाहात्म्य

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

आजकल के लेखक ग्रन्थप्रचार के लिए प्रायः किसी बड़े आदमी से इस की प्रशंसाभरी प्रस्तावना लिखाते हैं। कहना न होगा कि यह एक तरह की विज्ञापन की युक्ति और अपने नाम का लोगों में डंका बजाने का तरीका है। माल बेचनेवाले अखबारों में जैसे विज्ञापन निकालते हैं और सौ में निन्यानवे के लिए कहा जा सकता है कि वे बेकार और निराधार होते हैं, उन का गुणवर्णन प्रत्यक्षरूप का अपलाप ही करता है।

परंतु इन चालबाजियों की पूर्व के ऋषि मुनियों को जरूरत न होती थी, वे किसी से प्रशंसापत्र पाने के लिए ग्रन्थ नहीं लिखते थे। इस दशा में कोई पूछ सकता है कि तब तो, 'भागवतमाहात्म्य' 'गीतामाहात्म्य' ये सब क्या हैं? इन में भी तो विज्ञापनबाजी की झलक दिखाई देती है। कोई कोई पुराणकार तो गीता के बारे में ऐसा कहते हैं कि गीता का पाठ करे और उस के माहात्म्य का पाठ न करे, तो उस का कोई फल नहीं होता।

गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत्।
वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रम एव ह्युदाहृतः॥

परंतु आजकल की प्रस्तावना इत्यादि लेख और आर्षशास्त्रोक्त माहात्म्य इन में भारी अन्तर है। ऋषि लोग किसी ग्रन्थ के पठन का आध्यात्मिक फल विचारते हैं, जैसा कि गीतामाहात्म्य के विषय में कहा जा सकता है।

इस विषय में यह शङ्का करना तो उचित हो सकता है कि गीताकार व्यासजी को अथवा मूलग्रन्थकार भगवान् कृष्ण को उन के ग्रन्थ की इस प्रकार की बड़ाई से सहमति है या नहीं, या यों कह सकते हैं कि गीतामाहात्म्य का कोई आधार स्वयं मूलग्रन्थ गीता में है या नहीं? इन सब शङ्का प्रतिशङ्काओं का हम यही समाधान कर सकते हैं कि ऋषि लोग *कभी निराधार बात नहीं कहते। मल्लिनाथजी जैसे* लौकिक पण्डित भी कहते हैं कि 'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते' तो फिर सत्यवादी ऋषियों का कहना ही क्या। परंतु सौभाग्यवश हमें ऐसी अटकल पच्चू की जरूरत नहीं। यत्र तत्र कथित गीता-माहात्म्य के श्लोक लेकर हम दिखा सकते हैं कि उन में कथित बातों का मूल गीता में ही है। इतना ही नहीं, यहाँ तक प्रमाणित करेंगे कि माहात्म्य लिखने में साक्षात् प्रेरणा गीता की ही है। निदर्शनस्वरूप गीता-माहात्म्य का वही श्लोक लीजिए जो सर्वसाधारण में परिचित है और इतना लोकप्रिय है कि स्कूल की प्रार्थना में भी बालक उसे बोला करते हैं। यथा—

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयम्।
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम्॥
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीम्।
अम्ब त्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम्॥

इस में पहली बात यह है कि भगवान् ने पार्थ को गीता का उपदेश किया। इस को प्रमाणित करना अनावश्यक होने पर भी गीतावाक्य का उद्धरण दिया जाता है—

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषं पवित्रं रोमहर्षणम्॥

संजय कहते हैं कि श्री कृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र, विचित्र संवाद को (जल्प, वितण्डा नहीं, यथार्थ भाषण को) मैं ने सुना। लोक में भी कहते हैं कि 'वादे वादे जायते तत्त्वबोध'। यहाँ तक इस कथन से 'पार्थाय प्रतिबोधिताम्' यह सिद्ध हुआ। अब यह देखना है कि देवकीपुत्र कृष्ण, भगवान् थे या नहीं। एक प्रमाण तो यही है कि संजय 'श्री भगवान् उवाच' ऐसा बोलते हैं, फिर भी संजय के वाक्य का आधार देखना चाहिए, यथा—

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥

यह श्लोक सञ्जय के पक्ष में प्रमाण है, इस का स्पष्टीकरण करने के पहले 'भगवान्' शब्द की परिभाषा करना जरूरी है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

संपूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन की 'भग' नाम से प्रसिद्धि है। वह जिन में हो वे भगवान् कहाते हैं। ऊपर के गीतावाक्य में 'महति स्यन्दने' शब्द से ऐश्वर्य की सूचना है। 'ततः' पद से धर्म सूचित होता है, क्योंकि कौरव पाण्डवों का संग्राम धर्मयुद्ध था और उस का लक्षण है कि शत्रु के ललकारने पर पीठ न मोड़े और प्रकृत पक्ष में ऊपर आया है कि 'कुरुवृद्ध पितामह ने सिंह के समान गर्ज कर शङ्ख बजाया' इस से आह्वान सिद्ध है।

तीसरा यश, 'श्वेतैर्हयैर्युक्ते'—सफेद रंग के श्याम कर्ण घोड़ों से सिद्ध है, क्योंकि घोड़ों के नाम ही उन की लोकोत्तर उत्तमता के सूचक हैं—शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक। चौथा भगवत्ता का लक्षण है श्री, जो कि 'माधव' मा—लक्ष्मी के धव—पति; इसी से सूचित है। ५ पाँचवाँ ज्ञान 'दिव्यौ शङ्खौ' से जानना, क्योंकि दिव्य शङ्खध्वनि से लोगों में धर्मयुद्धार्थ सत्प्रेरणा हुई थी। छठा वैराग्य 'स्थितौ' पद से समझना, क्योंकि इतने विशाल शूरों के समूह में निःशस्त्र होकर युद्धव्यापार से सार्थंत पृथक् रहना विराग के सिवा क्या कहा जायगा? इस व्याख्यान से श्री कृष्ण में भगवत्ता पूरी पूरी सिद्ध है। कहा भी है—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

अब नारायण का विचार करना है कि उस की उत्पत्ति गीता में कहाँ है?

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

हे अर्जुन, मैं आत्मारूप से निखिल प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। यानी अन्तर्यामी रूप से सब के सञ्चालक भगवान् ही हैं। धर्मशास्त्र में कहा है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

—मनु० १।१०

सब से प्रथम नररूप परमात्मा ने जल उत्पन्न किया, फिर उस में उन का निवास हुआ, इस से वे नारायण कहे गये हैं। इस से भी गीतोक्त सर्वान्तर्यामीत्व सिद्ध हुआ। गीता अद्वैतामृत की वर्षा करती है, यह बात दिखाई जाती है—

द्वैत, अद्वैत यह आजकल की परिभाषा है, गीता में इस मतामत का झगड़ा नहीं है, उस का मत सब से अलग है। प्रत्येक अध्याय में जो पुष्पिकावाक्य हैं, उन में 'योगशास्त्रे' ऐसा पद है, अर्थात् गीताकार के मत में उस का प्रतिपाद्य विषय योग है। चौथे अध्याय में भगवान् ने स्वयम् कहा है कि हम ने यह योग विवस्वान् को कहा और वही तुम को (अर्जुन

को) सुनाते हैं। तीसरे, संजय के मत से भी गीता का विषय योग है, वे कहते हैं—

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान् अहं गुह्यमिदं परम्।
योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम्॥

मैं ने व्यासजी की कृपा से इस अत्यन्त गुप्त योग को खास भगवान् से सुना है। यही योग अद्वैत शब्द का अर्थ है। अद्वैत शब्द द्वित्व का निषेधक है, तथापि ऐक्य का प्रतिपादक नहीं। योग शब्द का भी यही अर्थ लगाना चाहिए, क्योंकि गीता में एक स्थान पर आया है—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।

—गी० ९।२९

जो भक्तिसहित मेरा भजन करते हैं, वे मुझ में हैं और मैं उन में हूँ। सूरदासजी के शब्दों में कहें, तो—'हम भक्तन के, भक्त हमारे।' इस से योग शब्द का यह अर्थ निकला कि जीव में ब्रह्म है और ब्रह्म में जीव है। अमृत कहने का आधार यह है कि—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

—गी० ४।१

मैं इस अव्यय (अविनाशी, अमृत) योग का मनु के प्रति उपदेश कर चुका हूँ। इस से योगरूप अद्वैत को अमृत कहना ठीक हुआ। 'वर्षिणीम्' अर्थात् गीतायोग की वर्षा करती है इस का उपोद्घलक—

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा
विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः।

—अ० ४ सू० २९

इस योगसूत्र में समाधि अर्थात् योग को मेघ शब्द से उपमित किया है, इतना ही कहना पर्याप्त है।

'भगवतीम्' इस शब्द का सार्थक्य—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

—गी० १८।७०

जो हमारे इस धर्मयुक्त संवाद को पढेगा, मानो उस से मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा। जिस ग्रन्थ के अध्ययन का ऐसा महत्त्व है उस के भगवतीत्व में क्या कसर है ?

'अम्ब' संबोधन का सार्थक्य यही है कि जिस प्रकार बच्चों के सृष्टि, स्थिति, पालनादि माता पर निर्भर रहते हैं वैसे ही जीवमात्र गीतोक्त ज्ञान के आधार पर स्थित हैं।

'भगवद्गीते' इस में तो विवाद नहीं, क्योंकि यह भगवदुच्चरित है, यथा—'साक्षात् कथयतः स्वयम्।'

अब एक विशेषण रहा 'भवद्वेषिणीम्' इस का समर्थक वाक्य है—

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

हे अर्जुन मुझे प्राप्त कर लेने पर फिर संसार में जन्म नहीं होता : यहां तक इस विवेचन में गीता-माहात्म्य के प्रसिद्ध श्लोक का मूल गीता में ही दिखाया गया है उसी तरह पूरे माहात्म्य का मूल आधार गीता में ही है; यह बात यथावसर यथावकाश पाठकों के समक्ष फिर कभी रखी जायगी।

ॐ तत्सत्

यहाँ ख्याल रखना चतुराई है

(ले०—श्रीमती विभूति देवी, अध्यापिका)

छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदासजी कहते थे—"सब को हरिकथा और आध्यात्मिक निरूपण की ओर ध्यान देना चाहिए, किन्तु राजनैतिक बातों को भी अच्छी तरह समझ रखना उचित है।" कहने का प्रयोजन यह है कि 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म्मः' के अनुसार मनुष्य को उन दोनों कार्यों के संपादन करने का उद्योग करना उचित है, जिन से इह लोक सुखदायक हो, और परलोक में भी कल्याणप्राप्ति हो सके। यही धर्म है। परलोक की आशा से, स्वर्ग की लालसा से यहाँ के कामों को चौपट कर देना अर्थात् उन से मुँह मोड़कर दर बदर मारे मारे फिरना बुद्धिमत्ता में दाखिल नहीं है। इसी तरह 'यहीं सब कुछ है' ऐसी धारणा से परलोक के सुधारने का कुछ भी यत्न न करना, यह भी समझदारी की बात नहीं है। अभिप्राय यह है कि 'मनुष्य इस लोक को भी बनावे और परलोक को भी न बिगड़ने दे।'

किसी ने कहा है—"मध्यान्ह का सूर्य जब अपने ताप की सीमा को छू लेता है। उसी समय से उस के पतन का आरम्भ हो जाता है।" अर्थात् जो उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच जाता है, वही फिर वहाँ से नीचे की ओर गिरता नज़र आता है। क्योंकि पतन अनिवार्य है, जब यह सच है, तो उस से पहले सँभलने का यत्न कर लेना चाहिए। जो ऐसा करते हैं, वे धीरे धीरे सँभलते हुए नीचे की ओर को आते हैं, वे नष्ट नहीं होने पाते, अतः उन्हें फिर उन्नत होने का मौका मिल जाता है।

तुम इस बात की चिन्ता क्यों करते हो कि हम साधनहीन हैं, दुर्बल हैं और पहले जैसे शक्तिशाली नहीं रहे, परिवर्तन तो माया के प्रपञ्च में हुआ ही करता है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
—गी० २।१३

अर्थात् यह जगत् धाराप्रवाहरूप में सदा यों ही चलता रहेगा, किंतु पहली व्यक्तियाँ मिट जायँगी और नवीन व्यक्तियाँ उन का स्थान ग्रहण करेंगी, पहली रचना उसी रूप में कदापि नहीं टिकी रह सकती, फिर इस में आश्चर्य किस बात का ?

बीज कहता है—

"मेरी कोख में एक विशाल वृक्ष छिपा हुआ है, जब मैं उसे जन्म दे दूँगा तब नष्ट हो जाऊँगा।" नदी का पानी देखते देखते बह जाता है, पता नहीं लगता, पहला कहाँ गया, कब गया और नया कब आया ? इसी प्रकार वायु के झोंके की तरह मनुष्य-जीवन है। ख्याल रखो, जब तक तुम अपने स्थान से हटा न दिये जाओ, उस से पहले ही उस उद्देश्य की पूर्ति कर लो, जिस के लिए तुम यहाँ आये हो। क्योंकि "इस संसार में एक स्थान तेरे लिए भी रिक्त है, परंतु नाटक तेरे आने की प्रतीक्षा में रुका न रहेगा।" यानें तुम संसार में जो भी कुछ करना धरना चाहो उस के लिए तुम्हें मौका और समय मिल सकता है। किंतु तुम्हारे इन्तज़ार में कुदरत का कोई काम (प्रकृति का चक्र चलना) रुका नहीं रह सकता।

यह चमन यों ही रहेगा, और हज़ारों जानवर।
अपनी अपनी बोलियाँ, सब बोलकर उड़ जायँगे॥

यद्यपि प्रकृति का साम्राज्य विशाल है, उस में तुम्हारा अस्तित्व समुद्र में बिन्दु के समान नगण्य है, किंतु तुम्हारा महत्त्व कम नहीं है, तुम भी कुछ हो, और ऐसे हो जैसे एक बहुत बड़े इंजन का मामूली पुर्जा होता है उस के बिना बड़ा विशाल यन्त्र बेकार हो जाता है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि "मिट्टी का दीपक घर के उस अँधेरे कोने में प्रकाश पहुँचाता है, जहाँ चन्द्रकला प्रवेश नहीं पा सकती।" ठीक, जिन अँधेरी गुफाओं में सूर्य कभी भी प्रकाश नहीं पहुँचा सकता, मामूली दीपक वहाँ उजाला करने की सामर्थ्य रखता है। इसी तरह प्रत्येक मनुष्य इस लंबे-चौड़े जहान में अपने लिए खास स्थान रखता है, जहाँ स्थिर होकर वह इष्टसाधन कर सके। कोई किसी दशा में हो, किसी स्वरूप में हो, किंतु अपने आप को नगण्य तथा तुच्छ न समझे। जो महान् हो गये हैं और हैं पहले वे भी बहुत ही साधारण अवस्था में थे, आज का विशाल-काय महावृक्ष पहले बहुत छोटे अंकुर के रूप में प्रकट हुआ था। इसी लिए तुम 'आत्मानं नाव-मन्येत' के सिद्धान्त को मानो।

किंतु तुम अपनी संपत्ति, शक्ति पर गर्व भी मत करो। यदि गर्व करने की, अभिमानी होने की आदत हो पड़ गई है, तो इस पर करो कि मैं ने अपनी सामर्थ्य से इतने दीनों की दीनता नष्ट कर दी, अन्यथा दीनों की वेदना सामर्थ्यवानों के उत्सवों का उपहास करती है। इस कथन के अनुसार 'एक दीन की ठंडी आह में सौ भट्टियों की आँच है।' यह बात सदा स्मरण रखने योग्य है। कोई भी समर्थ मनुष्य समुद्र की बाढ़ से बच सकता है, बिजली गिरने से अपनी रक्षा कर सकता है, बमगोलों की मार विफल कर सकता है, आग की लपट को नहीं लगने दे सकता और सारे संसार के विरोध को चुटकियों पर उड़ा सकता है, किंतु 'दीन की शीतल हाय' की ठंडी मार से अपने आप को नहीं बचा सकता।

मनुष्य इस दुनियाँ में कुछ करने को आया है, इस के तीन काम मुख्य हैं, पहला 'अपने आपको योग्य बनाना, क्योंकि पैदा होने के समय दुनियाँ में कोई योग्य बनकर नहीं आता, प्रत्युत वर्षों दूसरों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। दूसरा 'दूसरे का सहायक होना' क्योंकि ऐसा करनेवाले समय पड़ने पर दूसरों से मदद पा सकते हैं। तीसरे 'किसी को न सताना' क्योंकि ऐसा करनेवालों का मानसिक बल क्षीण नहीं होने पाता।

संसार में लेने और देने का व्यवहार हो रहा है, जो दे नहीं सकता वह कुछ पाने का हकदार नहीं है, दे वही सकता है, जिस के पास कुछ होगा, पास में याने अपने अधिकार में वे ही कुछ रख सकते हैं जो बुद्धिमान् होंगे, देश काल की गति विधि को नियन्त्रण करना जानते होंगे। लोक में वही मनुष्य उन्नत समझा जाता है जिस का प्राकृतिक पदार्थों पर अधिक अधिकार हो और जो वस्तुओं का उचित प्रयोग करना जानता हो।

ऐसा तो वे ही कर सकते हैं जो स्वयं सशक्त हों, दूसरों के सहयोग को प्राप्त करके अपने स्वार्थ-साधन में, निपुणता हासिल करने में दक्ष हों, चतुर हों और मार्ग में आ पड़नेवाले दूसरे के स्वार्थ को हानि न पहुँचाते हों। अपना काम बने तथा अन्य का बिगड़ने न पावे, बस सदा यही ख्याल रखना चतुराई है।



प्रभुचरणों में

(ले०—पुरुषोत्तमदास भीमाभाई देसाई)

प्रेम शब्द बोलने में बड़ा ही सरल और सुनने में अत्यन्त मधुर है, इस की इन्हीं विशेषताओं से रीझकर किसी महात्मा ने कहा है—

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥

यह कथन कोई अत्युक्तिपूर्ण नहीं, किंतु सोलह आने सत्य और अनुभवभरी उक्ति है। प्रेम बोलने में जितना सहज और सुलभ है, ठीक इस के विपरीत उस को पाना बहुत ही दुर्लभ है, कहने को तो बहुत आदमी प्रेमी बनते हैं, पर असलियत दूसरी ही है। वह विश्व के व्यापारिक बाजारों में मिलनेवाली चीज नहीं, अलंकार और भूषणों की तरह झिल मिलानेवाली चीज नहीं, संग्रहालयों (अजायबघरों) की चमकती हुई आलमारियों में या स्वर्णाक्षरों में लिखित ग्रन्थराशियों में नहीं, जागतिक महाप्रभुओं के शानदार राजप्रासादों में नहीं, ऐश्वर्य की चकाचौंधवाले साम्राज्यसिंहासनों में नहीं, राजनीति की प्रबल शक्तिशालिनी, रोब, दबदबा, प्रताप बतानेवाली प्रतिभावती बुद्धि में भी नहीं। उस का परम रम्य स्थान तो दूसरा ही है। वह पवित्र और शुभ्र हृदय मन्दिर में विराजनेवाली अनोखी चीज जिस के पास है उस की बराबरी करनेवाला देव और गन्धर्वों में भी कोई नहीं। आप को मालूम होगा कि श्री वृन्दावन की गोपियों ने अपने अलौकिक प्रेम के बल पर बड़े बड़े महाज्ञानियों का भी मान भङ्ग कर दिया था, द्वारकावासिनी पटरानियों को भी मुग्ध और ईर्ष्यालु बना दिया था, बड़े बड़े ऋषि, मुनि, योगियों का अभिमान चूर चूर कर दिया था, और तो और सदाशिव भोलानाथ को भी गोपीवेष धारण करने पर ही प्रेम की महिमा ज्ञात हुई थी।

विश्व में प्रेम ही सत् और सत्य है, जहाँ कहीं सत् और सत्य दिखाई देता हो, वह प्रेम का रूपान्तर है। प्रेम का ह्रास कदापि नहीं होता, एक बार प्राप्त हो जाय, फिर तो बद्धमूल हो जाता है। प्रेमी के प्राङ्गण में प्रेमपात्र का आधिपत्य ऐसा प्रबल और पूर्ण हो जाता है कि दूसरे को वहाँ रहने का स्थान ही नहीं मिलता।

प्रीतमछबि नैनन बसी, परछबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय॥

'गीताधर्म' का वाचनामृत पान करनेवाले प्रिय पाठकगण! लोग कहते हैं कि इस युग में प्रभु के साक्षात् दर्शन नहीं होते, किंतु प्रेमी जनों का अनुभव इस के विपरीत है। जिस भाग्यशाली मनुष्य के हृदय में प्रभुप्राप्ति की तीव्र उत्कण्ठा हो, जिस का मन प्रभुदर्शनार्थ व्यथित रहता हो, जिस के जीवन की प्रत्येक घड़ी प्रभुमिलन की लालसा में व्यतीत होती हो, क्या ऐसे व्यक्ति की प्रभु कभी अवज्ञा या अवहेलना कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं, ऐसे प्रेमी भक्त को दर्शन देने के लिए प्रभु नंगे पैर दौड़े चले आते हैं।

हमें इस विषय पर शान्त चित्त से विचार करना चाहिए, क्या हमारे हृदय प्रभुप्रेम की उत्कण्ठा में पल भर भी व्याकुल रहते हैं ? नहीं, हमारा मन तो मायावी पदार्थों को अपना सर्वस्व समझता है, उस में प्रभुप्रेम को रत्तीभर स्थान नहीं, वह तो संसार के नश्वर सुखों में मस्त है। उस को परमेश्वर और परलोक जैसे शब्दों से क्या दरकार ? उसे तो चाहिए धन, संपत्ति, कीर्ति और महल, बगीचे आदि ऐश आराम की चीजें। पर कामी पुरुष अपनी चाही हुई कामिनी को प्रसन्न करने के लिए जितना सोचता और यत्न करता है, उस के विरह में रोता व तड़पता है, क्या उसी तरह कोई ईश्वरदर्शनार्थ रोता या छटपटाता है ? एक लोभी आदमी अपने पैसों के लिए जितनी फिकर करता है, उतनी फिकर कोई ईश्वरदर्शनार्थ रखता है ? एक साधारण नौकरी के लिए जितनी खुशामद, कोशिश पैरवी करते हैं, क्या वैसा प्रयास प्रभुप्राप्ति के लिए किया जाता है ? अपने हृदय को विचार के काँटे पर तोलकर देखो कि कौन पलड़ा नीचे झुकता है ? संसार की चकाचौंध से भरे मायामोह का या प्रभुप्रेम का।

प्रचण्ड पावक की ज्वाला पर चढ़ी हुई, भरे हुए तेल से खौलनेवाली कढ़ाई में गिरा हुआ आदमी, उस में से निकलने के लिए जिस प्रकार छटपटाता है, पानी में डूबता हुआ व्यक्ति उस से बाहर निकलने को आतुरतापूर्वक जैसा प्रयत्न करता है, किसी कुम्भ जैसे मेले में स्वजनों से बिछुड़ा हुआ बच्चा जैसा व्याकुल होता है, जल से निकाली हुई मछली जिस प्रकार जल के लिए तड़पती है अथवा चकोर चन्द्र की चाह में बेचैन रहता है, उसी प्रकार की तीव्र आतुरता, व्याकुलता या बेचैनी प्रेमी को प्रभुमिलन के लिए होनी चाहिए, इस का सफल निदर्शन प्रभुमिलन में आत्मविभोर हुई मीरा बाई है—

हे री मैं तो प्रेम दिवानी,
मेरा दरद न जाने कोय।
शूली ऊपर सेज हमारी,
सोना किस विधि होय॥
गगन मण्डल पर सेज पिया की,
किस विधि मिलना होय।
घायल की गति घायल जाने,
जो कोई घायल होय॥

अथवा कबीर के शब्दों में प्रेमी का रास्ता यह है—

सीस उतार भूमी धरे, तापर राखै पावँ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा हो तो आव॥

संसार ऐसे प्रेमी भक्त की निन्दा करता है, तो करने दो; भक्त और जगत् का शाश्वतिक वैर है। प्रेमी को चाहिए कि इस डर से अपने हृदय में पड़ी इस प्रेममुद्रा को न छोड़ बैठे, अगर वह अपने को मजबूर बना ले, तो संसार की झंझावात उस के अन्तर के प्रेमप्रदीप को बुझा नहीं सकती। जो प्रीतम की प्यारी सूरत पर कुर्बान हो चुका है, जिस के हृदय के भीतर मन्दिर और मस्जिद के नक्शे बन गये हैं, उस के कदमों में पृथ्वी के ऐश्वर्य लोटते रहते हैं, सारी खुदाई उस के सीने के अंदर समाई रहती है, तो भी उस को इन बातों का भान नहीं रहता। ऐसा प्रभु का अनन्य प्रेमी भक्त परात्पर जगत में जो कुछ भी देखता है, वह सब प्यारे

के रूप की प्रतिच्छवि ही दिखाई देती है, सर्वत्र श्याम की श्यामता समाई मालूम देती है, कृष्ण में जगत् और जगत् में कृष्ण ही नजर आते हैं। उस की स्थिति लोकोत्तर रहती है सही, पर वह समझता है कि अभी प्यारे का घर दूर है, मैं वहाँ तक कैसे पहुँच पाऊँगा।

ना वह पंख, न पावँ की, पीतम की घर दूर।
ना जानूँ, हैरान हूँ, रहूँ विरह में चूर॥

प्रेमीजन की विचारधारायें इस तरह उस के मानससरोवर में हिलोरें लिया करती हैं।

प्रभो! मैं कहाँ तक धीरज धरूँ, आशा करते करते युग बीत गये, फिर भी मैं अपने को आप का वात्सल्यपात्र न बना सका। अब जीवन का आधार, मिलन की आशा मन्द न पड़ने पावे सिर्फ इतना ही सहारा दे दो, नहीं तो जीवनप्रदीप के बुझने में अब विलम्ब नहीं। भले ही कितना ही तड़पाओ या तरसाओ, इस का कुछ भी क्लेश नहीं है—

सुलेमाँ क्या हुआ गर तू आता नहीं नजर मुझ को।
मेरी आँखों की पुतली में तेरी तसवीर फिरती है॥

वास्तव में प्राणप्यारे कन्हैया की यह बालछवि क्या कभी आँखों से ओझल हो सकती है? जिस ने नन्दनन्दन की बालपन की भोली, साँवली सूरत निहारी है, जो यशोदा के आगे पीताम्बर पहने माखन रोटी खाते हुए, किलकते, कूदते फिर रही हो, वह भला उस से छूटने की चीज है? वह आनन्दकन्द प्रभु प्रेमी का जीवनसर्वस्व है तो प्रेमी चाकर, प्रभु दीपक है तो वह उन के प्रेम में जलनेवाली बत्ती, प्रभु नदी तो वह किनारे का फूल, प्रभु घनश्याम तो वह मस्त मयूर; प्रभु चन्द्र तो वह चाहभरा चकोर; प्रभु मोतियों की लड़ी तो वह रेशमी सूत्र।

ऐसी प्रेमलक्षणा भक्ति में डूबा हुआ अनन्य प्रेमी निद्रावश भी शीश झुकावे, तो वह उस हालत में भी प्रभु के चरणों में अनायास झुक जाता है, और अन्तश्चेतना के द्वार खुल जाते हैं, तो अपने जीवनधन, आराध्य देव से अभिमानभरी दीनता के साथ इस ढंग की अनुनय विनय करने लगता है—

प्रेममन्दिर के आराध्य देव! मैं तुम्हारे चरणों के अधीन हूँ, अब इस नौकरी को छोड़ नहीं सकता, अब कितनी बार कहलाना चाहते हो कि मैं तुम्हारा हूँ, क्या तुम्हें इस कथन पर सन्देह है? अगर मैं यह कहूँ कि तुम्हारा नहीं हूँ, तो मेरी जीभ गलकर गिर जाय। मैं किसी का बनना भी चाहूँ, तो अङ्गीकार ही करेगा कौन, तुम जैसा अकारण बन्धु मिलेगा ही कौन? मैं तो तुम्हारा हूँ, तुम्हारा ही होकर रहूँगा।

दीनदयालु सुने जब से,
तब ते मन में कछु ऐसी बसी है।
तेरो ही आसरो एक 'मलूक',
नहीं प्रभु सो कोऊ दूजो जसी है॥
लाज़ी कहाऊँ मैं जाऊँ कहाँ प्रभु,
तेरे ही नाम की फेंट कसी है।
ए हो मुरारी सुधि लीजो हमारी,
अब मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है॥

अच्छा, जैसी तुम्हारी मर्जी, मैं ने तो अहर्निश यही दिनचर्या बना ली है—

कृष्ण कृष्ण रटने रहो जब लग घट में प्रान।
कबहुँ दीनदयालु के भनक परैगी कान॥

× × ×

यह प्रेम सदा भरपूर रहे
भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह अर्ज मेरी मंजूर रहे
भगवान् तुम्हारे चरणों में॥

पुरुषोत्तम मास की परीक्षा

(ले०—श्री चिरंजीवलाल शर्मा)

विश्व की उद्विग्नता और अस्तव्यस्तता के इस अवसर पर पुरुषोत्तम मास का आगमन हम को ईश्वरीय सुसंदेश के सूचक रूप में मानना चाहिए। संसार विघटित होने को उद्यत है, मानवता टुकड़े टुकड़े होना चाहती है, आसुरी संपत्ति का विकराल बाना पहने, सर्वसंहार का दृढ संकल्प किए हुए, जगत् के सर्वाधिकारी बननेवाले सूत्रधार हमारी शान्त, सुन्दर, उत्तम भावना और रचना को धूल में मिलाना चाहते हैं, इस नाजुक समय में हमारा कर्तव्य और अनुष्ठान-सामग्री क्या हो ? निश्चित है कि सुसंगठित विशाल दानवी शक्ति का सामना करना ही होगा। तो क्या हमें भी उस में शामिल होकर करना चाहिए ? और कैसे ? हम भी वैसे ही संहारक दानव बनें, तब कुछ शायद रक्षा हो जाय ? पर नहीं, वह तो—

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।

आग में घी जैसी उत्तेजक वस्तु डालो, तो वह और दूनी बढ़ती है, उसी तरह होगा। 'विषस्य विषमौषधम्' है, पर वह पहले के विष से अधिक उत्कट मात्रा में हो, तब। और हमारी भौतिक साधन-सामग्री तो इस महाविनाश के कालसर्प की तुलना में संभव है, मधुमक्खी जितनी हो, अधिक से अधिक कोशिश करें, तो कठिनता से बिच्छू के समान हो सकती है, पर वह तो ऊँट के मुँह में जीरे के समान होगी—

न कूपखननं न्याय्यं प्रदीप्ते वह्निना गृहे।

आग लग रही है, अब कुआ खोदने तक तो घर की राख भी न रहेगी। इस लिए शायद, समीप ही बहुत सा पानी भरा है उस से यह आग शान्त की जाय, जलबीच धोबी पियासा क्यों मरे ? वह जल कौन सा है ? वही शान्त, शाश्वत, स्वच्छ, शीतल अमृतमय प्रभु। अपने हृदयघट लेकर उधर ही दौड़ें, उस जल का बिन्दुमात्र; वाष्प और ज्वालारोधिनी रासायनिक गैसों से भी अधिक संतापनिवारक है। मालूम होता है, हम गीताधर्मी भक्तवर प्रह्लाद की इस बात को भूल गए—

रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात ! मम गात्रसन्निधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

मालूम होता है, पुरुषोत्तम मास हमें इसी की याद दिलाने आया है। इस के सिवा और कोई उपाय भी नहीं। संभव है, सर्वान्तर्यामी होने से लोकक्षयकृत् काल होकर वही परमेश्वर इस ध्वंसलीला में प्रवृत्त हो रहा हो ? तब तो और भी सुनिश्चित है कि 'ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे' वही बचेगा जो गीतामृत दुग्ध का पान करके उस का अनुचर हो जायगा। जैसे भीमसेनी एकादशी माघ पूस में निर्धारित हो सकती थी, पर हमारी दृढता और अनुराग देखने के लिए तपी हुई लू में झुलसी ऋतु में रखी गई, उसी तरह संकटकाल का अधिक मास हमारी जाँच करने आया है, ऐसा मानना होगा। परीक्षक सदा उग्र होता ही है, यथा शाण्डिल्य ऋषि का वचन है—

मापसो न शुभः सौम्यो ज्येष्ठाषाढकस्तथा।
मध्यमौ पौषवैशाखौ अधिकोऽन्यः शुभिङ्कर्॥

ज्येष्ठ, आषाढ़, मार्गशीर्ष के अधिक मास प्रायः शुभप्रद नहीं होते, चैत्र वैशाख कुछ अच्छे और दूसरे पूरे अच्छे होते हैं। जो व्यक्ति इस परीक्षा में पास होंगे, उन्हें सर्वदा शुभ ही होगा, इस से प्राय कहा है। यद्यपि इस मास को—

'काम्यकर्मसु गर्हितम्'।

(विष्णुधर्मोत्तर)

काम्यकर्मों के लिए निषिद्ध कहा है, परन्तु गीताधर्मी तो सर्वदा निष्काम कर्म ही करेंगे। वे कर्म इस मास में यों शुरू होने चाहिए—

१—सच्चे हृदय से, कातरभाव से, प्रभु से अभ्यर्थना करो कि विश्व के सभी प्राणी शान्ति और आनन्द प्राप्त करें, सब का मङ्गल हो, सब में सद्विचार और विवेकबुद्धि का उदय हो।

२—जिन के पास धन संपत्ति हो, वे उसके द्वारा अपने आस पास के गरीब भाइयों की विनम्रभाव से सेवा सहायता करें।

३—सीधे सादे गीतास्वाध्यायदल और भजन-संकीर्तनमण्डल प्रति ग्राम चलने चाहिएँ, जहाँ भागवत, रामायण आदि के पारायण, विष्णुसहस्रनाम, दुर्गासप्तशती, महिम्नस्तोत्र के पाठ और अपने इष्टमन्त्र का जप पूरे सात्विकभाव से नियमपूर्वक हों। ये तीन बातें इस पुरुषोत्तम मास से सदा के लिए चल निकलनी चाहिएँ। अगर ये काम दम्भरहित होंगे, तो प्रह्लाद के से दृष्टान्तों की कमी न होगी, किसी प्रकार के दुःख, शोक, भय को स्थान न रहेगा, क्योंकि उन की प्रतिज्ञा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

—गी० १८।६५

मुझ में मन लगाओ, मेरा भजन पूजन और नमस्कार करो, मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम मेरे प्यारे होकर मेरे पास रहोगे। बस, यही परीक्षा है।



"विभो!"

(र० —श्री सुरेन्द्रनाथ 'आज़ाद')

आकर्षण इतिहास तुम्हीं हो;
कुरुक्षेत्र में प्यार तुम्हीं हो,
ज्योतिपुञ्ज साकार तुम्हीं हो,
मानव सम्पत्ति सार तुम्हीं हो,
निर्वासित के रक्षक स्वामी!
भूल न जाना हे निष्कामी ॥ १ ॥

पथदर्शक—सौजन्य तुम्हीं हो,
अलख निरंजन रूप तुम्हीं हो,
प्रेम दया की मूर्ति तुम्हीं हो;
स्नेह-पालित पद तुम्हीं हो;
निर्वासित के रक्षक स्वामी!
भूल न जाना हे निष्कामी ॥ २ ॥



आत्मज्योति

(ले०—श्री सुरेन्द्रनाथजी 'आजाद')

मेरे प्राणेश ! मैं संसार की सहानुभूति एवं क्षणभङ्गुर प्रेम की ज्योति पर अबोध शिशु की तरह लालायित होकर उसे प्राप्त करने के लिए अग्रसर था। जानता था, विश्व प्रेम की बाँकी झाँकी में ही सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वर का अलौकिक चमत्कार छिपा हुआ मानस पटल पर अभिनय करता है, किंतु ज्ञानचक्षु बंद थे, आखों पर अज्ञानान्धकार के पर्दे पडे थे। 'मैं' 'तुम' मे ही माया ब्रह्म का साक्षात्कार हो रहा था। मैं अहंकार के पर्दे में ढका हुआ प्रेमसरिता में स्नान करना चाहता था। भ्रमण किया, बेसुध प्रेमनर्तन किया, दया की भिक्षा ली, जीवन की गाड़ी समझ तीर्थराजों की यात्रा करके थक गया। *किंतु कहीं शान्ति नहीं मिली ईश !*

× × ×

प्रभो ! विश्ववाटिका मे अनेकानेक सुगन्धमयी कुसुमकलिकायें प्रस्फुटित हो रही थीं, सब मे उल्लास था, उमंग की तरल तरंगें वायु के थपेडों से अनिश्चित *दिशाओं की ओर उडाकर लिये जा रही थीं,* कण कण मे दावाग्नि सुलग रही थी, पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष मे प्रेम की अविरल आत्मा वियोगी बनी दृष्टिगोचर हो रही थी। तृष्णा की अग्नि अभी बुझी नहीं थी। इस को स्वयं भी मैं पहचान न सका, मिथ्या माया और सत्य माया का बराबर नाम सुनता था; किंतु वे भावनाएँ हृदयस्थल पर कोई स्थान न बना सकीं थीं।

हृदयेश ! प्राणनाथ ! विभो ! तुम्ही कभी कभी प्रेमवीणा के तारों की झंकार में बज उठते थे।

मुरलीधर ! मनमोहन !! आज अशान्ति के तूफान उमडते चले आ रहे हैं, हमारे भी भाग्यगगन मे महाविनाश के काले बादल मँडरा रहे हैं। उथल पुथल के इस जीवन में प्रेम की अलौकिक ज्योति बनकर न समाओगे प्रभो ! कहो तो सही !!

अनाथों के नाथ ! करुणासिन्धु !! विभुवर !!! तुम्हीं इस कौतूहलपूर्ण जगती के कोने कोने में विद्यमान होकर, मानसपटल पर सौन्दर्यसुषमाकी अविरल तरंग बनकर सुधाधारा बहाया करते हो। तुम्हारे विना नश्वर जीवन में कोई सहारा नहीं, भावों के निर्मल आकाश मे तुम्हारी ही दिव्य ज्योति आनन्द-सुधामयी शुभ ज्योत्स्ना को बरसाया करती है। भक्तों को भक्ति की पुण्यशालिनी मन्दाकिनी में तुम्हीं जलकेलि कराया करते हो। करुणेश ! आओ, शीघ्र आओ, इस उलझन से छुड़ाकर, सीधा सरल मार्ग दिखाकर, कविकुलकमलदिवाकर बनकर कुछ गीता का अलौकिक संगीत सुना दो प्रभो !

× × ×

गिरिवरधारी ! नटनागर !! यों तो आप की राधाकृष्णमयी, सौन्दर्यशालिनी युगलमूर्ति विश्वप्रागण मे आज भी नर्तन कर रही है। पर हम पर तो अज्ञानपटल छाया हुआ है, नेत्रों को दिवान्धता व रात्र्यन्धता घेरे हुए है, तो उन सुषमाभरे दृश्यों को कैसे देखें ? संसारक्षेत्र में आशा और निराशा के बादल प्रतिक्षण मडराया करते हैं, बस, इन्हीं नित्य की अनित्य उलझनों में फँसे हम क्षुद्र जन्तु मकड़ी के से जाल मे लटक रहे हैं। माया के पुजारी बनकर मिथ्या संसार को ही सर्वश्रेष्ठ, अग्रपूज्य मानते हुए

उस के बाह्य हाव भाव पर हम अपनेपन की बलि चढ़ा चुके हैं। यह जानते हुए भी कि नश्वर में प्रेमज्योति क्षणभङ्गुर है, चञ्चल है, अस्थिर है जैसे बालू की दीवाल; तो भी उस पर आत्मसमर्पण की प्रबल लालसा सजग है। किंतु जब सभी ओर से हताश होते हैं तब बाध्य होकर अपने अन्तर में ही दिव्य ज्योतिर्मयी राधाकृष्ण की युगल मूर्ति टटोलने लगते हैं, तो हमें इस चिन्तनात्मक जगत् में क्षण क्षण पर शान्ति का आभास अनुभूत होता है। शनै शनै आनन्दलीलामयी त्रैलोक्यसूत्रधारिणी युगल मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं! फिर दुनियाँ के नाते रिश्ते झूठे स्वप्नवत् दृष्टिगोचर होते हैं। जड़, चेतन, क्षिति, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश की कणिका तक में चितचोर की निराली छटा ही दृष्टिगोचर होती है। फिर हम अपने चक्षुओं से नश्वर को अपना स्वरूप समझने लगते हैं! प्रेमोन्मत्त होकर भक्ति से घृणा, द्वेष, राग का त्याग करके जीवों पर दया करते हैं। प्रेम का सच्चा अभिनय करते हैं। बस फिर तो नित्य ज़बान पर यही रहता है।—

सब का एक वही भगवान।
एक पिता के सब सन्तान।
छोटा बड़ा न कोई जग में,
सब हैं एक समान॥

भक्त का यही तो स्वभाव है कि इन्हीं भावनाओं में भक्त मस्त होकर विश्व का निरीक्षण किया करता है, प्रभु की सत्ता उन्हीं में स्थापित करता है, मोहन की मुरलीध्वनि अपनी हृतन्त्री के तारों के साथ प्रति पग पर, डग डग पर निकाला करता है। वह सीख जाता है प्यार करना। और मिल जाती है उसे अलौकिक आनन्द, सुख की राशि। तारागण से लेकर सुधाकर तक, देवलोक से मृत्युलोक तक की छटा इसी आत्मा के अन्तर्गत नर्तन करते पाता है वह। जिसे दुनियाँ कहती है पागल सनकी, योगी या और कुछ। बस, इतने से ही उसे आत्मा की शान्ति दृष्टिगोचर होने लगती है। उस शान्ति में ही राधाकृष्ण का झूलन हृदयरूपी डाली पर झूलता हुआ उस के दृष्टिगोचर होता है।

विभो! मुझे चिन्तासागर में डुबाकर आनन्दसागर में परिवर्तित कर देते हो। अब तुम्हारी कृपा बिना जीवन सूना है। आनन्दकन्द! भगवन! तुम हमारी ही आत्मा की ज्योति हो। प्रेमज्योति हो! हृदयवाटिका की कुसुमकली हो। जो चिन्तना करने से विकसित हुआ करते हो। शान्ति के तुम ही प्रतीक हो ईश!

शङ्का

(लेखक—श्री० मनोहरलाल शर्मा)

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे॥
—गी० १८।३

इस में शङ्का का स्थल यों है—श्लोक का अन्वय करने से 'एके मनीषिणः कर्म त्याज्यम् इति प्राहुः अपरे मनीषिणः कर्म न त्याज्यम् इति प्राहुः' ऐसे दो वाक्य बन जाते हैं। किसी रोगी से एक वैद्य कहे कि अमुक वस्तु खानी चाहिए और दूसरा वैद्य कहे कि वह चीज़ कदापि न खाना, इस अवस्था में रोगी का क्या कर्तव्य होगा। दोनों व्यक्ति वैद्यक शास्त्र के सुशिक्षित हैं, अब

दोनों में पथ्यापथ्य के बारे में मतभेद हो जाय, तो उस की मीमांसा एक प्रकार से असंभव ही कहनी चाहिए। उसी प्रकार अगर दो मनीषी व्यक्तियों में से एक कर्म को त्याज्य बतावे और दूसरा अत्याज्य तथा दोनों की विद्वत्ता भी तुल्य बल हो, तो इस का निर्णय अशक्य है। उक्त श्लोक में भगवान् अथवा वेदव्यासजी परस्पर विरुद्ध मत प्रतिपादन करते हैं। इस विषय के ग्राह्याग्राह्य के बारे में शङ्का है।

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

ऐसी ही शङ्का सांख्यदर्शनकार ने उठाई है, लेकिन उस का आधार भी यही श्लोक है। उत्तर भगवान् स्वयं देते हैं—

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥
एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥

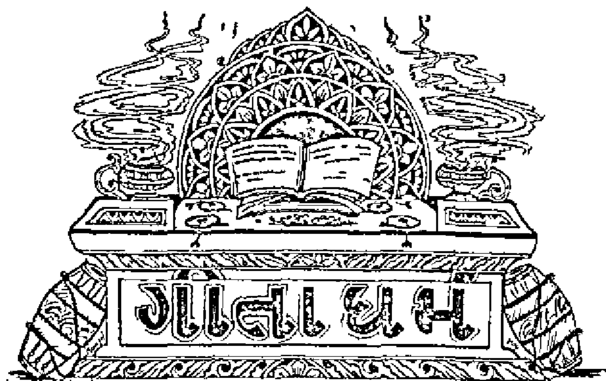
—गी० १८।४, ५, ६

हे भरतश्रेष्ठ, त्याग के बारे में मेरा निश्चित मत सुनो, त्याग भी तीन प्रकार का कहा गया है। यज्ञ, दान, तप इन कर्मों को छोड़ना नहीं, किंतु अवश्य करना चाहिए। ये तो बुद्धिमानों की चित्तशुद्धि करनेवाले हैं। इस लिए इन कर्मों को सग और फलाशा छोड़कर करना ही उचित है, यह मेरा निश्चित और श्रेष्ठ मत है।

यहाँ पर भगवान् का कहने का तात्पर्य यह है कि जो शब्द लोक में किसी अर्थ में प्रयुक्त होता है उस का शास्त्रीय परिभाषा में भी यही अर्थ हो; यह कोई नियम नहीं है। शास्त्रकारगण विशेषतः दार्शनिक ग्रन्थकार अपनी परिभाषाएँ भिन्न भिन्न निर्माण करते हैं। किसी शब्दविशेष का अर्थ ग्रन्थकार द्वारा जो नियत किया जाता है, उस शास्त्र में वही ग्राह्य माना जाता है। प्रकृत में कहना यही है कि त्याग शब्द का लोकबोधित अर्थ यहाँ ग्राह्य नहीं है। इस लिए भगवान् कहते हैं कि 'त्यागे मे निश्चयं शृणु' अर्थात् यद्यपि 'तामस और राजस कर्म त्यागना चाहिए' इस वाक्य में त्याग शब्द का कोशोक्त अर्थ ही लिया जायगा, तथापि सात्त्विक कर्म के विषय में त्याग शब्द के अर्थ में ग्रन्थकार कुछ वैशिष्ट्य रखते हैं। उक्त श्लोकों का अर्थ देखने से यह बात स्पष्ट है, विशेष विस्तार की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार त्याग और अत्याग इन दो शब्दों में विरोध नहीं, केवल विरोधाभास है। मैं समझता हूँ, शङ्काकार महाशय समझ जायँगे; इस में विशेष पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं है।

अन्त में इतना ही इशारा देना पर्याप्त है कि कर्म करना न करना इन पक्षों में क्लेश का न्यूनाधिक्य ही निर्णायक है। वस्तुतस्तु दोनों पक्षों का कर्म के सदोषत्व में ही अन्तिम तात्पर्य है, अतएव कर्म त्याज्य ही है। कोई विचक्षण व्यक्ति चाहे, तो उस में कौशलपूर्वक अनुष्ठान करने पर लाभ उठा सकता है। यहाँ पर एक लौकिक दृष्टान्त है—जैसे विरुद्ध दिशा में वायु चलने पर भी मल्लाह लोग पाल को विशेष तरीके से तान कर, नाव को उसी ओर ले जाते हैं जिधर से वायु आती है। यही बात कर्म के त्याग और अत्याग के विषय में समझनी चाहिए।

સંસ્થાપક —શ્રીમત્પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય, ગીતાવ્યાસ, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકસંગ્રહી,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરૂ, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી, મહારાજ



સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ ; અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચ.

વર્ષ: ૭ મું } ૧લી જૂન ૧૯૪૨ { અંક ૧ લો

બાલલીલા

ટેરિ કાન્હ ગોવર્દ્ધન ચઢિ ગૈયા,
મથિ મથિ પિયૌ બારિ ચારિક મેં ભૂખ ન જાતિ અઘાતિ ન ઘૈયા. ૧.
સૈલસિખર ચઢિ ચિતૈ ચકિત ચિત અતિ હિત બચન કહ્યૌ બલભૈયા;
બાંધિ લકુટ પટ ફેરિ બુલાઈ સુનિ કલ બેનુ ધેનુ ધુકિ ધૈયા. ૨.
બલદાઊ દેખિયત દૂરિ તે આવતિ છાક પઠાઈ મેરી મૈયા;
કિલકિ સખા સબ નચત મોર જ્યોં કૂદત કપિ કુરંગ કી નૈયા. ૩.
ખેલત ખાત પરસપર ડહકત છીનત કહત કરત રોગ દૈયા,
'તુલસી' બાલકેલિ સુખ નિરખત બરષત સુમન સહિત સુરસૈયા. ૪.

—ગોસ્વામી તુલસીદાસ

નિજ સ્વરૂપ

(લે૦—ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

પરમાત્માની કૃપાથી મનુષ્ય દેહ મળ્યો છે. અને આ મનુષ્ય યોનિમાં જે પુરૂષ પોતાનું સ્વરૂપ, નિજસ્વરૂપ, આત્મસ્વરૂપ, સ્વસ્વરૂપનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત નહિં કરે, પ્રાપ્ત કરવાનો પ્રયાસ નહિં કરે તો કયી યોનિમાં આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો છે?

માટે આ મનુષ્ય યોનિમાં હું કોણ છું? તે જાણવું, તે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું, તે કરવા માટે શું કરવું જોઇએ તેની શોધ કરવી જોઇએ. અને આપણને ઓળખવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ.આ જ્ઞાન મેળવવા આરૂ દેશાટન કરવાની જરૂર નથી, પરંતુ કોઈ એક મહાત્મા બ્રહ્મજ્ઞાની પરમ પુરૂષની શોધ કરી તેમને ગુરૂ કરી તેમની કૃપા મેળવી સત્સંગ કરી તેમનો ઉપદેશ ગ્રહણ કરી જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે.

સત વસ્તુ શું છે? અસત વસ્તુ શું છે? તેનો ભેદ જાણવો જોઇએ, નાશવંત વસ્તુઓ શું છે? નાશરહિત વસ્તુઓ કયી છે? તે જાણવા પ્રયત્ન કરવો, તેનો વિચાર કરવો જેથી જણાશે કે જગતમાં તમામ વસ્તુઓ કે જેનાં નામ હોય છે તે વસ્તુ નાશવંત છે, જગતમાં તમામ વસ્તુઓ જે બહારથી દેખાય છે તે અસત વસ્તુ છે એટલે જે વસ્તુ એકજ રહી તે, પ્રકાશ, જ્યોતિ સ્વરૂપ, ચેતન વસ્તુ નાશવંત નથી અસત નથી એટલે આ વસ્તુ તે નિજસ્વરૂપ પોતાનો આત્મા, ચેતન દિવ્યજ્યોતિ સ્વરૂપ.

મનુષ્ય દેહનો દેહ નાશવંત છે, એ દેહમાં રહેલો ચેતન આત્મા એ ખરૂ સ્વરૂપ છે વિચારથી તેનું ચિન્તવન કરવું એટલે બાહ્ય વસ્તુઓ નાશવંત છે તેના ઉપર મોહ રહેતો નથી અને પોતાનો જીવ સાક્ષીરૂપે છે. તે સંકલ્પવિકલ્પ રહિત છે. અને સ્વસ્વરૂપાનંદના આનંદનું અમૃતપાન કરી પરમાનંદની પ્રાપ્તિ મેળવે છે.

અને ઇન્દ્રિયોને વિષયમાં જોડતો નથી તેમ વિષયથી ખસેડતો પણ નથી, તેમ કર્મના ફળ ઉપર સંકલ્પ વિકલ્પ કરતો નથી સ્થુળ દેહના અભિમાનનો ત્યાગ કરી, પોતે કૈવલ્ય સ્વરૂપ, પરબ્રહ્મસ્વરૂપ છે તેનુંજ એકાગ્ર ચિત્તથી મનન કરે છે.

સંસારમા રહીને ભોગો ભોગવતા છતાં સંસારી પેઠે વિચરે છે પરંતુ આસક્તિઓ રાખતો નથી સ્થૂળ સૂક્ષ્મના અભિમાનનો ત્યાગ કરે છે. વહેવારમાં રહે છે. પોતાનો વેશ ભજવે છે, નટની જેમ એક પ્રકારના વેશ પહેરીને અનેક જાતના તમાસાઓ કરે છે, તથાપિ હાનિ, લાભ, માન, અપમાન, હર્ષ શોક વિગેરેથી પર રહે છે. પોતાનું ક્રિયમાણ શુદ્ધ અને સાત્વિક રાખે છે, પ્રારબ્ધના ભોગ ભોગવી રહે છે એટલે સ્વસ્વરૂપાનુંસંધાનમાંજ તલ્લીન થઈ જાય છે. આ સ્થિતિને પહોંચેલો પુરૂષ હું કોણ છું? કયાંથી આવ્યો છું? મારે કયાં જવાનું છે? આ બધાનો વિચાર કરી, જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી દેહ ધારણ કર્યો હોવા છતાં વિદેહી રહી પરમેશ્વરના ધામનો અધિકારી બની પુનઃ સંસારમાં જન્મ લેવા સર્જાતો નથી અને પરમ પદને પામે છે. ઇતિ શુભમ્.

પુરૂષાર્થ વિચાર

(લે૦—શ્રીમત્ પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય બ્રહ્મનિષ્ઠ લોકસંગ્રહી ગીતાવ્યાસ જગદ્‌ગુરૂ
મહામંડલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ.)

પ્રશ્ન—त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।

(ત્રણે પ્રકારનાં દુઃખોની જે ઉપાયથી અત્યંત નિવૃત્તિ થઈ જાય તે પુરૂષાર્થ છે) અહિં દુઃખ શું વસ્તુ છે ?

ઉત્તર—प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्।

(જેનો અનુભવ વાસ્તવમાં પ્રતિકુળ માલૂમ પડે તે દુઃખ છે) શાસ્ત્રકાર દુઃખની આવી વ્યાખ્યા કરે છે.

પ્રશ્ન—શું સંસારમાં દુઃખજ દુઃખ છે, સુખ બીલકુલ જ નથી ?

ઉત્તર—ગીતામાં કહ્યું છે—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

(જે મહાત્મા પરા સિદ્ધિને પ્રાપ્ત છે અને મારો આશ્રય લઈને મને પ્રાપ્ત થાય છે, તેમનો આ અનિત્ય અને દુઃખમય સંસારમાં ફરીથી જન્મ થતો નથી.)

અને—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।

(આ વિનાશી, સુખ રહિત લોકમાં આવીને મારૂં ભજન કરો) આ શ્લોકોમાં 'दुःखालय' અને 'असुख' પદોના સ્વારસ્યથી તો એજ વાત નજરે પડે છે.

પ્રશ્ન—सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।

(હે ભરત શ્રેષ્ઠ ! મારાં ત્રણ પ્રકારનાં સુખોનું વર્ણન કરૂં છું. તે સાંભળો) આ પણ ગીતાનુંજ વચન છે, એની શું ગતિ થશે ?

ઉત્તર—પ્રાણિમાત્રનું સર્વ જ્ઞાન આપેક્ષિક હોવાથી જ્યાં દુઃખ છે ત્યાં સુખ પણ અવશ્ય છે. પરંતુ તે અલીક હોવાથી ગીતાનું કહેવું અસંગત નથી.

પ્રશ્ન—સુખ તો પ્રત્યક્ષ અનુભૂયમાન છે, તેનો અપલાપ કેવી રીતે કરી શકાય છે ?

ઉત્તર—ગીતાનો પ્રધાન વિષય સાંખ્ય શાસ્ત્ર (બ્રહ્મવિદ્યા) છે. સાંખ્યમાં પ્રકૃતિ પુરૂષ વિવેક પ્રતિપાદ્ય છે, તેથી મુમુક્ષુ વિવેકીને માટે—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

(પરિણામ દુઃખ, તાપદુઃખ અને સંસ્કાર દુઃખને કારણે તથા સત્વાદિ ત્રણ ગુણોની વૃત્તિયોનો આપસમાં વિરોધ રહેતો હોવાથી વિવેકી પુરૂષની દ્રષ્ટિમાં સર્વ દુઃખજ છે અર્થાત્ અજ્ઞાનીને જે સુખ જેવું માલમ પડે છે તે પણ દુઃખ છે) એવો શાસ્ત્રનો સિદ્ધાન્ત છે. અમે લોકો તો એ અધિકારથી ઘણે દૂર છીએ

પ્રશ્ન—

अभ्यासाद् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।

(સાત્વિક સુખ વારંવાર ભોગવવાથી મનુષ્ય તેમાં રમમાણ રહે છે અને તેના સર્વ દુઃખોનો અન્ત આવી જાય છે) સાત્વિક સુખની ગીતા આવી પ્રશંસા કરે છે શું તેને પણ દુઃખ તરીકેજ ગણવું જોઇએ ?

ઉત્તર—ભગવાન યોગેશ્વર જૈગીષવ્યજીના મત પ્રમાણે તો જે,જે બુદ્ધિ સત્વના ધર્મ છે તે ,સર્વ

પ્રત્યય ત્રિગુણાત્મક હોવાથી હેય પક્ષમાંજ પતિત થવા યોગ્ય છે. યોગ દર્શનના ભાષ્યમાં 'आवस्य जैगीषव्य' સંવાદ વાંચવાથી આ સિદ્ધાન્ત પર વધારે પ્રકાશ પડે છે.

પ્રશ્ન—ધારૂ, દુઃખની જે ત્રિવિધતા છે તે કેવી રીતે ?

ઉત્તર—આધિભૌતિક, આધિદૈવિક, આધ્યાત્મિક આમ દુઃખના ત્રણ પ્રકાર પ્રસિદ્ધ છે. ગીતામાં એવુંજ વિવરણ છે.

પ્રશ્ન—ત્રણેનું સ્પષ્ટિકરણ કરી આપશો ?

ઉત્તર—(क)

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥

(હે મધુસૂદન, જેમની પૂજા કરવી જોઇએ એવા ભીષ્મ અને દ્રોણને હું બાણોથી કેવી રીતે મારૂં) આ આધિભૌતિક દુઃખ છે. એટલું સમજવાની જરૂર છે કે જેમ ખીચડી રંધાતા પહેલાં દાળ ચોખા જુદા કરી શકાય છે, પરંતુ રંધાયા પછીથી નહિં, તેવીજ રીતે ત્રણે દુઃખો પણ એક સરખાજ અનુભૂત થાય છે. કેવળ જન્ય જનક ભાવની પ્રધાનતાને લક્ષ્ય કરીને ત્રણ સંજ્ઞા આપવામા આવી છે

(ख) गुरूनहत्वा हि महानुभावा-
न्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥

(મહાનુભાવ ગુરૂઓને મારવા કરતાં ભિક્ષા માગીને ગુજરાત કરવું સારૂં છે. અર્થના લોભી ગુરૂઓને મારીને જીવને જીવ ત્યારે તેમનાં લોહીથી ખરડાએલા ભોગ ભોગવવા પડશે) આ આધિદૈવિકનું ઉદાહરણ છે. જેવી રીતે આધિભૌતિક દુઃખ ખાસ કરીને અન્નમય કોશથી જન્ય છે. તેવીજ રીતે આધિદૈવિક દુઃખ પ્રાણમય કોશનો વિષય છે.

(ग) न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥

(અમારી જીત થશે કે કૌરવોની, એમાં કયી સારી છે એ પણ અમે જાણતા નથી. જેમને મારીને અમે જીવવા માગતા નથી તે ધૃતરાષ્ટ્રના પુત્રો સામે ઉભેલા છે) આ છે આધ્યાત્મિક દુઃખ. એ ખાસ કરીને મનોમય કોશનું પરિણામ છે.

પ્રશ્ન—અગર દુઃખ દુઃખજ છે, તેના જનકની નિરપેક્ષતાજ અભિપ્રેત છે, ત્યારે ત્રિવિધતા શા માટે કહી ?

ઉત્તર—દુઃખપરિહારનો ઉપાય વિવેક અર્થાત્ પ્રકૃતિ પુરૂષનું વિજ્ઞાન—વિવેકેન જ્ઞાનમ્ વિજ્ઞાનમ્—હોવાથી તેનો ક્રમ સ્પષ્ટ સમજાવવા માટે એમ કહ્યું. જેમ કે તિત્તિરિ ઉપનિષદમા ભૃગુના અનુભવનો ક્રમ બતાવ્યો છે—

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्, प्राणं ब्रह्मेति व्यजानात्, मनो ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात् ॥

(અન્નમય કોશ બ્રહ્મ છે, પ્રાણમય કોશ બ્રહ્મ છે, મનોમય કોશ બ્રહ્મ છે અને આનંદમય કોશ બ્રહ્મ છે એવો ભૃગુને ક્રમથી અનુભવ થયો).

પ્રશ્ન— શું ગીતામાં આ પંચવિધતાનો ઉલ્લેખ છે ?

ઉત્તર—હાં છે, અ. ૨ શ્લોક ૭ માં વિજ્ઞાનનો ('निश्चितम्' આ શ્લોકોક્ત પદ બુદ્ધિનું સૂચક છે) અને અ ૨ શ્લોક ૮ માં આનંદનો (શ્લોકોક્ત '

'શોક' પદથી આનંદમય કોશ પ્રત્યે ઇશારો કરવામાં આવ્યો છે) ઉલ્લેખ છે.

પ્રશ્ન—સર્વ શાસ્ત્રકારો આ વિષયમાં એકમત છે કે સૂત્ર જેટલું નાનું બની શકે તેટલુંજ તેનું મૂલ્ય અધિક છે એટલે સુધી કે કોઈ સૂત્રમાં તેનું તાત્પર્ય અક્ષુણ્ણ રાખીને તેને ઘટાડી શકાય, તો સૂત્રકાર પુત્ર પ્રાપ્ત થવા જેટલો સંતોષ માને છે. જો એમ છે, તો સૂત્રમાં નિવૃત્તિ અને પુરુષાર્થ એ બે શબ્દોનું અત્યન્ત વિશેષણ વ્યર્થ માલમ પડે છે.

ઉત્તર—દુઃખની નિવૃત્તિ તો અમે પ્રતિક્ષણ કરતા રહીએ છીએ, છતા પણ તે આત્યન્તિકી થતી નથી. આ સૂત્રની અનિરુદ્ધ કૃત ટીકાનો કંઇક અંશ અહિં બતાવવામાં આવે છે, તેથી આ વાતનો ખુલાસો થઈ જશે

ननु दुःखनिवृत्तिः स्वत एव भविष्यति ।

(થોડા સમય માટે રહેનારા દુઃખની આપોઆપ નિવૃત્તિ થશે, તેને માટે ઉપાયો કરવાની શું જરૂર છે—આ દલીલનો ઉત્તર એ છે કે ખાસ ખાસ દુઃખોની નિવૃત્તિને માટે તો કોઈ મતલબ નથી પણ દુઃખત્વાવચ્છિન્ન દુઃખ નિવૃત્તિને માટે તો છે અર્થાત્ આગળ પણ કોઇ દુઃખ ન આવવું જોઇએ ધર્મ, અર્થ, કામ, મોક્ષ એ ચાર પુરુષાર્થ છે, પણ પહેલા ત્રણ આત્યંતિક નથી, તે ક્ષયી અને વિષય જન્ય છે મોક્ષ તેવો નથી, તે નિત્ય પ્રકાશરૂપ છે તેથી તો કહ્યું કે 'अत्यन्त पुरुषार्थः') ગીતાના અ૦ ૨ શ્લો૦ ૪ માં ધર્મરૂપ પુરુષાર્થનો ઉલ્લેખ છે, અ૦ ૨ શ્લો૦ ૫ માં અર્થનો, અને અ૦ ૨ શ્લો૦ ૬ માં કામનો

પ્રશ્ન—મોક્ષનો તો બતાવ્યો નહિ, તેનો ઉલ્લેખ ક્યાં છે ?

ઉત્તર—અ૦ ૨ શ્લો૦ ૭ માં મોક્ષનું વર્ણન છે, "यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितम्" અહિં નિશ્ચિત શ્રેયનો અર્થ મોક્ષ છે, જેને પાપ અર્થાત્ કર્મ ફળથી છૂટવું કહી શકાય છે.

પ્રશ્ન—કર્મનું ફળ પુણ્ય પણ થાય છે, શું તે પણ છોડવું પડશે ?

ઉત્તર—પ્રથમ તો ગીતા કહે છે કે—

'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।

(જેવી રીતે ધુમાડા વગર અગ્નિ નહિ તેવી રીતે દોષો વગર કોઈ પણ કર્મનું અનુષ્ઠાન થઈ શકતું નથી) અર્થાત્ પુણ્યનો એક પ્રકારે અત્યન્તાભાવ સરખોજ છે એના ઉપર અગર કોઈ એવી દલીલ કરે કે ગીતામા અનેક સ્થળોએ સુકૃત, શુભ, પુણ્ય ઇત્યાદિ શબ્દોના પ્રયોગ થયેલા જોવામાં આવે છે, તેમની શુ દશા થશે ? એનું સમાધાન એ છે કે જે યુક્તિથી સુખને દુઃખ કોટીમા ગણવામાં આવે છે, તેવીજ રીતે તર્કના બળ ઉપર પુણ્યને પણ પાપ સમજી શકાય છે; પણ તે વિવેકીની દ્રષ્ટિથી

પ્રશ્ન—વારુ, એ માની લીધું કે અમને પાપ તથા પુણ્ય બન્નેના ફળથી છૂટકારો મળ્યો, પરંતુ સાધકને પ્રત્યક્ષતઃ શુ લાભ થયો ?

ઉત્તર—એનું સમાધાન અ૦ ૨ શ્લો૦ ૮ માં છે. "तरति शोकमात्मवित्" (આત્મજ્ઞાની મનુષ્ય શોક સાગરને પાર કરી જાય છે) આત્મા સ્વયં આનંદ સ્વરૂપ હોવાથી 'अहं ब्रह्मास्मि' એટલા જ્ઞાનથી તે કૃતાર્થ થઈ જાય છે, તેને માટે કોઈ વસ્તુ પ્રાપ્ત કરવાની બાકી રહી જતી નથી

પ્રશ્ન—પુરુષાર્થ ચતુષ્ટયની આત્યન્તિકતાનો પ્રસંગ ગીતામા ક્યાં છે ?

ઉત્તર—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

(જે પક્ષમાં યોગેશ્વર શ્રી કૃષ્ણ છે અને ધનુર્ધારી અર્જુન છે તેજ પક્ષમાં ધર્મ, અર્થ, કામ, મોક્ષ એ ચારેય પુરૂષાર્થ છે.) અહિ—

શ્રી થી — મોક્ષ,

વિજય થી — કામ,

ભૂતિ થી — અર્થ,

નીતિ થી–ધર્મને સમજવો,'ધ્રુવ' પદનો અન્વય ચારેયની સાથે કર્તવ્ય છે. ગીતાના માહાત્મ્યમાં—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

(સર્વ શ્રુતિયો ગાયો છે,ગોપાલસુત કૃષ્ણ તેમને દોહનાર છે,પાર્થ અર્જુન વાછરડો છે અને સાધુજનો એ દુધના ભોક્તા છે. તથા ગીતાજ મહા અમૃતરૂપ દુધ છે) આ શ્લોકના 'મહત્' પદનો આત્યન્તિકતામાંજ સ્વારસ્ય છે. આ પ્રકારે ત્રિવિધ દુઃખની અત્યંત નિવૃત્તિ થવી એજ પરમ પુરૂષાર્થ છે.

બોધશક્તિ મા.

(લે૦—સત્યનિષ્ઠ શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનન્દજી સરસ્વતીનો ઉપદેશ)
અનુવાદક અને પ્રેષકઃ—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ

प्रतिबोधविदितं मतम् अमृतत्वं हि विन्दते।
કેન૦ ઉ૦

પ્રત્યેક બોધમાં કે પ્રત્યેક જ્ઞાનમાં મા વા આત્માને જાણવાથી અમૃતત્વ—મોક્ષને જાણી શકાય છે. અર્થાત્ પ્રાપ્ત કરાય છે.

મા તમારા પ્રત્યેક બોધ કે પ્રત્યેક જ્ઞાનમાં તમારી પાસે તમારાં માતા, પિતા, ભાઈ બ્હેન, સ્રી,પુત્ર અને આત્મીય સ્વજનનું રૂપ લઈને, તમારા ભોગ્ય,આ જગતનું રૂપ લઈને,અન્ન, જલ અને તેજ રૂપ લઈને, નિયમિત પ્રકાશિત થાય છે. વા આવે છે. પરન્તુ તમે માત્ર પિતા, માતા, માત્ર જગત્, માત્ર અન્ન ઇત્યાદિ બોલીને તે બધાને ભોગવો છો. તેથી જ તમે નિત્ય પ્રકાશિતા માને જોવા છતાં પણ જોતા નથી. તમારૂં જ્ઞાન જે કાંઇનો પ્રકાશ કરે છે, જ્યારે તે બધાને મા વા આત્મા બોલીને ઓળખી શકશો અર્થાત્ સત્તા, ચેતન અને પ્રિયતાની તરફ તમારી જ્ઞાનદૃષ્ટિ બાંધી શકશો ત્યારે માતૃબોધમાં—આત્મબોધમાં સારી રીતે બોધમય થશો અને તમારો મનુષ્ય જન્મ સફલ થશે.

સાંભળો; તમારા નામ રૂપનો ત્યાગ કરો તો પણ તમારો અસ્તિત્વબોધ અર્થાત્ તમે જે છો, એ જ્ઞાનનો અભાવ થતો નથી, માટેજ તમે કે તમારો આત્મા નિત્ય અસ્તિત્વવાન્ છે. ઉક્ત અસ્તિત્વ અર્થાત્ તમે ચેતન છો, જડ કે મૃત નથી, એ પણ તમે જાણો છો અને ઉક્ત ચિન્મય અસ્તિત્વ એ તમોને પરમ પ્રિય છે, એમાં કોઈ પ્રકારનો સંશય નથી. તેજ આનન્દમય, ચિન્મય, નિત્ય અસ્તિત્વ–સચ્ચિદાનંદ સ્વરૂપ છે,તેના તરફ તમારા જ્ઞાનને સ્થિર કરીને, જ્યારે બધાં કર્મો અને બધા ભોગો કરી શકો, ત્યારે તમો માતૃબોધમાં—આત્મ બોધમાં જાગૃત થશો અને તમારા મનુષ્ય જન્મની પરમ સાર્થકતાનો અનુભવ કરીને ધન્ય થશો.

જગત બોધ પણ તમે જ કરો છો અને માતૃબોધ વા આત્મબોધ પણ તમેજ કરશો. બહુકાળના અભ્યાસથી તમારો જગત બોધ દૃઢ થયો છે, એ વાત સત્ય છે અને તમે સહસા જગતને આત્મા બોલી શકતા નથી, એ વાત પણ સત્ય છે. પરન્તુ અભ્યાસ દ્વારા તો આજ,તમારી પાસે મા–

આત્મા જગત્ રૂપે પ્રકાશિત છે અધ્યાસ દ્વારાજ સત્ય વસ્તુને તમે મિથ્યા બોલો છો અને મિથ્યા વસ્તુ કે જે ખરેજ મિથ્યા છે, જેની સત્તા નથી તેનેજ સત્ય માનીને વ્યવહારમય રહ્યા છો તે મિથ્યાબોધ, જડબોધ અને અનાત્મબોધના કવલથી પોતાની રક્ષા કરવા ઇચ્છતા હો તો ઋષિ વા ગુરુવાક્ય સાંભળો અને મનન કરી વ્યવહારમય થવાની ચેષ્ટા કરો ઈશાવાસ્ય ઉપનિષદ્‌ના પ્રથમ મન્ત્રમાં મહર્ષિ યાજ્ઞવલ્ક્ય શું બોલે છે સાંભળો—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

આ જગત્‌મા જગત્‌નો જે કોઈ અંશ તમારા જ્ઞાનમા જગત્‌રૂપે—વા નામ રૂપ બોલીને માલુમ પડે છે તે અંશનું ઈશ્વર દ્વારા આચ્છાદન કરો. કે ઈશ્વર બોલીને જાણો અર્થાત્ તમારા બોધને એવા આકારમા આકારિત કરીને રાખો કે જેથી તે ઈશ્વર સિવાય અન્ય કોઈ બોધ ન કરે અને તમારૂં જ્ઞાન જે ભાવનો પ્રકાશ કરે તેનેજ મા વા આત્માનો છદ્મવેશ જાણીને ઓળખી શકે આ જગત્‌ને જોઈ જગદીશ્વરીનો બોધ જાગી ઉઠે પદાર્થનો પદ અને અર્થ માલુમ પડે પરમ પદ—પરમાત્માએ સમસ્ત—વિશ્વ રૂપે અને પદાર્થ રૂપે પદક્ષેપ કર્યો છે—અવતાર લીધો છે આ વિશ્વ મારી મા વિશ્વેશ્વરી ભવાની છે બધા ઉપનિષદોએ આ જગત્‌ને જગદીશ્વરી રૂપે ઉપાસવાનું—જાણવાનું કહ્યું છે

આ વિશ્વ વિશ્વેશ્વરીનું સ્થૂલરૂપ છે બધા નામ રૂપમા એક માત્ર મારી માજ રહેલ છે અન્ય કોઈ કે કંઈ નથી બોધ શક્તિમયી મા અનન્ત રૂપમા પોતાનું રૂપ મેળવી પોતે અરૂપ છે અનન્ત નામમાં પોતાનું નામ મેળવીને પોતે અનામ થઈ રહેલ છે અથવા માત્ર વાક્ય મનથી અતીત 'મ્" અક્ષર સ્વરૂપે, અસ્તિત્વ રૂપે અવસ્થિત છે પણ કેવળ સાધક પુત્રગણના પ્રબળ આકર્ષણથી શુધ્ધ યુક્ત થઈ "મ્" મા થાય છે અને જ્યારે પુત્રગણ માને ભૂલી જાય છે ત્યારે તે લોકોથી પકડાઈ જવા માટે આ વિશ્વરૂપ ધારણ કરે છે કારણ કે જો મા વાક્ય અને મનથી અતીત રહે તો ભૂલેલા સન્તાનો જાણી શકતા નથી, તેથીજ મા ભવ—જગત્ કે ભવાની છે

જેમ સમુદ્રના કોઈ પણ ભાગને સ્પર્શ કરો, પણ જલનોજ સ્પર્શ થાય છે, તેમ અનન્ત નામ રૂપમા કોઈ પણ નામ કે રૂપમા ભગવતી ભવાનીનો બોધ કરી બોધ શક્તિમયી મા—આત્માને પ્રાપ્ત કરી શકો છો આમા જરા પણ સંશય નથી કારણ કે બધા નામ રૂપ એક માત્ર ચિતિશક્તિ વિશ્વ માતાનાંજ છે વિશ્વેશ્વરીની આ વિશ્વલીલા કેવળ પોતાના સન્તાનોને પોતામા મેળવી દેવા માટેજ છે મહર્ષિ વ્યાસ પોતાના બ્રહ્મસૂત્રમા ઠીક આજ વાત બોલ્યા છે

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

આ લોકવત્—જગત્‌વત્ લીલા તો કૈવલ્ય માટેજ છે બોધ શક્તિમયી માને બોધ દ્વારાજ પ્રાપ્ત કરવી પડશે કારણ કે બોધ—જ્ઞાનજ બોધ કે જ્ઞાનને જાણે છે, અન્ય કોઈ જાણી શકતું નથી મહર્ષિ યાજ્ઞવલ્ક્ય બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્‌મા આજ વાત કહે છે

येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्।

માજ માને જાણે છે, અન્ય કોઈ જાણી શકતુ નથી જે જાણવા જાય છે, તે માજ બની જાય છે બોધ કરીને તમે જીવ થયા છો તો ફરીને બોધ કરીનેજ શિવ બની જાઓ મા બની જાઓ. આત્મા બની જાઓ એક માત્ર બોધસ્વરૂપા અને બોધશક્તિસ્વરૂપા મા સિવાય અન્ય કોઈ કે કાંઈ નથી, એમ જાણીને શાન્ત થઈ ઉપાસના કરો।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत॥

ॐ તત્સત્



પ્રશ્ન

(પ્રે૦—એક વિદ્યાર્થી, H. U. Benares)

ભગવાનનું વચન છે—

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

તુલસીદાસજીની ચોપાઈ છે—

કરમપ્રધાન વિશ્વ રચિ રાખા;
જો જસ કિયા સો તસ ફલ ચાખા.

શંકા એ છે કે શું યદૃચ્છાને પણ સૃષ્ટિ વ્યાપારમાં સ્થાન છે ? કર્મ ફળવાદની સાથે એની સંગતિ કેવી ?

અને, સ્વર્ગદ્વાર કદિ આવૃત થઈ જાય છે.

ઉત્તર

(લે૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

ગીતામાં ભગવાને જે કાંઈ કહ્યું છે, અર્જુન કૃત પ્રશ્નોના ઉત્તર આપવાને માટે અને શંકાઓનું સમાધાન કરવાને માટે કહ્યું છે. "यदृच्छया" ઇત્યાદિ શ્લોક—गुरूनहत्वा हि महानुभावान्-

श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ -गी० २।५

અર્જુનના આ શ્લોકના ઉત્તરમાં કહ્યો છે. અહિં યુધિષ્ઠિરની કથા અનુસંધેય છે. પ્રત્યક્ષ યુદ્ધ વ્યાપાર શરૂ થતા પહેલાં કોઈ પણ કાર્યનો આરંભ ગુરૂ જનોના શુભ આશીર્વાદ પ્રાપ્ત કરીને કરવો જોઇએ, આ શિષ્ટ સંપ્રદાય અનુસાર યુધિષ્ઠિરે પોતાનું કવચ આદિ યુદ્ધ સાજ ઉતારી નાખ્યો અને વિનિત વેષમાં નમ્રતાથી ભીષ્મ, દ્રોણ અને શલ્યની પાસે ગયા અને તેમને પગે લાગીને યુદ્ધમાં જય મળવા માટે તેમની પાસે આશીર્વાદ માગ્યા.

ત્રણેએ યુધિષ્ઠિર આદિ સર્વ ભાઇઓનું અભિનંદન કરીને દુર્યોધનના પક્ષમાં રહીને લઢવાનું કારણ એમ બતાવ્યું કે—

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥

હે યુધિષ્ઠિર મહારાજ, એમા સાચી હકિકત એવી છે કે સર્વ મનુષ્યો અર્થના ગુલામ બનીનેજ સ્વામી સેવક આદિનો વ્યવહાર કરે છે. અર્થ કોઇની ગુલામી કરવા માટે સ્વયં તો જતો નથી. એટલે તેથીજ કૌરવોએ મને અર્થ દાનમાં બાંધી રાખ્યો છે, અર્થાત્ હું દુર્યોધન આદિની સાથે કૃતજ્ઞતાના બંધનથી બંધાયેલો છું.

(મહાભારત, ભીષ્મપર્વ, અધ્યાય ૪૩ શ્લોક ૩૫, ૫૦ અને ૭૬ જોઈ લેવા)

અર્જુન પણ કહે છે કે ભીષ્મ, દ્રોણ આદિ ગુરૂજન "महानुभाव" છે. એવા સુયોગ્ય, કર્તૃત્વવાન, મહાપુરૂષોને માટે પોતાનું ઉદર પોષણ કરવું તો એક ઘણીજ સાધારણ વાત છે. તેટલા માટે દુર્યોધન જેવા અન્યાયી રાજાનો આશ્રય લેવાની જરૂરીઆત નહોતી. પરંતુ તેમની સાથે ભીષ્મ આદિ ધર્મજ્ઞ સજ્જનોનો ભર્તૃભૃત્યભાવ સ્થાપિત થવો એ માત્ર દૈવસંયોગ (यदृच्छा) જ હતો. દુર્યોધનનું પાંડવો સાથે યુદ્ધ ઉપસ્થિત થવું પણ સંયોગનીજ ઘટના હતી. ફલતઃ ભીષ્મ આદિ પ્રકૃત અર્થમાં "अर्थकाम" નહોતા. તેમને માટે આ ધર્મસંકટ હતું.

વસ્તુ તસ્તુ, કર્મ ફળવાદજ નિરપવાદ ચરમ સિદ્ધાન્ત છે.

અધર્મ્ય યુદ્ધ કરનારા ક્ષત્રિયોને માટે પણ સ્વર્ગદ્વાર આવૃત જ છે, પરંતુ અર્જુનને માટે આ યુદ્ધ "अधर्म्य" નહોતું, જો કે તે એમ સમજતો હતો અને એટલા માટે તેને "नरकद्वार" (રાજ્યપ્રુણ લોભ રૂપ) સમજી બેઠો હતો. ભગવાને કહ્યું પણ છે—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
—गी० १६।२१

આકાશથી સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ

(લે૦—સ્વામી શ્રી આનંદાનંદ સરસ્વતી)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૭૮૬ થી આગળ]

"કિછન" પુરૂષ તો એકજ છે પરંતુ આ જે વર્ણન ચાલી રહ્યું છે એ માત્ર તેના અંગના વિભાગોનું છે. પૃથ્વી પગ છે, જળ લીંગ છે, અગ્નિ પેટ છે, વાયુ છાતી છે આકાશ માથું (Head) છે. સૂર્ય ચંદ્ર આંખો છે ઇત્યાદિ પૃથ્વીથી લઇને આકાશ પર્યંત જે વર્ણન થયું તે એકજ પુરૂષનું થયું. પૃથ્વીમાં ગંધ છે. કપુરમાંથી જેમ ગંધ ઉડી જવાથી કપુર રહેતું નથી તેમ પૃથ્વીમાંથી ગંધ ઉડી જાય તો પૃથ્વી રહેતી નથી. કારણ કે પૃથ્વી અને ગંધ એકજ વસ્તુ છે તેમજ પાણીમાંથી રસ ઉડી જાય તો પાણી રહેતું નથી સૂર્યની ગરમીથી રસ પાતળો થઇને ગંધની સાથે ઉડીને આકાશમાં એકઠો થાય છે અને વૃષ્ટિરૂપથી પાછો પડે છે અને સમુદ્રના ક્ષારથી પૃથ્વીને નવા અણુ મળતા રહે છે. અગ્નિમાં રૂપ છે એ રસ તથા ગંધને પાતળો બનાવી વાયુમાં મેળવે છે અને વાયુમાં સ્પર્શ હોવાથી રસ, ગંધ અને રૂપને સ્પર્શ કરી આકાશરૂપ શિરમાં પોંચાડે છે અને આકાશમાં શબ્દ હોવાથી એ ચારે તત્વને પોતપોતાની જગ્યા પર સ્થિત કરે છે. એવી રીતે આ શરીરરૂપી જગતનું વધવા ઘટવારૂપ રૂપાંતર થતું રહે છે અને રૂપાંતર થવાને લીધેજ એનું નામ જગત રાખવામાં આવ્યું છે. ज એટલે જન્મવું, ग એટલે (ગચ્છ) મરવું અને त એટલે (તથાસ્તુ) એમ વારંવાર થવું. એનું નામ જગત બાકી જગત એવી કોઈ વસ્તુ નથી. અનેક અવયવો મળીને શરીર બન્યું છે હાથ, પગ, નાક, કાન, આંખ ઇત્યાદિ અવયવો જુદા કરીને જોઇએ તો શરીર પણ નથી. ભીંત અથવા ઘડામાં મટોડી જુદી કરવાથી ભીંત અથવા ઘડો રહેતો નથી. ભીંત ઘડો અને અનેક વસ્તુઓ સહિત જગત એ સર્વ કલ્પિત નામ છે વાસ્તવમાં એજ "કિછન" છે. એ વર્ણન रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययो એટલું થયું. હવે प्रणव सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु નું વર્ણન કરીએ.

સર્વ વેદોમાં પ્રણવ એટલે ૐકાર હું છું. એજ પ્રણવ ૐકારને જાણવા માટે જે શાસ્ત્રો બનાવવામાં આવ્યા છે તેને વેદ કહે છે વેદ એ શબ્દ विद् ધાતુ પરથી નિકળ્યો છે विद् (To Know) જાણવું અને જેનાથી જાણવામાં આવે તેને વેદ કહે છે. વેદ એટલે જ્ઞાન, ૐકારથી જ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે. તેથી વેદોનો આદિ અક્ષર ૐ રાખવામાં આવ્યો છે તેટલા માટે વેદનું કથન કરવાવાળા શ્રેષ્ઠ પુરૂષોની શાસ્ત્ર વિધિથી નિયત કરેલી યજ્ઞ, દાન અથવા તપરૂપ ક્રિયાઓનો સદા ૐ એવા પરમાત્માના નામનો ઉચ્ચાર કરીનેજ આરંભ થાય છે. આ ૐ ને યોગી લોક એવી રીતે ઘટાવે છે કે શ્વાસ લેવામાં "सो" ઉચ્ચાર થાય છે અને શ્વાસ છોડવામાં "हम्" ઉચ્ચાર થાય છે. सो એટલે તે (ઇશ્વર) અને अहम् એટલે હું, અર્થાત તે (ઇશ્વર) હું છું. सो માંથી स કાઢી નાખવાથી ओ રહે છે અને હમ્ માંથી ह કાઢી નાખવાથી म् રહે છે અને તેથી એને ओम् કહે છે. सोऽहम् અને ओऽहम्

બંનેનો એકજ અર્થ થાય છે. અ ઉ મ્ એ ત્રણ અક્ષરોનો ઓમ્ થયો છે. શાસ્ત્રકારોએ એને એક અક્ષરમાં સમાવેલો છે. અને તે અક્ષર ॐ છે.

બાળક જન્મતાંજ અઉમ્ નો જાપ કરવા લાગી જાય છે. અર્થાત્ બાલક ॐ ॐ જપે છે. જેમ મરા મરા જપતાં જપતાં રામરામ થઈ જાય છે તેવી રીતે ॐ ॐ જપતાં મ્હોં મ્હોં થઈ જાય છે. મ્હોં એટલે મુખ. મુખમાંથી ॐ નિકળ્યો છે. એ ॐ ને ઉલ્ટાવવાથી મ્હોં થઈ જાય છે. ॐ એટલે તે હું છું. તે ત્રીજો પુરૂષ સર્વનામ છે અને એ બોલનારને માટે ઉપયોગ થયો છે માટે તે બોલનાર તે હું (મ્હોં) છું. મ્હોં મુલ્ટી બાજુ હોવાથી માણસને ઓળખી શકાય છે અને ॐ પાછલી બાજુ એટલે ઉલ્ટી બાજુ હોવાથી ઓળખી શકાતો નથી. કારણ કે માણસની ઓળખાણ મ્હોંથી થાય છે તેથી મ્હોં સાકાર કહેવાય છે અને ॐ નિરાકાર કહેવાય છે. એજ મ્હોંથી અનેક શબ્દોની સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થાય છે. આપણે સિતારનો તાર અઉમ્ ના આલાપથી મેળવીએ છીયે. સા પ સા આ ત્રણ સુરોથી સિતારનો તાર મળે છે. એ સુરોનું વર્ણન આગળ કરવામાં આવશે. ઓઠને જરા ખુલ્લો કરી એક લાઇનમાં રાખવાથી અ ઉચ્ચાર થાય છે. ઓઠની ગોલ આકૃતિ કરીને બોલવાથી ઉ ઉચ્ચાર થાય છે અને ઓઠના બંધ હોવાથી મ્ ઉચ્ચાર થાય છે આવી રીત મ્હોં ઉઘાડીને બંધ કરવામાં ॐ ઉચ્ચાર થઈ ગયો. એ હું ને ઓળખવા માટેજ વેદની રચના છે. હું કોણ છું એ જાણવા માટેજ ઉપનિષદોની રચના છે. પોતે પોતાને ઓળખવો એજ ઈશ્વરને ઓળખવાની ચાવી છે. અને તેથીજ ગીતામાં કહ્યું છે કે વેદોમાં પ્રણવ અથવા ॐકાર હું છું.

આગળ કહે છે કે આકાશમાં શબ્દ હું છું. એ કયો શબ્દ હશે? આપણા શાસ્ત્રકારોએ "આકાશ" નામ રાખવામાં બુદ્ધિનો કેટલો ઉપયોગ કર્યો છે એજ ખુબી જોવાની છે. પૃથ્વી ગોળ છે, પાણી ગોળ છે અને તેમાં વ્યાપક પાવક અને પવન ગોળ છે અને જેમાં એ ચારે તત્વો સમાયાં છેએ આકાશ પણ ગોળ છે. ગોળ વસ્તુનો આદિ મધ્ય અથવા અંત નથી. છતાં એનો આદિ મધ્ય અને અંત જાણવા માટે એક પોઈન્ટ રાખવું જોઇએ. એ શુન્યરૂપ ગોળ લાઇનમાં એક પોઇન્ટ કરીને કલમ ફેરવો અને જ્યાંથી કલમ ફેરવવાની શરૂ કરી ત્યાંજ ફરીને પાછી આવશે અને તેજ આદિ તથા અંત છે. આપ પૃથ્વી, સમુદ્ર અથવા આકાશની યાત્રા કરવા નિકળશો તો જ્યાંથી આપ નિકળ્યા હશો ત્યાંજ આવી પહોંચશો તેજ ઠેકાણે આદિ તથા અંત છે. તેથી આપણું મકાન એજ પૃથ્વીનો છેડો ગણાય છે. એ શુન્યમાંથી આપણા શાસ્ત્રકારોએ અક્ષરોની સૃષ્ટિ બનાવવા માટે એના ⊕ આવી રીતે આઠ વિભાગ કર્યા અને એનું નામ પ્રકૃતિ રાખ્યું. એ આકાશના કોઈ ટુકડા થતા નથી પણ આપણે આપણી સુવિધાને માટે આઠ ભાગની કલ્પના કરી. અને એ આઠ પ્રકૃતિનાં નામ પૃથ્વી, જળ, અગ્નિ, વાયુ, આકાશ, મન, બુદ્ધિ અને અહંકાર રાખ્યાં. અને એ જુદા જુદા ટુકડાઓમાંથી અક્ષરોની સૃષ્ટિ બનાવી. એ શુન્યમાંથી અક્ષરો કેવી રીતે બનાવવામાં આવે છે એ વાત તો આપ પ્રાઇમરમાં પણ શીખી ગયા છે. અને હાઇ નૉલેજ એટલે કૉલેજોમાં પાસ થયા પછી પણ શૉર્ટહેન્ડ રાઈટિંગ, ટેલિગ્રાફિક રાઇટિંગ કેવી રીતે શીખવામાં આવે છે એ પણ આપને માલમ હશે. એ બધા અક્ષરોની મૂર્તિ શુન્યરૂપ આકાશમાંથી

બની છે અને ગીતામાં પણ એજ કહ્યું છે કે આકાશમાં હું "શબ્દ" છું.

અર્થવાળા એક, બે, ત્રણ અથવા ચાર અક્ષરોનો સમુહ મળીને શબ્દ થાય છે. એવા અનેક શબ્દોથી ડિક્ષનરી ભરી છે. પણ અહિયાં આપણે "આકાશ" શબ્દોની જરૂર છે "અકશઃ" આ ત્રણ અક્ષરોનું આકાશ બન્યું છે. એ ત્રણ અક્ષરોમાં આદિ અક્ષર "અ" છે. ડિક્ષનરીમાં પણ શબ્દોની રચના "અ" થી શરૂ કરી છે અને ગીતામા પણ કહ્યુ છે કે "अक्षराणां अ कारोस्मि" અક્ષરોમાં હું "अ" છુ. માટે હવેથી ઇશ્વરને આપણે "अ" નામથી ઓળખીશું એ "अ" સર્વ અક્ષરોનો આદિ હોવાથી એની ઉત્પત્તિ ક્યારે અને કેવી રીતે થઈ એ કોઈ પણ શબ્દને માલમ નથી. એ 'अ" કહે છે કે—

न मे विदु सुरगणा प्रभवं न महर्षय ।
अहमादिर्हि देवानाम् महर्षीणा च सर्वशः ॥

દેવ કે ગણ અથવા મહાન ઋષિયો પણ મારી ઉત્પતિ જાણતા નથી કારણ કે હું સૌનો આદિ છું આ સૃષ્ટિમાં કોઈ પણ નહોતું ત્યારે પણ હું હતો અને મારાથીજ એ બધા શબ્દોની ઉત્પત્તિ થઈ છે એ બધા શબ્દો અનેક પ્રકારની રમતો કરીને અંતમાં મારામાંજ મળી જશે દરેક શબ્દના આદિ મધ્ય અને અંતમાં હું વ્યાપક થઈને રહું છું. જે મને અજન્મ, અનાદિ અને પ્રાણી માત્રના મહેશ્વર રૂપથી જાણી લે છે તે સર્વ પાપોથી મુક્ત થઈને મારામાં મળી જાય છે. એજ अ ને ઓળખવો એ આત્મજ્ઞાન છે. જેને જાણ્યા પછી જગતમાં કંઈ પણ જાણવાનું બાકી રહેતું નથી તેજ એ अ છે પરંતુ એ અનુ રૂપ નથી, રંગ નથી અને આકાર પણ નથી. એને શી રીતે ઓળખીશું? વિચારથી, કલ્પનાથી ઓળખીશું. આકાશ પણ નિરાકાર છે તથાપિ ચિત્રકાર કાગળની ઉપર કલ્પનાનો ભુરૂ રંગ લગાવી દે છે જે જોતાંજ આપણને ભાન થાય છે કે આ જે ભુરૂ રંગ દેખાય છે તેજ આકાશ છે. જો કે એ ભુરૂ રંગનું ચિત્ર પણ કાલ્પનિક છે છતાં તે સાચા આકાશનો બોધ કરાવી દે છે. તેજ્વા માટે સમજો કે "अ" આને કહે છે. આ "अ" (ઈશ્વરની મૂર્તિ) કલ્પનાનો છે, સાચો નહિ કારણ કે ગુજરાતી બંગાલી, હિંદી, ઉર્દૂ, ટેમિલ, ટેલગુ, કનડી અને ઈંગ્લિશ ઈત્યાદિ સર્વ ભાષાઓમાં "अ" જુદા જુદા પ્રકારથી લખવામાં આવે છે. અગર એ સાચો હોત તો એકજ પ્રકારથી લખવામા આવત દરેક ભાષામાં સૌએ अ ને ઓળખવા માટે પોતપોતાની કલ્પના પ્રમાણે જુદી જુદી નિશાનિયો કરેલી છે. તથાપિ સર્વ ભાષાઓનો આદિ અક્ષર अ છે. એ હમારાથી ઘણોજ દૂર અને અદૃશ્ય હોવાથી આપણે એને ત્રિજા પુરૂષ સર્વનામ તે કરીને સંબોધન કરીયે છીયે. તે ઈશ્વર (अ).

એ अ ને ઓળખવા માટે આપ સ્કુલમા ગયા માસ્ટરે આપની સ્લેટરૂપ મન્દિરમાં अ ની મૂર્તિનું સ્થાપન કર્યું અને કહ્યું કે આ अ ને ઘૂટો (પુજન કરો) अ अ अ अ એવો જાપ કરો અને એના ઉપર ખુબ ધ્યાન કરીને તમારા હૃદયમા બેસાડો, બીજાથી તુલના કરો અને મંત્ર જપો કે "अ" એટલે અખરોટ. માસ્ટરે अ એટલે અખરોટ જપાવ્યો પણ એ મંત્ર ખોટો છે કારણ કે अ નો અર્થ અખરોટ થતો નથી अ નો સાચો અર્થ તો "નહિ" એવો થાય છે. પણ માસ્ટરે अ એટલે નહિં મંત્ર જપાવવાને બદલે अ એટલે અખરોટ કેમ જપાવ્યો? તેવીજ રીતે મંદિરમા રામ રાંમ, કૃષ્ણ કૃષ્ણ, શંકર

શંકર ઈત્યાદિ જપાવે છે એ. પણ કલ્પિત નામ છે. કારણ કે ઈશ્વરનું નામ તો ' કિછ્ન" છે. એ નામરૂપ અને આકારથી રહિત છે. તથાપિ હાથમાં ધનુષ આપીને રામ બનાવ્યા, મોરલી આપીને કૃષ્ણ બનાવ્યા અને ત્રિશુલ આપીને શંકર બનાવ્યા. એ સર્વ જુઠા સ્વાંગ છે તથાપિ સાચાનો બોધ થવા માટે છે. શાસ્ત્રોમાં પણ જુઠાં, કલ્પિત અને બનાવટી દૃષ્ટાંતોનાં પ્રમાણ આપ્યાં છે. જેમ કે—આત્મસેન નામનો રાજા હતો, તેને મનશ્ચંદ્ર નામનો દિવાન હતો જેને સદમતી અને દુર્મતિ નામની બે સ્ત્રીયો હતી, ઈત્યાદિ કલ્પિત નામોથી દૃષ્ટાંત આપ્યાં છે. છતાં સાચાનો બોધ થવા માટે આપ્યાં છે. વસ્તુનું સ્વરૂપ આપના ધ્યાનમાં ઠસાવવા માટે છે. એ નામોની સાથે આપને કોઈ પણ સંબંધ નથી. પણ એ દૃષ્ટાંતના રહસ્યની સાથે આપનો સંબંધ છે. તેવીજ રીતે अ એટલે અખરોટ જુઠો મંત્ર હોવા છતાં સાચાનો બોધ થવા માટે છે. એ નામોની સાથે આપનો કોઈ પણ સંબંધ નથી, પણ એ દૃષ્ટાંતના રહસ્યની સાથે આપનો સંબંધ છે. તેવીજ રીતે अ એટલે અખરોટ જુઠો મંત્ર હોવા છતાં પણ સાચાના બોધને માટે છે. કારણ કે આ દુનિયાની સાકાર વસ્તુઓનું જ્ઞાન થયા વગર નિરાકારનું દર્શન દુર્લભ છે. अ એટલે नहिं. "नहिं" એવી કોઈ વસ્તુ નથી કે બાલકને તેનું દર્શન કરાવીને સમજાવવામા આવે કે આ વસ્તુને "नहिं" કહે છે. એટલા માટે દૃશ્યમાન અખરોટની મૂર્તિનો બોધ આપ્યો. કારણ કે એમ. એ. અને બી. એ સુધીની બધી કોલેજોમાં અને સ્કુલોમાં વ્યવહારિક જ્ઞાન આપવામાં આવે છે અને ચિત્રો બતાવીને દુનિયાની દૃશ્યમાન વસ્તુઓનું જ્ઞાન કરાવવામાં આવે છે.

પ્રિય ભાઈયો ! આપને દૃશ્યમાન સાકાર વસ્તુઓનું જ્ઞાન થઈ ગયું છે તેથી નિરાકાર अ નું દર્શન કોઈ મુસ્કેલ નથી. આજ આપણી અધ્યાત્મિક સ્કુલમાં अ નો સાચો અર્થ "નહિ" નો બોધ કરવામાં આવશે. એ अ કેવો છે ? અરૂપ, અજન્મ, અવિનાશી, અનાદિ, અજર, અમર, અક્ષર ઈત્યાદિ. આ દુનિયાની સર્વ વસ્તુઓનું રૂપ છે, જન્મ છે, મરણ છે, આદિ છે, અંત છે, પણ જે સાચો अ છે એને "કિછ્ન" છે. એ अ પહેલાં પણ હતો, આજ પણ છે અને ભવિષ્યમાં પણ રહેશે. એ સર્વ દુનિયાથી ન્યારો અને એકલો છે. એણે કલ્પના કરી કે "एकोऽहम् बहु स्याम" જે હું એક છું તે અનેક રૂપથી થાઉં તો કંઈ રમત થાય. કારણ કે એકલા ખેલ ખેલવામાં આનંદ આવતો નથી "एकाकि न रम्यते". તેથી પોતાના સ્વરૂપના બાર જ્યોતિર્લિંગ કર્યાં. એ બાર સ્વરૂપ—अ आ इ ई ए ऐ ओ औ अं अः થયાં. એ બારે સ્વરૂપો અલગ દેખાવવાળાં હોવા છતાં એકજ છે. એને સ્વર કહે છે અને એ બધાં દેવેશ્વર अ નાંજ પ્રતિબિંબ છે. જરાક મુખ ખોલીને હૃદયાકાશથી જે શબ્દ કાઢવામાં આવે છે તેને अ કહે છે. મુખ જાસ્તિ ખોલવાથી આ ઉચ્ચાર થાય છે. એવી રીતે ઓઠની જુદી જુદી આકૃતિથી જુદા જુદા ઉચ્ચાર થઇને બાર સ્વર થાય છે. એ બારે સ્વરોની કૉન્ફરન્સે મળીને અક્ષરોની સૃષ્ટિ રચવાનો વિચાર કર્યો અને પ્રસ્તાવ પાસ થઈ ગયો. તેથી જન્માષ્ટમીને દિવસે તાળવું, દાંત અને ઓઠની ઘડિયાલ પર ટકોરા મારવાનું શરૂ કર્યું. જેથી વ્યંજનોનો જન્મ થયો. ક્ ખ્ ગ્ ઘ્ ઙ્ । ચ્ છ્ જ્ ઝ્ ઞ્ । ટ્ ઠ્ ડ્ ઢ્ ણ્ । ત્ થ્ દ્ ધ્ ન્ । પ્ ફ્ બ્ ભ્ મ્ । ય્ ર્ લ્ વ્ શ્ સ્ । ષ્ હ્ । એવા બત્રીસ વ્યંજનો રૂપી દાંત પ્રગટ

થયા. પણ એ બધા મુડદાં હતાં. એમાં જીવરૂપ સ્વર નહોતો, શ્વાસ નહોતો તેથી બધા સ્વરોએ પોતાના બારે સ્વરૂપોથી વ્યંજનોમાં પ્રવેશ કર્યો અને તેમને પોતાના જેવાજ બનાવી દીધા જેથી દરેક વ્યંજનના પણ બાર બાર સ્વરૂપો થયા. ક્+અ=ક, ક+આ=કા ઇત્યાદિ રીત પ્રમાણે બત્રીસે વ્યંજનોનાં બાર બાર સ્વરૂપો થયાં. અને સર્વ મળીને ૩૨×૧૨=૩૮૪ અને ૧૨ સ્વર મળીને ૩૯૬ અક્ષર થયા. એનું નામ અક્ષર એટલા માટે પડ્યું કે—સ્વરનો પ્રથમ અક્ષર अ અને વ્યંજનનો પ્રથમ અક્ષર क તથા છેલ્લો અક્ષર श મળીને अकशः (આકાશ) થયું. क्+शः=क्षः તેથી अक्ष થયો. અને अ થી क्षः સુધી સર્વ અક્ષરોને જાણી લીધા ત્યારે ज्ञ ઉત્પન્ન થયો. અને अक्ष ज्ञ એમાં વિસર્ગનો લોપ થઈ "અક્ષર જ્ઞાન" થયું. એ વ્યંજનોની સાથે જ્યાં સુધી સ્વર સંમિલિત છે ત્યાં સુધી એ અક્ષર (અમર) છે અને સ્વર નિકળી જવાથી એનું તથા આપણું મૃત્યુ ગણાય છે. આવી રીતે વ્યંજનોની સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થઈ.

(અપૂર્ણ)

અભેદ પ્રેમ

(લેખક—સિકંદરરાય બાલાભાઈ દેસાઈ)

અસ્મિતામાં પડી રસાસ્વાદનો આનંદ લેનારને 'પ્રેમ' એ વાત સમજવામાં આવે છે તે યથાર્થ છે. એ પ્રેમનો પ્યાલો તે પીધાજ કરે છે, તે ધરાતો નથી તેમ તેને તૃપ્તિ પણ થતી નથી મેં પ્રેમ અનુભવ્યો, મેં અભેદ પ્રાપ્ત કર્યો, એમ તે કહેવાને અસમર્થ છે. કહેનાર તો પ્રેમને પરિમિત બનાવી દે છે, પરિછિન્ન કરે છે કેમકે કહેનાર કહેવાનું ને સાંભળનાર એવા પરિચ્છેદ અથવા તો ભેદ વિના પ્રેમ કહેવાનું બને તેમ નથી અભેદ અનુભવનારથી તો તે કહેવાય એમ છેજ નહિ; યાજ્ઞવલ્ક્યને બ્રહ્મસ્વરૂપ ત્રણવાર પુનઃ પુનઃ પૂછતાં છતાં પણ તેમણે મૌનજ ધારણ કરી રાખ્યું, અને મૌનદ્વારે બ્રહ્મ ભેદનો ઉપદેશ કર્યો તેવું આ અભેદનું પણ સમજવાનું છે માટે પ્રેમનો પ્યાલો નિરંતર પીધા કરવો, એનાથી કોઈ તૃપ્ત થયું નથી, એના વિષે કહેવામાં આનંદ નથી, એનો અનુભવ વિક્ષેપાદિ રહિત થયાં બાદ એજ આનંદ છે

આધિ, માનસિક વ્યથા, રાગ દ્વેષ, ક્રોધ, મોહ, આદિ જે જે અહંવૃત્તિથી ઉપજે છે તે સર્વ આધિમાં સમાવવાનો ઉદ્દેશ છે. વ્યાધિમાં શરીરની બાહ્ય વેદના કે શરીરે હું સુંદર છું ઇત્યાદિ સુખબુદ્ધિ જે પણ અહંવૃત્તિનું દેહ સાથે તાદાત્મ્ય થવાથી ઉપજે છે તેનો સમાસ કરવાનો ઉદ્દેશ છે. અને સ્વવ્યતિરિક્ત એવા જે જે બાહ્ય પદાર્થ સંબંધાદિ સાથે અહંવૃત્તિનું તાદાત્મ્ય થતાં તેને પદાર્થાદિ રાગ દ્વેષના કારણ થઈ આવે છે તે સર્વનો ઉપાધિમાં સમાસ કર્યો છે. આધિ, વ્યાધિ અને ઉપાધિ એ ત્રણેનું કારણ અહંભાવ ને અભિમાન એના વિના બીજું જણાતું નથી, એમ આવી રીતે એ ત્રણેનો અર્થ કરવાથી સ્પષ્ટ થશેજ, તો "હું અભેદ પામ્યો છું" એમ કહેનારનામાં તેજ અભિમાન વૃત્તિનો આવિર્ભાવ છે, અને તેજ આધિ વ્યાધિ ઉપાધિ ત્રણેનો મહાદાવાનલ રૂપ અગ્નિ તેને ઉપજાવનાર, સળગાવનાર છે, દુઃખ ક્લેશાદિનું

નિદાન છે, તો તેનો શા માટે આશ્રય કરવો ? એ અગ્નિ તો સળગી રહ્યોજ છે, ચાલતો જ છે. એમાંથી મુક્ત થઇને અભેદ પ્રાપ્ત કર્યો છે, તો પુનઃ અભિમાન ધારણ કરી, એના એ અગ્નિમાં ઘી હોમવાનું પ્રયોજન નથી. એ અગ્નિનું અતિ સૂક્ષ્મ કારણ જે અભિમાન તેને પણ પ્રેમરૂપી જળથી, બુઝાવી નાખવો ઓલાવી નાંખવો, અભેદ વૃત્તિમાં અહંવૃત્તિનું પ્રવિલાપન કરવું. "હું તે સર્વ અને સર્વ તું" એ રીતે અનુભવ કરવો, અને એમ પ્રેમનો પ્યાલો પીધાં જવો, અભેદના વિવર્ત રૂપે સર્વને સમજી અભેદાનંદમાં વિક્ષેપ થવા ન દેવો—એવા આનંદનો અવધિ નથી. એથી કોને તૃપ્તિ થઈ છે ?

એ નિરવધિ આનંદનો પ્રકાર એવો છે કે જેમ પીવાશે તેમ અધિકાધિક દીપતો ચાલશે, એનું પાન તો નિત્ય ક્ષણે ક્ષણે પીવું; ક્યાં સુધી પીવું ? કે પીતે પીતે પડી જવાય, એનો નશો એવો આવી જાય કે ભાન ભૂલીને પડી જવાય, વૃત્તિ માત્રનો વિલય થઈ જાય, वृत्ति विस्मरणं सम्यक् એ અનુભવ થાય, ત્યાં સુધી પીવું—એ વૃત્તિ વિસ્મરણ થયા છતાં પણ વળી ઉઠાય, ત્યાં સમાધિમાંથી વ્યુત્થાન થાય, તો ઉઠીને પણ પાછું એનું એ પ્રેમપાન પીવા માંડવું ને વળી વૃત્તિ વિસ્મરણ સાધવું-એ પ્રકારે પીતે પીનેજ પરમ પદ જે અવિક્ષિપ્ત અભેદાનંદ તે પામી શકાય છે—અનવધિ આનંદ અનુભવાય છે. એ આનંદથી કોઈ ધરાયું નથી, એનુંજ પાન કર્યાજ કરવું, અહંવૃત્તિમાં પડી વિક્ષેપમાં જવું નહિ पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भूतले। उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ આ શ્લોક વામ માર્ગને અનુસરનાર મદ્ય માંસાદિ પંચમકારની ઉપાસના કરનારા પોતાના મદ્યપાનના સૂત્ર રૂપે વારંવાર ઉચ્ચારે છે, પણ તેનો અર્થ ભૌતિક મદ્ય પીવા પરત્વે નથી. કેવલ ભાવગમ્ય જે અભેદ મદ્યનું પાન છે તે પીવા ઉપર છે. વેદાન્ત શાસ્ત્રના પ્રેમ, અભેદ આદિ શબ્દોના સ્થૂલ અર્થ કરવાથી અનાચાર માત્ર ઉદ્ભવે છે. પ્રેમ જ્યાં સુધી કોઈ સ્થૂલ શરીરને અવલંબીને પ્રેમ કહેવાય છે, અભેદ જ્યાં કોઈ વ્યક્તિઓને લક્ષમાં રાખીને મનાય છે ત્યાં સુધી સ્વચ્છંદિતા, અનાચાર, અનીતિ, એ વિના બીજું કશું ઉદ્ભવતું નથી, પ્રેમાદિ નામો પોતાનાં સ્વાર્થનાંજ નામાંતર છે એમ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે; પણ જે પ્રેમ કોઈ પણ સ્થૂલના ઉપર દૃષ્ટિ કરતો નથી, કેવલ ભાવગમ્યજ છે, ભાવમાંજ પુષ્ટ થાય છે, ને ભાવમાંજ પરિપક્વ થાય છે, તે અભેદનો માર્ગ કરી આપે છે, ને પરમ પદે લઈ જાય છે. ખરી વાત છે કે એ સ્થૂલના સંસર્ગથી પ્રથમે પ્રેમનું સ્વરૂપ આપણને જડે છે, પણ એ પ્રેમ જો સ્થૂલના અભાવે પણ ભાવમાત્રમાં પુષ્ટ ન થઈ શકે, સ્થૂલતા ધીમે ધીમે વીસરી જઈ શુદ્ધ થતો ન જાય, એના દિવ્ય સ્વરૂપમાં જે સ્થૂલ સંબંધરૂપ કચરો ભળેલો હોય તેને ધોઈ નાંખતો ન હોય, તો તે પ્રેમ નથી, એ એક સ્વાર્થ છે, મોહ છે, ભ્રાન્તિ છે. જ્યારે પ્રેમ કેવલ ભાવમય થઈ રહે ત્યારેજ તે એક વ્યક્તિથી બીજી ઉપર, બીજીથી ત્રીજી ઉપર, અને એમ સર્વત્ર સમાન થઈ શકે, અને આર્દ્રતામય, દયામય, સર્વમય, હૃદય રસમાં વિલીન થઈ સ્વભાનને ભુલી, અભેદ અનુભવી શકે—પ્રેમમાંથી સ્થૂલતા કાઢવી, વેદાન્ત વચનોના સ્થૂલ અર્થને મૂકી ભાવરૂપ અર્થ અનુભવવો, એજ આંટી છે, ને એમાંથીજ અભેદનો માર્ગ છે.

આ જગતમાં આપણે જન્મ્યા, જીવ્યા, જન્મ-

પામી ગયે તે પ્રકારે પુષ્ટ થઈ વ્યવહાર કરી નિર્વાહ કરવા લાગ્યા, તેમા સુખ કયે ઠેકાણે દીઠુ ? જે સ્થૂલ વાસનો આશ્રય કર્યો, જ્યા જ્યા સુખ માન્યું, તે તે વાત તો કેવલ અનિત્ય, મિથ્યા નીકળી અને સુખ આવ્યુ નહિ, એવા સુખોનો આશ્રય કરતા તો દેહ દમવાનોજ વખત આવ્યો, શરીરને જાણે હવકા પણ ઓલવાય નહિ તેવા અગ્નિમા દાટીને સીજવવા માડયુ હોય તેવા દુ ખનીજ પ્રાપ્તિ થઈ તો તે પ્રમાણે આપણે દેહને શા માટે દમીએ છીયે ? એનું કારણ એટલુંજ છે કે પ્રેમને આપણે સમજતા નથી માટે દેહ સીઝાય છે આપણે કહીશું કે આપણે તો અનેક સ્થાને પ્રેમ કરીએ છીએ, આપણને પ્રેમ મળતો નથી, પણ એજ ખોટો પ્રેમ છે, એ તો દેહ પાત્રનો પ્રેમ છે, સ્થૂલ કચરાવાળો પ્રેમ છે, એનાથી કદાપિ પણ પીડા અટકતી નથી, જે કેવલ ભાવમય પ્રેમ છે તે અનુભવશો તો આનદ વિના બીજો સ ભવજ નથી એવા પ્રેમ વિના દેહને શા માટે દુ.ખ પમાડો છો ? અહ ભાવથી અભેદાદિ વાતો કરવા છતા સ્થૂલનો સ્પર્શ કરી અભેદ પ્રેમને શા માટે વિકારી કરી નાખો છો ? મૌન રહી એ પ્યાલો પીધા જાઓ, એનાથી કોઈ ધરાતું નથી, જેણે જેણે એ પીધો તે શમીજ ગયા છે

પ્રેમમાથી સ્થૂલતા દૂર થયા છતા સૂક્ષ્મ વિકારો પણ દૂર કરવા માટે વધારે વિચાર કરવાની જરૂર છે પ્રેમમા સ્થૂલતા કદાપિ ન રહે, શરીર સ બધ છૂટે, પણ સૂક્ષ્મ વૃત્તિઓ અહ મમની તે સહેજમા છૂટે નહિ ને તેથી પ્રેમ સાક્ષાત્કાર ન થાય અને "હું" અભેદ પામ્યો' એમ કહેવાની વૃત્તિ થઈ આવે તો મારૂં અને તારૂં એવી સૂક્ષ્મ અહ મમત્વની વાસનાને મુકી દઇને પ્રેમભાવના માત્રમાજ વિલીન થઈ હું પણ પ્રેમ, મારૂં પણ પ્રેમ એવી ભાવનાથી પ્રેમ માત્રજ ગાયા કરવો, એમ કરવાથીજ સૂક્ષ્મ વિકાર પણ નીકળી જશે, કેવલ પ્રેમમયતા અનુભવાશે એવો પ્રેમ ભાવ અનુભવી, એ પ્રેમલતાને વધી, ને પ્રેમ રસ નિર તર ચાટયા કરો એની સીમા નથી, એનાથી તૃપ્તિ નથી એવી રીતે સ્થૂલ, સૂક્ષ્મ ઉભયથી વિરહિત જે પવિત્ર પ્રેમ તેનો પ્યાલો નિરતર પીધા કરો, એવા પવિત્ર પ્રેમમા કશા નિયમો હોતા નથી, એ પ્રેમ અમુક રીતે થાય, અમુક તેનો વિષય કહેવાય, અમુક તેની મર્યાદા કહેવાય, અમુક તેને પ્રતિકૂલ અનુકૂળ કહેવાય, એવા કશા નિયમ એમા હોતા નથી, નિયમો હોવા એ તો ભેદનુંજ પરિણામ છે, પુન પ્રેમને મલિન કરવાનો માર્ગ છે, સ્થૂલ સૂક્ષ્મ મલ પ્રેમમા પુન નાખવા સરખુ છે જ્યા એવા નિયમ છે ત્યા નિ સંશય ભેદ પણ છે, ને જ્યા ભેદ છે ત્યા તો ભેદ માનનારા ભમાયા છે, ભ્રાતિમા પડ્યા છે, દ્વૈતભાવ ધારણ કરી સુખ, દુ ખ રાગદ્વેષાદિ અનેક કષ્ટ પર પરામા તણાયા છે એવા નિયમ, એવા ભેદ, એ કશું આ પ્રેમમા સમજવું નહિ, "હું આ પ્રેમનો અનુભવનાર છું" એમ પણ જાણવું નહિ, અને એ પ્રકારે પવિત્ર પ્રેમના નશાથી ભેદ માત્રનો અત્યત વિલય કરી લેવો, ભેદ માત્ર ટાળી નાખવા, એમ થતાજ આનદ પર પરાનો અનુભવ ઉદય થઈ મીઠો રસ અનુભવાશે.

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું?

(લે૦—વકીલ બાલાભાઈ નારણજી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૮૦પથી આગળ]

અર્થાત્ જે કરવું જોઈએ તે કરવા હું ઇચ્છતો નથી તેથી એક પાપ; અને કાંઇ પણ કર્યા વીના કોઇ પણ રહી શકેજ નહી, તેથી હું પણ બીજું કંઈ (સ્વધર્મને છાજે નહીં તેવું કંઈ) પણ કરવાનો, તો તે પણ શાસ્ત્રે મનાઇ કરેલું નિસિદ્ધાચરણ જ હોવાથીબીજું પાપ લાગશે—આમ બેવડું—ડબલ-પાપ કરવા હું તૈયાર થયો છું. અને ખરેખર જો તે બધું પાપજ ગણાય—પાપજ ઠરે—તો પછી પરીણામે હું દુઃખીજ થવાનો એ તો દીવા જેવું સ્પષ્ટ છે. અને દરેક મનુષ્ય તે સમજી શકે તેવી વાત છે, છતાં પાપ કરવાની અને તે કારણે દુઃખી થવાની ઇચ્છા કોણ કરે? કોઈ પણ તેવી ઈચ્છા કરેજ નહીં અને તેવી ઇચ્છા ન કરે એ યોગ્ય અને સયુક્તીક પણ છે. તેમ છતાં પણ મનુષ્ય પ્રાણી પાપાચરણ કરવા શા માટે ઇચ્છા કરતો હશે? એ પ્રશ્ન સંસારનો એક મહાન કોયડો છે. પરંતુ કારણ વીના કાર્ય સંભવતુંજ નથી, ત્યારે અહીં પાપ પ્રવૃત્તિને-પાપાચરણની ઇચ્છાને કંઈ પણ કારણ તો હોવુંજ જોઇએ એ તો ખુલ્લું છે.

આ પ્રમાણે વીચારમાં અર્જુન ચડયો છે અને તેવે સમયે તે અચાનક નીશ્ચય કરે છે કે ભગવાનનો મત ખરો હો કે મારો મત ખરો હો—તો પણ કોઈ પણ મતે પાપ એ એક સર્વ સાધારણ રીતે બને છે એમ નક્કી થાય છે.

ત્યારે હવે પાપ કરવાની મનુષ્ય પ્રાણીની આંતરીક ઇચ્છા નથી, છતાં પણ મનુષ્ય પાપ કરે છે. એનું કારણ મારા જાણવામાં આવતું નથી માટે ભગવાનનેજ પૂછીએ—એમ એવો નીશ્ચય કરીને અર્જુને ભગવાનને પ્રશ્ન કર્યો કે—હે ભગવન્ મનુષ્ય પ્રાણીને પાપ કરવામાં પ્રેરનાર-લગાડનાર દુષ્ટ કોણ છે? અને અર્જુનનો આ પ્રશ્ન એ સંસારના દરેક મનુષ્યનો પ્રશ્ન છે, અને હોવાનોજ, અને એ સવાલનો ઉત્તર—જવાબ પણ દરેક મનુષ્યને જોઇએ છે આવી સ્થતિનો વીચાર કરીને ભગવાને અર્જુનના ઉપરના પ્રશ્નનો ઉત્તર-જવાબગીતા અધ્યાય ૩ શ્લોક ૩૭ થી આપ્યો તે એવો જવાબ કે—હે અર્જુન-રજોગુણથી જેની ઉત્પત્તિ છે, જે મોટા અકશાંતીઓ છે; જે પોતે જાતેજ મહા પાપની મૂર્તી છે. એવો જે કામ—ક્રોધ ઇત્યાદી કે જે મનુષ્યના હૃદયમાં—અંતઃકરણમાં—વીકારોની પરંપરા ઉત્પન્ન કરે છે એજ મનુષ્યનો દુષ્ટ વૈરી અને દુશ્મન છે-શત્રુ છે—અને તેજ તને ત્યા દરેક મનુષ્યને પાપ કરવામાં પ્રેરે છે—લગાડે છે—પાપ કરાવે છે.

એ છ દુશ્મનો—(કામ-ક્રોધ-લોભ-મોહ-મદ-મત્સર—) ની ટોળી એવી બળવાન અને એવી દુષ્ટ છે જે કોઇ એ ટોળાના સપાટામાં અગર તે પૈકી કોઇના સપાટામાં આવી ચડ્યો તે લુંટાયો અને મુવોજ સમજવો. તેમના સપાટામાંથી બચવું બહુ મુશ્કેલ છે.

કામરૂપી શત્રુએ મનુષ્યની જ્ઞાન શક્તીને ઢાંકી દીધી છે. જેમ ધુમાડાથી અગ્ની ઢંકાઇ જાય—

મેલથી અરીસો નીરૂપયોગી થાય અને ઓરથી ગર્ભ ઢંકાયલો હોય તેવીજ રીતે હે અર્જુન આ આ તૃષ્ણારૂપી કામ, જે અગ્નીની પેઠે કદી પણ તૃપ્ત થતો નથી સંતોષ—પામતો નથી તે કામથી તારૂ પણ જ્ઞાન ઢંકાઈ ગયુ છે

આ કામ ક્રોધાદી શત્રુઓ ઈન્દ્રિયો મન અને બુદ્ધીમા રહે છે અને તેમા રહીને જ્ઞાનને ઢાંકે છે તે જીવને મોહ પમાડે છે માટે હે અર્જુન જો તારે તે શત્રુઓથી બચવુ હોય-તેના સપાટામાં આવવુ ન હોય તો પહેલ તો તું તારી ઈંદ્રીયોને વશ કર—ઈંદ્રીયોને કાબુમા રાખ ને પછી દુષ્ટ કામ ક્રોધનો નાશ કર—

એ બધી દુશ્મન ટોળીના કેવા પરાક્રમો છે—એનુ થાણું ક્યા છે—એ દુશ્મનોનો સ્વભાવ કેવો છે—અને તે ટોળીનુ વેર મુખ્યત્વે કોની સાથે છે તે બધી બાબતો ટુંકમા મે તને ઉપર જણાવી માટે હે અર્જુન હવે હું તને એક ચેતવણી આપુ છઉં કે—સર્વ વ્યવસાય એક બાજુ પર પડતો મુકીને પ્રથમ આ દુશ્મન ટોળીનુ નીકંદન કહાડ—તેને ઠાર કર

ઉપર પ્રમાણે તાકીદ આપીનેજ ભગવાન અ' ક્યા નહીં પણ ભગવાને અર્જુનને એમ પણ સમજાવ્યુ કે જો તે દુશ્મન ટોળીનો તું નાશ નહીં કરે તો પછી તારાથી આ સંસારમાં કંઈ પણ શુભ કાર્ય થઈ શકશે નહીં

છતા તને સુઝ ન પડતી હોય કે આ દુશ્મન ટોળીનો કેમ નાશ કરવો તો હું તને રસ્તો બતાવુ કે આત્મ સ્વરૂપને સારી પેઠે જાણી તેનો સાક્ષાત્કાર મેળવી, તે આત્મ સ્વરૂપનો આશ્રય લઈ કામ ક્રોધ વીગેરે છ દુશ્મનની ટોળીનો નાશ કરી શકાય છે માટે તે રીત ગ્રહણ કરીને તું તેને ઠાર કર એ પ્રમાણે આજ્ઞા કરીને ભગવાને ગીતાનો ત્રીજો અધ્યાય પુરો કર્યો છતા પણ ભગવાન અને અર્જુનના ઉપર જણાવેલ સવાલ જવાબોના સંબંધમા કેટલાક વીચારો સ્ફુરે છે તેનો ઉલ્લેખ અત્રે કરવો યોગ્ય થશે

જન્મ મરણ સંબંધે ઉત્પન્ન થનારો શોક આત્મ તત્વજ્ઞાનથી નિવૃત્ત થય છે, અર્થાત્ તે શોકનું મૂળ કારણ આત્મતત્વ વીશેનુ મનુષ્યનું અજ્ઞાન છે અને આ મતલબ સંબંધી અજ્ઞાનમાજ પાપનું મૂળ બીજ છે એટલે મનુષ્યને કોઈ પણ પદાર્થની ઇચ્છા થવાનુ કારણ કે તે તે પદાર્થથી પોતાને સુખ થશે એમ માનીને મનુષ્ય-તે તે પદાર્થ પર પ્રેમ કરવા માંડે છે અને જ્યા જ્યાં સુખનું સ્થળ છે ત્યાં ત્યાં મનુષ્યને પ્રેમ યાને પ્રીતી થાય છે એ તો અનુભવ સીદ્ધ વાત છે તે ધોરણે જોતાં આત્મા જેવી વધારે પ્રીય બીજી કોઈ વસ્તુ નથી મતલબ કે આત્મા ઉપરનો પ્રેમ એ નિરતિશય–નિરૂપમ અને નિર્હેતુક હોય છે આ પ્રમાણેની સ્થીતિ છતા આત્મા એજ નિરતીશય આનંદરૂપ છે, એમ મનુષ્યો શા કારણે નથી માનતા. તેનો જવાબ એટલોજ કે મનુષ્ય ખરી વસ્તુ સ્થીતિ સમજી શકતો નથી આત્મા સંબંધી ખરી વાત કોઈએ તેને સમજાવી નથી અને સમજતો હોય તો સમજ્યા છતાં યાદદાસ્તમાથી નીકળી ગઈ છે તેથી મનુષ્ય આત્મ વિષયમા કેવળ અજ્ઞાની દેખાય છે અને તે અજ્ઞાનને લઈનેજ આત્મા જેવા અત્યંત આનંદમયને આનંદમય જાણી શકાતો નથી અનુભવી શકાતો નથી

મુદ્દો એજ છે કે, આત્મા જ્યારે અવીનાશી છે, ત્યારે તેનાથી મળતું સુખ પણ અવીનાશી છે; અને આ વાત–આ સિદ્ધાંત જેને બરાબર ગળે ઉતરે

તેજ આત્મરત થઈ શકે. અને જે આત્મરત થાય તેને પછી तस्य कार्यं न विद्यते (અ૦ ૩ શ્લો૦ ૩૭) કંઇ પણ કર્તવ્ય—કરવાપણું—રહેતુંજ નથી.

ઉપર પ્રમાણે વીચાર સરણીથી જોતાં—

अर्के चेत् मधुविन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।
એટલે ઘરને ખુણેજ જો મધ મળતું હોય તો પછી પર્વત ઉપર જવાની મહેનત કરવાની શી જરૂર-તેજ ધારણો જોતાં—

જે કંઈ સુખ મનુષ્યને જોઇએ તે તમામ સુખ આત્માની અંદર અક્ષય્યપણે ભરેલું છે પછી સુખ માટે બીજા પદાર્થોની ઇચ્છા કરવાની જરૂરજ નથી. અને જ્યારે બીજા પદાર્થોની ઇચ્છા કરવાની જરૂરજ નથી તો પછી તેવા બીજા પદાર્થો મેળવવા માટે કંઇ પણ પ્રયત્ન કરવાની તો જરૂર હોય જ શાની.

અગાઉ બીજા અધ્યાયમાં ભગવાને સ્થીત-પ્રજ્ઞનાં લક્ષણો વર્ણવેલાં છે તેમાં એક લક્ષણ એવું છે કે જે "ઇચ્છા તજે છે તે સ્થિતપ્રજ્ઞ થાય છે. પરંતુ ઈચ્છા તજવી તે કયા કારણે ? શા આધારે? તેનો જવાબ એટલોજ કે આત્માની અંદરથી જે સુખ મળે છે, તે સુખથી મનુષ્યને સંતોષ-તૃપ્તી અને મનનું સમાધાન થઈ જાય છે, અને તેવી સ્થીતિ પ્રાપ્ત થતાં "ઇચ્છા" પોતાની મેળે છુટી જાય છે. માટેજ આત્મજ્ઞાની પુરૂષ વિષય—અને વાસનાથી રહિત બની શકે છે.

પરંતુ જો પોતાના આત્માની ઓળખાણ પોતાથી થઈ શકે નહી—પોતાના સ્વરૂપને પોતે પીછાણી શકે નહી, તો પછી આત્મા સંબંધી અજ્ઞાનને લઇને—આત્મા શીવાયના બીજા કોઇ પણ પદાર્થની ઇચ્છા થશે અને તેવી અનાત્મીય ઇચ્છાને લીધે તે ઇચ્છા પુરી કરવા માટે પ્રયત્ન-કર્મ અને તે પ્રયત્ન સફળ ન થાય, તે કર્મ ફળ ન આપે, તો તેના પરીણામે દુઃખ ઇત્યાદિની ઘટમાળ શરૂ થશે.

તે તમામનું મુળ કારણ આત્મા સંબંધીનું મનુષ્યનું અજ્ઞાન જ દોષપાત્ર ગણાય અને તેવા અજ્ઞાનરૂપી દોષમાંથી ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે તે પણ દોષજ છે. આમ એક દોષમાંથી બીજો દોષ ઉત્પન્ન થાય છે. અને ઇચ્છાની પૂર્તીને કારણે પ્રયત્ન તે પણ ત્રીજો દોષ-અર્થાત અજ્ઞાનમાંથી ઉત્પન્ન થતું કંઈ પણ નિર્દોષ નથી.

સારાંશ એજ કે ઇચ્છા એટલેજ કામ. અને ઇચ્છા પ્રમાણે થયું તો લોભ વધે, અને ઈચ્છા પ્રમાણે ન થયું તો ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય. આવી રીતે ષડ્રીપુ, કામ, ક્રોધ, લોભ, મોહ, મદ, મત્સર, એ છ દુશ્મનની ટોળી મનુષ્યના જીવને હમેશાં ઘેરવા તાકે છે. તે છ દુશ્મનોમાં પણ કામ એટલે ઇચ્છા એજ મનુષ્યનો મોટો અને મુખ્ય દુશ્મન છે.

માટે આ સર્વ બાબતો બરાબર ધ્યાનમાં રાખીને તત્વજ્ઞ પુરૂષ આત્મનીષ્ઠ-જ્ઞાનનીષ્ઠ અને નિવૃત્તિ પરાયણ થવા પ્રયત્ન કરે છે. અને તેને એમ જણાય છે કે જાણે સર્વે સુખો આત્મનીષ્ઠ થવામાં આવી ગયાં છે. આવી સ્થીતિમાં आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं (અ૦ ૨ શ્લો૦ ૬૯-૭૦) માં વર્ણવ્યા પ્રમાણે તેની સ્થીતિ થાય છે.

સારાંશ એજ કે (કામ) ઇચ્છા ત્યાગ કર્યા વિના મનુષ્યને શાંતી મળવાની નથી. અને ઇચ્છાનો ત્યાગ એજ પાપનો નાશ. પણ ઇચ્છાનો ત્યાગ એ કેવળ આત્મનીષ્ઠ-આત્માનો આશ્રય કરનારથીજ બની શકે છે. આવી સ્થીતિમાં આત્મરત થવા કોણ ન ઇચ્છે ? सर्वारम्भा हि दोषेण (અ૦ ૧૮ શ્લો૦ ૪૮) એ વચનમાં કહયા પ્રમાણે સર્વ કર્મ-આચારમાં દોષ રહેલોજ છે અને તેવાં કર્મ અને

આચાર માટે વળી પાપપુન્યના વીભાગ મનુષ્યોએ ધારજ્યા છે. આ અંધ પરંપરા—કેવી—કારણ જ્યારે મુળમાંજ કર્મ અને આચાર પોતેજ દોષથી ભરેલા છે તેમા અમુક કર્મ અગર અમુક આચાર પુણ્યમય કે પાપમય એ વીચાર સરણી બરાબર નથી કારણ દોષથી ભરેલ કર્મ અને આચારમાથી પુન્ય કે પાપ નીકળે તે પણ દોષના પટવાળાંજ સમજવા

માટે આ બધામા કેવળ અનર્થંજ સંસારમા ભરેલો છે અને તેવા અનર્થને લક્ષમા લેતા દરેક મનુષ્યે આત્મનીષ્ઠ થવુ એજ અનર્થમાથી નીકળવાનો એકજ માર્ગ છે

ત્રીજો અધ્યાય વીશેષત કર્મયોગના પ્રતિપાદનાર્થે ઉભો થયો પરંતુ તે ત્રીજો અધ્યાય બીચારો પ્રમાણીક અને સત્યવક્તા હોવાથી તેના અંતમા છેવટના ભાગમા છેવટના શ્લોકોમા ત્રીજા અધ્યાયને પણ કહેવુ પડયુ કે આત્માજ એકલો શરણે જવા યોગ્ય છે અને મનુષ્ય આત્માને શરણે જાય ત્યારેજ અવિદ્યા—કામ—કર્મ એ ત્રીપુળથી તેને છુટકારો મળે—

આ રહસ્ય ત્રીજા અધ્યાયે છેવટ છેવટ ખુલ્લું કર્યુ

હવે કર્મ કરવુ જોઇએ તત્ત્વજ્ઞાનીએ પણ કર્મ કરવું જોઇએ ત્યારે અજ્ઞાનીએ તો તે કર્મ જોરશોરથી કરવુ જોઇએ એવો જો ભગવાનનો કર્મયોગનો સીદ્ધાંત હોત—એવું જો કર્મયોગનું રહસ્ય ત્રીજા અધ્યાયનું હોત તો અને અર્જુનને ગળે તે સીદ્ધાંત ઉતર્યો હોત તે તો અર્જુન ત્રીજા અધ્યાયના અંતેજ બોલી દેત કે करिष्ये वचनं तव—અને યુદ્ધ માટે તૈયાર થઈ જાત

આ ત્રીજો અધ્યાય પુરો થતાં પ્રવૃત્તિ નિવૃત્તિ ઉપર સર્વ પ્રકારનો ઉપદેશ પુરો થયેલો ગણાય તેથી બીજુ કંઈ પણ વધારે કહેવાપણું—વધારે ઉપદેશ કરવા-પણું ભગવાનને પણ રહ્યું નહોતું અને કોઈ પણ ગ્રંથ પ્રાચીન પદ્ધતી પ્રમાણે સમાપ્ત કરતી વખતે જે ઉપદેશ પરંપરા અથવા સંપ્રદાય ક્રમ ગ્રંથના પ્રામાણ્ય—રક્ષણાર્થે કહેવો પડે છે—તે શીષ્ટાચાર પણ ભગવાને ત્રીજા અધ્યાયના અંતે કરી લીધો

અને અધ્યાય ૪ ના શ્લોક ૪ માં અર્જુનનો જે પ્રશ્ન છે તેથી સંપ્રદાય સ્મરણ એ ચોથા અધ્યાયના આરંભે કરે છે પરંતુ ખરી રીતે જો અર્જુનનો પ્રશ્ન અધ્યાય ૪ શ્લોક ૪ મા જણાવેલો ન હોત તો ચોથા અધ્યાયના શરૂઆતના ત્રણ શ્લોકનું સંપ્રદાય સ્મરણ એ ત્રીજા અધ્યાયના અંતના છેલ્લા શ્લોકો ગણાત

ચોથા અધ્યાયમાં પણ કર્મયોગ અને જ્ઞાન યોગ એજ વીષય છે. આપણે હવે તે વીષયનો વીચાર કરીશું પણ તેમ કરતા પહેલા એક સાધારણ બાબતનો વીચાર પ્રથમ કરી લઇએ. ચોથા અધ્યાયના પહેલા ત્રણ શ્લોકમા યોગ એ એક શબ્દ આવેલો છે અને તેની પાછળ इमम् એ દર્શક સર્વનામ વપરાએલું છે ભગવાન કહે છે કે આ યોગ મે પ્રથમ સૂર્યને કહ્યો આ વાકમાં ભગવાને "આ યોગ" એવો શબ્દ વાપર્યો છે તે કયા યોગ માટે વાપરેલો હોવો જોઇએ ? એટલે તુરત પાસેના ત્રીજા અધ્યાયમાં કહેલા "કર્મયોગ" માટે તે શબ્દ વાપર્યો છે કે ત્રીજાના પહેલાના બીજા અધ્યાયમાં જણાવેલ 'સાંખ્યયોગ" અને ત્રીજા અધ્યાયમા જણાવેલ "કર્મયોગ" મળી બે પ્રકારના યોગ માટે—ભગવાને "આ યોગ" એવો શબ્દ વાપર્યો છે ? એવો કદાચ કોઇને શંશય થાય તો તેનો ખુલાસો એ છે કે સૂર્ય, મનુ, ઇક્ષ્વાકુ ઇત્યાદી રાજર્ષિઓને ભગવાને જે યોગ કહ્યો હતો તે. પરંતુ તે

કયો યોગ કહ્યો હતો તે જાણવા આપણી પાસે કંઈ સાધન મોજુદ નથી. પરંતુ ભગવાન પોતે કહે છે કે જે પરમ રહસ્ય મેં સૂર્ય મનુ ઇક્ષ્વાકુ—વીગેરે રાજર્ષિઓને કહેલું તેજ રહસ્ય હું તને કહું છઉં.

આ સ્થીતિમાં ભગવાને ચોથા અધ્યાયની શરૂઆત પહેલાં ત્રણ અધ્યાયોમાં અર્જુનને જે જે સંભળાવ્યું છે તે તપાસતાં આપણને એમ પ્રત્યક્ષ દેખાય છે અને તે એ કે—

એક તો "સાંખ્યયોગ" બીજો "કર્મયોગ" એવો બે પ્રકારનો યોગ ભગવાને કહ્યો છે, અને તેવી સ્થીતિમાં ઉપર જણાવેલ સૂર્ય વીગેરે રાજર્ષિઓને પણ તેવોજ યોગ ભગવાને કહેલો હોવો જોઇએ એવો ચોક્કસ અભિપ્રાય આપણે બાંધી શકીએ છીએ. વળી બીજા અધ્યાયને "સાંખ્ય યોગ" એવું નામ જો કે અપાએલું છે તો પણ તે બીજા અધ્યાયમાં પણ "સાંખ્યબુદ્ધિ" 'અને" "કર્મયોગ બુદ્ધી" એવા બે વીષયો ચર્ચાએલા છે. અને ત્રીજા અધ્યાયને "કર્મયોગ" એવી સંજ્ઞા આપવા છતાં તેમાં તો સાંખ્યયોગથી કર્મયોગનો અંત આવે છે એમ દર્શાવેલું છે.

મુદ્દો એજ કે "આ યોગ" એટલે કેવળ કર્મ યોગજ એવો અર્થ લેવાનો નથી પરંતુ કર્મયોગ અને સાંખ્યયોગ એ બન્નેનાં સમુચ્ચયરૂપ તે યોગ એવોજ અર્થ ખરી રીતે સંભવે છે—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ।
(અ૦ ૩ શ્લો૦ ૩)

એ વાકયનો વીચાર કરતાં ઉપર જણાવેલ શંકા લેશ માત્ર પણ રહેતી નથી. અર્થાત પૂર્વે ભગવાને જ્ઞાન યોગથી સાંખ્યનીષ્ઠા અને કર્મયોગથી કર્મનિષ્ઠા એવી બે પ્રકારની જે નિષ્ઠા કહેલી છે તેની સાથે इमं विवस्वते (અ૦ ૪ શ્લો૦ ૧) એ શ્લોકનો બરાબર મેળ પડી જાય છે. જો કે આ ચર્ચા એ કંઇ બહુ મહત્વનો ભાગ નથી તેથી આટલેથીજ તે ચર્ચા સમાપ્ત કરીએ છીએ અને હવે આપણે આગળ વીચાર કરીએ.

આ ચોથા અધ્યાયમાં અર્જુનના પ્રશ્ન ઉપરથી ભગવાને પોતાના પરમેશ્વરત્વની અને અવતારીત્વની વાત કહી. અને તેમ કહેતાં કહેતાં સાથે સાથે એમ પણ સૂચન કર્યું કે અગાઉ થઈ ગએલ મુમુક્ષુ પુરૂષો સૂર્ય મનુ-ઇક્ષ્વાકુ ઇત્યાદીએ જેવી રીતે કર્મનું આચરણ કર્યું છે તેવી રીતે વર્તમાન અને ભાવી મુમુક્ષુઓએ પણ કર્મનું આચરણ કરવું જોઇએ અને આવો ઉપદેશ અર્જુનને ૪થા અધ્યાયના ૧૫ માં શ્લોકથી પહેલીજ વાર ભગવાને કર્યો કે—

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतं।

આ શ્લોકના ભાવાર્થ માટે મહાન વીદ્વાનોએ ઘણીજ વીદ્વતાપૂર્વક ચર્ચા કરી છે તે પૈકી ભગવાન ભાષ્યકાર શ્રીમદ્ આદ્ય શંકરાચાર્યની ચર્ચા જોઇએ. તો ભગવાનનો ખાસ ભારવાચક શબ્દ ઉપરના શ્લોકમાં कुरु कर्मैव "તું કર્મ કર" એવો છે. ભગવાન શંકરાચાર્યે એ શબ્દનો ખુલાસો કરીને એમ જણાવ્યું છે કે આ શબ્દથી શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને અર્જુનને એમ સ્પષ્ટ કહ્યુ છે કે હે અર્જુન તું સ્વસ્થ-ચૂપ બેસીશ મા. સંન્યાસ પણ લે જેમાં કર્મજ કર ને કર્મ કરજ. તને આત્મજ્ઞાન ન હોય તો ચિત્ત શુદ્ધિ અર્થે કર્મ કર તું તત્વવેત્તા હો તો લોક સંગ્રહાર્થે કર્મ કર".

(અપૂર્ણ)

શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(લે૰—વામનરાવ પ્રા૰ પરેશ બી. એ એલ. એલ. બી. (બોમ્બે) એલ સી. પી (લંડન)
એમ. આર. એલ ડી. (લંડન) સૉલીસીટર.)

[અનુસંધાન ગતાંક પૃ૰ ૬૬૯ થી આગળ]

પ્રકરણ છઠ્ઠું.

કારણ દેહ નિરસન.

ન જાણવું તે જ્ઞાનાભાવ[1],
છે તે મિથ્યા ભ્રમભાવ;
રૂપના સર્વ અવયવ
છાયાને જેમ હોય છે. ૧.

પોતે પોતાનો જ્ઞાતા,
સદૈવ છે સર્વથા;
ન જાણ્યાની અવસ્થા,
કહેનાર નહીં તો ક્યાંથી ? ૨.

પોતે પોતાણે જાણે ખરે,
નહિ અજ્ઞાન તો એ અરે[2] ?
એ અજ્ઞાન અલગ ખરે,
કહો કોણ નિરખે ? ૩.

નથી જાણતો એવું જાણ્યું,
ન-જાણનારે નથી જાણ્યું;
માટે ન જાણ્યુ જેણે જાણ્યું,
તેજ આત્મા. ૪.

પોતાનું જાણવાપણું,
ગ્રહે છે અજાણવાપણું;
તેથી આ ભૂલવાપણું,
થાય છે જેને તેને. ૫.

પોતે પોતાને ના જાણીએ,
તેને અજ્ઞાન એ કહીએ;
અજ્ઞાન જાણ્યું કહેવાએ,[3]
ને અજ્ઞાન ભ્રાંતી ટરે. ૬.

જો જાણીએ અજ્ઞાનને,
તો અજ્ઞાન મિથ્યા બને;
ને પછી જે ઉરે તેને,
કહો જ્ઞાન યા આત્મ પ્રભા. ૭.

પોતાને ન જાણે તે હું,
એ વાત જાણે છે તે તું;
તો કેવળ ન જાણવામાં હું,
ક્યાંથી સમાયો ?[4] ૮.

તું આત્મા સ્વયં પ્રકાશ,
ત્યાં ન જાણવુ એ મિથ્યાભાસ;
તે ટળતાં તુ અવિનાશ,
સ્વતઃ સિદ્ધ. ૯.

૧=જ્ઞાન+અભાવ અજ્ઞાન જેને હવે પછી અજાણપણું પણ કહેવામાં આવશે

૨=સહુ પોતપોતાને જાણે છે છતાં અમુક અમુક તે નથી જાણતો (દા. ત. ઊંઘમાં ચ૮ સુષુપ્તીમાં) એમ કહે છે તે

૩=એ નથી જાણતા એવી જાણવાને જાણ થાય છે તે જ્ઞાન સ્વરૂપનું જ્ઞાન છે તેથી તે અજાણપણું, અજ્ઞાન મિથ્યા છે

૪=પોતાને નથી જાણતો એ જાણનાર તું જ છે તો તું ન જાણવામાંજ એટલે કેવળ અજાણમાં અજ્ઞાનમાંજ છે એમ શા માટે માનવું ?

એ સર્વને જે જાણે,
પોતાને શું ન તે જાણે ?
જાણવું પણ ન—જાણને,
હોય છે કે નહીં ? ૧૦.
એ અજ્ઞાન છે કારણ,
સ્થૂલ સૂક્ષ્મનાં નક્કી જાણ;
સ્થૂલ સૂક્ષ્મ કાર્ય જાણ,
એ અજ્ઞાનનાં. ૧૧.
સ્થૂલ દેહની જાગૃત સૃષ્ટિ,
સૂક્ષ્મ દેહની સ્વપ્ન સૃષ્ટિ;
કારણની સુષુપ્તી સૃષ્ટિ,
કહીશું સર્વે. ૧૨.
મન પ્રવર્ત ઇંદ્રિય દ્વારે,
બાહ્ય વિષયોમાં વિચરે;
અવસ્થા, જાગૃતી ત્યારે,
જાણવી નક્કી. ૧૩.
અંતરના તે આભાસથી,
મન કલ્પના કરે મથી[5];
સ્વપ્નાવસ્થા ખરી ત્યારથી,
રચાય છે ત્યાં. ૧૪.
પણ બે એ અવસ્થાની તો એ,
જાણ એકની એક એ;
જાણની જવ જાણ જાએ[6],
નવ સુષુપ્તી ઘન અજ્ઞાન. ૧૫.

અજાણજ તે જાણ છે,
પણ ભાવ ઉલટો ધરે છે[7]
અજ્ઞાન વશ પોતે છે,
ના સ્મરે તેથી પોતાને. ૧૬.
પોતે પોતાને વિસરી ગઈ,
ને ભાસ પ્રપંચનો કલ્પતી થઈ,
'હું જીવ' ભૂલે ભટકાઈ,
સુષુપ્તી એ. ૧૭.
ફીટે અજ્ઞાન તે જ્યારે,
પ્રકટ સ્વયંભૂરૂપ ત્યારે;
મિશ્રણ ખાખ થાતાં ઉરે,[8]
જયમ સુવર્ણ શુદ્ધ. ૧૮.
અવસ્થા માત્રના અભિમાનની,
છે વ્યવસ્થા જુદાં નામની[9];
વ્યવસ્થા "પ્રાજ્ઞ" નામની,
કારણ દેહની તેવી છે. ૧૯.

ઇતિ શ્રી કારણ દેહ નિરસન નામ
ષષ્ઠમ પ્રકરણમ્ સંપૂર્ણમ્

૫=પ્રયત્ન યા મહેનત કરી.

૬=એ જાણ જ્યારે ઊંઘમાં શાંત થઇ જાય ત્યારે.

૭=જાણ (જ્ઞાન) પોતેજ અજાણ રૂપ ધારણ કરે છે.

૮=જેમ સોનીની ભઠ્ઠીમાં હિણકટ સોનાનો ભેળ (કચરો) બળી જાય એટલે શુદ્ધ સોનું રહે છે તેમ.

૯=જાગૃત તથા સ્વપ્નાવસ્થાના અભિમાની અનુક્રમે વિશ્વ તથા તૈજસ છે તેમ કારણનો અભિમાની 'પ્રાજ્ઞ' છે.



ભારતીય સ્વધર્મ

(લે૦—શ્રી રૂષિરામજી)

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ॥

—गी० ३।३५

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण. परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

—गी० १८।४७

મતલબ કે હર હાલતમા સ્વધર્મનું આચરણ જ શ્રેયસ્કર છે. અહિ સ્વધર્મનો મતલબ કર્તાના "आत्म प्रकाश" સંબંધે છે વાસ્તવિકપણે જોતા તો માનવ સ્વધર્મ સાચો છે પણ નહિ. આ મહાન ધર્મનો પ્રકાશ જો કદાચ આ પૃથ્વી ઉપર ચમક્યો હોય તો તે ભારતનાજ ધર્મક્ષેત્ર, સમષ્ટિ હૃદયાકાશ માજ. શાન્તિ, કાન્તિ, આનંદ, ચેતન, જ્ઞાન, વિજ્ઞાન, સદાચરણ વગેરે તે આત્મ પ્રકાશનાંજ અંગ છે. જેણે ભારતીય હૃદય અને ભૌતિક પ્રકૃતિને બદલીને દિવ્ય બનાવ્યા હતા અને આ શાશ્વત જીવન તથા સૃષ્ટિનેજ સ્વર્ગભૂમિ બનાવી હતી. જ્યાં સુધી મનુષ્યને આત્મ પ્રકાશ—આત્મ જ્ઞાન થતું નથી ત્યા સુધી તે પોતાને શરીર, મન, બુદ્ધિ વગેરે માને છે અને અનંત માયિક આસુરી ધર્મોનેજ સ્વધર્મ માનીને આ જીવન અને આ સૃષ્ટિમા પાળયા કરે છે આધુનિક સૃષ્ટિ, તેના નિયમ કાયદા, તેની શાખાઓ જેટલી ફેલાયલી છે-

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥

—गी० १५।२

બીજી પણ આ ફેલાયલા આધુનિક અશ્વત્થ (અ=નહિ+શ્વ=કાલ+ત્થ=સ્થિર=જે કાલ સુધી ન ટકે=અનિત્ય) વૃક્ષની અનંત શાખાઓ—જુઓ ગીતા અ૦ ૧૬ શ્લોક ૭ થી ૨૨ સુધી

એણે આજ પૃથ્વીમા સર્વત્ર પોતાનો પ્રભાવ ફેલાવી દીધો છે—ભારતના 'आत्मस्वभाव' મા પણ એજ વૃક્ષની શાખાઓ ચંદનના વૃક્ષનીજ પેઠે પોષવામા આવી રહી છે. તેમના ફલ, અને શાખાઓજ તેના જીવનમાં રાજ કરી રહી છે અને તે તેમને ભોગવી રહ્યો છે પરંતુ યોગેશ્વર ભગવાન શ્રી કૃષ્ણ ભારતના સ્વભાવ અને ધર્મમાં તેમની પ્રતિષ્ઠા થવા દેવાનું ચાહતા નથી. તેથી તો તેમણે—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

—गी० ४।७८

હલકી શ્રેણીનું માયિક જીવન પણ સ્વિકાર કરીને દિવ્ય જન્મ અને કર્મનો સર્વોત્તમ આદર્શ દેખાડ્યો છે તે નથી ચાહતા કે ભારતના દિવ્ય આત્મ સ્વભાવમા આસુરી અને માયિક અજ્ઞાન સૃષ્ટિની પ્રતિષ્ઠા થાય. ભારતની આ જાગૃતિ અને જે કાંઈ ઉન્નતિ તેણે પ્રાપ્ત કરી છે—તેમનીજ શક્તિ અને કૃપા છે આ જાગૃતિ સ્વપ્ન નથી ભારતિય જીવનમાં જેટલું કંઈક—થોડા ઘણા દોષ, ત્રુટિઓ, અપૂર્ણતાઓ, દુ ખમય જીવન આદિ જે કાંઈ—દેખાઈ રહ્યુ છે તેણે સમજવુ જોઈએ કે મારા એ સ્વધર્મ નથી અને એ તો યુગમા પણ છે જ નહિ

સ્વધર્મની મહત્તાને ભૂલી જઇને તેણે પરધર્મજ ગ્રહણ કર્યો છે. જેટલા ખેલ—શાખાઓ જણાઇ રહી છે તે સૌને એણે આજ દ્રષ્ટિથી જોવી પડશે. ચાહે તેમનું બાહ્ય રૂપ સુવર્ણના ઘડા જેવું ચમકતું કેમ ન હોય. પણ તેણે સમજી લેવું જોઇએ કે તે સુવર્ણ પાત્રમાં પણ ઝેરજ ભરેલું છે.

હવે તેણે શું કરવું જોઇએ? ફરીથી આત્મવિકાસ, સ્વધર્મ પ્રાપ્તિ અને ભગવત સૃષ્ટિ નિર્માણ માટે માયિક વિકાસ સૃષ્ટિથી વિરૂદ્ધ માર્ગનું અનુસરણ કરવું જોઇએ અને હૃદયમાં જે અહંકાર રાજ્ય કરી રહ્યો છે કે મારીજ શક્તિ, જ્ઞાન આદિથી આ સર્વ થયું છે તેનો ત્યાગ કરી ભગવાન શ્રી કૃષ્ણનો યોગ સાધન અહિંથીજ પ્રારંભ કરવો જોઇએ. જ્યાંથી કે અર્જુને અહંકારનો ત્યાગ કરીને પ્રારંભ કર્યો—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥
—गी० २।७

સમગ્ર અહંકારનો ત્યાગ કરી માનવ હૃદયવિહારી પરમ ગુરૂનાએ ગુરૂ ભગવાનનું શિષ્યત્વ ગ્રહણ કરવાને માટે સર્વાંગથી હૃદય ખુલ્લું કરી દેવું જોઇએ અને યોગેશ્વર ભગવાનના યોગમાં ભાગ લેવો જોઇએ—આત્મજ્ઞાન અને તેના સ્વભાવોનેજ જીવનમાં સ્થાન આપવું જોઇએ.

આજ સુધી જે જીવન સ્વધર્મરૂપે માનીને મોહ સૃષ્ટિનું પોષણ, નિર્માણ કરવામાં આવ્યું છે, ભગવાનના આત્મજ્ઞાન વિષયક ઉપદેશથી તેને ભૂલી જવું પડશે. હવે "मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीमासुरीं" પ્રકૃતિનો આશ્રય નહિં આશ્રય નહિ ગ્રહણ કરવો જોઇએ.

ભગવાનની કડક વાણી—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥
—गी० ७।१५

સાંભળીને, જલદીમાં જલદી તેમની શરણાંગતિ ગ્રહણ કરીને, તેમના અધ્યાત્મ યોગ અને પ્રકાશને પ્રાપ્ત કરી તેમની મહતી ઇચ્છા પૂર્ણ કરવી જોઇએ, કેમકે તે સિવાય તે (માનવ શિષ્ય) અર્જુન સદા તેમનો સુહૃદ સાથી હોવા છતાં પણ તેમને. ન ઓળખી શક્યો. (જુઓ ગી૦ અ૦ ૧૧।૪૧, ૪૨) ન તો તેનું સાધન પણ પ્રારંભ કરી શક્યો.

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥
—गी० १५।३

જેનું યથાર્થ રૂપ જોવામાં નથી પ્રાપ્ત થતું, જેના આદિ, મધ્ય અને અંતનો પત્તો નથી લાગતો, તે બહુ નીચે ઘણે ઉંડે સુધી ગયેલા અશ્વત્થ વૃક્ષનાં મૂળને કાપવાનું દૃઢ અસંગ (અસહયોગ) કઠણ શસ્ત્ર ભગવાન આપી ગયા છે. તેમનેજ અપનાવી ગીતાની સાચી સાધનાઓનું આધ્યાત્મિક જીવનમાં સંગઠન કરી બ્રહ્મસાક્ષાત્કાર કરવો તથા આ આસુરી સૃષ્ટિનો અંત લાવીને ઇશ્વરી સૃષ્ટિનેજ તેની અંદર ખેંચી આણવી જોઇએ. ભગવાનની મહા શક્તિઓ, તેમનું યૌગિક કર્મ કૌશલ અહંકાર માત્રનો નાશ કર્યા વગર રહેશે નહિ.

सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
—गी० १८।६६

પરંતુ—

"मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
यदहंकारमाश्रित्य न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥"

ॐ શાન્તિઃ શાન્તિઃ શાન્તિઃ

કળિયુગમાં ભક્તિ માહાત્મ્ય

(લે૦—શ્રી વાસુદેવજી શાસ્ત્રી તૈલંગ, પુ૦ વે૦ વિશારદ)

કળિનાં સર્વોત્કૃષ્ટ આદ્ય દસ હજાર વર્ષોમાં ત્રિવિધ ભક્તોની ઉત્પત્તિ થાય છે તેમાં પ્રથમ તેઓ છે જે કર્મણા, મનસા, વાચા પ્રભુભક્તિમાં તલ્લીન રહે છે બીજા તેઓ છે જે કુળ પર પરાથી પ્રાપ્ત ભગવદ્ ધર્મનું પરિપાલન કરતા ચાલ્યા આવે છે અને ત્રીજા તેઓ છે કે જે સદ્‌ગુરુના વાક્યો ઉપર વિશ્વાસ રાખીને ભગવદ્ ધર્મમાં સમ્મિલિત થઈ જાય છે તેથી ભગવદીયતાને કારણે આ ત્રણ પ્રકારના ભક્તો ઉપર કળિનો પ્રભાવ પડતો નથી જે જીવ ભગવાનનો આશ્રય ન લઈને કળિના કુચક્રોમાં ફસાઈ જાય છે, તે અનંત કાળ પર્યંત નરકનું દુઃખ ભોગવે છે તેમનો ઉદ્ધાર ઈશ્વર કૃપાકટાક્ષ વગર થઈ શકતો નથી એટલા માટે શાસ્ત્રાજ્ઞા છે કે—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ कलर्दोषनिधे ॥

એટલાજ માટે તો મહાપ્રભુ શ્રી વલ્લભાચાર્યજીએ કહ્યું છે—

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ कृष्ण एव गतिर्मम ।

વેદશાસ્ત્રાનુસાર જીવોને ભક્તિ દ્વારા કલ્યાણ માર્ગ પર આરૂઢ કરાવવા માટે શ્રી વલ્લભાચાર્યજી આદિ વિભૂતિયો દ્વારા જે ભક્તિ માર્ગની વિજય પતાકા ફરકાવવામાં આવી, એવો સ્વર્ણ સમય આગાઉ કદિ પણ પ્રાપ્ત થયો નહોતો, કળિમાં તો આવો સર્વોત્તમ ભક્તિ માટે અનુકૂળ સમય કદિ આવ્યો નથી અને આવશે નહિ

યજ્ઞ યાગ, જપ, તપ, યોગ, સમાધિ આદિના અનુષ્ઠાનની વસ્તુઓ કળિ દૂષિત થઈ જવાથી, અર્થાત્ વેદ વિહિત પદાર્થ યથાયોગ્ય નહિ મળવાથી એટલે કે એ સૌના અપક્વ બની જવાથી હવે એકમાત્ર સરળ સાધ્ય ભક્તિજ કલ્યાણ માર્ગનું સાધન રહી જાય છે એટલે એવા વિકટ સમયમાં શ્રી હરિનો આશ્રયજ લૌકિક પારલૌકિક ફળદાતા સિદ્ધ થઈ જાય છે

આ પ્રકારે આ યુગમાં જો ભક્તિજ એક પરમ પુરૂષાર્થ સાધન માનવામાં આવ્યું, તો વૈદિક વર્ણાશ્રમ ધર્મનું આચરણ નહિ કરનારા ભક્તોને શાસ્ત્રોક્ત પ્રાયશ્ચિત લાગે છે કે નહિ, અગર લાગે છે તો ભક્તિની પરમ પુરૂષાર્થતા શું રહી અને નથી લાગતું તો તેનું કારણ શું, ઈત્યાદિ જ્યારે શંકા ઉઠે છે, તો તેનું સમાધાન વેદ, ગીતા, ભાગવત, વ્યાસ સૂત્ર આદિ ચતુષ્ટય પ્રમાણોના સિદ્ધાન્તોનો વિચાર કરવાથી સહેજે પ્રાપ્ત થઈ જાય છે એનો નિર્ણય સર્વ શાસ્ત્ર સંદેહવારક શ્રી ભાગવતના એકાદશ સ્કંધના અધ્યાય પાંચમા કર્યો છે—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां
न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥

જે મનુષ્ય સર્વાત્મ ભાવથી સર્વ પરિત્યાગ પૂર્વક શરણાગત વત્સલ ભગવાનનું શરણ સ્વિકારે છે, તેને માટે કોઈ પણ લૌકિક વૈદિક કર્મ કરવાનું બાકી રહી જતું નથી, તે મનુષ્ય દેવ, ઋષિ, પિતા આદિ કોઈનો ઋણી રહેતો નથી કેમકે સર્વ મુળભૂત શ્રી ભગવાનના પ્રસન્ન થવાથી તેમના અંશરૂપ સમસ્ત દેવ આદિ પ્રસન્ન થઈ જાય છે

શાસ્ત્રોમાં કહ્યું છે—

'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते।'

'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन॥'

જ્ઞાનનિષ્ટ પરમભક્ત કહે છે—

संध्यावन्दन भद्रमस्तु भवते भो स्नान तुभ्यं नमः।
हे देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम्॥
यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः।
स्मारं स्मारमघं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे॥

વેદમાં જે કાંઈ છે, વેદ જેનું પ્રતિપાદન કરે છે કે 'अस्तीत्येवोपलब्धव्य' અને જ્યારે તે અચિન્ત્ય ઇશ્વર અમને સર્વત્ર મળી રહ્યા છે અર્થાત્ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" આ પરમ વાક્યની યથાર્થતા અનુભવી રહ્યા છીએ, તો પછી લૌકિક વૈદિક માર્ગની શું મતલબ

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥

જો એ ચાર માઇલ ઉપર ચારે તરફ સ્વચ્છ, મીઠું પાણી ભરપૂર ભરાએલું છે તો પછી દોરી લોટો લઈને કુવો શોધવા નીકળે એવો કોણ હોય એવીજ ભક્તની દશા પણ સમજવી.

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि॥

શ્રી ભગવાન કહે છે—

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

અર્થાત્ ભગવત્ કથાના શ્રવણ, મનન આદિ દ્વારા શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થયા પછી જ્યાં સુધી પૂરેપૂરી લોક વિરક્તિ ન આવી જાય, ત્યાં સુધીજ ભક્તિ (અને લોક વિરક્તિ) ના અધિકારીને લૌકિક વૈદિક કાર્યોની આવશ્યકતા છે, પૂર્ણ ભક્ત કે પૂર્ણ વિરક્ત થઈ ગયા પછી મનુષ્યને કોઇ બંધન રહેતું નથી.

ભાગવતના—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः॥

ઇત્યાદિ શાસ્ત્ર વચનોથી સિદ્ધ છે કે પૂર્ણ ભક્તને જ્યારે કોઈ પ્રકારનું બંધન નથી તો પછી તેને કર્મ ન કરવાનો પ્રત્યવાય પણ લાગી શકતો નથી. અગર એવા કોઈ દોષ આવે પણ છે તો તેઓ તેનું ભગવદ્ ઇચ્છાજ કારણ માને છે. જેમ ગીતામાં—'ईश्वरः सर्वभूतानां……' 'तमेव शरणं गच्छ…'। અહિં ભગવાન સમજ્યા કે અર્જુન કંઈ બીજાજ ઇશ્વરને ન માની બેસે તેથી ફરીથી કહે છે કે—मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं''અને એથી આગળ.

'अपिचेत्सुदुराचारो' भजते मां……'

આ શાસ્ત્ર વચનોની સંગતિથી એજ તાત્પર્ય નીકળે છે કે ભગવદ્ ભક્ત શાસ્ત્ર મર્યાદા વિરૂદ્ધ કદિપણ આચરણ કરતા નથી અગર ભગવદ્ પ્રેરણાથી કોઇ નિષિદ્ધ કર્મ થઈ પણ જાય છે તો તેનો દોષ તેમને લાગતો નથી. ભગવાન તેને સર્વથા નિવૃત્ત કરી નાખે છે.

આ શાસ્ત્રીય સિદ્ધાન્તથી કળિયુગમાં ભક્તિની મુખ્યતા, અને સર્વ સુલભતા તથા ફળદાયકતા સિદ્ધ થઈ જાય છે. કેમકે—

भक्त्या कृष्णः पुरःस्थितः
भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये।



આશ્રમ ધર્મ અને બ્રહ્મચર્ય

(લે૦—મનુભાઈ)

સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ વખતે બ્રહ્માએ પાંચ માનસ પુત્રોનું સર્જન કર્યું તેમાંના ચારે નિવૃત્તિ માર્ગ લીધો ને એક જણે પ્રવૃત્તિ માર્ગ સ્વીકાર્યો નિવૃત્તિ માર્ગ લેનારા ચાર માનસ પુત્રો, સનક, સનંદ, સનાતન અને સનતકુમાર બાલ્યકાળમાંજ સંસારનો ત્યાગ કરી વનવાસી થઈ આત્મચિંતન કરવા લાગ્યા. પ્રવૃત્તિ માર્ગને પસંદ કરનાર મનુએ સંસારને સંભાળ્યો તેના વેલાથી આ આખું યાવત્ જગત–વિસ્તરેલું છે

સંસારમાં પ્રવૃત્તિ કરતા છતાં મનુષ્ય સુખ, શાંતિ ને આબાદી અનુભવે અને અંતે પરમ પદ મેળવે તે માટે આપણા પૂર્વજોએ સર્વજ્ઞ બુદ્ધિથી વિચારી, ઘણાજ અનુભવ અને ગૂઢ ચિંતન પછી સંસારની ઉન્નતિ માટે ચાર આશ્રમ ધર્મની વ્યવસ્થા કરેલી આથી ચોવીસ વર્ષના કાળ દરમિઆન આર્ય સંતાનો તત્વદૃષ્ટા અને પૂજનીય ગુરૂની પાસે રહી જીવનના પાયાનું ઘડતર કરતા. પવિત્ર વાતાવરણ, એકાંતિક જીવન અને બ્રહ્મચર્યના પ્રતાપથીજ બાળકો વિવેકી, શરીર અને મનથી તંદુરસ્ત, કુશાગ્ર બુદ્ધિવાળા અને આત્મિક ઉન્નતિની ઝંખના કરનારા મહાન તેજસ્વી થતા. આ ચોવીસ વર્ષના કાળને "બ્રહ્મચર્ય આશ્રમ" એવું નામ આપ્યું હતું જ્યારે આ આશ્રમની બધી ક્રીયાઓનું પૂર્ણ રીતે પાલન કરી, બ્રહ્મચર્યની કઠણ પરીક્ષામાંથી પાસ થતો ત્યારે તે ગૃહસ્થ ધર્મનો અધિકારી બનતો પ્રથમના આશ્રમમાં પ્રાપ્ત કરેલા વિવેક અને વૈરાગ્યથી, બ્રહ્મપ્રાપ્તિનો નિરંતર ખ્યાલ રાખી તે યુવક ગૃહસ્થ ધર્મનું પાલન કરતો. આ આશ્રમ પૂર્ણ કર્યા પછી વાનપ્રસ્થ આશ્રમમાં પ્રવેશ થતો અને સમ્યક પ્રકારથી ત્યાગની તૈયારી કરતો આ તૈયારી પૂરી થતા સંન્યાસ આશ્રમની દીક્ષા ગ્રહણ કરી, દેહાભિમાન સહીત બાહ્ય વસ્તુઓનો પરિત્યાગ કરી મનુષ્ય પરમાત્મામાં લીન થતો

પરંતુ આજની દશા એથી ઉલટી છે કાળ અને રાજ્યોના પરિવર્તનથી એ પ્રાચીન પ્રથા નાશ પામી અને ચાપના લીસોટારૂપે રહેલી છે ઘરમાં મોટી ઉમરના માણસોના જીવન વિષયી, વિલાસી અને દાંભિક હોવાથી બાળકો ગર્ભમાંથીજ કળીની વિદ્યા શીખે છે, કુદરતી સૌંદર્ય અને નિર્દોષ બાળ ક્રીડા ખેલવાને બદલે કુચારી અને દંભિક વાતા વરણમાં સપડાય છે આમ મોટી ઉમરે જોવામાં આવતું ભ્રષ્ટમતિનું બીજારોપણ બાલ્યકાળમાં થાય છે, અને મોટા થતા શારીરિક–માનસિક સંપત્તિને ગુમાવી નિર્બળ સ્વાર્થી ને ગુલામી માનસ મેળવે છે આ દુઃખ ને યાતનામાંથી, આત્યન્તિક નિવૃત્તિ માટે, આપણે આપણી પૂર્વ પ્રથા ઊપર ગયા વિના છૂટકોજ નથી આપણે આજ જઈએ કે કાલ જઈએ એનો આધાર આપણી ઊપર રહે છે પણ જવાનું તો ચોક્કસ છે જ

હવે આપણે બ્રહ્મચર્ય, એનું પાલન અને એના લાભ લાભ વિષે વિચાર કરીએ બ્રહ્મચર્યના પાલન વડે દેવો મૃત્યુને જીતી શક્યા હતા કે બ્રહ્મચર્ય પાલન એટલે વીર્ય રક્ષા શુક્ર એ શરીરનો રાજા છે નીચેનો શ્લોક વીર્યની કીંમત આંકે છે —

मरणम् विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्।
तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुत विन्दुधारणम्॥

અર્થ—બિન્દુ એટલે શુક્ર (વીર્ય) એના પતનથી મૃત્યુ છે, એના ધારણથીજ જીવન છે. તો પ્રયત્નપૂર્વક વીર્યનું સંયમન કરવું જોઇએ.

આપણે જે ખોરાક ખાઇએ છીએ તેમાંથી રસ, રક્ત, માંસ, મેદ, અસ્થિ, મજ્જા, અને શુક્ર એવી સાત ધાતુઓ ઉત્પન્ન થાય છે. આ સાતે ધાતુઓનું સારરૂપ તત્વ તે "ઓજસ" છે આ ઓજસ તત્વ જીવનનો આધાર છે. આથી માણસમાં ઉત્સાહ, પ્રતિભા, ધૈર્ય, લાવણ્ય અને સુકુમારતા રહે છે. ઉપર જણાવ્યા મુજબ ખોરાકનું સૌથી પ્રથમ પરિણામ રસ થાય છે, રસમાંથી રૂધિર, રૂધિરમાંથી માંસ, માંસમાંથી મેદ, મેદમાંથી અસ્થિ, અસ્થિમાંથી મજ્જા અને મજ્જામાંથી સાતમો પદાર્થ તે વીર્ય થાય છે. ખોરાકનું સારતત્વ તે વીર્ય છે, તે તેજ બની શરીરના અણુએ અણુમાં ચમકે છે.

એક ધાતુ પચ્યા પછી બીજી ધાતુ બનવા માટે પાંચ દિવસ લાગે છે. સાર તત્વ શરીરમાં રહે છે અને પાચનની હરેક ક્રિયામાંથી નીકળેલો નકામો ભાગ મળ, મૂત્ર, પરસેવો, મેલ, નખ, વાળ, વિગેરે રૂપમાં બહાર નીકળે છે. વીર્ય બન્યા પછી ધાતુનું પાચન અટકી જાય છે. આ પ્રમાણે રસથી માંડીને વીર્ય બનતાં પ્રત્યેકમાં પાંચ દિવસ લાગે છે તો છ ધાતુઓનું પાચન થઈ વીર્ય બનતાં એક માસ લાગે. આજે ખાધેલો ખોરાક ૩૦ દિવસે વીર્ય બનવાનો. પાકા એક મણ ખોરાકનું એક શેર લોહી બને છે. એક શેર લોહીમાંથી બે તોલા શુક્ર થાય છે. દરરોજ એક માણસ પાકો એક શેર ખોરાક ખાય તો એક માસમાં ૩૦ શેર ખોરાક ખાઇ શકે. ઉપરના હીસાબ પ્રમાણે ૩૦ શેર ખોરાકનું ૧½ તોલો વીર્ય બને. હવે ધ્યાનમાં રાખવું જોઇએ કે એકજ વખતના સ્ત્રી-સહવાસમાં ૧½ તોલાથી તો ઓછું વીર્ય-પતન થતું નથી. આ પ્રમાણે પુરૂષ અગર સ્ત્રી, સંયમ ન રાખે, અને એક મહીનાની કમાણી એક ક્ષણમાં વેડફે અગર પ્રતિદિન વેડફવાનો પ્રયત્ન કરે તો તેનું દેવાળું નીકળવાને શું વાર લાગે? જીવનનો મુખ્ય આધાર વીર્ય છે. જેમ શેરડીમાં ગોળ અને દુધમાં ઘી વ્યાપક છે તેમ શરીરમાં વીર્ય વ્યાપક છે. જેવી રીતે દુધમાંથી માખણ કાઢવા માટે દુધને અથવા તેનું દહીં કરીને વલોવવું પડે છે અને શેરડીમાંથી રસ કાઢવા શેરડીને નીચોવવી પડે છે તેવીજ રીતે વીર્યના એક બિન્દુ માટે આખા શરીરને વલોવવું પડે છે. ઘી કાઢયા પછી, દુધ સત્વહીન થાય છે ને રસ કાઢયા પછી શેરડી કુચા બની જાય છે તે પ્રમાણે શરીરમાંથી વીર્યનું પતન થતાં શરીર સત્વ વગરનું, નિસ્તેજ, ઢીલું, કમજોર ને કઠોર બને છે, નાડિઓ શિથિલ થાય છે અને મુખારવિંદ ઉદાસીન બને છે. આથી દીર્ઘાયુષ અને શારીરિક તંદુરસ્તિ માટે બ્રહ્મચર્ય એજ સાચું સાધન છે.

હરેક પતિ પોતાની પત્ની તરફથી શુદ્ધ પ્રેમ અને ચારિત્ર્યની ઝંખના કરતો હશે. શુદ્ધ પ્રેમ, ઊંચું ચારિત્ર્ય અને ઐક્ય સંયમથીજ પ્રાપ્ત થાય છે. આ માર્ગ મૂકીને પુરૂષ સ્ત્રીની સાથે ભોગની દ્રષ્ટિથીજ વિલાસ કરશે તો પત્ની પણ વીલાસી અને વિષયીજ થશે. તેમનું ઐક્ય ભોગમાંજ પરિણમશે. અંતે ભોગ એજ પતિ અને ભોગ એજ પત્ની એવા પ્રકારના સંબંધથી જોડાયલાં તેઓ વ્યભિચારી વૃત્તિવાળાં થશે. સમાજમાં થતાં વૃદ્ધ લગ્નો તેનો સારો દાખલો પુરો પાડે છે એક પત્નીના મૃત્યુ પછી બીજી પત્ની સાથેનું લગ્ન તેને ભોગ ન કહીએ તો બીજી શી ઉપમા લાગે. આવા ભોગથી ટેવાયલા મનુષ્યો પોતાનું, કુટુંબનું, તેમજ

સમાજનું અકલ્યાણ કરી આ પ્રકારમાંજ અદ્રશ્ય થાય છે પતિના ખોટા આચરણથી ઇન્દ્રિય સુખ ઇચ્છનારી પત્ની પણ લોક-લજ્જાએ થોડા દિવસ ખુણામાં રહ્યા બાદ ભૂતકાળમાં વિલાસ માટે ટેવાયલી વૃત્તિઓને આરામ આપવા માટે શક્ય એટલા બધાજ પ્રયત્નો કરશે પરિણામ દુર્દશા સિવાય બીજું શું હોઈ શકે ! મિત્રો ! સંયમી જીવનજ એક બીજાનો શુદ્ધ પ્રેમ મેળવી શકે છે

ગૃહસ્થને સંતતિ માટે સ્ત્રી સહવાસ કરવાની છુટ આપણાં શાસ્ત્રો આપે છે એ છુટ માટે પણ નિયમો છે એ નિયમોનું પાલન કરવાથી સુપ્રજા પ્રાપ્ત થાય છે

षोडशर्तुं निशा स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशन् ।
ब्रह्मचर्येण पर्वण्याऽऽद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥
— याज्ञवल्क्य

ભાવાર્થ—સ્ત્રીના રજોદર્શનથી સોળ રાત્રી સુધીના સમયને ઋતુકાળ કહ્યો છે તેમાં પ્રથમના ચાર દિવસ અને અમાસ, આઠમ, પૂનમ, અને ચૌદશ એ પર્વણીઓનો ત્યાગ કરીને પુરૂષે સ્વકીય સ્ત્રીનો તે ઋતુકાળની યુગ્મ (બેકી) રાત્રી વિષે સંગ કરવો એ પ્રમાણે વર્તનાર ગૃહસ્થ પૂર્ણ બ્રહ્મચારી કહેવાય છે (પૂર્ણ બ. ઊત)

अमावास्याष्टमी चैव पौर्णमासी चतुर्दशी ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विज ॥—मनु०

ભાવાર્થ—અમાવસ્યા, આઠમ, પૂનમ, અને ચૌદશ, એટલા દિવસો ત્યાગ કરી જે સ્નાતક દ્વિજ ઋતુકાળે સ્ત્રી-સંગ કરે છે તે નિત્ય અસ્ખલિત બ્રહ્મચારી કહેવાય છે

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥
—मनुस्मृति

એ ઋતુકાળમાં નિષેધની રાત્રિઓ ત્યજી છઠ્ઠી, આઠમી, દશમી, બારમી, ચૌદમી અને સોળમી એ યુગ્મ (બેકીની) રાત્રી વિષે અભિગમન કરવાથી પુત્રો ઉત્પન્ન થાય છે અને પાંચમી, સાતમી, નવમી, અગિયારમી, તેરમી અને પંદરમી એ અયુગ્મ (એકીની) રાત્રિ વિષે પુત્રિઓ ઉત્પન્ન થાય છે માટે પુત્રની અપેક્ષાવાળાએ (બેકીની રાત્રીમાંજ) સ્ત્રી-સંગ કરવો

સ્ત્રી ઋતુમતિ થાય તેના પ્રથમ દિવસથી આશરે ૧૨ થી ૧૪ દિવસ સુધીના અરસામાં રજો ગોલ બીજ કોષમાંથી બહાર નીકળી બીજ વાહક નલી કામાંથી ગર્ભાશય આવી જાય છે તે કાળ દરમિઆન ગર્ભાશય મુખ ખુલ્લું રહે છે આ કાળ દરમીઆનજ સ્ત્રી ગર્ભધારણ કરી શકે છે એમ હાલના વિજ્ઞાન શાસ્ત્રીઓ મત ધરાવે છે. પ્રાચીન ઋષિ મુનીઓના ને હાલના વિજ્ઞાન શાસ્ત્રીઓના મતમાં ઘણીજ સામ્યતા છે આ ઋતુકાળ સિવાયના દિવસોમાં સ્ત્રી-સહવાસ કરવો એ પાપ છે

રજસ્વળા સ્ત્રી સાથે સહવાસ કરવો એ યોગ્ય નથી. એ સિવાય આશ્લેષા મઘા, મૂળ, કૃતિકા, જ્યેષ્ઠ, રેવતી, ઉત્તરા ભાદ્રપદ, ઉત્તરા ફાલ્ગુન ઉત્તરાષાઢા, એ નક્ષત્રોમાં સ્ત્રી સહવાસ નિષેધ છે મંદિરમાં રસ્તામાં, સ્મશાનમાં ઔષધાલયમાં, બ્રાહ્મણના ઘરમાં, ગુરૂના ઘરમાં, સવારે, સંધ્યા કાળે, અપવિત્ર જગ્યાએ દવા લીધા પછી, ભૂખ્યા પેટે, ખાધા પછી તરત, મિત્ર કે ગુરૂની પથારીમાં, મળ મૂત્ર જવાની ઇચ્છામાં ઉપવાસ ને વ્રતના દિવસોમાં, બીજા માણસોની દ્રષ્ટિ સામે, સ્ત્રી સહવાસ કદી ન કરવો જોઈએ પશુ પણ નિયમ પાળે છે અને કેવળ પ્રજનનની દ્રષ્ટિથીજ કુદરતી રીતે પ્રેરાઈ અમુક દિવસોમાંજ, સામી જાતિના પશુ સાથે સહવાસ કરે છે.

વસુદેવ અને દેવકીના ગત જન્મની તપશ્ચર્યા ને સંયમનું પરિણામ શ્રી કૃષ્ણ હતા તેમજ રાજા દશરથ અને કૌશલ્યાની ગત જન્મની તપશ્ચર્યા ને સંયમનું પરિણામ શ્રી રામ હતા તેમ આપણાં ધાર્મિક પુસ્તકો કહે છે. સુપુત્રો માટે એક બે દિવસનું નહિ પણ વર્ષોના સંયમી જીવનની આવશ્યકતા છે. જ્યાં સુધી વૃત્તિ સ્થિર થઈ ન હોય ત્યાં સુધી પુરૂષે, સહવાસ કરવો એ દીવો લઇને કુવામાં પડવા બરાબર છે. આપણા અસંયમી જીવનથી કુપુત્રો થાય અને લઠ્ઠ લઇને આપણી સામા થાય તો એમાં હું એ પુત્રોનો દોષ જોતો નથી. સ્ત્રી સહવાસ સંબંધમાં એક ગુરૂને એક શિષ્યે પુછેલું તે નીચે મુજબ છે.

શિષ્ય—મનુષ્યે સ્ત્રી-સંગ કેટલી વાર કરવો?

ગુરૂઃ—જીવનમાં ફક્ત એક વાર.

શિષ્યઃ—એથી સંતોષ ન થાય તો?

ગુરૂઃ—વર્ષમાં એક વખત કરવો.

શિષ્યઃ—એથી મન તૃપ્ત ન થાય તો?

ગુરૂઃ—મહીનામાં એક વખત કરવો.

શિષ્યઃ—એથી પણ મન ન માને તો?

ગુરૂઃ—ખેર, મહીનામાં બે વખત કરી શકે છે પણ એથી મૃત્યુ જલદી થાય છે.

શિષ્યઃ—બે વખતથી પણ મન ન રહે તો?

ગુરૂઃ—ઘરમાં કફન લાવીને તૈયાર રાખવું અને પછી ફાવે તેમ કરવું.

આપણે કોઈ વ્યક્તિનો વિચાર કરીએ તો આપણો વિચાર એક આકાર ગ્રહણ કરે છે ને તે આકાર વ્યક્તિને શોધવા પ્રયત્ન કરે છે. જો આપણો તે વિચાર પાછળ સતત અને નિશ્ચિત પ્રયત્ન હોય તો તે વિચાર ફળીભૂત થાય છે. દાખલા તરીકે કોઈ મિત્રને મળવાની આપણી તીવ્ર ઇચ્છા છે. આ ઇચ્છાથી તે મિત્રની મૂર્તિ આપણા મનમાં એક આકાર ગ્રહણ કરશે. તે બાબતના મનમાં સંકલ્પ થશે. "તે કેમ હશે? શું પહેર્યું હશે? કેવી રીતે આવશે?" વિગેરે. આ સંકલ્પો તમે થોડા દિવસ પછી ભૂલી ગયા, પણ આપણે જેમનો આકાર ઉત્પન્ન કરેલો તે નાશ થશે નહીં. એ આકારો તે મિત્રના માનસિક જગતમાં જઈ પોતાનું કાર્ય કરશે અને તેને આપણી તરફ આવવા પ્રેરણા કરશે. સંયમી પુરૂષ આવી એકાગ્રતા સાધી શકે છે ને તેના પ્રમાણમાં તે પોતાના જીવનમાં સફળ થાય છે. અસંયમી મનુષ્યની વૃત્તિઓ અવનવા સંકલ્પ વિકલ્પોના લીધે વ્યભિચારી રહેતી હોવાથી તેના સંકલ્પોના અનેક અસ્થિર આકારો ઉત્પન્ન થાય છે. આ આકારો એક બીજા સાથે અથડાઇ નાશ પામે છે. આથીજ અસંયમી મનુષ્યો અંતે નિષ્ફળતાને ભેટે છે. વિદ્યાભ્યાસ, વેપાર, કે વ્યવહારમાં સફળતા મેળવવા બ્રહ્મચર્ય પાળવું જરૂરનું છે.

અસંયમી માણસો હંમેશા ભટકતી વૃત્તિવાળા હોય છે તેથી સામી જાતીની પિપાસા માટે અનેક વિધ પ્રયત્નો કરે છે આથીજ ઘેરઘેર સળગતા સંસાર નજરે પડે છે. સમાજના ઉત્કર્ષ માટે બાહ્ય જીવનના સ્થુળ ફેરફાર કે સમાજની બાહ્ય ઐક્ય સાધવા આજે વર્ષોથી પ્રયત્ન કરવામાં આવે છે. પણ પરીણામ કંઇજ દેખાતું નથી. કદાચ સમાજ ડર ને રાજ્યના ભયથી બાહ્યજીવન ઐક્ય કરી પાશવતાને સંતાડવાનો પ્રયત્ન થયો હશે, છતાં આ ભીતિઓ દૂર થતાં અસ્ત્ર શસ્ત્ર લઈ પાશવતા ચમકી છે. પાશવતાનો પૂર્ણપણે નાશ શુદ્ધ આંતર જીવનથીજ થાય છે. આવું શુદ્ધ આંતરજીવન બ્રહ્મચર્ય ,દ્વારાજ પ્રાપ્ત થઈ શકે.

દેશોદ્ધાર માટે પણ સ્વતંત્ર આત્મા જોઇએ અને તે બ્રહ્મચર્ય પાળી સંયમી બન્યા સિવાય થતો નથી

મનુષ્ય માત્રનું અંતિમ ધ્યેય મોક્ષ અગર પ્રભુ પ્રાપ્તિ—આત્મસાક્ષાત્કાર સંયમી મનુષ્યોજ પ્રાપ્ત કરી શકે છે

મનુષ્ય જીવનમાં તંદુરસ્ત શરીર, શુદ્ધ દાંપત્ય પ્રેમ, ઉંચું ચારિત્ર્ય, સારી સંસ્કાર સંપન્ન પ્રજા, વિદ્યા, વેપાર અને વ્યવહારની સફળતા, સમાજનો ઉત્કર્ષ, દેશોદ્ધાર અને છેવટમાં પ્રભુ પ્રાપ્તિ એ આશ્રમ ધર્મના પાલન સાથે સંયમી જીવન ગાળવાથીજ થાય છે અસ્તુ

ગીતાનું વેદાન્ત

(લે०—શ્રી સુદર્શનસિંહજી 'ચક્ર')

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥"

—ગી० ૯।૪ ૫

મારા અવ્યક્ત સ્વરૂપથી આ આખું વિશ્વ વ્યાપ્ત છે સમસ્ત પ્રાણી મારી અંતર્ગત છે, હું તેમનામાં સ્થિત નથી પ્રાણી મારી અંતર્ગત નથી આ મારા ઇશ્વરીય યોગને જુઓ કે પ્રાણીઓને ધારણ અને પ્રાણીઓને પ્રગટ કરનારો મારો આત્મા તે પ્રાણીઓમાં નથી

સંપૂર્ણ વેદાન્ત ગીતાના આ બે શ્લોકોમાં ભરેલું છે, વાણીની ગતિની આજ સીમા છે ઉદાહરણ આપીને આજ વાતને સ્વયં ભગવાન સ્પષ્ટ કરે છે—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

—ગી० ૯।૬

જેવી રીતે સર્વત્ર વિચરનારો મહાન વાયુ સર્વદા આકાશમાં સ્થિત છે તેવીજ રીતે સમસ્ત પ્રાણીઓને મારામાં સ્થિત સમજો

હું સમસ્ત જગતમાં વ્યાપ્ત છું, આ વ્યાપક રૂપ અવ્યક્ત છે સમસ્ત પ્રાણી મારામાં છે, પરંતુ હું તેમનામાં નથી વાસ્તવિક પ્રાણીઓ મારામાં નથી પ્રાણીઓની ઉત્પત્તિ અને પાલન મારા દ્વારાજ થાય છે ભગવાને આજ સિદ્ધાન્ત બતાવ્યો બ્રહ્મ સૂત્રનું બ્રહ્મલક્ષણ છે—'जन्माद्यस्य यतः" એનાથી સંસારનો જન્મ આદિ (પાલન અને નાશ) થાય છે અહિં પણ ભગવાને પોતાને ઉત્પાદક અને પાલક બતાવી દીધા છે યાદ રાખવું જોઇએ કે સમસ્ત બ્રહ્મસૂત્ર ઉપર્યુક્ત સૂત્રનું વિવેચન માત્ર છે બધા આચાર્યો બ્રહ્મસૂત્રમાં ચતુ સૂત્રી મુખ્ય માને છે તેજ ચતુ સૂત્રીનું આ મુખ્ય સૂત્ર છે બીજાં તો એનીજ વ્યાખ્યા અથવા એનાજ અંગ છે

જે ઉદાહરણ ભગવાને આપ્યું છે તે તદ્દન સ્પષ્ટ છે વાયુ આકાશથીજ ઉત્પન્ન થાય છે, આકાશની અંદરજ રહે છે વાયુના પ્રત્યેક અંશમાં આકાશ વ્યાપ્ત છે, પરંતુ આકાશ વાયુથી નિર્લિપ્ત છે વાયુની દૃષ્ટિથી તો વાયુ આકાશમાં છે અને વાયુમાં આકાશ છે, પરંતુ આકાશની દૃષ્ટિથી વાયુની સત્તાજ નથી વાયુ તેને જરા પણ પ્રભાવિત કરી શકતો નથી

વાયુને મહાન અને સર્વત્ર વિચરનારો કહ્યો છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે વાયુનું મંડલ જો કે ઘણુંજ મોટું છે અને તે ચંચળ છે, તે એક સ્થાન ઉપર ટકતો નથી, છતાં પણ તેની ચંચળતા અને મહત્તાનું આકાશ ઉપર કંઈ જોર ચાલતું નથી આકાશ સ્થિર અને નિર્લિપ્ત રહે છે આટલા મોટા

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ } जुलाई, १९५२, काशी { अङ्क ७

ध्यान गान

गोपाल गोकुलवल्लवीप्रिय गोपगोसुतवल्लभम् ।
चरनारविंदमहं भजे भजनीय सुरमुनिदुर्लभम् ॥ १ ॥
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरम् ।
किंजल्कवसन किसोरमूरति भूरिगुन करुनाकरम् ॥ २ ॥
सिर केकिपच्छ विलोलकुंडल अरुन बनरुहलोचनम् ।
गुंजावतंस विचित्र सब अँगधातु भवभयमोचनम् ॥ ३ ॥
कच कुटिल सुंदर तिलक भ्रू राकामयंकसमाननम् ।
अपहरन तुलसीदास त्रास बिहार बृंदाकाननम् ॥ ४ ॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी ।

मुमुक्षा का समर्थन

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास जगद्गुरु महामण्डलेश्वर
श्री १०८ स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

वेदान्तश्रवण के अधिकारी में जिस साधनचतुष्टय की आवश्यकता है उस में मुमुक्षुत्व अपरिहार्य है। अर्थात् "मेरा पुनर्जन्म न हो" ऐसी उस को तीव्र अभिलाषा चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि किसी को ससार से द्वेष क्यों होगा? देखा जाता है कि सब कोई बडे चाव से गृहस्थी करते हैं। सब को निसर्गत सुख की इच्छा रहती है और सब जीव संसार में कई एक प्रकार का सुख, पूर्णांश में न सही, कम बेशी परिमाण में अवश्य ही पाते हैं। उस के साथ थोडा बहुत दु ख भी जरूर मिला रहता है इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन मुख्य सवाल यह है कि ससार में सुख है या नहीं। इस का उत्तर तो अस्तिपक्षार्थक ही देना होगा, नवात्मक हरगिज नहीं। जीवमात्र की कर्म में प्रवृत्ति अहर्निश देख पडती है, और—

'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते'

बेमतलब का काम करने में महामूर्ख भी नहीं प्रवृत्त होता है, इस में कोई सदेह ही नहीं। एव यह प्रयोजन सुखप्राप्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं, यह बात भी निर्विवाद है। गीता में कर्मसिद्धि का जो हेतुपञ्चक कहा है, उस में चेष्टा अर्थात् सुखेच्छा भी है। तब तो यह अनुमान पुष्ट है कि जीवों की प्रवृत्ति सफल अर्थात् सुखोत्पादक होने से ही सुख की इच्छा आदि काल से जारी है और अनन्त काल तक जारी रहेगी। गीता में तीन प्रकार का सुख वर्णित है। तामस हो या राजस हो, सुख सुख ही है अतएव उपादेय है। अनित्य हो, थोडा हो, दुःखमिश्रित हो, कैसा भी हो, दुनियाँ मे सुखनाम का पदार्थ है जरूर और वही तो पुरुषार्थ है। तब दुनिया से वैराग्य क्यों होगा और मनुष्य मुमुक्षु कैसे होगा?

ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त होने पर समाधान यह है कि मनुष्य जिस को सुख समझता है वह वास्तव में सुख नहीं है, सुखाभास है। इस विषय में योगदर्शनकार का सिद्धान्त यह है—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

—साधनपाद, सूत्र १५

इस में "विवेकिन" पद मार्के का है। प्रकृति और पुरुष इन दोनों में पूर्व पश्चिम का, तम प्रकाशवत् महदन्तर है, यह जानना विवेक कहलाता है। इसी का नाम विद्या है। इस के विपरीत अविद्या का लक्षण योगशास्त्र में ऐसा कहा है—

अनित्य-अशुचि-दुःख-अनात्मसु
नित्य-शुचि-सुख-आत्मख्यातिरविद्या।

—साधनपाद, सूत्र ५

अनित्य, अशुचि, दु ख और जड पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मावाले समझना यह अविद्या है। ससार में केवल दु ख ही दुःख भरा

पड़ा है। लेकिन अविद्या के प्रभाव से वह सुखवत् भासता है। संसार में सुख का तो अभाव ही है।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

—गी० ९।३३

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।

—गी० ८।१५

किं बहुना, भगवान् के इन वचनों से भी संसार दुःखमय है यही सिद्ध होता है। इस पर कोई कहे कि संसार में सुख नहीं है ऐसा कहना तो प्रत्यक्ष का अपलाप करना है। इस शङ्का का समाधान सूत्रस्थ "विवेकिन" पद से होता है। अज्ञानी के लिए संसार भले ही सुखमय प्रतीत हो, विद्वान् के ज्ञानचक्षु को तो वह उल्टा मालूम पड़ता है। उस को मुमुक्षा होना सम्भव है। ऐसे पुरुष दुनियाँ में बहुत नहीं होते।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।

—गी० ७।३

लेकिन इस पर यह सवाल होता है कि संसार में जो कुछ, जैसा कुछ और जितना कुछ सुख प्राप्त होता है उस को छोड़ने की इच्छा करने में क्या बुद्धिमानी है? अधिक तु, सांसारिक सुख में कुछ निश्चितता है, वैसे ही मोक्षसुख का क्या भरोसा है? मोक्षधाम से वापस आकर किस ने उस सुख को सप्रमाण तसदीक किया है?

उत्तर में यह कहा जाता है कि सांसारिक सुख की दुःखशबलता और दुःख की जिहासा निर्विवाद होने से—

यथा दुःखात् क्लेशः पुरुषस्य
न तथा सुखादभिलाषः ।

—सां० द० ६।६

'मनुष्य दुःख को जितना बुरा समझता है, उसी मात्रा में सुख की इच्छा उत्कट नहीं होती।' इस साङ्ख्यसूत्रानुसार, तथा—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ।

—सां० द० ६।५

'दुःख का लेशमात्र न रहे, इसी में पूरी सफलता है।' इस सिद्धान्त से भी यह बात अवश्य स्वीकार्य है कि थोड़ा हो या बहुत हो, दुःखत्वाव च्छेदेन ही दुःखजिहासा प्राणिमात्र में नैसर्गिक है।

मोक्षसुख की प्रामाणिकता तो श्रुति से ही सिद्ध है। लेकिन इस की निरपेक्षता से ही कहा जा सकता है कि दुःख से मोक्ष पाने की इच्छा का होना बिल्कुल स्वाभाविक है।

यदि कहा जाय कि दुःख से इस प्रकार छुटकारा तो सब के जीवन में हर घड़ी ही होता रहता है, उस के लिए सब की मुमुक्षा भी बनी है। तब तो दुःखपरिहार के लिए पुनर्जन्म न होने की क्या आवश्यकता है?

इस कहने का यह मतलब हुआ कि मनुष्य को जितने दुःख भोगने पड़ते हैं वे सब दृष्ट उपायों से भी दूर हो सकते हैं और होते भी हैं। इस के लिए दुःसाध्य आत्मज्ञानोपार्जन द्वारा जन्माभाव की इच्छा करना अयौक्तिक है।

इस विषय की एवं अन्यान्य आनुषङ्गिक दशाओं की साङ्ख्यकार ने बड़ी ही सुन्दर मीमांसा की है। उन सूत्रों का अनिरुद्धवृत्त आधार से भाषा में अनुवाद दिया जाता है।

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।

—सां० सू० १-१

तीनों तरह के दुखों का अत्यन्त छूटना ही असली पुरुषार्थ है। यह बात लोकप्रसिद्ध है कि वैराग्य होने से मनुष्य की मोक्षशास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्ति होती है। वैराग्य क्यों होता है, इस के दो हेतु हैं; एक शोकादि और दूसरा प्राग्भवीय दुरित का क्षय। यह अपर वैराग्य कहलाता है, इस का लक्षण पातञ्जल दर्शन में यों कहा है—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य
वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।

— समाधिपाद, सू० १५

इस का फलभूत पर वैराग्य कहलाता है और उस का लक्षण है—

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।

— समाधिपाद सू० १६

इस के बाद सांसारिक दुःखों की निवृत्ति के उपायों की जिज्ञासा होती है। प्रसंगतः, दुःख के प्रकार कहे जाते हैं। दुःख त्रिविध है—आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। ये प्रकार कौन कौन से हैं इस बात का खुलासा सूत्रकार नहीं करते।

अतएव गीता २।४, २।५, २।६ श्लोकों में कथित त्रिविध प्रकार लेना ही ठीक जँचता है। तथा हि—

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

यह स्पष्टतः शारीरिक दुःख है। यों तो दुःखमात्र ही मन से संवेदनीय होने के कारण एक ही प्रकार का है। तथापि—

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्-
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥

और—

न चैतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥

इन तीन श्लोकों में अनुक्रम से कायिक, वाचिक, मानसिक अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय इन तीन कोशों से अनुभवनीय दुःखों का उल्लेख है। अब विचारना यह है कि इन दुःखों की निवृत्ति किस उपाय से हो? अस्मदादिक बद्ध जीव तो यही पूर्वपक्ष करेंगे कि औषधादि, मिष्टान्नादि, शान्त्यनुष्ठानमणिमन्त्रादिसुलभ व दृष्ट उपायों से प्रत्यक्षतः दुःखनिवृत्ति की सिद्धि होती है। तब दुःसाध्य, अनेक जन्मपरंपरायास से संपाद्य चित्त-निरोध, ज्ञानप्राप्त्यादि शास्त्रोक्त साधनों में बुद्धिमान् मनुष्यों की प्रवृत्ति क्योंकर होने लगेगी? इस का उत्तर सूत्रकार यह देते हैं—

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्।

—सां० सू० १।२

उक्त दुःखत्रय दूर होता है सही, परन्तु यह निवृत्ति आपातत: होती है। फिर से दुःख न होगा यह नियम नहीं। कथंचित् एक दुःख निवृत्त हो भी गया तो दूसरा न होगा इस का भी भरोसा नहीं। "दुःख दुःखानुबन्धि" यह रेल के डब्बों जैसा सिलसिला जारी ही रहता है। सुस्थता कहाँ है?

इस पर यदि कहा जाय कि—

मात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत्
तत्प्रतीकारचेष्टनात्पुरुषार्थत्वम्।

—सां० द० १।३

जैसे रोज भूख लगती है, उस की भोजन से शान्ति की जाती है। उसी तरह नित्य उपाय करने से दुःखनिवृत्ति होकर पुरुषार्थ का लाभ हो सकता है।

इस का जवाब कपिल मुनिजी यह देते हैं—

सर्वासंभवात् संभवेऽपि सत्ता
संभवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः।

—सां० द० १।४

सर्वत्र और सर्वदा वैद्यादि नहीं भी मिल सकते हैं और प्रतीकार होने पर भी दुःख की जड़ (देहाभिमान) बनी ही रहेगी। इस लिए यह दृष्टोपायजन्य दुःखनिवृत्तिरूप पुरुषार्थ त्याज्य है। नाना उपायों से दुःख दूर करने की सामर्थ्य में कुछ बल होने पर भी, उक्त हेतुओं से वह अकिंचित्कर है। तस्मात् कपिलसिद्धान्त कहते हैं—

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः।

—सां० द० १।५

"न च पुनरावर्तते" छान्दोग्य उ० अ० ८ ख० १५ मं० १ सब उपायों में मोक्ष की श्रेष्ठता इस श्रुति से सिद्ध है। इसी बात को लक्ष्य करके प्रथम सूत्र में "अत्यन्त" पद का प्रयोग किया है। दृष्टोपायजन्य सुखलाभ के आधार पर जो यह आक्षेप है कि उस सुख को क्यों छोड़ दिया जाय, उस का समाधान शास्त्रकार यों करते हैं —

अविशेषश्चोभयोः।

—सां० द० १।६

जिस को लोक में सुख कहते हैं वह भी एक तरह से दुःख ही है, सुख दुःख में विशेष फर्क नहीं। गीता धीर पुरुष के बारे में कहती है कि वह—

"समदुःखसुखं"

—गी० द० २।१५

ऐसा होता है। अर्थात्—

तदपि दुःखशबलमिति
दुःखपक्षे निक्षिपन्ते विवेचकाः।

—सांख्य द० १।७

विचारशील पुरुष सुख को, दुःख से घुला मिला समझकर, दुःख के दर्जे में ही रखते हैं। फलतः—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता।

—सां० द० १।५

प्रकृत मुमुक्षु को यही मत ग्राह्य है और इसी से जन्माभावरूप मुमुक्षा का होना ठीक ही है।

सुख

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी 'किशोर' भिषगाचार्य)

मनपथिक! चाहता है क्या? सुख! कैसा सुख!! यहाँ है कहाँ सुख!!! इस असार संसार में कोई पा सकता है सुख और शान्ति! नहीं नहीं, कदापि नहीं! अरे! धन जन, अटूट वैभव इसी को मानता है सुख! नहीं, यह तो है एकमात्र भ्रम। यह तो है क्षणिक! इस से तो भ्रमर की भाँति पछताना ही तो पड़ता है।

जैसे संध्या समय इन्द्रियलोलुप भ्रमर मदान्ध हो, पीता है सरोजसुधा और मनाता है आनन्द, किंतु उसे पता ही क्या? कि इस क्षणिक सुधापान के अल्पलोभ के अनन्तर ही यह निष्ठुर कमल मुझे कर लेगा बंद और मदान्ध गजराज इसी कमल को तोड़ देगा। फिर सदा के लिए लुट जायगा मेरा जीवन धन और मैं इन्द्रियलोलुपता से न पा सकूँगा मुक्ति और वास्तविक सुख।

ठीक इसी प्रकार तू भी मधुर भोजनादियुक्त चाहता है रसास्वादन, संगीत सुधामयी वीणा की झंकार, सौन्दर्यमय मनोरम दृश्य, पुष्पपराग का सुगन्धित सौरभ, यौवन की फुलवारी का विहार। क्या? यही है सुख। नहीं नहीं, यह तो है क्षणिक! व्यर्थ! क्या ओस के चाटने से भी कभी किसी की बुझती है प्यास! पथिक! इसी को तो कहते हैं इन्द्रियलोलुपता या मायानदी का जाल! इसी के द्वारा तो मानव फँसता है जाल में और भूलता है परमात्मा को! मनपथिक! यह सब अनित्य है उसी प्रकार, जिस प्रकार पञ्चभूतमय नश्वर शरीर।

यह सुख हितकर और चिरस्थायी नहीं हो सकता। जिस प्रकार रोगी रुग्णावस्था में चाहता है स्वादिष्ट भोजन, किंतु वह क्षणिक स्वादिष्ट भोजन क्यों उसे होता है हितकर? क्योंकि उस को क्षणिक इन्द्रियलोलुपता ही तो बढ़ाती है व्याधि को और उसे भोगना है किये हुए पापों का फल, वह तो और भी बढ़ती जाती है। बस, उसे भोगना पड़ता है कष्ट!

पूछता है क्यों? अरे! इस रुग्णावस्था में यदि छोड़ता है थोड़ी सी इन्द्रियलोलुपता और पीता है कड़वी औषध तो होता है शीघ्र ही नीरुज, स्वस्थ। ठीक इसी प्रकार इस क्षणिक सुख को छोड़, सहेगा कष्ट, रखेगा संतोष और चला चलेगा सत्पथ तो अवश्य ही पहुँचेगा लक्ष्य पर और पायेगा वास्तविक सुख और शान्ति!



विलक्षण उपदेश

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी संन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

एक समय गङ्गाद्वार के 'सिद्धाश्रम' में नागे, परमहंस, दण्डी, ज्ञानी, ध्यानी, मानी, अवधूत, विरक्त, संत, महंत आदि सन्यासिमण्डल की गोष्ठी हो रही थी, उस में 'राम पाराशरी' नामक सन्यासी व्याख्यान दे रहे थे, वक्तृता के सिलसिले उन्होंने कहा—

एक समय मैं अवध देश में भ्रमण कर रहा था, वहाँ एक भावुक पुरुष ने मुझ से पूछा कि संतजी, हम अवतारों के चरित्र और साधु महापुरुषों की कथा सुनें, पर उस पर चल न सकें, तो इस से क्या लाभ हो सकता है? ऐसा सुनना व्यर्थ ही है। उत्तर में मैं ने कहा—भाई, इस में दो लाभ तो प्रधान हैं, पहला यह कि जिस श्रोता की ईश्वर पर साधारण श्रद्धा होगी, यानी बहुत कम भगवान् का स्मरण भजन करता होगा, वह कथा सुनने से अधिक श्रद्धालु होकर ज्यादा भजन पूजन करने लगेगा। 'इधर उधर की निन्दा स्तुति में गप हाँकने की अपेक्षा कथाश्रवण में समय व्यतीत करना अच्छा है' जो यह बात सामान्य तया समझता होगा, उस को कथा के उपदेश श्रवण करके उत्तम कार्य करने का उत्साह अधिक बढ़ेगा, इस से उस के दुर्व्यसन छूट जा सकते हैं। दूसरा लाभ यह है कि जिस श्रोता में अभिमान की मात्रा अधिक होगी उस का दर्प जाता रहेगा और वह क्रूरता आदि प्रमादों को दोष समझकर स्वयं त्यागने पर उतारू हो जायगा।

भाई! ऋषि, मुनि, साधु, संतरूप इञ्जीनियर, इस संसाररूपी घोर वन में अनेक कष्ट सहन करके, ज्ञान और सदाचार की सुन्दर सड़क बाँध गये हैं, अपने गम्भीर ज्ञान और अनुभव से दिये हुए उपदेश की अनेक स्थायी झाड़ियाँ इस सड़क पर गाड़ गये हैं, एवं साधना और स्फूर्ति प्रदान करनेवाले सम्मति और सूचनाओं के 'माइल स्टोन' खड़े कर गये हैं, और शास्त्रों, ग्रन्थों के पड़ाव बना गये हैं। जिस से जिज्ञासु यात्री मोह, लोभ आदि शत्रुओं के पाश में न पड़कर सच्चिदानन्दमय परम धाम को बेरोक टोक आनन्दपूर्वक जा सकें।

कथा श्रवण करनेवालों को यह तो मालूम हो जायगा कि हमारे ऋषि, मुनि, कैसे प्रभुप्रेमी, योगाभ्यासी, धर्मप्राण, परोपकारैकव्रत, सत्यपरायण और चरित्रसंपन्न थे। उन को वेदगायन, उपनिषदों का आदेश, दर्शनशास्त्रों का तत्त्वज्ञान, आध्यात्मिक ध्येय, अनेक प्रकार की भाष्य, टीका, व्याख्यान की योग्यता, वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण रखनेवाला, धर्मशास्त्रानुमोदित मनुष्यत्व और देवत्व का प्रबोधक आचार, लोक परलोक के समझने की शिक्षा और सर्वोत्तम साधन के समझने की कृतकृत्यता का कितना गूढ़ परिचय प्राप्त था। उन्होंने कैसे कैसे अनाचारी, अस्थिरचित्त, जड़वादी तथा धनदासों को यथार्थ मार्ग पर लाने का कैसा प्रबल चरित्र, तलस्पर्शी बुद्धिवैभव, परमार्थ और व्यवहार का अनुभव और निस्पृह भाव प्रकट किया था। भला जिस श्रोता को ऐसे चरित्र नित्यप्रति सुनने को मिलेंगे, उस का जीवन अनुकूल पलटा न खावे, यह कभी हो नहीं सकता।

पहले के महात्मा गुरुपद, आचार्यपद, पुरोहितपद, महंतपद, मण्डलेश्वरपद और अध्यक्षपद को अलङ्कृत

करते थे, उन में राजा, महाराजा, वीर, महावीर, ग्रन्थकार, भाष्यकार, समर्थ व्याख्याता, प्रेरक, कथाकार, निस्पृह राजगुरु, महान् स्मृतिकार, निष्पक्ष न्यायाधीश, ऋषि, मुनि और सच्चे साधु ब्राह्मणों का आविर्भाव होता था। उस समय सब राजा प्रजा उन का शिष्यत्व ग्रहण करते थे, उस समय भारतवर्ष की चतुरस्र उन्नति का समय था। देश में जब से यथार्थ गुरुत्व और श्रेष्ठ शिष्यत्व घटने लगा, तभी से सच्चा ज्ञान और चरित्र मिट गया, इस से मनोबल, शरीरबल और अन्त में धन जनबल भी क्षीण हो गया।

ये सब बातें पूर्वजों के चरित्र और भगवत्कथा श्रवण करने पर ही मालूम हो सकती हैं। 'हम क्या थे, 'क्या हो गये?' इस का पता उसे कैसे लग सकता है जो कथानक नहीं श्रवण करता? जो सुनेगा वह कभी मनन भी करेगा, मनन के अनन्तर निदिध्यासन का नंबर है, ऐसा करनेवाला श्रोता अवश्य लाभ उठावेगा। 'हम से इस पर चला नहीं जाता' ऐसा समझकर जो अवतार या संतचरित सुनते ही नहीं, उन को कुछ लाभ तो होगा नहीं, उलटे वे पूर्वजों की महा महिमा से अनभिज्ञ रह जायंगे; जिस का जानना राष्ट्रीयता के लिए नितान्त आवश्यक है।

भाइयो! वेद, शास्त्र, स्मृति आदि के गहन तत्त्व को विद्वान् ही जान सकते हैं, ये सब तथा उन में होनेवाले खण्डन मण्डन तो पण्डितों के लिए हैं। सर्वसाधारण के लिए साधु संतों की उपदेशकथा ही लाभप्रद हो सकती है क्योंकि वे शास्त्रों के कठिन से कठिन भाव को सरल दृष्टान्त युक्तियों द्वारा समझाने की कृपा किया करते हैं। दुनियाँ में मामूली लोगों की ही संख्या अधिक है, उन के उपकार के लिए संतों ने सब शास्त्रों से मथकर जो तत्त्व निकाला है वही सब के काम की चीज है। संतों का उपदेश सब लोगों को इस लिए मान्य हो जाता है कि वे विषयलोलुपता, चमत्कार, सिद्धि और लोकप्रतिष्ठा त्याग कर शुद्ध ज्ञान, पवित्र चरित्र, साधु स्वभाव, प्रभुपरायणता, अप्रसिद्धि और आसुरी संपत्ति के त्याग को अपनाये रहते हैं। ऐसे श्रेयःसाधक, प्रभुप्रेमी महापुरुष देशधर्मोद्धारक होते हुए जगद्गुरु के गौरवपूर्ण पद को सुशोभित करते हैं। भाई भक्त, ऐसे महापुरुष के मुखारविन्द से सुनी हुई कथा की कभी भी निष्फलता नहीं है। क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्मश्रोत्रियों के मुखकमल से उच्चरित भगवद्गुणानुवादश्रुति अवश्य सफल होती है। पहले सब बातें सुनी ही जाती हैं, फिर उन के करने का अवसर आता है। तुम इस बात की पर्वाह मत करो कि हम जो कथा में सुनते हैं उस के अनुसार बरता नहीं जाता। तुम तो 'हम सत्संग में अवश्य जाया करेंगे' इसी बात में डटे रहो, फिर तो काम बना बनाया है।

इस के बाद महात्माजी कहने लगे—मैं घर से निकलकर एक समय पढ़ने के लिए काशीजी गया। वहाँ एक वैभवपूर्ण मठ देखा, जो एक महंत के अधीन था, मठ में किसी भी उपभोगसामग्री की कमी नहीं थी, महंतजी को बहुत लोग मानते थे। उस स्थान और मन्दिर के अध्यक्ष वृद्ध होने के कारण उसे त्याग देना चाहते थे। मुझे उस मन्दिर की अध्यक्षता प्राप्त करने का लोभ हुआ। इस कारण मैं वहाँ नित्य जाकर बहुत देर तक व्रत, साधन, भजन, उपासना आदि करने लगा। एक दिन मुझे आकाशवाणी हुई कि देवदत्त! यह क्या? तू यह सब व्रत उपासना क्षुद्र लालसा की पूर्ति के लिए कर रहा है? ऐसा मत कर (उपासना करने से, चाहे वह स्वार्थ के कारण ही थी, हृदय में कुछ पवित्रता

आ गई, अतः हृदयरूप आकाश में यह प्रेरणा हुई, यही आकाशवाणी या देवप्रेरणा थी जो दम्भ के निषेध की आज्ञा दे रही थी)। मैं इस प्रकार की देववाणी सुनकर अपने दम्भपूर्ण व्यवहार पर सपश्चात्ताप सोचने लगा—'मैं ने एक वर्ष तक सकपट सकामभाव से ईश्वर की उपासना की, प्रभु के ऊपर सच्चा प्रेम और विश्वास छोड़कर लालच में फँसा रहा। यह कितनी शर्म की बात है, पवित्र अन्तःकरण से मैंने भगवान् की उपासना नहीं की। महन्ती की लालसा से स्वार्थी बना रहा।'

दूसरे दिन उस नगर के कुछ भद्र पुरुष, जो महन्तजी के सेवक और मठ के भक्त थे, मन्दिर में दर्शन करने आये और कहने लगे कि इस धर्मालय की उन्नति और प्रबन्ध के लिए किसी योग्य पुरुष को अध्यक्षरूप से नियुक्त करके उपदेशक चुनने की आवश्यकता है। ऐसा विचारकर सब लोगों की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी, उन्हें उस समय मैं ही सब से योग्य दृष्टिगोचर हुआ। इस कारण उपासक भक्तों ने मेरे पास आकर उस मन्दिर और मठ के अध्यक्ष-पद ग्रहण करने की प्रार्थना की। मैं अपने मन में सोचने लगा—हे प्रभो, मैं ने कपटभाव से एक वर्ष पर्यन्त आप की उपासना की किंतु उस समय किसी ने मेरी तरफ आँख उठाकर नहीं देखा, आज आप को हृदय अर्पण किया और यथार्थ विश्वास धारण किया, तब इन भलेमानुसों को आप ने मेरे पास भेजकर अध्यक्षपद अर्पण करने की कृपा की, किंतु अब मैं आप की महिमा की शपथ खाकर कहता हूँ, मेरे मन में अध्यक्षता की अभिलाषा नहीं रही। मुझे तो तुम्हारी चाह है, तुम सब जगह हो, यह विचारकर मैं मन्दिर और मठ के बाहर निकल गया।

उस के बाद मैं अवन्तिकापुरी चला गया, वहाँ पड़ोस में एक महापाखण्डी और उपद्रवी युवक रहता था, उस की हरकतों से दुःखित कुछ भले आदमियों के साथ मैं उसे शान्ति तथा प्रेम से समझाने गया। वह अकड़ कर बोला—जानते नहीं हो, मैं राजा का प्रेमपात्र हूँ। मुझे कुछ भी कहने की किसी में सामर्थ्य नहीं है। हम में से एक आदमी के यह कहने पर कि हम राजा के पास जाकर फर्याद करेंगे, वह बोला—ठीक है, जाओ, राजा मेरा ही पक्ष लेगा, मैं जो कहूँगा उसी में वह भी सहमत होगा। इस से निराश होकर सब लौट आये। तदनन्तर उस युवक के उपद्रव से त्रस्त लोगों को लेकर एक दिन मैं फिर उसे समझाने चला तो सबने रास्ते में यह आकाशवाणी सुनी कि खबरदार! तुम मेरे भक्त के ऊपर हस्तक्षेप नहीं करना, यह सुन सब चकित हो गये और कहने लगे—यह दुष्ट प्रभु का प्यारा कब से? मैं ने कहा—मैं अकेला जाकर देखता हूँ कि बात क्या है? मेरे जाने पर उस नौजवान ने पूछा, फिर कैसे आना हुआ? मैं ने कहा—मैं तुम को एक उत्तम संवाद सुनाने आया हूँ, तुम प्रभु के प्यारे हो, ऐसी दैवी वाणी सुनी है। युवक ने कहा—महोदय, मुझे अपने कर्तव्य पर पश्चात्ताप है, कल के गत दिन से मेरे मन में परिवर्तन हो गया है, मैं सब से क्षमा याचना करूँगा, मेरे पास जो कुछ है, उसे प्रभु के नाम पर छोड़ दूँगा। ऐसा कहकर वह अपनी कुछ सम्पत्ति गरीबों को दान करके कहीं चला गया, इस के बाद किसी नगरवासी ने उसे वहाँ नहीं देखा। बहुत वर्षों बाद मैं ने उसे काशी में देखा, वह तृणवत् दुर्बल था और मरणोन्मुख था। मुझे देखकर उस ने कहा—मैं अपने बन्धु प्रभु के पास जा रहा हूँ, उस के बिना मन नहीं लगता, अपने कृत्यों पर पूरा पूरा पश्चात्ताप करता हूँ। मैं अपने अपराधों का फल

भोगने को तैयार हूँ, और यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि फिर कभी ऐसे कृत्य नहीं करूँगा।

इस के अनन्तर मैं ने यहाँ (काशी में) नियमपूर्वक संन्यास धारण कर लिया, अब मैं बहुत दिनों से मिष्टान्न और खटाई नहीं खाता, जूता और सिला हुआ वस्त्र भी नहीं पहनता। तमाल, ताम्बूल प्रभृति पदार्थों को छूता तक नहीं। घर घर से मधुकरी माँगकर खाता हूँ। अब मेरा शरीर पुष्ट और मन तुष्ट है, मुझे प्रभु ही इष्ट है और सब दुष्ट है, यह स्पष्ट कहता हूँ।

एक दिन अस्वस्थ दशा में मेरी इच्छा मिठाई खाने की हुई। कुछ छिन धैर्य धारण करते रहने पर भी मैं इस लालच को नहीं रोक सका। एक दिन कहने पर किसी भक्त ने मिठाई लाकर दी, मैं ने उसे तीन बार सूँघ कर कहा कि—अरे मनड़े, तेरे लिए यही भोग काफी है, इस से अधिक उपयोग करना ठीक नहीं, इतना कहकर मैं ने वह मिष्ट पदार्थ एक भिखारी को दे दिया और कहा—अरे मेरे दुर्बल मन, नियम से रखने के लिए मैं तुझे क्लेश देना चाहता हूँ, किसी वैरभाव के लिए नहीं किंतु मित्र-*भाव से ऐसा करता हूँ ऐसा समझना*, तू कुछ दिन धैर्य धारण कर, एक दिन दुःख का अन्त आयेगा, जो कभी मिट न सकेगा।

लोग कहते हैं कि जो मनुष्य चालीस दिन तक पौष्टिक आहार नहीं करते, उन की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। पर मैं नहीं समझता, यह उक्ति कहाँ तक सत्य है, बीस वर्ष तक मैं ने ऐसा आहार किया है जिस में घृत दुग्ध जैसे पुष्ट पदार्थों का नाम भी नहीं था, फिर सूखा भोजन भी एक समय ही खाने को मिलता था। मैं नमक खाकर बारह वर्ष सायं-काल का जलपान करता रहा, किंतु मेरी बुद्धि जरा भी अवनत नहीं, प्रत्युत उन्नत होती रही। खाने पीने की कोई बात नहीं है। निश्चिन्त जीवन और उत्तम विचारों से शरीर पुष्ट और तेजस्वी होता है। जिन के विचार उत्तम होंगे वे ही दूसरों की अपेक्षा अधिक चिन्तारहित हो सकते हैं। 'चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता तु प्राणघातिनी' की कहावत सत्य है। कहा है—

एके मुर्गे दीदम्, न पावो न पर।
न अज सिकमे मादर, न पुस्ते पिदर॥
न बर आशमां, न जेरे जमीं।
हमेशः खुर्दे गोस्ते, आदमी॥

अर्थात् हम ने एक ऐसा मुर्गा देखा है जिस के पाँव और पंख नहीं, न माता पिता से ही पैदा हुआ है, न वह आकाश के नीचे रहता है और न पृथ्वी पर, मगर उस में यह सामर्थ्य है कि प्रतिदिन मनुष्य का मांस खाया करता है। इस रूपक में जिस मुर्गे का वर्णन है वह 'चिन्ता' है।

संन्यासीजी ने अपनी स्पीच जारी रखते हुए कहा—एक समय नैमिषारण्य में मेरे लिए एक वृद्धा *स्त्री ने 'कपटी, शब्द का प्रयोग किया।' मैं सुनकर* सोचने लगा—ठीक है, बीस वर्ष से मुझे इस यथार्थ नाम से किसी ने नहीं बुलाया, आज इस बूढ़ी दादी ने सच्चे नाम से पुकारा है। मैं जैसा आदमी हूँ, यह बराबर पहचान गई। मेरा आह्वान तो इस ने ठीक नाम से किया है, इस में कोई संदेह नहीं, यह कैसे जाना, यही आश्चर्य की बातें हैं? इस के बाद मैं ने बूढ़ी दादी से पूछा—आप ने मेरा नाम तो यथार्थ लिया, पर यह कैसे जाना कि यह नाम ठीक है? उस ने कहा—तू संन्यास धारण करके भी आत्म-चिन्तन नहीं करता, इधर उधर मारा मारा फिरता है।

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यानधारणा।
कनिष्ठा प्रतिमापूजा, तीर्थयात्राऽधमाऽधमा ॥

क्या तू नहीं जानता कि आत्मचिन्तनपरायण सन्यासी के लिए उपासना, ध्यान, पूजा और तीर्थादि बहुत पहले की बात हो जाती है, ये तो मन्द, कनिष्ठ अधिकारियों की चित्तशुद्धि के साधन हैं, तुझे तो इन सब से आगे बढ़ना था, पर नहीं बढ़ा, किंतु बाना बढ़नेवालों का धारण कर रखा है, अतः तू 'कपटी' नहीं तो क्या है? बुढ़िया के कथन का प्रभाव मेरे ऊपर बहुत पड़ा, इसी से अब निश्चल होकर भगवती भागीरथी के तटवर्ती 'सिद्धाश्रम' में कुछ काल निवास करने का विचार कर लिया है।

यदि कोई कहे कि इस आश्रम से जो तुम सब में अधिक अधम हो, उस को बाहर निकाल दो, तो मुझे ही बाहर निकलना पड़े, क्योंकि मैं ही ऐसा गया गुजरा हूँ।

महात्माजी भ्रमणवृत्तान्तपुरःसर, शिक्षापूर्ण विलक्षण उपदेश देकर चुप हो गये। 'कल से आश्रम में इसी समय 'गीताधर्म' के रहस्य का विवेकसमन्वित विवेचन नित्य हुआ करेगा' ऐसा निश्चय करके सत सभा समाप्त हुई।

पृथ्वी का मूल तत्त्व

(ले०—स्वामी श्री रामविलासजी महाराज राजवैद्य)

देश, काल तथा प्रकृति के अनुकूल संसार के समस्त प्राणियों को हर्ष, शोक एवं व्याधि आदि में ग्रस्त होना पड़ता है। यह व्याधिचक्र किसी को भी नहीं छोड़ता, छोटे बड़े सब को अपने पथ का अनुसरण करा देता है।

अग्नितत्त्व की प्रधानता

सब प्राणियों की रचना पञ्चमहाभूत और सप्तधातुओं से निर्मित हुई है। उस में भी विशेष कार्य करने के लिए अग्नितत्त्व प्रधान माना गया है। पर्थिव शरीर में यदि अन्य तत्त्व घट अथवा बढ़ जायँ, तो शरीर बना रह सकता है, परंतु अग्नितत्त्व में विशेष अन्तर आ जाय, तो शरीर नष्ट हो जाता है। अग्नितत्त्व से ही अन्य तत्त्वों के स्थायी बने रहने की संभावना रहती है। अतएव समस्त तत्त्वों में अग्नितत्त्व ही प्रधान है। अग्नितत्त्व विशेष रूप से लोहे में ही रहता है। यद्यपि लोहा सप्त धातुओं में से एक सामान्य धातु माना गया है और मूल्य में भी अन्य धातुओं से अत्यन्त कम है तथापि जब अग्नितत्त्व को स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है, तो उस समय मूल्यवान् धातुओं को गौणरूप से उस के साथ कार्य करना पड़ता है। प्रधान कार्य तो लोहे का ही रहता है।

शरीर में जब अग्नितत्त्व कम हो जाता है तब यकृत (लीवर) बराबर कार्य नहीं करता है। उस समय अग्नितत्त्व को स्थायी बनाने के लिए लोहमय औषध को देते हैं। यह तुरंत अग्नितत्त्व को स्थायी बनाता है और अन्य धातुओं को अपने कार्यों में जुटा देता है। इस प्रकार प्रकृति स्वयं बलवान् बन जाती है।

शरीर में जितना यकृत (लीवर) कार्य करता है उतना और कोई यन्त्र नहीं। यकृत ही जीवन है और यही सब यन्त्रों का पोषक है। यही पाचन-क्रिया करता है। यही रक्त बनाता और रंजक क्रिया भी करता है। यह एक ऐसा यन्त्र है जिस के कमजोर होने से सभी यन्त्र असफल होने लगते हैं अतएव सभी यन्त्रों में जिस प्रकार प्रधान यकृत है उसी प्रकार सप्त धातुओं में लोह प्रधान है।

मुख्य विषय

संसार को महान् बल तथा अपूर्व सत्ता प्रदान करनेवाली धातु केवल लोहा ही है। लोहा के बिना निश्चित रूप से प्रत्येक प्राणी जड़ अथवा चेतन के कार्य में बाधा अवश्यमेव उपस्थित होनो चाहिए। चेतन शरीर के विषय में पहले बहुत कुछ लिख गये हैं, अब जड़ वस्तुओं की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

जगत् में जितने आविष्कार आज दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उन सब में लोहा का ही विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। जहाँ अन्य मूल्यवान् वस्तुएँ नहीं ठहर सकतीं वहाँ यही लोहा अपने आत्मबल से अपनी सत्ता को कायम रखते हुए विजय प्राप्त करता है। इस समय भौतिक तत्त्ववेत्ताओं ने जितना अधिक कार्य लोहा से लिया है, उतना किसी अन्य धातु से नहीं लिया है यदि लिया भी है, तो गौण रूप से उस के साथ। पञ्चमहाभूत और सप्तधातु ही शरीररचना में सहायक हैं और इन सप्त धातुओं का न्यूनाधिक होना ही रुग्णावस्था का मूल कारण है, और उन को स्वाभाविक अवस्था में स्थापित करना ही नैरोग्यावस्था है।

गौरूपी पृथ्वी अस्वस्थ

धर्मशास्त्र में पृथ्वी को गौरूपी कहा गया है। अतएव उस के पार्थिव शरीर में पञ्चमहाभूत और सप्तधातुओं की स्थापना अवश्य की गई है। इस प्रकार उस में सभी यन्त्रों का भी होना आवश्यक है, तब उस में यकृत भी अवश्य है। वर्तमान् समय में गौरूपी पृथ्वी में अग्नितत्त्व की विषमता है। वह अपना कार्य सुचारु रूप से संपन्न करने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हो रहा है। अतः प्रकृति गौरूपी पृथ्वी की रोगनिवारक क्रिया करना चाहती है। संभव है कि गौरूपी पृथ्वी को निरोग बनाने के लिए ही इस प्रकृति ने महासमर की रचना की हो? प्रायः यह देखा जाता है कि पृथ्वी से जितना लोहा निकलना चाहिए था उस से कई लाख गुना अधिक लोहा निकल जाने से गौरूपी पृथ्वी का लोहात्मक यकृत कमजोर बन गया। अब प्रकृति इस को बलवान् बनाना चाहती है, इसी लिए अपरिमित संख्या में बने हुए लोहे के यन्त्र व जहाज आदि समुद्रदेव में विलीन हो रहे हैं। समुद्रदेव भी बड़वानल द्वारा इस लोहे को द्रवीभूत बनाकर अपने स्रोतों द्वारा लोह की खदानों को पुनः भरने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार इस निःस्सार पृथ्वी के अन्तर्गत पुनः लोहे को उपयुक्त मात्रा में पहुँचाकर उस के यकृत को ठीक किया जायगा, और तभी वह निरोग होकर अपना कार्य सुचारु रूप से संचालन करने में सफल हो सकेगी। यकृत की प्रकृति विशुद्ध लोहा के परमाणुओं से ही बनाती है। यह समान-शील और परस्पर प्रभाव प्रेम का उत्पादक है। इसी

लिए असंख्यात मनुष्यों के लोहात्मक यकृतरूपी गोलियों का भोग देकर प्रकृति पूर्ण रूप से गौरूपी पृथ्वी का उपचार करने में निमग्न है। इस प्रकार जब इस पृथ्वी का उपचार हो जायगा, तब युद्धादि समस्त विप्लव क्षण भर में शान्त हो जायँगे।

यकृत का स्थान

गौरूपी पृथ्वी के यकृत का स्थान आगे दोनों पैरों के नीचे तलभाग में मान लिया जाय, तो हिमालय आदि उच्च प्रदेश उस का मस्तक ही होना चाहिए। तलभाग में जो यकृत का स्थान माना गया है संभवत वह पाश्चात्य जगत् और भूमध्य रेखा के देश ही हों। क्योंकि ये ही भूभाग युद्ध स्थल के केन्द्र हैं। यह सब खराबी यकृत के बिगड़ने के कारण ही हुई है। जब जब ऐसी विषम समस्याएँ उपस्थित होती हैं तब तब प्रकृति अनेक रूप से सहयोग देकर जगत् का कल्याण किया करती है। यही शाश्वत है।

श्री गीता भगवती भी प्राणीमात्र को विश्वास दिलाती है कि जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ता है तब तब श्री कृष्णजी महाराज प्रति युग में अवतार धारण कर धर्म की स्थापना करते हैं। अधर्म बढ़ जाने से धर्म में विकार उत्पन्न हो जाता है, तब धर्म समय पाकर पुन: अपने स्वरूप में आने का प्रयत्न करता है। तब प्रकृति के योग से श्री भगवान् संरक्षक बनकर धर्म को पुन उस के पूर्ण स्वरूप में लाते हैं।

इसी प्रकार पञ्चमहाभूत और सप्तधातु परस्पर विकारी बन गये। आविष्कारनिर्माताओं ने उन को परस्पर इतना विकारी बना दिया कि वे अब सम अवस्था में रह नहीं सकते। अतएव पञ्चमहाभूत और सप्तधातु अब समय पाकर प्रभुप्रेरणा से निमित्त कारणों द्वारा पुन अपने शुद्ध स्वरूप को ग्रहण कर रहे हैं। प्रकृति भी उन की सहायक बन रही है। अब किसी की ताकत नहीं जो इन के मार्ग में बाधक बन सके। यही सच्ची घटना है—आगे भगवान् जानें।

साक्षात्कार

(र०—स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज, परिव्राजक)



यह तन कुरुक्षेत्र कहलावे ॥ टेर ॥
धर्मक्षेत्र क्षेत्रज्ञ युधिष्ठिर, सत्य ज्ञान छवि छावे।
साधन चार बन्धु सुरसपत, पाण्डवभेष सुहावे ॥ १ ॥
अज्ञानान्ध भूप दुर्योधन, हठ अधरम मद भावे।
सत भ्राता कौरव आसुरि मत, असत पथ अपनावे ॥ २ ॥
सप्त अक्षौहिणी सात भूमिका, धर्मध्वजा फहरावे।
मन इन्द्रिय ग्यारह अक्षौहिणी, निर्बल सैन्य लखावे ॥ ३ ॥
श्री कृष्ण पूरण परमात्मन्, गीताशास्त्र सुनावे।
भारत भक्त सारथी 'गोविन्द', युद्ध विजय श्री पावे ॥ ४ ॥



कलिकाल का उपयोग

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

हम ने इस पत्र के गत अङ्क में हेय बुद्धि से कलिकाल के दोषों का कुछ दिग्दर्शन कराया था। उस में हम ने आधुनिक जनसमुदाय की अनिष्ट मनोवृत्तियों का खाका खींचा था। यह तो आप जानते ही हैं कि ईश्वर की सृष्टि गुणदोषमय है। पहले हम ने जैसे कलियुग के दोष बताये थे, आज हम उस के गुणों का अनुसंधान कराते हैं। जैसे दोष मालूम होने पर बुद्धिमानों को उन से बचने में सौकर्य हो जाता है, इसी प्रकार किसी के गुणों के प्रतीत होने पर उन से जिज्ञासु लाभान्वित हो जाते हैं। इस अवाञ्छनीय समय में भी मनुष्यों के उद्धार का उपाय हमारे ऋषि, मुनि, आचार्य संतो ने बताया है, जो इस प्रकार है—

कलेर्दोषनिधेः राजन्। अस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परिव्रजेत्॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

कलियुग दोषों से भरा पड़ा है, पर उस में एक यह गुण भारी है कि उस काल में भगवान् के नामकीर्तनमात्र से पुरुष का उद्धार हो जाता है। सत्ययुग में जो भगवान् के ध्यान से प्राप्त होता है और त्रेता में यज्ञ करने से तथा द्वापर में परिचर्या से जो गति प्राप्त होती है वह कलिकाल में रामनाम लेनेमात्र से हो जाती है। विष्णुपुराण और अग्निपुराण में लिखा है—'मैं कलियुग से इस लिए खुश हूँ कि उस में थोड़े ही परिश्रम से धर्म प्राप्त हो जाता है।' ब्रह्माण्ड, विष्णु और ब्रह्मपुराण में लिखा है—'जो काम सत्ययुग में दश वर्ष में, त्रेता में एक संवत् में और द्वापर में एक मास में होता है, वह काम कलियुग में एक रात दिन में सिद्ध हो जाता है।' जो फल और युगों में अर्थात् सत्ययुग में तपश्चर्या से, त्रेता में ब्रह्मचर्य से और द्वापर में जप से प्राप्त होता है, वह कलियुग में सत्य बोलनेमात्र से मिल जाता है। स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में लिखा है—'कलियुग में विश्वेश्वर ही एक देवता हैं, काशी ही एक पुरी है, भागीरथी ही एक गङ्गा है।' कलियुग में एक दान ही सब से विशेष स्थान रखता है। सत्ययुग का देवता ब्रह्मा माना गया है, त्रेता का सूर्य, द्वापर के विष्णु और कलियुग में महादेव ही एक देव माने गये हैं। मत्स्य और स्कन्दपुराण में लिखा है—'जहाँ तहाँ सर्वत्र हाहाकार से पूर्ण घोर कलियुग की भयानकता को जानकर जो मनुष्य काशीपुरी को नहीं त्यागते, वे ही कृतार्थ माने गये हैं, क्योंकि सब पापों का प्रायश्चित्त काशी नगरी में ही हो सकता है। भविष्यपुराण का कथन है—'सत्ययुग में सभी तीर्थ हैं, यानी सत्ययुग में अपनी अपनी जगह सभी तीर्थ मान्य हैं, किंतु त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में गङ्गा ही तीर्थ मानी गई है। यथा—

कृते सर्वाणि तीर्थानि, त्रेतायां पुष्करं स्मृतम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं, कलौ गङ्गैव केवलम्॥

समझदार आदमी यदि अल्प आयास में भुक्ति, मुक्ति फल प्राप्त करना चाहे, तो उसे तीर्थों का आश्रयण करना चाहिए, विशेष रूप से कलिकाल में तो गङ्गा की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है।' एक जगह यह

भी लिखा है—'सत्ययुग में तप प्रधान है, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान की महिमा अधिक है।' सच पूछो, तो कलियुग में गोविन्द, गीता, गङ्गा, भिक्षु, कपिला गौ, पीपल, और एकादशी ये ही सात पदार्थ मुख्य हैं। यथा—

हरिर्गीता तथा गङ्गा कपिलाश्वत्थभिक्षवः।
वासरं पद्मनाभस्य सप्तमं न कलौ युगे॥

कलिदोषोपशमनार्थ नारायण का नाम सर्वोत्तम उपाय है, यथा—

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

स्कन्दपुराण में तो यहाँ तक लिखा है—

अभक्ष्यभक्षणात् पापमगम्यागमनादिजम्।
नश्यते नात्र सन्देहो गोविन्दस्य च कीर्तनात्॥
स्वर्णस्तेयं सुरापानं गुरुदाराभिमर्शनम्।
गोविन्दकीर्तनात् सद्यः पापं याति महामुने॥

पुराणों में नारायण के नाम की महिमा बहुत विस्तार से लिखी गई है, यहाँ उस का दिग्दर्शनमात्र कराया गया है।

हम ने ऊपर कलिकाल की भयानकता का वर्णन करके उस से बचने के कुछ उपायों को बताया है। जिन को कलियुग के पापों से अनायास बचना हो, याने उन से बचकर साफ निकल जाने की इच्छा हो, उन्हें शंकरजी की भक्ति, काशीपुरी का निवास और गङ्गाजी का स्नान इन तीन तत्त्व के पदार्थों को अपनाना चाहिए। क्योंकि—

कलौ रुद्रो महादेवः शङ्करो नीललोहितः।
प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः॥
शिवपूजापरा ये तु शिवनामपरायणाः।
ते एव शिवतुल्याश्च घोरे कलियुगे द्विजाः॥

शिवपुराण में लिखा है—

ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यजनं परम्।
द्वापरे प्रतिमापूजा कलौ शङ्करकीर्तनम्॥

स्कन्दपुराण में काशीवास के माहात्म्य का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

'महादेवजी कहते हैं कि हे पाण्डुपुत्र! अब घोर कलियुग आ गया, अब मैं काशीपुरी में जाकर रहूँगा। *इस युग में सभी मनुष्य वर्णाश्रममर्यादारहित हो जायँगे,* उन के उद्धार का उपाय केवल काशीपुरी का निवास ही है। जो विप्र उस नगरी को छोड़कर कहीं पर नहीं जाता, वह कलियुग के दोषों को जीत सकता है—

कलिकालकृतं कर्म त्रिकण्टकमितीरितम्।
एतत् भयं न भवतेदानन्दवनवासिनाम्॥

कहाँ तक कहें, आकरग्रन्थों में काशीनिवासफल के बड़े बड़े प्रकरण लिखे मिलते हैं।

कलियुग के भयानक पापों से बचने का प्रधान उपाय गङ्गातटनिवास है, जो काशीवासी को अनायास प्राप्त हो जाता है—

अनाश्रित्य तु गङ्गां हि मुक्तिमिच्छति यः कलौ।
सूर्यं द्रष्टुमिहोद्युक्तो जात्यन्धसदृशस्तु सः॥
वृथा कुलं वृथा विद्या वृथा यज्ञा वृथा तपः।
वृथा दानानि तस्येह कलौ गङ्गां न याति यः॥

कूर्मे—

गङ्गामेव निषेवेत प्रयागे तु विशेषतः।
नान्यत् कलियुगोद्भूतं मलं हन्ति सुदुस्तरम्॥
कलौ कलुषचित्तानां पापद्रव्यरतात्मनाम्।
विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिर्गङ्गां विना नहि॥

(१) यदि कलिकाल में कोई तीर्थ है, तो वह 'गङ्गा' ही है, क्योंकि चाहे आस्तिक हों, चाहे नास्तिक इस में स्नान करनेवालों के वाह्याभ्यन्तरीण, जन्म जन्मान्तरीय 'मल' दूर हो जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि नित्य गङ्गास्नायी कदापि मलयुक्त नहीं रह सकता। गङ्गा के अमृत में स्नान करनेवाला दृष्ट तथा अदृष्ट दोनों फलों को पा जाता है।

(२) इसी तरह कलियुग में जो कुछ करने योग्य काम, व्यापार या क्रिया है तो वह 'दान' ही है, क्योंकि इस से *न मालूम, कब तक का दृढ़* 'विक्षेप' नष्ट हो जाता है। जब कि धन का सत्पात्र में विनियोग हो गया तो फिर 'विक्षेप' किस बात का रह गया ? जगत् के सब युद्धादि विवाद धनहेतुक हैं, जबकि धन का अर्थी के प्रति उचित प्रयोग हो गया, यानी आवश्यतावाले को दान दे दिया गया तो फिर 'विक्षेप' अर्थात् वाद विवाद का प्रसङ्ग ही नहीं रह गया।

३—ऐसे ही कलियुग में कहीं रहने योग्य स्थान है तो वह 'काशी धाम' ही है। क्योंकि यहाँ विद्वान् महापुरुषों के नित्य के समागम से कठोर हृदय का भी, अनादिकाल से संञ्चित 'आवरण' दूर हो जाता है। 'आवरण' यानी परदे के हट जाने से हमारी शक्ति अप्रतिबद्ध हो जाती है।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि के लिए; मल, विक्षेप, आवरण रूप दोषों का निराकरण करना सर्वप्रथम अत्यावश्यक है, इनकी निष्कृति गङ्गास्नान, दान और काशीवास है।

समय बहुत बुरा आ गया है, या मनुष्यों की बुद्धियों ने समय को अत्यधिक दूषित कर दिया है। *जो भी हो, पर जो हो रहा है वह ठीक नहीं हो* रहा है। जहाँ देखो, जिस स्थान और स्थिति को ले लो सब जगह विनाश होता ही अधिक नजर आ रहा है। कहीं भी रचना होती नहीं दिखाई देती। किससे कहें, कौन सुनता है ? सुनकर भी कोई क्या करने की सामर्थ्य रखता है ? यह ईश्वर का नियतिचक्र कभी स्थिर नहीं रहता। जिस काल का हम ऊपर वर्णन कर आये हैं उसे सद्ग्रन्थों में ऋषि, मुनि, ज्ञानी तथा संतों ने 'कलिकाल—महाकराल' बताया है। उससे उबरने का उपाय······स्नान, दान और ·····वास है, बस।

समय खराब है

(ले०—श्रीमती विभूतिदेवी, अध्यापिका)

अब समय नाजुक आ गया है, सभी अपनी अपनी रक्षा का उपाय सोच रहे हैं और उस में लगे भी हैं। स्त्रीजाति को भी अब बैठे नहीं रहना चाहिए, तुम यह मत समझो कि चहारदीवारी के परदे में हम उसी चैन से स्थिर बैठी रहेंगी, जैसी आज तक बैठी रही हैं। समझ लो, प्रकृति किसी को सदा एकरस नहीं रहने देती या तो आगे बढ़ना होगा, या पीछे हटकर गिरना होगा। जब देश में शान्ति थी उस समय पुरुष बाहर के काम में लगे थे और स्त्रियाँ गृहकार्य में तल्लीन थीं, अब देश अशान्त है, शत्रु मुल्क का दरवाजा खटखटा रहा है। ऐसे समय अन्यान्य कामों के साथ 'स्त्रीरक्षा' का कार्य

भी सामने आ गया है, इसे हल करना होगा, पुरुषों को भी और स्त्रियों को भी। 'स्त्रियों की रक्षा कैसे होगी?' यह प्रश्न देशरक्षा के सवाल से किसी तरह कम महत्त्व का नहीं है, स्त्रियों को बमगोलों का उतना भय नहीं है जितना अपनी इज़्ज़त आबरू की रक्षा का है। जब अपने ही देशवासी अपने देश की ललनाओं पर आक्रमण करने लग जायँगे, उस समय इन की रक्षा कैसे होगी, कौन करेगा?

रूस, चीन आदि स्वतन्त्र देश हैं, वे संगठित हैं। वहाँ की नारियों ने इन अत्याचारों से किसी प्रकार अपनी रक्षा कर ली होगी। स्वदेश की प्रतिष्ठा व स्वतन्त्रताप्रेम से उन में भाईचारे का भाव अधिक होगा, जिस से वहाँ के पुरुषों ने उन को साहाय्य प्रदान किया होगा। किंतु भारत की इस के विपरीत दशा है, यहाँ क्या होगा? यह सोचकर बुद्धि चकरा जाती है। क्योंकि यहाँ के लोग दूसरे की विपत्ति को अपनी मुसीबत नहीं समझते। विदेशवासी दूसरे की विपत्ति को अपनी विपत्ति समझते हैं और अपनी विपत्ति का सामना करके उसे मिटाने का यत्न करते हैं, उस के सामने सिर नहीं झुका देते। किंतु यहाँ के लोग अपने को कुछ नहीं समझते, यह सब परतन्त्रता का प्रसाद है जो आपत्ति के समय हमें कुचल डाल सकता है और शान्ति के समय आगे या ऊँचा नहीं होने देता।

पहले स्वतन्त्रता तथा परतन्त्रता का प्रश्न सब से अधिक महत्त्व का था, किंतु 'हम अपनी रक्षा कैसे कर सकेंगे, विशेषतः अङ्गनागण की आबरू कैसे बचा सकेंगे?' ये सवाल हैं जो स्त्रीजाति को खुद हल करने होंगे। इस में पुरुषों का सहयोग प्राप्त हो सके, तो अच्छा ही है, नहीं तो खुद स्त्रियों को अपना काम आप करना होगा। यदि नारीजाति अपनी रक्षा, उन्नति आदि का काम आप अपने ज़िम्मे ले ले, तो पुरुषों के सिर से ज़िम्मेदारी का बहुत बड़ा बोझ उतर जाय, जिस से वे देश का कार्य करने में और भी सशक्त हो जायँ।

मैं स्त्रीजाति से कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, देखिए—स्त्रियों को गृहकार्य ही अधिक करने पड़ते हैं, हमारे देश में पारिवारिक ढंग से रहने की प्रथा है, कौटुम्बिक प्रणाली में एक प्रधान होता है, सभी घरों में कोई न कोई स्त्री प्रधान होती है। जो प्रधान हो उस को चाहिए कि वह अप्रधान और कुटुम्ब के अङ्गस्वरूप दूसरे लोगों का अपने बराबर पूरा ध्यान रखे, उन्हें भरसक कोई कष्ट न होने दे, साथ ही एक दूसरे की निन्दा, शिकायत न करने पावे, और कोई भी ऐसी बात न होने पावे जो शक्ति की विरोधी हो।

मैं स्त्रीजाति में प्रायः इस बात का अधिक अभाव देखती हूँ कि उन की बातों में और व्यवहार में दूसरे की तीव्र तथा कटु समालोचना और ईर्ष्या का भाव भरा होता है। वे किसी स्त्री की ज़रा सी भूल को बरदाश्त नहीं कर सकतीं। वे किसी की हलकी सी गलती की बात सुन पावें फिर तो इन की हज़ारों ज़बान कैंची की तरह दूसरे के कलेजेरूप वस्त्र को कतरने पर आमादा हो जाती हैं। इन का यह स्वजातिद्वेष हानिकर है। इसी दोष के कारण पुरुषों ने इन्हें पाँव की जूती तक की उपमा दे डाली है और इसी से नित्य अपमान सहन करने पड़ते हैं। ईर्ष्या द्वेष पुरुषों में भी होते हैं, पर वे संगठित हैं, सभी तरह की शक्ति के एकमात्र अधिपति हैं और उन्नति के सब साधन उन के हाथ में हैं। उन के ईर्ष्या द्वेष उन्हें इतनी हानि नहीं पहुँचा सकते, यदि कुछ हानि हो भी जाती है, तो वे उसे बरदाश्त करने

की ताकत रखते हैं। पर तुम में इतना दम नहीं है, जिस भार को हाथी वहन कर सकता है उसे बकरी नहीं उठा सकती। कुटुम्ब का अन्तरङ्गभार तथा प्रबन्ध तुम्हारे जिम्मे है, उस में तुम्हें उदारता से बरतना चाहिए। ऐसा न हो कि जैसे—

एक स्त्री का स्वभाव अच्छा नहीं था, वह अपनी बूढ़ी सास के साथ अच्छा सलूक नहीं करती थी सास को मड़े गले चोकर की कच्ची जली रोटी और दाल का बेस्वाद पानी देती थी, वह भी मिट्टी के पात्र में। उस स्त्री के बेटे की बहू आई। वह स्त्री बहू से नई होने के कारण प्यार करती थी, तथा बहू के हाथ से सास को भोजन पहुँचवाया करती थी। बहू जब बड़ी सास को भोजन करा चुकती, तो जो मिट्टी के पात्र होते, उन का घर के एकान्त कोने में जमा कर देती थी। थोड़े दिनों में मिट्टी के बर्तनों का ढेर लग गया। एक दिन उस तेजमिजाज स्त्री ने पूछा—ये मिट्टी के जूठे पात्र क्यों इकट्ठे करती है, ये हमारे किस काम के? पुत्रवधू ने उत्तर दिया—माताजी, जब आप बुढ़िया हो जायँगी, आप का पौरुष थक जायगा और घर की मालिक मैं बनूँगी, तब मैं आप को किस में खाना दूँगी या भेजूँगी, रोज रोज के लिए इतने मिट्टी के बर्तन कहाँ से आवेंगे? आगे भी तो दाम खर्चने पड़ेंगे, ये सब आप के लिए इकट्ठे कर रही हूँ। यह सुनकर उस स्त्री को होश आ गया, नशा सा उतर गया। उस दिन से बूढ़ी अतएव लाचार सास को देवी की तरह पूजने लगी।

इसी तरह अपनी औरत की शिकायत सुनकर एक आदमी ने अपने पुत्र से कहा—'हमारे बाप को याने अपने दादा को एक कम्बल देकर घर से बाहर निकाल दो, इन की आदत घर में रहने लायक नहीं है।' लड़के ने आधा ही कम्बल दिया। लड़के की किफायतसारी देखकर पिता खुश हो, हँसकर बोला—बेटा, कम्बल आधा फाड़कर अपने पास क्यों रख लिया? पुत्र ने जवाब दिया—आप के लिए रख छोड़ा है आप को बुढ़ापे में घर से निकालने के समय पूरा कम्बल खराब करना पड़ता, यह सुनकर पिताजी की आँखें खुल गईं।

बहनो! कहने का मतलब यह है कि तुम लोग अधिकार पाकर उस का दुरुपयोग मत करो, किसी की बुराई मत किया करो, जब कभी इकट्ठी हुआ करो, कुछ अच्छी बात कहा सुना करो, जो इधर उधर की बातें करती हों, उन को मना कर दो यदि बस न चले तो वहाँ से उठ जाओ। जब तुम किसी की निन्दा सुनोगी नहीं, तो कोई तुम्हारे सामने ऐसा किया भी नहीं करेगा।

दूसरी बात यह है कि अपने अमूल्य समय को बनाव शृङ्गार में ही मत बिता दिया करो। रुपया फूँककर कृत्रिम उपायों से सुन्दर बनने की कोशिश करनी छोड़ दो। असली सुन्दरता योग्यता से है। अब आवश्यकता वीराङ्गना बनने की है। विलासी जीवन मनुष्यत्व को नष्ट कर देता है। फ्रांस देश जो कभी योद्धाओं में अग्रसर माना जाता था, विलास में पड़कर बरबाद हो गया। इंगलेंड को भी विलास ने पहले जैसा त्यागी और तेजस्वी नहीं रहने दिया। चटकीली रंगीली पोशाक तुम्हारा शृङ्गार नहीं है, विद्या शृङ्गार है, जितना अधिक हो सके पढ़ो, संगठित होओ, घमंड मत करो, घर के छोटे बड़े सब काम निस्संकोच और बिना आलस्य खुशी से कर लिया करो, सेवाधर्म से मत चूको, ऐसे शब्द बोलो, मानो फूल बरस रहे हों, गुड़ियों से मत खेलो, गंदी मत रहो, कम बोलो, अधिक सोचो, काम मे

मन मत चुराओ, अपने स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान रखो। पहले आर्यनारियाँ पुरुषों के बराबर समर्थ होती थीं, लड़ाइयों में उन की सहायक होती थीं, अब भी भीलनियाँ और ब्रज की गुजरियाँ थप्पड़ मार दें, तो पुरुषों के दाँत बाहर आ जाँय। यह मत समझो कि हम दुर्बल हैं, मूर्ख हैं, नासमझ और दीन हैं। 'आत्मानं नावमन्येत' आदि वचनों से शास्त्र में आत्मलाघव को पाप बताया है। तुम ही सब कुछ हो, यह बात नहीं है, तो इस में भी संदेह नहीं है कि तुम भी बहुत कुछ हो।

सदा यह बात मत भूलो कि पुरुष और स्त्री ये दोनों समाज के एक अङ्ग हैं और इन की उत्पत्ति का स्रोत भी एक जैसा ही है, पर इन की जीवन की सफलता और उद्देश्य भिन्न भिन्न हैं। इस में संदेह नहीं कि नारीजाति के दौर्बल्य से समाज कभी बलवान नहीं हो सकता। स्त्रियों को अपने नाजुक होने का बड़ा फक्र है, पर नाजुकपना तो कमजोरी का ही नाम है। तुम्हारी सुकुमारता के कारण ही लोग तुम्हें अबला कहने लगे हैं। इतिहासविज्ञ जानते हैं कि पहले नारीजाति दुर्बल नहीं थी। समस्त संसार में जब प्रेमी और प्रेम देवता की आराधना पर उदाहरण दिये जाते हैं, तो सर्वोत्कृष्ट उपमा दीपक और पतङ्ग की दी जाती है। किंतु यह प्रकट सत्य है कि पतङ्ग दीपक पर उसी समय तक आकर्षित होता है, प्रभावित होता है, जब तक दीपक में ज्योति रहती है—वह प्रकाशित है, यानी जब तक वह बुझता नहीं है। किंतु विश्व में आर्य्यावर्त्त की महिलायें ही ऐसी हैं, जिन्होंने बुझे दीपक पर यानी मृत पतियों की चिताओं पर एक नहीं बाईस बाईस सहस्र के समूह के साथ जौहररूप नरमेधयज्ञ में अपने को होम दिया, स्वाहा कर दिया। जिस नारीजाति ने मरे हुए पतियों के लिए अपना जीवनसर्वस्व खुशी खुशी निछावर कर दिया वह अपने व्रतपालन में अत्यधिक मनोबल प्रकट करने के कारण 'अबला' नहीं कही जा सकती।

अब भी वही समय आ रहा है, न मालूम ईश्वर को क्या कबूल है? वह जो करेगा, अच्छा ही करेगा। उस की आज्ञा पालने के लिए तुम तय्यार रहो।

अन्त में मैं आप लोगों से यही कहूँगी—आप रंग-बिरंगी पोशाक पहनकर मनचलों की दृष्टि में तितली न बनें। वेश भूषा, रहन सहन साधारण और विचार ऊँचे होने चाहिएँ। भाव गंभीर और सगठित होने की जरूरत है। यदि ऐसा न किया जायगा, तो इस भयानक समय में हम लोग अपनी जाति की रक्षा नहीं कर सकेंगी। समय खराब आ गया। आता जाता है। वख्त पड़ने पर सब आपा-धापी में पड़ जायँगे, उस समय कोई किसी की खोज खबर न ले सकेगा। इस लिए तुम सेवक बनो, ताकि आपत्काल में अपनी रक्षा कर सको, शान्तिसमय में दूसरों की सहायक हो सको। इस लिए शृङ्गारसामग्री का बिल्कुल त्याग कर दो। क्योंकि समय खराब है।



ईश्वर है ? हाँ है

(ले०—महात्मा मो० क० गांधी)

इस जगत् में कोई अवर्णनीय छिपी शक्ति घट घट, कण कण में भरी हुई है। वह मुझे इन आँखों से तो नहीं दिखाई देती है, फिर भी यह प्रतीति जरूर होती है कि वह है। यह अदृष्ट शक्ति हम पर किसी न किसी तरह अवश्य प्रभाव डालती है, उस के वर्णन के लिए कोई विशेषण काफी नहीं हो सकता। क्योंकि वह इन्द्रियातीत है, अपनी इन्द्रियों से हम जो कुछ भी जान सकते हैं उस से वह भिन्न है। फिर भी थोड़े अंश में ईश्वर की हस्ती को सिद्ध करने के लिए बुद्धि, तर्क का प्रयोग हो सकता है। सामान्यतः प्राकृत जगत् में भी हम जानते हैं कि अनेक आदमी अपने राजा को न तो पहचानते ही हैं, न उस के विषय में उन्हें कुछ ज्ञान ही होता है कि वह राजा कैसे और क्यों राज करता है ? ऐसा होते हुए भी ये लोग इतना निश्चित जानते हैं कि कोई न कोई राजा अवश्य है। कई बार देशयात्रा में मुझे ऐसे अबोध लोग मिले हैं, जिन को पता न था कि यहाँ कौन राज्य करता है ? पूछने पर यही जवाब मिलता था कि कोई देव राज्य करता होगा। इस से यह नतीजा निकलता है कि जब इन लोगों का ज्ञान अपने राजा के बारे में इतना कम है, तो मेरा ज्ञान ईश्वर के बारे में और भी कितना कम होना चाहिए। क्योंकि जितना अन्तर उन लोगों के और उन के राजा के बीच में है उस से बहुत अधिक अन्तर मेरे और ईश्वर के बीच है। ऐसी दशा में यदि मैं उस राजराजेश्वर परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता हूँ तो इस में कौन सा आश्चर्य हो सकता है ? किंतु इस प्रकार अनजान गरीब लोग अपने राजा को न जानते हुए भी यह जानते हैं कि हमारे देश में कुछ न कुछ व्यवस्था जरूर है, ठीक उसी तरह मैं भी जानता हूँ कि इस जगत् में एक बड़ी व्यवस्था कायम है। मैं अनुभव करता हूँ कि इस विश्व की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक जीवधारी एक अविचल नियन्त्रण के मातहत कार्य कर रहे हैं। यह जड़ नहीं हो सकता। क्योंकि कोई जड़ नियन्त्रण चैतन्यमय मनुष्य पर शासन नहीं कर सकता। श्री जगदीशचन्द्र वसु ने सिद्ध कर दिखाया है कि इस जगत् में सब चीजें चैतन्यमय हैं। इस लिए हम यह क्यों न कहें कि जो शक्ति जीवमात्र को नियमबद्ध रखती है वही ईश्वर है। इस में शक्ति, उस का संचालक नियम और नियन्ता एक ही है। परंतु इस लिए कि मैं उस नियम और नियन्ता से अनजान हूँ, कोई अधिकार नहीं है कि मैं उस की सत्ता से ही इन्कार कर दूँ। जिस तरह प्राकृत राजा की हस्ती से इन्कार करने पर उस की हस्ती मिट नहीं सकती, न कोई लाभ ही हासिल हो सकता है, उसी तरह ईश्वर की हस्ती से इन्कार या अज्ञान से कुछ हासिल नहीं हो सकता है। मैं ईश्वरी कानून की पाबंदी से किसी प्रकार छूट नहीं सकता। बल्कि जैसे प्राकृत राजा की हस्ती और उस के नियमों को मानने से उल्टा उस के शासन में रहना सरल हो जाता है, उसी तरह ईश्वर और उस के नियमों के ज्ञान और स्वीकार से इस संसार में जीवन सरल बन जाता है।

मुझे यह निरन्तर अनुभव होता है कि मेरे इर्द गिर्द सब वस्तुओं में परिवर्तन होता ही रहता है और इस परिवर्तन के अंदर कोई अपरिवर्तनीय तत्त्व

समाया हुआ है,वह अपरिवर्तनीय अविचल शक्ति सब को धारण कर रही है। वही सब को पैदा करती और नाश करती है तथा फिर से रचना करती है। इसी शक्ति को ईश्वर कहना चाहिए। क्योंकि दृष्ट पदार्थमात्र का नाश होता रहता है इस से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि एक अदृष्ट ईश्वर ही कायम है।

अब प्रश्न यह है कि यह शक्ति पोषक है या नाशक? दैवी है या राक्षसी? मैं उसे दैवी और पोषक स्वीकार करता हूँ। क्योंकि इस मृत्युमय संसार में जीवनप्रवाह अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। असत्य नाशवान् है, एक सत्य ही स्थिर है। अँधेरे में भी प्रकाश भरा ही है। इस से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर चेतन है, सत्य है, प्रकाशित है। ईश्वर प्रेम की मूर्ति है, वही शुभातम शुभ है।

परन्तु जो केवल बुद्धि को ही, तर्क को ही संतुष्ट करके रह जाय वह ईश्वर कहाँ से हो सकता है, फिर बुद्धि को तो निश्चित रूप से संतुष्ट करना असंभव सा है। इस लिए ईश्वर तो वही है जो हृदय का स्वामी बन सकता हो, जो उस को हिला सकता हो। अपने भक्त के प्रत्येक कार्य में उस प्रभु की प्रतीति होनी चाहिए और यह प्रतीति तो साक्षात्कार से ही हो सकती है। यह साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा होनेवाले अनुभव से परे होता है। इन्द्रियों का अनुभव मिथ्या हो सकता है, परंतु इन्द्रियों से परे जो अनुभव होता है उस में भ्रम या गलती नहीं हो सकती। यह बाहरी प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता, बल्कि मनुष्य के परिवर्तित जीवन 'कायापलट' से होता है। यह प्रमाण हमें ऋषि मुनि और पैगंबरों के जीवन से, उन के अनुभवों से मिलता है। उन के वचनों को न मानना अपने अस्तित्व को न मानने के समान है।

परन्तु इस साक्षात्कार के पहले अचल श्रद्धा होती है। जो मनुष्य ईश्वर का दर्शन करना चाहता है, वह ऐसी श्रद्धा रखकर ही कर सकता है। क्योंकि श्रद्धा का प्रमाण बाहरी चीजों से नहीं मिल सकता, इस लिए हमें चाहिए कि जगत् के न्याय शासन को स्वीकार करें और विश्वास करें कि जगत् सत्य और अहिंसा पर निर्भर है। यह प्रतीति सत्य और अहिंसा के अभ्यास से आ सकती है। मुझे स्वीकार करना होगा कि श्रद्धा का प्रमाण मैं बुद्धि के द्वारा नहीं दे सकता, श्रद्धा बुद्धि से परे है। इस लिए किसी को असंभव को संभव बनाने की चेष्टा न करनी चाहिए। पापवृत्ति के अस्तित्व के लिए तर्क द्वारा कोई कारण नहीं बताया जा सकता। ऐसा करने की इच्छा करना ईश्वर के साथ मुकाबला करने जैसा होगा। इस लिए मैं नम्रतापूर्वक उस के अस्तित्व को स्वीकार करके ही रह जाता हूँ। ईश्वर को मैं बहुत सहनशील और धैर्यवान् कहता हूँ, क्योंकि वह जगत् में पाशविक पापवृत्ति को रहने देता है। मैं यह भी जानता हूँ कि ईश्वर सर्वथा निष्पाप है। मैं यह भी जानता हूँ कि जिंदगी का सौदा करके भी अगर मैं पापवृत्ति से मुकाबला न करूँ, तो कभी ईश्वर की पहचान न कर सकूँगा। नम्र और मर्यादित अनुभव से मेरा यह मन्तव्य दृढ हुआ है। जितना मैं शुद्ध होने की कोशिश करता हूँ उतना ही ईश्वर के निकट जा रहा हूँ, ऐसी प्रतीति होती है। आज तो मेरी श्रद्धा किंचित् ही कही जा सकती है, लेकिन जब वह हिमालय जैसी अचल और उस की चोटी पर बसनेवाले हिम की तरह शुद्ध और स्वर्णमय बन जायगी, तब मैं उस के बिलकुल नजदीक पहुँच जाऊँगा।

(संकलित)



मेरी परमार्थचर्चा

(ले०—स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी महाराज)

प्रश्न—गुरु कौन हो सकता है ?

उत्तर—जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् सकल श्रुति शास्त्रों के अर्थ, क्रम, पद, पदार्थ, प्रसंग का ठीक ठीक जानने और बतानेवाल है तथा एक अद्वितीय परब्रह्म परमेश्वर मे सदा श्रद्धा, भक्ति, ध्यान तथा योग के द्वारा निष्ठ है, वही सद्गुरु हो सकता है।

प्रश्न—कई लोग तो कहते हैं कि गुरु चाहे कैसा भी हो, उस के गुण दोष देखने से हमें क्या मतलब। गुरु से गुरुमन्तर ले लेने, कान फुँका लेने-मात्र से ही शिष्य कृतकृत्य अर्थात् कल्याण का भागी हो जाता है। शिष्य को तो गुरु की तन, मन, धन से सेवा करना और शरण होकर रहना चाहिए, क्योंकि कहा भी है—

गुरु गूँगा गुरु बावला गुरु देवों का देव।
तन मन धन सब अरपकर गुरुचरणों को सेव॥

ऐसे वचन भी तो साधु महात्माओं के हैं।

उत्तर—नहीं, ऐसी मान्यता बुद्धिहीन मूर्खों की होती है, किंतु बुद्धिमान् लोग तो उपरोक्त ज्ञानादि गुण देखे बिना कभी किसी को गुरु बना बैठते नहीं, चाहे उन्हें भले ही यावज्जीवन गुरुदीक्षा लिए बिना ही रहना पड़े। और जो दोहा आप ने कहा सो ठीक नहीं, यह तो किसी स्वार्थसिन्धु, मिथ्यावादी मूर्ख का है।

उस बिचारे को यदि कम से कम इस (गुरु) शब्द के अर्थ का भी बोध होता या सुना होता, तो वह ऐसा अनर्थक दोहा कभी न गढ़ता। भला कहिए, जो गुरु गूँगा याने बोलना न जाने, वह क्या किसी को उपदेश कर सकता या समझा सकता है ? तथा जो गुरु बावला याने पागल या भोला भाला, ज्ञान विज्ञान से हीन है, तो ऐसे नामधारी गुरु से क्या किसी समाज, देश वा व्यक्ति का उपकार हो सकता है ? और जो ऐसे नामधारी गुरु को देव या देवों का देव मान लेते हैं वे लोग अपना तन, मन, धन, धरम, विद्या, बुद्धि सब कुछ खो बैठते हैं। उन के पल्ले कुछ नहीं पड़ता, बल्कि ऐसे—'अन्धे गुरु बहरे चेला दोनो खेलें दाँव। भवसागर में डूबते बैठ पत्थर की नाँव।' अज्ञान की नाव में बैठ दुःख चिन्ता, हानि ग्लानि, भय शोक, संताप अशान्ति आदि रूप गोते सदा खाया करते हैं।

प्रश्न—गुरु शब्द का क्या अर्थ होता है, सो कृपया हमें आप समझाइए।

उत्तर—सुनिए—

'गु' शब्दो ह्यन्धकारार्थो 'रु' शब्द स्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥

याने गुरु शब्द का भावार्थ यह है कि इस में जो 'गु' शब्द है वह अन्धकाररूप अज्ञान का बोधक है और 'रु' शब्द यह प्रकाशरूप ज्ञान का बोधक है, याने अज्ञानरूप अन्धकार के हटाने तथा ज्ञानरूप प्रकाश के फैलाने का जिस व्यक्ति में गुण होता है उसे ही 'गुरु' शब्द से संबोधित और संमानित किया जाता है।

प्रश्न—क्या ये माला, कंठी, तिलक, चन्दन, दण्ड, कमण्डलु, काषाय (गेरुवा) वस्त्र आदि जो ऊपर से धारण करने के चिन्ह हैं, इन के धारण करने से कोई विशेष लाभ होता है या नहीं ?

उत्तर—विशेष लाभ तो इन चिन्हों के धारण करने से कोई नहीं देखा जाता।

प्रश्न—तो इन्हें लोग किस लिए धारण करने लगे?

उत्तर—भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के देखने से पता चलता है कि ये सब चिन्ह वैदिक काल में ना थे ही नहीं, किंतु पीछे से साम्प्रदायिक आचार्यों, मज़हबी महात्माओं ने अपने अपने भक्त शिष्यों को तिलक छाप, माला, कंठी, बाना (भेष) पृथक पृथक् दिया। वह इस लिए कि अनेक देशों में और अनेक समयों में अनेक शिष्य भक्त होने के कारण कौन अपने सम्प्रदाय का और कौन दूसरे सम्प्रदाय का शिष्य है, इस की पहिचान रहे। इस लिए जो जो बातें गुरुओं को प्रिय थीं और जिन चीज़ों को वे लोग धारण करते थे, उन्हीं चीज़ों और बातों का नियम अपने शिष्य भक्तों पर धर्म का रूप देकर लागू किया।

प्रश्न—बड़े सतों से हम ने सुना है कि—

माला बड़ा दयाल का तिलक छाप अरु माल।
यम डर पै काल् कहै भय मानै भूपाल॥

ये सब बातें सत्य और कल्याणकारी हैं या नहीं?

उत्तर—भाई सत्य और कल्याणकारी केवल शास्त्रोक्त यज्ञ, दान, तप आदि कर्म अथवा शम दमादि साधन ही कहे हैं कि जिन के धारण करने से सत्य ज्ञान और मोक्ष मिलता है। और देखिए, ये ही साधन मनुष्यमात्र को पवित्रता और मोक्षरूप कल्याण के करनेवाले शास्त्रों में कहे हैं। यथा—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥
—गी० १८।५

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।
—गी० ३।९

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।
—गी० ४।१५

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
यजुर्वेद अ० ४०

यज्ञ, दान, तप इन कर्मों को कभी नहीं त्यागना चाहिए, यज्ञ करने, दान करने तथा तप करने से विचारशील व्यक्ति पवित्र होते हैं।

भगवान् की प्रसन्नता के लिए कामनारहित कर्मों का अवश्य करना चाहिए।

साधारण पुरुषों को अन्तःकरण शुद्धि और ज्ञानियों को लोकसंग्रहार्थ कर्म करने चाहिएँ। अन्त समय तक कर्मों को करते हुए ही जीने की इच्छा करो। इन सब शास्त्रवचनों का आशय यही है कि मनुष्य को केवल निष्काम यज्ञ, दान, तपादि कर्म करने से अन्तःकरण की शुद्धि तथा पापदोषों की निवृत्ति होती है। अन्त में ज्ञान की प्राप्ति द्वारा सत्य स्वरूप की प्राप्तिरूप पवित्रता और मोक्षरूप आनन्द की प्राप्ति होती है। किंतु आप ने जो माला, चन्दन, काषाय आदि मोक्ष का साधन कहा, सो ठीक नहीं। उन सब से कभी मोक्ष नहीं मिल सकता है।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज।
क्षमार्जवं दयाशौचसत्यं पीयूषवत्पिब॥

हे भाई! परम कल्याणमय प्रभुप्राप्ति की इच्छा हो, तो बाहरी विषयों, प्रपञ्चों को विष की तरह त्याग दो। क्षमा, सरलता, दया, शुचिता और सत्यरूपी अमृत का पान भगवत्परायण सद्गुरु द्वारा करते रहो।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

जीवन का छोर

(र०—श्री सुरेन्द्रनाथ "आजाद" विशारद)

(१)

जीवनसन्ध्या में उजियाली ;
अम्बरतल के झाँकी पार !
अपने नव सुकुमार करों से ;
बुला रही है ज्योति प्रसार !

(२)

चिन्ह उठे ! तूफान सिन्धु में ;
किये भयानक रूप अनेक !
ग्लानियुक्त होना मत निर्मम ;
आलिङ्गन कर मृत्युविवेक ॥

(३)

है अनन्त अविचल वह माया ;
भुवन मोहिनी का उपहार !
अमर आत्मा अचल अलौकिक ;
रहता है अनन्त के पार !!

(४)

तन्त्री नश्वर की बज जाये ;
चलने वाले हो तैयार !
जागृत जीवन आज निशा है,
नश्वरता से सीखो प्यार ॥

(५)

क्षणभङ्गुर की अभिलाषा तज ;
निकलो जगती तल के पार !
मञ्जुल मुग्धा के अधरों में ;
कभी न पाओगे वह प्यार ॥

(६)

किंकर्त्तव्यविमूढ विश्व है ;
इस में भरा हास उल्लास !
क्षण में परिवर्तन सब होगा ;
अब से चेतो दिव्य प्रकाश ॥

(७)

कर्णधारगुरु ज्ञानपोत पर ;
भवनिधि पर अभिमानी जीव !
चपल युगल जग में कर देगी ;
होकर माया एक अजीव ॥

इति शुभम्।



सुखी जीवन

(ले०—पं० श्री वासुदेव शास्त्री तैलङ्ग, शु० वे० विशारद)

शिष्य—गुरुवर्य, आप के उपदेश को मैं ने अच्छी प्रकार समझा है, साथ ही ब्रह्मचर्य की महत्ता भी हृदयङ्गम की है। अब क्या आप की इतनी कृपा और होगी, जिस से हमें हमारे अधःपतन का कारण सुना सकें और उस का परित्याग करा सकें ?

गुरु—प्रियवत्स, संसार में रहकर जीवन के कठिन संग्राम में हमें शारीरिक, आत्मिक और मानसिक सब प्रकार का बल खर्च करना पड़ता है। वत्स, यह बल तो ब्रह्मचर्य द्वारा ही हम संचय कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा यदि हम बल इकट्ठा न कर सकें तो खर्च कहाँ से करेंगे। आज जो हम से जीवन-निर्वाह के सामान जुटाये नहीं जुटते, बात बात में कष्ट उठाना पड़ता है, पल भर शान्ति नहीं, सब का कारण केवल यही है कि ब्रह्मचर्य की आवश्यक प्रथा का हम ने लोप कर दिया है।

शिष्य—श्रद्धेय गुरुजी, तब तो रोगी होना, दरिद्री होना, दुर्बल होना और अनेक दुःख होना भी ब्रह्मचर्य के नष्ट होने का ही फल है।

गुरु—वत्स, यही कारण है कि हमारा शरीर रोगी ब्रह्मचर्य के अभाव से होता है। संतान न होना और दुर्बल होना, तथा होकर मर जाना भी इसी कारण से है। आज ये बातें एक जगह में नहीं सारे भारत में वर्तमान हैं। यदि सच कहा जाय तो हमारी अरोगता, आयु, सौन्दर्य, ऐश्वर्य और हमारी सारी भावी कामनाओं का जो मूल कारण है वह एकमात्र ब्रह्मचर्य ही है। इसी के अनुष्ठान से हमारी धार्मिक और नैतिक सारी कामनाएँ पूरी होंगी। ब्रह्मचारी ही आदर्श संतान पैदा करके उन्हें योग्य पुत्र बना सकता है। उत्तम संतान चाहनेवाले को उचित है कि वह ब्रह्मचारी बने। हमारे सामने जीवन का, सुख दुःख का, लाभ हानि का, साहस, वीरता, परोपकार का जो महान् भवन खड़ा हो सकता है उस की नींव ब्रह्मचर्य ही है।

शिष्य—गुरुवर्य, हमारे जीवन का उद्देश्य क्या ब्रह्मचर्य धारण से सिद्ध हो सकता है ?

गुरु—वत्स, मनुष्यजीवन का उद्देश्य बड़ा गहन है। संसार में आकर केवल अपना ही उपकार नहीं करना पड़ता है किंतु समस्त प्राणियों का सहायक होकर सामूहिक सहायता या शासन भी करना होता है। महान् शक्ति प्राप्त किये बिना सहयोग या शासन नहीं हो सकता और वह शक्तिसंपादन का उपाय है केवल ब्रह्मचर्य। इस पर यदि उदाहरण दिया जाय तो हमें राम, लक्ष्मण और हनुमान् जैसे ब्रह्मचारी का देना होगा।

शिष्य—श्रद्धेय, प्राचीन आचार्य ब्रह्मचर्य पर जैसा विशेष ध्यान देते थे, आज वैसा क्यों नहीं होता ? आज की सभ्यता क्यों ऐसी दूषित है जो बच्चे बच्चे को दूषित बना रही है ? क्या आधुनिक आचार्य एवं माननीय सज्जन सोये हुए हैं ? वे अपने शास्त्रों के महत्त्व को क्यों नहीं खोलते ?

गुरु—शिष्य, प्राचीन काल में हमारे गुरुकुलों की परिपाटी हमारे हाथ थी, स्वयं हम कर्ता धर्ता थे, इन के आचार्य पूर्ण विद्वान, जितेन्द्रिय और तपस्वी होते थे। आजकल हम पराधीन हैं, हमारा अधिकार

किसी पर नहीं। हम B. A. M. A. तक रट्टू बने रहते हैं, उस से हमारा मस्तिष्क विकृत हो जाता है। हमारी सारी आयु इसी में अस्त हो जाती है, फिर हम किसी काम के नहीं होते, यदि हम ने कुछ विशेषता प्रकट की तो विदेशियों के हाथ मोल बिक जाते हैं और अपने भाइयों का ही नाश करते हैं।

भारत में आज इस पाश्चात्य सभ्यता के अनेक पुजारी मच्छरों के समान भनभना रहे हैं, उन्हें कहीं पर भी स्थान नहीं। वे सब तरह से मारे गये, शरीर मे उत्साह नहीं, बल नहीं, साहस वीरता नहीं और दुनिया के किसी भी श्रेष्ठ फलभोग की क्षमता नहीं। ये सब संकट असदाचार या बालविवाह द्वारा ब्रह्मचर्य का नाश करके ही हमने मोल लिये हैं। जब तक भारतवासी बालिकाओं का विवाह छोटे बालकों से करते रहेंगे, तब तक उन की संतान अधिक अच्छी दशा में कभी न रह सकेगी।

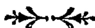
शिष्य—तो विवाह का क्या उद्देश्य है ?

गुरु—विवाह का केवल उद्देश्य है गृहस्थाश्रम की मर्यादा रखना। मनुजी कहते हैं कि जैसे सब नदियाँ समुद्र मे जाकर मिल जाती हैं उसी प्रकार सब आश्रम गृहस्थ मे मिलते हैं।

प्राचीन समय में देवताओं की मूर्ति की प्रत्येक गृहस्थ जो पूजा और संमान करता था इस का अभिप्राय यह भी था कि उन के चरित्रों को समय समय पर सुनकर छोटे बच्चों को उधर आकर्षित कराया जाय, पर आजकल इस के विरुद्ध दशा है। वर्तमान काल के यान्त्रिक संगीत और नृत्य के नायक फिल्म स्टारों के आदर्श और संस्कारों से छोटे बालक कैसे सुधर सकते हैं ? आप ही सोच लें। यदि कोई पिता अपनी संतान को विद्वान् या धनवान् न भी बना सके तो कुछ हानि नहीं, यदि वह अपनी संतान को व्यभिचार के प्रभाव से बचाकर सदाचारी, संयमी बना सका तो उस का पिता होना धन्य हुआ।

शिष्य—दुराचार से क्या होता है और इस का फल क्या होता है? आजकल इस का बाजार क्यों गर्मागर्म है ?

गुरु—वत्स, जिस आनन्द के लिए मनुष्य अपनी इज्जत आबरू, धन, स्वास्थ्य, जीवन, लज्जा सब को छोड़कर व्यभिचार में गिरता है उस विषयानन्द की एक बूँद भी उसे नहीं मिलती। उस से हजार लाख गुना आनन्द पशुओं को अपनी गम्भीर, स्वस्थ, सबल प्रकृति के कारण निरोग और स्वाभाविक जीवन मे प्राप्त होता है। इतिहासो मे देखा गया है कि बड़े बड़े वीर जिन के चलने से पृथ्वी धमकती थी, जब वे व्यभिचार में फसे तो कुत्ते की मौत मारे गये। बड़े बड़े ज्ञानियों का इस रास्ते पर जूतियों से स्वागत होते देखा। असंख्य युवकों को इस पाप में तड़पकर मरते देखा। रावण जैसा वीर पण्डित व्यभिचार से ही मारा गया। मुगल साम्राज्य इसी में डूब मरा, यह कल की बात है। कुछ भी हो, यह तो निष्पक्ष कहा जायगा कि व्यभिचारी को हमेशा दुःख है और ब्रह्मचारी को हमेशा सुख है। यदि सुखी जीवन चाहिए तो रामराज्य का स्मरण करते हुए एक पत्नीव्रतधारी बनो, रामचरित्र का निस दिन जप करते हुए आनन्द से समय व्यतीत करो।



निरोध

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध' यह योगदर्शन का पहला सूत्र है, इस का अर्थ जानने के लिए योग, चित्तवृत्ति और निरोध इन तीन शब्दों का अर्थ जानना चाहिए। इन में से चित्त का अर्थ कहा जाता है—

इन्द्रिय दो तरह की होती हैं, बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय। पुरुष की वृत्ति किसी न किसी इन्द्रिय के आश्रय में उत्पन्न होती है। अन्तरिन्द्रिय चार प्रकार की होती है और वृत्ति के लिए इसी की अपरिहार्य आवश्यकता है, वे चार प्रकार ये हैं,—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार। योगशास्त्र में चित्त से चारों का संग्रह होता है, क्योंकि चित्त में ही सब व्यापार शुरू होते हैं। उस की वृत्ति चञ्चलता के कारण अनन्त प्रकार की होती है। तथापि योगशास्त्रकारों ने प्रतिपादन के सौकर्यार्थ वृत्ति को पाँच प्रकारों में बाँटा है, यथा—

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृतय।

यो० द० १—१८

पुनश्च इन के दो विभाग और भी किये हैं—क्लिष्ट और अक्लिष्ट। एक और तीसरा क्लिष्टाक्लिष्ट विभाग भी हो सकता है। यह क्लेश भी पाँच प्रकार का है—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।

यो० द० २-३

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। इन में अनित्य, अपवित्र, दुःखपूर्ण और जड वस्तुओं को नित्य, पवित्र, सुखयुक्त और चेतन समझना यह चार तरह की अविद्या है। अर्थात् उत्पत्तिवाले होने से अनित्य, पृथिवी आदि प्रपञ्च को सदा रहनेवाला समझना प्रथम अविद्या है। अत्यन्त बीभत्स, विकृत, अस्थिमांसलिप्त देह को पवित्र, कमनीय, नूतन समझना दूसरी अविद्या है। इस शरीर की अपवित्रता को योगभाष्यकार भगवान् व्यास ने इस प्रकार निरूपण किया है—

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भात् निष्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः॥

स्थान, बीज, उपष्टम्भ, निष्यन्द, निधन और आधेयशौच इन कारणों से पण्डितों ने शरीर को अशुचि कहा है। यहाँ स्थान नाम स्थिति का है अर्थात् मल मूत्र आदि दुर्गन्ध वस्तुओं से लिप्त जो अत्यन्त अपवित्र माता का उदर है, वह इस शरीर की उत्पत्ति का क्षेत्र यानी स्थान है। एवं अत्यन्त मलिन जो माता पिता का रज वीर्य है, वह इस का उपादान कारण यानी बीज है। भुक्त, पीत अन्न जलादि के परिपाक से उत्पन्न जो रुधिरादि रूप से परिणत रस है वह इस का उपष्टम्भ यानी आश्रय है क्योंकि इस रस से ही शरीर धारण होता है। मल मूत्र पसीना प्रभृति अपवित्र पदार्थों का शरीर से निष्यन्द (निकलना) होता है। निधन

अर्थात् प्राणवियोग के बाद यह शरीर अस्पृश्य हो जाता है, क्योंकि चाहे वेदपाठी हो या ज्ञानी हो, मृतक शरीर उन का भी अपवित्र माना जाता है। यह शरीर आधेयशौच है अर्थात् जैसे अपने को अलंकृत करने की इच्छावाला पुरुष स्वतः निर्गन्ध शरीर में अङ्गराग इत्र आदि से सुवासित होने की भावना कर लेता है, वैसे ही जल, मृत्तिका आदि द्वारा शरीर में शुद्धि का आधान किया जाता है। वस्तुतः उस मृत्तिका आदि से यह शरीर पवित्र नहीं होता। इस प्रकार स्थान, बीज, उपष्टम्भ, निष्यन्द, निधन, आधेयशौच इन हेतुओं से पण्डितजन इस काय को अशुचि ही मानते हैं।

एवं विषयभोगरूप दुःख में जो सुखज्ञान है वह भी अविद्या ही है, क्योंकि परिणाम में क्षीण हो जाने से विषयसुख भी दुःख है।

शरीर के उपकरणभूत पशु, भृत्य आदि चेतन पदार्थ तथा शय्या, आसन, गृह आदि अचेतन पदार्थ और भोगाधिष्ठान शरीर इन सब अनात्म पदार्थों में जो आत्मज्ञान का अभिमान है वह चौथी अविद्या है। यह चार प्रकार की अविद्या ही राग द्वेषादि क्लेशसमूह का तथा राग द्वेष से उत्पन्न धर्म अधर्म का एवं धर्म अधर्म से जन्य सुख दुःखादि का मूल कारण है। इस को मिथ्या ज्ञान कहिए चाहे माया अथवा भ्रम। यह पाँच क्लेशों में पहले की बात हुई।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता।

—यो० २।६

दृक्शक्ति पुरुष और विषयाकार से परिणत हुई दर्शनशक्ति बुद्धि ये दोनों परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं तथापि पूर्वोक्त अविद्या के बल से दोनों की एकरूपता का प्रतीत होना ही अस्मिता नामक दूसरा क्लेश है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, कूटस्थ आत्मा को और मलिन जड़, विकारी बुद्धि को अलग न जानकर 'मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ' इस प्रकार पुरुष अपने को मान लेता है। यह अस्मिता ही वेदान्तमत में 'चित् जडग्रन्थि' कही गयी है।

सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी द्वेषः।

—यो० २।७, ८

सुख से अनभिज्ञ पुरुष को सुखस्मरणपूर्वक उस के समान नकली सुख में और उस के साधनों में तृष्णा, चाहना ही राग कहा जाता है। दुःख से अनभिज्ञ पुरुष को दुःखभोगस्मरणपूर्वक जो दुःख तथा उस के साधनों में जिघांसा, क्रोध और त्याग की इच्छा है उसका नाम द्वेष है। जैसे प्रमाद आलस्य में रुचि और गुरुजनों के हितवचन, कड़वी औषध से अरुचि देखने में आती है, ये ही राग द्वेष हैं।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः।

—यो० २।९

निखिल प्राणिमात्र को अपने लिए निरन्तर यह कामना रहती है कि मैं कभी न मरूँ, सदा सुखी विद्यमान रहूँ; यह मरणभय अभिनिवेश नामक पाँचवाँ क्लेश है। प्रौढ मनुष्यों का तो क्या कहना, तत्काल जन्मे हुए बालक भी हानिकारक कुत्ता, बिल्ली, सिंह, सर्पादि को देखकर काँपने लगते हैं एवं क्षुद्र कीड़े मकोड़े भी छेड़ने पर प्राण बचाने का यत्न करते हैं। इन बालक और कीड़ों को चेष्टा से

यह जाना गया कि ये मरणरूप दुःख को आया जानकर डर रहे हैं। पूर्व के जन्मों में अनुभूत जो मरणदुःख और उस से उत्पन्न हुआ जो वासनासमूह है वही मरणत्रास का कारण है, यह फलित हुआ। क्योंकि सिवा वासना के बालक और कीड़े को शास्त्र-ज्ञान या गुरूपदेश से तो मृत्युभय मालूम नहीं हुआ। यह अभिनिवेश क्लेश जैसे अत्यन्त मूढ़ कीट आदि में देखा जाता है, विद्वानों के हृदय में भी वैसे ही आरूढ़ है, क्योंकि पूर्वजन्म में अनुभूत मरणदुःख के ज्ञान से 'मैं मत मरूँ' यह वासना विद्वान् अविद्वान् दोनों को ही समान है। यहाँ विद्वान् माने संप्रज्ञात योगी या विवेक ज्ञानी का ग्रहण नहीं है, किंतु बल करनेवाले शास्त्रज्ञाता का ही ग्रहण है, नहीं तो 'विद्वान् न बिभेति कदाचन' इस श्रुति से विरोध होगा। अब इन क्लेशों की निवृत्ति का उपाय बताते हैं—

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः।

—यो० २।१०

योगाभ्यास की क्रिया से सूक्ष्म, चूर्णित हुए क्लेश असंप्रज्ञात समाधि से दग्ध बीजतुल्य हो जाते हैं, तब चित्त का अधिकार समाप्त होकर वे क्लेश भी अस्तगत यानी निवृत्त हो जाते हैं। इस लिए चित्त-वृत्ति के निरोध के लिए ध्यान, धारणा, समाधि इन का ही आश्रय लेना चाहिए।

अन्तकालीन व्यथा

(र०—'अकिञ्चन')

बही जा रही है, हाय! नैया भँवर में।
नहीं कोई साथी, हूँ अकेला सफर में॥
सदा सगी था जो, मन हुआ बावला है।
नियति बैरिनी बन, मार्ग रोके खड़ी है॥ १॥
घटी जा रही है, नेत्र की ज्योतिमाला।
तना आ रहा है, घोर तमजाल काला॥
मिटी जा रही है, मोदिनी हास्य रेखा।
बढ़ी जा रही है, मूर्च्छना सी उदासी॥ २॥
हुआ जा रहा हूँ, क्षुब्ध कातर अकेला।
कसे जा रही है, वेदना अङ्ग मेरा॥
व्यथित कर रही है, आह! अत्यङ्ग पीड़ा।
निमिष हो रहा है, कोटि कल्पान्त दाही॥ ३॥
न सुन पाता हूँ मैं, देख भी हूँ न पाता।
लुटी जिह्वा वाणी, बोल भी हूँ न पाता॥
बताऊँ कैसे मैं, पास किस को बुलाऊँ।
भला कैसे अपनी मर्मज्वाला बुझाऊँ॥ ४॥

शङ्का

(प्रे०—मनोहरलाल शर्मा)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

—गी० १२।३,४

सब का हित चाहनेवाले, सब में समबुद्धि रखनेवाले जो पुरुष इन्द्रियों का संयम करके निर्देशरहित, अव्यक्त सर्वव्यापी, अचिन्त्य, कूटस्थ, स्थिर, अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे भी मुझ परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं। यहाँ भगवान् ने ब्रह्म के स्वरूप को अनिर्देश्य बतलाया है। फिर आगे—

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।

'ॐ तत् सत् इस तरह ब्रह्म का निर्देश तीन तरह से कहा गया है।' इस में ब्रह्म का निर्देश बताया है। इन दोनों स्थलों की संगति कैसे हो सकती है ?

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

इस का उत्तर यह है कि पहले, व्यक्त अक्षर और अव्यक्त अक्षर इन दोनों में उपासना के लिए कौन सा आलम्बन श्रेष्ठ है ? यह अर्जुन का प्रश्न था। इस लिए ब्रह्म के वर्णन में भगवान् ने अनिर्देश्य शब्द का प्रयोग किया और दूसरे स्थल में निर्देश्य ब्रह्म का उल्लेख इस कारण से किया कि वहाँ मङ्गलाचरण का विषय होने से ब्रह्म को निर्देश्य कहना पड़ा।

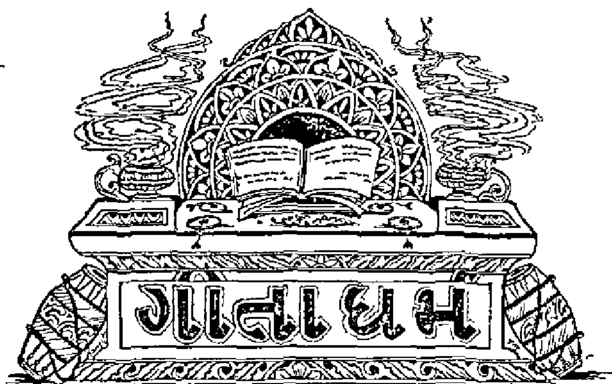
वस्तुतस्तु ब्रह्म न सगुण है, न निर्गुण। जिस प्रकार कोई पुरुष वस्त्र पहन ले, तो वह सवस्त्र कहा जाता है और न पहने, तो विवस्त्र कहा जाता है। उस की सवस्त्रता और अवस्त्रता की ये दो संज्ञाएँ वस्त्र की अपेक्षा से हुई हैं। पुरुष का वास्तविक स्वरूप तो पुरुषत्वावच्छिन्न ही है। वस्त्र हो या न हो पुरुष पुरुष ही बना रहेगा। यही न्याय ब्रह्म के विषय में भी लागू है, जैसा कि श्रीमद्भागवत में भी उल्लेख है—

बन्धो मोक्ष इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥

'अवतार धारण करना या जीवभाव से विभक्त होना और फिर इन आवरणों से छूट जाना, इस प्रकार की परमात्मा की व्याख्या गुणों को लेकर औपचारिक है वास्तविक नहीं।'

अत. इस अर्थ में ब्रह्म निर्देश्य भी है और अनिर्देश्य भी है।

સંસ્થાપક—શ્રીમત્પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકસંગ્રહી, ગીતાવ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરૂ, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી, મહારાજ.



સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ ; અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચઃ

વર્ષ ૭ મું } કાશી જુલાઈ ૧૯૪૨ { અંક ૭ મો

ધ્યાન ગાન

ગોપાલ ગોકુલવલ્લવીપ્રિય ગોપગોસુતવલ્લભમ્ ;
ચરનારવિંદમહં ભજે ભજનીય સુરમુનિ દુર્લભમ્ . ૧ .
ઘનશ્યામ કામ અનેક છબિ લોકાભિરામ મનોહરમ્ ;
કિંજલ્ક બસન કિસોર મૂરતિ ભૂરિગુન કરુનાકરમ્ . ૨ .
સિર કેકિપચ્છ વિલોલકુંડલ અરુન બનરુહ લોચનમ્ ;
ગુંજાવતંસ વિચિત્ર સબ અઁગ ધાતુ ભવભય મોચનમ્ . ૩ .
કચ કુટિલ સુંદર તિલક ભ્રૂ રાકામયંક સમાનનમ્ ;
અપહરન તુલસીદાસ ત્રાસ વિહાર વૃન્દા કાનનમ્ . ૪ .

—ગોસ્વામી તુલસીદાસજી.

જીજ્ઞાસુ.

(લે૦— ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

બ્રહ્મજ્ઞાની તત્વવેત્તા પરમપુરૂષ થવા માટે જેટલુ કઠીન છે, તેટલુંજ સહેલુ પણુ છે. પરંતુ તેવા પુરૂષે પ્રથમ જીજ્ઞાસુ થવુ આવશ્યક છે. જીજ્ઞાસુ થયા પછી તેની તીવ્ર વૃત્તિ થવી જોઇએ અને દ્રઢ ભાવના થવાની જરૂર છે. આટલું થયા પછી બ્રહ્મજ્ઞાની તત્વવેત્તા મહાત્મા પુરૂષોના સમાગમમાં તેણે આવવું, અને સત્સંગ, બ્રહ્મવિચારણા, આત્મજ્ઞાન, વિગેરે વિષયોની ચર્ચા મનન, ધ્યાન, વેદાન્તના વિષયોનું પુસ્તકોનુ પઠન વગેરે ખાસ આવશ્યક છે. આ રીતે મનુષ્યને જેમ બીજી ટેવોનો અભ્યાસ દરરોજનો થઈ જાય છે, તેમ આવા મનુષ્યને પણ આ વસ્તુ દરરોજના નિયમની અને અભ્યાસની આપોઆપ થઈ જાય છે. તેથી મનની બાહ્ય કાર્યોમાં નિવૃત્તિ થતી જાય છે. પછી સંસારીક કાર્યોમાં, સંસારીક જીવનમાં, સંસારીક વિષયોમાં મોહ રહેતો નથી અને એકાકાર પરમ વૃત્તિ પોતે આપોઆપ તેનો અભ્યાસ વધારતો જાય છે. આ મનુષ્ય મોહ, શોક, લોભ, અભિમાન, ક્રોધ વીગેરે વસ્તુઓમાંથી પર થતો જાય છે. એટલે પરમાત્માની કૃપા તેના ઉપર થાય છે, એટલે ભગવત વિચારમાં હમેશાં મગ્ન રહે છે. દુનિયાની વસ્તુઓ ઉપર બિલકુલ મોહ રહેતો નથી. "બ્રહ્મ સત્યં જગત મિથ્યા" તે સુત્રાનુસાર તેને જગત મિથ્યા ભાસે છે.

મોહ, શોક, અહંકાર, લોભ વિગેરે આ દુનિયામાં શોક ઉત્પન્ન કરનારી વસ્તુ છે અને જીવન વહેવારમાં આનંદમાં આડખીલીરૂપ છે, એટલે પરમ પુરૂષો આવા વિષયોથી પર હોય છે, તેથીજ હમેશાં તેઓ આનંદી સ્વભાવના, સમાનવૃત્તિવાળા, ભગવદ વિચારમાં મગ્ન રહેનારા હોય છે, અને અલક્ષ્ય અદ્વૈત આનંદ, આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તીનો અનુભવ અનુભવે છે.

પૂર્ણ તત્વને પ્રકાશ કરનારા નિર્મળ આકાશ જેવો નિરાકાર સચ્ચિદાનંદ મૂર્તિ, સ્વયંમ પ્રકાશ એવો જીવાત્મા, બ્રહ્મ તથા આત્મ વિચારની એકાગ્રતા મેળવી આનંદ મગ્ન રહી, બ્રહ્માકાર વૃત્તિ સ્થિર કરી, સ્વસ્વરૂપ પરમાત્માનાં દર્શન કરતો એકાગ્ર ચિત્ત જોડી, સાનભાન વગરનો થઇ જાય છે અને સચ્ચિદાનંદના અખંડીત આનંદમાં મસ્ત રહે છે.

અંતે પરમ પદની પ્રાપ્તિ મેળવે છે.

પણ ક્યારે ?

જ્યારે પ્રથમ જીજ્ઞાસુ થવાની વૃત્તિ થાય ત્યારે.

ૐ ઇતિ.

ગીતામાં મંગળાચરણ

(લે૦—શ્રીમત્ પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય બ્રહ્મનિષ્ઠ લોકસંગ્રહી ગીતાવ્યાસ જગદ્ગુરુ
મહામંડલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ૦)

સંસાર વ્યવહારમાં કોઈ કામ કરવાની શરૂઆતમાં ભગવાન અથવા પોતાના જે કોઈ ઇષ્ટ દેવતા હોય તેમનું નામ સ્મરણ કરવાની રીત સારી પેઠે પ્રચલિત છે. એનો અભિપ્રાય એ છે કે ઇષ્ટ દેવતાના આશીર્વાદથી હાથમાં લીધેલું કાર્ય સફળતાપૂર્વક સમાપ્ત થાય. આ નિર્વિઘ્ન સમાપ્તિને માટે 'सर्वे विघ्ना शमं यान्ति गणेशस्तवपाठत' આ વાક્યાનુસાર ઘણે ભાગે ગણેશજીનું સ્મરણ વધારે પ્રચલિત છે, પરંતુ એવું કંઈ ખાસ કારણ નથી શિવ, માતા આદિ જેના જે ઇષ્ટ દેવતા હોય, તેમનું સ્મરણ થઈ શકે છે શાસ્ત્રકારોએ સર્વ દેવતાઓમાં એવું સામર્થ્ય હોવાનું સિદ્ધ કરેલું છે કે જેથી વિઘ્નો નષ્ટ થઈ શકે, તથાપિ ભાવનાનો વિશેષ ફળ ભેદમાં કારણ રૂપે કહ્યો છે—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

—ગી૦ ૭।૨૦, ૨૧, ૨૨, ૨૩,

જેમનું જ્ઞાન અનેક પ્રકારની કામનાઓથી હરાએલું છે તેઓ પોતપોતાની પ્રકૃતિને વશ થઈને જુદા જુદા પ્રકારના નિયમોનું પાલન કરતા રહીને બીજા બીજા દેવતાઓની ભક્તિ કરે છે. મારા જે દેવતા રૂપને જે વ્યક્તિ શ્રદ્ધાથી પૂજવા ચાહે છે, તેમની તે શ્રદ્ધાને તેજ દેવતામાં લગાવી દઉં છું. તેઓ શ્રદ્ધા સહિત તે દેવતાની ઉપાસના કરે છે અને મારાજ આપેલા તે ભજનના કામનારૂપ ફળને પ્રાપ્ત કરે છે એ અલ્પ બુદ્ધિવાળા ભક્તોનું એવું ફળ નાશવાનજ હોય છે દેવભક્ત દેવોના લોકોને પ્રાપ્ત કરે છે અને મારા ભક્ત મારી પાસે આવી પહોંચે છે

વળી પણ આ પ્રસંગમાં—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

—૪।૧૧

(જે જે ભાવથી મારે શરણે આવે છે, હું તેને તેવુંજ ફળ આપું છું સર્વ પ્રકારથી મનુષ્ય મારોજ માર્ગ અનુસરણ કરે છે) આ શ્લોક પણ ઉપરની વાતને પુષ્ટ કરે છે

હવે વિચાર કરવાની વાત છે કે સાધારણ લોકોમાં આ રીત છે, તો ગંભીર વિચાર કરનારા શાસ્ત્રકારો માટે તો કહેવુંજ શું ? તેઓ તો આ બાબતમાં ઘણુંજ ભારપૂર્વક કહે છે અને કદાચજ કોઈ એવો પ્રાચીન ગ્રંથકાર હશે, કે જેણે ગ્રંથની શરૂઆતમાં મંગળાચરણ ન કર્યું હોય. એમની વાત જવા દઈએ, તો પણ તેમની ટીકા, ટિપ્પણી, વિવરણકાર આદિ પોતાના આદરણીય ગ્રંથકારના મંગળાચરણ ઉપર ઘણીજ બારિકીથી ઉહાપોહ કરે છે, એટલે સુધી કે એવા મંગળસૂચક શ્લોકોમાંથી 'અનુબન્ધ ચતુષ્ટય' (ગ્રંથના અધિકારી, વિષય પ્રયોજન, સંબંધ) આદિ આવશ્યક વાતો પ્રગટ

કરવાની કોશીષ કરે છે, પછી ભલે ને તે વાતો મુળ ગ્રંથકારને તો સ્વપ્નમાં પણ ન સુઝી હોય. કેટલાય દિગ્ગજ પંડિત જેવા કે નૈયાયિક વિશ્વનાથ, દિનકર ઉધ્યાનાચાર્ય આદિ આ વિષયના ગ્રંથ રચીને મંગલવાદનો સ્વતંત્ર વિષય તૈયાર કરી ગયા છે. તેને જોવાથી જણાઇ આવશે કે જે વાતને આજ કાલના શિક્ષિત કહેવાતા લોકો તદ્દન નજીવી વસ્તુ સમજે છે અને નાસ્તિકો તો તેને અનુપયોગી કહે છે, તેને પૂર્વવર્તી ગ્રંથકાર કેટલી મહત્વની દ્રષ્ટિથી જોતા હતા.

આ વાતને વિસ્તારપૂર્વક કહેવાનું કારણ એ બતાવવાનું છે કે ગીતા જેવા ઘણાજ ગંભીર વિષયનું પ્રતિપાદન કરનારા ગ્રંથના પ્રારંભમાં જેને કે ભગવાનની સાક્ષાત્ વૈખરી વાણી સમજવી જોઇએ, તેના ગ્રંથકારે અવશ્ય મંગલાચરણ કર્યું હશે; એ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. અહિં સ્વયં ઇશ્વર વકતા છે અને તેમના મુખથી જે વાત કહેવામાં આવશે, તેની મહત્તા વેદ વાણીથી જરાએ ઓછી હોઇ શકતી નથી. એવા દાયિત્વપૂર્ણ કાર્યની નિર્વિઘ્ન સમાપ્તિ થવી ગ્રંથકાર માટે ચિન્તાનો વિષય તો અવશ્ય છે.

અહિં પ્રાસંગિક શંકા ઉઠી શકે છે કે ગીતા સ્વતંત્ર ગ્રંથ નથી, એ તો મહાભારતમાં આવેલા ભીષ્મપર્વનો એક અંશ છે; પણ એ વિષે વધારે કહેવાની જરૂર નથી, માત્ર રૂષિ મુનિયોના મતનો અને તેનાજ આધારે અનુસત લૌકિક પ્રથાનો ઉલ્લેખ રજુ કરવો બસ છે કે ગીતા એક સ્વતંત્ર ગ્રંથ છે. એટલા માટે એમાં મંગલાચરણ હોવું ખાસ આવશ્યક છે. અહિં એક બીજી પણ શંકા છે કે મંગલાચરણ કરવુંજ જોઇએ એ વાતનું પણ શું પ્રમાણ છે? ઉત્તરમાં કહેવાનું એટલુંજ છે કે પ્રસ્થાનત્રયીના દ્રષ્ટા રૂષિ ભગવાન વ્યાસ, ભગવાન કપિલ અને ભગવાન પતંજલી એ ત્રણેએ જેવો ગીતાર્થ સમજ્યા છે તેના એક કરોડમા અંશ જેટલો પણ અમે સમજ્યા હોઇએ, એમાં સંદેહ છે. એટલા માટે કપિલજી પોતાનાં સાંખ્ય સૂત્રોમાં મંગલાચરણ કરવાના ત્રણ હેતુ બતાવે છે. પ્રસંગાનુસાર તેની વ્યાખ્યા અહિં કરવામાં આવે છે—

"मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात्,
फलदर्शनात्, श्रुतितश्चेति।"

અ० ५, સૂ० १

આ સૂત્રનો આધારભૂત ગીતામાં—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

—ગી० १७।२३

આ શ્લોક છે.

ૐ તત્ સત્—એવો બ્રહ્મનો ત્રણ પ્રકારનો નિર્દેશ છે, પૂર્વ કાલમાં એનાથી બ્રાહ્મણ, વેદ અને યજ્ઞની ઉત્પત્તિ થઈ. સૂત્રનો અર્થ—શિષ્ટ લોકોએ આચરણ કર્યું છે, તેનું ફળ જોવામાં આવે છે અને શ્રુતિની આજ્ઞા પણ છે; આ કારણોથી મંગલાચરણ કરવું જોઇએ.

સૂત્રના પ્રથમ અંશ શિષ્ટાચારાત્ આ અંશની વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે—

ગીતાનો જે શ્લોક ઉપર કહ્યો છે તેમાં 'ૐ તત્ સત્' આ પરમાત્માનું ત્રણ પ્રકારનું નામ આવ્યું છે, તેનું ઉચ્ચારણ કરીને બ્રાહ્મણ આદિ પ્રજા, વેદ અને યજ્ઞની સૃષ્ટિ કરવામાં આવી છે. તેથી જણાઈ આવે છે કે સૃષ્ટિના રચનારા પ્રજાપતિએ આરંભમાં પરમાત્માનું નામ લીધું હતું. હવે વિચારવાની વાત એ છે કે પ્રજાપતિથી વધીને અમારે માટે બીજું કોણ શિષ્ટ હોય?

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

“ આરંભમાં આ યજ્ઞની સાથેજ સર્વ પ્રજાને ઉત્પન્ન કરીને પ્રજાપતિ (બ્રહ્મા) એ કહ્યું કે આ યજ્ઞથી તમે તમારા વંશની વૃદ્ધિ કરો, આ યજ્ઞજ તમારા લોકોની ઇષ્ટદાત્રી કામધેનુ થાઓ.” આ અંશથી સિદ્ધ થાય છે કે આ પ્રજાપતિને પોતાના કાર્યમાં અર્થાત્ પ્રજાસૃષ્ટિમાં સફળતા પ્રાપ્ત થઈ હતી, આ શ્લોકમાં ‘सहयज्ञाः’ એ પદ પણ છે, એટલે અ૦ ૧૭ નો શ્લોક ૨૩ તથા અ૦ ૩ નો શ્લો૦ ૧૦ મળીને એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે મંગલાચરણ કરવામાં શિષ્ટાચાર છે અને સફળતા પણ છે હવે રહી વાત ‘श्रुतितश्च’ એટલા અંશની, તે તો ૐ શબ્દથીજ ગતાર્થ છે, કેમકે ગીતા ૭।૮ માં ‘प्रणवः सर्ववेदेषु’ એમ કહ્યું છે.

અગર કોઈ શંકા ઉઠાવે કે શિષ્ટોએ જે કાંઈ આચરણ કર્યું છે, તેનું સર્વ સાધારણ પણ શા માટે અનુસરણ કરે ? તો તેના ઉત્તરમાં એટલું કહેવું બસ થશે કે ગીતા એજ વાત ઉપર વધારે જોર આપે છે કે સંસારમાં જ્ઞાન પ્રાપ્તિનું એક માત્ર સાધન ‘महाजनो येन गतः स पन्थाः’ એટલુંજ છે પ્રસંગોચિત શ્લોક આ નીચે આપ્યા છે—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

શ્રેષ્ઠ પુરુષ જેવું આચરણ કરે છે તેને અનુસરીનેજ બીજા સાધારણ લોકો પણ ચાલે છે, શ્રેષ્ઠ પુરુષ જેવો નિશ્ચય કરી આપે છે તેજ પ્રમાણે અન્ય લોકો વર્તન કરે છે. હે પાર્થ, મારે ત્રણે લોકમાં કોઈ પણ કર્તવ્ય નથી તેમજ ન કોઈ મેળવવા જેવી વસ્તુ અપ્રાપ્ય પણ છે, છતાં પણ હું લોકસંગ્રહાર્થ કર્મ કર્યા કરું છું. કેમકે સાવધાન રહીને જો હું કર્મ ન કરું, તો હે અર્જુન, મનુષ્યો સર્વ પ્રકારે મારાજ માર્ગનું અનુસરણ કરવા માંડશે

અહિં ધ્યાન આપવાની વાત છે કે શ્લોકમાં જે ‘श्रेष्ठ’ પદ છે તે શિષ્ટનું બોધક છે. સાંખ્ય સૂત્રમાં ‘फलदर्शनात्’ ‘श्रुतितः’ એ બે પદ કોઈની વિપ્રતિપત્તિના વિષય નથી હોઈ શકતા, કેમકે પ્રત્યક્ષ પરિદૃશ્યમાન સૃષ્ટિનો અપલાપ થઈ શકતો નથી. પ્રણવ પરમાત્માનું નામ છે એ વિષયમાં સ્વતઃ વેદજ પ્રમાણ છે. અહિં સુધી મંગલાચરણનું કર્તવ્ય વિષયક વિવેચન કર્યું, હવે આ લેખના મુખ્ય વિષયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે અર્થાત્ ગીતામાં મંગલાચરણ કર્યું અને કેવું છે એ વિચારવું જોઈએ.

મંગલાચરણ પ્રથમજ ગ્રંથના આરંભમાં હોય છે, તો ગીતાનો આરંભ જોવાથી એનો ઉત્તર મળી જશે કે ત્યાં ધર્મ શબ્દ નિઃસંદેહ મંગલવાચક છે, પ્રથમ શ્લોકમાં ‘धर्मक्षेत्रे’ આવું પદ ન આવ્યું હોય તો પણ આપાતતઃ ધૃતરાષ્ટ્રનો જિજ્ઞાસ્ય વિષય માલુમ પડી શકે છે, પરંતુ ભગવાન વ્યાસ નિરર્થક શબ્દ પ્રયોગ કરનારા નથી. વસ્તુતસ્તુ જોવો કે ગીતાનો પ્રતિપાદ્ય વિષય એજ શ્લોકમાં સૂચિત કરવામાં આવ્યો છે, તે કયો છે ?

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥

—ગી૦ ૧૮।૭૦

જે પુરુષ આ અમારા બન્નેનો ધર્મમય સંવાદ

વાંચશે, તેમના દ્વારા હું જ્ઞાનયજ્ઞથી પૂજાઈશ એવો મારો અભિપ્રાય છે.

એમાં કહ્યું છે કે આ ગીતા શાસ્ત્ર શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનો ધર્મ્ય સંવાદ છે. અર્જુનનો પ્રશ્ન પણ એજ વિષયનો છે, ૨।૭ માં કહે છે—'धर्म संमूढचेताः त्वां पृच्छामि' ધર્મના વિષયમાં મોહ થઈ જવાથી આપને પૂછું છું, વળી પણ ભગવાન અર્જુનને ઉદ્દેશીને કહે છે—स्वधर्मे निधनं श्रेयः' 'स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि' ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि' ઇત્યાદિ સામાન્ય ભાવથી આજ્ઞા કરે છે અને 'तस्माद् युद्धस्व भारत' 'ततो युद्धाय युज्यस्व' ઇત્યાદિ અનેક સ્થળોએ ખાસ કર્તવ્યતાનો પણ આદેશ આપે છે.

ફલતઃ ધર્મ શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરવાથી મંગળ તો થયુંજ, વધારામાં ગ્રંથકારે પોતાના ગ્રંથનો પ્રતિપાદ્ય વિષય પણ સૂચવી દીધો. ધર્મ શબ્દનો વ્યુત્પત્તિ લભ્ય અર્થ છે 'धारयतीति धर्मः' આ સંસારને ધારણ કરનારો જેમકે પરમાત્મા છે.

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

—गी० ७।५

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

—गी० १०।४२

હે મહાબાહો, આ અપરા જડ પ્રકૃતિના સિવાય જીવરૂપી, ચેતન પરા પ્રકૃતિ પણ મારી છે, જેનાથી સંસાર ચાલે છે. 'હે અર્જુન, વધારે શું કહું એમ સમજી લો કે હું સંપૂર્ણ જગતને મારી યોગમાયાના એક અંશ માત્રથી ધારણ કરી રહ્યો છું.' આ વચનોથી ધર્મ શબ્દ જીવનો પણ વાચક છે. અને વળી પરમાત્મા અને જીવ એમનાથી વધીને સ્મરણ કરવા યોગ્ય બીજો કેવો પદાર્થ મંગલમય હશે ?

એ પ્રમાણે સિદ્ધ થયું કે વેદવ્યાસજીએ પણ ગીતાના આરંભમાં મંગલાચરણ કરીને લોકોને એનો માર્ગ બતાવ્યો છે.

ૐ તત્સત્

બાહ્યાચારિતાની વૃદ્ધિ

(લે૦—શ્રી રૂપિરામજી)

મુળ સત્યને સમજવામા બાહ્યાચારિતાની ખાસ કાંઈ કિંમત નથી અને ન તો તે બાહ્યાચારિતાની વસ્તુ પણ છે. પરંતુ એનો મતલબ એ નથી કે—ઇન્દ્રિયો અને શરીર સ્વેચ્છાચારી બની જાય. બલ્કે આધ્યાત્મિક વસ્તુઓના પરિવર્તનથી એમનામાં ખૂબ પરિવર્તન થઈ જાય છે.

તે સિવાય મુળ સત્ય બાહ્યાચારિતાના પરિપૂર્ણ પાલનથી પણ ન તો સમજી શકાય છે કે ન તે સાધનાનું ફળ પણ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે.

પ્રત્યુત દાંભિકતા અને અહંકારનું તે સત્યાચરણની પાછળ પોષણ થાય છે. પોતાની દ્રષ્ટિથી અને સંસારમાં તો તે ઊપર ઉઠે છે, પરંતુ ખરી રીતે તો તે પતિત થાય છે. અને કંઈક આગળ જતાં જરા જેટલા ઘાત પ્રતિઘાતથી તેની બધી સાધનાઓ, બનાવટો, છિન્ન ભિન્ન થઈ જાય છે. પરંતુ સંસારનો સ્વભાવ છે કે તે સમગ્ર સત્યને બાહ્યાચારિતાની વસ્તુ બનાવી લેવાનીજ કોશીષ કરે છે. સમગ્ર સત્યનું રૂપ તેનીજ અંદર સમજી

લેવા ચાહે છે અને એવો સંભવ પણ છે કે મનુષ્ય પહેલો નીચેથીજ ચાલવાનો પ્રયત્ન કરે છે અર્જુન પણ ભગવાન પાસે એજ ઇચ્છે છે જુઓ ગીતા અ૦ ૨ શ્લો૦ ૫૪

મતલબ એજ કે જે સત્ય ગ્રહણ કરવામા આવે તેને બુદ્ધિ પણ મંજૂર કરીલે, મન અને પ્રાણ પણ માનીલે, આત્મસત્તા પણ કબૂલ કરી લે જ કે અમારી અંદર એક રોમ સુધાતમા પણ એવી કોઇ પણ ચીજ ન રહી જાય કે જે તે સત્યની શરત મંજૂર ન કરી લે અને તેના વિરૂદ્ધ પ્રતિવાદ નાખે અને ત્યારે પાખંડ અને અહંકારનુ પોષણ, અસત્યની પ્રક્રિયાઓ અમારી અંદર કાર્ય કરશે નહિ

ભગવાન, ધર્મ (જ્ઞાન, ભક્તિ, સેવા આચરણ આદિ) એજ સંસારની મોટી ચીજો માનવામા આવે છે તે ભગવાન અને ધર્મ ચાહે હિન્દુના હોય કે ઇસાઈ, મુસલમાન, વૈષ્ણવ આશ્રમી કોઈ નાય હોય એજ બે ચીજો (ભગવાન અને ધર્મ તથા તેમને માટે અનંત આધાર) ની પાછળ સંસારમા બાહ્યાચારિતાનો પર્વત ઉભો થઇ ગયો છે જો કે તે બાહ્યાચારિતાનું સંગઠન, પોષણ—રહસ્ય—કર્તા દ્વારા એટલા માટે કરવામાં આવ્યું છે કે તે ભગવાન અને ધર્મનું મુળ સત્ય જીવન અને સંસારની ઘણુ નજીક થઈ જાય, પરંતુ પરિણામ એ આવે છે કે તે સત્ય એક તો એમજ ઘણુ દૂર છે—વળી આ સર્વેથી તે એથીય વધારે દૂર થઈ જાય છે આ ચીજો તે વસ્તુને સમજવામા બીજી પણ વધારે મોટી રોકાવટો, વિઘ્નો અને ભ્રમ નાખે છે, પરદો ગહન, થઈ જાય છે કેમકે એક તો સ્વયં જ "योगमायासमावृत" તેમા આ અજ્ઞાન—મિથ્યા ભ્રમ "महामायासमावृत" કરી દે છે તેથીજ કેટલાક સત્યશોધકગણ એવા નીકળે છે કે આ અનર્થોને લીધે મુળ વસ્તુથીજ હાથ ધોઇ બેસે છે તેના પ્રતિ અવિશ્વાસ, અરૂચિ અનન્ત મિથ્યા ધારણાઓનુ પોષણ કરી લે છે અને કેટલાક લોકો ભયને લીધે તેમા પ્રવેશજ કરતા નથી. કારણ કે તે શ્રુશ્રૃંગીયાન માનવહૃદયવિહારી ભગવાનની વાણી નહિ સાંભળવાને લીધે બાહ્ય સાચો આધાર અને આદર્શ શોધવા ચાહે છે અને કેટલાક "मनुष्याणां सहस्रेषु" એવા નીકળે છે કે જે અનન્ત ઉત્થાન, પતન અને મુશ્કેલીઓ પાર કરીને તે ગંગાની સત્ય ધારા વહાવીને પિતરોને તારે છે અને કેટલાક દિવસો માટે સત્યનો માર્ગ નિષ્કંટક કરી આપે છે

આધુનિક જાગ્રત "कर्मयोगी" સમુદાયે આ સર્વ પ્રપંચોથી ઘણા આગળ વધીને મુળ સત્ય સમજાવવા ઘણોય પ્રયત્ન કર્યો છે અને તેણે સમાજ તથા સંસારને ઘણો આગળ વધાર્યો છે, એમાં તો જરાય શક નથી, પરંતુ તેમા પણ અધિકાંશ આ સર્વ કાર્યો પાછળ અસત્યનુ પોષણ અને મુળ સત્ય પ્રત્યે કંઈક અવિશ્વાસની ગંધ તો અવશ્ય સમાયલીજ છે અસ્તુ

શંકા

(પ્રે૦—પં૦ મનોહરનાથ શર્મા)

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥
—ગી૦ ૧૮ ૩

એમાં શંકાનુ સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—શ્લોકનો અન્વય કરવાથી 'एके मनीषिणः कर्म त्याज्यम् इति प्राहुः अपरे मनीषिणः कर्म न त्याज्यम् इति प्राहुः'

એવાં બે વાકયો ઉપલબ્ધ થાય છે. કોઇ રોગીને એક વૈદ્ય કહે કે અમુક વસ્તુ ખાવી જોઈએ અને બીજો વૈદ્ય કહે કે તે ચીજ કદિ પણ ખાવી નહિ; એવી હાલતમાં રોગીનું શું કર્તવ્ય ઠરશે? બન્ને વ્યક્તિ વૈદક શાસ્ત્રના સારા પંડિત છે, તે બન્નેમાં પથ્યાપથ્યના વિષયમાં મતભેદ થઈ જાય, તો તેની મીમાંસા કરવી એ એક પ્રકારે અસંભવજ ગણાય. તેવીજ રીતે અગર બે મનીષિ વ્યક્તિઓમાંથી એક કર્મને ત્યાજ્ય બતાવે અને બીજો અત્યાજ્ય, તથા બન્નેની વિદ્વતા પણ એક સરખી હોય, તો તેનો નિર્ણય થવો અશકય છે. ઉક્ત શ્લોકમાં ભગવાન અથવા વેદવ્યાસજી પરસ્પર વિરૂદ્ધ મત પ્રતિપાદન કરે છે. આ વિષયના ગ્રાહ્યાગ્રાહ્ય સંબંધી શંકા છે.

સમાધાન

(લે૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

એવીજ શંકા સાંખ્ય દર્શનકારે ઉઠાવી છે, પરંતુ તેનો આધાર પણ આજ શ્લોક છે. ઉત્તર ભગવાન સ્વયં આપે છે—

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥
एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥

—ગી૦ ૧૮।૪, ૫, ૬

હે ભરત શ્રેષ્ટ, ત્યાગના વિષયમાં મારો નિશ્ચિત મત સાંભળો. ત્યાગ પણ ત્રણ પ્રકારનો કહેવામાં આવ્યો છે. યજ્ઞ, દાન અને તપ એ કર્મોને છોડવાં નહિ, પણ તે અવશ્ય કરવાં જોઇએ. એ તો બુદ્ધિમાનોની ચિત્ત શુદ્ધિ કરનારાં છે. તેથી એ કર્મોને સંગ તથા ફળની આશા છોડીને કરવાંજ ઉચિત છે. આ મારો નિશ્ચિત અને શ્રેષ્ટ મત છે.

અહિ ભગવાનના કહેવાનો અભિપ્રાય એ છે કે જે શબ્દ લોકમાં કોઈ એક અર્થમાં વપરાયો હોય તેનો શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં પણ તેજ અર્થ થાય એવો કાંઇ નિયમ નથી. શાસ્ત્રકાર લોકો વિશેષત: દાર્શનિક શાસ્ત્રકાર પોતાના પરિભાષાર્થ જુદા જુદા કારના નિર્માણ કરે છે. કોઇ ખાસ શબ્દનો ગ્રંથકાર દ્વારા જે નક્કી કરવામાં આવે છે, તે શાસ્ત્રમાં તેજ ગ્રાહ્ય માનવામાં આવે છે. પ્રકૃતમાં કહેવાનું એજ છે કે ત્યાગ શબ્દનો લોકમાં જાણીતો અર્થ અહિ ગ્રાહ્ય નથી. તેથીજ ભગવાન કહે છે કે 'त्यागे मे निश्चयं शृणु' અર્થાત્ જો કે "તામસ તથા રાજસ કર્મ તજવાં જોઇએ." આ વાકયમાં ત્યાગ શબ્દનો ઠીકઠીકત અર્થજ લેવામાં આવશે. તથાપિ સાત્વિક કર્મના વિષયમાં ત્યાગ શબ્દના અર્થમાં ગ્રંથકાર કાંઇક વિશેષતા મૂકે છે. ઉક્ત શ્લોકોના અર્થ જોવાથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે. વિશેષ વિસ્તાર કરવાની આવશ્યકતા નથી. આ પ્રકારે ત્યાગ અને અત્યાગ એ બે શબ્દોમાં વિરોધ નથી, માત્ર વિરોધાભાસ છે. હું સમજું છું કે શંકાકાર મહાશય તે સમજી જશે, એમાં વિશેષ પાંડિત્યની આવશ્યકતા નથી.

છેવટે એટલો ઇસારો કરવો બસ થશે કે કર્મ કરવાં ન કરવાં એ પક્ષોમાં કલેશનું વધતા ઓછાપણુંજ નિર્ણાયક છે. વસ્તુતસ્તુ બન્ને પક્ષોનો કર્મના સદ્દોષત્વમાંજ અંતિમ અભિપ્રાય છે. એટલે કર્મ ત્યાજ્ય જ છે. કોઈ વિચક્ષણ વ્યકિત ચાહે તો તેમાં કૌશલપૂર્વક અનુષ્ઠાન કરીને તેનો લાભ લઈ શકે છે. અહિ એક લૌકિક દ્રષ્ટાન્ત છે—જેવી રીતે વિરૂદ્ધ દશામાં વાયુ ચાલતો હોવા છતાં પણ માછી લોકો શઢને ખાસ પ્રકારે બાંધીને, નાવને તેજ દિશા તરફ લઈ જાય છે કે જે દિશાથી વાયુ આવે છે. એજ વાત કર્મના ત્યાગ તથા અત્યાગના વિષયમાં સમજવી જોઇએ.

સંતસમાગમ

(લે૦—સ્વામી શ્રી રામાનંદજી સંન્યાસી, દર્શનશાસ્ત્રી, વ્યાકરણાચાર્ય)

જેમ સમુદ્રમાં ડુબકી મારનારને કોઈ કોઈ વાર ઉત્તમ રત્નની પ્રાપ્તિ થઈ જાય છે, તેજ પ્રમાણે આજ અમે 'મુસલમાન સંતો' નામના ગ્રંથના આધારે કંઈક ઉપદેશ રત્નો ગીતાધર્મના વાંચકો સમક્ષ ઉપસ્થિત કરીએ છીએ—

સિદ્ધાશ્રમમાં બેઠેલા કેટલાક સંતો પોતપોતાના વિચાર પ્રગટ કરી રહ્યા હતા, સત્સંગનો લાભ લેવાની આશાએ અમે લોકો પણ ત્યાં જઈને બેઠા, અમારામાંના એક સજ્જને સંતોને પૂછ્યું કે "સહનશીલ ગુણિ શ્રેષ્ઠ છે કે કૃતજ્ઞ ધનવાન ઉત્તમ છે" એના જવાબમાં એક સંતે કહ્યું કે "સહનશીલતાવાળા ગુણિ શ્રેષ્ઠ છે, કેમકે ધનવાન ગમે તેટલો ભલો માણસ હોય પણ તેનું મન સદા લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ તથા તેના સંરક્ષણમાં લાગેલું રહે છે અને તપસ્વી ઋષિનું હૃદય સદા ઈશ્વરના વિચારમાં જ લાગેલું રહે છે"

જુઓ—ઈશ્વર કહે છે કે "હું મારી સ્વાભાવિક કરૂણાથી મનુષ્યને તેની ઇચ્છા કરતાં પણ અધિક આપું છું, પછી તે મનુષ્યનું કામ છે કે તેને તે મરજીમાં આવે તે પ્રમાણેના ઉપયોગમાં લાવે "

જે મનુષ્ય જીવન નિર્વાહને માટે નીતિપૂર્વક વ્યવહાર કરે છે તેને પરમેશ્વરના મહિમાનો અનુભવ થાય છે પરંતુ જે ઈશ્વરને માટે જીવનનો નિર્વાહ કરે છે એટલે કે જીવન ધારણ કરે છે તે તો ઈશ્વરનેજ પ્રાપ્ત કરી લે છે

મનુષ્યના હૃદયમાં પરમેશ્વર એવી રીતે ગુપ્ત પણે રહેલા છે કે જેવી રીતે અમાવાસ્યાની ઘોર અંધારી રાત્રે કાળા પત્થર ઉપર નાનામાં નાની કીડી રહ્યા કરે છે જોવા ચાહો તો જ્ઞાન પ્રદીપના આધારે વૈરાગ્યના ચશ્માં પહેરીને જોઈ લ્યો

આટલું યાદ રાખજો કે નીચે લખેલા ચાર પ્રકારના મનુષ્યોથી સદા સાવધાન રહેવું—

(૧) જે મિથ્યા ભાષણ કરનારો હોય, કેમકે તેનો સંગ કરવાથી ઠગાવાનો સંભવ છે

(૨) જે મૂર્ખ હોય, કેમકે તે મનુષ્ય ભલેને તમારો હિતચિન્તક હોય, તેની મૂર્ખતા તમારા અશુભનું કારણ બની શકે છે

(૩) જે કંજૂસ અથવા લોભી હોય, કેમકે એવો મનુષ્ય પોતાના જરા જેટલા સ્વાર્થ માટે તમને ઘણું જ નુકશાન પહોંચાડી શકે છે

(૪) નીચ હૃદયવાળો હોય કેમકે એવો મનુષ્ય આપત્તિ કાળમાં તમારો સર્વ નાશ કરી નાખશે

ભાવ એ છે કે પોતાના કુળ જાતીના અભિમાન અને પ્રતિષ્ઠાને ઈશ્વરના મહિમામાં લગાવી દો, તેમાંજ તમારૂં કલ્યાણ છે મનુષ્ય તો ઈશ્વરના જ્ઞાન ભંડારનો ખજાનચી છે, પછી એને કમી શી વાતની. અગર તે ચાહે તો સંતોનો કૃપાપાત્ર બનીને તેમના દ્વારા સ્વર્ગનો દરવાજો ખોલાવી શકે છે, કેમ કે સ્વર્ગ દ્વારની કુંચી તેમના હાથમાં છે સ્વર્ગીય ઐશ્વર્યને હસ્તગત કરનારો કલ્યાણ સાધન કરી આપનારો કેમ ન હોય ?

× × ×

તે પછી બીજા સંતે પોતાનો અનુભવ આ પ્રકારે કહેવાનું શરૂ કર્યું —"હું એક વેળાએ સુરત શહેરના એક બગીચામાં બેઠો હતો ત્યાં તે

શહેરનોજ એક પ્રસિદ્ધ ધનવાન મારી બાજુમાં આવીને બેસી ગયો, મેં પૂછયું—ભાઈ! તું અહિં મારી પાસે આવીને કેમ બેઠો છે?" તેણે જવાબ આપ્યો "હું એટલા માટે બેઠો છું કે આપની સાથે મારો સ્નેહ થઈ જાય અને હું સુખી થાઉં" મેં કહ્યું "ભાઈ! હું કોઈ પ્રસિદ્ધ વ્યકિત નથી. જે ઇશ્વરનો ત્યાગ કરી મનુષ્યની સાથે પ્રેમ કરે છે તે કદિ પણ સુખી રહી શકે છે?" તેણે કહ્યું "મને કંઇક ઉપદેશ આપો" મેં કહ્યું—બસ, આ વેળા તો એજ ઉપદેશ છે કે "જે સમયે તું સુઈ જાય તે સમયે મૃત્યુને તારા માથા પાસે બેઠેલું સમજજો, અને જ્યારે જાગતો રહે ત્યારે મોતને સામે ઉભેલું જોતા રહેવું" એમ કહીને હું ચૂપ થઇ ગયો, ત્યારે તેણે કહ્યું "તમે આ વખતે શું વિચાર કરી રહ્યા છો?" મેં કહ્યું હું એમ વિચારી રહ્યો છું કે આજ પ્રાતઃકાળ તો જોઇ લીધો, પરંતુ મૃત્યુદેવ મને આજ સાંજ સુધી ઈશ્વર ભજન કરવાનો અવસર આપશે, એવો ભરોંસો નથી" હું મૃત્યુમાર્ગની લાંબી મુસાફરી કરવા તો તૈયાર છું, પણ મારી પાસે ભાથુ (વાટખર્ચી) નથી.

ભાઈ! ભલેને તમે આ લોકના જેવી તો શું પણ સ્વર્ગના દેવતાઓ જેવી ઉપાસના કેમ ન કરો, પણ જ્યાં સુધી તે પ્રભુ પર વિશ્વાસ નહિ હશે ત્યાં સુધી તમારી ઉપાસના માન્ય થઈ શકતી નથી.

જે મનુષ્યનો નીચે બતાવેલી ત્રણ વસ્તુઓ પર પ્રેમ છે તેની સદ્દગતિ થવામાં સંદેહ છે—

૧—સારૂં સારૂં ભોજન. ૨—સારાં સારાં વસ્ત્રો. ૩—ધનવાનોનો સહવાસ. જેણે પ્રભુનો સાક્ષાત્કાર પ્રાપ્ત કર્યો તેનાથી કશું અજાણ્યું રહેતું નથી. અને જેને ઇશ્વરે ઓળખી લીધો તેને સૌ કોઇ ઓળખી ગયા.

જુઓ, બાહ્ય એકાન્ત કાંઈ સાચી એકાન્ત નથી. મનમાં શંકા અને ચિન્તાનો પ્રવેશ ન થવો એજ વાસ્તવિક એકાન્ત છે. જે એવી એકાન્તમાં રહે છે તે બરાબર એકાન્તસેવી અને સંગ રહિત છે. જે સમયે દ્વૈત ભાવ જાગૃત થાય છે તે સમયે પાપરૂપ ઠગને હૃદયમાં પ્રવેશ કરવાનો લાગ મળી જાય છે. હૃદયને સદા કાબૂમાં રાખો, જો હૃદય કાબુમાં હશે તો તેમાં પેસવાનો કોઇને માર્ગજ મળશે નહિ. કંઇક બનાવવું કે સુધારવું હોય તો નીચેના ઉપદેશ પર ધ્યાન આપવાની આવશ્યકતા છે—

જેને ઉચ્ચતા પ્રાપ્ત કરવી હોય તેણે વિનયી બનવું જોઇએ. જેને પુરૂષાર્થ સિદ્ધ કરવો હોય તેણે સાચા બનવું. જેને મહત્વ પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છા હોય તેણે ધૈર્યવાન થવું. જેને ગૌરવ પ્રાપ્ત કરવું હોય તેણે ઈશ્વરનો સદા ડર રાખવો. જેને શાંતીની ઇચ્છા હોય તેને વૈરાગ્યવાન થવું જેવે સંપત્તિની અભિલાષા હોય તેણે કોઈક મહાપુરૂષનો આશ્રય લેવો, જેને સૌને ખુશ રાખવાની આકાંક્ષા હોય તેણે પરોક્ષમાં સૌની પ્રશંસા કરવી. અને જે આખા જગતનું સ્વામિત્વ ચાહતો હોય તેણે સર્વ કાંઇ ત્યાગ કરી દેવું.

× × ×

તે પછી એક બીજા મહાત્મા બોલ્યા—

"હું બાર વરસ પર્યંત તિર્થયાત્રા કરતો રહ્યો. કેટલાક દિવસો પછી મને માલુમ પડયું કે મારી આ તિર્થયાત્રા સાંસારિક ભાવનાઓથી ભરેલી હતી, કેમકે એક સમય હું હરિદ્વારના નીલધારાની ગંગાની સામેના કીનારાના પહાડ ઉપર ચંડીદેવીનાં દર્શન કરવા જતો હતો, રસ્તામાં એક સ્ત્રી જળના અભાવે તરસથી વ્યાકુળ થયેલી જોવામાં

આવી, મારા કમંડળમાં પાણી તો હતું પણ તે માગવા છતાંય હું આપવા રાજી નહોતો કેમ કે તે જળ દેવી પર ચઢાવવા માટે મેં રાખ્યું હતું છેવટે મેં તેને જળ આપ્યું પણ તે કર્તવ્ય સમજી ને નહિ મારે મારી હૃદયાકાશ વાણી સમજવી જોઈતી હતી કે જે એમ કહી રહી હતી કે "સાધુ ! જે જળ તેં મારી પાષાણ પ્રતિમા પર ચઢાવવા રાખ્યું છે તે આ સાક્ષાત્ દિવ્ય મૂર્તિને અર્પણ કરી દે, તારા અહોભાગ્ય છે કે હું સ્વયં ભગવતી તે જળ માગી રહી છું

મેં તે વાણી ન સાંભળી, તેથી માલુમ પડે છે કે મેં તીર્થયાત્રા કરીને જીવનની યથાર્થ ઉન્નતિ કરી નથી અગર ઉન્નતિ થઈ હોત અને હું સર્વત્ર આત્મભાવ રાખનો હોત તો મારે વગર માગે જળ આપી દેવું જોઈતું હતું "

મારી તીર્થયાત્રાની નિષ્ફળતા માટે બીજી વાત એ છે કે "હું એક સમય ઈન્દ્રપ્રસ્થની ગલીમાં થઈ ને જતો હતો. મને તરસ લાગી અને મેં એક ગૃહસ્થના બારણા આગળ જઈને પાણી માગ્યું, તે ગૃહસ્થની કન્યા પાણી લઈને આવી, હું તેના રૂપ લાવણ્ય ઉપર મુગ્ધ થઈ ગયો અને પાણી પીને ત્યાં બારણા આગળજ બેસી ગયો. થોડી વારમાં ઘરનો માલિક બહારથી આવ્યો અને મને ત્યાં બેસવાનું કારણ પૂછ્યું એટલે મેં કહ્યું—ભલા ગૃહસ્થ ! તમારે ત્યાંથી મને પાણી તો મળી ગયું પરંતુ પાણી આપનારીએ મારૂં હૃદય લઈ લીધું' ગૃહસ્થ ઘણોજ સજ્જન પુરૂષ હતો, તેણે કહ્યું—મહાત્મન્ ! આપને પાણી પાનારી મારી પુત્રી છે, અગર આપ ચાહો તો તેનો વિવાહ આપની સાથે કરી દેવા હું તૈયાર છું '

તે પછી મારા શરીર ઉપરથી કફની કઢાવીને ઘણાજ અમૂલ્ય વસ્ત્રો મને પહેરાવવામાં આવ્યા, અંતઃપુરમાં જઈને પુરોહિતોએ ઉપાસનાના મંત્રો ઉચ્ચાર્યા ત્યારે મને મારા સ્વરૂપનું ભાન થયું, હું બૂમ પાડીને બોલી ઉઠ્યો—'અરે ! મારી કફની મને જલદી આપી દો' હું તે અમુલ્ય વસ્ત્રોને ફેંકી દઈ મારી કફની લઈને ત્યાંથી બહાર નીકળી આવ્યો

એમ કરવાનું કારણ પૂછતાં મેં એકઠા થએલા લોકોને કહ્યું કે—'જે સમયે ઉપાસના મંત્રો ઉચ્ચારાયા ત્યારે મેં મારા અંતઃકરણના શુભ ભાવો જને સાંભળ્યો—' અરે ત્યાગી ! મારા અભિપ્રાય વિરૂદ્ધ તેં એક વાર સ્ત્રી તરફ નજર કરી, તેના પરિણામ સ્વરૂપ હજુ તો તારી એકલી કફનીજ ઉતરી છે અગર જો હજુ પણ તેમજ કરતો રહીશ તો તારા અંતઃકરણનું ધર્મવસ્ત્ર પણ નીકળી જશે અને ત્યારે તું નથી અહિંનો રહેવાનો કે નથી ત્યાંનો રહેવાનો.' ઇત્યાદિ ઘટનાઓથી માલુમ પડે છે કે મારી તીર્થયાત્રા સફળ થઈ નથી

હવે મને ખબર પડી કે "મારૂં ધર્માચરણ મને નરકના દુઃખોથી બચાવીને સ્વર્ગમાં લઈ જશે" જે એવી ઇચ્છા રાખે છે તે નિષ્કામ નથી પરંતુ જે ઈશ્વર ઉપર વિશ્વાસ રાખીને તેની પ્રસન્નતાનેજ માટે ધર્માચરણ કરે છે તેજ નિષ્કામ છે અને પ્રભુ તેને પોતાની સેવામાં રાખશે ઈશ્વર માર્ગથી વિરોધી વસ્તુ પર પ્રેમ કે આસક્તિ રાખવી અને પ્રકૃતિનો દંડ ભોગવવાની તૈયારી કરવી એ બન્ને વાતો સરખી છે

એક વખતે મેં ઉપદેશ આપતી વેળાએ લોકોને કહ્યું હતું કે—'તમારે મારાથી કોઈ ઉત્તમ પુરૂષ પાસે જવું જોઈએ અને મારે તમારા કરતાં કોઈ મનુષ્યની સેવામાં ઉપસ્થિત થવું જોઈએ. જેમકે—

हीयते हि मतिस्तात ! हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

અર્થાત્—નીચ પુરૂષોનો સંગ કરવાથી બુદ્ધિનો નાશ થઈ જાય છે. તથા પોતાની બરાબરીવાળાનો સાથ કરવાથી બુદ્ધિ સરખી રહે છે એટલે કે તે ઉન્નત થઈ શકતો નથી અને શ્રેષ્ઠ પુરૂષોના સહવાસથી બુદ્ધિ વધે છે. એમ સમજીને મેં એક મહાત્મા પાસે જઇને ઉપદેશ આપવા પ્રાર્થના કરી, તેમણે જે કહ્યું તેનો સાર આ છે—

વ્યવહારને શુદ્ધ રાખવા માટે ધૈર્ય અને પ્રેમ એ બે ઉપાય છે. સંતસમાગમ શ્રેયસ્કર છે, જે એમ નથી કરતો તે રોગરહિત નથી. લૌકિક ભોગોમાં ઉપરામતા, ઈશ્વરની આજ્ઞાનું પાલન અને પ્રભુ ઈચ્છાથી જે બની જાય તેમાંજ પ્રસન્ન રહેવું, એ સાચી પ્રભુ ભક્તિનાં લક્ષણ છે.

મનુષ્ય ગમે તેટલાં શાસ્ત્રો શીખી લે, પરંતુ જ્યાં સુધી ગુરૂની દેખરેખ અને સેવામાં રહીને આત્મશાસન શીખતો નથી ત્યાં સુધી તેનું મનુષ્યત્વ યથાર્થપણે ખીલી શકતું નથી.

જે મનુષ્ય સાધુ સંતોમાં બેસીને કથા કીર્તન તથા ઉપદેશ તો સાંભળે છે, પરંતુ સેવા તથા સંમાનનો ખ્યાલ રાખતો નથી, તેને સત્સંગથી અર્થાત્ સાધુ સમાગમથી જે શુભ ફળ મળવું જોઇએ તે મળતું નથી, અને તે સંતોની કૃપાથી વંચિત રહી જાય છે, કેમકે તે ઉપદેશ વચનો પ્રમાણે આચરણ તો કરી શકતોજ નહિ.

સાચો પ્રભુપ્રેમ અને સત્પરાયણતા એ શુભ કાર્ય અને સાધનોનાં મુળ છે. શુદ્ધ પ્રેમથી શુદ્ધ ધર્માચરણ થાય છે જેથી સાચું સુખ પ્રાપ્ત થાય છે અને તે આનંદ સ્થાયી થાય છે.

વૈરાગ્ય—એ ઈશ્વર પ્રાપ્તિને માટે અતિ શુદ્ધ સામગ્રી છે. તેને શુપ્ત રાખવામાંજ કલ્યાણ છે. જે પોતાના વૈરાગ્યને પ્રગટ કરે છે તેની પાસેથી વૈરાગ્ય નાસી જાય છે.

સાધુતાનાં નીચે લખ્યા પ્રમાણે ત્રણ લક્ષણ છે.

૧—સંસારની માન મોટાઇને તમારે તમારા અંતઃકરણમાં સ્થાન આપવું ન જોઇએ. ઉદાહરણ તરિકે સુવર્ણ, ચાંદી તથા પત્થર માટી ઇત્યાદિમાં તમારી દ્રષ્ટિ સમ હોવી જોઇએ. જેમ હાથ વડે માટીને ફેંકી દેવાય તેમ રત્નોને પણ ફેંકી દઈ શકાય છે.

૨—લોકોના તરફ તમારી દ્રષ્ટિ ન હોવી જોઇએ અર્થાત્ લોકોની પ્રશંસાથી તમારે ફુલાઈ જવું ન જોઇએ, તેમજ લોકોની નિન્દાથી તમારે દુઃખી પણ ન થવું જોઇએ.

'प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा गौरवं लाघवं महत्'

૩—તમારી અંદર કોઈ લૌકિક વિષયની કામના ન રહેવી જોઇએ. સંસારી લોકોને ઇન્દ્રિયોના વિષયથી ખાસ કરીને સ્વાદિષ્ટ ભોજનથી જેવો આનંદ મળે છે તેવોજ આનંદ તમને કામનાઓના ત્યાગથી તથા લોકો પ્રત્યેના વૈરાગ્યથી મળવો જોઇએ. જે સમયે તમે એવા બનશો તે સમયે સાધુ પુરૂષોનો સમાગમ કરવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરી શકશો. તેવા બન્યા સિવાય કોરા ફકીરી બોલ બોલવાથી શું વળવાનું છે ?

નિન્દાનો પરિત્યાગ, નિર્મળ સંતોષ અને આનંદપૂર્વક ઇશ્વરની આજ્ઞાનું પાલન, એ ત્રણ યોગ્યતાઓને અપનાવો કે જેથી સહનશીલ બનીને સાધુસમાગમ કરવાથી થતો લાભ મેળવી શકો.

× × × ×

તે પછી એક બીજા મહાપુરૂષ કહેવા લાગ્યા—એક સમયે મહિષ્મતિ નગરીમાં મને એક ધર્મ-

દોઢીએ મશ્કરીમાં ભોજન કરવાનું આમંત્રણ આપ્યું, નક્કી કરેલા સમયે હું તેને ઘેર ગયો. મને જોતાંજ તે મનુષ્યે મને ફટકારવાનું શરૂ કર્યું" "અરે બેવકૂફ! શું હું અહિં તારા બાપનું કહેણું મૂકી ગયો હતો કે જે ખાવા માટે દોડી આવ્યો? જા, ચાલ્યો જા, અહિંથી તમે કંઇજ મળી શકવાનું નથી

હું કંઈ જવાબ આપ્યા વગર પાછો ફરી રહ્યો હતો, એટલામાં તેણે મને હાક પાડીને પાછો બોલાવ્યો. અને કહ્યું—" શું ખાવાની લાલચ છે? આ પથ્થર પડયો છે, ખાઈ લે" પછી હું કાંઇ બોલ્યા ચાલ્યા વગર પાછો ફર્યો, તેણે ફરીથી મને બોલાવ્યો અને પ્રથમની માફકજ અગડ બગડ બોલવા માંડયું. કેટલું કહું ? તેણે મને ત્રીસ વાર બોલાવ્યો અને ખોટાં વચનો બોલીને મારૂં અપમાન કર્યું તેટલું કરવા છતાં મારા મોઢા ઉપર મલિનતા કે હૃદયમાં ક્ષોભ ઉત્પન્ન થયો નહિ બલ્કે તેને ભગવાનની લીલા સમજીને ખૂશીજ થતો રહ્યો

તે પછી તે નિમ ત્રણદાતાએ પોતાનો પરાજય સ્વિકાર્યો અને મારા ચરણોમાં પડીને પશ્ચાતાપ પ્રગટ કરતો બોલ્યો કે "અવશ્યજ આપ કોઈ ચમત્કારી પુરૂષ છો, મેં ત્રીસ વાર અપમાન કરીને આપને ઘરમાંથી કાઢી મૂક્યા છતાં પણ આપની પ્રસન્નતામાં જરા પણ ફેર પડયો નહિ, આપ પ્રશસાને પાત્ર છો."

તે સાંભળીને મેં કહ્યું કે—"એમાં ચમત્કાર જેવું શું છે? કુતરાનો પણ એવોજ સ્વભાવ હોય છે 'તૂ તૂ' કહેતાંજ દોડી આવે છે અને 'હટ હટ' કહેતાંજ ચાલ્યો જાય છે. ભલે તેટલી વાર એમ કરો પણ તેને હર્ષ કે ખેદ થતો નથી. કહો કુતરાથી વધારે મેં શું કામ કર્યું છે? કે જેથી પ્રશંસાને પાત્ર કહેવાઉં, કયી સિદ્ધાંત ધારણ કરી છે? પછી કુતરા જેવું વર્તન કરીને પ્રશંસાનો ભાગી કેવી રીતે?

એક દિવસ હું તેજ શહેરની એક ગલીમાં થઈને જતો હતો, ત્યાં એક મનુષ્યે મારા ઉપર કોલસાની રાખોડીનો ટોપલો બારીમાંથી ઠાલવી દીધો તે વેળાએ આજૂબાજુના ભલા લોકોએ મારા તરફ સદ્‌ભાવના પ્રગટ કરીને તે મનુષ્યને તેના એવા અસભ્યતાપૂર્ણ વ્યવહાર માટે ધમકાવવા માંડ્યો મેં કહ્યું—'સજ્જનો! આ કૃત્ય માટે તો તેને હજારો ધન્યવાદ આપવા જોઈએ, કેમકે જે માથા ઉપર સળગતા અંગારા વરસવા જોઇતા હતા, તેના ઉપર એણે તો ઠંડા રાખોડાજ નાખ્યા છે તેથી તો તેનો ઉપકારજ માનવો જોઈએ.'

કેટલાક દિવસે હું ફરતો ફરતો ગૌધાઝની નગરીમાં જઈ પહોંચ્યો, ત્યાંના લોકોના આગ્રહને લીધે મેં ત્યાં કંઇક ઉપદેશ આપ્યો તેનો કંઇક અંશ અહિં આપું છું—

સદા વિનય તથા પ્રેમપૂર્વક ઈશ્વરનું સ્મરણ કરો, ધર્મનું અનુસરણ કરતા રહીને પૂજ્ય ભાવથી પ્રેરિત થઇને મહાપુરૂષોનો સત્સંગ કરો, દયાળુ હૃદયથી તથા નમ્ર વાણીથી અજ્ઞાનીઓ સાથે વર્તો, અન્ય સેવકો તથા ઘરનાં મનુષ્યો સાથે સુશિલતા પૂર્વક વ્યવહાર કરો

અગર મનુષ્ય પોતાનામાં પૂર્ણતા લાવવા ચાહે છે તો તેણે માન તથા અપમાન અને કૃપા તથા અકૃપા એ સર્વને સમાન સમજવાં પડશે.

સંસારમાં ત્રણ પ્રકારના મનુષ્ય મળે છે—

૧—જે જ્ઞાની, જ્ઞાન અને ભક્તિની વાતો કરે.

૨—જે સાધક, સાંસારિક વસ્તુઓમાં આસક્તિ રહિત હોય.

૩—જે સજ્જન, અલૌકિક રીતીથી ઇશ્વરની પ્રશંસા કરે.

નીચેની ચાર વાતોથી જીવનું કલ્યાણ થાય છે—

૧—ઇશ્વરની સામે દીન ભાવ રાખવો.

૨—ઇશ્વર સિવાયના પદાર્થો પ્રત્યે નિસ્પૃહતા.

૩—ભગવાનમાં ધ્યાન પરાયણ રહેવું.

૪—વિનયી થવું.

વિનયમાં ત્રણ ગુણ છે—

૧—પોતાના અજ્ઞાનનું સ્મરણ.

૨—પોતાનાં પાપની સ્મૃતિ.

૩—પોતાની આવશ્યકતા અને ન્યુનતાને પ્રભુ પ્રત્યે નિવેદન કરવી.

ભાઇઓ ! તમે લોકો જાતે પોતે થઇને તમારી સાંસારિક ઇચ્છાઓની ગુલામીના કારાગારમાં બંધાયલા છો, તેમાંથી છૂટવાને માટે સમભાવથી તમારૂં સર્વ કાંઈ પ્રભુના ચરણોમાં અર્પણ કરી દો. પછી જોઇ લો, તમને કેટલું રક્ષણ અને સુખ પ્રાપ્ત થાય છે. (ક્રમશઃ)

વાસના

(લે૦—સિકંદરરાય બાળાભાઈ દેસાઈ)

વાસના એજ અભેદાનુભવમાં વિક્ષેપનું મુખ્ય અને અતિ ગૂઢ તથા સૂક્ષ્મ કારણ છે. વાસના વિલય થાય તો આખી સૃષ્ટિ વિસ્તારનાર જે મન તેનો નાશ સહજ છે. વાસના એવી પ્રબલ છે કે તેને આધીન રહી મન કદાપિ સ્થિર થવા પામતું નથી, અતિ ચંચળ રહે છે, અર્જુને શ્રી કૃષ્ણને યથાર્થ પૂછ્યું છે; चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढं, तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् मन ચંચળ છે, મથી નાખનાર છે, ગમે ત્યાંથી પણ ખડકયામાંથી ખસી જાય તેવું બળવાન છે, એનો નિગ્રહ થવો તે વાયુને રોકવાના જેવું દુષ્કર કાર્ય છે. પણ એનો નિગ્રહ બને છે, ને તે અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય બેથી બને છે. શ્રી કૃષ્ણે કહ્યું છે કે अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते પુનઃ પુનઃ ચિત્તને ઠેકાણે લાવવાનો જે પ્રયાસ તે અભ્યાસ, અને ચિત્તને વિક્ષેપ પમાડનાર જે વાસના તેની અસારતા ...જ વિક્ષેપ કારણનોજ વિનાશ સાધવો તે વિરાગ ...ભાસ... ...પ. એમ યોગસૂત્રની પણ આજ્ઞા છે. यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरं, ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ચંચળ અને અસ્થિર એવું મન જ્યાં જ્યાં ખશી જાય, બહિર્ ભાવ પામે ત્યાં ત્યાંથી પાછું તેને ખેંચી આણી આત્માને વશ સોંપવું, અંતર્દષ્ટિ કરવું. આનું અભ્યાસનું સ્વરૂપ ગીતામાં સ્પષ્ટ રીતે બતાવે છે. શ્રીમદ્ ગૌડપાદાચાર્યે પણ કહ્યું છે કે, विक्षेपे शमयेत्पुनः વિક્ષેપ પામે તો પાછું શમાવવું. પણ વાસના એવી વિલક્ષણ શક્તિ છે કે તે ગમે ત્યાંથી પણ આખી સૃષ્ટિ રચી કાઢે છે, વગર ભીંતે આખું ચિત્ર દેખાડે છે, ને એમ ચિત્તને વિક્ષેપ ઉપજાવ્યા કરે છે, જેથી અભેદાનુભવમાં વિઘ્ન આવે છે. વિરાગ ભાવના દૃઢ થવી જોઈએ, તો વાસનાનો પરિત્યાગ સંભવે છે. પદાર્થાદિની અનિત્યતા સમજવાથી જેમ વિરાગ ભાવના થાય છે, તેમ પદાર્થોની અનાત્મીયતા સમજવાથી પણ વિરાગભાવના થાય છે. વાસના અહંપ્રત્યય દ્વારે પ્રવર્તે છે, એ અહંપ્રત્યયનો વિષય જે આ એક દેહાદિ છે, તેને સ્થાને

સમષ્ટિ દૃષ્ટિ હોય તો વિક્ષેપનું કારણ રહેતું નથી, અભેદ થઈ રહે છે, ને ગમે તે વાસના ઉઠે તો પણ ઉઠે તેવી શમે છે, વિક્ષેપ કરી શકતી નથી, કારણ કે અહંથી વિરૂદ્ધ જે ઈદં, તે, પછીથી રહેતું નથી, એટલે દ્વૈત વિના વિક્ષેપ ક્યાં થાય ?

વાસના બે પ્રકારની છે. સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મ. સ્થૂલ વાસના મટે છે, તો પણ સૂક્ષ્મ વાસના મટતી નથી, અને એજ સર્વ કરતા બંધાવતી છે, ત્યારે એવા બંધન ફરી ફરીને ન બાંધતા આપણે શું કરવું ? અભેદ પ્રેમનો જે અગ્નિ છે તેનાથી એ બધા બંધન ને છાર કરી નાખવાં, બાળી નાખવાં અને એક તારથી વાસના આપણી સાથે એક તાર થાય તેમ કરવું, આત્મરૂપ થાય તેમ કરવું—આત્મરૂપ થવું, અભેદ અનુભવ કરવો, વ્યષ્ટિ ઉપરથી દૃષ્ટિ કાઢી નાખી સમષ્ટિમય થવું એમ શુભવાસના, કે અભેદમયતાની વાસના કરી પછી વાસના વિજય સાધવો ને નિર્વાસન થવું. પણ જો એમ ન થાય તો વાસનાને પ્રેમપૂર્વક કહેવું કે જો તારે મારી આ વાત ન માનવી હોય તો અહંકારરૂપ જે હું આત્મા છું તેને માર, એટલે તે અહંકારરૂપ આત્મા મરી જતાં તું (વાસના) પણ મરી જશે અને કેવળ સર્વ સાધારણ સર્વમય શુદ્ધ ચૈતન્ય—આત્મા—રહેશે જેને બંધન ત્રિકાળમાં હતુંએ નહિ, છે પણ નહિ એ રીતે અહંકાર મરવા માટે આવશ્યક છે કે શરણમાં શીર ઝુકાવવું જોઇએ, એટલે પ્રેમ ભાવ ઉદય પામવો જોઇએ, અને ગમે તેવા વિક્ષેપ સાથે મારે માટે કંઈજ નથી, બધું મારા મયજ છે એમ સર્વમયતાની આર્દ્રતા આવવી જોઇએ

અભેદ ભાવનાનું મનન નિદિધ્યાસન કરતા પ્રેમરૂપ અગ્નિ પ્રકટ થાય છે — એ પ્રેમની જ્વાલા શું કરે છે ? જે જે વસ્તુ એમાં આવે છે જ્યાં જ્યાં એનો પ્રકાશ પડેલો છે, તે વસ્તુમાં અને ત્યાં, તે બીજી તેવીજ જ્વાલા ઉપજાવે છે, અને એમ સર્વત્ર પોતે પોતાનેજ જોતાં પ્રેમમયતા—અભેદ-ઉપજાવે છે. એવી પ્રેમની આગમાં વાસના પોતે ઈંધન થઇ બળીને એક તાર થઈ જાય છે એ જ્વાલારૂપ—પ્રેમરૂપ—અભેદ થઇ જાય છે. અને એમ થવાની સાથેજ વિશ્વ—ભેદમયતારૂપી નામ વિસ્તાર—તેનો કશો સંબંધ રહેતો નથી વસ્તુ, દેશ, કાળ એ ત્રણે પરિચ્છેદની પાર જે અપરિચ્છિન્ન અભેદ તેનો અનુભવ થાય છે વૃત્તિ જો અભેદાભિમુખ થઇ હોય તો ભાવનાના પરિપાકે કરીને એક તાર થવાય અને જે વાસના શુભત્વને પામી છે તેને વિષે અભિમુખ્યની શંકા નથીજ

જગતમાં ભેદ ન ભાળતા અભેદજ અનુભવવો એ પ્રેમ કેમ કહેવાય ? પ્રેમ, પ્રેમ કરનાર, ને પ્રેમ વિષય, એમ ત્રણ વાતો—ભેદ—વિના, પ્રેમ બનેજ કેમ ? એવો પ્રેમ તે સાચો પ્રેમ પ્રકાર નથી, સાચો પ્રકાર તો એજ કે જે ઉપર કહ્યા છે તે ત્યારે એમ શંકા થશે કે એવો પ્રેમ તો કહીં દીઠો નથી, જે ભેદરૂપ પ્રેમ કહીયે છીયે તે તો ઘણા પ્રેમી જનોમાં દેખીએ છીએ—એવા પ્રેમીજન તો ગમાર છે, મૂર્ખ છે, એ શું સમજે કે પ્રેમ શી વસ્તુ છે ? જો અંધ માણસ કદાપિ વસ્તુ સ્વરૂપ જોઈ શકે તો એવા પ્રેમી કહેવાતા જન પ્રેમ સ્વરૂપ સમજી શકે; પ્રેમી જનો પ્રેમસ્વરૂપ ન સમજે તેનું કારણ એ છે કે ભેદનો સ્વિકાર કરીને જેટલો પ્રેમ થાય છે તે તો એક સ્વાર્થજ છે, પોતાની કોઈ મતલબ, પોતાના અંતરને સામાના અંતરની અનુકંપા પામવાની ઈચ્છા—એટલું પણ તેવા પ્રેમમાં કારણ હોય છે, જ્યાં કારણ છે ત્યાં ભેદ છે, સ્વાર્થ છે, માયા છે, ભેદ છે ને માયા છે ત્યાં અહંભાવ છે અહંભાવમાં પ્રેમનો અવકાશજ નથી કેવળ અહંભાવશૂન્ય જે પ્રેમ તે પ્રેમ છે અહંભાવ ગયો એટલું કહેવામાજ વાસનાનો અવકાશ નથી તેથી અહંશૂન્ય અભેદાનુભવીને અભેદમાં વિક્ષેપ નહિ આવે

અભિસાર

(લેખિકા—સૌ૦ ઈન્દુમતી દેસાઈજી)

"રાધે, ઓ રાધિકે, પ્રિય સખી ક્યાં બેઠી છો? શા વિચારમાં છો? જોની, આ માધવી કુંજોમાં કુરવકના પુષ્પો લળીલળીને ત્હારા આગમનની પ્રતિક્ષા કરી રહ્યાં છે. કારણ ત્હારા વિના, એ માધવી લતાઓને ને સર્વ પુષ્પ લતિકાઓને—કહેને કે જડ-ચૈતન્ય સર્વને શ્યામ મિલનની શી આશા? તું તો કહેતી હતી ને કે" આજ તો પ્રિયત્તમ શ્યામ માટે કાલિંદીના મનહર તટ પર માધવી કુંજોમાં સર્વ તૈયારી કરી છે, પણ ક્યાંક ચમેલીની સુગંધ-મયી વેલોથી આચ્છાદિત મંડપમાં એ નટખટ છૂપાઈને આપણને જોતા ન હોય, જોને મ્હણે હીમ-કર લળી-લળીને મણીમય માળા સમી મોગરાની વેલોના મંડપમાં શું નિરખે છે? ને—ને મયુરયુગલો એ મંડપ પાસે કેવું ઉન્માદકારી નૃત્ય કરે છે? પેલી કોકિલ કેવાં તરસત નયનોએ ઝુકી ઝુકીને એ મંડપમાં જુવે છે, સજનિ, કહે, ત્યાં એવું તે શું આકર્ષણ છે કે મ્હારૂં હૃદય ને નયનો, અંગે-અંગ ને રોમે રોમમાં પ્રેમનું ઉદ્દીપન થાય છે? રાધે, સમજ નથી પડતી મ્હને—બોલને રાધિકે, આમ કયા ગહન રસમાં તું તન્મય છે? બ્હેન આ મધુયામિની શ્યામ વિના—એના સ્પર્શ વિના કેમ વિતશે? શું મદનમોહન હમેશ આમ તલસાવવામાં જ શુરા છે? એ નટખટ કૃષ્ણને વિરહથી જળતાં આપણાં અંતરો માટે કાળજી નથી? એ અંતર્યામીએ અંતર્યામીપણું મ્હારા જેવી દિન માટે સંકોચી લીધું છે? રાધિકે, ઓ કૃષ્ણમયી રૂપેશ્વરી, તું તો એ રસેશ્વરની—અમો સર્વની-રાસેશ્વરી છો. જેમ પુષ્પમાં સુગંધ પુર્ણીમાના શશીમાં નરી ધવળતા એકય રૂપે છે તેમ તું ને શ્યામ ક્યાં જુદાં છો? જરૂર જ, તું કાન્હાને ત્હારી સન્મુખ—ત્હારી અતિ નિકટ નિરખી રહી છે, પણ સજનિ, એ ઠગારો મોહન તો પ્રેમવશ છે ને? પ્રેમ એટલે ભક્તિજ ને? હા, પણ તે તો ત્હારૂંજ સ્વરૂપ, પરમ પ્રેમરૂપા ભક્તિમૈયા રાધિકે, હું તો ત્હારે શરણે આવી છું. આંતરવ્યથાઓથી, આ અધિરતાઓથી તું ક્યાં અજાણ છે? તું ને રસનિધી બન્ને—અરે બન્ને છતાં એકજ સર્વ જાણો છો. જે ઉણપ દિન ઈન્દુમાં હોય તે તું ન ટાળે? દયામયી રાધિકે! ત્હારાં પ્રેમનયનાં કે જે શ્યામમાં તદ્રુપતા સાધી રહ્યાં છે, તેવાંજ પ્રેમચક્ષુઓ મ્હને ન આપે? બોલને-ધન્ય રાધિકે, ત્હારા મધુર હોઠો હાલી રહેલા હું જોઉં છું. શું બોલી? હું સમજી-ફરીથી ન બોલે? "ચાલ-ચાલ સખી, મ્હારા પરમધન જીવનધન. શ્યામ સુંદર સંગે ત્હારૂં ચિરસ્થાયી મિલન કરાવું. ઘેલી, આમ વ્યાકુળ થઈ રૂવે છે શું? તું જાણે છે? જે મ્હારે શરણે આવે તેને હું કેમ ભુલું? ને તું સમજે છે? વિરહની પરાકાષ્ઠા તેજ મિલનની ધન્ય પળ, તું જે માધવી ને ચમેલીના લતામંડપની વાતો કરતી હતી ત્યાંજ શ્યામ માટે સર્વ તૈયારી કરી મ્હેં અધિર મને ગાયું કે—

"શ્યામ મધુયામિનીએ બની
વાસકસજ્જા, મિલન વાંછું તમારૂં
બની અભિસારિકા કૃષ્ણ ત્હારી
પળ-પળ સંગ હું યાચું
મિલન મ્હારૂં-ત્હારૂં અહર્નિશ,
ચિરઃસ્થાયી હું માંગું
મમ આત્મનું સંલગ્ન
તમસંગ, મહાભાવ હું પામું
અભિસાર, રસરાજ મમ તન-
મનનો પ્રગટી ઉપા હૃદતાપ બુઝાઉં
સુરભિ રજનિએ કૃષ્ણ સાંવરિઆ,
ઈન્દુ અંગથી અંગ મિલાઉં

—:o:—

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(લે૦—વકીલ બાલાભાઈ નારણજી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૮૧૦ થી આગળ]

એ પ્રમાણે શ્રી આદ્યશંકરાચાર્યના ઉદ્ગાર જોતાં શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને અર્જુનને ઉપરના શ્લોકમાં જે ઉપદેશ કર્યો છે તેજ ઉપદેશ શ્રીમદ્ આદ્ય શંકરાચાર્ય સંન્યાસી છત—જો અર્જુન તેઓશ્રીને શરણે ગયો હોત તો, શ્રીમદ્ આદ્યશંકરાચાર્યે પણ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનના જેવોજ ઉપદેશ કરતે એમ શ્રીમદ્ શંકરાચાર્યના ઉપરના શ્લોકના ભાષ્ય પરથી સ્પષ્ટ છે મતલબ એજ કે, સંન્યાસને એક આશ્રમરૂપ માનનારા તત્વવેત્તાને જ્ઞાનોત્તર દશામાં પણ લોકસંગ્રહ અર્થે સંજોગો અનુસાર કર્મયોગનું પાલન કરવું પડે—અને તેમ કરવું જરૂરનું છે એમ શ્રીમદ્ આદ્ય શંકરાચાર્યનો મત છે—અભિપ્રાય છે—એ તદન સ્પષ્ટ છે

વીશેષ નવાઈ જેવું તો એ છે કે ત્રીજા અધ્યાયના ૨૫ મા અને ૨૬ મા શ્લોકના ભાષ્યમાં શ્રીમદ્ આદ્ય શંકરાચાર્યશ્રીએ એવા ઉદ્ગાર કહાડયા છે કે "કોઈ પણ તત્વવેત્તાને લોકસંગ્રહાત્મક પરોપકાર વીના બીજું કંઈ પણ કર્તવ્ય છે જ નહીં" આવા ઉદ્ગારો ગીતા વાક્ય અનુસારેજ નીકળેલા છે ચાલુ પ્રસંગમાં આવા ઉદ્ગારો શ્રીમદ્ આદ્યશંકરાચાર્ય શ્રી એવી કલ્પના પણ કોણ કરી શકે એટલુંજ નહી પણ "પ્રસ્તુત કર્મ તુ કર" એવો ખુલાસો શ્રીમદ્ શંકરાચાર્યે જે કર્યો છે તેવો ખુલાસો બીજા વીવરણકારને સૂઝત પણ નહી. અસ્તુ,

હવે લોકસંગ્રહ કરવામાં તત્વવેત્તાને જ્ઞાનનોજ મુખ્ય ટેકો હોય છે તેથી કર્મારંભથી તે ડગતા નથી ગમે તેટલું અને ગમે તે કર્મ તેઓ કરશે—તો પણ તેવું કર્મ તત્વવેત્તાઓને જન્મ તરનું કારણ બનતું નથી કારણ જ્ઞાનરૂપી અગ્નીથી તેવા કર્મના બીજ બળી ગએલ હોય છે તેથી તેવાં કર્મ કંઈ પણ ફળ આપી શકતા નથી

તેવા તત્વવેત્તાઓ કેવળ જ્ઞાનનિષ્ઠ હોઈ મુક્ત હોય છે છતાં પણ સર્વાંતરયામી પરમાત્મા પ્રીત્યર્થે એટલે જીવોના અંતરાત્માને સુખી કીવા સંતુષ્ટ કરવા સારૂ—અર્થાત પરોપકાર અર્થે—લોકસંગ્રહ માટેના કર્મારંભમાં તેવા તત્વવેત્તાઓ પોતે લાગી જાય છે તેમને સર્વં ખલુ ઇદં બ્રહ્મ—આ સર્વ બ્રહ્મજ છે! તો પછી તેઓ જે કર્મ કરે છે તે પણ બ્રહ્મજ કહેવાય—આવો ગંભીર બોધ—આવું ઉત્તમ જ્ઞાન તત્વજ્ઞાનીઓને સ્વાધીન હોય છે, તેથી કર્મ કરતા રહેવું એ તેઓને તો બ્રહ્માકાર નિર્વિકલ્પ નિસંદેહ સમાધીરૂપજ હોય છે અને આ પ્રમાણેનો અભિપ્રાય ભગવાને ગીતાજીના અધ્યાય ૪ ના શ્લોક ૧૮થી ૨૪ એ સાત શ્લોકોમાં પ્રકટ કરેલો છે

તેવા અભિપ્રાય પરથી કેટલાક તે અભિપ્રાયને કર્મયોગનો પોષક—ટેકો આપનાર છે, એમ માને છે પરંતુ ખરી રીતે તો અધ્યાય ૪ ના શ્લોક ૧૮ થી ૨૪ માં ભગવાને જ્ઞાનયોગની સ્તુતી આડકતરી રીતે કરેલી છે

આગળ વધીએ તો અધ્યાય ૪ શ્લોક ૨૫ થી ૩૨ સુધીના આઠ શ્લોકોથી ભગવાને અજ્ઞાની

લોકો માટે બીજા બીજા યોગ સંજ્ઞાથી કર્મયોગનું વર્ણન કરીને છેવટે–અંતે—એ સર્વ કર્મયોગ ज्ञानेपरिसमाप्यते। (અ૦ ૪ શ્લો૦ ૩૩) એમ કહી આપ્યું. એટલે જ્ઞાનનો ઉદય થતાંજ તેમાં સર્વ કર્મો સમાસ થાય છે એમ કહીને, જ્ઞાનયોગની પ્રાપ્તી કેવી રીતે થાય તે પ્રાપ્તીનો ઉપયોગ શો? તેનું માહાત્મ્ય શું? તેનું ફળ શું? વીગેરે વર્ણન ભગવાને અધ્યાય ૪ ના ૩૩ થી ૪૦ શ્લોક સુધીમાં કર્યું છે અને છેવટે અધ્યાય પુરો કરતી વખતે ભગવાન એમ બોલ્યા કેઃ—

योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।

—ગી૦ ૪।૪૨

એમાં જણાવ્યું કે હે અર્જુન, ઉઠ, અને એ કર્મયોગ કર. એવો હુકમ ભગવાને ફરીથી એકવાર ચોથા અધ્યાયને અંતે કરીને ચોથો અધ્યાય પુરો કર્યો.

પરંતુ અર્જુન તો પાકો વંકોડીયા સ્વભાવનો હતો. તેથી ભગવાને ચોથા અધ્યાયમાં જે નીરૂપણ કર્યું. તે જાણે પોતાને સમજાયું નથી એવું બહાનું કરીને પાંચમા અધ્યાયની શરૂઆતમાં અર્જુને તકરારી દલીલ આરંભી કે હે ભગવન, આપનો આ ઉપદેશ તે કયા પ્રકારનો? આપે તો ફરીથી એક બાજુથી કર્મ સંન્યાસ ને બીજી બાજુથી કર્મયોગ એવો બે પ્રકારનો ઉપદેશ કર્યો. તો એવું દીઅર્થી બોલો મા. એ બે પ્રકારના ઉપદેશો પૈકી જે પ્રકારનો ઉપદેશ અધીક પ્રશસ્ત–અધીક હિતકર અને મારે માટે યોગ્ય હોય તેજ એક નીશ્ચયપૂર્વક (સમજાવીને) મને કહો.

અહીં એમ લાગે છે કે ત્રીજા અધ્યાયના આરંભે અર્જુને જે પ્રશ્ન કરેલો છે. અને તેના માટે ભગવાને જે ઉત્તર આપેલો છે. તેજ જવાબથી અર્જુનની હાલની તકરાર મટવા સરખી છે. છતાં ફરીથી તેજ તકરાર અર્જુને ઉભી કરી છે તેથી તેનો વીશેષ સચોટ જવાબ આપવા માટે ભગવાન જવાબ આપે છે કે "સંન્યાસ અને કર્મયોગ આ બન્ને મોક્ષના સાધન છે" એજ અર્થ—

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ॥

—ગી૦ ૫।૨

ઉપરના શ્લોકનો છે. ઉપરનું સંસ્કૃત શ્લોકનું વાક્ય સરળ છે અને તેનો અર્થ પણ ખુલ્લો અને સરળ છે.

કર્મયોગ મોક્ષપ્રદ એટલે મોક્ષનું સાધન શી રીતે એમ કોઈને શંકા થાય તો કર્મયોગથીજ ચિત્ત શુદ્ધિ દ્વારા જ્ઞાન પ્રાપ્તી થાય છે અને જ્ઞાનપ્રાપ્તી દ્વારા મોક્ષ સધાય છે. ત્યારે પછી સંન્યાસ પણ મોક્ષપ્રદ યાને મોક્ષનું સાધન કેમ? એમ કોઈ પૂછે તો તેનો જવાબ એટલોજ કે કર્મયોગ દ્વારા ચિત્ત શુદ્ધી કરીને જ્ઞાનપ્રાપ્તિ થયા પછી કર્મની સમાપ્તીજ થાય છે. એટલે કર્મનાં ફળ આપવાવાળાં બીજ બળી ગયેલાં હોય છે તેથી તે કર્મ સંન્યાસજ કહેવાવાનો. અને તે પણ મોક્ષનું સાધન બને છે.

પરંતુ કર્મસંન્યાસ અને કર્મયોગ એ બેમાં કર્મ સંન્યાસ કરતાં કર્મયોગ અધીક પ્રશસ્ત છે. એમ પણ ભગવાન કહે છે. માટે આ બાબતનો થોડો વીચાર કરવા જેવો છે.

ખરી રીતે તો કર્મયોગ એ કર્મ સંન્યાસની પહેલાંજ આવી જાય છે. એટલે 'કર્મયોગ પૂરો થયા પછીજ કર્મ સંન્યાસનો પ્રસંગ આવવો જોઈએ એવો સરળ પ્રકાર છે. અર્થાત્ મોક્ષને માટે કર્મયોગ કરતાં કર્મ સંન્યાસ વધારે નજીકનો ઠરે છે અને કર્મયોગ એ દુરનો ઠરે છે. અને જે મોક્ષની વધારે નજીક હોય તે સાધન ઉત્તમ

ગણાય એ ધોરણે તો કર્મયોગ કરતા કર્મસંન્યાસની યોગ્યતા વિશેષ ઠરે છે છતા ભગવાન તો કર્મ સંન્યાસ કરતા કર્મયોગને વીશેષ મહત્વ આપે છે ત્યારે ભગવાનનો આશય–હેતુ–ભાવાર્થ શુ હોવો જોઇએ તેનો આપણે વીચાર કરીએ કારણ તે એક કોયડો છે

ઉપરની બાબતનો વીચાર કરતા આપણને ગીતાજીના ત્રીજા અધ્યાયના ચોથા શ્લોકના અર્થનું સ્મરણ થતાની સાથે ઉપરનો કોયડો છુટી જાય છે તે કેવી રીતે બને છે તે હવે આપણે જોઇએ

ત્રીજા અધ્યાયનો ચોથો શ્લોક નીચે પ્રમાણે છે–

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्य पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥

—ગી૦ ૩।૪

હે અર્જુન, કર્મનો આરંભ ન કરવાથી કંઈ મનુષ્ય નૈષ્કર્મભાવને પામતો નથી–કારણ નૈષ્કર્મ ભાવ એટલે જે અવસ્થામા કર્મો અકર્મરૂપ થઈ જાય છે અને કંઈ પણ ફળ ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી તેનું નામ નૈષ્કર્મ ભાવ તેવું કંઇ કર્મનો આરંભ ન કરવાથી બનતુ નથી, તેમ કર્મ ત્યાગથી (કેવળ સન્યાસથી) પણ મનુષ્યને કંઈ સિદ્ધી પ્રાપ્ત થતી નથી

તાત્પર્ય એજ કે કર્મો બીલકુલ કરીએ નહી ને નૈષ્કર્મ સ્થીતિ (સન્યાસ સ્થીતિ) પ્રાપ્ત થાય છે એમ કોઇએ માનવુંજ નહી. અર્થાત્ કર્મો ન કરતા અમસ્તા તે તજીને બેસવું તેથી તો ચિત્ત શુદ્ધિ હીન અને જ્ઞાનાધિકાર હીન દશાને મનુષ્ય પ્રાપ્ત થાય છે અને તેવા ખોટા સન્યાસથી સન્યાસનુ ફળ મળતુ નથી એવી સ્થીતિમાં ખાલી પોલંપોલ કર્મ સન્યાસ કરવા કરતા શ્રી મણિરાયનમ રૂપ કર્મ યોગ કરવામા વળગવુ એજ અધિક પ્રશસ્ત છે

ઉપરના અભિપ્રાયથી પ્રસ્તુત અધ્યાય ૫ ના શ્લોક ૨ મા કર્મ સન્યાસ કરતાં કર્મયોગ સારો એમ ભગવાને કહેલુ હોવુ જોઇએ. અને તે પ્રમાણે જ નીશ્ચિત વસ્તુ સ્થીતિ છે એમ આગળનાં વચનો જોતા પણ નીશ્ચયપણે આપણે કહી શકીશુ. તે વચનોવાળા શ્લોકો આ રહ્યા —

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥

—ગી૦ ૫।૬

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

—ગી૦ ૫।૧૧

હે અર્જુન તુ ભલે ગમે તેવો શુરવીર હો; ગમે તેટલો બળવાન હો, તોપણ તને મારે સ્પષ્ટ કહેવુ એવુ છે કે કર્માનુષ્ઠાન કર્યા વીના સન્યાસ જેવી વસ્તુ પ્રાપ્ત થવી ઘણીજ કઠણ છે અત્યંત દુર્લભ છે. તો પછી તે સન્યાસ જેવી વસ્તુ જલદીથી અને સુલભ કેમ થાય સુખસાધ્ય શાથી બને ? એમ જો તુ પૂછતો હો તો ભગવાન કહે છે કે હુ કહુ છઉ કે કર્મ યોગ કરવાથીજ સન્યાસ તને જલદીથી અને સુખસાધ્ય બની જશે અને તેવા ગંભીર કારણને લઈ યોગીઓ પણ આત્મશુદ્ધિ માટે કર્મ યોગ કરે છે

ભગવાનના આ તમામ ઉદ્ગારો અજ્ઞાની મનુષ્યને ઉદ્દેશીને છે એટલે તદ્દન સ્પષ્ટ છે એમ આપણે સર્વે કબુલ કરીશુ પરંતુ તેથી સન્યાસ જેવી વસ્તુ અપેક્ષીત નથી એવો ભગવાનના કહેવાનો બીલકુલ આશય નથી

ત્યારે હવે સન્યાસ પણ મેળવવો શી રીતે ? એવો સવાલ ઉઠે તો તેનો જવાબ એટલોજ કે કર્મોએ ચિત્ત શુદ્ધિ કરીને જ્ઞાનાભ્યાસનો અધિકાર મેળવ્યા પછી—એટલે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયા પછી—

કર્મોની સમાપ્તીજ થઈ જાય છે એટલે પછી સંન્યાસનીજ સ્થીતિ ઉપસ્થીત થવાની અને તે સંન્યાસ સ્થીતિજ મોક્ષને સાધન ભૂત છે. પરંતુ એ બેમાં કર્મ સંન્યાસ કરતાં કર્મયોગજ અધિક પ્રશસ્ત છે. એમ પણ ભગવાન કહે છે.।

ત્યારે ઉપરની વાતનો થોડો વીચાર કરવો જરૂરી છે. ખરી રીતે કર્મયોગ એ સંન્યાસની પહેલાં-પૂર્વે-હોવાનો. અને કર્મયોગ પુરો થયા પછીજ સંન્યાસનો પ્રસંગ આવવો જોઇએ એવો પ્રકાર સરળ છે. અર્થાત મોક્ષને માટે કર્મયોગ કરતાં સંન્યાસ અંતરંગ ઠરે છે અને કર્મયોગ સંન્યાસ કરતાં બહીરંગ ઠરે છે. અંતરંગ સાધન હમેશ વધારે પ્રશસનીય છે. એ ન્યાયે સંન્યાસની પ્રશસ્તતા અધિક છે એમ કહેવું જોઇએ છતાં ભગવાને તો એમ કહેલું છે કે બહીરંગ એવો કર્મયોગ તેજ સંન્યાસ કરતાં અધિક પ્રશસ્ત છે. ત્યારે આમ કહેવામાં ભગવાનનો શો હેતુ હોવો જોઇએ તે જોવું પડશે. તે હેતુની વીચારણા કરતાં આપણને ત્રીજા અધ્યાયના ચોથા શ્લોકનું સ્મરણ થાય છે. અને તે શ્લોક વાંચતાંજ ભગવાનના હેતુની આપણને જાણ થઈ જાય છે. તે શ્લોક આ રહ્યો—

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥
—गी० ३।४

તાત્પર્ય એજ કે કર્મો બીલકુલ ન કરવાથી કંઇ નૈષ્કર્મ્ય સ્થીતિ પ્રાપ્ત થતી નથી-(નૈષ્કર્મ્ય સ્થીતિ એટલે સંન્યાસ) એટલે કર્મો કર્યા વીના અમસ્થા તે તજીને બેસવું તેથી તો ચિત્ત શુદ્ધીથી હીન થવાશે જ્ઞાનના અધીકારમાંથી પણ પાછું પડાશે અને તેવી સ્થીતિમાં કેવળ નામનો સંન્યાસ ગ્રહણ કરવાથી સંન્યાસ સ્થીતિનું જે ફળ મળવું જોઇએ તે મળશેજ નહી. ઉલટ તેવી સ્થીતિ તો પોલંપોલ સંન્યાસ કહેવાય તેના કરતાં તો કર્મયોગનો એકડો ઘુંટવો એજ વધારે સારૂં છે. અને આ પ્રમાણેના હેતુથી અને અભિપ્રાયથીજ અધ્યાય ૫ શ્લોક ૨ જો બોલાયલો છે. તે આ રહ્યો—

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥
—गी० ५।२

અને ઉપર દર્શાવેલો અભિપ્રાય જ યથાર્થ છે તે માટે પુરાવા તરીકે આગળના શ્લોકો તદ્દન પાસેજ મુકાયલા છે. તે આપણે જોઇએ—

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥
—गी० ५।६

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये।
—गी० ५।११

આ શ્લોકોથી ભગવાન અર્જુનને કહે છે કે હે અર્જુન, તું ગમે તેટલો શુરવીર હો, ગમે તેટલો બળવાન હો, તો પણ હું તને સ્પષ્ટ અને ઠોકી વગાડીને કહું છઉં કે કર્મ અનુષ્ઠાન થયા શીવાય સંન્યાસ જેવી વસ્તુ પ્રાપ્ત થવી કઠણ છે. દુર્લભ છે.

ત્યારે સંન્યાસ જેવી વસ્તુ જલદીથી અને સહેલાઈથી-સુખેથી શી રીતે મળે એમ તું પૂછવા માગે છે એવું મને લાગે છે. એમ કહીને ભગવાને જવાબ આપ્યો કે—કર્મયોગ કરવાથીજ સંન્યાસ જલદીથી સુખસાધ્ય છે, અને તેટલા માટેજ કર્મયોગીઓ આત્મ શુદ્ધી અર્થેજ કર્મયોગ કરે છે.

ભગવાનના ઉપરના તમામ ઉદગારો અજ્ઞાનીને ઉદ્દેશીને છે એમ તો સ્પષ્ટ છે અને સર્વ કોઈ તે માનશેજ—પરંતુ ઉપરના ઉદગારોથી સંન્યાસ

નીરૂપયોગી છે કે તેની જરૂર નથી એમ કહેવાનો ભગવાનનો બીલકુલ આશય નથી ઉલટ રીતે સંન્યાસજ ખાસ જરૂરનો છે અને તે મેળવવા માટે કર્મયોગ સાધન રૂપ છે. બાકી મોક્ષને માટે ખાસ જરૂરની વસ્તુ તે તો સંન્યાસજ છે. અને આ હેતુને લક્ષમાં રાખીને જ ભગવાને પાંચમા અધ્યાયના આર ભમાં—

तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ।
—ગી૦ ૫।૨

એવુ વાક્ય ઉચ્ચારેલું છે.

અહિં કેટલાક ટીકાકારોને શંકા થાય છે કે ઉપરના શ્લોકથી તત્વવેત્તાએ જ્ઞાન થયા પછીના કર્મ સંન્યાસ કરવા કરતાં કર્મયોગ કરવો એજ વીશેષ ઉત્તમ છે એમ કેમ ન માનવુ ? તે શંકાના ટેકામા શંકા કરનાર નીચેના શ્લોકો પર આધાર રાખે છે અને તે એ કે પૂર્વે ત્રીજા અધ્યાયના શ્લોક ૨૫ ૨૬-૨૯ નો અર્થ એવો છે કે, અને શંકા કરનાર કેવળ શબ્દાર્થ લે છે તે એવો કે "ભગવાને એમ કહેલુ છે" "તત્વવેત્તાએ લોક સંગ્રહાર્થે કર્મયોગ કરવો, અજ્ઞલોકોનો બુદ્ધિ ભેદ થાય એમ તેણે વર્તવું નહીં. અર્થાત્ યથેષ્ટાચરણ કિંવા કર્મ સંન્યાસ કરવા કરતા કર્મયોગ કરવો અધીક પ્રશસ્ત છે તેને પોતાને માટે તેનો ઉપયોગ નહીં હોય તો પણ લોકોને તેનો ઉપયોગ થશે માટે કર્મયોગ અધીક પ્રશસ્ત છે"

ઉપર પ્રમાણે જે ભગવનનું કહેવુ છે તેજ ફરીથી અહીં પણ પ્રસ્તુત ૫ મા અધ્યાયના ૨ જા શ્લોકથી કહેલુ છે એમ કેમ ન માનવું ? એવી શંકા અને ટીકાનો સ્પષ્ટ જવાબ અને ઉત્તર એ છે કે અધ્યાય ૫ ના શ્લોક ૨ જાનું શ્લોકકથન અજ્ઞાની મનુષ્યોને માટે જ ભગવાને ઉચ્ચારેલું છે એમ આગળના શ્લોકો ૫ । ૧૧ થી સ્પષ્ટ થાય છે, વળી તત્વવેત્તાનો વાસ્તવીક સંન્યાસનો પ્રકાર કેવો હોય છે તે લક્ષમા લેતા કર્મ સંન્યાસ કરતા કર્મયોગ અધીક પ્રશસ્ત છે એમ બોલવું એ બીલકુલ અયોગ્ય છે. અર્થાત્ તત્વવેત્તાનો સંન્યાસ કેવા પ્રકારનો હોય છે ? તે કહેવા અમો હવે માગીએ છીએ.

પરંતુ સંન્યાસ આશ્રમના પરમ પુરસ્કર્તા જે આદ્ય શ્રી શંકરાચાર્ય જેમને શ્રીમન્ મહેશ્વરાવતાર જગદ્ગુરૂ ગણવામાં આવે છે તેમના શબ્દોથીજ અમો કહીશું કે તે શબ્દ—

"गुणाना कर्म, नैव किंचित् करोमि इति हि ते संन्यस्यन्ति । सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्य" इत्यादिभिः तत्त्वविद संन्यासप्रकारमुक्त"

એટલે કર્મ એ પ્રકૃતિ ગુણોથી છે અને હું જે આત્મા તે અક્રિય સ્વભાવ હોઈ કંઈ પણ કરતો નથી. આવી આત્મરૂપ તત્વવેત્તાને સમજણ, અને એવી રીતે તે તત્વવેત્તા સંન્યાસ કરે છે. એટલે અવિવેકથી પ્રથમ તેને એવો ભાસ થાય છે કે "હુ કર્તા છું કર્મ કરવુ એ મારો સ્વભાવ છે" એવી સમજણ હોય છે. પરંતુ તે સમજણ પાછળથી વીચારજન્ય જ્ઞાન બળથી બદલાય છે અને કર્મ એ ગુણમય પ્રવૃતિનું કાર્ય છે માટે તે પ્રકૃતીમાજ છે પણ આત્મામા કંઈ કર્મ નથી આત્મા તો કેવળ અસીમ, સાક્ષીભૂત, પ્રકાશક નિષ્ક્રિય, નિર્વિકાર સ્વભાવ માટે આત્મામા કોઈએ પણ કર્મ માની લીધુ તે ભૂલ કહેવાય અને તે ભૂલ હવે સુધરી ગઈ અર્થાત્ ભ્રમથી આત્મામા કર્મ છે એવો સ્વીકાર જે અગાઉ કરેલો તે ખરા જ્ઞાનના યોગથી ત્યજાઈ ગયો અને તે કર્મ હવે પ્રકૃતીનુંજ અને પ્રકૃતી વીશે રહેનારૂં છે એમ તે વીદ્વાનને નીશ્ચીત થાય છે. (અપૂર્ણ)

શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(સં૦—વામનરાવ પ્રા૦ પરેખ, બી. એ એલ. એલ. બી. (મુંબઈ) એલ. સી. પી. (લંડન)
એમ. આર. એસ. ટી. (લંડન) સૉલીસીટર.)

[અનુસંધાન ગતાંક પૃ૦ ૮૬૨ થી આગળ]

પ્રકરણ ૭મું.

મહા કારણ દેહ નિરસન.

આ સર્વ દૃશ્યાકાર,
ભાસે જે સામે નજર[1];
ટાળી તે તુંજ ઉર,
જ્ઞાન સ્વરૂપ. ૧.

અજાણનો અજાણભાવ,
જાણે છે તુંજ સ્વયમેવ.
એ જાણ લઈ મળવા જાવ,
પોતે પોતાને. ૨.

જાણપે પોતે પોતાને,
રહે ક્યાં અજ્ઞાન તે;
જ્ઞાતા બનીને પોતે,
અજ્ઞાન નિરસે[2]. ૩.

અજાણ જ્યાંથી જતી રહી,
જાણ ત્યાં તો એકલી રહી;
તે નિજદૃષ્ટિ શાસ્ત્રે કહી,
આત્મરૂપ. ૪.

જાણથી જે પોતાની,
જાણે વાતો પ્રપંચની;
વિઘ્ન જાણમાં પોતાની,
અજાણતાનું નડે[3]. ૫.

ગુરૂ કૃપાએ અજાણ તે ફીટે,
પછી સ્વયં જાણે પોતે;
અનુસંધાન એવું થાય તે,
મહાકારણ કહેવાય. ૬.

ફીટતાં એ અજાણ,
થાય જો પોતાની જાણ;
તો ત્રણે દેહનું સાક્ષી પણ,
મહા કારણ દેહ છે. ૭.

ત્રણે અવસ્થાનું જાણપણ,
તે અવસ્થા તૂર્યા જાણ;
ત્રણે દેહનું જે અવલોકન,
તે મહા કારણ દેહ. ૮.

હું સર્વસાક્ષી એવું ભાન,
છે પ્રત્યગાત્માનું અભિમાન,
બધાંનું જ્યાં થાય્યું સ્ફુરણ,
તે શુદ્ધ સ્વરૂપ. ૯.

કાર્ય કારણોનું કારણ,
માટે એ છે મહા કારણ;
કાર્ય-કારણ બનતાં શૂન્ય,
મહા કારણ કોણ કહે? ૧૦.

છે સ્વયંભૂ પોતે,
સમજે સ્વરૂપ તે પોતે,
પરબ્રહ્મ નિર્વાણ છે પોતે,
નિજ સ્વરૂપ. ૧૧.

૧=નજર સામે ભાસે છે. ૨=દૂર કરે.
૩=જે જાણનો ઉપયોગ પ્રાપંચિક વાતો જાણવામાં કરે તેને જાણપણા એટલે અજ્ઞાનનો બાધ નડે છે.

પોતાનું અનુસંધાન,
કરતાં થાય વિજ્ઞાન.
પ્રપંચનું મિથ્યાપણ,
આવે અનુભવમાં. ૧૨.
હું શુદ્ધ આત્મા પોતે,
એ જે અભિમાન પ્રવર્તે;
તેનો સાક્ષી અન્ય કોણ તે,
વિના તારા ? ૧૩.
માટે જાણવું જે નિજજ્ઞાન,
તે શુદ્ધ સ્વરૂપ હું પોતે જાણ;
એ જાણથી અન્ય ટાળો પૂર્ણ[૪],
એટલે હું નિજાત્મા. ૧૪.
છે જ્યાંથી જ્ઞાન સ્ફુરણ,
તે તું સ્વભાવે છે જાણ;
અનુભવો એ સ્વરૂપ જ્ઞાન,
જાણીને. ૧૫.
જ્ઞાનની જ્યાં ગતિ ખુટે[૫],
ત્યાં તવ સ્વરૂપની જાણપટે[૬];
ઘનાનંદ ના વધે ઘટે,
અપરિમિત. ૧૬.
જે અમર્યાદ અનૂપ,
તે જાણો આપો આપ;
અવિનાશ સ્વરૂપ,
અખંડિત. ૧૭.

ઇતિ શ્રી મહા કારણ દેહ નિરસન નામ
સપ્તમ પ્રકરણમ્ સંપૂર્ણમ્

૪=આ જાણ વિનાની બાકીની બધી વાતો જાણવી દૂર કરો તો તમેજ નિજાત્મા.

૫=આગળ જઈ ન શકે.

૬=જાણવામાં આવે થાય.

પ્રકરણ ૮ મું.

શૂન્ય ખંડણ

તે ઘનાનંદ કલ્પીએ શૂન્ય,
તોએ નામ આપવું પડે અન્ય;
વળી તેને કેમ કહીએ શૂન્ય,
જે પોતે જાણે પોતાને ! ૧.
જે સર્વ શૂન્યને જાણે છે,
તેને શૂન્ય કોણ કહે છે !
શું કોઇ કંઈ જાણે છે;
કેવળ નથી તેનાથી ?[૧] ૨
દૃશ્ય હરે ના સ્વરૂપે એ,
દૃશ્યને દૃષ્ટત્વ ન દેખાએ;
સ્વપ્રકાશ સર્વને દેખાએ,
સ્વ સ્વરૂપ સદા. ૩.
સર્વ ટળતાં છોડી અજાણ,
રહેશે, ઉરશે, એક જાણ;
તે જાણને જાણવા સ્ફુરણ,
બીજું કંઈ નથી. ૪.
અભાવ જેવું તેથી ભાસે,
પણ શૂન્ય તે કયમ કહેવાશે ?
જે જાણે સર્વને સર્વાંશે,
ને શૂન્યને વળી ? ૫.
શૂન્યનું શૂન્યપણ,
કલ્પે છે પોતે જાણ[૨];
થાયે તે સ્વરૂપે લીન,
શૂન્ય સહિત. ૬.

૧=શું શૂન્ય વડે, જે નથીજ તેનાથી કંઇ કોઇ પણ વસ્તુ જાણી શકે છે ?

૨=તે જાણજ શૂન્યના શૂન્યપણાની કલ્પના કરે છે તેથી જાણ સ્વરૂપમાં લીન થતાં આ કલ્પના પણ તેમાં લીન થાય છે

તે નથી શૂન્ય કે જાણ,
દશ્ય કે નથી અજાણ;
જ્ઞપ્તિરૂપે ભર્યું પૂર્ણ,
સ્વસ્વરૂપ. ૭.
જે નિરંતર નિર્મળ,
જ્ઞાનઘન કેવળ;
ચિદાકાશ અખિલ,
અગોચર. ૮.
જ્યાં નિરસે[3] અજ્ઞાન અનિવાર[4],
શૂન્ય બને દશ્યાકાર;
જે સૂક્ષ્મથી સૂક્ષ્મ સપૂર,
નિજજ્ઞાન. ૯.
જે નિષ્કલંક જ્ઞાનાકાશ,
કરે છે શૂન્યાકાશનો ગ્રાસ;
તે નિજદષ્ટા સ્વયં પ્રકાશ,
પરમાત્મા તું. ૧૦.
તે તું નિરાલંબ[5] સાક્ષી,
નિર્લેપ સર્વપક્ષી[6];
પારાવાર રહિત[7] નિરીક્ષી[8],
દષ્ટા થઇને. ૧૧.
જ્ઞાનનું પ્રિય મંદિર,
આસ્તિકોનું ઘર;
સુખનો સાગર,
ઘનાનંદ તું. ૧૨.
જે સર્વસાક્ષી દીપન,
જે પ્રકાશનું સ્થાન;
જે આત્માનંદનું નિધાન,
તે કૈવલ્ય તું. ૧૩.
સકળ નિરસી શુદ્ધ બુદ્ધ,
જ્યાં ઠરે તંપદ;
સરી પડે શુદ્ધ તત્પદ,
અસિપદમાં[9]. ૧૪.
એવો તું પરમાત્મા,
પણ ખોયો તેં તારો મહિમા.
હવે રહેવા નિજધામમાં,
કોઈ રીતે. ૧૫.
લક્ષ્યાંશને અનુવાદવો,
શુદ્ધ ભાવે સાંભળવો;
નિત્ય જેવો અભ્યાસવો,
તે કહીશું હવે. ૧૬.
જેથી સ્વરૂપે નિશ્ચય ઠસે,
શુદ્ધ પરમાત્મા પ્રકાશે;
સદા ચિત્ત રમશે સમરસે,
કૈવલ્યમાં. ૧૭.

ઇતિ શ્રી શૂન્યખંડણું નામ અષ્ટમ
પ્રકરણમ્ સંપૂર્ણ.

૩=ટળે, જતું રહે.
૪=અમાપ, રોકયું ન રોકાય એટલું. ૫=સ્વતંત્ર.
૬=દરેક દષ્ટિ બિંદુથી, અમે તે રીતે જોઇએ તોપણ.
૭=અંત વગરનો. ૮=જુઓ
૯=જ્યારે તત્ત્વમસિ મહાવાક્યનો અનુભવ પ્રાપ્ત થાય ત્યારે.



રહા એક દિન અવધિ કર

(લે૦—શ્રી કૃષ્ણદત્તજી ભટ્ટ)

વરસમે દિનકા ગમ દિનમે મિલનેકી ખુશી।
કૌન કહતા હૈ જુદાઈ સે વિસાલ અચ્છા હૈ?

વંદઉં પ્રથમ ભરત કે ચરના
જાસુ નેમ વ્રત જાઇ ન વરના
રામ ચરન પંકજ મન જાસુ,
લુબ્ધ મધુપ ઇવ તજઇ ન પાસ.

રામ ચરણ ચ્ચરીક ભરત માનસની એવી દિવ્ય વિભૂતિ છે કે જેના તરફ માનસના કોઈ પણ વાચકનું ધ્યાન આકર્ષાયા વગર રહેશે નહિ અગર જો કોઈ ભરતની પવિત્ર પ્રેમ કથાને માનસમાંથી કાઢી નાખે તો એ નિર્વિવાદ છે કે માનસ પછી માનસ કહેવરાવવાને યોગ્ય જ ન રહે ભરતનો પવિત્ર પ્રેમ કર્તવ્યની કઠિનાઈઓ સાથે અથડાતો કુટાતો જે પ્રમાણે ઉત્તરોત્તર આગળ વધતો જાય છે તે કોઈને પણ મુગ્ધ કર્યા વગર રહેતો નથી, ત્યાગ, તપસ્યા અને પ્રિય મિલનની નીરવ પ્રતીક્ષા દ્વારા તેનું ડગલે ડગલે પરિમાર્જન થતું જાય છે અને તે એટલો બધો સુંદર બનતો જાય છે કે કોઈ પણ રામ કથા પિપાસુની પિપાસા તેનાથી શાન્ત થવાને બદલે ઉત્તરોત્તર તિવ્ર થતી જાય છે અને તે વારે વારે એ અમૃતસાગરમાં ડુબકી મારવા વ્યાકુળ થઈ ઉઠે છે ત્યારે તો તુલસીદાસજી કહી ગયા છે કે—

ભરત ચરિત કરિ નેમ 'તુલસી' જે સાદર સુનહિં
સીય રામ પદ પ્રેમ અવસિ હોય ભવરસ વિરતિ

× × × ×

ભરત પ્રેમના બે એક નમુના જુઓ—

પ્રિયતમ રામ મારે જ લીધે વનમાં રહે છે આવો વિચાર જ ભરતને વ્યથિત કર્યા કરે છે—

ડર ન મોહિ જગ કહઇ કિ પોચૂ,
પરલોકહુ કર નાહિન સોચૂ
એકૈ ઉર બસ દુસહ દવારી,
મોહિ લગિ ભે સિય રામ દુખારી.
મોહિ સમાન કો પાપ નિવાસૂ,
જેહિ લગિ સીય રામ બનબાસૂ

પ્રિયતમના દુઃખનું કારણ હું? કેવળ એ જ વાત ભરતના અંતઃકરણને ડંખ્યા કરે છે. તેની સામે તે બીજું સર્વ કંઈ ભૂલી જાય છે પિતાનો દેહાન્ત, માતાની કુટિલતા, શોકથી વ્યાકુળ રનવાસ—સર્વ તેના વિચારોથી અદૃશ્ય થઈ જાય છે બસ, માત્ર એ જ વિચાર આવ્યા કરે છે કે, હાય!

મોર જનમ રઘુવર બનલાગી?”

સુખ પહોંચાડવું તો દૂર રહ્યું, ઉલટો હું તેમને દુઃખ પહોંચાડવાનું કારણ બન્યો તેમનું રોમ રોમ આ વ્યથાથી પીડિત થઈ ઉઠે છે, પણ—કોણ સમજે તેમની આ દારૂણ વેદના? અંતમાં તેમને સ્વયં જ પુરવાસીઓને કહેવું પડે છે કે—

ગ્રહ ગ્રહિત પુનિ બાત બસ તેહિ પુનિ બીછી માર।
તાહિ પિઆઇઅ વારુની કહહુ કવન ઉપચાર॥

હાય!

જિસ શિકે પૂછતે હો કહું કિધર રહતા હૈ
એક જગહ હો, તો બતાઉં કિ કિધર રહતા હૈ।

આ બધાવહ જ્વાલાથી આખું હૃદય સળગી રહ્યું છે, તેનાથી મુક્ત થવાનો માત્ર એક જ ઉપાય છે, અને તે છે—વ્હાલાનાં દર્શન!

દેખે બિન રઘુવીર પદ જીયકે જરનિ ન જાય॥

તે જ આ વ્યથાને સારી પેઠે સમજી શકે છે

કો જીય કે રઘુવર બિનુ બૂઝા ?
ઠીક જ તો છે—

"તુમ્હીં ને દર્દ દિયા હૈ, તુમ્હીં દવા દેના !" તે એમ કરશે અને અવશ્ય કરશે. ત્યારે તો ભરતજીને વિશ્વાસ છે કે—

જદ્યપિ જનમ કુમાતુ તેં મૈં સઠ સદા સદોસ,
આપન જાનિ ન ત્યાગિહહિ મોહિ રઘુવીર ભરોસ.

બસ, પછી શું હતું ?

સૌંપિ નગર સુચિ સેવકન સાદર સબહિ ચલાઈ,
સુમિરિ રામ સિય ચરન તબ ચલે ભરત દોઉ ભાઈ.

× × × ×

માર્ગની દશાનું વર્ણન થઈ શકે એવું નથી. જ્યાં કંઈ પણ પ્રિયતમની ચરણરજ મળી જાય છે ત્યાં પ્રણામ કરીને તેને આંખે સ્પર્શ કરાવી માથે ચઢાવી અને શરીરે ચોળવા માંડે છે.

રજ સિરધરિ હિય નયનન્હિ લાવહિં,
રઘુબર મિલન સરિસ સુખ પાવહિં.

× × × ×

પ્રેમાસ્પદની સન્મુખ પહોંચીને ભરત પ્રેમથી વિહ્વળ બની જાય છે.
બધી વાતો ભૂલાઈ જાય છે અને—

પાહિ નાથ કહિ પાહિ ગોસાઇ,
ભૂતળ પરે લકુટ કી નાઇ.

અને પ્રિયતમને જ્યારે લક્ષ્મણજી સંદેશો કહે છે કે—

"ભરત પ્રનામ કરત રઘુનાથા !" ત્યારે તેમની શી દશા થઈ જાય છે—
તે જાણવા જોવા લાયક છે—

ઉઠે રામ સુનિ પ્રેમ અધીરા,
કહું પટ કહું નિષંગ ધનુ તીરા.
બરબસ લિયે ઉઠાઇ ઉર લાયે કૃપા નિધાન,
ભરત રામ કી મિલનિ લખિ બિસરે સબહિ અપાન.

આ અનુપમ પ્રેમ સંમિલન પણ ભલા કંઈ વર્ણન કરવા જેવી વસ્તુ છે ? ત્યારે તો તુલસીદાસજી પણ એટલુંજ કહીને અટકી ગયા કે—

અગમ સનેહ ભરત રઘુબર કો,
જહઁ ન જાઇ મન બિધિ હરિહર કો.
સો મૈં કુમતિ કહઉં કેહિ ભાઁતી,
બાજુ સુરાગ કિ ગાંડર તાતી.

× × × ×

પ્રેમનો સર્વોત્તમ આદર્શ છે, પ્રિયતમની ઈચ્છાઓ ઉપર પોતાની જાતનું બળિદાન આપી દેવું, ભરત જો આ આદર્શને જગતની સામે ન મૂકે, તો કોણ મૂકે ? "આજ્ઞા સમન સુસાહિબ સેવા !" કહીને પ્રિયતમની ચરણ પાદુકાઓને માથા પર મૂકી તે અયોધ્યાપુરીમાં પાછી આવી પહોંચ્યા.

× × × ×

બસ, અહિંથી ભરતની વિરહ સાધનાના શ્રી ગણેશ મંડાય છે. પ્રિયતમના જેવી સ્થિતિમાં રહેવાનું ધ્યેય ભરતજી પણ નક્કી કરી લે છે. એવો સંભવ જ કયાં છે કે પ્રિયતમ તો વનવનમાં ભટકે, કુશની સાદડી ઉપર રાતો ગુજારે, કન્દ મુળ આદિથી પોતાની ક્ષુધાનું નિવારણ કરે અને પ્રેમી—રાજસી ઠાઠમાઠથી રહીને મહેલોમાં આનંદનો ઉપભોગ કરે ? ભરતનું પવિત્ર હૃદય ભલા એનો સ્વિકાર કેવી રીતે કરી શકે. તેથીજ તો તેમણે—

રામ માતુ ગુરુ પદ સિર નાઈ,
પ્રભુ પદ પીઠ રજાયસુ પાઈ.
નન્દિગાંવ કરિ પરન કુટીરા,
કીન્હ નિવાસ ધરમ ધુર ધીરા.
જટાજૂટ સિર મુનિ પટ ધારી,
મહિ ખનિ કુસસાથરી સંવારી.
અસન બસન બાસન બ્રત નેમા,

કરત કઠિન મુનિ ધરમ સપ્રેમા.
ભૂષન બસન ભોગ સુખ ભૂરી,
મન તન બચન તજે તૃન તૂરી.

ખરેખરજ—

રમા વિલાસ રામ અનુરાગી,
તજત બમન જિમિ જન બડભાગી.

સાધના અને તે પણ વિરહ સાધનાનો માર્ગ ઘણોજ ગંભીર છે, અહિં તો ક્ષણે ક્ષણે, ડગલે ડગલે, મુસિબત છે. રહી રહીને પ્યારાની યાદ સતાવે છે, પ્રિયતમને મળવા માટે ચિત્ત વ્યાકુળ થાય છે. તે શ્યામ સુંદર પ્રેમાસ્પદની અલબેલી સુરત નિહાળવાની લાલસા ઘડી ઘડી બેચેન બનાવતી રહે છે એજ આશા અને નિરાશામાં પ્રેમી રાત દિવસ ઝુલેતો રહે છે! હૃદયના આ ભિષણ તોફાનને હૃદયમાંજ દબાવીને અવિરામ ગતિથી પોતાના માર્ગ ઉપર ચાલતો આગળ વધતો રહે છે અને એમ કરતા કરતાં એક દિવસ સફળતા આવીને તેની સામે ઉભી રહે છે.

× × ×

પ્રતીક્ષાની નિરાશપૂર્ણ ઘડીઓ પણ ઘણી વિચિત્ર હોય છે. મિલનની મધુર આશા તેની બધી નિરાશાઓને દૂર હઠાવી દે છે. પછી તો તેમાં પ્રેમીને એટલો આનંદ આવવા માંડે છે કે તે તેમાંજ મસ્ત થઈ જાય છે. એવોજ કોઈ મસ્ત કહે છે કે—

રંજ સે ખૂં ગર હુઆ ઇન્સાં તો મિટ જાતા હૈ રંજ,
મુશ્કિલેં ઇતની પડીં મુઝ પર કિ આસાં હો ગઈ.

એક બીજા ભાઈ પણ એવુંજ કંઈક કહી રહ્યા છે કે—

મુન્તઝિર વસ્લ બજ્જત મિલી એહસાસ મુશ્કિલ હો ગયા,
રહતે રહતે દિલ મેં તેરા દર્દ ભી દિલ હો ગયા.

પ્રિયતમ આવશે અને અવશ્ય આવશે એક દિવસ ઝખ મારીને તેમને અહિં આવવુંજ પડશે! હા, એમ કંઈ કહેવાય નહિં કે તે દિવસ ક્યારે આવશે! પણ એટલું નક્કી તે દિવસ કદિ ને કદિ પણ આવશે અવશ્ય! પછી એ ચિંતા શા માટે કે તે દિવસ ક્યારે આવશે! આજ હોય, કાલે હોય, અથવા વરસો પછી હોય કે કદાચ અનેક જન્મો પછી હોય—તો પણ નિરાશ થવાનું શું કારણ? નિરાશ થવાની તો અહિં કંઈ વાતજ નથી. આશાના સોનેરી કિરણ ઉપરજ તો અહિં બધી દારમદાર છે. તે જો ન હોય તો પછી પ્રેમી તો ક્યાયનો પણ ન રહે. તેની વ્યાકુળતા, તેની વેદના, તેની મરોડ કેવળ આ આશાની ક્ષીણ રેખાનેજ જોઈને તો થોડા વખતને માટે શાન્ત થઈ જાય છે આ આશાનાજ બળ ઉપર તો તે રાત દિવસ પ્યારાની સ્મૃતિ, પ્યારાનું ધ્યાન, અને હૃદય મંદિરમાં પ્યારાનું દર્શન કરતો રહીને જીવીત રહે છે; નહિં તો પછી તેના પ્રાણ જવામાં વિલંબ જ શાનો હોઈ શકે છે. સીતા માતાની આવીજ તો અવસ્થા હતી!—

નામ પાહરૂ દિવસ નિસિ ધ્યાન તુમ્હાર કપાટ,
લોચન નિજપદ જંત્રિત જાહિં પ્રાન કેહિ બાટ.

ત્યારેજ તો—

ફિરાકે યાર મેં દિન જીંદગી કે અપને ભરતે હૈં,
સિતમ કરને હૈ પડે આશિક ન જીતે હૈં ન મરતે હૈં!

આ સાધના એક બે દિવસ અથવા એક બે વરસની નથી, એ છે—અનન્ત, અનંત કાળની. અનંત કાળથી એ ચાલી આવે છે અને ખબર નથી કે ક્યાં સુધી તે ચાલ્યા કરશે. કોણ જાણે કયા જમાનાથી એની શરૂઆત થઈ અને કોણ જાણે ક્યારે એનો અંત આવશે. તમે કહી શકો છો કે

મૃત્યુની સાથે સાથે એનું પણ મૃત્યુ થશે, પણ ભાઈ, એવું નથી. જીવન અને મરણ તો એના માર્ગમાં કંઈ બાધા નાખતાંજ નથી ! કેમકે—

Birth is not the beginning of life.
Nor is death its ending,
Birth and death begin and end.
Only a single chapter in life story.

અર્થાત્ નથી તો જન્મ થવાથી જીવનનો પ્રારંભ થતો અને નથી તો મૃત્યુ થવાથી તેનો અંત આવતો ! અરે, જન્મ અને મૃત્યુથી તો જીવનના એક અધ્યાયનો અથ અને ઇતિ માત્રજ થાય છે.

આ અધ્યાયોથી આવવા જવાનુંજ શું છે ? તે અનંત કાલીન જીવનના ઇતિહાસમાં એવા અધ્યાયોની ગણનાજ શી ? ત્યાં તો આ આવવા જવાના કાર્યને કોઈ ખાસ મહત્વજ નથી ત્યારે તો એક કવિએ કહ્યું છે કે—

મર્ગ એક મૌંદગી કા વક્ફા હૈ,
યાની આગે ચલેંગે દમ લેકર !

સરમદ સાહેબનો પણ એવોજ અનુભવ છે—

શોરે શુદો અજ ખ્વાબે અદમ ચશ્મ કશુદેમ,
દીદેમ્ કિ બાકીસ્ત શબે ફિતના ગનૂદેમ !

અદમનાં સ્વપ્નો, અભાવની નિદ્રામા સુતાં પડેલાં હતાં, એટલામાં (પ્રપંચના) શોર, કોલાહલ સંભળાયો અને અમે આંખ ઉઘાડી ! આ કોલાહલપૂર્ણ જગતમાં આવી ગયા. પણ—જ્યારે જોયું કે શબે ફિતના—અવિદ્યાની રાત હજુ તો બાકીજ રહેલી છે, તો પાછા સુઈ ગયા ! આ દુનિયાથી આંખો મીચી દીધી અને પાછા તેજ પહેલી જઈ પહોંચ્યા—

દર્દ સાહેબ તેનાથીજ હેરાન થઇને કહી રહ્યા છે કે—

ન ઠહરા સદા કાફિલા ઇસ સરા મેં,
લિયે હસરતેં યાં કી બસ્તીસે ગુજરે.

ઠીકજ તો છે કે—

અજબ સરા હૈ યે દુનિયા કિ જિસ મેં સહરો શામ,
કિસી કા કૂચ કિસી કા મુકામ હોતા હૈ !
—કબીર

આ નશ્વર જગતમાં રાત દિવસ આજ કારભાર ચાલ્યા કરે છે. કોઇ આવે છે તો કોઈ જાય છે. પણ કોઇને કંઈ ખબર નથી કે કોણ ક્યાંથી આવ્યું અને ક્યાં ચાલ્યું ગયું.

'દર્દ' કુછ માલૂમ હૈ યે લોગ સબ,
કિસ તરફ સે આયે થે કિધર ચલે.

અમે સૌ એજ જોઇને રહી જઇએ છીએ. રાત દિવસ આ ચાલતા વ્યવહારને આંખોથી જોઇએ છીએ. એના પવિત્ર પોકાર "રામ રામ સત્ય છે" પવિત્ર ધ્વનિને રોજ અમારા કાનથી સાંભળીએ છીએ, પણ છતાંય એક ક્ષણને માટે પણ ચેતતા નથી ! ચેતીએ છીએ ક્યારે—જ્યારે ચેતવાથી કંઈ લાભ રહેતો નથી ! જ્યારે લાંબી નિદ્રામાં સુવાનો વખત આવી પહોચે છે, ત્યારે આંખો ઉઘાડવાનો પ્રયત્ન કરીએ છીએ પરંતુ ત્યારે બનવા સુધરવાનું શું હોય છે ? ચેતવું હોય તો હમણાંથી જ ચેતો, નહિં તો પછી હાથ ઘસીને પસ્તાયે પણ કંઇ વળવાનું નથી અગર પોતાના ભલા બુરાનું થોડું સરખું પણ જ્ઞાન છે, તો હજુ પણ પોતાનો સુધાર કરી શકો છો અને હાથ જોડીને પોતાના પ્યારા સાકીને કહી શકો છો કે—

સાકિયા ! યાઁ ચલ રહા હૈ ચલ ચલાવ,
જબ તલક બસ ચલ સકે સાગર ચલે !
—દર્દ

ગભરાવાની કે નાસીપાસ થવાની તો અહિ

કોઈ વાતજ કરવાની નથી. એક કવિ પોતાનો અનુભવ કહી રહ્યા છે કે—

પી રહે હૈં સબ નિગાહોં સે મુહબ્બત કી શરાબ,
જો તેરી મહફિલ મેં આયા ભરા પૈમાના મિલા !

બસ, વિલંબ તો આ મહેફિલમાં પહોંચવા પુરતોજ છે, પછી તો કંઈ હરકત જ નથી, ત્યાં પહોંચ્યા પછી તો એક ને એક દિવસ તે પ્યારા સાકીની દયા દૃષ્ટિ પડીજ જશે. પરંતુ એક વાત યાદ રાખવી અને તે એ કે તમને સાકી મયખાનામાં ન દેખાય તો ત્યાંથી આઘા દૂર ખસી જશો નહિ કેટલાક લોકો ત્યાંથી એમ કહીને ચાલ્યા જાય છે કે—

દૂર સે આયે થે સાકી ! સુન કે મયખાને કો હમ,
બસ તરસતે હી ચલે અફસોસ પૈમાને કો હમ !
મય ભી હૈ મીના ભી હૈ સાગર ભી હૈ સાકી નહીં,
દિલ મેં આતા હૈ લગા દે આગ મયખાને કો હમ !
બાગ મેં લગતા નહીં સહરા સે ઘબરાતા હૈ દિલ,
અબ કહાં લે જાકે બૈઠેં ઐસે દીવાને કો હમ !
ક્યા હુઈ તકસીર હમ સે તૂ બતા દે એ 'નઝીર' !
તાકિ શાદી મર્ગ સમઝેં ઐસે મરજાને કો હમ !!

ભાઈ ! તમે પણ કંઈ એમની પેઠે ત્યાંથી પાછા ફરશો નહિ પાછા ફરવાથી કંઈ ફાયદો થશે નહિ. ફાયદો તો જે કંઈ છે તે ચુપચાપ બેસીને સાકીને આવવાની પ્રતિક્ષા કરવામાં છે, વગર કોઈ જાતની આનાકાનીએ તેની રાહ જોવામાં છે ધિરજ છોડી દેવાથી અહિં કોઈ પણ કામ બનતું નથી શું તમે એ નથી વાંચ્યું કે—

ધીરે ધીરે રે મના ધીરે સબ કુછ હોય,
માલી સીંચે સૌ ઘડા ઋતુ આયે ફલ હોય

ફળ તો મોસમ આવે ત્યારેજ મળી શકે છે. જ્યાં સુધી મોસમ ન આવે ત્યાં સુધી તો તેની રાહ જોવીજ પડશે. સર્વે કોઈનું તો એમજ થાય છે તમે પેલા ભમરાનેજ જોઇ લો—

યહિ આશા અટક્યો રહ્યો અલિ ગુલાબ કે મૂલ,
અઇહૈં બહુરિ વસંત ઋતુ ઇન ડારિન વહૈ ફૂલ.

વિશ્વાસ રાખીને તેના દરવાજા ઉપર ઉભા રહો, તેને બોલાવતા રહો. તે કંઈ બહેરો તો છેજ નહિં. કદિ ને કદિ તમારો અવાજ તેના કાનમાં પડીજ જશે ! અવશ્યજ—

કબહૂ દીન દયાલ કે ભનક પડેગી કાન !

બસ, તેજ દિવસે તમારો બેડો પાર થઈ જશે !

× × ×

બે બે દિવસ નહિ, એક બે મહિના નહિ—પૂરાં ચૌદ વર્ષની પ્રતિક્ષા આજ પૂરી થવાની છે, પણ—પ્રેમાસ્પદ હજુ સુધી ન આવ્યા ! હાય ! મારા દુર્ભાગીના ભાગ્યમાં કોણ જાણે શું લખ્યું છે ? તો શું તે નહિં આવે ? શું તે મને સર્વદા ભૂલી ગયા ! આજ તો એમણે આવી જવું જોઇતું હતું, પણ તે હજુ આવ્યા નથી ! હાય ! આજની આ ઘડીઓ તો કેમે કરીને કપાતી નથી ચૌદ વરસ તો જેમ તેમ કરીને, પૂરાં કર્યાં, પણ આજની આ એક એક ક્ષણ પણ કલ્પ જેવડી લાંબી લાગે છે સાચું જ છે કે—

અય્યામ મુસીબત કે કાટે નહીં કટતે,
એક રોઝે વિસાલ તો પલોં મેં ગુઝર જાતે હૈં !

એવીજ રીતે—

રામ વિરહ સાગર મહં ભરત મગન મન હોત,
વિપ્રરૂપ ધરિ પવનસુત આઇ ગયઉ જનુ પોત
બૈઠે દેખિ કુશાસન જટા મુકુટ કૃશ ગાત,
રામરામ રઘુપતિ જપત સ્રવત નયન જલજાત

દેખત હનૂમાન અતિ હરષેઉ,
પુલક ગાત લોચન જલ બરસેઉ.

अन्तरतम में ज्योति भरो हे !
जहाँ जहाँ नतमस्तक पाओ, वहाँ वहाँ युगचरण बढ़ाओ ;
जहाँ जहाँ पर देखो कारा, वहाँ बहादो करुणाधारा ;
बन्धनमुक्त करो युग युग के, पाप ताप अभिशाप हरो हे !

वार्षिक मूल्य—
भारत में ४)
विदेश में ६।।)

अंधाधुंध दरबार है, तुलसी रहो निशङ्क।
खोझे दोने परम पद, रीझे दीनी लङ्क ।।

साधारण प्रति
भारत में ।)
विदेश में ।=)

श्री गोवर्द्धनभाई मंगलभाई पटेल द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में मुद्रित और प्रकाशित ।

विषयसूची [हिंदीविभाग]

[ગુજરાતી વિભાગ]

गीताधर्मब्लाकवर्क्स उद्घाटनसमारोह

'गीताधर्म' के प्रेमी पाठकों और अनुग्राहकों को यह जानकर महती प्रसन्नता होगी कि गत आषाढ़ के रथयात्रापर्व के सुअवसर पर ता० १६-७-४२ को अत्यन्त उत्साह के साथ अनेक पूज्य महात्माओं तथा गण्यमान्य, सुशिक्षित नागरिकों की उपस्थिति में 'गीताधर्म' कार्यालय में उक्त ब्लाकवर्क्स का उद्घाटन हो गया। इस अवसर पर स्थानीय म्युनिसिपिल बोर्ड के सुविख्यात चेयरमैन रायबहादुर पण्डित जगन्नाथप्रसाद मेहता ने उत्सव का सभापतित्व करते हुए उद्घाटनकर्म संपन्न किया था। निमन्त्रित सज्जनों में पूज्य स्वामी श्री रामानन्दजी महाराज, तपोधन महंत श्री एतवार गिरिजी महाराज तथा अन्य संस्थानों के महात्मावृन्द एवं पं० धर्मदत्तजी शास्त्री, प्र० मन्त्री वर्णाश्रम स्वराजसंघ, पं० देवीनारायणजी एडवोकेट, पं० जानकीशरण त्रिपाठी सं० 'सूर्य', पं० रामबालकशास्त्री सं० 'संदेश' आदि विद्वद्वर्ग के अलावा अनेक साहित्यकार सज्जन तथा प्रेसव्यवस्थापकगण, प्रमुख चित्रकार, पुस्तकप्रकाशक और व्यवसायी बन्धुओं ने पधारकर उत्सव की शोभा बढ़ाई, जिन में प्रसिद्ध औपन्यासिक गहमरीजी, छविशिल्पी केदारनाथजी, बाबू बलदेवदासजी व्यवस्थापक 'आज', ठा० सूर्यबली सिंह प्रभृति सज्जन प्रमुख थे।

प्रथम पं० देवीनारायणजी वकील ने 'गीताधर्म' परिवार का कार्यावलोकन कराते हुए सभापति महोदय से उद्घाटन करने का निवेदन किया तदनन्तर स्वामी श्री रामानन्दजी महाराज ने इस संस्था के प्रवर्तक स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज की अद्भुत घटनावली पर सुन्दर प्रकाश डाला, इस के बाद पं० श्री धर्मदत्तजी व सभापतिजी के सारगर्भित भाषण के बाद विधिवत् उद्घाटन तथा सामूहिक कार्यालय का परिदर्शन हुआ।

सभी समागत सज्जनों का फूल माला, मिष्टान्न जलपान तथा पान इलायची से स्वागत सत्कार किया गया था।

वर्तमान विषम परिस्थिति में इस कार्य का आरम्भ करने में भगवान् की प्रेरणा ही मुख्य कारण थी अतएव आशा है कि वही सर्वशक्तिमान् प्रभु इस नये कार्य से जनता की सेवा करने का उद्देश्य पूर्ण करेगा। गीताधर्मप्रेमियों के लिए हर तरह के चित्रों के ब्लाक बनवाने और उन की सुन्दर छपाई के लिए विशेष प्रयास न करते हुए इसी स्थान पर हर तरह की सुविधा हो, इस का विशेष प्रबन्ध किया गया है। आशा है कि ब्लाक बनवाने का अवसर आने पर कृपालु ग्राहकगण कार्यालय का बराबर नामस्मरण रखेंगे।

—व्यवस्थापक,

गीताधर्म कार्यालय, काशी।

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ } अगस्त, १९४९, काशी { अङ्क ८

मुखशोभा

देखु सखी हरिबदन इन्दु पर ।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि कहि न जाइ सोभा अनूप पर ॥
बालभुअंगिनि निकर मनहु मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर ।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर ॥
अरुन बनजलोचन कपोल शुभ श्रुतिमंडित कुंडल अति सुंदर ।
मनहु सिंधु निज सुतहिं मनावन पठए जुगल बसीठ बारिचर ॥
नन्दनंदन मुख की सुंदरता कहि न सकत श्रुति शेष उमाबर ।
'तुलसीदास' त्रैलोक्यबिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध शूलहर ॥

—गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ।

गीता का उपसंहार

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास जगद्गुरु
महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

गीताशास्त्र का उपदेश भगवान् ने अर्जुन को दिया और उस का उपसंहार—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

—गी० १८।६३

'हे अर्जुन, इस प्रकार मैं ने गूढ से गूढ ज्ञान तुझे सुना दिया है। इसे संपूर्ण रूप से सोच विचारकर जैसी इच्छा हो वैसा कर।' इस श्लोक से किया।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि गीता का प्रतिपाद्य विषय ज्ञान है।

इस शास्त्र को संजय ने भी धृतराष्ट्र को सुनाया। अन्त में इस का उपसंहार करते समय संजय बोले—

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥

—गी० १८।७४

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

—गी० १८।७८

'इस प्रकार महात्मा वासुदेव व महात्मा अर्जुन का आश्चर्यकारक और रोमांचकारी संवाद मैं ने सुना और तुम को अभी सुनाया। इस के वक्ता योगेश्वर साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं, और इस का विषय परम रहस्यमय योग है। सो इस को जो मैं ने सुन पाया यह केवल व्यासदेवजी का मेरे ऊपर अनुग्रह है, क्योंकि उन्होंने मुझ को दिव्यदृष्टि दी थी। हे राजा धृतराष्ट्र, इस का मैं बार बार स्मरण अर्थात् मनन करता हूँ और उस के अद्भुत व पुण्यप्रद होने से मुझ को पुनः पुनः हर्ष ही हो रहा है। और साथ ही साथ भगवान् के उस अद्भुत विश्वरूप का भी मुझ को स्मरण होता है और बार बार हर्ष का अनुभव करता हूँ। यह सब जो कुछ है सो तो है ही, तुम्हारे जानने लायक प्रकृत बात इतनी ही है कि जिस पक्ष में योगेश्वर कृष्ण हैं और धनुर्धारी पार्थ हैं, उसी पक्ष में एकान्त व अत्यन्त भाव से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ जरूर वर्तमान है ऐसा ही मैं समझता हूँ।'

कहना नहीं होगा कि उपरोक्त दोनों उद्धरणों में "योग" व "ज्ञान" पर्यायवाचक हैं। इस ज्ञान का स्वरूप क्या है? गीता की पुष्पिका देखने से पता चलता है कि इस में उपनिषद्, विद्या और शास्त्र अर्थात् जिस को पण्डित लोग प्रस्थानत्रयी कहते हैं उस की चर्चा है। इस को श्री कृष्ण व अर्जुन इन दोनों के बीच संवाद का रूप दिया गया है, इस लिए पहले धडाके से संजय इतना ही कहते हैं कि मैं ने कृष्ण व अर्जुन का संवाद सुना।

"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" तथा "वादः प्रवदतामहम्"

—गी० १०।३२

इसी की ध्वनि पुष्पिका में—

"ब्रह्मविद्यायां" और "श्रीकृष्णार्जुनसंवादे" इन शब्दों में सुनी जाती है। अर्थात् ब्रह्म व अध्यात्म एकार्थवाची हैं। अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए, अध्यात्म शब्द का अर्थ भगवान् यह देते हैं कि—

स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।

—गी० ८।३

पाठकों को जरूर संदेह होगा कि "मुखमस्तीति वक्तव्य, लेखनी पत्रादि अस्तीति लेखितव्यम्" सिर्फ इसी न्याय से मैं कुछ बोल रहा हूँ, सब बातें ऊट पटाँग सी ही हैं। तथापि मैं उन को विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा लक्ष्य स्थिर ही है। कहने का अभिप्राय यह है कि पुष्पिका में जो 'ब्रह्मविद्यायां' शब्द का प्रयोग है उस में ब्रह्मशब्द का अर्थ स्वभाव है, अर्थात्—

स्वभावस्तु प्रवर्तते। —५।१४

इस में जो स्वभाव का अर्थ है—सगुण ब्रह्म, प्रकृति में प्रतिबिम्बित पुरुष, प्रकृतिस्थ पुरुष—वही यहाँ ग्राह्य है। मेरा उद्देश्य यही दिखाने का है कि सञ्जय का उपसंहार और व्यासदेवजी का (अथवा गीताकार का) उपसंहार इन दोनों का पूरा मेल है।

महाभारत की जितनी हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं उन सब में गीता की पुष्पिका नहीं पाई जाती है। इस से कोई विद्वान् सदेह करते हैं कि यह किसी नक्ल्नवीस की स्वकपोलकल्पित होगी, व्यासजी की नहीं है, किंबहुना, खुद गीता ही व्यासरचित है या नहीं इस में भी बहुतों को संशय है। इस वास्ते मैं यही प्रमाणित करना चाहता हूँ कि अथ से इति तक गीता का निर्माता एक ही व्यक्ति है। अस्तु,

पुष्पिका के स्पष्टत चार भाग दिखाई देते देते हैं। यथा—

१ श्रीमद् भगवद्गीतासु उपनिषत्सु,
२ ब्रह्मविद्यायां,
३ योगशास्त्रे,
४ श्रीकृष्णार्जुनसंवादे।

और सञ्जयकृत उपसंहार के भी चार अंश हैं। यथा—

१ यत्र योगेश्वरः कृष्णः इत्यादि। —१८।७८

२ तच संस्मृत्य'''इत्यादि। —१८।७७

२ राजन् संस्मृत्य'''इत्यादि। —१८।७६

३ व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान्...इत्यादि। —१८।७५

४ इत्यहं वासुदेवस्य'''इत्यादि। —१८।७४

उपसंहार के श्लोक व्युत्क्रम से क्यों लिखे गये और ७६,७७ एकत्र क्यों किये गये, इस का कारण आगे खुल जायगा। अब इन दोनों का सारूप्य दिखाया जायगा।

सब पर विदित है कि प्राणिमात्र को दुःख निहासा स्वभावसिद्ध है, पुरुषार्थ यही है। जैसा कि साङ्ख्यकार कहते हैं—

त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।

—सांख्यदर्शन १.१

संसारी प्राणी को तीन प्रकार का जो दुःख अपरिहार्यभाव से भोगना पड़ता है उस का अन्त होना, यही सब का मुख्य अभीष्ट रहता है। ज्ञानत वा अज्ञानत सब यही चाहते हैं। शास्त्रकार दुःख को तीन भागों में विभक्त करते हैं। यथा—

आधिभौतिक—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥
—गी० २।४

'हे मधुसूदन, प्रत्यह पूजा करने के योग्य भीष्म व द्रोण के साथ में बाणों से प्रतियुद्ध कैसे करूँगा। शराघात से उन के शरीर को पीड़ा होगी। यह शारीरिक दुःख है।'

आधिदैविक—

'गुरूनहत्वा हि महानुभावा-
च्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥'
—गी० २।५

'महामहिमशालि गुरुजनों को न मारकर इस संसार में भिक्षाप्राप्त अन्न भोजन करके गुजर करना भी बेहतर है। इन अर्थलोलुपों की हत्या करने से तो इहलोक में ही खून से सने हुए भोग भोगने पड़ेंगे।' यह क्षुधादिजन्य प्राणों का दुःख है।

आध्यात्मिक—

'न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥'
—गी० २।६

इस युद्ध में या तो हमारी जय होगी, नहीं तो उन की होगी। इन दोनों में से कौन सा श्रेष्ठ है सो भी नहीं जाना जाता।

'जिन को मारने से हम लोग जीना नहीं चाहते वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र संग्राम करने को सामने उपस्थित हैं।' यह मानस दुःख है।

इन सब का मूल शरीरादिजन्य कर्म है। इस लिए इन की जड़ जो कर्म है उसी का नाश करना चाहिए। कर्म का मूल अज्ञान है। और—"अहं कर्ता, मम कर्माणि कर्मफलसंयोगश्च" ५।१४ यह इस अज्ञान का स्वरूप है। और 'आत्मा अकर्ता, अभोक्ता है' इस उपनिषदुक्त ज्ञान से इस की निवृत्ति होती है। "हम केवल यन्त्रारूढ हैं, योगेश्वर हमारे हृदय में स्थित होकर हम को कर्म में प्रवृत्त करते हैं, हम तो उस में निमित्तमात्र हैं" यह इस ज्ञान का आकार है। इस लिए कहा कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

२, ४, ५, ६ में अर्जुन अपने को निमित्तमात्र समझता है कर्ता नहीं, इस औपनिषद् ज्ञान का भगवान् ने अर्जुन को गीता में उपदेश दिया है। इस से कर्म अकर्म हो जाता है, क्योंकि वह भगवदर्पण, ब्रह्मार्पण हो जाता है, और आधिभौतिकादि (विजयादि के लाभ से) त्रिविध दुःख का अत्यन्त (ध्रुव) नाश हो जाता है।

इस प्रकार पुष्पिका के श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु इस अंश का १८।७८ के साथ मेल दिखाया गया।

अब 'ब्रह्मविद्यायां' इस अंश का विचार किया जायगा। इस के पहले साङ्ख्यविषयक एक शङ्का हल करनी चाहिए। कोई कोई कहते हैं कि सांख्यदर्शन निरीश्वर है। इस के प्रमाण में—

'ईश्वरासिद्धेः'।

इस सूत्र का आधार दिया जाता है। इस विषय में तर्क वितर्क करके गाला मसाला बढ़ाने की बिल्कुल इच्छा नहीं। वस्तुतस्तु यह सूत्र इतना ही बताता है कि ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं

हो सकता। अपि तु, सांख्यदर्शन में परात्पर ब्रह्मप्रतिपादक एक स्वतन्त्र सूत्र भी है।

सिद्धानां कपिलो मुनिः।

—गी० १०।२६

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिः।

—गी० २।३९

एकं साङ्ख्यं च योगं च।

।—गी० ५।५

इन गीतावचनों से भगवान् की असत्ता कैसे प्रमाणित होगी? तथापि सृष्टिनिर्माण में प्रकृति ईश्वरनिरपेक्ष है इतना ही सांख्यशास्त्र का कटाक्ष हो तो दूसरी बात है। इस लिए गीता में सेश्वर सांख्य व निरीश्वर सांख्य इन दोनों मतों का पुरस्कार करके उन का समन्वय करने के लिए १८।७६ व १८।७५ ऐसे दो श्लोक कहे हैं। निरीश्वर का अभ्यर्हितत्व के कारण सेश्वर के पहले उल्लेख किया है। क्योंकि सांख्यदर्शन का प्रधान प्रतिपाद्य सृष्टि है।

पुष्पिका के 'योगशास्त्रे' इस अंश का गीता के १८।७५ के साथ आनुरूप्य सुस्पष्ट है।

उसी प्रकार 'श्रीकृष्णार्जुनसंवादे' इस की समानता १८।७४ के साथ कण्ठत मौक्तिकवत् है।

यह सादृश्य ग्रन्थकार ने जान बूझकर नहीं दिखाया, किसी लिपिकार का है, ऐसा कहना तो केवल दुःसाहसमात्र है।

यहाँ एक प्रसक्तानुप्रसक्त बात यह है कि गीता की पुष्पिका में तीनों प्रस्थानों का उल्लेख होने से जानना चाहिए कि तीनों शास्त्रों का सिद्धान्त यत्र तत्र अनुसन्धेय है और इसी कारण से गीतोक्ति में वैचित्र्य आ गया है, यहाँ तक कि कभी कभी परस्पर विरोध तक प्रतीत होता है।

असावधान पाठकों के लिए यह सूचना देना आवश्यक है। ठीक ही कहा है—

गीता "सु" गीता कर्तव्या।

आत्मनिवेदन

(ले०—स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी महाराज)

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि

परासुव, यद्भद्रं तन्नऽआसुव॥

हे दयामय, करुणामृतवारिधे भगवन्! मुझ दीन हीन, दुःखी हृदय के केवल एक आप ही अवलम्ब हैं। मेरे प्रिय प्राणनाथ, भला आप ही कहिए, इस विश्व नगर में आप के अतिरिक्त मेरा कौन है? प्रभो, भाग्यवशात् जो मुझे मिले भी वे सभी स्वार्थी ही। भगवन्, मैं जब तक उन की बंदगी तदनुकूल होकर बजाता रहा, तभी तक वे मेरी वाह वाह करते रहे, किंतु जब बंदगी में मुझ से जरा भी कमी हुई, वे तुरत मुझ से मुख मोड़कर मेरे किए हुए उपकारों को सर्वथा भूल गये। मेरे प्रिय स्वामिन्, अब तो एक आप की ही मुझ सेवक को शरण है। नाथ, आप दीनबन्धु और शरणागतभक्तवत्सल कहाते हैं तो मेरे प्यारे प्रभो, क्या आप मुझे अपनी शरण में न लोगे? भगवन्, भला आप ही कहें कि कभी किसी भक्त को आप के आनन्दमय दर्बार में आश्रय न मिला हो और वह आप से निराश होकर खाली हाथ दीन दुःखित हृदय लिए हुए ही लौट गया हो, क्या कोई

ऐसा इतिहास मिलता है ? यदि कहें हाँ, तो कहिए ऐसा कहाँ लिखा है कि भक्त को शरण भगवान् ने नहीं दी। और यदि कहें कि भक्त को शरण हमारे दर्बार में अवश्य मिलती है, तब तो नाथ, मुझे भी आप की शरण मिलनी चाहिए।

दयामय, बहुत काल से भटकता हुआ, मैं सुख शान्ति की कामना से सच्चे स्वामी की खोज करता फिरा, किंतु किसी ने भी मुझ दीन सेवक पर अपने आर्द्र हृदय से उदारता प्रकाशित न की। इस लिए हे भगवन्, मैं ने अब तो यही अपने अनुभव से निश्चय किया है कि संसार में किसी का कोई नहीं है, जो हैं वे सभी अपने स्वार्थ के संबन्धी हैं। हे विभो, अब तो मेरा दिल एक आप को ही चाहता है, क्योंकि आप ही सब के सच्चे स्वामी हैं और आप ही निराश्रयों के एक अद्वितीय आनन्दमय अवलम्ब हैं। संत कहते हैं—

गये शरण प्रभु राखि हैं, सब अपराध बिसार।

कहिए प्रभो, क्या यह संतों की वाणी सच है ? परंतु भगवन्, सच तो मैं तभी मान सकता हूँ जब मुझे भी आप अपनी आनन्दमयी शरण देवें। प्रभो, मैं ने सुना है कि मृत्यु से भयभीत हुए, बालक मार्कण्डेय को आप ने ही अपनी शरण दी थी।

हे नारायण, क्या भक्त प्रह्लाद और ध्रुव ऐसे नन्हे बालकों को आप ने ही अपनी श्रेयस्करी, परमानन्दमयी गोद में बिठाकर सदा के लिए उन्हें सुखी नहीं कर दिया था ? और विचारे दीन, दुखी कि जिन का सर्वस्व छीन लिया गया और दुःख करने पर संबन्धियों ने निर्दयतापूर्वक निकाल बाहर किया था, ऐसे आर्तभक्त सुग्रीव तथा विभीषण आदि को भी तो आप ही ने शरण देकर अपने परमभक्तों में उद्धार किया था। गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, मदालसा, द्रौपदी, चन्द्रसेना, शबरी, अहल्या, गणिका, मीरा आदि परमामृतभागिनी इन पवित्र देवियों को भी तो आप ने ही अपनी प्रिय शरण देकर आनन्दकारी श्रेय साम्राज्य का भागीदार बनाया था। भगवन्, कहाँ तक कहूँ, कुछ आप से छिपा थोड़े ही है, सब कुछ तो जानते हैं।

हे अन्तर्यामिन्, आप तो द्रष्टाओं के भी सुद्रष्टा तथा ज्ञाताओं के भी परम ज्ञाता हैं। हे परमेश्वर, भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों ही कालों में होनेवाले संपूर्ण प्राणी तथा पदार्थों के आप ठीक ठीक जाननेवाले हैं, फिर यदि मैं आप से किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के इतिहास को कहकर अपनी बात समझाऊँ तो यह मेरी मूर्खता वैसी ही कहलायेगी जैसा कि किसी मूर्ख मनुष्य ने अपने दोस्त से कहा कि चलो दोस्त, आज तुम्हें मैं दीये की रोशनी से सूरज को साफ साफ दिखा दूँ। पर सूर्य तो स्वयं प्रकाशमय ही है उस में किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार हे मेरे परम प्रिय परमात्मन् आप तो स्वयं संपूर्ण चराचर, दृष्टादृष्ट, जीव, प्रकृति तथा अपने स्वरूप को भी ठीक ठीक जाननेवाले पहले से ही हैं। फिर मैं ने जो उपरोक्त मार्कण्डेय आदि आप के भक्तों का दृष्टान्त आप को दिया है, वह इस लिए कि आप श्री मेरे आत्मनिवेदन को सुनकर मुझ दीन बालक पर शीघ्र अपनी आनन्दकारिणी करुणा और दयामयी दृष्टि की अमोघ वृष्टि कर दें। तब उस वृष्टि से इस हृदय में स्थित अज्ञानजन्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष, भय, शोक, संशय, अहंता, ममता आदि कलुष के ढेर बह जायँगे। तब आप इस हृदयप्रदेश में अपना दिव्य धाम बना लें, जिस में मैं सदा ध्यानयोग के झरोखे में बैठकर तथा आप के सुन्दर सच्चिदानन्द स्वरूप के दर्शन पाकर प्रसन्न होऊँ और अपने प्रेमजन्य आनन्दोपहार भक्तिरूपी तुलसी, श्रद्धामय चन्दन तथा मन, वाणी, शरीर से हुए लोकसंग्रहार्थ निष्काम कर्मरूपी फलों को चढ़ाकर आप का पूजन और स्वागत कर सकूँ।

ॐ तत्सत्

फिर तो कुछ भी नहीं

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

गङ्गाद्वारस्थ 'सिद्धाश्रम' की बात है, किसी समय वहाँ एक सन्यासी 'विवेक' और 'चित्तवृत्ति' के संवादरूप से ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन कर रहे थे। वे प्रवचन जारी रखते हुए बोले—

अनेक जन्मों में किये हुए पुण्यकर्मों से नित्यानित्य वस्तुविवेक द्वारा वैराग्य उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् शम, दम आदि षट्सम्पत्ति के अनुष्ठान से मुमुक्षुता की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर वेदान्तविचार से ज्ञान तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रक्रिया को समझाने के लिए रूपक द्वारा भी कहा जा सकता है, जो यह है—

'विवेकाश्रम' 'वैराग्य तीर्थ' 'शमारण्य' 'दम सरस्वती' 'उपरम सागर' ये पाँच सन्यासी तथा 'मुमुक्षा' और 'चित्तवृत्ति' ये दो सन्यासिनियाँ हैं। यह मनुष्यशरीर ही 'पाञ्चजन्य मठ'* बताया गया है, जहाँ विवेकाश्रम प्रभृति सन्यासी निवास करते हैं।

१—नित्य तथा अनित्य वस्तु का विवेक, २—इहामुत्र फलभोग विराग, ३—शम दमादि षट् सम्पत्ति†, और ४—मुमुक्षा, इन चारों के होने से ही वेदान्त के श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा ब्रह्मज्ञान होता है, अन्यथा नहीं। इन में पूर्व पूर्व उत्तरोत्तर के प्रति हेतु हैं, अर्थात् सब से प्रथम नित्य वस्तु तथा अनित्य वस्तु का विवेक होना चाहिए। इस के बिना 'इहामुत्र फलभोग विराग' याने इस लोक और परलोक के भोगों में अनिच्छा नहीं हो सकती। बिना विराग के शम दम आदि सम्पत्ति नहीं बन सकती। और इन के न होने से मुमुक्षुता तथा मुमुक्षुता के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। अत सब से पहले नित्य वस्तु तथा अनित्य पदार्थ का विवेक होना आवश्यक है। जब मनुष्य को नित्यत्वानित्यत्व का विवेक हो जाता है तब यह संसार को अनित्य और दु खरूप समझकर उस में विरागपूर्वक नित्य आनन्दरूप पदार्थ (परमात्मा) के लिए यत्न करता है। इस विषय को स्पष्ट समझाने के लिए यहाँ विवेकादि साधनों को सन्यासी के रूप में दर्शाया गया है। अब यहाँ पहले 'विवेकाश्रम' सन्यासी उपस्थित होता है।

उस सन्यासी ने बहुत कुछ अन्वेषण करने पर कहीं भी अपने रहने योग्य 'मठ' यानी स्थान न पाया, जहाँ रहकर उस का मन प्रसन्न होता। उस ने इस जगत् में ८३९९९९९ यानी एक कम चौरासी ‡ लाख मठ खोज देखे, परंतु उन में उसे कहीं स्थिति न मिली। इस प्रकार उत्तम से उत्तम पर्वत, नदी,

* शरीर को 'पाञ्चजन्य' इस लिए कहा है कि यह पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्चभूतों से बना है।

† लौकिक व्यापार से मन की वृत्ति को हटाने का नाम शम है। बाह्य विषयों से इन्द्रियों की वृत्ति को हटाने का दम, आत्मज्ञान के लिए नित्य आदि कर्मों के त्याग को उपरति, शीत उष्ण आदि द्वन्द्वों के सहन का तितिक्षा, निद्रा आलस्य प्रमाद को छोड़कर मन की स्थिरता को समाधान और गुरु में आस्तिक बुद्धि को श्रद्धा कहते हैं। इन्हीं का नाम षट् सम्पत्ति है।

‡ यहाँ चौरासी लाख योनियों को मठ के रूप में कहा गया है। केवल मनुष्ययोनि में ही विवेक हो सकता है, इस लिए 'विवेकाश्रम सन्यासी' की अन्य योनियों में स्थिति न हुई।

सागर और वन आदि अनेक स्थानों में देखते देखते उस ने 'पाञ्चजन्य' नामक मठ को देखा। उस मठ में दो खंबे लगे हुए हैं, वह कामग है यानी उस में प्रत्येक प्रकार की कामनायें पूर्ण हो सकती हैं, अथवा उस में रात दिन कामनाओं के ही गीत गाये जाते हैं। यह विषयस्थान में चला जाता है, सुन्दर है, नौ दरवाजों से सुशोभित है, सिद्धि के योग्य है अर्थात् जीवात्मा के निष्काम कर्म आदि उचित आचारों की साधना के लायक है और तीर्थपद है यानी ब्रह्म के साक्षात्कार का स्थान है। यह मठ समस्त पृथिवी-लोक की उपभोगप्राप्ति के उत्कृष्ट साधनों से संपन्न है तथा बहुत जन्मों के किये हुए पुण्यों से प्राप्त होता है। जिस परमात्मा की उपासना से विद्वानों के चित्त शुद्ध हो जाते हैं, उस मङ्गलमूर्ति की (आत्मदेव की) आराधना के योग्य यह पाञ्चजन्य मठ है।

सज्जनो! ईश्वर के अनुग्रह से ही पुरुषों का अद्वैतवासना उत्पन्न होती है। भक्ति के विना ईश्वरानुग्रह नहीं हो सकता, भक्ति से भक्तों के मन निर्मल होते हैं, अविद्या की ग्रन्थि टूट जाती है और आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। उसी ईश्वर की भक्ति के योग्य यह मनुष्यदेह है जिसे 'पाञ्चजन्य मठ' कहा गया है। भक्ति क्या है?

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

'भगवान् के गुणों को सुनकर द्रवीभूत मन की गङ्गाप्रवाह के समान निरन्तर भगवदाकार वृत्ति को भक्ति कहते हैं।' भगवान् के गुणों का श्रवण करके जिस समय एकबार ही भक्त, जिज्ञासु, मुमुक्षु का मन हर्ष से द्रवीभूत हो जाता है, प्रेम तथा आनन्द से गद् गद् हो उठता है और भक्तिरस में डूब जाता है, उस समय भगवान् की जैसी मूर्ति उस मन में अङ्कित हो जाती है वह चित्रपट से फिर कभी नहीं मिटती या हटती। उस मन में बाह्य विषय भी प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि जिस मनोमन्दिर में रामचन्द्र (परब्रह्म) का निवास हो गया, वहाँ (सूर्य की विद्यमानता में जैसे अन्धकार नहीं रह सकता वैसे ही) तुच्छ विषय वासनाएँ भी प्रवेश नहीं कर सकतीं। अत एव मन शुद्ध होकर आत्मसाक्षात्कार का अधिकारी हो जाता है। यह सब कुछ इसी मनुष्यशरीर में हो सकता है। बहुत कहने से क्या, श्रेष्ठ संन्यासियों के निवास के योग्य, पाताल, पृथ्वी और द्युलोक में पाञ्चजन्य से भिन्न और कोई मठ (स्थान) नहीं है।

यदि कहो, स्वर्गादि लोको में जो देवताओं के दिव्य देह हैं वे तो मनुष्यशरीर की अपेक्षा बहुत उत्तम हैं, स्वामी विवेकाश्रम संन्यासी ने वहाँ निवास करना क्यों उचित नहीं समझा? तो इस विषय में कहना यह है कि दिव्य शरीरों में यथारुचि भोग्य पदार्थों के निरन्तर प्राप्त होते रहने से उन में वैराग्य उत्पन्न नहीं हो सकता। अर्थात् देवताओं को नित्य नये भोग अनायास, इच्छामात्र से प्राप्त होते रहते हैं फिर वे उन के त्यागने की इच्छा क्यों करने लगे? प्रत्युत उन के राग की ही वृद्धि होती रहती है, अतः वे सदा विषयोन्मुख ही रहते हैं। किंतु मनुष्यदेह में तो अल्पभोग के कारण, इच्छानुसार भोग्य वस्तु के न मिलने पर क्लेश होता है तथा भोगों के उपार्जन में भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतः भोगों में दोषदृष्टि हो जानी संभव है, अतः पुरुष आत्मज्ञान के लिए यत्न करता है, इस लिए मनुष्यदेह सब से उत्तम माना गया है। यह निश्चय कर लेने पर लोक लोकान्तरों में निरन्तर आवागमन से पीड़ित होकर यह विवेकाश्रम संन्यासी पाञ्चजन्य मठ को अपने

योग्य समझकर उस में निवास करने लगा। श्रोतृवृन्द ! यह समझो कि मनुष्यजन्म में ही विवेक, वैराग्य हो सकता है, किंतु इस में विघ्न बाधाओं के अन्तराय भी कम नहीं हैं। उन में सब से बड़ा विघ्न जो भक्ति, ज्ञान को चौपट कर देता है वह स्त्री है। (ऐसे ही स्त्री के लिए पुरुष है)। इतिहास पुराणादिकों में इस संबन्ध में फंसने के कारण ही जीती बाजी हारनेवालों के अनेकों उदाहरण भरे पड़े हैं। आज भी यही दशा है कि यदि हमारा कथन यथार्थ नहीं है तो हम पूछते हैं कि स्त्रियाँ बनावटी बनाव शृङ्गार में इतना समय और द्रव्य क्यों व्यय करती हैं? क्या प्राकृतिक यानी स्वाभाविक गुणों से पति प्रभृति स्वजनों को प्रसन्न नहीं किया जा सकता?, इस से मालूम होता है कि स्त्रियों को ईश्वरप्रदत्त अपने स्वाभाविक शारीरिक गुणों तथा योग्यताओं पर विश्वास नहीं है, अन्यथा वे तितली बनकर अपने लाघव का परिचय क्यों देती हैं? इस से तो यही मालूम होता है कि वे भी बनावट के जाल में मनुष्यों का शिकार फँसाना चाहती हैं। अस्तु,

प्रकृत में तपश्चर्या से कृश स्वामी विवेकाश्रम यति को किसी प्रकार (पूर्वजन्म के पुण्यों के उदय होने के कारण) पाञ्चजन्य मठ के प्राप्त होते ही—काम को उद्दीपन करनेवाली चेष्टाओं से युक्त रति के समान कोई अपूर्व नारी मन्द मन्द हँसती हुई वहाँ आ पहुँची।

सा पञ्चमालापमुपाचगाना,
स्रक्चन्दनाञ्चितशरीरयष्टिः।
संतप्तजाम्बूनदरम्यवर्णा,
पीतासवा घूर्णितपद्मनेत्रा॥

अर्थात्—वह स्त्री पञ्चम स्वर में गा रही थी, पुष्पमाला और चन्दन से उस का सुन्दर शरीर विभूषित था, अत्यन्त तपे हुए सोने के समान गौर उस का रूप था, मदिरा पी रखी थी जिस की मस्ती से उस के कमलनेत्र घूम रहे थे, और दिव्य पुष्पों से गुथे हुए सुन्दर केशों के भार से उस का विलास बढ़ रहा था, जिस के प्रभाव से विष्णु के परम पद को पाने की इच्छावाले मुमुक्षुओं को भी मोहित कर रही थी, फिर सामान्य जन उस का क्या निवारण कर सकते थे?

उस नारी को ऐसी स्थिति में देखकर 'स्वामी विवेकाश्रम' का मुखकमल कुम्हला गया और अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त होकर वह मन ही मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि—

मैं ने बहुत काल के पश्चात् अनेक कष्ट सहन करके इस स्थान को प्राप्त किया है। यहाँ भी यह विघ्न कहाँ से आ गया? 'वैराग्यतीर्थ' सन्यासी जो मुझे प्राणों से भी प्यारा है, वह बड़ा डरपोक है, वह इस स्त्री की उपस्थिति में यहाँ कैसे ठहर सकेगा? इस के बिना शम, दम और उपशम आदि संन्यासी यहाँ नहीं रह सकेंगे। ऐसी दशा में यहाँ 'मुमुक्षा' तपस्विनी काहे को आवेगी? उस के न आने से 'मुक्ति' भी गई ही समझिए? हाय! इस के अभाव में हम सब आश्रयहीन हो जायँगे। यह मठ तो हम विरक्त जनों के समाज के निवास का स्थान है। यहाँ यह कौन धूर्ता पिशाचिनी सी आ गई?

कदापि युवतिं भिक्षुर्न स्पृशेत् दारवीमपि।
इति वृद्धोक्तयः सन्ति तत्कुतः स्यात् सहस्थितिः॥

---

*स्त्रियों के साथ आसक्त हो जाने के कारण ही आजकल के कितने ही मठ मन्दिर धूल में मिल गये और मिल रहे हैं। अनेक विद्यापीठों और तीर्थस्थलों की इस की वजह से जो दुर्दशा हो रही है, क्या वह धर्मप्राणजन से छिपी है?

अर्थात्—संन्यासी को स्त्रियाँ स्पर्श के योग्य नहीं हैं, फिर उन के साथ रहने की तो बात ही क्या ? ऐसा बड़े लोग कह गये हैं।

जिताहारोऽथवा वृद्धो, विरक्तो व्याधितोऽथवा।
यतिर्न गच्छेत्तं देशं, यत्र स्यात् प्रतिमा स्त्रियः॥

अर्थात्—जिताहार* बूढ़े, विरक्त और रोगी चाहे जैसी स्थिति के संन्यासी को भी स्त्री के चित्र के स्थान में भी न जाना चाहिए। जिस प्रकार विन्ध्याचल पर फैली जहरीली बेल सब प्राणियों को पीड़ित करती है, उसी प्रकार स्त्री के स्पर्श से दूषित जल-वायु भी संन्यासी को पतित करता है। स्त्रियों के साथ वार्तालाप और उन्हें देखना आदि तो दूर रहा उन की स्मृति भी सर्प के डसने की तरह मृत्यु को देनेवाली है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र आदि दिव्य शरीरधारियों के भी सब अनर्थ स्त्रियों के कारण हुए हैं, फिर तुच्छ मनुष्यों की गणना ही क्या है ? ऐसा संन्यासी दुर्लभ है—जो राज्य को नरक के समान, सुवर्ण को मिट्टी के ढेले के सदृश और स्त्रियों को मृतक शरीर के तुल्य समझे। अस्तु;

यह स्त्री हम यतियों का मठ छीनना चाहती है। यह बहुत दोषोंवाली होने के कारण संभाषण करने योग्य नहीं है। दूसरा ऐसा कोई मनुष्य यहाँ नहीं है जो इस से पूछे कि यह यहाँ क्या करना चाहती है ? क्या यह यहाँ से चली जायगी ? या सदा यहीं रहना चाहती है ? अथवा मैं ही इस से इस का मनोरथ पूछूँ ? जिस का मन प्रत्यक् आत्मा में लगा है उस का यह विचारी क्या कर सकती है ? आत्मदृढ को स्त्री आदि विषय बाधा नहीं पहुँचा सकते। जैसे स्त्री में प्रेम उत्पन्न होने से कामियों का मातृप्रेम नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आत्मप्रेमियों का विषय-स्नेह जाता रहता है। जैसे प्रकाश से रज्जू में सर्प का भ्रम जाता रहता है उसी प्रकार स्त्री आदि के कल्पित शरीर से ज्ञानियों को कोई भय नहीं रहता। जैसे भेड़ बकरियों का व्याघ्र पर कुछ बल नहीं चलता, उसी प्रकार वैराग्यतीथ जैसे साथी के सहायक होने पर मुझ विवेकाश्रम पर स्त्रियाँ क्या जोर आजमाई करेंगी ? इस प्रकार वह अनूचान* सत्तम संन्यासी उस स्त्री को दासी के समान समझता हुआ बोला—

काऽसि ? कस्याऽसि ? ललने !
कुतस्त्या ? किञ्च वाञ्छसि ?
नोचिताऽस्मिन्मठे भाति,
स्थितिस्तव वरानने॥

अर्थात्—हे ललने ! तू कौन है ? किस की स्त्री है ? कहाँ की रहनेवाली है ? और क्या चाहती है ? हे वरानने ! इस मठ में तेरा रहना उचित नहीं जान पड़ता। जहाँ शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाधिस्थ संन्यासी, अपने आत्मा (संस्कृत मन) से आत्मा का साक्षात्कार कर रहे हैं, जहाँ मुमुक्षु श्रेष्ठ यति लोग प्रत्यगात्मा को देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि से पृथक् जानकर उस का दर्शन कर रहे हैं, जहाँ विद्वान् लोग, वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, अनेक प्रकार के तप और उपवास आदि से आत्मज्ञानानुसन्धान कर रहे हैं, और पण्डितजन इस-लोक तथा परलोक के भोगों से विरक्त होकर जिस मठ में निवास करके असङ्ग ब्रह्म के विषय में श्रुति के तात्पर्यों का निर्णय करने में व्यस्त हैं, ऐसे सज्जनों

* जो पेट के दो भाग अन्न से तथा एक जल से भरता हो और एक भाग को वायु के लिए रखता हो, उसे 'जिताहार' कहते हैं।

*जिस ने अङ्गोंसहित वेद पढ़ा हो वह अनूचान कहाता है।

के निवास के योग्य इस पाश्चजन्य मठ में तेरा ठहरना उचित नहीं है। किंतु तू इस मठ को छोड़कर अन्य संसार के मन्दिरों (शरीरों) में ही रहने योग्य है, क्योंकि वे ही तेरे उपयोगी होंगे।

सुविशाल नेत्रोंवाली वह नारी विवेकाश्रम के उक्त वाक्यों को सुनकर क्रमशः उत्तर देने लगी—

हे भद्र ! मैं तेरी बड़ी बहन 'चित्तवृत्ति' हूँ, तू मुझे नहीं जानता, क्योंकि—तू अभी उत्पन्न हुआ है।* हे वत्स ! जो जो मठ तू ने त्याग दिये हैं और अब जिस मठ में तू विद्यमान है, उन सब की पालना करनेवाली अधिष्ठातृ देवता मुझे ही जान। मैं मन को हरनेवाले शब्द, रूप, रस आदि समस्त विषयों को चाहती हूँ, और उन शब्द आदि को संपादन करनेवाले शुभ कर्मों को भी चाहती हूँ। मैं कर्मों के त्याग की इच्छा नहीं रखती और न उन के फलों को ही छोड़ना चाहती हूँ। जैसे तू मूर्ख संन्यासी बनकर कर्म और उन के फलों को छोड़ना चाहता है। "अरे ! पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा को त्यागकर घर घर भीख माँगनी चाहिए" ऐसी मति सर्वथा विचारशून्य है। 'आरम्भ में होनेवाले जातकर्म आदि संस्कारों का जिस वेद में विधान है तथा जिस वेद का अध्ययन भी प्रथमावस्था में ही होता है, और रमणीय घरों में अनेकविध धन धान्यादिकों से यज्ञ का अनुष्ठान करना जिस वेद में लिखा है, वह 'कर्मोपासना काण्डरूप वेद' तो त्याज्य है ? और वृद्धावस्था में (लाचारी में) किये जाने योग्य संन्यास का जिस में विधान है, तथा जंगल में जिस का अध्ययन किया जाता है और भिक्षारूप अर्थ का ही जिस में विधान किया गया है वह 'ज्ञानकाण्ड' रूप श्रुतिसमूह ग्राह्य है' इत्यादि मूर्खों की विपरीत मति है। "ज्योतिष्टोम याग से स्वर्ग होता है" यह वेद तो "गुडजिह्विका"† कहकर उपेक्षणीय है ? और "मूँड मुँडाकर तथा नंग धड़ंग होकर भीख माँगते फिरना" यह वेदवचन तत्त्वार्थ (मुक्ति) देनेवाला है, इस प्रकार की यानी भीख माँगने की कल्पना वे निर्भाग्य, दरिद्र, अनाथ और मूर्ख लोग ही किया करते हैं जिन्होंने कि पूर्व जन्म में सत्कर्म नहीं किये। अहो ! इन सिरमुंडों को भिक्षा आदि से इतना महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि इन के कहने से बहकावे में आकर राजा लोग राज्यों को छोड़कर जंगलों में चले गये। यदि संन्यासी लोग ऐसा कहें कि—'अथ भिक्षाचर्यं चरन्ति' इत्यादि श्रुतियों से भिक्षावृत्ति का विधान किया जाने के कारण वह अवश्यमेव इष्ट का साधन है, तो 'श्येन* सदंश' आदि यागों ने क्या अपराध किया

* यों समझना चाहिए कि—'विवेक' की उत्पत्ति से पहले ही विषयाकार 'चित्तवृत्ति' अनादि काल से चली आती है, अतः 'विवेक' की अपेक्षा वह बड़ी है। और 'विवेक' तथा विषयाकार 'चित्तवृत्ति' दोनों अन्तःकरण के परिणाम हैं, अतः एक अन्तःकरणरूप पिता से उत्पन्न होने के कारण दोनों भाई-बहन के समान हैं।

†—जैसे बालक को कड़वी औषध गुड़ में मिलाकर दी जाती है वह गुड़ के लोभ से दवा खा जावे इसी तरह ज्योतिष्टोम आदि यागों से स्वर्ग प्राप्ति का प्रलोभन दिया गया है।

*—'श्येनेनाभिचरन् यजेत' 'सदंशेनेनाभिचरन् यजेत' और 'गवाभिचर्यमाणो यजेत' इत्यादि श्रुतियाँ उत्कट क्रोधाक्रान्त पुरुषों के लिए 'श्येन' 'सदंश' 'गो' आदि नाम के अनेक यागों का विधान करती हैं। इन यागों को करने से शत्रु की मृत्यु अवश्य हो जाती है। परन्तु करनेवाले को मरणानन्तर नरक की प्राप्ति होती है। अतः ये मारणकर्म पुरुष के इष्ट (स्वर्गादि सुख) के जनक नहीं हैं। यदि उत्कट क्रोध के वशीभूत होकर कोई पुरुष अपने

है ? वे भी तो श्रुति से विधान किये गये हैं। इन्हें इष्ट का साधन क्यों नहीं मानते? आप इन का भी अनुष्ठान क्यों नहीं करते ? फिर व्यवहारतः भीख माँगना कोई अच्छा थोड़े ही है ? इस से पुरुष का तेज नष्ट हो जाता है। जब कि मनुष्य में बुद्धि है और वह साङ्गोपाङ्ग है, फिर किसी से भिक्षा क्यों माँगे ?

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादि वेदान्त, जिस आत्मा को द्रष्टव्य कहते हैं क्या उस को हम प्रत्यक्ष नहीं देख रहे हैं ? यह शरीररूप आत्मा तो साफ दीख रहा है, जो हाथ पैर आदि अङ्गों की विशेष रचनावाला है। फिर इस के विषय में वेद का यह कहना व्यर्थ है कि—'आत्मा का साक्षात् करना चाहिए।' यदि उपनिषद् प्रतिपाद्य आत्मा, देहेन्द्रियादिकों से भिन्न है, कोई वस्तु है और सब को प्यारा है तो ऐसा आत्मा स्त्री पुत्र आदि प्रिय पदार्थ ही हो सकता है। कहने का प्रयोजन यह है कि देह से भिन्न यदि कोई आत्मा मानोगे तो वह पुत्र दारा आदि रूप ही होगा और उसी पुत्रादिरूप आत्मा के लिए शरीरेन्द्रियादि जगत् भी प्यारा होगा, फिर उस के त्याग का विधान क्यों करते हो ? पुत्र दारा आदि रूप आत्मा को इन्द्रियों से अनुभव किये गये विषयों द्वारा तृप्त करो। स्नान, मिट्टी से शौच, शिरोमुण्डन, भूमि-शयन, वन में वास, ब्रह्मचर्य और शम दमादि कठोर साधनों से आत्मा को क्यों क्लेश देते हो ? वीणा और नारी के मुख से गाये गये मनोहारी शब्दों—गीतों को सुनो। कोमल कोमल शय्या, मृदु मृदु मृगनयनी स्त्रियों का स्पर्श करो, सुवर्ण के समान कान्तिवाली स्त्रियों के रूप लावण्य का सदा अवलोकन करो, भक्ष्य भोज्य चोष्य आदि उत्तमोत्तम स्वादिष्ठ पदार्थों का रात दिन सेवन करो। मस्तक पर कस्तूरी लगाओ, गले में फूलों के हार पहनो और सदा यही चिन्तन करो कि—

"ये मेरे सुख वार वार होवें।"

कहाँ तक कहें 'चित्तवृत्ति' ने ऐसी बहुत सी वाहियात बातें कहते हुए बहुत देर तक बकवाद की। ये सब बातें सुनकर स्वामी विवेकाश्रम हँसता हुआ 'चित्तवृत्ति' से बोला—

तू विपरीत बुद्धिवाली है, तेरे अज्ञानान्धकार को करोड़ों सूर्य भी नहीं हटा सकते, अज्ञान में डूबे हुए व्यक्ति को अविद्या ही अच्छी लगती है, क्या विष्ठा का कीड़ा खाँड को मिठास को पसन्द कर सकता है ? यदि वज्रमूर्ख तत्त्वार्थ को जान सकता है, तो बहरा पुरुष भी वीणा और कण्ठोत्थ शब्द को सुन सकता है। यदि अत्यन्त विषयासक्त पुरुष ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है तो कछुए का बच्चा भी अपनी माता के दूध के रस का आस्वाद ले सकता है। अविद्या के कार्य इन शरीरादिकों में

---

†शत्रु को खड्ग आदि से मारेगा तो वह राजा द्वारा प्राण-दण्ड का भागी होगा। और उस के आश्रित प्राणधारण करनेवाले स्त्री पुत्र आदि अन्नादि विना कष्ट माँगेंगे—इत्यादि दृष्ट दुःखों से बचाने के लिए दयापरायण होकर श्रुति ऐसा जानती हुई कि—'यह नरक तो अवश्य ही जायगा' अतः यदि हो सके तो दृष्ट दुःखों से इस की और इस के परिवार की, बन्धुओं की रक्षा करनी चाहिए, इस अभिप्राय से उत्कट क्रोधाभिभूत पुरुष के लिए 'श्येन' 'संदंश' गो आदि यागों का विधान करती है। अतः 'चित्तवृत्ति' कहती है कि—श्येन आदि यागों के समान भिक्षाचरण भी इष्टसाधन नहीं है। यह केवल उन के पूर्व जन्मों के अन्यथाचरणों का परमेश्वरदत्त दण्ड है। अर्थात्—जो भीख माँग रहे हैं वे अपने पूर्वजन्मकृत कुकर्मों का ईश्वर द्वारा फल भोग रहे हैं। क्या श्रौत स्मार्त कर्म त्यागकर घर घर भीख माँगना पुण्यों का फल है ?

आत्मबुद्धिवाले पुरुष को तत्त्व का गन्ध भी दुष्प्राप्य है, लहसुन खानेवाले भील कपूर की सुगन्ध को क्या महत्त्व दे सकते हैं? आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक रूप तापत्रय* के संताप से तपे पुरुष को तत्त्वच्छाया का सुख कहाँ?

हे चित्तवृत्ते! तू विषय सम्बन्धी आग्रह का परित्याग करके प्रिय–चित्–सुखरूप ईश्वर का आलिङ्गन कर। जहाँ जहाँ तुझ को आनन्द प्रतीत होता है वह सब आत्मा का है। विषयों में सुख नहीं है, इन के प्रेमी रोया करते हैं। क्षीरसागर की मछली जैसे क्षीरसागर के जल से तृप्त नहीं हो सकती उसी प्रकार आत्मानन्दानुभव करने के बाद विषयसुख तुच्छ और हेय प्रतीत हुआ करते हैं।

हे चित्तवृत्ते! तू समझ कि वाञ्छित विषयों की प्राप्ति से शान्त हुए मन में आत्मा के सुखांश का जो आभास पड़ता है, वह यद्यपि आत्मसुख ही है, तथापि अज्ञान से लोग उसे विषयजन्य मान लेते हैं, वस्तुतः वह सुख विषयजन्य नहीं है। यदि अन्य सुख को छोड़कर किसी अन्य महासुख को प्राप्त करने की तेरी इच्छा है और यदि तू विनाश-रहित सुख की अभिलाषिणी है तो देहत्रयरूप उपाधि को नाश करके अक्षय आत्मसुख को स्वीकार कर। जैसे पशु गुड़ को छोड़कर भूसे को ही उत्कण्ठापूर्वक चाहता है इसी प्रकार तू आत्मसुख को त्यागकर विषयों को क्यों चाहती है? विषयसुख की नीरसता और अनित्यता देखकर भी जो फिर उसी को चाहता है वह नर नहीं, खर है। जैसे ऊँट आम के सुन्दर, कोमल, मधुर और नूतन पत्तों को छोड़कर पीलु, नीम, करीर, शमी और कीकर आदि काँटेदार तथा कड़वे पत्तों की इच्छा करता है, उसी प्रकार तू विषयों की इच्छा से आत्मा को त्याग रही है, और कुतिया की तरह विषयों के टुकड़े के लिए भटकती है।

हे चित्तवृत्ते! अधिक क्या कहूँ, आत्मानन्द से परिपूर्ण होकर तू शान्तिलाभ कर। विषय नियमपूर्वक सुख देनेवाले नहीं हैं, क्योंकि–प्राप्ति या अप्राप्ति में प्रायः ये दुःख ही देते हैं, फिर टिकाऊ भी नहीं हैं, न एकरस रहते हैं। और आपातत: आज जिस को कुछ काल के लिए हँसाते हैं, उसी को कुछ दिन बाद सदा के लिए रुलाते हैं। विषय की आशा में नष्ट होते हुए भ्रमर, हरिण, हस्ती, पतंग और मछली को क्या तू नहीं देखती? जब ये एक एक विषय के भोग करने की इच्छा से नष्ट होते देखे गये हैं तो उस प्रमादी के सत्यानाश होने में क्या संदेह है जो पाँचों विषयों का पञ्चेन्द्रियों से सेवन करता है। कोयल के शब्द के समान यदि शब्द ही सुख का कारण हो तो विषयासक्त लोग, गधे के रेंकने के शब्द को सुनकर प्रसन्न क्यों नहीं होते? स्त्रियों के आलिङ्गन की तरह यदि स्पर्श ही सुख का हेतु है तो विषयी जन जलते हुए अङ्गार के स्पर्श को क्यों नहीं पसन्द करते? यदि सुवर्ण के रूप के समान रूप ही सुख का देनेवाला है तो विषयलम्पट मनुष्य काक के रूप से क्यों नहीं प्रसन्न होते? यदि आम्रफल के रस के सदृश सेवन किया गया रस ही आनन्द का देनेवाला है तो इन्द्रायण के रस का सेवन भी क्यों नहीं किया जाता? सुगन्धित धूप के धुएँ के समान मन्द मन्द वायु से लाया हुआ पुष्प आदि का गन्ध ही यदि आनन्द को देता

* शारीरिक और मानसिक भेद से 'आध्यात्मिक' ताप दो प्रकार का है, यथा—ज्वर, रक्तपित्त, अतिसार, प्रमेह, कुष्ठ, आदि शारीरिक और राग, द्वेष, मोह आदि मानसिक ताप हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, वज्रपात, आँधी आदि आधिदैव और व्याघ्र, सर्प, चोर आततायी राजा आदि आधिभौतिक दुःख हैं।

है तो चिता का धूआँ भी प्रीतिकर होना चाहिए? समझ लो, जिस विषय से सुख होता है उसी से दुःख भी होता है, जैसे कि न पची हुई मीठी खीर रोग या मृत्यु का कारण होती है।

हे चित्तवृत्ते! इस लिए संसारदुःख की ओषधि जो अनन्त तथा सर्वोत्तम आत्मसुख है उस को पान करके तू स्वस्थ हो जा। संसार का त्याग और कर्मों का छोड़ना तो विषयों के लपेटे से बचने के लिए परमावश्यक है। और भिक्षाचर्या, अपने अभिमान को विनष्ट करते हुए यथासंभव आवश्यकताएँ कम करने के लिए है। यों तो राज्य और खजाना पाने पर भी किसी को संतोष नहीं होता, और भीख माँगने पर भी वह हो जाता है। वैदिक कर्मकाण्ड तो बहुत पहले की बात हो जाती हैं। कर्मोपासना में संतोष नहीं है। संतोष नहीं तो शान्ति नहीं। "फिर तो कुछ भी नहीं।"

अध्यात्म योग

(श्री अरविन्द)

जिस योग की साधना हम करते हैं वह केवल हमारे लिए ही नहीं है, बल्कि मानवजाति के लिए है। इस का उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, यद्यपि मुक्ति योग की एक आवश्यक अवस्था है। बल्कि इस का उद्देश्य है मनुष्यजाति की मुक्ति। हमारा उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से आनन्द को प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह है कि भागवत आनन्द या सत्ययुग को पृथ्वी पर उतार लाया जाय। मोक्ष की हमें व्यक्तिगत रूप से कोई आवश्यकता नहीं है, कारण कि आत्मा नित्यमुक्त है और बन्धन तो केवल भ्रम ही है। वास्तव में हम किसी बन्धन में नहीं हैं, बल्कि हम बन्धन में पड़ने का अभिनय करते हैं। ईश्वर जब संकल्प करे तभी हम मुक्त हो सकते हैं, कारण कि वह हमारा परम आत्मा, इस नाटक का सूत्रधार है और उस के प्रसाद व आज्ञा के बिना कोई भी आत्मा इस रंगभूमि को नहीं छोड़ सकता। बहुधा हम में यह ईश्वर का संकल्प ही होता है जिस से प्रेरित होकर हम मन के द्वारा अज्ञान का तथा हर्ष और शोक, सुख और दुःख, पाप और पुण्य, भोग और त्याग के द्वन्द्वों का उपभोग करते हैं। बहुत से देशों में तो वह इस लीला को एक बहुत दीर्घ काल तक चलाये चलता है, शताब्दियो पर शताब्दियाँ बीत जाती हैं और योग के संबन्ध में वह विचार तक नहीं करता। इस में कोई बुराई नहीं है, ऐसी कोई बात नहीं जिस को हम दोष दें या जिस से हम मुँह मोड़ें, यह भगवान् की लीला है। बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो इस सत्य को स्वीकार करता है और अपनी स्वतन्त्रता का ज्ञान रखते हुए भगवान् की इस लीला मे अपना अभिनय करता रहता है तथा इस लीला की पद्धति में फेर फार करने के लिए उस के आदेश की प्रतीक्षा करता है।

यह आदेश अब हो चुका है। ईश्वर सदा अपने लिए एक ऐसे देश को चुनकर रखता है जहाँ समस्त संभावनाओं और खतरों का अतिक्रमण कर, चाहे थोड़े से लोगों में हो या बहुतों में, उच्चतर ज्ञान की निरन्तर रक्षा की जाती है। और वर्तमान काल में

कम से कम इस चतुर्युगी के लिए यह देश भारतवर्ष है। जब कभी वह अज्ञान का, द्वन्द्वों का, आपसी झगड़े, क्रोध, विलाप, दुर्बलता, स्वार्थ; यानी संक्षेप में कलियुग की लीला का पूर्ण सुख लेना चाहता है, तब वह भारत के ज्ञान को धुँधला कर देता है और भारत को दुर्बलता व अवनति के गड्ढे में डाल देता है, जिस से कि वह अपने ही झमेलों में फँसा रहे और उस की लीला की इस गति में किसी तरह का हस्तक्षेप न कर सके। जब वह इस कीचड़ से बाहर निकलना चाहता है और यह चाहता है कि नर में जो नारायण है, वह एक बार फिर शक्तिशाली, ज्ञानवान्, आनन्दमय हो, तब वह भारतवर्ष पर पुन ज्ञान की वर्षा करता है और उसे ऊपर उठाता है। जिस से कि वह समस्त संसार को ज्ञान दे सके और इस ज्ञान के फलस्वरूप अवश्यम्भावी रूप से आनेवाली शक्ति, प्रज्ञा और आनन्द को प्राप्त करा सके। जब ज्ञान की गति संकुचित हो जाती है, तब इस देश के योगी संसार से उदासीन हो जाते हैं और स्वयं अपनी ही मुक्ति या आनन्द के लिए अथवा अपने कुछ शिष्यों की मुक्ति के लिए योगाभ्यास किया करते हैं। किंतु ज्ञान की गति जब पुन विस्तृत होती है और उस के साथ ही साथ भारत का अन्तरात्मा विस्तार को प्राप्त होता है, तब वे एक बार फिर प्रकाश में आते हैं और जगत् के हित के लिए कर्म करते हैं। तब जनक, अजातशत्रु और कार्तवीर्य जैसे योगी एक बार फिर संसार के सिंहासनों पर आरूढ होते हैं तथा विभिन्न राष्ट्रों का शासन करते हैं।

मनुष्यों में जो भगवान् की लीला होती है वह सदा चक्राकार घूमती रहती है, सत्ययुग से कलियुग की ओर और कलियुग से फिर सत्ययुग की ओर। आजकल की भाषा में सत्ययुग जगत् का वह काल है जिस में स्थिर और पर्याप्त सामञ्जस्य की सृष्टि रहती है और मनुष्य कुछ काल के लिए कतिपय अवस्थाओं और सीमाओं के अंदर अपनी सत्ता की पूर्णता को अनुभव करता रहता है। यह सामञ्जस्य इस युग की प्रकृति में ही एक सुप्रतिष्ठित पवित्रता की शक्ति द्वारा निहित रहता है, परंतु बाद में यह मेल टूटने लगता है और त्रेता में मनुष्य इस को व्यक्तिगत तथा सामूहिक इच्छाशक्ति से सँभाले रहता है। आगे चलकर यह और भी असमानता को प्राप्त होता है और द्वापर में मनुष्य इसको बौद्धिक विधान, सार्वजनिक सहमति तथा शासन द्वारा सँभालने की चेष्टा करता है, और भी आगे चलकर अर्थात् कलियुग में यह पूर्ण रूप से ध्वंस होकर नष्ट हो जाता है। परंतु कलियुग केवल अशुभ ही नहीं है, इस में एक नवीन सत्ययुग, एक नवीन सामञ्जस्य, एक अधिक उन्नत सिद्धि के लिए आवश्यक अवस्थाओं का उत्तरोत्तर निर्माण होता रहता है। इस कलिकाल में, जो बीत चुका है, पर जिस का असर अभी तक चल रहा है और अब समाप्ति पर है, प्राचीन ज्ञान और संस्कृति की पूरी हानि हुई है। उस ज्ञान और संस्कृति के कुछ टूटे फूटे अंश ही अनेक धर्मग्रन्थों में तथा जगत् की उलझी हुई परंपराओं के रूप में हमारे सामने रह गये हैं। परंतु अब समय आ गया है कि ऊपर की ओर गति करने के लिए पहला कदम उठाया जाय, अर्थात् एक नवीन सामञ्जस्य और नवीन सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रथम प्रयास किया जाय। यही कारण है कि मनुष्यसमाज में ज्ञान, धर्म और सदाचार की पूर्णता के लिए आजकल इतनी तरह के विचार फैल रहे हैं। किंतु सच्चे सामञ्जस्य का पता अभी तक अज्ञात ही है।

केवल भारतवर्ष ही इस सामञ्जस्य का आवि-

स्कार कर सकता है, कारण कि यह सामञ्जस्य मनुष्य की वर्तमान प्रकृति का रूपान्तर करके ही, उस के पुनर्व्यवस्थापन द्वारा विकसित किया जा सकता है। और इस रूपान्तर का होना योग के बिना संभव नहीं है। मनुष्य तथा वस्तुओं की प्रकृति इस समय बेमेल हो गई है, इन का सामञ्जस्य बेसुरा हो गया है। इस को पुनः सामञ्जस्यपूर्ण, सुरीली बनाने के लिए मनुष्य के हृदय, कर्म तथा मन के समग्र रूप से परिवर्तित होने की आवश्यकता है। यह परिवर्तन आन्तरिक होगा, बाह्य नहीं। न तो यह राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं द्वारा होगा न धार्मिक संप्रदायों और दर्शनशास्त्रों द्वारा ही, बल्कि यह होगा हम में और इस जगत् में भगवान् की उपलब्धि द्वारा जीवन को एक नये ही साँचे में ढालने से। यह बात केवल पूर्ण योग द्वारा ही हो सकती है, जो एक ऐसा योग है जिस की साधना किसी विशेष प्रयोजन को लक्ष्य करके नहीं की जाती। चाहे वह प्रयोजन मुक्ति और आनन्द ही क्यों न हो, उस का ध्येय है दिव्य मानवता का अपने में तथा दूसरों में सिद्ध करना।

हठयोग और राजयोग की साधना भी इस काम के लिए पर्याप्त न होगी तथा त्रिमार्ग (ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग) से भी काम न चलेगा, इस के लिए हमें और भी ऊपर चढ़ना होगा और अध्यात्मयोग का आश्रय लेना पड़ेगा। अध्यात्मयोग का सिद्धान्त है कि ज्ञानरूप से तो उन समस्त वस्तुओं को, जिन्हें हम देखते हैं या न देखकर भी परिचित हैं, मनुष्य, वस्तुएँ, हम स्वयं, घटनाएँ, देवता और असुर सभी को एक परब्रह्म के रूप में अनुभव करना। जो एक ही संग वैयक्तिक और वैर्व्यक्तिक है, सान्त और अनन्त है, स्वात्मसीमित और असीम है, एक और बहु है और जो ऊपर में रहनेवाले देवताओं को ही नहीं, बल्कि नीचे के लोकों के मनुष्य, कीड़े और मिट्टी के ढेले तक को अपनी सत्ता से अनुप्राणित करता है, ऐसे कर्म तथा भावरूपमय उस परात्पर पुरुष को पूर्णतया आत्मसमर्पण करना ही मुख्य साधन इस योग का है। अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखना चाहिए, कोई इच्छा नहीं, कोई माँग नहीं, ऐसी कोई भावना नहीं कि यह होना ही चाहिए, यानी सब कुछ अर्पण कर देना होगा, हृदय को समस्त इच्छाओं से तथा बुद्धि को समस्त निज संकल्पों से मुक्त कर लेना होगा, प्रत्येक द्वन्द्व का त्याग करना होगा। अखिल दृश्य और अदृश्य जगत् को इस तरह अनुभव करना होगा कि यह एक छिपे हुए दिव्य ज्ञान, शक्ति और आनन्द की ही अभिन्न परम अभिव्यक्ति है। अपनी समस्त सत्ता को इस तरह सौंप देना होगा जैसे एक इंजन ड्राइवर के हाथों में स्वयं निष्क्रिय रहता है, जिस से कि भागवतप्रेम, सामर्थ्य और निर्विकार बुद्धि अपना कार्य कर सकें तथा अपनी भागवतलीला को चरितार्थ कर सकें।

(क्रमशः)



सुखी जीवन

(ले०—प० श्री वासुदेवशास्त्री 'तैलङ्ग' शु० हे० वे० विशारद)

शिष्य—गुरुवर्य, वर्तमान शिक्षा का अन्तिम परिणाम सुखकारी होता है या दुःखकारी ?

गुरु—प्रिय वत्स, आजकल पूर्व जैसे गुरुकुल नहीं हैं, किंतु आज एक से एक बढ़कर कालेज, यूनीवर्सिटियाँ खोली जा रही हैं। किंतु वे सच्ची शिक्षा और कला का अध्ययन करानेवाली नहीं हैं। उन का काम परीक्षा लेने का है।

शिष्य—प्रायः सुना जाता है कि इस शिक्षा से लाभ होना तो कठिन ही है, किंतु शारीरिक सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। क्या यह सत्य है गुरुदेव ?

गुरु—इस शिक्षा के भयंकर रूप द्वारा भारतवासियों की समस्त शारीरिक सम्पत्ति नष्ट कर दी जाती है। छः छः घण्टे बालक विद्यार्थियों को स्कूल में बन्द रखने से उन का शरीर रक्तहीन, निर्जीव, अस्थि पंजर हो जाता है। प्राचीन समय में आजन्म अन्त तक चश्मे की आवश्यकता नहीं होती थी—किंतु बलिहारी है इस वर्तमान शिक्षा की, जिस के प्रभाव से शीघ्र ही चश्मा खरीदा जाता है। यदि आँखों में विकार नहीं हुआ तो भी बाबूजी बनने के लिए तो चश्मा आ ही जाता है जिस के फलस्वरूप आँखें नष्ट हो जाती हैं। मिडिल बालकों की पाचन शक्ति नष्ट कर देता है, एन्ट्रेंस दिल खराब कर देता है, एफ० ए० पेट और अँतड़ियों को खा लेता है, बी० ए० पराक्रमहीन बना देता है, इस प्रकार बचे बचाये अधमरे शरीर को एम० ए० के अर्पण कर दिया जाता है।

शिष्य—गुरुवर्य, इस को जरा दृष्टान्त से समझाइए।

गुरु—अकबर के समय की एक बात प्रसिद्ध है कि एक समय बादशाह ने चार वजीरों का उन की बुद्धि के परीक्षार्थ चार बकरे तोलकर देते हुए कहा कि एक महीने बाद बकरों का तोल यही होना चाहिए, अन्यथा सजा मिलेगी। सबों ने इस के लिए अनेक उपाय किये, किंतु बीरबल ने एक अनोखा उपाय विचारा। बीरबल दिन में बकरे को खूब खिलाता और रात में शेर के पिंजड़े के पास बाँध देता था। इस से क्या होता था कि बकरा दिन में जितना खाता था, उतना ही शेर के भय से रात्रि में घट जाता था। यही विकट परिस्थिति आजकल अपने देश के विद्यार्थियों की है, इधर विद्यार्थी खा पीकर तैयार हुए कि उधर परीक्षारूपी बाघ ने उन का खून ऊपर ही ऊपर चूस लिया।

शिष्य—गुरुवर्य, क्या यह भी सत्य है कि हम ने अपनी संतानों को अपने ही हाथों गहरे गड्ढे में पटक दिया है ?

गुरु—आज हम ऐसी मायामरीचिका में फँसे हुए हैं कि अपनी संस्कृति, अपनी वेषभूषा, अपनी जाति सब कुछ विस्मृत कर चुके हैं। मुस्लिम राज्य काल में हम ने अपना अस्तित्व नहीं मिटाया, किंतु डेढ़ सौ वर्षों में ही हम ने अपनापन सब तरह से खो दिया। जब छोटे बच्चों को स्कूल में भेजा और उन को 'ए० बी० सी०' ये शब्द याद हुए तब हम ने समझा कि हमारा बच्चा भी नई भाषा पढ़ रहा है, किंतु कुछ दिनों में इङ्गलिश का अच्छा ज्ञाता होकर और नवीन सभ्यता का उपासी होकर

माता पिता को डाटने लगा, हिंदुधर्म की तथा वेद की निन्दा करने लगा और सबों को झूठा पाखण्ड बताने लगा। उस के मत में कोट, पतलून, बूट, हैट ही सब देवता हैं और ये ही सब ईश्वर के पास पहुँचानेवाले साधन हैं। फिर चाहे वे बेकारसखा के मित्र भले ही हों, किंतु अपने धर्म को तिलाञ्जलि देना उन का पहला काम होता है, जो इस शिक्षा का जन्मसिद्ध अधिकार है। साथ ही और भी कुछ विशेष फूल खिलने लगते हैं, वे कौन हैं सुनिए—

अभी कुछ दिन पूर्व की बात है, मैं ने एक मासिक पत्र में ऐसा लेख देखा कि आश्चर्य होने लगा। एक तेली का लड़का था जिसे पिता ने अपना घर का धन्धा छुड़वाकर 'ए० बी० सी० डी०' पढ़ने भेजा। उस ने सोचा था कि अपने काम में क्या रखा है? अगर बाबू बन गया तो सौ, दो सौ रुपयों का महीना कमा लेगा। जब उस ने किसी तरह मेट्रिक पास किया और आगे पढ़ने के लिए खर्चा न मिला तो किसी नौकरी की तलाश में घूमने लगा। जब नौकरी नदारद हो गई तो विवश होकर पिता ने कहा कि घर का काम ही ठीक है। बस, पुत्रजी बोले कि मैं इस काम को तो नहीं करता, चाहे मर जाऊँ। अब कहिए, यह नवीन सभ्यता का उदाहरण है कि नहीं? आजकल वर्तमान शिक्षा का भूत सवार है, सगाई और विवाह भी परीक्षा के सार्टिफिकेट पर निर्भर हैं। प्राचीन काल में जन्मपत्रियाँ देखी जाती थीं, अब सार्टिफिकेट।

परीक्षकों की तो गति ही निराली है, वे लोग कठिन से कठिन प्रश्नों को आजकल के विद्यार्थियों के समक्ष रखना ही अपनी विद्वत्ता की महत्ता समझते हैं। परीक्षकों का कर्तव्य है विद्यार्थियों का ज्ञान जानना, किन्तु वे तो यही देखते हैं कि इन को क्या नहीं आता? जहाँ तक हो विद्यार्थी फेल हों और चौरासी लाख योनियों की तरह भटका करें। आजकल की शिक्षा ने कितने कालिदास, भवभूति, धन्वन्तरि, व्यास, वाल्मीकि, सूरदास तथा तुलसीदास पैदा किये हैं? और कितनों की शारीरिक संपत्ति का महत्त्व सुना गया है? भीम की गदा, हनुमान् की हुंकार, अर्जुन के गाण्डीव आदि को चाहे आप पुराणों की गप्पें ही समझें, किंतु जिन्होंने वीरवर राणा प्रताप का बलिष्ठ चरित्र, शिवाजी की वीरता और पृथ्वीराज की धनुर्विद्या सुनी हैं, उन में क्या कोई कहेगा कि ऐसे वीरों ने देशोद्धारार्थ कमर नहीं कसी? अवध के नवाब के बारे में यह प्रसिद्ध है कि जब वह हाथी की पूँछ पकड़ लेता था तो हाथी तिल भर भी नहीं हट सकता था।

शिष्य—श्रद्धेय, एक प्रश्न और है, भारतियों की इस में क्या त्रुटि है, जिस से अपना अधःपतन करा रहे हैं?

गुरु—भारतवासियों के अनेक दोष हैं, अन्य देशीय विदेश से हुनर, कला सीखकर अपने देशी बन्धुओं को सिखाते हैं पर भारतीय जो सीखते हैं उस का प्रचार नहीं करते। विदेशी अपने देशोद्धार के लिए परदेश जाते हैं पर भारतवासी मौज, शौक के लिए परदेश जाते हैं। विदेशी परदेशों से नम्रता सीखते हैं और भारतीय अपनी बड़ाई सीखकर आते हैं। अन्य देशीय विदेश में स्वदेश को नहीं भूलते, किंतु भारतीय विलायत जाने पर स्वदेश की कुछ भी परवाह नहीं करते। विदेशी अपने पूर्वजों को भक्ति से देखते हैं, किंतु भारतीय पूर्वजों को हीन दृष्टि से देखते हैं। इस तरह के अनेक दोषों से हम भी हमारा पतन कर रहे हैं।

शिष्य—गुरुदेव, क्या उन्नत होने का कोई सरल तरीका है? यदि है तो कहने की कृपा कीजिए।

गुरु—हमें उन्नत होने में रोक लगानेवाली है देश की फूट, समाज की कुप्रथा और हमारी मूर्खता। हमें औरों ने इतना पराजित नहीं किया, किंतु अधिकतर हम ही पराजित हुए, अपनी पारस्परिक कलह और कुत्सित आचार विचार के कारण। विदेशियों को लाखों रुपये देने में किसी को हिचकिचाहट नहीं होती, किंतु अपने पड़ोस में एक आदमी को भूखे मरते हुए देखकर भी कोई उसे एक मुट्ठी अन्न और एक चुल्लू पानी तक नहीं देंगे। इस लिए जब तक भारतियों के हृदय कुसंस्कार के मन्दिर बने हुए हैं, तब तक हम आत्मोन्नति या आत्मोद्धार नहीं कर सकते और सुखी जीवन भी नहीं बना सकते।



कर्म की प्रधानता

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

किसी नगर में एक बहुत बड़ा सेठ विपुल संपत्ति छोड़कर मर गया। धनी लोगों के पुत्र प्रायः अकर्मण्य होने के कारण दुराचारी हो जाते हैं। इसी दोष के कारण उस सेठ के पुत्र ने पिता की सुमेरु परिमित सम्पत्ति थोड़े ही दिनों में नष्ट कर दी। कुल धन के बर्बाद हो जाने पर उसे भारी कष्ट होने लगा, जिन चापलूसों के कुसंग में पड़कर धन गँवाया था, अब वे मीठी मीठी बातों की जगह उस को फट कारने लगे।

पेट खाने को भी न मिलने लगा तब उस की स्त्री ने उस से कहा—'स्वामिन्! कुछ मेहनत मज़दूरी मैं करती हूँ, कुछ आप करें तो निर्वाह हो सकता है।' स्त्री ने तो सूत कातना, किसी का आटा पीसना तथा कपड़े सीना शुरू कर दिया और साहूकार का लड़का जंगल में घास तथा लकड़ी काटने को जाने लगा। हाथ कोमल थे, कभी मोटा काम किया नहीं था, जिसे फूलों की पँखड़ी चुभा करती थी, सेमल की रुई के गद्दे कड़े मालूम होते थे उस दम्पति से ऐसा काम कैसे हो सकता? सेठ के लड़के के पाँव में कुशा के काँटे चुभ जाते और लकड़ी काटने से हाथ में छाले पड़ जाते थे। किसी किसी दिन वह एकान्त स्थान पाकर इस कष्ट से विलाप करने लगता।

एक दिन उस जंगल में नदी किनारे 'कर्मदेवता' और 'लक्ष्मी' दोनों साथ विचर रहे थे। लड़के का रुदन सुनकर लक्ष्मी बोली—देखो, मेरे बिना मनुष्य का कैसा हाल हो जाता है—

'तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥'

'हाथ पाँव, नाम, बुद्धि और बोलचाल सब वही रहते हैं कुछ फर्क नहीं हो जाता, किंतु धन की गरमी निकल जाने से ज़रा सी देर में उस की हुलिया बदल जाती है।' इसी को देखो, जब मैं इस के साथ थी, तब यह कैसा था और अब मेरे बिना इस की क्या दशा है? ज़रा देखो तो सही। यह सुन कर्मदेवता ने कहा—

तुम्हारे बिना नहीं, मेरे बिना इस की यह गति हुई है—

'ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः।
सूर्य्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः'कर्मणे'॥'

'ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और सूर्य को जिस ने सृष्टि रचने, अवतार लेने, भीख माँगने और घूमने के वखेड़े मे डाल रखा है, वह कर्म सब से प्रबल है, उस के सामने सब को झुकना पड़ता है।' सारा संसार कर्म के वशवर्ती हो कठपुतली की तरह नाच रहा है। लक्ष्मी ने कहा—यह बात नहीं है, जब मैं साथ रहती हूँ तो सब के कर्म अच्छे हो जाते हैं तथा मेरे बिना सब के कर्म फूट जाते हैं। मेरी कृपा से ही मनुष्य पुरुषोत्तम बनता है। कर्मदेवता बोले—तुम मनुष्य का साथ तभी दे सकती हो जब मैं उस का सहायक होऊँ, मेरे बिना तुम मनुष्य के पास रह ही नहीं सकती हो। इत्यादि कथनोपकथन से दोनों में विवाद उपस्थित हो गया। कर्म ने कहा—अच्छा, लक्ष्मी! तुम इस को धन देकर देखो, यदि तुम्हारे दिये धन से यह धनी हो गया तो तुम्हारा कथन सत्य है। और जो धन पाकर भी यह ऐसे का ऐसा कोरा ही रहा तो फिर अधिकता मेरी होगी। दोनों में यह निश्चय होने पर लक्ष्मीजी ने सेठपुत्र के सामने दो लाल फेंके। सेठ तो था ही, लालों के स्वरूप से परिचित था, उन में जो सामर्थ्य होती है उसे वह जानता था, अत. उन्हें उठाकर बड़े हर्ष से घर को चला। गरमी का समय था, प्यास लगी। रास्ते में एक छोटी सी नदी मिलती थी। उस में वह झुककर पानी पीने लगा तो जेब से निकलकर लाल नदी मे गिर पड़े, गिरते ही मछली निगल गई। वह घर आकर स्त्रीसहित पश्चात्ताप करने लगा।

अगले दिन फिर वह रोज की तरह जंगल में जाकर लकड़ी काटने लगा। उस की दीन दशा देखकर लक्ष्मीजी ने एक सच्चे कीमती मोतियों का हार उस के रास्ते के बीच में फेंक दिया, सेठपुत्र हार को उठाकर और अपनी पगड़ी में बाँधकर घर को चला। रास्ते में आनेवाली नदी मे स्नान करने के लिए रुका तो पगड़ी मयहार के किनारे पर रख दी। इतने में एक चील आई और खाने की वस्तु समझकर हार को मयपगड़ी के लेकर उड़ गई। आज भी सेठ का लड़का खाली हाथों घर लौटा और स्त्री के साथ बैठकर शोक करने लगा।

अगले दिन वह फिर नित्य की तरह जंगल में पहुँचा तो लक्ष्मी देवी ने उस के रास्ते मे एक अशर्फियों की थैली रख दी, जिसे सेठपुत्र ने देखते ही तुरत उठा लिया। आज वह सीधा घर की तरफ चला। रास्ते मे दो दिन धोखा खा चुका था, इस लिए मार्ग में कहीं भी न ठहरने का दृढ निश्चय कर चुका था। घर पहुँचने पर मालूम हुआ कि स्त्री घर पर नहीं है, किसी पड़ौसिन के यहाँ गई है। सेठ का पुत्र थैली को घर के प्रधान दरवाजे के भीतर की तरफ रखकर मोहरप्राप्ति की खुशी में भूल से ताला न लगाकर अपनी स्त्री को बुलाने चला गया। इतने में उस की स्त्री से मिलने एक पड़ौसिन आई, उस ने प्रधान दरवाजा खोला तो रास्ते के पास एक थैली पड़ी है। पड़ौसिन धीरे से थैली उठाकर अपने घर ले गई। जब दोनो दम्पती घर आये तो थैली को न पाकर पूर्ववत् अफसोस करने लगे।

चौथे दिन फिर सेठपुत्र जंगल में जाकर घास तथा लकडी काटने लगा। यह दशा देखकर लक्ष्मी देवी ने कर्मदेवता से कहा—इसे मैं तो सब कुछ दे चुकी, बार बार दिया, फिर भी यह कोरा ही रहा,

अच्छा, अब तुम कुछ देकर देखो। यह सुनकर कर्म देवता ने सेठपुत्र को ताँबे का एक टका (दो पैसा) दिया। रास्ते में पड़े टके को सेठपुत्र ने उठा लिया और कहने लगा कि आज भगवान ने हमको टका दिया है, सो टका ही सही, हमारा कोई कर्जा तो किसी पर आता ही नहीं है, इस से पहले तो प्रभु ने हमें बहुत कुछ दिया था, किंतु हमारे भाग्य ने साथ ही नहीं दिया। सेठ का लड़का टके को लेकर घर आ रहा था, रास्ते में नदी में एक आदमी को मछली पकड़ते देखकर उस से उस ने एक पैसे की मछली खरीदी, दूसरा पैसा मसाले और छोंकने के तेल के वास्ते रख लिया। फिर सोचने लगा—'लकड़ी यहीं रास्ते में से चुनते चलें।' वहाँ एक वृक्ष पर सूखी डाली थी, उस को तोड़ने वृक्ष पर चढ़ा तो वहाँ एक चील का घोंसला नजर पड़ा, उस में हारसहित अपनी पगड़ी रखी थी, उसे उठाकर खुशी खुशी घर में आया और हर्ष के कारण स्त्री से जरा जोर से बोला—'सुलक्षणि! जो वस्तु खो गई थी वह मिल गई।' यह आवाज उस पड़ोसिन ने सुनी जो थैली उठाकर ले गई थी। उस ने सोचा, इस को थैली का हाल मालूम हो गया, 'चोर की दाढ़ी में तिनका' कहावत के अनुसार यह विचार करने लगी—कहीं यह राजपुरुषों से हमारे घर की तलाशी न करा दे, इस से अप्रतिष्ठा तो होगी ही, साथ में जेल भी जाना पड़ेगा। ऐसा सोचकर पड़ोसिन धीरे से अशरफीपूर्ण थैली घर के कोने में रख गई। ज्योंही सेठपुत्र उस तरफ गया तो देखा, थैली भी पड़ी है। वह विचारने लगा, मैं भी कैसा भुलक्कड़ हूँ, थैली तो यहाँ रख दी थी और खोजता फिरता था दरवाजे के पास। उधर मछली चीरी गई तो उस के पेट में से वे लाल भी निकल आये। लक्ष्मी देवी के देने पर भी जो अपने पास नहीं रहने पाया था, वह सब कर्मदेवता की कृपा से सब का सब मिल गया, ऐसा विचार करके वह आनन्दित हो गया।

भाव यह है कि मनुष्य के कर्म ही उसे सुख और दुःख देनेवाले हैं, कर्मानुसार सब सामग्री जुट जाती है। यदि कर्म अच्छे न हों तो मिली हुई वस्तु भी नष्ट हो जाती है, यदि रह भी गई तो अपने किसी काम में नहीं आने पाती। घर में अपने अधीन घृत, दुग्ध, अन्न, वस्त्र, वाहन प्रभृति सभी सामग्री प्रस्तुत है, किंतु मन्द भाग्य होने के कारण कुछ भी काम नहीं आती। कर्महीनों को तो अपनी स्त्री, जो अर्द्धाङ्गिनी, प्राणाधिका आदि सब कुछ कहाती है, वह भी पराई हो जाती है। कर्मठों को समुद्र गोष्पदीभूत (गाय के खुर जितना) हो जाता है, वे चाहें तो सुमेरु को फूँक मारकर उड़ा दें। जब कि सब कुछ कर्मानुसार होता है फिर भी मनुष्य कर्म न करे और फल की आशा करे तो उस की भारी भूल है। सुख सब चाहते हैं वह पुण्यों से मिलता है, पुण्य सत्कर्मों से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य सत्कर्म तो करना न चाहे और सुख की इच्छा करे, यह चाहना उस की ऐसी है, जैसी कारण के बिना किसी कार्य की उत्पत्ति। 'कर्मप्रधान विश्व करि राखा' के कथनानुसार कर्म ही सब इष्टसिद्धियों का प्रधान साधन है। मनुष्य को किसी का ऐश्वर्य देखकर ईर्षालु नहीं होना चाहिए। यदि किसी को उस प्रकार के वैभव की चाहना है तो पुण्य करे, याने पुण्यजनक कर्म करे—

पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवाऽस्ति वाञ्छा।
पुण्यैर्विना नहि भवन्ति समीहितार्थाः॥

इत्यादि वचनों में भर्तृहरि प्रभृति सन्तों ने हमें कथायान्तःकरण को यही उपदेश दिया है, मानो पुण्यसंपादन करने की संमति दी है।

मनुष्य संपत्ति, मान, बड़ाई आदिकों के पीछे भागा फिरता है, किंतु मृगमरीचिका या मृगजल की तरह हाथ पल्ले कुछ नहीं पड़ता। आदमी सांसारिक पदार्थों के पीछे जितना दौड़ेगा, वे उस से उतनी ही दूर भागेंगे।

भागती फिरती थी दुनियाँ
जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हम ने की
वह बेकरार आने को है ॥

स्वामी रामबादशाह लोगों को कहा करते थे कि तुम लोग क्यों भोगसामग्री की तलाश में मारे मारे फिरते हो, कर्म करो फिर वह तुम्हारे पीछे भागी फिरेगी। जिस के पास जो नहीं है उसे वह तपोबल से पा सकता है, तपश्चर्या कर्मों के करने का नाम है।

क्या मनुष्य को कोई ऐसी विधि नहीं मालूम कि वह चाहे तो अष्टसिद्धि, नवनिधि उस के लिए हस्तामलकवत् हो जायँ और सब कुछ बिना बुलाये आप से आप आ जाय? हाँ, है क्यों नहीं, यह सब कर्म की महिमा से संपन्न हो सकता है। कर्म करो याने सत्कर्म संपादन करो फिर तुम अपने लिए तो नन्दनकानन की रचना कर ही लोगे, किंतु इस दुनियाँ को भी स्वर्गधाम बना दोगे।

आज संसार कर्महीन हो गया, जगत् में अकर्मण्यता फैल गई। चाहिए तो यह कि चाहे ऊँचे हों, चाहे नीचे, सब स्वशक्त्यनुसार कर्मसंपादन अवश्य करें। पर आजकल तो कोई भी कर्मानुष्ठान के कष्ट को इष्ट नहीं मानता। इसी का फल है 'दुर्भिक्षं मरणं भयम्।' लोगों ने अपने कर्म त्याग दिये। इसी से प्रकृतिदेवी ने भी अपना काम करना छोड़ दिया या उस में अस्तव्यस्तता ला दी। इसी से नाना उत्पात उठकर देश तथा जाति को तबाह कर रहे हैं। किस कर्म का क्या फल है? इस भेद को तो भगवान् ही जानता है पर मनुष्य भी कर्मफलों का कुछ कुछ अंदाजा लगा सकता है।

दुःख !

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी 'किशोर' भिषगाचार्य)

मनपथिक ! म्लान है !! क्यों? दुःख से ! कैसा दुःख !! जिसे तू दुःख कहता है, वह दुःख नहीं ! यह तो है वास्तविक सुख का संदेश ! और दुःख देखकर ही तो कर सकेगा अनुभव सुख का ! जैसे सुवर्ण सहता है ताप और बनता है पानी, तभी बन पाता है हृदय का हार ! भगवान् भास्कर की प्रचण्ड रश्मियों से संतप्त रेणुका के द्वारा विकल, थकित मानव ही अनुभव कर सकता है ठंडी छाया के सुख का ! शैत्य का जितना आनन्द घाम से विकल पथिक उठा सकता है, उतना आनन्द पेड़ के नीचे रहनेवाला व्यक्ति नहीं। किसी पदार्थ का अभाव ही तो बताता है उस का वास्तविक मूल्य !

पथिक ! दुःख ही तो है विशेष हितकर सुख से !

पूछता है कैसे? जैसे कड़वी औषध खाने के बाद ही मीठे पदार्थ खानेवाले को मिलता है आनन्द और मिटता है तन का ताप ! यदि निरन्तर दिन

प्रतिदिन मिलते रहें मीठे ही पदार्थ तो अवश्य ही होगी घृणा और अरुचि।

इसी प्रकार भूख से पीड़ित मानव ही तो कर सकता है अनुभव भोजन का, उस को ही मिलता है भोजन का स्वाद और सुख, क्योंकि उस ने उठाया है दुःख, सहकर भूख को। किंतु इस दुःख से कुछ नहीं होगी हानि! कहता है क्यों? अरे! भूख के सहने से जो होगा क्षणिक कष्ट, तो क्या न होगी आत्मशुद्धि और न कटेंगे पाप। पथिक, अवश्य ही होगी आत्मशुद्धि और कटेंगे पाप! फिर मिलेंगे परमपिता परमात्मा। तब दुःख कैसा?

पथिक! यह दुःख और सुख तो अपने पूर्व कृत्य, सञ्चित कर्मों का ही तो फल है और मान लेने से ही तो होता है अनुभव सुख और दुःख का। मनपथिक! न घबरा, यह तो उस परमपिता परमात्मा की देन है। इस के द्वारा ही तो मानव कुछ कर सकता है, यदि यह न होता तो कोई भी क्यों करता याद? जिस से मिल सके मुक्ति और छोड़ना पड़े संसार। किसी ने सच कहा है—

२ सुख के माथे सिल पड़ो,
जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी उस दुःख की,
जो पल पल नाम रटाय॥

वह सुख किस काम का जिस से भूल जायँ भगवान् को, इस से तो यह दुःख ही अच्छा, जिस से भगवान् का हो सके चिन्तवन और मिल सके मुक्ति। पिता मारता है अपने पुत्र को और देता है दुःख। किंतु उस का ध्येय यह थोड़े ही होता है कि वह उस को कर दे सदा के लिए दुःखित। उस के दण्ड देने का एकमात्र कारण यही तो है कि वह पुत्र अपनी अज्ञानता के कारण न बन जाय कुपथगामी। लेकिन कभी कभी पिता पुत्र को दण्ड भी तो नहीं देता। क्योंकि वह जानता है कि वह दुष्ट करेगा मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन। तब पिता उसे छोड़ देता है उस की स्थिति पर। वह जानता है कि मेरी इस ताड़ना से वह सुधरेगा नहीं, बल्कि बनेगा ढीठ और सदा के लिए हो जायगा भ्रष्ट। ठीक यही हाल है उस परमपिता परमात्मा का, वह इसी प्रकार अपने भक्तों को देता है दुःख। जिस से वे न भूल सकें अपना कर्तव्य और आ जायँ अपने पथ पर। परंतु कभी कभी वह पिता के समान उसे दुःख भी तो नहीं देता, बल्कि अवज्ञाकारी पुत्र के समान उसे छोड़ देता है अपनी स्थिति पर और उलट देता है धन, जन और अटूट वैभव को, जिस से वह मायाजाल में फँसकर भूल जाय अपना पथ। क्योंकि वह जानता है कि वह दुष्ट करेगा मेरी अवहेलना।

मनपथिक! भूल जा दुःख सुख के झगड़े और चला चल सत् पथ पर, तभी तो पहुँच सकेगा निश्चित लक्ष्य पर और मिटा सकेगा संसार का दुःख।



नागजाति का संकटमोचन

(सं०—श्री पुरुषोत्तमभाई भीखाभाई देसाई)

विद्याधर एक देवयोनि का नाम है। किसी समय राजा जिमूतकेतु इन विद्याधरों के चक्रवर्ती स्वामी थे। उन्होंने नीतिपूर्वक प्रजा का ऐसा शासन किया कि उन का प्रताप तीनों लोकों में झलकने लगा और बड़े बड़े राजा उन के आश्रित हो गये। उन के एकमात्र पुत्र का नाम जीमूतवाहन था। यह राजपुत्र अत्यन्त विनीत, सकल कलाकुशल, दयारसपूर्ण और परोपकाररत था। अपने माता पिता की शुश्रूषा में तो वह इतना रत रहता था कि उन की सेवा के सामने उसे राज्यसुख भी परम तुच्छ लगता था। पिता के आगे भूमि पर बैठना, उन के चरण दबाना, उन का भुक्तशेष खाना और उन के सुख की सामग्री एकत्रित करना, इसी को राजकुमार अपना परमधर्म मानता था।

चिरकाल तक राज्य करने पर जब महाराज जीमूतकेतु वृद्ध हुए, तब उन्होंने जीमूतवाहन को राज्य देने तथा रानी के साथ तपश्चर्या के लिए वन जाने का दृढ निश्चय किया। परंतु राजकुमार ने राज्यग्रहण करना स्वीकार न किया। उस ने कहा कि आप के साथ वन में रहकर मैं आप ही की सेवा करूँगा। बहुतेरा समझाने पर भी राजकुमार ने न माना, तब राजा ने राज्यभार मन्त्रियों पर रख कर वन की राह ली। राजपुत्र भी उन के पीछे चलने लगा। निदान वे सब एक वन में रहने लगे। वहाँ जीमूतवाहन को अपने माता पिता की सेवा का अधिक अवसर मिलने लगा, जिस से उसे परम संतोष हुआ।

उस स्थान पर अन्य मुनि लोग भी रहते थे, इस से कुछ दिनों के उपरान्त इन लोगों को आवश्यकतानुकूल फल, फूल, मूल मिलने में कुछ कठिनता होने लगी तो जीमूतकेतु ने दूसरे स्थान पर जाने के लिए विचार किया। पिता का यह शुभ मनोरथ जानकर जीमूतवाहन अपने साथी आत्रेय पण्डित के साथ योग्य स्थान ढूँढने निकला। मार्ग में अनेक प्रकार के विश्रम्भालाप होते जाते थे, कभी राजकुमार की अलौकिक पितृभक्ति, कभी निन्दनीय राज्यसुख की तुच्छता, कभी जीमूतकेतु के शत्रु मतङ्ग के आक्रमण की वार्ता, कभी विचित्र वन की शोभा का वर्णन, कभी शीतल, मन्द मलयमारुत की प्रशंसा, कभी महामुनियों के झोपड़ों का दृश्य; इस प्रकार देखते भालते और बातें करते वे दोनों एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जिस की अनुपम रमणीयता ने उन के चित्त को आकर्षित कर लिया। यह स्थान मलय पर्वत का एक भाग था। यहीं कुटी बनाने का निश्चय हुआ।

राजपुत्र जीमूतवाहन का दक्षिण नेत्र पहले ही से फड़क रहा था, अतएव वह कुछ शुभ फल पाने की प्रत्याशा कर रहा था। इतने में उस ने देखा कि कतिपय हरिण चुपचाप बैठे हुए हैं, कान तक नहीं हिलाते। जो घास मुख के भीतर है, वह वैसी ही दबी है, रोमन्थ तक वे नहीं करते। अनुमान से राजकुमार तथा आत्रेय ने जाना कि वे कोई शब्द सुन रहे हैं, ध्यान देकर सुनने पर वह शब्द उन्हें भी सुनाई देने लगा, ऐसा हृदयाह्लादकारक शब्द पहले उन्होंने कभी न सुना था। अब उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि यह शब्द कहाँ से आता है।

जिस दिशा से यह मनोरञ्जक ध्वनि आ रही थी उसी ओर कुछ दूर चलने पर एक देवता का मन्दिर देख पड़ा, जिस के भीतर एक स्त्री वीणा बजा रही थी, पहले तो उन दोनों ने उस के भीतर प्रवेश करना चाहा; परंतु यह सोचकर रुक गये कि कदाचित् वह स्त्री हमारे देखने योग्य न हो। बाहर खड़े होकर आड़ से उन्होंने सुना कि वह स्त्री

अपने गीत में अपनी अभीष्टप्राप्ति का वरदान देवी से माँग रही है और उस की परिचारिका बारबार कहती है कि वृथा श्रम मत करो, भगवती निष्करुणा हैं, क्योंकि इतना पूजा पाठ करने पर भी अब तक प्रसन्न न हुईं। जगज्जननी की निन्दा उस स्त्री को अच्छी न लगी, इस से उस ने परिचारिका से कहा कि भगवती पार्वती स्वप्न में मुझे मेरे ही अनुकूल वर दे गई हैं।

इन बातों को सुनकर राजकुमार और आत्रेय को ज्ञात हुआ कि यह कोई कुमारिका है अतएव इस के पास जाने में कोई दोष नहीं, यह सोचकर वे दोनों मन्दिर के द्वार से भीतर झाँकने लगे। जितना उस के वीणावादन से वे हर्षित हुए थे उस से शतगुण उस का रूप सौन्दर्य देखने से प्रमुदित हुए। राजकुमार ने उस की बड़ी प्रशंसा की और उस के दर्शन से अपने को कृतकृत्य माना।

चतुर आत्रेय तत्क्षण ताड़ गया और योग्य अवसर पाकर राजकुमार को मन्दिर के भीतर कर दिया और कहा कि यही वर भगवती ने दिया है। उसे देखते ही कन्या के हृदयकपाट से खुल गये, वह चित्त से तो यह चाहती थी कि राजकुमार को दृष्टि द्वारा पी लूँ, परन्तु लज्जा के वश वहाँ वह ठहरना भी न चाहती थी। जब आत्रेय ने देखा कि रङ्ग में भङ्ग हुआ चाहता है तब उस ने कुमारिका की निन्दा करते हुए कहा कि इस ने तो अतिथि का आदर भी न किया। इस पर वह किसी तरह वहाँ ठहर गई परंतु अल्पकाल ही में दो पहर हो गया, और एक तापस उसे स्नानभोजन करने के लिए बुला ले गया। राजपुत्र और आत्रेय भी वहाँ से निकलकर उस समय के कर्तव्य, स्नानादि करने लगे।

इस कुमारिका का नाम मलयवती था, यह सिद्धों के राजा विश्वावसु की कन्या तथा मित्रावसु की बहन थी। विश्वावसु चाहते थे कि अपनी कन्या का विवाह जीमूतवाहन से करें, जब उन्होंने यह सुना कि विद्याधरराजपुत्र इसी मलय पर्वत पर है तब अपने पुत्र मित्रावसु को उसे ढूँढने के लिए भेजा।

इधर मलयवती और राजकुमार दोनों परस्पर एक दूसरे का चिन्तन करते हुए किसी तरह अपने दिन बिताने लगे। मलयवती का हृदयसंताप धीरे धीरे इतना बढ़ा कि वह चन्दनलतागृह में चन्द्रकान्तशिला पर बैठकर अपनी आत्मा को सुखी करने के लिए चल पड़ी। मार्ग में वह शिथिल सी कभी इधर जाने लगती कभी उधर, परंतु उस की परिचारिका चतुरिका ने किसी प्रकार उसे अभिलषित स्थान तक पहुँचाया। किंतु चन्द्रकान्तशिला उसे उष्ण मालूम हुई, मलयमारुत के झकोरे उसे और भी संतप्त करने लगे, चन्दनरस उसे अग्नि सा प्रतीत होने लगा।

संयोगवश राजपुत्र भी इसी लतामंडप की ओर आ रहा था कि इन कन्याओं को मालूम हो गया। उन्हें आते देख ये वहाँ से हट गईं और पास ही एक जगह छिप रहीं। इतने में वे दोनों वहाँ पहुँच गये और शिला पर बैठकर समय काटने लगे। परन्तु विरही जनों का समय भी कठिनता से कटता है इस लिए जीमूतवाहन ने पर्वत की चोटी से गेरू मँगाकर कोई चित्र खींचना आरम्भ किया।

इतने में मलयवती का भाई मित्रावसु भी जीमूतवाहन को ढूँढते हुए वहीं राजपुत्र के पास पहुँच गया। स्वागत स्वागत होने के अनन्तर उस ने कहा—' राजकुमार! मेरे पिता की यह इच्छा है कि मलयवती को आप स्वीकार कीजिए। परंतु कुमार को अभी तक यह न ज्ञात था कि मलयवती ही हमारी पूर्व परिचित कुमारिका है, इस कारण उस ने विवाह स्वीकार न किया और कह दिया कि मेरा मन किसी दूसरी स्त्री पर अनुरक्त है।

राजपुत्र के अस्वीकार का वचन सुनकर मित्रावसु अपने पिता के पास लौट गया किंतु मलयवती ने सोचा कि यदि अभिलषित वर नहीं मिलता तो जीने ही से क्या लाभ? यह सोचकर उस ने चतुरिका को किसी बहाने बाहर भेज दिया,

तथा एक वासन्ती लता तोड़ी और उस से अपने गले में फाँसी लगाने चली। परंतु चतुरिका वास्तव में चतुर थी, वह बाहर खड़ी हुई यह सब देख रही थी। उस ने झट जीमूतवाहन को पुकारा कि आप आकर इन का छुटकारा कीजिए।

चतुरिका का आर्तशब्द सुनते ही वे दोनों दौड़ पड़े। राजपुत्र ने उस तपस्विनी के गले से पाश दूर किया तथा इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि यथार्थ में मैं तुझ को चाहता हूँ, राजपुत्र ने शिलापट पर खींची हुई चित्ररचना मलयवती को दिखाई, जिसे देखकर राजकुमार की निपुणता को सब लोग सराहने लगे। ज्यों ही राजपुत्र ने पाशमोचन के उद्योग में मलयवती का हाथ पकड़ा त्यों ही आत्रेय ने कहा—'वर कन्या का कल्याण हो।'

ये लोग इधर हर्षमग्न हो रहे थे कि एक चेटी ने आकर संदेश दिया कि महाराज जीमूतकेतु ने मलयवती का विवाह अपने पुत्र के साथ करना स्वीकार कर लिया है।

विवाह का निश्चय हो जाने पर धूमधाम से सब प्रबन्ध होने लगा, राजभवन, वाटिका, मार्ग आदि विभूषित किये गये। वर तथा कन्या की ओर से विद्याधर और सिद्धगणों ने आनन्दपूर्वक विवाहकार्य समारोह से सुसंपन्न किया।

विवाह हो जाने पर मलयवती अपनी ससुराल भेज दी गई। मलयवती की माता ने आज्ञा दी कि दस दिन तक लाल रङ्ग के नवीन कपड़े जीमूतवाहन के लिए यहाँ से भेजे जायँ।

एक दिन दोनों राजकुमार समुद्र के किनारे ज्वारभाटा देखने गये। वहाँ जीमूतवाहन ने देखा कि पर्वतशिखरों के समान श्वेत वर्ण की ऊँची ऊँची चोटियाँ सी खड़ी हैं। उस ने सोचा कि ये मलयपर्वत के शिखर हैं, जिन पर शरद् ऋतु के स्वच्छ मेघ छाये हुए हैं। परंतु मित्रावसु ने बतलाया कि यह उन नागों की हड्डियों की ढेरियाँ हैं जिन को प्रति दिन एक एक करके पक्षिराज गरुड खा गये हैं। पहले गरुडजी नागलोक में घुसकर प्रति दिन एक नाग का भक्षण करते थे। परंतु उन के शब्द को सुनकर सहस्रों नागपत्नियों के गर्भ गिर जाते थे और छोटे छोटे नागों के बच्चे मारे भय के प्राणत्याग कर देते थे। इस लिए नागराज वासुकि ने गरुड से कहा कि हम प्रति दिन एक नाग आप की सेवा में भेट किया करेंगे, आप नागलोक में आना छोड़ दें, यह बात गरुडजी ने मान ली। तब से प्रतिदिन एक नाग, वधसूचक लाल कपड़े पहनकर बध्यस्थान में बैठा रहता है और गरुडजी आकर उसे खा जाते हैं। यह नागों की ऐसी ही हड्डियों का ढेर है जो पर्वतशिखरों के समान जान पड़ता है।

गरुडजी की निर्दयता और नागों का वृतान्त सुनकर जीमूतवाहन को बड़ा दुःख हुआ, वह सोचने लगा कि किस प्रकार इस कठिन दुःख से नागों को छुड़ाऊँ। इसी समय सिद्धराज विश्वावसु ने अपने पुत्र मित्रावसु को प्रतीहार के द्वारा बुला भेजा। उस के चले जाने पर जीमूतवाहन को अपने कर्तव्य को सोचने का अच्छा अवसर मिल गया।

वह उपाय सोच ही रहा था कि एक स्त्री के विलाप का शब्द सुनाई दिया। थोड़ी ही देर में वह स्त्री अपने पुत्र को प्रेम से चूमती हुई उस के भावी विनाश पर अत्यन्त दुःख प्रकट करती दिखाई दी। वह एक नागपत्नी थी उस का पुत्र शङ्खचूड गरुडजी की भेंट के लिए भेजा गया था। ज्यों ज्यों गरुडजी के आने का समय निकट आता जाता, त्यों त्यों वह नागपुत्र अपनी माता को संसार की अनित्यता समझाता था। परंतु उस एक पुत्रवाली वृद्धा को संतोष कैसे हो? वह बारंबार विलाप करती और शिर पटकती थी।

जीमूतवाहन पेड़ की आड़ से यह सब देख रहा था, अब उस से न रहा गया, वह झट आकर वहाँ खड़ा हो गया और उन से लाल वस्त्र माँगते हुए बोला कि मैं स्वयं अपना शरीर गरुडजी को अर्पण करूँगा और शङ्खचूड के प्राण बचाऊँगा, परंतु यह बात न तो शङ्खचूड को अच्छी लगी और न उस की माता ही को। इस लिए उनलोगा

ने लाल वस्त्र देना स्वीकार न किया। गरुडागमन का समय बहुत निकट आ गया था इस से शङ्खचूड लाल वस्त्र पहनकर दक्षिण गोकर्णजी को प्रदक्षिणा करने चला गया।

इधर कञ्चुकी नियत समय पर रानी के भेजे हुए लाल वस्त्र लेकर जीमूतवाहन के पास आया। इन वस्त्रों को पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और रानी को प्रणाम कहकर कञ्चुकी को शीघ्र ही लौटा दिया। फिर क्या था शीघ्र ही लाल वस्त्र पहनकर वह वध्यशिला पर पहुँच गया और एक प्राणी के प्राण बचाने के उद्योग में अपने भाग्य को सराहने लगा।

माता को समझाने बुझाने में शङ्खचूड को कुछ विलम्ब हो गया, इधर गरुडजी के आगमन से समुद्र में विशाल लहरें उठने लगीं, प्रलयकाल के समान पवन चलने लगा और सब जीव जन्तु व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगे। निदान गरुडजी उस शिला पर पहुँच गये और जीमूतवाहन को अपनी चोंच से पकड़कर मलयशृङ्ग पर जा बैठे तब राजकुमार को विश्वास हो गया कि शङ्खचूड की प्राणरक्षा में अब कोई बाधा न होगी। अब राजपुत्र ईश्वर से यह प्रार्थना करने लगा कि दूसरे जन्म में भी उस का शरीर इसी प्रकार परमार्थ में लगे।

परोपकार की इस पराकाष्ठा को देखकर स्वर्गलोक से देवताओं ने जीमूतवाहन पर पुष्पवृष्टि की और दुन्दुभियाँ बजाईं, परंतु गरुडजी को भ्रम हुआ कि मेरे वेग से कल्पवृक्ष हिल गये हैं, इस कारण उन से फूल गिर रहे हैं। दुन्दुभियों को उन्होंने मेघध्वनि समझा।

इधर जीमूतवाहन के लौटने में देर हुई तो महाराज विश्वावसु ने सुनन्द नामक प्रतीहार को महाराज जीमूतकेतु के यहाँ यह देखने के लिए भेजा कि राजपुत्र वहाँ तो नहीं है। जीमूतकेतु का वामनेत्र पहले ही से फड़क रहा था इस से वे मदाशङ्कित थे। जब सुनन्द ने राजपुत्र के लापता हो जाने का वृत्तान्त सुनाया तब वे और भी अधीर हो उठे। उन की वृद्धा रानी तथा मलयवती को भी बड़ा शोक हुआ। अभी सुनन्द वहाँ से लौटा भी न था कि एक लाल लाल वस्त्र सा आकाश से गिरता दिखाई दिया और क्षणमात्र में महाराज के पैरों पर आ पड़ा। वह वस्तु एक मांस से लिपटी हुई एक चूडामणि थी, जिसे देखते ही सब को संदेह हुआ कि वह जीमूतवाहन की चूडामणि तो नहीं है। सुनन्द ने समझाया कि यहाँ रोज नाग मारे जाते हैं। उन्हीं में से यह किसी की चूडामणि होगी। इस लिए बिना अच्छी प्रकार जाने बूझे शोक न करना चाहिए, यह कहकर प्रतीहार तो चला गया। इतने में इधर से रक्त वस्त्र पहने हुए शङ्खचूड गोकर्णजी के दर्शन करके वध्यशिला के पास गया, तो उस ने जाना कि मेरे आने में देरी हुई इस से जीमूतवाहन ने मेरे रक्षार्थ अपना शरीर पक्षिराज को अर्पित कर दिया।

विद्याधरराजपुत्र की इस अनुपम कृपा का स्मरण कर शङ्खचूड अत्यन्त विह्वल हो उठा। उस ने चाहा कि जीमूतवाहन के शरीर से गिरे हुए रक्तबिन्दुओं को देखते देखते मैं गरुडजी के पास पहुँच जाऊँ और किसी प्रकार अपने को भी उन को अर्पण कर दूँ। शङ्खचूड को इस दशा में जाते देखकर राजा रानी और मलयवती आदि को विश्वास हो गया कि यह इसी की चूडामणि है, जिसे किसी मांस के लोभी पक्षी ने शिर से निकाल लिया है। परन्तु जब शङ्खचूड से उन लोगों ने हाल पूछा तब उस ने अपना सच्चा वृत्तान्त गद्गद स्वर से कह सुनाया।

शङ्खचूड यह नहीं जानता था कि यह महापुरुष उसी परम उदार राजपुत्र के पिता हैं तथा यह वृद्धा और युवती उस की माता और पत्नी हैं।

यह समाचार सुनते ही 'हा पुत्र हा तात, हा वत्स, हा प्राणनाथ' आदि विलाप के शब्द निकलने लगे। अब तो शङ्खचूड पर यह दूसरी आपत्ति आ पड़ी। उस ने उन दुःखित जनों को बहुत कुछ समझाया बुझाया। अन्त

में यह निश्चय हुआ कि गरुडजी को खोजते हुए साथ में अग्नि लेते चलो, यदि विद्याधरराजपुत्र जानकर गरुडजी राजपुत्र को छोड़ दें तो अच्छा है। नहीं तो इसी अग्नि से चिता जलाकर सब लोग उस में कूद पड़ो और शरीर को भस्म कर दो।

शङ्खचूड आगे दौड़ा हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ गरुडजी बैठे हुए इस बात पर विस्मय कर रहे थे कि इस पुरुष को अपना शरीर अर्पित कर देने पर इतना आनन्द क्यों है? उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो! तो उत्तर मिला कि यह जानने का समय नहीं है; तुम अपना पेट भर लो। इसी समय शङ्खचूड ने पुकारा—"गरुडजी! इन्हें मत खाना, ये विद्याधरराजपुत्र जीमूतवाहन हैं, जिन्होंने दया से मेरे बदले अपना शरीर आप को अर्पण कर दिया है। मुझे खा लो, मैं नागपुत्र हूँ, मैं ही आप के लिए भेजा गया हूँ।" यह सुनते ही गरुडजी ने अपने इस अनुचित कर्म के प्रायश्चित्त में अपने शरीर को भस्म कर देना चाहा और जीमूतकेतु आदि को अपनी ओर आते देखकर उन से अग्नि लेने के लिए ठहर गये। जब वे लोग निकट आ गये तब जीमूतवाहन के कहने से शङ्खचूड ने उसे कपड़े से ढककर बिठा दिया। गरुडजी ने दूर ही से—"हा पुत्र, हा जीमूतवाहन"—आदि विलाप सुनकर जान लिया कि ये लोग इस राजपुत्र के माता पिता आदि हैं, उन्होंने उड़कर समुद्र के बड़वानल में जलना चाहा, परंतु जीमूतवाहन ने कहा कि आप के पाप का यह प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।

माता पिता को देखकर परम धीर राजपुत्र जीमूतवाहन ने उठकर प्रणाम करने का उद्योग किया। परंतु शरीर में रक्त न रहने से उठने की शक्ति न थी। इस से तुरंत ही मूर्छित होकर वह गिर पड़ा, पुत्र की यह दशा देखकर राजा और रानी भी मूर्छित हो गये। परंतु गरुडजी ने अपनी पंखों के पवन से राजपुत्र को सचेत किया और राजा आदि को भी शङ्खचूड ने जगाया!

जीमूतवाहन ने गरुड से कहा कि आप के पाप का प्रायश्चित्त यह है कि आज से कदापि किसी जीव का आप वध न करें! गरुडजी ने इसे मान लिया, परंतु राजपुत्र का समय निकट आ गया, आँखें बन्द होने लगीं, गात्र अत्यन्त शिथिल हो गया, बोलने का भी सामर्थ्य न रहा, तब वह अपने माता पिता को अन्तिम प्रणाम करके निश्चेष्ट हो गया।

उस समय के शोक का वर्णन कठिन ही नहीं, वरन् असंभाव्य है। वृद्ध अवस्था में ऐसे आज्ञापालक नव-विवाहित एकमात्र पुत्र का शोक अकथनीय है! परिणाम यह हुआ कि राजा, रानी, मलयवती और शङ्खचूड ने शरीर-त्याग के विचार से चिता में अग्नि लगाकर प्रवेश करने की चेष्टा की। इतने में भगवती गौरी प्रकट हो गईं और उन सब को ऐसे साहस के कर्म से रोका। उन्होंने अपने कमण्डलु जल के सेक से जीमूतवाहन को जिला दिया।

इसी समय बिना मेघों के आकाश से वृष्टि होने लगी, सब को विस्मित देखकर गौरी ने कहा कि मारे पश्चात्ताप के गरुडजी ने देवलोक से अमृत की वर्षा की है। इस अमृत-वर्षा के प्रभाव से चिरकाल से मारे हुए नाग, जिन की हड्डियाँ पर्वत के समान एकत्र हैं, जीवित हो होकर और पहले से भी अधिक बल पाकर समुद्र में घुसने लगे।

इसी शुभ अवसर पर भगवती गौरी ने अपने कमण्डलु के पवित्र जल से जीमूतवाहन का विद्याधरों के चक्रवर्तित्व पद पर अभिषेक किया। फिर चार दाँतवाला हाथी और श्यामकर्ण घोड़ा तथा रत्नरूप मलयवती को देकर उन्होंने अधिक प्रसन्नता प्रकट की। अन्य वरदान माँगने के लिए भगवती ने आज्ञा दी तो जीमूतवाहन ने कहाः—यदि आप प्रसन्न हैं तो समय पर उत्तम वृष्टि हुआ करे; पृथ्वी धन धान्य से परिपूर्ण रहे; मनुष्य प्रतिदिन आपस में वैरभाव छोड़कर पुण्य कार्य करें और अपने बान्धवों तथा मित्रों की गोष्ठी का सुख प्राप्त करें, बस, यही वर दीजिए।

तब से नाग आनन्द से रहने लगे। जीमूतवाहन ने अपनी इच्छा के अनुसार वर पाकर चिरकाल तक विद्याधरों का चक्रवर्तित्व भोग किया। भगवान् करें कि उक्त वर-दान आज फिर से सफलीभूत हो।

भववारिधि के पार

(ले०—श्री युगलकिशोर जी)

एक बार यात्राप्रसंग में वनशोभा के लुभावने दृश्य द्वारा आत्मविभोर होकर बहुत दूर तक निर्जन में निकल जाने पर सौभाग्यवश एक पवित्र आत्मा के दर्शन का सौभाग्य हो गया। फिर तो वहाँ के प्रभावपूर्ण प्रदेश और सत्संग के मनोरथ ने मुझे अनेक बार उधर जाने का अभ्यासी बना दिया। क्रमशः कुछ घनिष्ठता बढ़ जाने पर मेरे अनुरोध को मानते हुए एक बार इस पावन विभूति ने अपने विगत जीवन की झाँकी इस प्रकार कराई "......... भ्रमण से मुझे शान्ति और अशान्ति दोनों ही प्राप्त हुईं। जिस प्रकार अँधेरे और उजाले का साथ है पानी व कीचड़ का संबन्ध है इसी प्रकार से सुख दुःख और पाप पुण्य का कौतूहल देखने में आया। मैं ने तीर्थ स्थानों में पुण्य के साथ ही साथ पाप भी देखा, परन्तु मुझे कुछ आश्चर्य न हुआ। मन में विचार आया कि यदि जनता इन बातों को जानते हुए सहन करती है, तो उस का कोई कारण भी होगा ? सारांश में उत्तर मिला कि ये मनुष्यजीवन की कमजोरियाँ हैं। वास्तव में बात यह है कि जैसे बिना अन्धकार के प्रकाश का बोध होना कठिन है, उसी प्रकार बिना पाप के पुण्य और बिना पुण्य के पाप का ज्ञान होना कठिन होता है। ये समाज के दो अङ्ग हैं और न्यून या अधिक दशा में प्रत्येक काल में अवश्य वर्तमान रहेंगे। तो फिर इन बातों का प्रतीकार क्या हो सकता है ? उत्तर है कि अपने व्यक्तिगत जीवन को शुद्ध बनाओ और ईश्वर से प्राणीमात्र की भलाई के लिए प्रार्थना करो। वसिष्ठ, व्यास, बुद्ध और क्राईष्ट की शिक्षाओं का सारांश यही है कि आन्तरप्रार्थना या जप एक महान् प्रभावशाली वस्तु है और वह संसार के दुःखों को आमूल नाश करने की शक्ति रखता है।

यह विचार निश्चित करके मैं इस सनकोशी नदी के किनारे आया, यहाँ सनकोशी का परिचय कराना आवश्यक है। हिमालय पर्वतश्रेणी के अन्तर्गत प्रसिद्ध गौरीशंकर (कैलाश) पहाड़ से सनकोशी नामक नदी निकलकर हिमालय प्रान्त के कितने ही भागों को बेधती हुई नैपाल राज्य की सुन्दरता बढ़ाती है। उस के किनारे कई छोटे छोटे सुन्दर मैदान हिमालय पर सुशोभित हैं। इन मैदानों में वहाँ के निवासी गड़ेरिये कभी कभी अपनी भेड़ बकरियों को चराने के लिए ले जाते हैं, यहाँ पर प्रकृति की सुन्दरता बहुत भली मालूम होती है, ऋतुओं की सरलता और जंगली हिंसक पशुओं का अभाव, इस स्थान की उपयोगिता बढ़ाने में सहायक होते हैं। मेरी इच्छा शेष जीवन को किसी एकान्त स्थान में बिताने की थी, इस निर्णयानुसार मैं घूमते घूमते हिमालय पहाड़ के इसी प्रान्त में आया, जहाँ सनकोशी नदी के किनारे उपवन की भाँति हरे भरे मैदान स्थित हैं। सरिता के निकट मैदान के एक किनारे मैं ने अपनी पर्णकुटी बनाई।

कुटी के आसपास मनुष्य जीवन की सभी साधारण आवश्यकता पूर्ण करनेवाली वस्तुएँ वर्तमान थीं। अच्छे अच्छे फल फूलों के वृक्ष थे, सरिता का सुहावना कलकल नाद तथा पक्षियों का सुन्दर कलकूजन होता रहता था। घंटे दो घंटे के लिए गड़ेरियों तथा अन्य जंगली जाति के लोगों से बात चीत हो जाती थी, जो अपने सरल जीवन और प्रेम से मेरे हृदय पर

बड़ा प्रभाव रखते थे। धर्मचर्चा में अधिक समय व्यतीत होता था। इस रीति से मुझे इस स्थान में बड़ी शान्ति मिली, मानो कि मैं कैलाश लोक में पहुँच गया होऊँ। अन्य कार्यों से जो समय बच जाता उस में मैं गीता इत्यादि अपने धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ा करता और ईश्वरकृत सृष्टिनिर्माणविषय पर सोचा करता था। शान्ति का अपूर्व विश्राम मिलने के कारण मस्तकीय शक्तियों का अद्‌भुत विकाश हुआ। प्रभु की प्रार्थना में बड़ा आनन्द आता, जीवन का एक नया ही अर्थ प्रतीत होने लगता।

मेरी कुटी, जो एक प्रकार से बहुत सुरक्षित दशा में है, उस के भीतर आजकल सूखे पत्ते, कमलमृणाल, कमंडलु तथा गीता इत्यादि कुछ धार्मिक ग्रन्थ रहते हैं। इस के बाहर नदी है और शेष दिशा में हरा भरा मैदान, कुछ हरिण और गायें मेरे ऐसे प्रेमी बन गये हैं कि दिन रात पालतू पशुओं की तरह यहीं कुटी के आस-पास पड़े रहते हैं। कुछ पक्षी भी परिचित मित्र की भाँति निरन्तर अपना दर्शन दिया करते हैं। इस प्रकार ज्ञान, ध्यान तथा प्रार्थना का आनन्द लेते हुए और प्राणीमात्र के हित के लिए ईशप्रार्थना करते हुए बहुत साल आते और चले जाते हैं।

आज वैशाख शुक्ल पूर्णिमा है, रात्रि के लगभग नौ बजे हैं, चन्द्रकिरण चारों ओर फैलकर रात्रि की सुन्दरता बढ़ा रही हैं, शीतल मन्द वायु बह रही है, चारों ओर शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है। इन कर्मकलापों में पूर्णतम पुरुषोत्तम प्रभु की बाँकी झाँकी का चमत्कार उद्दीप्त हो रहा है। अब मैं पूर्णकाम हूँ, इस चर्चा के अलावा त्रैलोक्य का स्वामित्व भी अनपेक्षित है।"

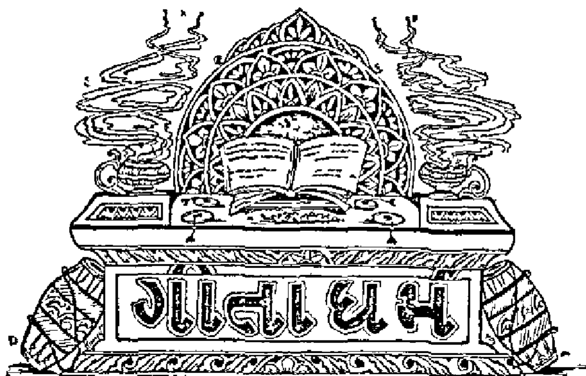
उस समय मैं अपने को अमृतस्नात सा समझता हुआ उस महानुभाव से विदा हुआ।

गीता-गुन-गान

मन हरषावत भगवद्गीता।
एक एक अक्षर ब्रह्मरूप है, प्रगटत रहस पुनीता।
पढ़त सुनत जो ध्यान लगाकर, लहि शुभ फल मन चीता॥ १॥
सुगम श्रेष्ठ सिद्धान्त मोक्ष प्रद, विजयी हो भय भीता।
तृप्ति न होय अध्यात्म गंग से, सुधि बिसराइ अतीता॥ २॥
वेद शास्त्र का सार गूढ़ तर, जिमि पय बिच नवनीता।
ज्ञानामृत दुख शोक नसावे, भूख प्यास तप शीता॥ ३॥
ॐ तत् सत् ब्रह्माण्ड व्यापिनी, संत भक्त प्रिय मीता।
श्रीकृष्ण "गोविंद" मुख वाणी, ब्रह्मशक्ति यम जीता॥ ४॥

—र० स्वामी श्री गोविन्दानन्द "हरीजी"

સંસ્થાપક.—શ્રીમત્પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકસંગ્રહી, ગીતાવ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરૂ, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી, મહારાજ.



સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ ; અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચઃ.

વર્ષ: ૭ મું } ૧૫મી ઑગસ્ટ ૧૯૪૨: { અંક ૮ મો

મુખ શોભા



દેખુ સખી હરિ બદન ઇન્દુ પર ;
ચિક્કન કુટિલ અલક અવલી છવિ કહિ ન જાય સોભા અનૂપ બર .
બાલભુજંગિનિનિકર મનહુ મિલિ રહી ઘેરિ રસ જાનિ સુધાકર ;
તજિ ન સકહિ નહિ કરહિ પાન કહો કારન કૌન બિચારિ ડરહિ ડર .
અરુન બનજલોચન કપોલ શુભ શ્રુતિમંડિત કુંડલ અતિ સુંદર ;
મનહુ સિંધુ નિજ સુતહિ મનાવન પઠએ જુગલ બસીઠ વારિચર .
નન્દનંદન મુખ કી સુંદરતા કહિ ન સકત શ્રુતિ શેષ ઉમાવર ;
'તુલસિદાસ' ત્રૈલોક્ય વિમોહન રૂપ કપટ નર ત્રિવિધ શૂલ હર .

—ગોસ્વામી શ્રી તુલસીદાસજી.



સ્વસ્વરૂપાનંદ

લેખકઃ—ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઈ.

આ જગત શું છે ? આ જગત શામાંથી ઉત્પન્ન થયું છે ? આ જગત શામાં લય થવાનું છે ? હું કોણ છું ? મારો દેહ શું વસ્તુ છે ? દેહમાં રહેનારો ચેતન શું છે ? આ જ્યારે મનુષ્ય એકાન્તમાં બેસી વિચાર કરે છે ત્યારે કંઇક અંતઃકરણને શાન્તિનો વિષય છે એમ ભાન થાય છે. જગતમાં જ્યાં જુઓ ત્યાં પ્રપંચનો ભાસ થાય છે ત્યારે દરેક ઠેકાણે નજર રાખતાં એમ માલુમ પડે છે કે દરેક વસ્તુ જુઠી છે, તેનો નાશ છે. એકેયમાં સત વસ્તુ ભાસતી નથી ત્યારે એકેક વસ્તુ વિચારતાં તપાસતાં એમ માલુમ પડે છે કે દરેક વસ્તુ અસત્ય અને જુઠી છે. ત્યારે સત્ય વસ્તુ કઇ ? આ વસ્તુ જ્યારે વિચારવા બેસીએ છીએ ત્યારે અંતઃકરણ ઉપર કંઈક જુદોજ ભાસ થાય છે. જીવનની ભેદ બુદ્ધિ શાન્ત પડે છે. સર્વત્ર કંઈક જુદોજ ભાસ થાય છે.

ઇન્દ્રિઓ ઉપર કાબુ મેળવતો જાય છે. ક્રોધ, લોભ, અહંકારનો ધીમે ધીમે ત્યાગ કરતો જાય છે તેમ તેમ અંતઃકરણમાં કંઇક નવીન વસ્તુની પ્રાપ્તી થતી હોય છે તેમ લાગતુંજ જાય છે. આમ જીવાત્મા સર્વ કામના તજી નિસ્પૃહી થઈ વિચરે છે, અહંતા મમતાનો ત્યાગ કરતો જાય છે. મીથ્યા કામનાથી પર રહે છે. તુચ્છ વિષયોના ક્ષણીક આનંદ તે ચાહતો નથી, દેહાભિમાનની નિવૃત્તિ થાય છે, દેહમાં અહંબુદ્ધિ થતી નથી. નાના પ્રકારના વિષય પદાર્થો તેને તુચ્છ ભાસે છે. હું પોતેજ બ્રહ્મ છું. એ સંબંધમાં પોતાને સંદેહ યા ભ્રમ લાગતો નથી. મીથ્યા તત્વનું ભાન થતાંજ જ્ઞાનાગ્નિ પ્રદીપ્ત થાય છે.

આ જગતમાં સર્વે જ્યાંથી પ્રગટ થાય છે અને જેમાં સર્વે લય થાય છે તેનું જ્ઞાન થતાંજ અંતરમાં સર્વોત્તમ ભાવનો ઉદય થાય છે.

હું આત્મા છું બ્રહ્મ સ્વરૂપ છું. દ્રષ્ટા છું તેમાંથી મારી ઉત્પતિ છે અને તેમાં શુદ્ધ ચેતન સ્વરૂપમાંજ લય થવાનો છું અને એ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું. એનું નિત્ય મનન કરવું અને એજ ભગવદ્ વિચારણા ઉપર મનોવૃત્તિ કેળવવાથી સ્વ સ્વરૂપનો અખંડીત આનંદ યાને પરમાનંદની પ્રાપ્તિ થાય છે.

મારો દેહ અને હું આત્મા એ બન્ને વસ્તુ તદન જુદી છે એ જ્યારે આત્મજ્ઞાન થાય છે ત્યારે જીવન મરણના ફેરામાંથી મુક્ત થાય છે અને પરમ પદને પામે છે. અને અનિત્ય સુખને કાયમના માટે તજી દઇ ને નિત્ય સુખનો પરમાનંદ અનુભવે છે. એમ ઇતિ અસ્તુ.

મુમુક્ષાનું સમર્થન

(લે૦—શ્રીમત્ પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય બ્રહ્માનિષ્ઠ લોકસંગ્રહી ગીતાવ્યાસ જગદ્ગુરુ
મહામંડલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ)

વેદાન્તશ્રવણના અધિકારીને જે સાધન ચતુષ્ટયની આવશ્યકતા છે તેમાં મુમુક્ષુત્વ ખાસ અપરિહાર્ય છે. અર્થાત્ "મારો પુનર્જન્મ ન થાય" એવી તેને તિવ્ર અભિલાષા હોવી જોઇએ

હવે પ્રશ્ન એ છે કે કોઇને સંસાર સાથે દ્વેષ શા માટે હોય ? જોવામાં આવે છે કે સર્વ કોઈ અતિ ઉત્સાહપૂર્વક ગૃહસ્થી કરે છે. સૌને નિસર્ગતઃ સુખની ઇચ્છા રહે છે અને સર્વ જીવ સંસારમાં કેટલાક પ્રકારનાં સુખ, પૂરાં પૂરાં નહિં તો થોડા ઘણા પ્રમાણમાં તો જરૂર પ્રાપ્ત કરેજ છે. તેની સાથે સાથે થોડું ઘણું દુઃખ પણ જરૂર મળેલું હોય છે, એ વાતમાં આનાકાની કરી શકાય નહી. પરંતુ મુખ્ય સવાલ એ છે કે સંસારમા સુખ છે કે નહીં એનો ઉત્તર તો અસ્તિપક્ષાર્થકજ આપવામાં આવશે, નકારાત્મક કદિ પણ નહીં. જીવમાત્રની કર્મમાં પ્રવૃત્તિ અહર્નિશ જોવામાં આવે છે, અને—

'પ્રયોજનમનુદ્દિશ્ય ન મન્દોऽપિ પ્રવર્તતે'

વગર મતલબનું કામ કરવામાં કોઈ મહામૂર્ખ પણ પ્રવૃત્ત થતો નથી એ તો નક્કીજ છે. એટલે કે એનું પ્રયોજન સુખ પ્રાપ્તિ સિવાય બીજું કોઈ પણ હોતું નથી એ વાત પણ તદ્દન સત્યજ છે. ગીતામાં કર્મ સિદ્ધિનો જે હેતુપંચક કહ્યો છે તેમાં ચેષ્ટા અર્થાત સુખેચ્છા પણ છે. ત્યારે તો એ અનુમાન બરાબરજ છે કે જીવોની પ્રવૃત્તિ સફળ અર્થાત સુખોત્પાદક હોવાથીજ સુખની ઇચ્છા આદિ કાળથી ચાલુ છે અને અનન્ત કાળ પર્યંત ચાલુ રહેશે. ગીતામાં ત્રણ પ્રકારનાં સુખ વર્ણવવામા આવ્યાં છે. તામસ હોય કે રાજસ હોય સુખ સુખજ છે અને તેથી ઉપાદેય છે. અનિત્ય હોય, થોડું હોય, દુઃખ મિશ્રિત હોય, કેવુંય હોય, દુનિયામાં સુખ નામનો પદાર્થ છે અવશ્ય, અને તેજ તો પુરૂષાર્થ છે. ત્યારે દુનિયાથી વૈરાગ્ય શા માટે થાય અને મનુષ્ય મુમુક્ષુ કેવી રીતે થાય ?

એવો પૂર્વપક્ષ કરવામાં આવે તો સમાધાન એ છે કે મનુષ્ય જેને સુખ સમજે છે તે વાસ્તવમાં સુખ નથી, સુખાભાસ છે. આ વિષયમાં યોગદર્શનકારનો સિદ્ધાન્ત આ પ્રમાણેનો છે—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।

—साधनपाद, सूत्र १५

એમાં "વિવેકિન" પદ મુદ્દાનું છે. પ્રકૃતિ અને પુરૂષ એ બન્નેમાં પૂર્વ પશ્ચિમનું તમઃ પ્રકાશવત ઘણું મોટું અંતર છે એમ જાણવું એને વિવેક કહે છે એનુંજ નામ વિદ્યા છે એથી વિરૂદ્ધ અવિદ્યાનું લક્ષણ યોગશાસ્ત્રમા આ પ્રમાણેનું કહ્યું છે—

अनित्य–अशुचि–दुःख–अनात्मसु
नित्य–शुचि–सुख–आत्मख्यातिरविद्या ।

—साधनपाद, सूत्र ५

અનિત્ય, અશુચિ, દુઃખ અને જડ પદાર્થોને નિત્ય, પવિત્ર, સુખ અને આત્માવાળા સમજવા એ

અવિદ્યા છે. સંસારમાં કેવળ દુઃખજ દુઃખ ભરેલું પડયું છે. પરંતુ અવિદ્યાના પ્રભાવથી તે સુખવત્ ભાસે છે. સંસારમાં સુખનો તો અભાવજ છે.

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

—ગી૦ ૯।૩૩

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

—ગી૦ ૮।૧૫

વધારે શું, ભગવાનનાં આ વચનોથી પણ સંસાર દુઃખમય છે એજ સિદ્ધ થાય છે. એના ઉપર કોઈ કહે કે સંસારમાં સુખ નથી એમ કહેવું એ તો પ્રત્યક્ષનો અપલાપ કરવા જેવું છે. આ શંકાનું સમાધાન સૂત્રમાંના "વિવેકિનઃ" પદથી થઈ જાય છે. અજ્ઞાની માટે સંસાર ભલેને સુખમય પ્રતિત થતો હોય, વિદ્વાનનાં જ્ઞાનચક્ષુથી તો તે વિપરીતજ માલમ પડે છે. તેને મુમુક્ષા થવા સંભવ છે. એવા પુરૂષ દુનિયામાં ઘણાજ થોડા હોય છે.

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये ।

—ગી૦ ૭।૩

પરંતુ એના ઉપર એ સવાલ થાય છે કે સંસારમાં જે કાંઈ જેવું કાંઈ અને જેટલું કાંઈ સુખ પ્રાપ્ત થાય છે તેને છોડવાની ઇચ્છા કરવામાં શું બુદ્ધિમાની છે? વળી સાંસારિક સુખમાં કંઈક નિશ્ચિતતા છે, તેવીજ રીતે મોક્ષ સુખનો શું ભરોસો છ? મોક્ષ ધામથી પાછા આવીને કોણે તે સુખને સપ્રમાણ સિદ્ધ કર્યું છે?

ઉત્તરમાં એમ કહેવામાં આવે છે કે સાંસારિક સુખની દુઃખશબલતા અને દુઃખની જિહાસા નિર્વિવાદ હોવાથી—

यथा दुःखात् क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ।

—સાં૦ દ૦ ૬।૬

'મનુષ્ય દુઃખને જેટલું ખરાબ સમજે છે, તેટલાજ પ્રમાણમાં સુખની ઇચ્છા તિવ્ર હોતી નથી. આ સાંખ્ય સૂત્રાનુસાર તથા—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ।

—સાં૦ દ૦ ૬।૫

દુઃખનો લેશ માત્ર ન રહે એમાંજ પુરી સફળતા છે' આ સિદ્ધાંતથી પણ એ વાત અવશ્ય સ્વિકારવી પડે છે કે થોડું હોય કે ઘણું હોય, दुःखत्वावच्छेदेन જ દુઃખ જિહાસા પ્રાણી માત્રમાં નૈસર્ગિક છે.

મોક્ષ સુખની પ્રમાણિકતા તો શ્રુતિથીજ સિદ્ધ છે. પરંતુ તેની નિરપેક્ષતાથીજ કહી શકાય છે કે દુઃખથી મોક્ષ મેળવવાની ઇચ્છાનું પ્રાપ્ત થવું બીલકુલ સ્વાભાવિક છે.

અગર એમ કહેવામાં આવે કે દુઃખથી આ પ્રકારનો છુટકારો તો સર્વના જીવનમાં હર ઘડીજ થતો રહે છે, તેને માટે સર્વની મુમુક્ષા પણ બનેલી છે. ત્યારે તો દુઃખ પરિહારને માટે પુનર્જન્મ નહી થવાની શું આવશ્યકતા છે?

આમ કહેવાનો એ મતલબ થયો કે મનુષ્યને જેટલાં દુઃખ ભોગવવાં પડે છે તે સૌ દષ્ટ ઉપાયોથી પણ દૂર થઈ શકે છે. અને થાય છે પણ ખરાં. તેને માટે દુઃસાધ્ય આત્મ જ્ઞાનોપાર્જન દ્વારા જન્માભાવની ઇચ્છા કરવી એ યુક્તિ સંગત નથી.

આ વિષયની અને અન્યાન્ય આનુષંગિક શંકાઓની સાંખ્યકારે ઘણીજ સુંદર મીમાંસા કરેલી છે. તે સૂત્રોના અનિરુદ્ધ કૃત આધારે ભાષામાં અનુવાદ આપવામાં આવે છે.

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।

—સાં૦ સૂ૦ ૧।૧

ત્રણેય પ્રકારનાં દુઃખોથી અત્યન્ત છૂટવામાંજ

ખરો પુરૂષાર્થ છે. એ વાત લોકમાં જાણીતી છે કે વૈરાગ્ય થવાથી મનુષ્યની મોક્ષ શાસ્ત્રના અધ્યયનમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે. વૈરાગ્ય શા માટે થાય છે એનાં બે કારણો છે, એક શોક આદિ અને બીજું પ્રાગ્ભવીય દુરિતનો ક્ષય, આ અપર વૈરાગ્ય કહેવાય છે, એનું લક્ષણ પાતંજલ યોગ દર્શનમાં આ પ્રમાણે કહ્યું છે—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य
वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।

—समाधिपाद, सू० १५

એને ફળભૂત પર વૈરાગ્ય કહેવાય છે અને તેનું લક્ષણ છે—

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।

समाधिपाद, सू० १६

તેના પછી સાંસારિક દુ:ખોની નિવૃત્તિના ઉપાયોની જીજ્ઞાસા થાય છે પ્રસંગત દુ:ખના પ્રકાર કહેવામાં આવે છે દુ:ખ ત્રિવિધ છે—આધ્યાત્મિક, આધિદૈવિક તથા આધિભૌતિક. આ પ્રકાર ક્યા ક્યા છે એ વાતનો ખુલાસો સૂત્રકાર કરતા નથી.

એટલા માટે ગીતા ૨।૪ ૨।૫ ૨।૬ શ્લોકોમાં કથિત ત્રિવિધ પ્રકાર હોવાજ ઠીક જણાય છે. તથા કે—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

આ સ્પષ્ટતઃ શારીરિક દુ:ખ છે. એમ તો દુ:ખ માત્રજ મનથી સંવેદનીય થતું હોવાને કારણે એકજ પ્રકારનું છે. તથાપિ—

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्-
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥

અને—

न चैतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥

આ ત્રણે શ્લોકોમાં અનુક્રમે કાયિક, વાચિક અને માનસિક અર્થાત્ અન્નમય, પ્રાણમય અને મનોમય આ ત્રણ કોશો દ્વારા અનુભવવામાં આવનારા દુ:ખોનો ઉલ્લેખ છે. હવે વિચારવાનું એ છે કે એ દુ:ખોની નિવૃત્તિ કયા ઉપાયથી થાય? અસ્મદાદિક બદ્ધ જીવ તો એવોજ પૂર્વપક્ષ કરશે કે ઓષધાદિ મિષ્ટાન્નાદિ શાન્ત્યનુષ્ઠાન મણિમન્ત્રાદિ સુલભ અને દ્રષ્ટ ઉપાયોથી પ્રત્યક્ષત દુ:ખનિવૃત્તિની સિદ્ધિ થાય છે. તો પછી દુ:સાધ્ય અનેક જન્મ પરંપરાયાસથી સંપાદ્ય ચિત્ત નિરોધ જ્ઞાન પ્રાપ્તિ આદિ શાસ્ત્રોક્ત સાધનોમાં બુદ્ધિમાન મનુષ્યોની પ્રવૃત્તિ શી રીતે થવાની? એનો ઉત્તર સૂત્રકાર આવો આપે છે—

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्।

—सा० द० १।२

ઉપર જણાવેલાં ત્રણ દુ:ખો દૂર થાય છે ખરાં, પરંતુ એ નિવૃત્તિ આપાતતઃ હોય છે ફરીથી દુ:ખ નહીં આવે એવો નિયમ નથી. કદાચિત એક દુ:ખ નિવૃત્ત થઈ પણ ગયું તો બીજું નહિ થાય એવો પણ કાંઈ ભરોસો નથી "दुःखं दुःखानुबन्धि" એમ રેંટને ગડીના ડબ્બા જેવો ક્રમ ચાલુજ રહે છે સુસ્પષ્ટતા કથી છે?

એના ઉપર તો કહેવામાં આવે છે—

प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत्

तत्प्रतीकारचेष्टनात्पुरुषार्थत्वम् ।

—સાં૰ દ૰ ૧।૨

જેમ રોજ ભુખ લાગે છે તેની ભોજનથી નિવૃત્તિ કરવામાં આવે છે તેમ નિત્ય ઉપાય કરવાથી દુઃખ નિવૃત્તિ થઈને પુરૂષાર્થનો લાભ થઈ શકે છે.

એનો જવાબ કપિલ મુનિજી આવો આપે છે—

सर्वासंभवात् संभवेऽपि सत्त्वा-

संभवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ।

—સાં૰ દ૰ ૧।૪

સર્વત્ર અને સર્વદા વૈદ્ય આદિ નથી પણ મળી શકતા અને પ્રતિકાર થવા છતાં પણ દુઃખનું મુળ (દેહાભિમાન) બન્યુંજ રહેશે. એટલા માટે આ દ્રષ્ટોપાયજન્ય દુઃખ નિવૃત્તિરૂપ પુરૂષાર્થ ત્યાજ્ય છે. જુદા જુદા ઉપાયોથી દુઃખ દૂર કરવાના સામર્થ્યમાં કાંઈક બળ હોવા છતાં પણ, ઉક્ત હેતુઓથી તે અકિંચિત્કર છે

તેથી રૂષિ સિદ્ધાંત કહે છે—

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ।

—સાં૰ દ૰ ૧।૫

"न च पुनरावर्तते" છાંન્દોગ્ય ઉ૰ અ૰૮ સ૰ ૧૫ મ૰ ૧. સર્વ ઉપાયોમાં મોક્ષની શ્રેષ્ટતા આ શ્રુતિથી સિદ્ધ છે. એજ વાતને ઉદ્દેશીને પ્રથમ સૂત્રમાં "अत्यन्त" પદનો પ્રયોગ કરેલો છે. દ્રષ્ટોપાયજન્ય સુખલાભના આધારે જે એવો આક્ષેપ છે કે તે સુખનો શા માટે ત્યાગ કરવામાં આવે, તેનું સમાધાન શાસ્ત્રકાર આ પ્રમાણે કરે છે—

अविशेषश्चोभयोः ।—સાં૰ દ૰ ૧।૬

જેને લોકમાં સુખ કહે છે તે પણ એક પ્રકારે દુઃખજ છે. સુખ દુઃખમાં વિશેષ ફેર નથી, ગીતા ધીર પુરૂષના વિષયમાં કહે છે કે તે—

"समं दुःखसुखं",—સાં૰ દ૰ ૨।૧૫

એવો હોય છે. અર્થાત્—

तदपि दुःखशबलमिति

दुःखपक्षे निक्षिपन्ते विवेचकाः ।

—સાં૰ દ૰ ૬।૮

વિચારશીલ પુરૂષ સુખને દુખથી ભળેલું માનીને દુઃખની ગણતરીમાંજ મૂકે છે. ફલતઃ—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता । સાં૰ દ૰ ૬।૫

પ્રકૃત મુમુક્ષુને એજ મત ગ્રાહ્ય છે અને તેથી જ જન્માભાવ રૂપ મુમુક્ષાનું થવું ઠીકજ છે.

કઠણ ધ્યેય અને કિલષ્ટ યોગ

(લે૰—શ્રી રૂષિરામજી બ્રહ્મચારી.)

મુળત: વિશ્વને અને આ જીવનને શું જોઇએ છે કે જેથી આ જીવન અને સૃષ્ટિની અંદર એક ઇશ્વરીય વિજ્ઞાન શક્તિ, ચેતન અને આનંદમય સૃષ્ટિની રચના થાય.

પ્રથમ તો તેને માટે એ કરવું પડશે કે આ સમગ્ર ભૌતિક જીવન અને આ સૃષ્ટિની ગતિયો—શાખાઓ જે કોઇ પણ આ સૃષ્ટિનાં અંગ છે, તેમનો સર્વથા સમૂળગો નાશ કરીને આ ઇશ્વર રાજ્યની પ્રતિષ્ઠાને માટે યોગ્ય— અનુકુળ ક્ષેત્ર તૈયાર કરવું પડશે તથા પૂર્વ સંસ્કારોને ફેરે ફેરેથી કાઢીને દૂર કરવા પડશે.

આ કાર્ય ચાહે કહેતાં સાંભળવામાં સહજ, સરળ અને ઘણું સાધારણ માલુમ પડતું હોય, અથવા ઘણું મુશ્કેલ હોવાને કારણે અસંભવજ માલુમ પડતું હોય, પણ તે એ બે પૈકીમાંથી એકેય જાતનું નથી. એ ઘણુંજ કઠણ અને ઘણુંજ મોટું છે. એનાં દરેક અંગને સમજવા

અને આચરણ કરવાથીજ એની મહત્તા અને મુશ્કેલીનું જ્ઞાન થઈ શકે છે.

એને માટે ઘણીજ ગહન લડાઈ લડવી પડે છે એમાં સાધારણ મનુષ્ય ઉભો રહી શકતો નથી.

એમાં મોટો મહારથિજ પ્રવેશ કરી શકે છે આ ચક્રવ્યૂહનું ભેદન—એમાં પ્રવેશ, એક દુસાધ્ય તપસ્યા છે અથવા એમ કહો કે એક મહાભારતજ છે પ્રથમ આ જીવન અને સૃષ્ટિની અનંત વિરોધી શક્તિઓના ઉપર વિજય, એમની અનંત ગતિઓનું સમુળગુ છેદન અર્થાત એક સંસ્કાર સુદ્ધાંત કોઈ અંગમાં ન રહી જાય, આજ કામોમાં મોટી મુશ્કેલી છે અને તેને માટે આ સર્વ કરવાની ઘણીજ જરૂર છે જ્યાં સુધી આ વિરોધી શક્તિઓની ચાલોને કિંચિત્ પણ બાકી રાખવાની આશા બનેલી છે ત્યાં સુધી તે કાર્ય અસંભવ છે કારણ અસત્ય અને અજ્ઞાનની મધ્ય મુદ્દતમાં પણ તે સૃષ્ટિ નિર્માણ કરનારી ભગવદ્ દયા રૂપિણી મહત્ શક્તિ ભગવતી માતા જે પોતાના પ્રત્યેક કાર્યની અંદર "પુરુષોત્તમ" ને ધારણ કરી રાખે છે, ઉતરી શકતી નથી. આ સૃષ્ટિ અને જીવન શક્તિની કોઈ પણ શરત તેને મંજુર નથી જો તેમ થઈ જાય, તો તે પોતાના સ્વભાવથીજ ચ્યુત થઈ જાય

અને સાધક જ્યાં સુધી તેમની ઇચ્છાઓની ગતિઓ અને અંગોને કે જે તે ભગવતીના કાર્યોમાં તેના પુરુષોત્તમની ઇચ્છાનુસાર દિવ્ય સૃષ્ટિ રચનામાં બાધા નાખે છે, પૂર્ણ અંગિકાર કરે છે અને તે અટકાવવા માટે ઉભી રહે છે, પોતાની અંદર જગા આપી રહેલી છે—ત્યાં સુધી તે તેટલો જ ભગવાન અને ભગવતીથી દૂર થતો જાય છે. અને જેટલોય ભગવતીની ઇચ્છાનુસાર પોતે પોતાને ખોળતો જાય છે-તે તેવાં વિઘ્નોને લેવા માટે સર્વ સંયમથી સ્વિકાર કરે છે—આ કાર્યમાં અધિકાધિક અગ્રેસર થતો જાય છે આ કાર્ય સ્વયં ભગવાનનું છે—તેમને માટે છે અને સંસારને માટે તો છે જ—એમાં શંકાજ શું છે?

એને માટે અવસ્થાઓ તૈયાર કરવાની હોય છે, ભગવાન અને ભગવતીની શરત મંજુર કરવી પડે છે, તેમની ઇચ્છાનુસાર આખું જીવન પરિવર્તિત કરવું પડે છે તેમની વિરોધી બાજુને કોઈ પણ અંગમાં સ્થાન આપવામાં આવતું નથી તેમની આજ્ઞા પ્રમાણે ચાલવું પડે છે, તેમની શરત અને ઇચ્છાની સામે અહિંની ભૌતિક જીવન સૃષ્ટિની શરતો અને ઇચ્છાઓને સર્વદા ધૂળમાં મેળવી દેવી પડે છે

એના સાધનના અનેક અંગ છે—શરતો છે—જે ભગવતીની શક્તિ દ્વારાજ નક્કી થયેલાં છે સાધકને તેમની અંદર થઈને પસાર થવું પડે છે એજ આધાર અને અવસ્થાઓની તૈયારી છે

એમાં હઠયોગ, મંત્ર યંત્ર કોઈ ખાસ ધ્યાન કંઈ કામ આવતું નથી, કે નથી તેમની કંઈ જરૂર પણ પડતી ભગવતીની દયા શક્તિથી એનું પ્રતિફળ સ્વયં પ્રાપ્ત થઈ જાય છે.

આ યોગનો સાધક આ સર્વના પરિણામોથી ઘણો આગળ અતિક્રમણ કરી જાય છે. એમાં સર્વ યોગ સમન્વયનું રૂપ પ્રાપ્ત કરે છે એમાં ખરો પ્રવેશ તેજ કરી શકે છે, જેના અંતરમાંથી એ સાચો પોકાર ઉઠયો છે કે હવે ભૌતિક જીવન ઘણું ખઈ વિતી ચૂક્યું, સંસારનું પરિવર્તન અને પૂર્ણ સાચું કલ્યાણ હવે વિના યૌગિક શક્તિના—માનવીય ઇન્દ્રિય, મન, બુદ્ધિથી થઈ શકતું અસંભવ છે

આ સર્વેની અંદર રહીને જેટલી હદ સુધી ઉડી શકાય છે અને તેનાથી જે કંઈ થઈ શકે છે અથવા કરી શકાય છે તેનું ઉત્કૃષ્ટ ઉદાહરણ મહાત્મા ગાંધીજી છે એનો મતલબ કોઈ આજકાલનો જાગૃત સમુદાયનો કર્મયોગી એમ ન સમજી લે કે એમાં સાંસારિક જીવનની શિક્ષા છે અથવા કે માયાથી અતીત થઈને ધ્યાન અને વેદાન્તમાં ડુબી જવાનીજ શિક્ષા છે કે જેથી સંસારના કોઈ ખાસ પ્રશ્નનો નિવેડો આવી શકતો નથી, બલ્કે અહિંનું કાર્ય ઈશ્વરીય છે, જેના એક પળના કાર્યને પણ કોઈ માનવ શક્તિ હજાર વર્ષમાં પણ કરી શકતી નથી.

આ સહજ—ભગવતી શક્તિનું આ કાર્ય જે ઉપર કહેવાયું છે, સૌથી પ્રથમ બુદ્ધિ સત્તામાંજ પ્રારંભ થાય છે. પછી ક્રમશ આધારની તૈયારીને અનુસાર તે બુદ્ધિ, મન, પ્રાણ, જીવન અને શરીરના અધ્યાત્મ માર્ગથી આગળ જતાં આ પૃથ્વી સુધી ઉતારી શકાય છે.

ૐ શાન્તિ   શાન્તિ   શાન્તિ

શંકા

(પ્રે૦—મનોહરલાલ શર્મા)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

—गी० १२।३, ४

સૌનું હિત ચાહનારા સૌમાં સમબુદ્ધિ રાખનારા જે પુરૂષ ઇન્દ્રિયોનો સંયમ કરીને નિર્દેશ રહિત, અવ્યક્ત, સર્વવ્યાપી, અચિન્ત્ય, કુટસ્થ, સ્થિર, અક્ષર બ્રહ્મની ઉપાસના કરે છે, તેઓ પણ મને પરમાત્માનેજ પ્રાપ્ત થાય છે. અહિં ભગવાને બ્રહ્મના સ્વરૂપને અનિર્દેશ્ય બતાવ્યું છે. વળી આગળ—

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।

'ॐ તત્ સત્ આ પ્રકારે બ્રહ્મનો નિર્દેશ ત્રણ પ્રકારનો કહેવામાં આવ્યો છે.' એમાં બ્રહ્મનો નિર્દેશ બતાવ્યો છે. આ બન્ને સ્થળોની સંગતિ કેવી રીતે થઈ શકે છે?



સમાધાન

(લે૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી શર્મા)

એનો ઉત્તર એ છે કે પ્રથમ વ્યક્ત અક્ષર અને અવ્યક્ત અક્ષર એ બન્નેમાં ઉપાસનાને માટે કયાનું આલંબન શ્રેષ્ઠ છે? એ અર્જુનનો પ્રશ્ન હતો. એટલા માટે બ્રહ્મના વર્ણનમાં ભગવાને અનિર્દેશ્ય શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો અને બીજે ઠેકાણે નિર્દેશ્ય બ્રહ્મનો ઉલ્લેખ એટલા માટે કર્યો કે ત્યાં મંગલાચરણનો વિષય હોવાથી બ્રહ્મને નિર્દેશ્ય કહેવો પડયો.

. વસ્તુતઃ તો બ્રહ્મ ન સગુણ છે, ન નિર્ગુણ, જેવી રીત કોઈ પુરૂષ વસ્ત્ર પહેરી લે તો તે સવસ્ત્ર કહેવાય છે અને ન પહેરે તો નિવસ્ત્ર કહેવાય છે. તેની સવસ્ત્રતા અને અવસ્ત્રતાની એ બે સંજ્ઞાઓ વસ્ત્રની અપેક્ષાથી થઈ છે. પુરૂષનું વાસ્તવિક સ્વરુપ તો પુરુષત્વાવચ્છિન્નજ છે. વસ્ત્ર હોય કે ન હોય પુરૂષ પુરૂષજ બન્યો રહેશે. એજ ન્યાય બ્રહ્મના વિષયમાં પણ લાગુ છે. જેવો કે શ્રીમદ્ ભાગવતમાં પણ ઉલ્લેખ છે—

बन्धो मोक्ष इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः॥

અવતાર ધારણ કરવો કે જીવભાવથી વિભક્ત થવું અને પછી આ આવરણોથી છૂટી જવું આવા પ્રકારની પરમાત્માની વ્યાખ્યા ગુણોને લીધે ઔપચારિક છે વાસ્તવિક નથી.

એટલે આ અર્થમાં બ્રહ્મ નિર્દેશ્ય પણ છે અને અનિર્દેશ્ય પણ છે.



સંત સમાગમ

(લે૦—સ્વામી શ્રી રામાનંદજી સન્યાસી, દર્શનશાસ્ત્રી, વ્યાકરણાચાર્ય.)

[ગતાંક પૃ૦ ૬૧૮ થી ચાલુ]

તે પછી એક બીજા મહાત્મા કહેવા લાગ્યા કે—એક સમય હું કલિંગ દેશમાં ભ્રમણ કરી રહ્યો હતો ત્યાં મને એક ભાવુકે કહ્યું કે—"મહારાજ! મને કંઈ ઉપદેશ આપો." મેં કહ્યું—"ભાઈ! જો તમને કોઈ બન્ધુ મિત્રની આકાંક્ષા હોય, તો તમારે માટે પરમાત્મા બસ છે. જો તમને સંગી સાથીની જરૂર હોય તો વિધાતાથી તેની પૂર્તિ થશે. જો માન પ્રતિષ્ઠાની ભૂખ હોય તો સંસાર પૂરી તૃપ્તિ કરશે. અગર જો શાન્તિની અપેક્ષા હોય તો તે ગીતા આપશે. જો કોઇ કામ ધંધાની ફિકર હોય તો તપશ્ચર્યાથી મળશે. જો ઉપદેશ ચાહતા હોય તો મૃત્યુનું સ્મરણજ જરૂરી છે. અને અગર જો અમારૂં આ કથન તમારે ગળે ન ઉતરતું હોય તો તમારે માટે નરક કંઈ દૂર નથી.

વળી સાંભળો—

પંડિતો અને વૈરાગીઓનો અહંકાર ધનવાનો અને રાજા મહારાજાઓના અભિમાન સાથે તોળી જોવામાં આવે તો પંડિતો અને વૈરાગ્યવાનોનો અહંકાર વજનમાં જરૂર વધી જવાનો. માટે બે વાતોથી સદા સાવધાન રહેજો—

૧—અહંકારથી

૨—લોભથી

વળી જુઓ—સ્પૃહા સૌને હોય છે. તેના ત્રણ ભેદ કરી શકાય છે—

૧—ભોગ ભોગવવાની

૨—બોલવાની

૩—જોવાની

ભોગ ભોગવતી વેળાએ એ સદા ધ્યાનમાં રાખવું કે—ભલે બીજું કોઈ ન જોઈ રહ્યું હોય, પરંતુ પ્રભુ તો જોઇ રહ્યા છે. તેથી એવા કોઈ ભોગ ન ભોગવો કે જે ઇશ્વરથી છૂપાવવા જેવા હોય.

બોલતી વેળાએ એ સદા ધ્યાનમાં રાખવું કે તેથી સત્યની હત્યા ન થઈ જાય.

અને જોતી વેળાએ એ યાદ રાખવું કે સજ્જનતા અને શિષ્ટતાનો નાશ ન થઈ જાય.

મન પણ ચાર પ્રકારના હોય છે—

૧—મડદું મન

૨—રોગી મન

૩—આળસુ મન

૪—સ્વસ્થ મન

એમાં ધર્મદ્રોહીનું મન મડદું મન જાણવું, પાપીનું મન રોગી મન જાણવું, લોભી તથા સ્વાર્થીનું મન આળસુ મન જાણવું અને સાધન ભજનમાં તત્પર મનને સ્વસ્થ મન જાણવું જોઇએ.

એક સંત લોકોને કહ્યા કરતા હતા કે—હે મનુષ્ય! જો તારે ઇશ્વરના પ્રીતિપાત્ર બનવું હોય તો ઇશ્વર તને જે સ્થીતિમાં રાખવા ચાહે છે તેમાંજ સંતુષ્ટ રહેતાં શીખી જા.

જુઓ—વૈરાગ્યની પહેલી અવસ્થામાં ઇશ્વર ઉપર વિશ્વાસ ઉત્પન્ન થાય છે, બીજી અવસ્થામાં સહનશીલતા પ્રગટ થાય છે અને ત્રીજી અર્થાત્ છેલ્લી અવસ્થામાં ઇશ્વરમાં પ્રેમ પ્રગટ થાય છે.

સાંભળો—અધાર્મિક મનુષ્ય આ સંસારમાં જે ગ્રહણ કરે છે તે લે મને માટેજ કરે છે. અને

જે દાન કરે છે તે નરકમાં જવા માટે કરે છે, કેમકે તેનાં બધાં કામ અનિયમિત થાય છે, જોવામાં ભલે ને તે સારાં પણ માલમ પડતાં હોય.

સજ્જનો ! આ ચાર વિષયોમાં સદા આત્મ-પરિક્ષા કરતા રહેજો—

૧—કોઈ શુભ કાર્ય કરતી વેળાએ એવો વિચાર કરો કે હું એ કામ નિષ્કપટ ભાવથી કરૂં છું કે નહીં ?

૨—હુ જે કાંઈ બોલી રહ્યો છું, તેમાં નિસ્વાર્થ ભાવ છે કે નહીં ?

૩—હું જે કાંઇ દાન કરૂં છું, તે બદલાની આશાથી કરૂં છું કે નહીં ?

૪—હું જે ધન સંગ્રહ કરૂં છું તે કૃપણુતાનો ત્યાગ કરીને કરૂં છું કે નહીં ?

તમે જે (ધન સદ્ગુણ આદિ) ને કેદ કરી રાખ્યા છે, તેમનો (દાન, ભજન આદિ કરવાને માટે) છુટકારો કરી દો. અને જે (લોભ, અજ્ઞાન, લોભ, મોહ આદિ શત્રુઓ) ને છૂટા મુકયા છે, તેમને કેદ કરી લો.

સંસાર માર્ગની સફર કરવા માટે તમે લોકો ચાર પ્રકારનાં વાહનો ઉપયોગમાં લાવતા રહેો—

૧—જે વેળાએ સંપત્તિનો પ્રદેશ આવી પહોંચે, તે વેળાએ કૃતજ્ઞતાના વાહન ઉપર સવારી કરીને મુસાફરી કરતા રહેો.

૨—જે સમયે પૂજન અર્ચનનો પ્રદેશ આવી પહોંચે તે સમયે પ્રભુ પ્રેમના વાહન ઉપર આરૂઢ થઇને યાત્રા કરો.

૩—જ્યારે વિપત્તિનો પ્રદેશ આવે ત્યારે સહન શીલતાના વાહનનો ઉપયોગ કરતા રહેો.

૪—પાપનો પ્રદેશ ઉલંઘન કરવાનો આવે ત્યારે પશ્ચાતાપની સવારી કામમાં લાવો.

× × ×

તે પછી એક મહાત્મા એમ કહેવા લાગ્યા કે-હે સજ્જન પુરૂષો ! મારૂં ચાલે તો હું મારી નિન્દા કરનારાઓને ખૂબ ઇનામ આપું. કેમકે—

जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव,
येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम् ।
यदा यदा मे विकृतं भजन्ते,
तदा तदा मां प्रतिबोधयन्ति ॥

અર્થાત્—નિન્દા કરનારાઓની નિન્દા તથા દ્વેષથી મારૂં ઘણુંજ હિત સધાઇ જાય છે. તે મારી નિન્દા નથી કરતા, પણ મને સાવધાન કરીને ભુલ સુધારવાનો અવસર આપે છે. તેમનું સદા કલ્યાણ થાઓ.

એક સમય હું ફરતો ફરતો વ્રજભૂમિમાં જઇ પહોંચ્યો. ત્યાં કુંજમાં બેઠેલી એક વૃદ્ધ સ્ત્રી પ્રભુની એ પ્રમાણે સ્તુતિ કરી રહી હતી કે—

"હે પરમાત્મન્ ! આપે આ લોકમાં મારે માટે જે પદાર્થો નિર્માણ કરી મૂક્યા છે, તે આપ વિરોધીઓ (નાસ્તિકો) ને આપી દો. અને જે પરલોકમાં મારે માટે નિર્માણ કરેલા છે, તે આપના મિત્રો (ભક્તો) ને આપી દો. મારે માટે તો આપ સ્વયં પુરતા છો, કોઇ બીજી વસ્તુની મને ઇચ્છાજ નથી. જો હું નરકના ભયથી આપની પૂજા કરતી હોઉં, તો આપ મને નરકના અગ્નિમાં નાખી દેજો. અને અગર જો સ્વર્ગની આશાએ આપની સેવા કરતી હોઉં, તો એવું સ્વર્ગ મારે માટે ત્યાજ્ય છે, હરામ છે. જો હું આપની પ્રાપ્તિને માટે ઉપાસના કરતી હોઉં તો આપના પરમ પ્રકાશમાન, પૂર્ણ, પવિત્ર, નિર્મળ, નિર્દોષ અને અપાર સુંદર સ્વરૂપનાં દર્શનથી મને વંચિત ન રાખશો ?

આટલું કહીને તે વૃદ્ધ સ્ત્રી શાન્ત થઈ ગઈ.

એટલે હું પણ તેની સામે જઇને આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યો—

માતાજી! ઇશ્વરના માર્ગમાં નથી આંખોની જરૂરીઆત કે નથી જીભ આદિની. આ તો એક માત્ર પવિત્ર હૃદયની જરૂર છે. તે પવિત્રતા પ્રાપ્તિનો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ, અને મનને તેનો સંગ્રહ કરવાનું કામ સોંપો. જુઓ—

સરાપા પાક હૈ ધોયે, જીન્હોંને હાથ દુનિયા સે
નહીં હાજત કિ વહ પાની, બહાયેં સરસે પાંવોં તક.

ધ્યાન આપો—મનુષ્ય રોગ થવાની સંભાવના માત્રથી ભોજન કરવું છોડી દે છે, પરંતુ મૃત્યુ અને યમના દંડની સજાનો નિશ્ચય હોવા છતાં પણ પાપ કરવાનું છોડતો નથી. એ એક ઘણીજ નવાઇની વાત છે.

આ સંસાર 'નવયુવતિ' જેવો છે, જે એની અભિલાષા રાખે છે, તેને સારા સારા વસ્ત્રાભૂષણ આદિ આપવામાં આખી જીંદગી ગુમાવવી પડે છે અને જે એનાથી વિરક્ત રહે છે તે એનું માથું મુંડાવીને એના મોઢા ઉપર મેંસ ચોપડી દે છે.

હવે હું બુદ્ધિમાન મનુષ્યોના ત્રણ ભેદ બતાવું છું—

૧—જેણે સંસારનો ત્યાગ કર્યો.

૨—જેણે મરતા પહેલા બધી તૈયારી કરી લીધી.

૩—જેણે પ્રથમથીજ ઇશ્વરની પ્રસન્નતા પ્રાપ્ત કરી લીધી.

સાધક પણ ત્રણ પ્રકારના કહેવામાં આવે છે—

૧—વૈરાગી

૨—અનુરાગી

૩—કર્મયોગી

વૈરાગીનું ધન સહનશીલતા છે. અનુરાગીની સંપત્તિ પ્રભુ પ્રત્યેની કૃતજ્ઞતા છે અને કર્મયોગીની દોલત સર્વના પ્રતિ બન્ધુભાવ છે.

અરે સાધક! તું નિર્જન સ્થાનમાં નિવાસ કરીને તારા પ્રેમની પરિક્ષા કરી લે. જોઇ લે કે તારો પ્રેમ નિર્જનતા ઉપર છે કે પ્રભુ ઉપર. અગર જો એકાન્ત સ્થાનમાં તારો પ્રેમ છે, તો ત્યાંથી ખસતાંજ તારો પ્રેમ નાશ પામશે. અને જો ઇશ્વર ઉપર પ્રેમ છે, તો પર્વત, જંગલ, વસ્તી, ધન અને ઘર આદિ સર્વ સ્થાનો સરખાંજ છે.

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां,
　　गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते,
　　निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

અર્થાત્ જેમનાં દીલ સંસારી વાસનામાં ફસાએલા છે તેમને વનમાં પણ વાસના છોડતી નથી. જેમને ઇન્દ્રિયો ઉપર પોતાનો કબ્જો છે તેમને માટે ઘર પણ વનના જેવુંજ છે. ભાવ એ છે કે સત્ કર્મ પરાયણ પુરૂષ સર્વત્ર પોતાની આત્મોન્નતિ કરી શકે છે.

ધર્મ સાધનનાં ત્રણ મૂળ છે—

૧—જ્ઞાન

૨—સંકલ્પ

૩—પ્રેમ

ધર્મનાં પણ ત્રણ અંગ છે—

૧—ભય

૨—આશા

૩—પ્રેમ

ભયમાં પાપ છોડવાની શક્તિ છે. આશામાં સાધન દ્વારા પરલોક અને ઉન્નતિનું બળ છે અને પ્રેમમાં દુઃખ સહન કરવાની શક્તિ છે. એવી રીતે ઉપર કહેલા ધર્મ સાધનના ત્રણ મુળોમાં જ્ઞાન સર્વ વસ્તુઓનાં યથાર્થ સ્વરૂપ દેખાડવાની યોગ્યતા રાખે છે. સંકલ્પમાં વિઘ્નો હોવા છતાં પણ અટલ

રહેવાની ભાવના છે. અને પ્રેમમાં વિધિ નિષેધ આદિ નિયમોની સીમા ઓળંગીને સર્વ કાંઈ કરવાનું સામર્થ્ય છે.

કેટલું કહીએ, ઉપર્યુક્ત અનેક ઉપદેશ, દાખલા, દલીલો અને ઘટનાઓ આદિના સંવાદને અંતે અનિશ્ચિત કાળને માટે સમાગમ કરવાનો નિશ્ચય કરીને સભા ઉઠી ગઈ.

હું તો આનંદ સાગરમાં ડુબીજ ગયો. અને એમ લાગ્યું કે અસ્થિર વિચારોને સ્થિર કરવાનું સાધન અને સ્થિર વિચારોને દ્રઢ કરવામાં હેતુભૂત કારણ સમાગમ છે. અને તેથીજ એનું નામ છે—"સંત સમાગમ."

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું?

(સં૦—વકીલ બાલાભાઈ નારણજી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૬૨૫ થી આગળ]

અને ઉપરની સર્વ વાત ગીતા પણ તદ્દન સ્પષ્ટપણે કહે છે.

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥
—गी० ५।१३

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
—गी० ३।३०

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥
—गी० १८।५७

नैव किंचित्‌ करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
—गी० ५।८

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥
—गी० ३।२८

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥
—गी० १४।२३

આ તમામ શ્લોકોનો ભાવાર્થ તદ્દન સરખો અને એક રૂપજ છે. અને તે તમામ લક્ષમાં લેતાં કર્મ યોગને રૂપે કર્મયોગ કાયમને માટે સ્વગૃહે રહેવાનો અને સંન્યાસ રૂપે સંન્યાસ પણ હમેશાં સ્વગૃહે સ્હેજે રહેવાનો અને એ હકીકત તત્વવેત્તા હોય તેને માટે છે.

પરંતુ દરેક આત્મામાં અંતરગત સંન્યાસ, અને દેહાદીકરૂપ સંઘાતમાં બહીરંગતઃ કર્મયોગ એવો વીચીત્ર દેખાવ, જે ધ્યાનપૂર્વક જોશે તેને જરૂર દેખાશે. આવી સ્થીતિમાં જ્ઞાનોત્તર કર્મ સંન્યાસ કરતાં કર્મયોગ અધીક પ્રશસ્ત છે એમ કહેનારે શરમાવું જોઈએ. કારણ કે તાત્વીક દ્દષ્ટીએ કર્મ સંન્યાસ અક્ષય્ય સ્વરૂપ સ્વભાવ હોવાથી મોક્ષરૂપી ઘરમાં તેજ રહેવાનો ખરેખર હક્કદાર છે. માટે તેવા હક્કદારને કોણ ક્યાં હાંકી કહાડી શકશે? અને કર્મયોગ તો દેહાદીક ગુણ સંઘાતમાંજ ઘર કરીને રહેનાર હોઇ તેમાંથી કોઈ વખતે છુટો પડી શકતો નથી.

ખેર! અમારા કહેવાનો ભાવાર્થ તદ્દન સ્પષ્ટ છે ને તે આપ સર્વે સમજી શક્યા હશોજ કે જ્ઞાનો-

ત્યાર તત્ત્વવેત્તા(એ)કર્મસન્યાસ કરતા કરતા કર્મયોગ કરવો સારો છે એમ ખોટી લવલવ કરવાની હવે જરૂર નથી.

અને ઊપર પ્રમાણે હોવાથી કર્મસન્યાસ કરતાં કર્મયોગ અધીક પ્રશસ્ત છે એ (અ૦ ૫ નો શ્લો૦ ૨) માહેનું વચન કેવળ અજ્ઞાનીઓને માટે ચિત્ત શુદ્ધી વીગેરે માટે કર્મયોગ કરવો ઇષ્ટ છે. છતાં ચીત શુદ્ધિ માટે કર્મયોગ ન કરતાં તેને તજીને બેસી રહેવું તેના કરતા કર્મયોગ કરવો એ અધિક પ્રશસ્ત છે એવોજ ભગવાનનો અભિપ્રાય છે અને એમજ સમજવું એજ સર્વથા સયુક્તીક ઠરે છે.

ખરી રીતે તત્ત્વવેત્તા કોને કહેવો ?

આ મુદ્દાનો વીચાર પણ બરોબર કરવો જોઇએ તે માટે બીજા અધ્યાયના ૨૧ મા શ્લોકના ભાષ્યમા શ્રીમદ્ આધ શંકરાચાર્યજી એમ કહે છે કે "તત્વવેત્તાને સર્વ કર્મનો નીષેધ—અર્થાત્ સર્વ કર્મ ત્યાગ એમ જે કહેવાયેલું છે તેનુ ખરૂ રહસ્ય પ્રથમ સમજવાની જરૂર છે અને તે રહસ્ય એવુ છે કે વિદ્વાન અથવા બ્રહ્માત્મૈક્યવેત્તા એટલે આત્મા, પરતુ દેહ સઘાતને કંઇ વિદ્વાન એવી સજ્ઞા અપાતી નથી કારણ વિદ્વત્તા એ સ્થીતિ દેહાદી સઘાતની નથી પરતુ દેહાદી સઘાતથી જુદો એવો જે અવિક્રિય આત્મા, તેને વીદ્વાન કહી શકાય, અને તે પણ આત્મ અનાત્મ વિવેક જ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થનારા બ્રહ્મ સ્ફૂરણ આકાર બુદ્ધી મનની વૃત્તિરૂપ બ્રહ્મવિદ્યાની દ્રષ્ટિએજ કહેવાનું

સારાશ એજ કે પરમાર્થત. અવિક્રિય એવો જે આત્મા તેનેજ વિદ્વાન કહી શકાય. અને એવા વિદ્વાનને વિષે ત્રણે કાલમાં કર્મનો સભવજ નથી અને તેથીજ આ સૂક્ષ્મ દ્રષ્ટિએ વિદ્વાનને સર્વ કર્મ સન્યાસ સ્વાભાવીક અને સહેજ જ છે. અર્થાત શાસ્ત્રે વિધાનપૂર્વક નિર્દીષ્ટ કરેલા સર્વ કર્મો કરવાને અજ્ઞાની મનુષ્યજ અધિકારી ઠરે છે. અને તે સબધી વીધી નીષેધ વાક્યો તત્ત્વવેત્તાને લાગુ પડતાં નથી.

આ નીયમની દ્રષ્ટિએ જોઇએ તો—

कुर्यां द्विद्वास्तथा ।

—गी० ३।२५

न बुद्धिभेद जनयेत् जोषयेन् सर्वकर्माणि ।
... ... विद्वान् युक्त समाचरन् ॥

—गी० ३।२६

तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥

—गी० ३।२९

વીગેરે વાક્યો તત્વવેત્તાને કોઇ પણ પ્રકારે લાગુ પાડવાના નથી આ મહિનું ખરૂ રહસ્ય એ છે કે—

तदा गन्तासि निर्वेद श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।

— गी० २।५२

એ વાક્યમા જણાવેલ ભગવાનના અભિપ્રાયથી જોતા તત્ત્વવેત્તાને તો કઇ પણ સાભળવાપણું રહેતુંજ નથી, ત્યારે પછી તેને વિધીનીષેધ પણ સાભળવાના હોયજ નહી. અર્થાત્ વીધીનીષેધ વાક્યો તત્વવેત્તા માટે નથી પણ અજ્ઞાની લોકો માટે તેમની ચીતશુદ્ધી કરવા માટે છે છતા શાસ્ત્રમાં જણાવેલ વીધીનીષેધના વાક્યો નકામા તો નથીજ ત્યારે તે વાક્યોનો ઉદ્દેશ શો છે, તેને અનુસરીને તે વપરાયલા છે, તેને યોગ્ય અર્થમા યોજવાં એ શાસ્ત્ર જાણનારનું મુખ્ય કર્તવ્ય છે મતલબ એજ કે શાસ્ત્રમાં વર્ણવેલાં વીધીનીષેધ વાક્યો તેમજ ગીતામાં લખેલા વિધી નિષેધ વાક્યો અજ્ઞાની મનુષ્યોને કર્મ કરવા માટે ઉત્તેજન આપવા તથા તે બાબતમાં તેને રૂચી પેદા કરવા અર્થેજ તેનો ઉપયોગ છે અને તે હેતુથીજ તેવા વાક્યો પ્રોઢવાદનો

આશ્રય કરીનેજ લખાયલાં છે માટે ઉપરનો સર્વ પ્રકાર બરાબર ધ્યાનમાં રહે તે માટે અમો એક દ્રષ્ટાંત આપીએ છીએ.

ડાહ્યાની હઠ અને તેને તેના બાપનો ઉપદેશ—

ડાહ્યાને ઉધરસ થઈ હતી, તેથી તેનાં મા બાપે ડાહ્યાને બોલાવી ફોસલાવી પટાવીને કહ્યું કે મોળી દાળ સાથેજ ભાત ખાવો, છાસ ખાવી નહી, તેલ મરચું ખાવું નહી, અને તેમ કહીને તેનાં મા બાપ તેને છાસ ખાવા આપતાં નથી અને ડાહ્યો તો છાસ ખાવા માટે હઠ કરી અડીને બેઠો છે. તેને ઘણું ઘણું સમજાવતાં છતાં પણ મોળી દાળ સાથે ભાત ખાતો નથી. ત્યારે મા બાપ તેને કહે છે કે જો અમે પણ છાસ ખાતાં નથી પણ મોળી દાળ સાથે ભાતજ ખાઇએ છીએ.

વળી બીજા માણસોને પણ ડાહ્યાનાં મા બાપ ઈશારો કરીને કહેવા લાગ્યાં કે ' હં, ખબરદાર, કોઈ છાસ ખાશો નહી. છાસ ખાશો તો ઉધરસ થાય છે. જુઓ આપણા પાડોશીનો નોકર રામો કેવો ડાહ્યો છે કે તેને ઉધરસ થાય માટે છાસ ખાતો નથી. રામા, તું છાસ ખાતો નથીને ? બાપુ મને ઠાંસો થાય છે. તેથી મેં છાસ ખાવાની મુકી દીધી છે. શાબાશ, પણ હરીઓ, જુવો બેટો કેવો મૂરખ છે કે ઉધરસ આવે છે છતાં છાસ મુક્તો નથી. અને તે કારણે હવે કેવો ખાટલામાં રીબાતો પડયો છે તે ! ડાહ્યા, આ આપણી ભેંસ પણ કેવી ડાહી છે તે જો તો ખરો, ભેંસે એમ જાણ્યું કે છાસ ખાવાથી ઉધરસ થાય છે તેથી તેણે કાલે દુધજ આપ્યું નહીં. એટલે ઘરમાં છાસજ નથી. હવે શું કરશું ? મોળી દાળ સાથેજ હવે ભાત ખાવો પડશે.' આ પ્રમાણે બાપે કથા કહી ત્યારે ભાઈ સાહેબ ડાહ્યાભાઈની હઠ ઉતરી ગઈ. અને મોળી દાળ સાથે ભાત ખાવા લાગ્યો.

ઉપર દર્શાવેલા દ્રષ્ટાંતમાંનો મુદ્દો એવો છે કે ડાહ્યાને ઉધરસ થઇ છે તેથી તેણે છાસ ભાત ખાવાં ન જોઈએ પરંતુ મોળી દાળ સાથે ફકત ભાતજ ખાવો જોઇએ. તેવું ડાહ્યાના મનમાં ઠસાવવા ખાતર તેના બાપે સ્વરૂપાન્તરથી ડાહ્યાને એવું કહ્યું કે અમો કોઈ છાસ ખાતાં નથી. બીજા કોઇએ પણ છાસ ખાવી નહીં. ભેંસે દુધ આપ્યું નથી. આ તમામ વાતો સ્પષ્ટ રીતે અવાંતર છે એટલે સાચી કહેલી નથી. પરંતુ તેવું નીર્દોષ અસત્ય ડાહ્યાને લાભ કરવાના હેતુથી બોલવામાં આવ્યું છે. તે દ્રષ્ટાંતે જોતાં वर्त एव च कर्मणि (અ० ૩ શ્લો० ૨૨) એ શ્લોકમાં ભગવાન પણ એવું જ નીર્દોષ અવાંતર બોલ્યા છે કે "હું પણ કર્મમાંજ છું." આ ભગવાનનું વાકય પણ પેલા ડાહ્યાના બાપના જેવું જ છે કે અમો પણ મોળી દાળ અને ભાત ખાઇએ છીએ છાસ ભાત ખાતા નથી.

સારાંશ એજ કે કર્મ સંબંધી વીધિ અને નીષેધનાં જે જે વાકયો ગીતાની અંદર આપેલાં છે તે કેવળ અજ્ઞાનીઓને માટેજ છે અને તત્ત્વવેત્તાને તે ખાસ કરીને લાગુ પડતાં નથી, કારણ કે તત્વ જ્ઞાનોત્તર કાળમાં તત્વવેત્તા એ ઉપદેશનો અધીકારીજ નથી તેથી તેવા તત્વવેત્તાને કોઈના ઉપદેશની જરૂરજ નથી એટલુંજ નહીં પણ તેને ઉપદેશ સાંભળવાપણું પણ છેજ નહીં. તેના માટે આપણે ગીતામાંથીજ આધારો જોઇએ.

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥
—ગી० ૭।૨

यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् —ગી० ૯।૧

यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥
—ગી० ૧૪।૧

एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥

—गी० १५।२०

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

—गी० ५।१७

ઉપર જણાવેલા તમામ શ્લોકોમાંનો ભાવાર્થ એજ કે યથાર્થ તત્વજ્ઞાન થયા પછી જે કોઈ તત્વવેત્તા હોય છે તેને પછીથી બીજુ કંઈ પણ જાણી લેવા જેવુ હોતુંજ નથી

જે જાણવાથી તે તત્વવેત્તા સંસારમાંથી મુક્ત થાય છે અને જે જાણવાથી તે કૃતકૃત્ય થાય છે તેવા તત્વવેત્તા જન્મ મરણના ફેરામાંથી છુટી જાય છે અને તેવા તત્વવેત્તાનેજ આત્યંતિક મોક્ષ સીદ્ધી મળે છે એવા તત્વવેત્તાને, એવા સીદ્ધ પુરૂષને પોતાની આગળ ઉભો રાખી શાસ્ત્ર તેને કંઇ કહે એ માનવા જેવુંજ નથી શાસ્ત્રની તેવા તત્વવેત્તાને કંઈ પણ ઉપદેશ કરવાની કે કહેવાની હીંમતજ કેમ ચાલે—મતલબ હીંમત ચાલેજ નહીં અને ગીતામાં ગીતાકારે તેવી હીંમત કરીજ નથી છતાં કોઇ એવી ધૃષ્ટતા કરીને કહે કે શાસ્ત્ર તો તત્વવેત્તાને પણ ઉપદેશ આપી શકે છે તો પછી ખેદ સાથે કહેવુ પડે છે કે જો તેવું શાસ્ત્ર હોય તો તે શાસ્ત્રનેજ વ્યર્થત્વ આવશે કારણ કે જે તત્વવેત્તા હોય છે તેના મનમાં કોઈ બાબતની શંકા હોતીજ નથી અને તેને કંઈ પૂછવાપણું રહેતું નથી અને હોતું નથી તેથી તત્વવેત્તા કંઈ પણ પૂછવાને કોઇ આગળ આવતો નથી પછી શાસ્ત્ર તેને શા માટે ઉપદેશ કરે છતાં કહેવાતા તત્વવેત્તાને ઉપદેશની જરૂર હોય, કોઈની પાસે પોતાની શંકા લાવી તેવી શંકાનું સમાધાન કરવાની માગણી કરતો હોય, તો પછી તેવો કહેવાતો તત્વવેત્તા એ ખરેખર તત્વવેત્તા જ નથી

તત્વવેત્તા તો કોઇનો પણ ઉપદેશ સાંભળવા ઉભો રહેતો નથી. એટલુંજ નહીં પણ ઉપદેશ સાંભળવા માટે કાન સરખો ધરતો નથી અને વળી તેવા તત્વવેત્તાને કહેવાને કે ઉપદેશ કરવાને કોણ આગળ પગલું ભરી શકે તેમ છે કોણ તેવી ધૃષ્ટતા કરવા પ્રવૃત્ત થશે

મતલબ કે શાસ્ત્રના—ગીતાના તમામ ઉપદેશો અજ્ઞાનીઓ માટેજ છે જીજ્ઞાસુઓ માટેજ છે. એટલે જ્ઞાન સંપૂર્ણ પ્રાપ્ત થઈ ગયા પછીથી ને જ્ઞાનોત્તર દશામાં તત્વવેત્તાને કંઈ પણ ઉપદેશની જરૂરજ નથી કારણ તેણે પોતે જ્ઞાનોત્તર કાળમાં કેવી રીતે રહેવુ—પોતે શું કરવુ, એ વાત તો તેણે અગાઉથીજ જ્ઞાનોત્તર દશા પહેલાંજ જાણેલી હોય છે અને શાસ્ત્રે પણ તેવી વાતો, ઉપદેશ-તેવો તત્વવેત્તા—જ્ઞાનોત્તર દશાને પ્રાપ્ત થયો તે અગાઉજ શાસ્ત્રે તેને કહી આપેલ છે તેથી જ્ઞાનોત્તર દશા પ્રાપ્ત થતાંજ તેને તત્વવેત્તા પદ પ્રાપ્ત થાય છે એટલે પછી કંઇ પણ ઉપદેશની તેને જરૂર રહેતી નથી અને પછી શાસ્ત્રો પણ તેને ઉદ્દેશીને કંઈ કહેતાંજ નથી એટલે તમામ શાસ્ત્રોનો ઉપદેશ—જીજ્ઞાસુ અને અજ્ઞાનીઓને માટેજ છે તે વાત સ્પષ્ટ રીતે સાબીત થાય છે

અને અર્જુન પોતે પણ તત્વવેત્તાની સ્થીતિએ પહોચેલો ન હતો પણ અજ્ઞાની અને જીજ્ઞાસુની દશામાં હોવાથી ગીતાના બીજા અધ્યાયમાં તેણે ભગવાનને સ્થીતપ્રજ્ઞના લક્ષણો પૂછયાં છે તેમજ ગુણાતીત અને યોગીના અને ભક્તના પણ લક્ષણો પૂછયાં છે અને ભગવાને તેના સરળ એવા જવાબો પણ આપ્યા છે અર્થાત અર્જુન પોતે સ્થીતપ્રજ્ઞ અને ભક્ત તેમજ ગુણાતીત અને યોગી ન હોવાથી અને સ્થીતપ્રજ્ઞ તથા ભક્તની દશાએ

પહોંચવા જીજ્ઞાસા થવાથી સ્થીતપ્રજ્ઞ—ગુણાતીત—યોગી અને ભક્તનાં લક્ષણો તેમણે ભગવાનને એવા આશયથી પૂછયાં છે કે તે જાણીને પોતે પણ સ્થીતપ્રજ્ઞ-ગુણાતીત—યોગી—અને ભક્ત થવાનો પ્રયત્ન કરી શકે. અને ભગવાને પણ અર્જુનને અજ્ઞાની અને જીજ્ઞાસુ જાણી ઉપર જણાવેલ સ્થીતપ્રજ્ઞ—ગુણાતીત—યોગી અને ભક્તનાં લક્ષણો અર્જુનને અભ્યાસ કરવામાં મદદરૂપ થાય તે અર્થે કહ્યાં છે. કારણ અર્જુન તે ચારે બાબતોનાં લક્ષણ જાણતો નથી અર્થાત્ તે ચારે બાબતોમાં અર્જુન અજ્ઞાની છે અને તે જાણવાને તેને જીજ્ઞાસા થઈ છે.

મતલબ સ્થીતપ્રજ્ઞ વીગેરેનાં લક્ષણો અગર ગુણ અર્જુનમાં ન હોવાથી તેવા ગુણો અર્જુને સંપાદીત કરવા જોઇએ. મેળવવા જોઇએ. એટલા માટેજ ભગવાને તેને તે તે બાબતોનો ઉપદેશ કર્યો છે અને આ પ્રમાણેની વીચાર સરણી એજ ઉત્તમ કહેવાય.

આ ઉપરથી જણાશે કે તત્ત્વજ્ઞાનોત્તર કાલે તત્ત્વવેત્તાને હાથે લોકસંગ્રહનું જનકલ્યાણનું કાર્ય થતું રહે, એ વાત તત્ત્વવેત્તાને સમજાવવાની કંઇજ જરૂર નથી કારણ તે વાત તો તેવા તત્વવેત્તાએ જીજ્ઞાસુ અવસ્થામાં જ અગાઉથીજ જાણી લીધી હોય છે. અને જીજ્ઞાસુ દશામાંજ વિધી—નિષેધ વાકયોથીજ ઉપદેશ કરાય છે—પણ તેવાં વાકયો જે જે સ્થળે વપરાયલાં હોય તે તે સ્થળે તે વાકયો મુખ્યાર્થત્વે હોતાં નથી પણ ગોણાર્થત્વે જ હોય છે તેથી તે કેવળ અનુવાદાત્મકજ ગણાય.

તેવાં વાકયો કેટલીક વખત સુંદર પ્રરોચક, અને ઉત્તેજક એટલે અર્થવાદ રૂપ હોય છે.

આ ઉપરથી હવે આપણે એમજ કહેવું જોઇએ કે તત્ત્વવેત્તા જે જે કર્મો લોક કલ્યાણ માટે કરે છે તે તેનો સ્વભાવ થઈ જાય છે. અને કોઈ પણ સ્વભાવ અગર ટેવ પડી જવી તે વાત દઢ અભ્યાસ વગર થતી નથી.

અને તત્વવેત્તાનો તેવો અભ્યાસ એ જીજ્ઞાસુ અવસ્થામાંજ આરંભાઈ ગયો હોય છે અને પછી જ્ઞાનોત્તર દશામાં તો તે અભ્યાસ એક સ્વભાવ અગર ટેવનું રૂપ ધારણ કરે છે અને આ પ્રમાણે સ્વભાવ બંધાઇ ગયો તે પછી તેવા તત્ત્વવેત્તાને વીધીનીષેધવાળા ઉપદેશની જરૂર રહેતીજ નથી એ તો સ્પષ્ટ સમજાય તેવી અને દીવા જેવી વાત હોય છે.

તાત્પર્ય એજ કે સૂર્યનો સ્વભાવ હમેશાં પ્રકાશ આપવાનો થએલો જ છે છતાં તેને કોઇ શાસ્ત્ર આજ્ઞા કરે કે "અરે સૂર્ય, તું જગતને પ્રકાશ આપતો રહેજે" તો તેવી આજ્ઞા—વીધીની સૂર્યને લેશમાત્ર પણ જરૂર નથી. ઉલટ તેવી આજ્ઞા કરનારજ મૂર્ખ ઠરે. તેજ સ્થતિમાં તત્વવેત્તા માટે વીધી નીષેધનાં વાકયો પણ નિરૂપયોગીજ ગણાય—

એથી જેમ સૂર્ય કોઇની પણ આજ્ઞા સીવાયજ પ્રકાશ આપતો જ રહે છે તેજ પ્રમાણે તત્વવેત્તાને પણ "ઓ તત્વવેત્તા તું લોક સંગ્રહ લોક કલ્યાણ કરતો રહે જે" એવી આજ્ઞા શાસ્ત્રે કરવાની રહેતીજ નથી અને જરૂરની પણ નથી કારણ જે તત્વવેત્તા છે તેનાથી તો પરોપકાર, લોક કલ્યાણ લોક સંગ્રહ, થતોજ રહેવાનો કારણ કેતે તત્વવેત્તા છે અજ્ઞાની નથી.

(ક્રમશઃ)



આકાશથી સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ

(લે૦—સ્વામી શ્રી આનંદાનંદ સરસ્વતી)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૮૫૩ થી આગળ]

હવે એ સર્વ અક્ષરો પત્રજી મહારાજની સૃષ્ટિમા રહીને નવા નવા ખેલ ખેલવા લાગ્યા ત્રણ અથવા ચાર અક્ષરો મળીને ઘરમાં રહેવા લાગ્યા અને શબ્દ ગૃહસ્થી બન્યા સાત આઠ શબ્દો મળીને સગા સબંધી વાક્યો બન્યા અને મહોલ્લા માં રહેવા લાગ્યા દસ બાર વાક્યો મળીને જ્ઞાતી રૂપ પેરેગ્રાફ થયા અને ગામમા રહેવા લાગ્યા દસ બાર પેરેગ્રાફ મળીને ચૅપ્ટર થઈ ગયા અને પ્રજા બની શહેરોમા રહેવા લાગ્યા પદર વીસ ચૅપ્ટરો મળીને એમ્પેરર ગ્રંથ સાહેબ બની ગયા અને અનેક પ્રકારના ખેલ ખેલવા લાગ્યા કોઈ વેદ, વેદાત, પુરાણ, શ્રુતિ, સ્મૃતિ, ડિક્ષનરી, મેગઝીન, નૉવેલ, ન્યુસપેપર, પોસ્ટલ ગાઈડ, રેલ્વે ગાઈડ તિર્થ દર્શન ગાઈડ ઇત્યાદિ પુસ્તકોમા બિરાજમાન થઈને મનુષ્યોની સાથે વાતચિતનો આનંદ ઉઠાવવા લાગ્યા અને મનુષ્યો પણ એ શબ્દોની સાથે રાત દિવસ વાતોના ગપાટા મારવામા સમય વિતાવવા લાગ્યા પુસ્તકોની ભક્તિ કરવા લાગ્યા, નોકરી કરવા લાગ્યા, સેવા કરવા લાગ્યા, પુજા કરવા લાગ્યા. મોટા મોટા ઑફિસરો, વકીલો, બૅરિસ્ટરો, કલાર્કો, દુકાનદારો; ઑફિસોમાં, દુકાનો માં, મકાનોમા પત્રજી મહારાજને લઈને એમનુંજ ધ્યાન કરવા લાગ્યા નાના નાના છોકરાઓ પણ સ્કુલોમા, હાઈ સ્કુલોમા અને કૉલેજોમા પત્રજી મહારાજની ભક્તિ કરવા લાગ્યા. અને પત્રજી મહારાજ પણ સર્વને નવધા ભક્તિ શિખવવા લાગ્યા અનેક પ્રકારના જ્ઞાન આપવા લાગ્યા અનેક દેશ પરદેશની ઘેર બેઠા ખબરો આપવા લાગ્યા એ પત્રજી મહારાજની ભક્તિ કરવાથી પત્રજી મહારાજે પ્રસન્ન થઈને ભક્તજનોને ચિત્ર ભગવાનના દર્શન કરાવવા માંડ્યા કોઈએ રામનાં, કોઈએ કૃષ્ણના, શંકરનાં, ગુરૂના અને સગા સબંધીઓના, મરેલાના તથા જીવતાનાં દર્શન કર્યાં આવી રીતે કલ્પિત અક્ષરોની મુર્તિયે સાચા નિરાકાર જ્ઞાનનું પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યું જેથી સર્વ લોક પુસ્તકોના ભક્ત બની ગયા જેણે પુસ્તકની ભક્તિ ન કરી હોય તે મુર્ખ ગણાવા લાગ્યા એ પત્રજી મહારાજની કૃપાથી જે ઈશ્વર (જ્ઞાન) દૂર હતું જેને ત્રીજો પુરૂષ સર્વનામ "તે" ઈશ્વર કરીને સંબોધતા હતા તેજ ભગવાન સન્મુખ આવવાથી બીજો પુરૂષ સર્વનામ "તું" ઈશ્વર કરીને સંબોધવા લાગ્યા. અને શબ્દો પણ "તત્વમસિ" તે તું છે કરીને ઉપદેશ કરવા લાગ્યા એ દરેક શબ્દોને રહેવાનું ઠેકાણું ડિક્ષનરી છે ડિક્ષનરીમા શબ્દોનો મેળો છે એ દરેક શબ્દોમાં ધ્યાનપૂર્વક જોશો તો તેમના ઉપર Emperor અની કેટલી સત્તા છે, કેટલું જોર છે અ વિનાનો કોઈ પણ શબ્દ ખાલી નથી દરેકમા વ્યાપક અ છે આ સૃષ્ટિમાં દ્રશ્ય અને અદ્રશ્ય, ચર અને અચર જે કંઈ દેખાય છે તે સર્વ શબ્દોમાજ છે અને તે સર્વનો આત્મા અ છે

હવે આપ જરા સ્ટેશન પર આવો અને એન્જીન તરફ નિગાહ કરીને જુવો તેના ઉપર મોટા અક્ષરોથી

E.I.Ry. લખ્યું છે અને તમારી ટીકિટ પર બારિક અક્ષરથી E.I.Ry. લખ્યું છે. મોટા અક્ષરથી લખ્યું છે તેથી તેને કંઈ જોરથી બોલવાનું નથી અને નાના અક્ષરથી લખેલું હોવા છતાં ધીમેથી બોલવાનું નથી. બંનેમાં સમાન રૂપથી अ વ્યાપક છે. નાનામાં નાનો મચ્છર પણ હાથીની જાન લઈ લે છે અર્થાત મચ્છર પણ હાથી જેટલી તાકત રાખે છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે જે જીવને Emperor અની સત્તાનું વિશેષ બળ મલે છે તેજ તાકતવાન થઈ જાય છે. જેને જ્ઞાન થાય છે તે જાણે છે કે હું રાજા પણ નથી અને રંક પણ નથી હું તો માત્ર આ સંસારરૂપી નાટકશાળાનો એકટર છું. રાજા અમે રંક એ તો માત્ર શબ્દોના સ્વાંગ છે, વેષ-ધારીયોના વેષ છે.

—આત્માનું ગુપ્ત જ્ઞાન—

—ગજલ—

વેશ ધારી વેશ તૂ ધરે નવા નવા
ધરે નવા નવા દિવ્યતા પ્રસારવા—વેશ.
નામ રૂપથી અતીત છે તૂ સર્વદા
તથાપિ શબ્દ સ્વાંગ તૂ ધરે નવા નવા—વેશ.
નિત્ય મુક્ત તૂ ન બદ્ધ કો થશે કદા
અદૃશ્ય ભવ્ય રંગ તૂં ભરે નવા નવા—વેશ.
કાલનો એ કાલ મહાકાલ તૂ ખરો
મૃત્યુનેય દેતો ત્રાસ તૂ નવા નવા—વેશ.
સર્વનું પ્રતિબિંબ તુંજ જીવનનો ઝરો
જ્યોતિ પુંજ તૂ પ્રકાશ દે નવા નવા—વેશ.
સર્વવ્યાપી તૂ દિગંત માંહી ગર્જતો
ગગન ભેદી નાદ તૂં કરે નવા નવા—વેશ.
આનંદાનંદ વારી જાઉં તૂ પર પ્રાણ હું
દિવ્ય જ્ઞાનના પ્રસાદ દે નવા નવા—વેશ.

આવી રીતે વ્યંજન રૂપ રામ, કૃષ્ણ, શંકર [illegible]

ઇત્યાદિ શબ્દોની મૂર્તિમાં પુજા કરીને, જાપ કરીને અને ધ્યાન કરીને તેમાં બેઠેલા વ્યાપકસ્વર ભગવાન-ને જોયા. તેમની સાથે આપે પત્રજી મહારાજમાં વાતો પણ કરી. જ્યાં સુધી તેને નહિ જાણતા હતા ત્યાં સુધી તેને દૂર સમજીને ત્રીજા પુરૂષ સર્વનામ "તે ઇશ્વર" કરીને સંબોધન કરતા હતા અને ઓળખ્યા પછી તે સન્મુખ દેખાવાથી બીજો પુરૂષ સર્વનામ "તૂ ઇશ્વર" કરીને વાત ચીત કરી હવે એ સ્વરોમાં વ્યંજનરૂપ આપણે વિલય એટલે તદ્રુપ બની જવું છે માટે આવો આપણે યોગાભ્યાસ કરીયે. વ્યંજન અને સ્વરની એકતાનું નામ યોગ કહેવાય છે.

હવે આપ અનેક પુસ્તકો રચી શકો છો, ગાયન બનાવી શકો છો અને ગાઈ પણ શકો છો. આવો જરા હારમોન્યમની પાસે આવો. અને આપના ૩૯૬ અક્ષરોથી બનેલા અથવા બનાવેલાં ગાયન ગાઓ. જુઓ હારમોન્યમમાં સા રે ગ મ પ ધ ની એ સાત તીવ્ર સ્વર છે અને રે ગ મ ધ ની એ પાંચ કોમળ સ્વર છે અને સર્વ મળીને બાર સ્વર છે. એ સ્વરોને જ્યાંથી વગાડવાનું ત્યાંથીજ સા ગણાય છે અને સા છે એજ अ છે. બલ્કે હાર-મોન્યમમાં જેટલા સ્વર છે તે બધાજ अ છે. તેથી આલાપમાં સારેગમપધની સા, સાનીધપમગરે સા એમ બોલવાને બદલે આપ—अ अ अ अ अ अ अ अ, अ अ अ अ अ अ अ अ કરીને આરોહી અને અવ-રોહી ઉલટા સુલટી જાપ કરો. અને કોઇ પણ ગાયન ગાઓ જેમાં કલ્પ વ્યંજનોનાં ગાયનો માત્ર એક अ માં વિલય થઈ જશે, અને આપને માલુમ પડશે કે હારમોન્યમના હૃદય સ્વર અને હમારા કંઠ વ્યંજન એક થઈ ગયા છે. એજ નાદ બ્રહ્મ કહે-

વાય છે [illegible]

થવાવાળા યોગીના આનંદનું વર્ણન શેષનાગ પણ પોતાની સહસ્ર જીહ્વાથી કરવાને શક્તિવાન નથી તો બીજાની વાતજ શું કરવી. બસ अहमक्षरोऽस्मि જે અક્ષર છે તેજ હું છું. હું નાદ બ્રહ્મ છું આ સર્વ વ્યંજન રૂપ સૃષ્ટિનો કર્તા હરતા હું છું આ સર્વ સૃષ્ટિ મદ્રૂપજ રૂપ છે અને હું અ છું.

આવી રીતે રામ, કૃષ્ણ, શંકર ઇત્યાદિનું પુજન, જાપ અને ધ્યાન કરવાથી હમને સાચા ઈશ્વરનું દર્શન થઇ ગયું અને તે ઇશ્વરને હમારા હૃદયમાં બેસાડીને તદ્રુપ થઇને જીવન્મુક્ત બનીને આનંદ કરી રહ્યા છીએ સાકાર કહો અથવા નિરાકાર કહો હવે તો બંને આનંદ આનંદ છીએ

જે મૂર્તિને માનતા નથી તેને માટે મારા દર્શન દુર્લભ છે કારણ કે નિરાકાર દેખાતા નથી અને સાકાર સન્મુખ આવે તો તેને માનતા નથી નિરાકાર કોરા પત્રજી મહારાજ છે અને સાકાર લખેલા પત્રજી મહારાજ છે. ભણેલાઓ માટે સાકાર અક્ષર ઈશ્વર છે અને અનપઢને માટે તેજ પથ્થર છે અનપઢની પાસે સાકાર અક્ષરોનું આવવું વ્યર્થ છે તેમ મૂર્તિને નહિ માનવાવાળા પાસે પણ મારૂં આવવુ વ્યર્થ છે. હું તેમનાથી સદા દૂર રહું છું તેથી તેઓ મને ત્રીજા પુરૂષ સર્વનામે "તે ઇશ્વર" કરીને સંબોધન કરે છે જેને રીગરસ ઇમ્પ્રીઝનમેન્ટ થાય છે તેને પથ્થર તોડવાની સજા મળે છે તેથી જેલમાંથી છુટ્યા બાદ પણ પથ્થર તોડવાનો અભ્યાસ કાયમ રહી જાય છે અને તેથી તેઓ મૂર્તિને પથ્થર સમજીને તોડવા તૈયાર રહે એમાં કંઈ આશ્ચર્ય નથી

પરંતુ મારી અક્ષરરૂપ મૂર્તિનું પૂજન કરીને, જાપ કરીને અથવા ધ્યાન કરીને તેને પોતાના હૃદયમાં ઉતારી છે, તેની અને મારી એકતા હોવાથી सोऽहम् એટલે જે તે છે તેજ હું છું. अहमक्षरोऽस्मि કહે છે યાને પ્રથમ પુરૂષ સર્વનામ હું કરીને કહે છે અને જે મારી મૂર્તિને પોતાનીજ મૂર્તિ સમજે છે તે કદી મારી મૂર્તિને ખંડન કરી શકતો નથી, પણ તેની પ્રતિષ્ઠા કરવામા, તેનું સ્થાપન કરવામા અને હરેક પ્રકારે તેનું માન વધારવામા તત્પર રહેશે પોતાના હૃદયમા અને બેસાડીને કહે છે કે સર્વ વ્યંજનોની સૃષ્ટિમા વ્યાપક થઇને રહેલા મને ઓળખો મારી અને પોતાની એકતાનો આશ્રય કરીને જે મને ભજે છે તે ભલે પોતાનાજ હિતથી કોઇ કાર્ય કરે તથાપિ તેના કાર્ય મારાજ થઈ જાય છે

રાગ કલ્યાણ

સર્વમા રહેલા હુંને ઓળખી લે પ્યારા,
એકતાનો આશ્રય કરીને હુંને ભજનારા
સ્વચ્છન્દાએ વર્તે તોયે કર્મો થાય મ્હારા—સર્વમા
સુખ દુખ પણ પોતાને જાણે
યોગી વિલક્ષણ હું ને જાણે વિશેષ કરીને મારા—સર્વમા
હું યોગીથી અન્ય નથી કોઈ આ જગત સૃજનારા
બીજ સર્વનું હું ને જાણે વૃક્ષ ન હુંથી ન્યારા—સર્વમા
થડ ડાળા ને પત્ર પણ હું છુ પુષ્પ ફળો સૌ મ્હારા
વ્યવહાર સૌના જુદા જુદા જેમ રૂપ આકારા સર્વમા

હું સૂર્ય, હું ચંદ્ર, હું પૃથ્વી, હું સાગર, હું દુખ, હું સુખ, એ સર્વ મારા રૂપ છે અને તે હું જ છુ મારાથી તે ન્યારા નથી. આ સર્વ વિશ્વ મારાથી ઉત્પન્ન થયુ છે અને હું જ તેનું બીજ છુ. બીજ જેમ વૃક્ષથી ન્યારૂં નથી તેમ હું પણ આ વ્યંજનરૂપ વિશ્વથી ન્યારો નથી એ વિશ્વ વૃક્ષના થડ, ડાળા પાતરા, ફેલ, ફુલ ઇત્યાદિ મારાં જ રૂપ છે અને જેમ એમના રૂપ અને આકાર જુદા જુદા છે તેમ તેના વ્યવહારો પણ જુદા જુદા છે તથાપિ

કાતર કંઠની આર્ત પોકાર સાંભળતાંજ તેમનું સિંહાસન હાલી ઉઠે છે, પછી તે કોઇ પણ પ્રકારે તેની ઉપેક્ષા કરી શકતા નથી! ગોવિંદના કરૂણ રૂદને પળ વારમાં તેમનું આસન હલાવી નાખ્યું ઝટ લઇને તે તેની પાસે આવી પહોંચ્યા, તેને ચુમકારીને પોતાના ખોળામાં લઇ લીધો અને તેનાં આંસુ લૂછતાં લૂછતાં બોલ્યા—"ભાઇ, રડીશ નહિં ચાલ હું તને તારી પાઠશાળાએ મૂકી આવું!"

તે શ્યામ સુંદર સ્વરૂપને જોઇને ગોવિંદનું હૃદય આનંદથી છલકાઇ ઉઠયુ. આહા, આજ તો મારા ગોપાલ ભાઇ છે! રડવાનું ચાલુ રાખીનેજ તેણે કહ્યું—"વારૂ, મને વચન આપો કે હવેથી મને કોઇ દિવસ આ પ્રમાણે હેરાન કરશો નહિં, ત્યારે જ હું છાનો રહીશ, ગોપાલ ભાઈ!"

"હાં, હાં, તું ચૂપ તો થઇ જા! હવે હું તને કદિપણ રડાવીશ નહિ."

"તો હું બોલાવીશ કે તરત તમે આવી જશો ને ગોપાલ ભાઇ?"

"હાં, હાં, રે ગોવિન્દ, કહ્યું તો ખરૂ! ચાલ, ઉઠ, ગુરૂજી તારી રાહ જોતા હશે!"

"ઠીક, ગોપાલ ભાઈ! આ તમે તમારા હાથમાં શું પકડેલું છે?"

"ગાંડો, તું એટલું પણ જાણતો નથી? એ મારી બંસી છે, બંસી!"

"તમે તે વગાડ્યા કરો છો, ગોપાલ ભાઇ?"

"હાં હાં, નહિ તો શું એમજ લઇને ફરતો હઇશ!"

"વારૂ, તો પછી વગાડોને, ગોપાલ ભાઈ!"

"ચાલ, તને પાઠશાળાએ જવામાં વાર થઈ રહી છે!"

"લાગવા દો વાર! હું પંડિતજીને કહી દઇશ કે હું શું કરૂં! વાર ગોપાલ ભાઇએ લગાડી, તે જલદી આવી જાત તો શા માટે વાર થાત!"

"નહિ, ગોવિન્દ! તેમને મારા સંબંધી વાત કહીશ નહિ!"

"ઠીક, તો તમે મને બંસી વગાડીને સંભળાવો, નહિ તો હું જરૂર કહી દઇશ."

"વારૂ, સાંભળ! હું બંસી વગાડી સંભળાવું છું, પણ—તારા ગુરૂજી આગળ મારૂં નામ ન લઇશ."

"તમે સંભળાવો તો ખરા ભાઈ! હું તેમને કંઇજ કહીશ નહિં."

મુરલીધરની મનમોહની મુરલીના ધ્વનીથી આખું જંગલ હર્ષિત થઇ ગયું! ગોવિન્દના આનંદની તો કોઇ સીમાજ ન રહી.

× × × ×

"હું શું લાવું ગુરૂજી?"

"તારે કાંઈ લાવવાનું નથી, ગોવિંદ!"

ગુરૂજીને ગોવિન્દના ઘરની સ્થિતિનું ખૂબ જ્ઞાન હતું, તેથીજ પિતાના શ્રાદ્ધને માટે તેમણે તેને કંઈ પણ નહિ લાવવાનું કહ્યું. પણ ગોવિન્દ, ભલા એ કેવી રીતે સહન કરી શકે કે બીજા બધા સહુપાઠીઓ તો ગુરૂજીને માટે કંઈ ને કંઈ લાવે અને પોતે કંઈજ ન લાવે! તેણે ફરી પૂછયું—

"કંઇક તો આજ્ઞા આપો, ગુરૂજી!"

બાળકની હઠ સમજીને તેમણે કહી દીધું—"વારૂ બેટા! તું એક લોટો દુધ લઈ આવજે!"

× × × ×

એક લોટા દુધની વાત સાંભળીને બ્રાહ્મણીના પ્રાણ સૂકાઈ ગયા. ઘરમાં તો એકાદશીનો યોગ છે, લોટો ભરીને દુધ કયાંથી આવે? ગરીબીના દુ ખથી તેનું હૃદય વ્યાકુળ થઇ ઉઠયું. આજ તેના

લાડિલા લાલના ગુરૂદેવને ઘેર શ્રાદ્ધ છે અને પોતે તેમને એક લોટો દૂધ પણ આપવા અસમર્થ છે ! તેને રડવું આવી ગયું માને રડતી જોઇને ગોવિન્દની આંખોમાં પણ આંસૂ ભરાઈ આવ્યાં. તે બોલ્યો—તો રહેવા દે મા ! હું ગુરૂજીને કહી દઇશ કે હું શું કરૂં ગુરૂજી, મને દૂધ ન મળી શક્યું !"

એકાએક માને ગોવિન્દના પ્યારા ગોપાલ ભાઇની વાત યાદ આવી ગઈ. તે બોલી—"બેટા ! તું એક કામ કેમ નથી કરતો ?"

"શું કરૂં મા ? બતાવ !"

"તું તારા ગોપાલ ભાઇને કહી દેજે, તે તને તરતજ દૂધ લાવી આપશે !"

ગોવિન્દ પ્રસન્નતાથી પ્રફૂલ્લ થઈ ઉઠ્યો અને કહ્યું—"આ તો તેં ઘણીજ સારી વાત યાદ દેવરાવી, મા ! અહા, કેટલા સારા છે, મારા ગોપાલ ભાઈ !

× × × ×

"કેમકાન ફોડી નાખે છે ? એક લોટો દૂધ લાવ્યો છે તેમાં આખી પાઠશાળા જમવી મૂકી છે ! લઈ લો, ભાઈ દેવવ્રત ! એનું દૂધ કોઇ વાસણમાં ખાલી કરીને અલગ મૂકો !" ગુરૂજીના મોઢાના આ શબ્દો ગોવિન્દના કાળજામાં તીર જેવા વાગ્યા ! હાય ! ગરીબોની બેટોને પણ લોકો આટલી ઉપેક્ષાની દ્રષ્ટિથી જુએ છે ! ગરીબનું બલિદાન-સંસારની દ્રષ્ટિમાં કંઇ મુલ્યજ રાખતું નથી ! પણ,—જેમણે—

દુર્યોધન ગૃહ મેવા ત્યાગી, સાગ વિદુર ઘર ખાઈ !
શબરી કે જૂઠે ફલ ખાયે, અદ્ભુત પ્રીતિ લખાઇ ॥

તે પ્રભુ ભલા આ કેમ સહન કરી શકે ? દીન અને દુઃખીના એક માત્ર આધાર તે પરમ પાવન પ્રભુ એ ક્યારે સહન કરી શકે છે કે તેમનાં પ્રિય દીન જનોની કોઇ આવી રીતે ઉપેક્ષા કરે ! દ્રૌપદીના ચીરની પેઠે દૂધના લોટામાં તે દૂધરૂપે પ્રવિષ્ટ થઈ ગયા. ગુરૂજીના ઘરમાં જેટલાં વાસણ હતાં—મોટી મોટી કોઠીઓ, બાલ્ટીઓ, લોટા આદિ—સર્વ તે નાની સરખી લોટીના દૂધથી ભરાઇ ગયાં અને તો પણ લોટીમાંનું દૂધ તો તેમનું તેમજ રહ્યું ! અનંતના દ્વારા અપાયલી વસ્તુ પણ અનંતજ હોવી જોઇએ ! તેથીજ તો—

ભરત ભરત કર થાકે,
ખૂટ્યો ન લુટિયા દૂધ !'

પૂરું થાય પણ કેવી રીતે ?—તેમાં જે પૂર્ણનો હાથ લાગેલો હતો ! ભલા, પૂર્ણમાંથી નીકળેલી વસ્તુ અપૂર્ણ કેવી રીતે હોય !

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

જ્યાં આમજ છે ત્યાં પછી લોટાનું દૂધ પૂરું ન થાય તો તેમાં આશ્ચર્ય શું ? કહ્યું છે કે—

જા પર કૃપા રામ કી હોઈ ;
તા પર કૃપા કરહિ સબ કોઈ.

પ્રભુનો વરદ હસ્ત જેના ઉપર પડી ગયો તેના ઊપર કોણ કૃપા નહિ કરે ! ક્ષણવાર પહેલાં જે ગોવિન્દ સૌની ઉપેક્ષા તથા અનાદરને પાત્ર હતો તેજ આ સમયે સર્વના આદર તથા શ્રદ્ધાનું એક માત્ર કેન્દ્ર બની રહ્યો હતો. કેમ ન બને, તે પ્રભુ જેને અપનાવે છે તેનો તિરસ્કાર કરવાની હિંમતજ કોનામાં છે ?

ખરેખર—

"સબ મેં વો સુહાગિન હૈ
જીસ કો કિ પિયા ચાહે !"

× × × ×

"ચાલ બેટા ગોવિન્દ ! આજ હું તારી સાથે

આવીશ. આજ તારે તારા ગોપાલભાઇનાં દર્શન મને પણ કરાવવાં પડશે !"

"ચાલો ગુરૂદેવ ! મારા ગોપાલભાઈ તો ઘણા ભોળા છે. જેવા હું તેમને બોલાવું છું કે તરતજ તે હસતા હસતા મારી પાસે આવી જાય છે અને મને ઘેર પહોંચાડીને ચાલ્યા જાય છે રસ્તામાં તે મારી જોડે ઘણી મીઠી મીઠી વાતો કરતા ચાલે છે અને કોઈ કોઇ વાર પોતાની સુંદર વાંસળી વગાડતા જાય છે ! ઘણાજ સુંદર છે મારા ગોપાલભાઈ ! !આપ તેમને જોશો, તો દંગ થઇ જશો ગુરૂદેવ ! કોઈ એક વાર તેમને જોઇ લે, પછી શું જીવનભર તે તેમને ભૂલી પણ શકે છે ?"

"એટલાજ માટે તો હું તેમનાં દર્શન કરવા ચાહું છું, બેટા ! પણ શું ખબર, મને તેમનાં દર્શન થશે કે નહિં, ગોવિન્દ !" થાય કેમ નહિં ગુરૂજી ! મારા ગોપાલભાઇ તો ઘણા સીધા છે. એકજ અવાજમાં તો તે આવી જાય છે ! આ લો, હવે જંગલ આવ્યું. હવે હું તેમને બોલાવું છું:—

"ભાઈ ! ગોપાલભાઇ !! આવો !!! હેં, આજ ગોપાલ ભાઇ આવતા કેમ નથી ? શું વાત છે ગોપાલભાઇ ? બીજે તો ક્યારેય તમે આટલી વાર લગાડતા નહોતા !"

"આજ તું એકલો નથી, ગોવિન્દ ! પછી મને શા માટે બોલાવે છે ?"

આ વીણાના જેવો મધુર સ્વર સાંભળીને ગુરૂદેવ કૃતકૃત્ય થઇ ગયા ! પણ જેનો સ્વર આટલો મીઠો છે, આટલો લલિત છે તે સ્વયં કેટલા સુંદર અને મનમોહક હશે—એવો વિચાર આવતાં તેમની દર્શન પિપાસા ઘણી તિવ્ર થઇ ઉઠી, તેમણે ગોવિન્દને પ્રાર્થના કરી કે બેટા તું તારા ભાઇનું એક વખત મને દર્શન કરાવી દે ! શું તારા ગુરૂજીની આટલી વાત પણ તું નહિં માને ?"

ગોવિન્દ બોલ્યો—"ગોપાલભાઈ ! ગુરૂજી તમારાં દર્શન કરવા ચાહે છે. આવો, એક વખત તેમને દર્શન આપી જાઓ !"

ગુરૂજીએ જોયું કે પ્રકાશનો એક મોટો તેજ પુંજ તેમની નજીકમાંજ ઉભો છે, પણ તેમાં તેમને કંઇ પણ દેખાતું નથી. તેની સામે તેમનાં નેત્ર એકાએકજ બંધ થતાં જાય છે. ગોવિન્દ બોલ્યો— "જોયા ગુરૂજી ! મારા ગોપાલભાઇ કેટલા સુંદર છે !"

"ક્યાં ગોવિન્દ ? મને તો પ્રકાશ વગર બીજું કંઈ પણ દેખાતું નથી."

"આમ શું કરો છો ગોપાલભાઈ ! ગુરૂજીને તમે તમારાં દર્શન કેમ આપતા નથી ?"

"ગોવિન્દ ! તમારા ગુરૂ હોવાને કારણે તેમને આટલા પ્રકાશનાં દર્શન થઈ ગયાં એજ બહુ છે, નહિ તો તે તેટલાનાય અધિકારી નથી. તેમનું હૃદય તો હજુ સ્વચ્છ થયુંજ નથી. તેમનામાં પોતાની પંડિતાઈ, વિદ્વત્તા, મોટાઈ, કુલિનતા, પદ, વૈભવ, અને ધન સંપત્તિનો અહંકાર ભરેલો છે; જ્ઞાનનો ગર્વ તેમની નસ નસમાં ભરેલો છે, પછી તેમને મારાં દર્શન કેવી રીતે થઈ શકે ?"

તેમની કૃપા કટાક્ષથી શું નથી બનતું ? જયદેવ પંડિતનાં અંતર્ચક્ષુ ખૂલી ગયાં. પ્રેમથી ગદ્ગદ્ થઈને તે શ્યામ સુંદરનાં ચરણોમાં ઝુકી પડયા !

× × × ×

બન્નેએ ઘેર પહોંચતાંજ જોયું—ગોવિન્દની માતાના ખોળામાં ગોપાલ સુતેલો છે, અને કહી રહ્યો છે—"મા, ભૂખ લાગી છે ! તું મને ગોવિન્દના ભાગની રોટલી ખાવાને આપી દે, હુ ગોવિન્દને સમજાવી લઈશ !"

× × ×

શીંકા ઉપરથી પોતાની રોટલી ઉતારીને ગોવિન્દ તેના તરફ દોડી ગયો—"લે, લે, ભાઈ ગોપાલ! આજ મારે ખાવુંજ નથી ગુરૂજીએ બહુજ આગ્રહ કરી કરીને ખવરાવ્યું છે"

"કેમ નહિ ખાય? મારી સાથે સાથે તારે પણ ખાવુંજ પડશે."

બન્ને ભાઈ એક રોટલી તોડી તોડીને ખાવા લાગ્યા, ગુરૂદેવ મુગ્ધ દ્રષ્ટિથી આ પ્રેમલીલા જોઈ રહ્યા બ્રાહ્મણી આંસૂ લૂછીને પોતાના બન્ને લાડિલાઓ માટે પાણી લાવવા ચાલી ગઈ

આવું દુર્લભ સૌભાગ્ય એકમાત્ર પ્રેમીઓનીજ સંપત્તિ છે, તેજ આવા આનંદનો ઉપભોગ કરી શકે છે અમારા જેવા પામર કીટ તો તેમના આવા અનુપમ આનંદની કલ્પના પણ કરી શકતા નથી!

ભલા તે પણ શું મનુષ્ય છે કે જેના દીલમાં આવા શ્યામ સુંદર સલોના યારની તસવિર ન સમાઈ જાય! એકવાર સમાવવાની જરૂર છે પછી તો તે સ્વયંજ મસ્ત થઈને એક પ્રેમ દીવાનીના સ્વરમાં સ્વર મેળવીને કહી ઉઠશે કે—

કોઈ કહૌ કુલટા કુલીન અકુલીન કહૌ,
કોઉ કહૌ રંકિનિ કલંકિનિ કુનારી હૌ.
કૈસો પરલોક નરલોક બર લોકનિ મેં,
લીન્હો મૈં અલોક લોક લોકનિ તે ન્યારી હૌ
તન જાહુ મન જાહુ 'દેવ' ગુરૂજન જાહુ,
પ્રાન કિન જાહુ ટેક ટરતિ ન ટારી હૌ.
વૃન્દાવન વારી, બનવારી કી મુકુટ વારી,
પીત પટવારી વહિ મૂરતિ પૈ વારી હૌ

લાજ, શરમ, કુળ, મર્યાદા, કાયદા સર્વ કાંઈ છૂટી જશે! તે બંસીની મધુર તાન સાંભળવાની પ્રબળ આકાંક્ષાથી એકવાર કોઈનું હૃદય વ્યાકુળ થઈ જાય, તો પછી શું—પછી તો આનંદજ આનંદ છે! પછી તો જ્યાં જુઓ ત્યાં, હર જગાએ, હર ચીજમાં તેજ પ્યારાની મનમોહની સૂરત નજરે આવવા માંડશે પછી તો મસ્ત થઈને એજ કહેવાશે કે—

હર શજર હર શાખ મે હર વર્ગ મે હરબાર મે,
ચશ્મે બીના ચાહિએ જલવા કહાં મિલતા નહીં
દેખતા હૂં તેરી કુદરત કા તમાશા આર પાર,
કિસ જગહ કિસ ચીજ મે જલ્વા તેરા પાતા નહીં



પ્રાચીન ચાતુર્વર્ણ્ય વ્યવસ્થા

લેખિકા—ગુણીયલ બ્હેન ભટ્ટ.

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

—ગી० ૪।૧૩

ચારે વર્ણની વ્યવસ્થા ગુણ અને કર્મના ભેદ પ્રમાણે મેં જ નિર્માણ કરી છે, હું તેનો કર્તા અને નિર્લેપ હોવાથી અકર્તા પણ છું જગતધારણ અને પોષણ કાયમ નભે તે માટે જ્ઞાન વિજ્ઞાનથી યુક્ત પુરૂષની જેટલી જરૂર છે તેટલી જ જરૂર ક્ષત્રીય વૈશ્ય અને શુદ્રોની પણ છે, પરન્તુ આ બધા વર્ગોએ પોતપોતાનાં નિર્માણ થયલાં કર્મો ઈશ્વરાર્પણ બુદ્ધિથી નિયમીત કરવાની ખાસ જરૂર છે અને એક વર્ગે બીજા વર્ગના કર્મ તરફ લાલસા રાખી

કે દ્વેષ રાખી કર્મમાં ગરબડ કરવાથી એટલે કે બીજાનાં કર્મો કરવાથી પર ધર્મો ભયાવહ જેવી સ્થીતી થાય છે માટે જે વર્ણમાં જન્મ થાય તેને ઈશ્વર નિર્મીત સમજી પોતાનો ધંધો ઈશ્વરાજ્ઞા સમજી ઉત્સાહથી સારાસાર વિચારથી કરતા રહેવાની અતિ અગત્ય છે. પુર્વના રૂષિમુનીઓએ વર્ણ વ્યવસ્થામાં એવા ઉચ્ચ આદર્શની સ્થાપના કરી છે કે હજારો વર્ષથી એ આદર્શ દ્વારા નિયંત્રીત થઈ ભારતીય જીવન સાફલ્ય શાન્તીના માર્ગે પ્રવાહીત થઇ રહ્યું છે. વર્ણાશ્રમ વ્યવસ્થામાં ખાસ લક્ષ આપવા યોગ્ય બાબત એ છે કે ભારતીય સમાજના સર્વોચ્ચ સ્થાન ઉપર બ્રાહ્મણ વિદ્વાન સન્યાસીઓને પ્રતિષ્ઠીત કરવામાં આવ્યા છે અને એ વર્ગને સમાજના આદર્શ પ્રતિકરૂપે આદરસહ માનવામાં આવે છે સમાજના બીજા ત્રણ વિભાગના અબાલ વૃદ્ધો બ્રાહ્મણ અને સન્યાસીઓના અનુશાસન પ્રમાણે અનુસરે છે અને પોતાના જીવનનું વહન કરે છે પરન્તુ એ વિદ્વાન વર્ગ બ્રાહ્મણ અને સન્યાસીઓ પ્રાચીન કાર્યમાં અર્થ અને કામ તરફ કેવળ ઉદાસીન રહેતા હતા, પોતાની જાત માટે સુખ ઐશ્વર્ય અને પ્રભુતાની આંકાક્ષાથી પ્રેરાઈ તેઓ કોઈ પણ પ્રકારનું કાર્ય આરંભ કરતા ન્હોતા. ખેતી વ્યાપાર શિલ્પ કળા આદી બાહ્ય સંપત્તી વધારવાના ઉદ્દેશમાં તેઓ કાળાંતરે પણ ભાગ લેતા નહોતા, દેશના શાસન સંરક્ષણ અને દંડ વિધાનનું કાર્ય પણ તેઓ કોઈ કાળે કરવામાં પ્રવૃત થતા નહી અને કોઈના તાબામાં રહી નોકરી પણ તેઓ કરતા નહી કારણ કે વર્ણાશ્રમ વ્યવસ્થામાં આ કાર્યોને બ્રાહ્મણ ધર્મથી અતિકુલ ઠરાવવામાં આવ્યાં હતાં માત્ર તત્વોની ખોળ કરવી એજ આ વર્ગનું કર્તવ્ય હતું હાલમાં જેને શોધક કહેવામાં આવે છે એવી રીતનું કાર્ય આ વર્ગ તે પ્રાચીન કાળમાં અતિ ઉત્તમ રીતે પાર પાડતો હતો. સર્વ જગતનું કલ્યાણ શી રીતે થાય, એજ આ વિદ્વાન વર્ગનું લક્ષ્ય હતું અને જેના પરીણામેજ ગુહ્યાતિ ગુહ્ય જ્ઞાન બ્રહ્મદર્શન જેવો સર્વોચ્ચ આદર્શ ભારતીય પ્રજાને વારસામાં મળ્યો છે. આ વર્ગ હાલ જેને દરિદ્રતા જેવા હલકા નામથી ઓળખવામાં આવે છે તેવા ત્યાગને તો પોતાની સ્વેચ્છાથી પોતાના જીવનનું કેન્દ્ર બનાવી લેતા હતા સમાજની ઉન્નતી શી રીતે થાય, એ વિના આ વર્ગનું લક્ષ્ય બીજું કોઈજ ન્હોતું, મનુષ્ય જીવનના સર્વ શ્રેષ્ઠ આદર્શોની સ્થાપના માટે આ વિદ્વાન વર્ગે પોતે સાંસારીક જીવનથી કૌટુંબીક જરૂરીયાતથી ઘેરાયલા છતાં ત્યાગ, પરોપકાર, નિસ્વાર્થ વૃતી જ્ઞાનદાનાદિ અતિ ઉચ્ચ આદર્શોનું પ્રતિક સમાજ આગળ સ્થાપિત કર્યું છે, જેનો જગતમાં આજ દીન લગી જોટો નથી અને ભાવીમાં પણ એ મુજબનો આદર્શ મળવો અતિ દુર્લભ છે. આવા મહદ પરોપકારના કાર્યથી સમાજમાં બ્રાહ્મણોનું સ્થાન સર્વોચ્ચપદે છે. અને તેમના દેહ પોષણનું, શારીરીક જીવન નિર્વાહનું અને સાગમય તપસ્વી જીવન અંગે લાગતી તમામ જરૂરિયાતનું કાર્ય સમાજે પોતાના શીરે ઉઠાવી લેવું જોઇએ, એ સ્વાભાવીક જ છે અને તેથી પ્રાચીનકાળથી રાષ્ટ્રીય શક્તિ ત્યા આર્થિક શક્તિના સમાજના સંચાલકો અતિ શ્રદ્ધા અને સન્માનસહ બ્રાહ્મણ વર્ગની સ્વતંત્રતા અને સગવડ જળવાઈ રહે એ માટે હરદમ પ્રયત્નશીલ રહેતા આવ્યા છે, રહે છે. એટલુંજ નહી પણ બ્રાહ્મણ અને સન્યાસીઓના જ્ઞાનોપદેશ મુજબ ઇતર ત્રણ વર્ણના લોકો પોતાની શક્તિ અને સંપત્તિનો ઉપયોગ બહુજન હીતાય ઈશ્વર પ્રિત્યર્થ કરે છે અને એમ કરી જીવનની કૃતાર્થતા માને છે. વર્ણાશ્રમ

વ્યવસ્થાનું આ મુખ્ય અંગ છે અને તેથી બાહ્ય સંપત્તિથી ઉદાસીન સ્વાર્થ વૃત્તિ રહિત વિશ્વકલ્યાણ પ્રેમી એ વર્ગ ઉપર જગતની સુયોગ્ય વ્યવસ્થા માટે નિયમન કાયદા કાનુન વિધીનિષેધ રચવાનો ભાર રાખવામાં આવ્યો છે કારણ કે એ લોકોને પોતાનો કોઈ વ્યક્તિગત યા એકીગત સ્વાર્થ ન હોવાના કારણે બધી વર્ણના પ્રતિનીધી થવાની યોગ્યતા ધરાવતા હતા તેથી બ્રાહ્મણ અને સન્યાસીઓ નિષ્પક્ષપાત રીતે જગતનું ધારણ પોષણ અને કલ્યાણ શી રીતે થાય એવી બાબતોના નિયમ સુનિપુણ વિચાર દ્વારા ઠરાવતા હતા અને તેથી જગતનો કાર્યક્રમ સરળતાથી શાન્તીના માર્ગે ચાલતો હતો અને લાખો વર્ષથી હીન્દુજાતી હજી સનાતન ધર્મને નિભાવી રહી છે હમારી એ પ્રાચીન વર્ણ વ્યવસ્થામાં બીજી એક મુખ્ય ખાસ ધ્યાન આપવા જેવી બાબત એ હતી કે એ દારિદ્રવૃતિ વિશ્વપ્રેમી બ્રાહ્મણો અને સન્યાસીઓની આજ્ઞાનુસાર ક્ષત્રીય સમાજ રાષ્ટનું રક્ષણ અને શક્તિ વર્ધક કાર્ય ન્યાય સંગત રીતે સમાજના સેવકની ભાવનાથી કરતા હતા અને સ્વયં અર્થ લોલુપતાનો સ્પર્શ પણ થવા દેતા નહી સમાજની કૃષિ શિલ્પ વાણીજ્યાદિની વ્યવસ્થામાં પોતાનો હાથ ન રહે, એની સંપુર્ણ રીતે કાળજી ધરાવતા અને સમાજની આંતર સમ્પતિની વ્યવસ્થાનો ભાર અધ્યાત્મવાદી રૂષિઓના હાથમાં હતો, તેવીજ રીતે સમાજની બાહ્ય સંપત્તિની વૃદ્ધિનો તથા ખેતી વાણીજ્ય શિલ્પકળાના ઉત્કર્ષનો સર્વ ભાર વૈશ્ય વર્ગના શીરે રાખવામાં આવ્યો હતો ક્ષત્રિયવર્ગ સમાજના પ્રત્યેક અંગે શક્તિ વૃદ્ધિ શી રીતે થાય એ કાળજી ધરાવતા હતા. તેજ રીતે વૈશ્યો સમાજના કૃષી શિલ્પ વાણીજ્યનો ઉત્કર્ષ કરી સમાજનું પ્રત્યેક અંગ ધન ધાન્યના પરિપુર્ણ પોષણથી સુદ્રઢ શી રીતે થાય તેની કાળજી ધરાવી નિસ્વાર્થ સેવા ભાવથી આ કાર્ય પાર પાડતા હતા અને વૈશ્ય વર્ગનો ખજાનો એ કાળમાં જન સાધારણ માટે વિશેષ કરી બ્રાહ્મણ, સન્યાસી, દરિદ્રી, લુલા, લંગડા, રોગી, વૃદ્ધ, અનાથ વિગેરેના હીત માટે અહોનિશ ખુલ્લો રહેતો હતો કોઈ જગ્યાએ દેશમાં દુર્ભિક્ષ પડે તેને પહોચી વળવાની, મહામારી જેવા જીવલેણ ઉપદ્રવો પેદા થાય તેના શમનની, દેશ ઉપર બાહ્ય આક્રમણ આવે તેનો સામનો કરવામાં જોઈતી સંપત્તિની વ્યવસ્થા કરવા વિગેરેની જવાબદારી વૈશ્ય વર્ગ ઉપર રહેતી હતી અને જગડુશેઠ, ભામાશાહ આદી એના દ્રષ્ટાંતો રૂપેજ હતા. બુદ્ધિવાન લોકો બુદ્ધિહીન વ્યક્તીઓનું શોષણ ન કરે એ જોવાની અને તદંગે વ્યવસ્થા કરવાની જવાબદારી ક્ષત્રીય રાજાઓ ઉપર રહેતી હતી અને તેમાં જો રાજાઓની લેશ પણ નિષ્કાળજી અગર શિથીલતા જણાતી તો ઉપરી બ્રાહ્મણ વર્ગ પોતાના જ્ઞાન અને તપના સામર્થ્યથી ક્ષત્રીય રાજાઓની બુદ્ધિને ઠેકાણે આણતા હતા જે પ્રમાણે રાષ્ટ શક્તિનું સંચાલન કરનાર ક્ષત્રીયવર્ગ માટે અર્થ લાભ સારૂ ખેતી શિલ્પ વિદ્યા વાણીજ્યાદિ સ્વધર્મ નાશક તથા મર્યાદા લોપવાના કાર્યો ગણાતા તે મુજબજ કૃષી વાણીજ્ય દિ દેશની સંપત્તિ વધારવાના કાર્યમાં જોડાયલા વૈશ્યો માટે રાષ્ટ શક્તિનું સંચાલન કરવાનો તેમજ સમાજ ઉપર પ્રભુત્વનો દાવો કરવાનો લોભ કરવાનું કાર્ય સ્વધર્મનાશક ગણાતું હતું કારણ પ્રભુત્વ અને અર્થ આ બે વસ્તુમાંજ મોહ છે અને સમાજની આર્થિક શક્તિ તથા રાષ્ટ્રીય શક્તિ એકજ વર્ગના હાથમાં રહેવાથી ધર્મ મર્યાદા તથા વર્ણવ્યવસ્થાના લોપનો મેલ તે વર્ગને થાય એ દેખીતી વાત છે અને હાલ આપણી નજર પ્રત્યક્ષ તે વાત દેખાય

રહી છે કે રાષ્ટ્રશક્તિ યા અર્થ શક્તિનું સંચાલન એકજ વર્ગના અધિકારમાં હોવાથી સમાજનાં પ્રત્યેક અંગો છિન્ન ભિન્ન અવસ્થામાં આવી પડયાં છે મહાભારત યુદ્ધના કાળથી આ દુર્દશા આ ધર્મ ભુમી ઉપર આવી પડી છે. કારણ વર્ણાશ્રમ વ્યવસ્થામાં ગરબડ થઈ છે આ ગરબડ તો ત્યારેજ દુર થઈ શકે કે ન્યાય ધર્મનો મૂર્તીમાન આદર્શ બ્રાહ્મણ વર્ગ રાષ્ટ્ર શક્તિ અને અર્થ શક્તિના સંચાલકોનું યથાર્થ પ્રથક્કરણ કરે અને તે દરેક ઉપર પોતાના જ્ઞાન અને તપના પ્રભાવથી પુર્ણ રીતે કડક નજર રાખે. હવે રહી સમાજના ચોથા વર્ગ શુદ્ર જાતીની બાબત બ્રાહ્મણોના ધર્મ કાર્યમાં ક્ષત્રીયોના રક્ષણ કાર્યમાં વૈશ્યોના વાણીજ્યાદિ કાર્યોમાં એ જાતીએ પોતાના અંગથી બનતી તમામ સેવાની મદદ આપવાની વ્યવસ્થા અને તેના બદલામાં એ લોકોના ભરણ પોષણનો તમામ ભાર ઉપરના ત્રણે વર્ગ પોતાના શીરે રાખ્યો હતો. એ રીતે પ્રાચીન ૠષિઓએ બધી માનવ જાતને ચાર વિભાગમાં વહેંચી કર્મ સમન્વયથી સમાજને સુદ્રઢ બનાવ્યો હતો અને આ સમાજ રચના એવી હતી કે બીજાના કર્મની લોલુપતા, બીજાના ધનની અપેક્ષાથી થતી પ્રતિદ્વંદીતા અર્થાત્ સંઘર્ષણના ક્ષેત્રને અતિશય સંકુચીત બનાવી દીધું હતું અને મનુષ્ય જીવનની સંપૂર્ણ સાર્થકતા ભારતીય સમાજમાં પરિપૂર્ણ ફલીતાર્થ થઈ હતી.

—:o:—

સાધન

(લે૰—શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનન્દજી સરસ્વતીનો ઉપદેશ)

(અનુવાદક અને પ્રેષકઃ—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ)

प्रात.प्रभृति सायान्तं सायाह्नात् प्रातरन्ततः ।
यत् करोमि जगन्मातस्तदस्तु तव पूजनम् ॥

—तन्त्र

પ્રાતઃકાલથી સન્ધ્યાસુધી અને ફરીને સન્ધ્યાથી પ્રાતઃકાલ સુધી હે જગન્માત ! હું જે કાંઈ કરૂં છું, તે બધી તમારી પૂજા છે. આ પ્રકારના જ્ઞાનમાં સંસારમાં કર્મમય રહેવું એજ સંસારીનું ઉત્તમ સાધન છે. અર્થાત જાગતિક બધા કર્મોમાં ઈશ્વરને જોવો, જાણવો અને અનુભવ કરવો એજ સાધન છે. કર્મનો પ્રેરક, કર્મ, અને કર્મનો ભોક્તા જે એક માત્ર ચેતન સ્વરૂપ આત્મા છે, તેનો સર્વ કોઇને અનુભવ થઈ શકે છે. કારણ કે ચેતન વિનાનું કે જડ બોલીને તમે જે બધાને જાણો છો, તેમાં ઇચ્છા, કર્મ, અને ભોગ નથી. આ જ્ઞાનમાં તમે સંશય રહિત છો, તેથીજ જ્ઞાન અને કર્મ એ આત્માનો ધર્મ છે અથવા આત્માજ છે, એમાં સંશય નથી. ઈશ્વરજ જ્ઞાન સ્વરૂપ, અને જ્ઞાનની સ્થૂલ મૂર્તિ કર્મ છે. કર્મ અને જ્ઞાનમાં જૂદાપણાને બાળકજ જુએ છે. જ્ઞાની પૃથક દર્શન કરતો નથી. આ વાતને ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે ગીતામાં સ્પષ્ટ કહી છે.

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।

તેથી એક જગ્યાએ બેસીને બેચાર કલાક પૂજા પાઠ, જપ, ધ્યાન, વગેરેકરવું, એ કરતાં તમારાં બધાં વ્યાવહારિક કર્મોની અંદર ઇશ્વર દર્શન કરવું અથવા ઇશ્વરને જાણવો અને સમજવાની ચેષ્ટા કરવી એજ ઉત્તમ ઉપાસના છે. ઇશ્વર જ્ઞાન શૂન્ય ઉપાસના કરવી એ કરતાં ઇશ્વર જ્ઞાનમાં જગતમાં કર્મમય રહેવું અથવા જગતનાં બધાં કર્મો ભગવાનનીજ સેવા કરૂં છું એ જ્ઞાનમાં કરવાં એ ઉત્તમ ઉપાસના વા સાધન છે. ભગવાન શ્રીકૃષ્ણનો ઉપદેશ પણ એજ પ્રમાણે છે.

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

—गीता

હે કૌન્તેય ! તું જે કાંઇ કર, આહાર કર, દાન

કર, અને તપશ્ચર્યા કર તે બધુંજ મારામાં સમર્પણ કર, અથવા ભગવાનનુંજ કર્મ કરૂ છું અર્થાત ભગવાનની તૃપ્તિ માટે કર્મ કરૂ છું એ જ્ઞાનમાં કર

કર્મ ન કરવા કરતાં કર્મ કરવુ શ્રેષ્ઠ છે કારણ કે અસંયત મન વિષય ચિન્તા કરીને અધિકતર મલિન થઈ જશે. તેથીજ જો કલ્યાણની ઇચ્છા કરતા હો તો મનને વિષય ચિન્તા કરવાનો વખત ન આપો અને વિશ્વાસ કરો કે કર્મ વૃથા નથી કર્મનું ફલ જ્ઞાન છે ઇશ્વર બધા જીવોની પાસે કર્મ કરાવીને ફલરૂપ જ્ઞાન આપતા આપતા વધારતા વધારતા પરમ જ્ઞાન પરમાત્માની તરફ આકર્ષણ કરે છે તેથીજ ભગવાનનું નામ કૃષ્ણ છે અથવા આકર્ષણ શક્તિ બ્રહ્મવિદ્યા દુર્ગા છે કે જે દૂરપણાને મટાડે છે—ભગવાનમાં જોડે છે નકી તે બ્રહ્મ વિદ્યા સ્વરૂપિણી ભગવતી દુર્ગા વા ચિતિશક્તિ આત્મા છે. બ્રહ્મવિદ્યા વા બ્રહ્મજ્ઞાન બ્રહ્મથી પૃથક નથી જે બ્રહ્મજ્ઞાન તેજ બ્રહ્મ છે તેથી બ્રહ્મજ્ઞાન મેળવવા માટે એકમાત્ર સાધનની જરૂર છે કારણ કે સાધન હીન કેવળ વાચિક જ્ઞાન અથવા પુસ્તકનું જ્ઞાન મનુષ્યને આનન્દ અથવા શાન્તિ આપવા સમર્થ નથી.

उपासनाविहीनस्य सर्वशास्त्रविदोऽपि वा ।
चित्तविक्षेपहानि स्यान्नैव कल्पान्तरैरपि ॥
—रामगीता

સર્વશાસ્ત્રજ્ઞ પુરૂષ પણ જો ઉપાસના અથવા સાધન વિહીન હોય તો તેના ચિત્તવિક્ષેપનો નાશ કલ્પાન્તરે પણ થતો નથી અથવા તેને શાન્તિ મળતી નથી

વર્ણાશ્રમાનુસાર સાધન વા ઉપાસના, ચાર પ્રકારની છે, અથવા ચાર સ્તર કે ક્રમ વિશિષ્ટ છે જેમ —સર્વથી નીચો વર્ણ શૂદ્ર છે, શૂદ્રને સેવા એજ ઉપાસના અથવા સાધન છે. કારણ કે શૂદ્ર શબ્દનો અર્થ જે દુ ખમા-શોકમા દ્ર અર્થાત્ રોદન શીલ તે શૂદ્ર છે અર્થાત્ નિત્ય દ્વૈત જ્ઞાન વિશિષ્ટ છે અને હજારો વખત સાભળીને, સમજીને પણ જેને અદ્વૈતનિષ્ઠા થતી નથી, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિયે તે શૂદ્ર છે તેનાથી ઊંચો વર્ણ વૈશ્ય છે પ્રવેશ અર્થમા વિશ ધાતુથી વૈશ્ય શબ્દ નિષ્પન્ન થયો છે. અર્થાત ભિન્ન વા પૃથગ ભાવમા ભગવાનની સેવાદિ દ્વારા જે લોકોનું ચિત્ત શુદ્ધ થયું છે અમે ભગવાન પરમપ્રિય છે એ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને ભગવાનથી પૃથગભાવ મટાડવા માટે અથવા ભગવાનમા પ્રવેશ કરવા માટે જે લોકોએ સત્ય ઇચ્છા કરી છે, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિયે તેઓ વૈશ્ય છે અને ભગવત્પ્રાપ્તિની ઇચ્છા પ્રબલતમ થઈ હોવાથી જે લોકોને ભગવાન વિના વધારે ચાલતું નથી એમ જાણીને બધા સંસ્કારો અને બધા ભાવોની સાથે જે લોકો લડાઇ કરે છે અને સ્વરાજ્ય વા આત્મરાજ્યની પ્રતિષ્ઠા માટે જેઓએ પ્રાણની પણ પ્રતિજ્ઞા કરી છે, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિથી તે બધા ક્ષત્રિયો છે અને જે લોકો સ્વરાજ્યમા વા આત્મરાજ્યમા પ્રતિષ્ઠિત છે અથવા માતૃઅંકસ્થિત નગ્ન શિશુ વા સર્વત્યાગી, વ્યવધાન શૂન્ય આત્મ યુક્ત છે, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિથી તે લોકો બ્રાહ્મણ છે. સાધન દ્વારાજ મનુષ્ય બહુ જન્મે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને આત્મયુક્ત વા બ્રાહ્મણ થાય છે આ ભૂલીને પથ ભ્રાન્ત ન થાઓ આ જન્મમાજ બ્રાહ્મણ ઇતર વર્ણ માત્ર એક સૂત્ર ધારણ કરીને બ્રાહ્મણ બનવા ન જાઓ તમે જે સ્થાનમાં હો, સાધન કરો અને સાધન દ્વારા પરમ તત્વને જાણીને તમારો મનુષ્ય જન્મ સાર્થક કરો બાહ્ય સૂત્ર ધારણ કરવાથીજ ભગવાન મળતા નથી તમારા બધા સંસ્કારોને અને બધા ભાવોને જ્યારે એક સૂત્રમા ગ્રથિત કરી શકશો તથા સૂત્ર, ભાવ સમૂહ અને સંસ્કાર રાશીને જ્યારે ભગવાન જાણીને ઓળખી શકશો ત્યારેજ તમે બ્રહ્મસૂત્રધારી બ્રાહ્મણ થશો. સાધન સમ્પત્તિ રહિત કેવળ વાચિક જ્ઞાની બનીને ભોગ લાલસાતુર ન થાઓ કારણ કે વાચિક જ્ઞાની જગતના ભોગને પ્રાપ્ત કરે છે અને સન્માનિત થાય છે પણ ભગવાનથી બહુ દૂર રહી જાય છે પરમ સમ્પત્તિ કેવળ સાધનજ છે જે દિવસ સાધ્ય અને સાધનમા તમારૂં અભેદ જ્ઞાન થશે તેજ દિવસ તમે ગુરૂ કૃપા પ્રાપ્ત કરી ધન્ય થશો

આવો સાધકો ભગવાનના સૂરમા સૂર મિલાવી સંવેદિત થઈ બોલતા રહીએ—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

કરુણા લહરી

[પંડિતરાજ શ્રી જગન્નાથ વિરચિતા]

(અનુવાદક;—લાલજી વીરેશ્વર જાનિ)

वंशस्थ वृतम्

विषीदता नाथ विषानलोपमे
विषादभूमौ भवसागरे विभो।
परं प्रतीकारमपश्यताधुना
मयायमात्मा भवते निवेदितः ॥१॥

મહેશ, ચિત્તે અતિ ખેદ વાધતાં,
[1]વિષાદભૂમિ ભવ સિંધુ ભાસતાં;
વળી [2]પ્રતિકાર ન કાંઇ લાધતાં,
તને સમર્પું મુજ નાથ આતમા. ૧.

[3] ભવાનલે ચેતન માહરૂં બળ્યું,
શરણ્ય તારાં ચરણો, પ્રભો, ગણું;
વિચારીને દેવ દયા સુધાર્ણવે,
ગતિ કરે મારી યથા તને ગમે. ૨.

તજી મરૂ-ભૂમિ સમાન આ ભવ,
[4]મરીચિકાનાં જળ ઝાંઝવાં સમ;
[5]સદાય ઇચ્છે મન માહરૂં વિભો,
કૃપા તણે સાગર સ્નાન હે પ્રભો. ૩.

[6]સરોજ જેવાં તુજ પાદ-પદ્મના,
અપાર મીઠા [7]મકરંદ પ્યારમાં;
[8]મિલિન્દરૂપી મન મારૂં ચોંટિયું,
મહેશ, મેં છે તૃણ અન્ય માનિયું. ૪.

જગત્ત્રય-ત્રાણ વિષે ધર્યું વ્રત,
[9]ત્વાંધ્રિ તેવાં તજી મૂર્ખ માનવ;
શરણ્ય બીજું ધિક શોધતાં જ જે,
પડે ખરે કાળ તણેજ દ્વાર તે. ૫.

રમા મુખે તેજ અપાર જે ભરે,
જગાડતો જે ત્રણ લોક ટાંકણે;
પ્રભો, તમારો [1]નયનારુણોદય,
કદા હરે તે મુજ રાત્રિ-તિમિર ? ૬.

મુનીન્દ્ર ચિત્તૈક ચકોર-જીવિકા,
સમસ્ત સંતાપ હરન્તી ચંદ્રિકા;
મહાન્ધકારે મુજ માનસે કદા,
ખીલી રહેશે તુજ [2]વક્ત્રની પ્રભા ? ૭.

સુયૌવનાનાં મણિ કુંડલો ખરે,
નિહાળતાં તાંડવ-નૃત્ય આદરે;
મુરારિ, તેવું મુખ તારૂં ઉજ્જવલ,
કદા થશે તે મુજ દૃષ્ટિ ગોચર ? ૮.

[3]સુરાપગા—તુંગ—તરંગમાં વહે,
સુરાસુરો જેહ લલાટમાં લહે;
કદા પ્રભો એ તવ પાદ-પદ્મની,
ધરીશ ધૂલી મુજ માથડે હરિ ? ૯.

મદે ભરેલા મુજ [4]અક્ષ-અશ્વ આ,
વિવેકની [5]રશ્મિ રહિત છે થયા;
હરે, પહોંચી તવ [6]ચર્ણ-મંદુરા,
બનો હવે શાન્ત સુશીલ સર્વદા. ૧૦.

---

૧ ખેદ શોકનું સ્થાન. ૨ ઉપાય ૩ સંસારરૂપ દાવાગ્નિમાં. ૪ મૃગજળ. ૫ આપની કૃપારૂપ સુધાસાગરમાં સ્નાન કરવાને સદૈવ મારૂં મન અભિલાષા રાખે છે. ૬ કમળ. ૭ રસ. ૮ ભ્રમર. ૯ આપનાં ચરણો.

૧ નેત્રરૂપ અરૂણોદય. ૨ મુખ. ૩ આકાશ ગંગા. ૪ અક્ષ=ઇંદ્રિયો, ઇંદ્રિયોરૂપી ઘોડા. ૫ લગામ. ૬ મંદુરા તબેલો; અશ્વશાળા આપના ચરણરૂપ અશ્વશાળામાં.

ન વેદ જેને પણ વર્ણવી શકે,
 મહેશ્વર પ્રાણપતિ તજી તને;
સતી કદાપિ તજી શર્મને અરે,
 મતિ ન મારી ત્યમ અન્યને ભજે. ૧૧.

ન જાગતાં સ્વપ્ન વિષે વળી કદી,
 [1]કૃપા વિના અન્ય ન આશ મેં કરી;
 ગિરા મદીયા યદિ સત્ય હોય એ,
 મહેશ ઉદ્ધાર મદીય તો કરો. ૧૨.

* વિયોગિની વૃત્ત

અયિ દેવ દયા નિધિ મને,
 તજી દીધો સહુએ [2]અભાગીને;
હજુએ નથી કાં નિહાળતો,
 બની પાષાણ સમો મને વિભો. ૧૩.

સુમહાન જગ ધારતાં શિરે,
 નથી લાગ્યો જરા થાક રે તને;
અણુ હૃદય હું ક્ષુદ્ર જીવડો,
 પરમાણુ સમ દેહ માહરો.
કરૂણાકર તું હિતેચ્છુને,
 શ્રમ લાગ્યો શું મદીય ધારવે ? ૧૪.

કરિયો ગિરિથી મને વડો,
 જડ તું કાં ન હવે ઉગારતો ?
વિનયે વિભુ પૂછતાં તને,
 મુજને ઉત્તર દે વિચારીને. ૧૫.

ન ધને નહિ રાજ્ય વૈભવે,
 નહિ વિદ્યા પ્રતિ યાચના મને;
કરુણા ભરી દૃષ્ટિ તાહરી, [1]
 હરિ યાચું બસ એક આખરી. ૧૬.

અતિ નીચ તથૈવ દુર્ગુણી,
 તદપિ હું [1]દયનીય છું ઘડી;
વમતા [2]ફણી ઝેર કારમું !
 [3]ખુરશો ચંદન તોય આપતું. ૧૭.

નથી લેશ ક્ષુધિતને ત્રપા,
 પ્રતિમાર્ગે કણ ધાન્ય વીણતાં;
[4]ન કલંક, કલંક રૂપ એ,
 યદિ હું જાઉંજ અન્ય આશ્રયે. ૧૮.

નરકે અતિશે પીડાયલો,
 તજીને શર્મ હું હીન પ્રભુ થયો;
ભગવન્ સ્થિતિ મારી જો [5]મને,
 જનતો પાછળ નિંદશે તને. ૧૯.

નરકે મુજ કર્મની કથા,
 સ્મરતાં થાય અતીવ રે વ્યથા;
મુજને જન કહે અનાથ રે ?
 વિભુ, આ છેક અસહ્ય છે ઉરે. ૨૦.

ભવ બાધતણા સુબંધને,
 પ્રતિરુદ્ધ પ્રભુજી અનેકને;
[6]વનહસ્તિ સુખેથી રક્ષતા,
 તજી હુંને ક્યમ શાન્તિ પામતા ?
તજતાં તવ દીન દાસને,
 કરુણા કાં ન ચિરે જ ચિત્તને ? ૨૧.

અપૂર્ણ.

૧ તારી કૃપા. ૨ મને અભાગીને.

* આનું બીજું નામ "વૈતાલીયવૃત્ત" છે. માત્ર પ્રથમ ચરણ=સ સ જ ગ=૧૦ અક્ષર બીજામાં સ. ભ. ર લ. ગુ=૧૧ અક્ષરો

૧ દયાને પાત્ર. ૨ સર્પ. ૩ વમતા ફણી ઝેર કારમું ૫ છતાંયે સુખથી ચંદન શું ન આપતું ? ૪ કલંક રહિત પ્રભો. ૫ મનમાં, અંતરમાં. ૬ જંગલી હાથીના ત્રાસમાંથી.

ગીતાધર્મ બ્લૉક વર્કર્સ ઉદ્ઘાટન સમારોહ

'ગીતાધર્મ'' ના પ્રેમી પાઠકો અને ગ્રાહકોને એ જાણીને ઘણોજ આનંદ થશે કે ગત રથયાત્રાના શુભ અવસર પર તા૦ ૧૬ ૭-૪૨ ના રોજ અસંત ઉત્સાહ સાથે અનેક પૂજ્ય મહાત્માઓ તથા ગણ્યમાન્ય સુશિક્ષિત નાગરિકોની હાજરીમાં 'ગીતાધર્મ'' કાર્યાલયમાં ઉક્ત બ્લૉકવર્કસનું ઉદ્ઘાટન સંપન્ન થયું. આ અવસરે સ્થાનીય મ્યુનિસિપલ બોર્ડના સુવિખ્યાત ચેરમેન રાયબહાદુર પંડિત જગન્નાથ પ્રસાદ મહેતાએ ઉત્સવનું પ્રમુખપદ સ્વિકારીને ઉદ્ઘાટન કર્મ સંપન્ન કર્યું હતું. નિમંત્રિત સજ્જનોમાં પૂજ્ય સ્વામી શ્રી રામાનંદજી મહારાજ, તપોધન મહંત શ્રી એતવારગિરિજી મહારાજ, તથા અન્ય સંસ્થાનોના મહાત્માઓ તથા પં૦ ધર્મદત્તજી શાસ્ત્રી, પ્ર૦ મંત્રિ વર્ણાશ્રમ સ્વરાજસંઘ, પં૦ દેવીનારાયણજી એડવોકેટ, પં૦ જાનકી શરણ ત્રિપાઠી સં૦ 'સૂર્ય', પં૦ રામબાલક શાસ્ત્રી સં૦ 'સંદેશ', આદિ વિદ્વાનો તથા અનેક સાહિત્યકાર સજ્જનો તથા પ્રેસ વ્યવસ્થાપકો, પ્રમુખ ચિત્રકારો, પુસ્તક પ્રકાશકો અને વેપારી ભાઇઓએ પધારી ઉત્સવની શોભા વધારી હતી. જેઓમાં પ્રસિદ્ધ નવલકથાકાર શ્રી ગહમરીજી, ચિત્રકળાકાર કેદારનાથજી, બાબુ બલદેવદાસજી વ્યવસ્થાપક 'આજ', ઠા૦ સૂર્યબલિસિંહ, વિગેરે સજ્જનો મુખ્ય હતા.

પ્રથમ પં૦ દેવીનારાયણજી વકીલે 'ગીતાધર્મ'' પરિવારનું કાર્યાવલોકન કરાવીને પ્રમૂખ મહાશયને ઉદ્ઘાટન કરવાની પ્રાર્થના કરી તે પછી સ્વામી શ્રી રામાનંદજી મહારાજે આ સંસ્થાના પ્રવર્તક સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજની અદ્ભુત ઘટનાવલી પર સુંદર પ્રકાશ પાડ્યો તે પછી પં૦ શ્રી ધર્મદત્તજી અને સભાપતિજીનાં સારગર્ભિત ભાષણો પછી વિધિવત ઉદ્ઘાટન તથા સામૂહિક કાર્યાલયનું પરિદર્શન થયું.

સર્વ આમંત્રિત સજ્જનોનો ફૂલમાળા, મિષ્ટાન્ન, જલપાન તથા પાન સોપારી દ્વારા સ્વાગત સત્કાર કરવામાં આવ્યો હતો.

વર્તમાન વિષમ પરિસ્થિતિમાં આ કાર્યનો આરંભ કરવામાં શ્રી ભગવાનની પ્રેરણાજ મુખ્ય કારણ હતી તેથી આશા છે કે તેજ સર્વ શક્તિમાન પ્રભુ આ નવા કાર્યથી જનતાની સેવા કરવાનો ઉદ્દેશ્ય પૂર્ણ કરશે. ગીતાધર્મ પ્રેમીઓ માટે હર પ્રકારના ચિત્રોના બ્લૉક બનાવવાની તથા તેમની સુંદર છપાઈ માટે બીજે ક્યાંય પ્રયત્ન ન કરતાં અહિં જ સર્વ પ્રકારની સગવડ થાય, તે માટે ખાસ પ્રબંધ કરવામાં આવ્યો છે. આશા છે કે બ્લૉક બનાવવાનો અવસર આવ્યે કૃપાલુ ગ્રાહકગણ કાર્યાલયને ભૂલશે નહિ.

—વ્યવસ્થાપક

ગીતાધર્મ કાર્યાલય કાશી. (ગુ૦ પી૦)

संस्थापक—श्रीमत् प प ब्र ले गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुधर । तत्र श्रीर्विजयो भूतिध्रुवा नीतिमतिर्मम ॥

भजो मन हरिहर हरिहर हरिहर।
आदि ब्रह्म अद्वैत निरञ्जन भयभञ्जन धरणीधर।
दुष्ट मारि भूभार उतारत विश्वनाथ विश्वंभर॥
कबहुँ विहार करत भक्तन संग करि वरवेष मनोहर।
कबहुँ संहार करत सब जग को धरि बहुरूप भयंकर॥

वार्षिक मूल्य—
भारत में ४)
विदेश में ६॥)

मोर मुकुट कटि काछनो पीताम्बर वनमाल।
यह मूरति मो मन बसो सदा बिहारीलाल॥

साधारण प्रति
भारत में ।)
विदेश में ।=)

श्री गोवर्द्धनभाई मगनभाई पटेल द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में मुद्रित और प्रकाशित।

विषयसूची [हिंदीविभाग]

[ગુજરાતી વિભાગ]

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ } सितम्बर, १९४९, काशी { अङ्क ९

चरणसरोज

बन्दौं चरणसरोज तुम्हारे ।
सुन्दर श्याम कमलदललोचन ललित त्रिभङ्ग प्राणपति प्यारे ।
जे पदपद्म सदा शिव को धन सिन्धुसुता उरते नहिं टारे ॥
जे पदपद्म परसि जगपावन सुरसरि दरस कटत अघ भारे ।
जे पदपद्म परसि ऋषिपत्नी बलि नृग व्याध पतित बहु तारे ॥
जे पदपद्म रमत वृन्दावन अहिशिर धरि अगणित रिपु मारे ।
जे पदपद्म परसि व्रजभामिनि सर्वस दै सुत सदन बिसारे ॥
जे पदपद्म रमत पाण्डवदल दूत भये सब काज सँवारे ।
सूरदास तेई पदपङ्कज त्रिविधताप दुख हरन हमारे ॥

—सूरदासजी

सिद्धि

(ले० —श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

उपासना के फलस्वरूप साधक को जो सिद्धियाँ मिलती हैं उन को दत्तात्रेयजी ने अलर्क के प्रति इस प्रकार कहा है—

अणिमा, महिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं च तथा परम् ॥
यत्र कामावसायित्वं गुणानेतानथैश्वरान् ।
प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परनिर्वाणसूचकान् ॥

—मार्क० पु०

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व; परनिर्वाण के सूचक इन आठ ऐश्वर्य के गुणों को साधक प्राप्त करता है ।

सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरोऽणीयान् शीघ्रत्वाल्लघिमा गुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वात् प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥
प्राकाम्यमस्य व्यापित्वात् ईशित्वं चेश्वरो यतः ।
वशित्वात् वशिता नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥
यत्रेच्छा स्थानमप्युक्तं यत्र कामावसायिता ।
ऐश्वर्यं कारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥

योगीजन छोटे से भी छोटे हो जाते हैं, अतः उन में अणिमा होती है, सब के पूज्य होने से महिमा, हल्के होकर चाहे जहाँ पहुँच जाने से लघिमा, उन को कोई वस्तु अप्राप्य नहीं होती, अतः प्राप्तिसिद्धि, वे सर्वत्र व्याप्त हो सकते है, अतः प्राकाम्यसिद्धि तथा सब कुछ करने में समर्थ हैं, अतः ईशित्वसिद्धि, वशी होने से वशित्वसिद्धि और सब इच्छा के स्थानों में कामनाओं का समाप्त रहना (कामावसायित्व) ये आठ सिद्धियाँ होती हैं । ये सिद्धियाँ तो प्रसिद्ध हैं लेकिन और भी छोटी बडी सिद्धियाँ योगियों को उन के अभ्यासक्रम से प्राप्त हो जाती हैं; ऐसा तत्तद् ग्रन्थों में उल्लेख पाया जाता है । तथापि ये सब असल मुमुक्षु की दृष्टि में हेय ही होती हैं । गीता में सिद्धि शब्द का कुछ दूसरा ही तात्पर्य है, वहाँ इस शब्द का प्रथम प्रयोग इस श्लोक में आता है—

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥

—गी० ३।४

यहाँ सिद्धि का अर्थ नैष्कर्म्यसिद्धि है यह तो स्पष्ट ही है, उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित सिद्धियों से इस का कोई वास्ता नहीं ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

—गी० ७।३

इस गीतोक्त सिद्धि का भी नैष्कर्म्यसिद्धि अर्थ है । 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' इस वचन में अर्थ यही होते हुए भी कपिलजी का अन्यान्य सिद्धिसंपन्न होना विसंगत नहीं, तथापि मोक्षशास्त्र में सिद्धि शब्द

से प्रधानतः नैष्कर्म्यसिद्धि ही मान्य है। अर्जुन को भगवान् ने इसी सिद्धि के लिए प्रयत्न करने को कहा था, क्योंकि गीता का प्रधान उपदेश ज्ञाननिष्ठा का है, अर्जुन अज्ञान का नाश चाहता था। अज्ञान नाश का कारण ज्ञानप्राप्ति ही निश्चित है, यह बात कपिल मुनि ने सांख्य द० अ० १ सूत्र ५६ में कही है—

नियतकारणात् तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत्।

जिस प्रकार अन्धकार का नाश उस के विरोधी प्रकाश से होता है वैसे ही अज्ञान का नाश ज्ञान प्राप्ति से होता है। इस प्रसंग में गीता का प्रतिपाद्य कर्मयोग है या ज्ञानयोग इस विवाद में न पड़ना ही उचित है, यह व्याख्यान आज के प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्ध नहीं रखता, क्योंकि निबन्ध के प्रारम्भ में जो सिद्धि शब्द का प्रयोग किया गया है उस की गीता के साथ एक नई और विशिष्ट संगति दिखाना ही यहाँ अभिप्रेत है।

कपिलजी के मत में सिद्धि का तात्पर्य न कर्मसिद्धि है न ज्ञानसिद्धि, किंतु कुछ और ही है, अन्य सांख्यकारों ने भी इस का खास मतलब से प्रयोग किया है। यथा—

सिद्धिरष्टधा।

—सां० द० ३।४०

पञ्च विपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः ॥४७॥

—सांख्य का०

इन दोनों उद्धरणों में सिद्धियाँ आठ हैं यह कहा है, पर सांख्यकार ने यह स्पष्ट नहीं कहा कि वे कौन सी हैं, इस का खुलासा कारिका में है—

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः। दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः ॥ ५१ ॥

इस कारिका का अर्थ करने में व्याख्याता लोग एकमत नहीं। पाठकों को इस का यथार्थ अभिप्राय समझने में सुविधा हो, इस लिए पहले यहाँ पूर्वपरंपरागत अर्थ दिखाया जाता है, तत्पश्चात् गीता के साथ तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए, अपना अभिप्राय प्रकट किया जायगा। पूर्व व्याख्या के लिए 'स्वामी हरिहरानन्द आरण्य' कृत अनुवाद देना काफी होगा—

ऊह, शब्द, अध्ययन, सुहृत्प्राप्ति, तीन दुःख विघात और दान ये आठ सिद्धियाँ हैं। विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि इन के विरोधी हैं।

ऊह माने प्रतिभा, प्रतिभा या अपने पूर्वसंस्कार से जो तत्त्वज्ञान होता है उस को ऊह वा तार सिद्धि कहते हैं। दूसरे का वाक्य सुनकर जो तत्त्वज्ञान होता है उसे शब्द वा सुतार सिद्धि कहते हैं। स्वयं पढ़ने से जो तत्त्वज्ञान हो उसे अध्ययन सिद्धि वा तार तार सिद्धि कहते हैं। गुरु, सहपाठी या मोक्षपथ के सहायक से मिलना चौथी सुहृत्प्राप्ति या रम्यक सिद्धि है। इस के बाद साधनों द्वारा त्रिविध दुःखविघात नामक सिद्धियाँ होती हैं, जिन्हें प्रमोद,

मुदित और प्रमोदमान भी कहते हैं। अन्तिम दान वा अवदान सिद्धि है जो सिद्धियों की सम्यक् निर्मलतारूप विवेकख्याति कही जाती है, इसे सदा प्रमुदित भी कहते है। इस प्रकार तार, सुतार, तारतार, रम्यक, प्रमोद, प्रमुदित, प्रमोदमान व सदा प्रमुदित ये अष्ट सिद्धियाँ मोक्षमार्ग की सहायक हैं।

अब गीतानुसार इन का स्फुटीकरण किया जाता है—

सांख्यदर्शन गीता के आधार पर रचित है यह बात पण्डितसमाज में विदितप्राय होगी ही, अत हमारे मतानुसार इन सिद्धियों का उल्लेख गीता के अध्याय २ श्लोक ७–८ में है। यथा—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥

'दैन्यदोष से मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है, अत मुझे धर्म के विषय में व्याकुलता है। अतः आप से पूछता हूँ कि यथार्थ कल्याणकारी कर्तव्य बताइए, मुझ प्रपन्न शिष्य को योग्य आदेश दीजिए। पृथ्वी का निष्कंटक राज्य या इन्द्रपद पाकर भी इन्द्रियों को सुखानेवाला यह मेरा शोक दूर न होगा।' यहाँ पर पूर्वोक्त सिद्धियाँ ही अनुस्मृत हैं जो कि मोक्षोपदेश के अव्यवहितपूर्वसिद्ध अधिकार को जनाती हैं।

गी० २–८ में अर्जुन भगवान् से प्रार्थना करता है कि ऐहिक व आमुष्मिक समस्त काम प्राप्त होने पर भी मेरा शोक दूर न होगा, आप इस का उपाय बताइए। यहाँ विचारणीय बात है कि ऐहिक राज्य-भोग तथा स्वर्गभोग की स्मृति अर्जुन को अवश्य हुई है तभी यह प्रार्थना संगत हो सकती है। इसी का नाम प्रतिभा या पारिभाषिक नाम ऊह है। यह सिद्धि उस को पूर्वभवीय संस्कारों से हुई है। फिर उसी श्लोक में अर्जुन कहता है कि 'मां शाधि।' 'शासु अनु-शिष्टौ' से शाधि बनता है और शासन का अधिकार सिर्फ वेद को ही है। यही बात व्यासजी ने 'शास्त्र-योनित्वात्' (वेद शास्त्रों से परमात्मज्ञान होता है) इस वेदान्तसूत्र में कहा है।

गीता के पंद्रहवें अध्याय में कहा है कि 'इति गुह्यतमं शास्त्रम्।' तात्पर्य यह है कि वेदशास्त्र का उपदेश ही अर्जुन चाहता है और भगवान् यही आज्ञा देते है—'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' (तुझे शास्त्र का ही प्रमाण मानना चाहिए)। इस को जो शब्दसिद्धि कहा गया है, उस का गूढ अभिप्राय यह है कि वेदोपदेश में अर्जुन की बुद्धि स्वभावसिद्ध है। इस मनोवृत्ति को स्वाभाविक श्रद्धा भी कहते है। इस तरह से प्रथमोक्त दो सिद्धियों का कटाक्ष इसी बात पर है कि पूर्वभवीय संस्कार से परम वैराग्य होकर वेद शास्त्र पर रुचि पैदा हो। इस के बाद अध्ययनसिद्धि है। इस का उल्लेख 'शिष्यस्तेऽहं' वाक्य से किया गया है। अर्जुन के प्रपन्न शब्द से प्रकट होता है कि वह श्री कृष्ण को गुरु व ईश्वर की अभेदबुद्धि से देखता है, जैसा कि उपनिषद् कहती है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

जिस का देवता और गुरु में एकसमान परम अनुराग है उस महात्मा के प्रति ही शास्त्रीय उपदेश रत्नों का प्रकाश होता है।

चौथी, पाँचवी और छठीं सिद्धि त्रिविध दुःखों का विघात है, इन का उल्लेख द्वितीय अध्याय के ४, ५, ६ श्लोकों में हो गया है, उन दुःख या तापों का विघात अर्जुन में अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि 'यच्छ्रेय स्यान्निश्चित ब्रूहि तन्मे' इस वाक्य द्वारा, उस को ४, ५, ६ वें श्लोकों में कथित दुःखनिवृत्ति के उपायों पर विश्वास नहीं है यह सूचित होता है।

सातवीं सिद्धि सुहृत्प्राप्ति है। अर्जुन को भाग्य से ही भगवान् सुहृद्रूप से मिले हैं। इस विषय में महाभारत में कहा है—

एकं सत्त्वं द्विधा कृतम्।

मानो एक ही व्यक्ति के दो अंश हो गये हों एसा गाढ सौहार्द उन दोनों का था। प्रकृत में यह समझना चाहिए कि अर्जुन भगवान् का शिष्य होने को तैयार हुआ तो भगवान् भी उस के गुरु होने को राजी हो गये।

आठवीं सिद्धि दान है। गुरु को सर्वस्व अर्पण कर देने की शलाका है। अर्जुन कहता है—

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥

'जिन के लिए हमें राज्यभोग और सुख चाहिए वे ही आचार्य, पितामह आदि सब कुछ छोड़कर युद्ध में मरने को खड़े हैं। ये मुझे भले ही मारते रहें तो भी मैं इन्हें पृथ्वी तो क्या त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी न मारूँगा।' यहाँ पृथ्वी का राज्य या त्रैलोक्य का राज्य गुरुओं के लिए छोड़ने की तो बात ही क्या, 'घ्नतोऽपि' पद से अपने प्राण तक त्यागने की तैयारी है। यह त्याग की चरम सीमा है और गुरु के लिए 'त्वां प्रपन्नम्' कहने से अर्जुन की त्यागबुद्धि की सीमा असीम हो गई है।

अब इस अर्थ के साथ अन्य व्याख्यानाओं का अर्थ मिलाकर पाठक देखकर उचितानुचित का निर्धारण स्वतः कर लेंगे। माता को अपना ही पुत्र सब से प्यारा लगता है, उसी तरह हमें भी यही अर्थ भाता है।

इन सिद्धियों के नामान्तर जो 'आरण्य' जी या और टीकाकारों से उल्लिखित हुए हैं उन के बारे में अनुमान से केवल इतना ही मालूम पड़ता है कि ये नाम मुमुक्षु की क्रमोन्नति को दर्शाते हैं ऐसा हो उन के शब्दगत अर्थ से प्रतीत होता है, नहीं तो वे केवल संज्ञामात्र हैं।

मनोभिरामा के प्रति

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी, 'किशोर' भिषगाचार्य)

मनपथिक ! आओ, प्रस्तुत करें कुछ आत्महित का पाथेय, माना कि यह सुषमापुञ्ज वास्तव में अनुपम सुन्दर है। परंतु पुष्पराज गुलाब ने इसे अपनी रूपमाधुरीमय लावण्यता और उज्ज्वल आभा इस लिए थोड़े ही प्रदान की है कि यह इस के द्वारा किसी सत्पथगामी के खिन्न हृदय को छिन्न भिन्नकर उस का कर दे सर्वनाश !

शुकराज ने अपनी सौन्दर्यमयी नासिका इसे इस लिए नहीं दी कि यह इस के द्वारा सौन्दर्यसौरभयुक्त पराग की अलौकिक सुगन्ध को खींचकर किसी प्रभु के प्रेमपुजारी को कर दे निराश ! जिस से पड़ जाय उस की आराधना में बाधा !

क्या उषा रानी ने इस लिए इस के अधराधर को लाल नवपल्लववत् बनाया है कि यह अपनी मृदुमन्द मुस्कान द्वारा किसी विक्षिप्त चञ्चल हृदयपद पर अपना मोहमय साम्राज्य स्थापित कर उसे कुचल दे और पटक दे दुःखदाव में !

क्या उस भोली अबोध मृगी ने इसे अपने विशाल नेत्र इसी लिए अर्पित किये हैं कि यह इन की वासनामय ज्वाला बनाकर किसी मानव के नेत्रपथ द्वारा उस की सघन हृदयकुञ्ज में प्रवेश कर किलोल करे ! यदि वह साथ न दे तो उस में लगा दे बड़वानल जिस से वह हो जाय उजाड़ और फिर कभी पनप ही न सके !

क्या प्रकृति नटी ने यह अनुपम सौन्दर्यमयी प्रभा इसे इस लिए सौंपी है कि यह इस के द्वारा उन्मन-मानस के हृदय पट पर भृकुटियों की भावभृंगी से वासनामय प्रेमसिक्त भावों को अङ्कित कर, उसे मायाजाल में डाल, काम का शिकार बना, वास्तविक सुख से फेंक दे कोसों दूर !

अपितु पथिक ! इस सुन्दरी को यह सौन्दर्य का वरदान इस लिए प्राप्त हुआ है कि यह इस के द्वारा संसार के उस मर्माहत, असहाय मानवशिशु को, जो लोभमोहरूपी चट्टान पर वासनारूपी काई से फिसलकर कामरूपी चोट से ही हो चुका है जर्जर ! वास्तविक सच्चे वात्सल्य प्रेम से सान्त्वना देकर उस के कष्ट का अन्त करके आनन्द से पुलकित कर दे। किंतु मनपथिक ! यह तो निश्चित है कि जो मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से भागता है कोसों दूर और बन चुका है पावन प्रेम का पुजारी ! जिसे अपना चुका है वास्तविक प्रभुचरणों का दृढ अनुराग उस मानव को यह सुन्दरी अपने माधुर्यमय सौन्दर्य द्वारा वासनायुक्त मोहजाल के फंदे में फँसा नहीं सकती, वहाँ तो निश्चय ही इसे माननी पड़ेगी हार।

इसी लिए तो इस सुन्दरी से बार बार अनुरोध है कि तू भूल जा वासनामय मोहकता को ! और अपना ले वास्तविक प्रेम ! और हो जा परम प्रियतम में तन्मय, तभी तो हो सकेगा प्रेम ! तथा इस क्षणिक यौवनसौन्दर्य के नष्ट होने पर भी सतत बढ़ता रहेगा तेरा प्रेम, और यहाँ होती रहेगी तेरी कदर ! और निश्चय ही अन्त में होगा परम रम्य कल्याण और मिलेंगे वास्तविक सुख ! शाश्वत शान्ति !! और अनन्त प्रेम !!!

ब्रह्मस्वरूप

(डा०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतान द्री शर्मा)

उपनिषदों में और गीता में भी ब्रह्म को नामरूप से रहित कहा है। जैसा कि इस वचन में दर्शाया गया है—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं, तथा रस नित्यमगन्धवच्च यत्।

—क० १ ३ १५

जो शब्दरहित है, स्पर्शरहित है, रूपरहित है, अव्यय है, रसरहित है और गन्धरहित है (वह तत्त्व मनुष्य को मृत्युमुख से छुड़ाता है)।

इसी प्रकार गीता में भी कहा है—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥

—गी० १२ ३

जो पुरुष मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी अकथनीय स्वरूप सदा अविकारी नित्य अचल निराकार और अविनाशी ब्रह्म की उपासना करते हैं वे उसी ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। किंतु इस के बारे में भाष्यकार कहते हैं कि—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः।

'एक दूसरे का कथन करने से ही ब्रह्म की सिद्धि हो सकती है।' एक उपनिषद् का वचन भी है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।

'ब्रह्म के यथार्थ ज्ञान के लिए गुरु के समीप जाना चाहिए।' मनुष्यमात्र का व्यवहार बिना वाणी के चलता नहीं चाहे कोई कैसा ही पहुँचा हुआ गुरु क्यों न हो ('मौनेनैव प्रावोचत्' यह न्याय राय के विषय में लागू नहीं है)। इसी लिए ब्रह्मज्ञान का उपदेश देना हो तो वाणी का व्यवहार अपरिहार्य है। ब्रह्मसूत्रकार भी "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" 'अब ब्रह्म का विचार किया जाता है' ऐसी प्रतिज्ञा करके लगभग सोलह चार अध्यायों वाले विशाल ग्रन्थ रच गये हैं। इन्हीं आदर्शों को स्मरण हुए शब्दों द्वारा ब्रह्म का वर्णन इष्ट ही नहीं आवश्यक भी है। कि बहुना यह मनुष्य का स्वभाव ही है कि उस का किसी वस्तु का ज्ञान उस का नामरूपात्मक वर्णन किये बिना होता ही नहीं चाहे वह नाम रूप कल्पित ही क्यों न हो परंतु चाहिए अवश्य। सब दार्शनिक ग्रन्थों में ब्रह्म नामक परम तत्त्व का थोड़ा बहुत वर्णन पाया जाता है प्रायः उन सब का समष्टात्मक प्रतिपादन एक ग्रन्थ में मिलता है जिस का नाम 'योगवासिष्ठ' है। साहित्य की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का वर्णन मनोग्राह्य है। आगे उस का सार दिया जाता है, जिस को पाठक मनोयोग से पढ़ेंगे इतनी इच्छा काफी है।

आकाशपरमाणुसहस्रांशभागेऽपि या शुद्ध
चिन्मात्रसत्ता विद्यते सा हि परमार्थसंवित्।

—१ २ ११ १

आकाश के परमाणु के हजारवें भाग के भीतर भी जो शुद्ध चिन्मात्र सत्ता वर्तमान है वही परमार्थ संवित् है। न वह दिखाई देती है और न वर्णन की जा सकती है न वह समीप है न दूर है। शुद्धात्मा का केवल चिद्रूप अनुभव किया जा सकता है (वर्णन नहीं)। वह सब कुछ है, सब की आत्मा

है और सब से रहित भी है। वह सब भूतों की आत्मा, शून्य व सत् असत् दोनो ही हैं। वह न वायु है न आकाश, न बुद्धि आदि है न शून्य, वह कुछ नहीं है फिर भी सब की आत्मा है, वह कोई ऐसा पदार्थ है जो आकाश से भी सूक्ष्म है। न वह काल है न मन, न वह आत्मा है न सत्ता असत्ता, न वह देश है न दिशाएँ, न वह कोई इन के बीच का पदार्थ है न अन्त का, न वह ज्ञान है और न अज्ञेय पदार्थ है।

वह संवेद्यरहित संवित् है, चेत्यरहित चिति है, वह संसार की परम पराकाष्ठा है। वह सब दृष्टियों की सर्वोत्तम दृष्टि है, वह सब महिमाओं की महिमा है और सब गुरुओं का गुरु है। वह सब प्राणीरूपी मोतियों का तागा है जो कि उन के हृदयरूपी छेदों में पिरोया हुआ है। वह सब प्राणीरूपी मिर्चों की तीक्ष्णता है, वह पदार्थ का पदार्थत्व है, वह सर्वोत्तम तत्त्व है। वह वर्तमान वस्तुओं की सत्ता है और स्वयं सत्ता और असत्ता दोनों है, सब जगह सब वस्तुओं से युक्त तथा सब भावों से मुक्त है। सब ओर उस के हाथ पैर हैं, सब ओर उस के सिर और मुख हैं, सब ओर उस के कान हैं, संसार की सब वस्तुओं को घेरकर वह स्थित है। वह इन्द्रियों द्वारा ज्ञायमान सब गुणों से रहित है और उन से युक्त भी है। सब का भरण करनेवाला किंतु असक्त भी है, सब गुणों का भोगनेवाला किंतु निर्गुण भी है। वह सब प्राणियों के भीतर और बाहर है, चर और अचर है। अतिसूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय है, वह दूर भी है और समीप भी है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल, भारी से भी भारी और अच्छे से भी अच्छा है। वह इतना बड़ा है कि उस के सामने सारा जगत् परमाणु के समान दिखाई पड़ता है, बल्कि नहीं भी दिखाई पड़ता। वह इतना सूक्ष्म है कि उस के मुकाबले सूक्ष्म आकाशतत्त्व भी अणु के सामने महामेरु जैसा स्थूल मालूम पड़ता है। वह आत्मा है, विज्ञान है, शून्य है, परब्रह्म है, श्रेय है, शिव है, विद्या है और परम स्थिति है। वह सब का अनुभवरूप अन्तरात्मा है, शरीर में वह सदा चिन्मात्ररूप से स्थित है। वह जगत्‌रूपी तिल का तेल है, जगत्‌रूपी घर का दीपक है, जगत्‌रूपी वृक्ष का रस है और जगत्‌रूपी पशु का पालनेवाला ग्वाला है।

वह जगत् में वर्तमान होते हुए भी नहीं है, वह शरीर में रहते हुए भी अत्यन्त दूर है, वह ऐसा प्रकाश है जिस से सूर्य का प्रकाश उदय होता है। उस से विष्णु आदि देवता इस तरह उत्पन्न होते हैं जैसे सूर्य से किरणें। उस से अनन्त जगत् ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्र से बुलबुले। उस की ओर तमाम दृश्य पदार्थ इस प्रकार जा रहे हैं जैसे समुद्र की ओर नदियाँ। वह सब पदार्थों को और आत्मा को दीपक की तरह प्रकाशित करता है। वह आकाश में, शरीर में, पत्थरों में, लताओं में, घाटियों में, हवाओं में और पाताल में सब जगह वर्तमान है। उस ने आकाश को शून्य, पहाड़ों को कठिन, जलों को बहनेवाला बनाया है।

जैसे बादल से वर्षा की बूँदें गिरती हैं वैसे ही उस अक्षय और पूर्ण अमृत से नाना प्रकार के संसार के दृश्य उदय होते हैं। जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदियाँ दिखाई पड़ती हैं वैसे ही उस में त्रिभुवन की उदय और अस्त की लहरें उठा करती हैं। उस सर्वसत्ताओं से परे की सत्तावाले के कारण ही नियति, देश, काल, गति, स्पन्दन और क्रिया की सत्ता है। परमात्मा का वह महान् ज्ञानात्मक रूप है जिस में

संसार का अत्यन्त अभाव रहता है, यद्यपि देखने में वह मौजूद है। परमात्मा का वह शून्य रूप है जिस में वर्तमान होता हुआ भी दृश्य जगत् अस्त रहता है। यह परमात्मा का ऐसा रूप है कि महाज्ञानरूप होते हुए भी भारी शिला की नाईं जड़ सा प्रतीत होता है। जैसे मशाल के घुमाने से उस में चक्र दिखाई देता है और उस को स्थिर कर देने से गायब हो जाता है ऐसे ही जब ब्रह्म में स्पन्दन होता है तो संसार की शोभा उदय हो जाती है और जब शान्ति हो जाती है तो जगत् का दृश्य लुप्त हो जाता है।

इस तत्त्व का यथार्थ सच्चा स्वरूप तब अनुभव में आता है जब कि मन वृत्ति को क्षीण करके अपना अन्त कर दे। इस तत्त्व का रूप वह है जिस में दृश्य जगत् का अभाव है और दृश्य का अभाव होने से द्रष्टा का भी अभाव सा ही हो जाता है, केवल प्रकाशमात्र का अनुभव सा रहता है।

जीवस्वभाववाली चिति की चेत्य की ओर प्रवृत्ति न होने पर जो शान्त कलारहित व चिन्मात्र स्थिति होती है वही परमात्मा का स्वरूप है।

चिदाकाश पुरुष की उस स्वाभाविक अवस्था को कहते हैं जिस में निद्रा भी न हो और मन के समक्ष कोई विषय भी न हो, चिदाकाश शरद् ऋतु के निर्मल आकाश की तरह है जिस में मृत्यु, दृश्य, दर्शन और चिन्तन कुछ भी नहीं। चिदाकाश वह विकाररहित तत्त्व है जिस से और जिस में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों का उदय और अस्त होता है, जिस में सब पदार्थों के अनुभव उदय होकर परिवर्तित होते रहते हैं, जो कुछ भी न होता हुआ सदा सब कुछ है। जो मैल-रहित, कल्पना से मुक्त, शान्त, सत्, चित्, प्रकाशमय है, जो अमूर्त होता हुआ भी मूर्त है, मनन करता हुआ भी पत्थर के तुल्य जड़ है, भोक्ता होने पर भी निस्पृह है और कर्ता होने पर भी कुछ न करनेवाला है। जैसे दीपक के मौजूद होने पर व्यवहार होता रहता है वैसे ही इस प्रकाशमात्र विस्तृत साक्षी के रहते हुए चित्त की क्रियात्मक इच्छाएँ प्रवृत्त होती रहती हैं। जैसे कटक, अङ्गद, केयूर आदि भूषणों के रूप में सोना प्रकट होता है वैसे ही यह भी सैकड़ों पदार्थों के झूठे आकार में अन्य सा होकर प्रकट हो रहा है। इस से ही काल की गति है, दृश्य की दृश्यता है, मन की क्रिया है, इसी के प्रकाश में यह जगत् प्रकाशित हो रहा है। वह परमाणु से भी परे है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, आकाश के भीतरी भाग से भी शुद्ध सूक्ष्म और शान्त है। उस परम रूप की उपमा जड़ पदार्थों के रूप से दी जा सकती है, यदि वे मन बुद्धि आदि से मुक्त होते हुए भी बोधमय हो जायँ। जो चिदात्मा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या और तुर्यातीत अवस्थाओं में सदा सब जगह समान रूप से स्थित है उस की ही हम उपासना करते हैं। वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परे होने के कारण अवर्णनीय है, केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह कोई बहुत उत्तम, सूक्ष्म, सर्वात्मक शुद्ध अनुभवमात्र तत्त्व है जो कि सब कुछ है, वह न सत् है न असत्, न दोनों का मध्य, वह कुछ भी नहीं तो भी सब कुछ है, वह मन वचन में आनेवाली कोई वस्तु नहीं है, वह शून्य से शून्य और सुख से भी अधिक सुखरूप अर्थात् परमानन्द है।

(यो० वा० के आधार से)

युद्ध

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी संन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त। त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥

—केन १४

उपनिषद् का प्रसंग है—एक समय देवता और असुरों के युद्ध में देवगणों को विजयलक्ष्मी प्राप्त हुई। यह विजय ब्रह्म यानी परमेश्वर की महिमा से देवताओं को मिली थी। देवताओं का पक्ष सात्त्विक था, धर्मानुमोदित था; दैत्यों का ऐसा नहीं था, इसी से 'यतो धर्मस्ततो जयः' न्याय से देवता लोग जीत गये। यद्यपि देवताओं के हितार्थ ब्रह्म ने राक्षसों को पराजित किया था, तथापि उस जयलाभ से देवताओं ने अपने को गौरवान्वित समझा। उन्होंने निश्चय किया कि यह विजय और महिमा हमारे अतिरिक्त और किसी की नहीं है, यह जो कुछ किया गया है या हुआ है, हम ने किया है, हमारे बल वीर्य और बुद्धि से हुआ है।

लड़ाई चाहे जिस की हो, इष्ट नहीं है। देवासुर लड़ते हैं, यह भी ठीक नहीं है, पर लड़ाई होती जरूर है। क्यों होती है ? इस के अनेक कारणों में से यह एक प्रधान हेतु है कि 'यह मृत्युलोक या मर्त्यलोक चतुर्दश भुवनों के चौथे भाग का एक हिस्सा है, क्योंकि भूलोक के चार अंश हैं, नरकलोक, पितृलोक, प्रेतलोक और मर्त्यलोक।' भूलोक चौदह भुवनों में से एक भुवन है। चौदह लोकों में सात लोक ऊपर हैं और सात ही नीचे हैं, ऊपर के सात लोकों में देव-श्रेणी के जीव निवास करते हैं और नीचे के सात लोकों में असुरगणों का निवास है। संसार में यह बात देखी जाती है कि जो लोग ऊँची श्रेणी के हैं, यानी राजा, महाराजा, सेठ, जमींदार, मिलमालिक, गृहस्वामी और महंत आदि स्थिर स्वार्थी धनी जीवों का समुदाय है; वह आराम से रहता, खाता और जो चाहे सो करता या करा सकता है। वह गिरोह किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता, वह क्रान्ति का नाम सुनकर कॉंप जाता है। क्योंकि क्रान्ति से अपरिमित ऐश्वर्यसंभार धूल में मिल जाने का डर रहता है।

जैसे यह समुदाय अपने निरङ्कुश अधिकार में किसी का किसी तरह का हस्तक्षेप करना पसंद नहीं करता, उसी प्रकार देवतागण सर्वप्रकार से सर्वैश्वर्य-भोगपरायणता के कारण अपने अधिकार में किसी की दस्तंदाजी नहीं चाहते, वे जैसी स्थिति में अब हैं वैसी ही में सदा रहना धर्मानुकूल समझते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि सभी प्राकृतिक पदार्थ परिवर्तनशील हैं, कोई वस्तु सदा एकरस नहीं रह सकती, जब यह बात है तो राजा और महंतों के वे वैभव के ठाट उसी चमकीली सूरत मे तरो ताजा न रहकर सदा के लिए मिट जायँगे। धनी तथा देवता अपने किसी व्यवहार में परिवर्तन नहीं चाहते, इसी लिए वे अपने समबल असुरों के राज्य को छीनने का यत्न नहीं करते। अपने बराबरिये असुरों के साथ किसी तरह की छेड़ छाड़ नहीं करते। क्यों करें ? उन के पास सब कुछ है ही, वे विलासी जीवन को छोड़कर युद्ध की आग में क्यों कूदने लगे ?

किंतु नीचे के सप्तलोक के असुरगण सर्वदा देवा-

धिकार छीनने में प्रयत्नशील रहते हैं। जैसे जो अकिञ्चन हैं, जिन के पास जीवनधारणोपयोगिनी सामग्री का अभाव है, जो अपने वैध अधिकार के उपयोग से भी वञ्चित हैं, वे आन्दोलन करते हैं, वे क्रान्ति चाहते हैं, वे पूँजीपतियों के स्थिर स्वार्थ को सदा एक जैसा कायम नहीं रहने देना चाहते, इसी से झगड़े होते हैं, यही देवासुरसंग्राम का रहस्य है। स्थिर स्वार्थी अपना तिल भर भी स्वार्थ नहीं त्यागना चाहता और हृतस्वार्थजन अपने लिए स्वार्थ चाहता है। बस, इसी संघर्ष का नाम उस समय 'युद्ध' हो जाता है, जब एक अपने स्वार्थ को शस्त्रबल से सुरक्षित रखना चाहता है और दूसरा शस्त्रों आदि की सहायता से उसे प्राप्त करने का उद्योग करता है।

शास्त्रों में देवकोटि के लोगों की बड़ी प्रशंसा की गई है और साथ ही असुरों की निन्दा भी। क्योंकि देवता सात्त्विक हैं, या राजस हैं और असुर तामस प्रकृति हैं। यों तो सारा जगत प्रपञ्च सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से परिपूर्ण है संसार का कोई पदार्थ इन से खाली नहीं है। किसी भी जीवन को उन्नत बनाने के लिए सत्वगुण जैसा उपयोगी है वैसा दूसरे दोनों नहीं हैं। यद्यपि ये गुण सर्वत्र परस्पर मिले रहते हैं, पर विशेषता यह है कि कहीं सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है और कहीं रजोगुण तथा तमोगुण की।

सत्त्व और रजस्तमःप्रकृतिजनों की आपस में पटरी नहीं बैठती। इन का मेल नहीं होता, प्रत्युत कलह युद्ध हुआ करता है, सत्त्वगुण प्रीतिस्वरूप होने के कारण सुखप्रद है, यह सरलता, सत्य, पवित्रता, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, दया, लज्जा, शान्ति और सन्तोष आदि विशिष्ट योग्यता का स्थान है। रजोगुण अप्रीतिकर होने से दुःखरूप है, उस में पुष्कल द्वेष, द्रोह, ईर्षा, मान, अजितेन्द्रियता और गर्व भरा रहता है तथा तमोगुण में आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कृपणता, कुटिलता, रोष, विषमता, अत्यन्त नास्तिकता और परदोषदर्शन आदि उत्पात भरे रहते हैं। सत्त्वगुण का वर्ण श्वेत, रजोगुण का लाल और तमोगुण का रंग काला कहा गया है। इसी से देवता सुन्दर बताये जाते हैं और असुरों को कुरूप कहा गया है। जैसे शास्त्रों में देवताओं को सब प्रकार से उत्तमोत्तम कहा गया है और उन के ऐश्वर्य भी अपरिमित लिखे हैं, उसी प्रकार का वैभव लोक में धनी समाज, ऊँची श्रेणीवालों का माना गया है, उन के लिए आराम के सभी सुभीते एकत्र किये गये हैं। भला ऐसी विषमावस्था में एक की दूसरे से लट्ठलट्ठा, केशाकेशी, मुष्टामुष्टी न हो तो और क्या हो ? एक को आकाश पर चढ़ा दिया जाय और दूसरे को पाताल में घुसा दिया जाय तो वहाँ मेल जोल का क्या काम है ?

इसी तरह यह भी कहा गया है कि मनुष्यों में भी दैवी संपत्तिसपन्न और आसुरी संपत्तियुक्त व्यक्तियों का संघर्ष सदा होता रहता है। संसार के मनुष्येतर अन्यान्य जीव अपने सहज स्वभाव के कारण एक दूसरे से शत्रुता रखा करते हैं, अतएव लड़ते रहते हैं। वे अपने स्वभाव में परिवर्तन नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करने की उन में क्षमता नहीं है। किंतु मनुष्य के लिए अपने स्वभाव में परिवर्तन कर लेना संभव है, अभ्यास करने से वह सब कुछ करने में समर्थ है। यदि 'स्वभावो दुरतिक्रमः' स्वभाव मिटाया नहीं जा सकता, यह बात सच हो तो उस के प्रवाह की धारा एक ओर से दूसरी तरफ तो फेरी जा सकती है। जैसे कोई महा तामसी मनुष्य है, वह सब से सदा झगड़ा ही करता रहता है, उसे यह विचार नहीं

कि 'यह योग्य पुरुष है, इस से विवाद करना अशिष्टता है।' यदि ऐसा मनुष्य अपने खराब स्वभाव को मिटा नहीं सकता तो अभ्यास करने पर उस स्वभाव की उग्रता को दुराचारियों के विरुद्ध प्रयुक्त कर सकता है। यदि उस क्रोधी स्वभाव को पापों के विरुद्ध काम में लाया जाय तो बहुत से अत्याचार कम हो सकते हैं। कहने का प्रयोजन यह है कि मनुष्य चाहे तो संसार से सब झगड़े मिटा दे। यदि त्रिगुणात्मिका सृष्टि के वैषम्य से ऐसा करना संभव न हो तो कम से कम लड़ाई दंगे कम तो अवश्य हो जाँय। और जो हों भी तो उन की भयंकरता कम हो सकती है।

लड़ाई झगड़ों को सभी बुरा बताते हैं, पर इन्हें मिटा कोई नहीं सकता। विद्वान्, धनी, मानी, वीर, शूर, क्रूर, स्त्री, पुरुष सब लड़ते रहते हैं। जो लड़ते नहीं हैं वे लड़ाकुओं से सहयोग तथा संपर्क रखते हैं। ऋषि, मुनि, भक्त, संत ये सब शान्त कहाते हैं, ये किसी के चित्त को चोट नहीं पहुँचाना चाहते, ये सब के साथ आत्मवत् व्यवहार करते हैं। पर उपासना राम, कृष्ण, देवी आदि देवताओं की करते हैं, जिन के हाथ में सदा शस्त्रास्त्र रहे हैं और बराबर लड़ते रहे हैं। जगत् में उन्हीं देवताओं की पूजा होती है जो हमेशा मरने मारने, कटने काटने को तैयार रहते हैं। विष्णु लड़ाके हैं, इसी से भक्त लोग हँस हँसकर उन के लड़ाई के कारनामे पढ़ा करते हैं। जब देवी माता राक्षसों के मस्तक को छेदन करके उन का रुधिर पान करने के लिए अपना खप्पर भरा करती हैं, प्रतिमा के उस दृश्य को देखकर या तत्संबन्धी कथा को बाँच सुनकर भक्त लोग फूले अङ्ग नहीं समाते। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का पाठ पढ़नेवाले वेदान्ती लोग गीता को बड़ा महत्त्व देते हैं, किंतु वह प्रारम्भ होती है लड़ाई के कथानक से। उस का संग्रह भी युद्धभण्डार महाभारत से किया गया है। रामायण में लड़ाई भरी पड़ी है। प्रतीत होता है, अतः राम की विजय हुई, अतः आज घर घर में उन की पूजा हो रही है। यदि रावण विजयी हो जाता तो जगत् में उसी की प्रशंसा के गीत गाये जाते। इस का अभिप्राय यह हुआ कि पूज्याऽपूज्य की योग्यता युद्ध के कारण हुई। भागवत, शिवपुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों में युद्ध की वार्ता बड़े विस्तार से अच्छे रोचक ढंग से वर्णन की गई है। यहाँ तक लिखा गया है कि लड़ाई में आगे बढ़कर कट मरनेवाले की वही गति होती है जो योगी संन्यासी को प्राप्त होती है।

आज जो सुखी देखने में आते हैं, पहले उन के पूर्वजों ने लड़ाइयों में रणचण्डी देवी को अपने ऊष्ण रक्त से स्नान कराकर उन के चरणों में अपने नरमुण्डों के श्रीफलों को उपहाररूप से समर्पण किया था। उस त्याग के पुण्य प्रताप से आज भाग्यशाली कहे जानेवाले कुछ मुट्ठी भर लोग महलों की सातवीं मंजिल पर बैठे, सोने की थाली में हलुवा खा रहे हैं। यदि उन के प्रचण्ड भुजदण्डों में खड्ग धारण करके रणाङ्गण में आने की सामर्थ्य होगी और अपना सिर देने तथा दूसरों का मस्तक लेने का साहस होगा तो वे धरातल के सब भोगों के निःसंदेह फिर से एकमात्र मुख्य अधिकारी होंगे। यह काम युद्ध से होता है, जिन लोगों को पहले जो सफलता प्राप्त हुई है वह युद्ध से हुई है।

शंकरजी जंगल में निवास करते हैं। कैलाश जो उन का प्रधान निवासस्थान था, उस को उन्होंने कुबेर को दे दिया। खुद दिगम्बर या व्याघ्राम्बर हैं, शरीर में भस्म लेपन कर रखा है, हाथ में कपाल है, पर एक हाथ में त्रिशूल है, इस का युद्ध के लिए उपयोग भी किया करते हैं। विष्णुजी के चार हाथों में

दो हस्त आयुधोंवाले हैं। अष्टभुजा भगवती के अधिकांश हाथों में मुशल, चक्र, धनुष, बाण आदि देखने में आते हैं। इसी प्रकार इन्द्र, कुबेर, यम, सूर्य आदि देवताओं की भी ऐसी ही स्थिति है। वहाँ तक कहें जो प्रधान देवता हैं, वे सब लड़ा करते हैं और इसी लिए उन के पास खास खास शस्त्रास्त्र भी होते हैं। ब्रह्माणी के हाथ में शस्त्र नहीं है इसी से उन का मन्दिर कहीं कहीं भूल से बना दियागया है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि युद्ध उपादेय है, रमणीय है, करणीय है और आवश्यकीय है। हम ने तो वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराया है।

कोई सज्जन युद्ध को आवश्यक भी मानते हैं वे समझते हैं कि आपस के झगड़े का निपटारा बिना युद्ध के नहीं हो सकता। संसार में दो ही तो विद्या हैं, एक शस्त्रविद्या और दूसरी शास्त्रविद्या। उन का कहना है कि 'शस्त्रेण रक्षिते देशे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते' अर्थात् जो देश, राष्ट्र शस्त्र से रक्षित नहीं होगा, वहाँ कोई भी शास्त्र का विचार नहीं कर सकता। भाव यह हुआ कि जिस देश में लड़कर दुष्टों को न कुचल दिया जायगा, वहाँ कोई पोथी पत्रे कैसे बाँच सकता है? ग्रन्थाध्ययन करना और माला फेरना तो शान्त वातावरण में ही हो सकता है।

हम समझते हैं यह बात ठीक नहीं है। युद्ध से विजेता अपने प्रभाव से निज विचारों को दूसरों पर लादता है और जिस शान्ति की स्थापना करता है वह स्थायी नहीं होती। स्थायी शान्ति बिना मनोवृत्ति के परिवर्तन के नहीं हुआ करती और यह काम शिक्षा या उपदेश से जैसी अच्छी तरह हो सकता है वैसा और किसी तरह होना सम्भव नहीं। वास्तविक योग्यता का विकास, चरित्रगठन, आत्मनिर्भरता, उत्तरदायित्व का अनुभव, स्वास्थ्य की उन्नति, देशप्रेम, जातीय अनुराग आदि की भावना, यह सब शिक्षा और उपदेश से हो सकता है। उपदेश लोकसंग्रह को बनाता है, लोकसंग्रह या सदाचार की स्थिति सामाजिकता, सहृदयता, समवेदना और न्यायपरता आदि भावों पर है, युद्धवाद के साथ इन भावों की स्वाभाविक शत्रुता है। शत्रुओं को मार गिराकर उन की स्त्रियों को विधवा करना, उन के बच्चों को मातृपितृविहीन करना और उन के मुख का ग्रास छीनकर उन्हें दर दर का भिखारी बना देना ही तो युद्ध का उद्देश्य होता है। तब युद्धनीति में सहानुभूति, सहृदयता, समवेदना और न्यायपरता कहाँ रह गई? युद्ध एक बड़ा अभिशाप है जो मित्रता, जीवनगति और उन्नति का कट्टर शत्रु है तथा *निर्दयता*, *निष्ठुरता*, *क्रूरता* और स्वार्थपरता का पक्का मित्र है। प्रकृति के साम्राज्य में रहकर उस के नियम को मानने में ही कल्याण है, प्रकृति सच्चरित्र को पसन्द करती है यानी उसे कार्यक्षेत्र में काम करने के लिए चुनती है। और दुश्चरित्र को मिटाती है, यानी उसे कार्यक्षेत्र से हटा देती है। युद्ध करना दूसरों की शान्तिभङ्ग करना सच्चरित्रता में दाखिल नहीं है। "आततायियों को दण्ड देने के लिए युद्ध से बढ़कर और कोई सफल प्रयोग नहीं है" ऐसा कहनेवालों को इस ऐतिहासिक सत्य को न भूल जाना चाहिए कि 'एक युद्ध चाहे कितने ही मीठे फल के परिणाम का क्यों न जन्म दे, पर उस की कोख में एक बहुत बड़े महायुद्ध का बीज निहित है।' युद्ध के बाद की शान्ति ऐसी होती है जैसी लगी हुई आग के बुझ जाने पर चिनगारी राख में दबी रह जाती है।

यदि सचमुच कोई युद्ध के लिए लालायित ही है तो वह दारिद्र्य, व्याधि और अज्ञान के साथ लड़े। इन के साथ युद्ध करने में सच्ची शूर वीरता है। स्मरण

रहे कि युद्ध करने में अपनी बढ़ी हुई शक्ति से दूसरों को धर दबाने में, उन के घर बार, वस्तु संपत्ति को जबरदस्ती छीन लेने में कोई बीरता नहीं, किंतु यह नामर्दी, कायरता, भीरुता और कापुरुपता का ही परिचायक है। यह काम तो डाकू लुटेरे भी कर सकते हैं। इतिहास के प्रमाण से सिद्ध है कि विजयी व्यक्तियों और जातियों को भी युद्ध के द्वारा स्थायी लाभ नहीं हो सकता। आज प्राचीन समय के समुन्नत मिश्र, रोम, असीरिया और वैविलोन कहाँ हैं? आज सिकंदर के जन्मदाता यूनान की क्या हालत है? क्या महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के ऊँचे अड्डे खड्डों मे परिणत नहीं हो गये हैं? सैनिक-समाज कभी उन्नतिशील नहीं हो सकता। आज्ञाधीनता के कारण सैनिकसमाज में व्यक्तित्व और स्वतन्त्रता को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। जो युद्ध द्वारा दूसरों का शोषण करता है प्रकृति उस से दूसरे प्रकार से बदला लेकर उसे मिटा देती है। सैनिकशासन में न दलील को दखल है, न अपील का ठिकाना है और न वकील का ही पता लगता है, वहाँ तो मारो, काटो, बस यही ध्येय रहता है, लोग दुखी हो जाते हैं। पर युद्ध के बन्द होते ही हवा बदल जाती है।

युद्ध मनुष्य के भाग्याकाश का राहु है, संसार मे जितनी उन्नति हुई है, वह सब शान्ति का ही फल है। शान्ति के द्वारा ही हमें विचार और मनन करने का समय प्राप्त होता है। शान्ति ने ही हमे ज्ञान, विज्ञान सिखाया है। युद्ध दासता का जनक और स्वतन्त्रता का शत्रु है। विकास के लिए स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। युद्ध के कारण मनुष्य को अपने स्वभाव और प्रकृत झुकाव के अनुसार बढ़ने और फलने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

अधिक क्या कहें, इस समय युद्ध के प्राचीन इतिहासों को दुहराकर उस की विभीषिका और लाभ हानि सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि यह युद्धकाल है। सारे संसार में युद्ध की आग लगी हुई है, हमारे देश के द्वार पर भी युद्ध की अग्नि सुलग रही है, न मालूम वह कब धधक उठे। इस समय जीवनोपयोगी सामग्रियाँ दुष्प्राप्य हो गई हैं, खाने पहरने की वस्तुएँ मिलनी कठिन हैं। आगे चलकर पानी तथा प्रकाश भी मिलना बंद हो जाय तो आश्चर्य नहीं है। यूरोप की पहली लड़ाई ने इस युद्ध को जन्म दिया, अब यह न मालूम किस प्रलयंकरी अशान्ति की जनक होगी?

जो भी हो, युद्ध सदा से होते आये हैं और आगे भी होते रहेंगे। यदि मनुष्य ने अपनी स्वार्थमयी मनोवृत्ति न बदली तो यह संसार स्वर्ग से नरक हो जायगा। कोई पूछे कि मनुष्यसमाज की व्यवस्था को आमूल परिवर्तित या नष्ट करनेवाला विपैला गोला कौन है? तो सारे संसार की तरफ से उत्तर मिलेगा कि 'युद्ध'।



योगादेव तु कैवल्यम्

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

मन को वश में किये बिना कोई काम नहीं हो सकता, मनोनिग्रह योगाभ्यास पर निर्भर है। योगी जो काम घण्टों या मिनटों में अनायास बना लेता है, उसे अयोगी जन्म भर में भी पूरा नहीं कर सकता। हम ने ऐसे संतों को देखा है जो कुछ भी पढ़ना लिखना नहीं जानते, किन्तु वचन ऐसे बोलते हैं मानो वेद शास्त्र के वचनों का आनुपूर्वी अनुवाद हो। यह चित्तवृत्तिनिरोध का परिणाम है। जब से देश में योग की प्रणाली जाती रही तब से नई बात तो क्या, प्राचीन लोगों की आविष्कृत विद्या को समझने तक की योग्यता नहीं रही। हमारे सभी धार्मिक कृत्यों में योगाभ्यास करने की विधि है। द्विजातियों के सन्ध्यावन्दन का योग एक प्रधान कर्माङ्ग है। हम आज योग के विषय में कुछ कहना चाहते हैं। हम चाहते हैं इस अत्यन्तोपयोगी प्रणाली का फिर पुनरुज्जीवन हो। योगी की अथ से इति तक की जीवनचर्या का संक्षिप्त विभाग सप्त ज्ञानभूमिका द्वारा कहा गया है, यथा—

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया स्यात् तृतीया तनुमानसा॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका।
परार्थभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता॥

१—शम, दमादिपूर्वक विवेक वैराग्य से युक्त पुरुष को जब आत्मकल्याण की तीव्र इच्छा होती है, वह 'शुभेच्छा' नामिका ज्ञान की पहली भूमिका कही गई है।

२—जिस में श्रवण, मनन आदि हों वह 'विचारणा' नामिका ज्ञान की दूसरी भूमिका है।

३—नाना विषयों का समादृक मन सब विषयों का परित्याग करके जब एक विषय (ब्रह्म) में ही वृत्ति के प्रवाहवाला हो जाता है वह, तनु (सूक्ष्म) मन की निदिध्यासनरूप 'तनुमानसा' नाम की तीसरी ज्ञानभूमि कही गई है।

४—इन तीन भूमियों से शुद्ध हुए अन्तःकरण में 'मैं ब्रह्म हूँ' यह जो ब्रह्म की अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) वृत्ति है वह 'सत्त्वापत्ति' नाम की चौथी भूमिका है। इन चारों में अगली जो तीन भूमिकाएँ कही जायँगी वे असंप्रज्ञात योग भूमिका कहाती हैं।

५—सत्त्वापत्ति के अनन्तर इस सत्त्वापत्ति भूमिका में उपस्थित हुई जो सिद्धि है उस में असंसक्त योगी की 'असंसक्ति' नाम की पाँचवीं ज्ञानभूमिका कहाती है। इस में योगी स्वयं व्युत्थित होता (उठता) है।

६—जिस में परब्रह्म से भिन्न की भावना (विचारणा) नहीं है वह 'परार्थाभाविनी' नाम की छठी भूमिका है, इस में योगी दूसरे के उठाने से व्युत्थित होता है।

७—जिस में तुरीय पद में योगी पहुँच जाय वह 'तुर्यगा' नाम की सातवीं भूमिका है, ये श्रेणियाँ (मंजिलें) हैं, जो योगी को क्रम से तय करनी पड़ती हैं।

सुख सब चाहते हैं, भगवान् ने गीता में सुख का साधक योग को ही बताया है, यथा—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नचाऽयुक्तस्य भावना ।
नचाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥
—गी० २।६६

जो योगी नहीं है, उसे बुद्धि नहीं है, न भावना ही है, भावना के विना शान्ति कहाँ? जब शान्ति ही नहीं फिर सुख कैसे मिल सकता है ? अतः योग ही सुख का साधन है।

वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव,
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा,
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥
—गी० ८।२८

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।

वेद, यज्ञ, तप, दान से जो पुण्यफल मिलता है, सब को योगी उल्लङ्घन कर देता है और परब्रह्मरूप उत्तम सनातन पद को प्राप्त होता है।

भगवान् ने योग के जिज्ञासु को भी उत्तम कहा है, फिर योगी का तो कहना ही क्या है ? यद्यपि व्यासजी ने ब्रह्मसूत्रों में योग का कुछ खण्डन किया है, पर उस का अभिप्राय यह है कि उन्होंने भेदरूप अंश की ही समालोचना की है, भावना विशेष रूप योग का प्रत्याख्यान नहीं किया है। पुराणों के अनुसार योग के अधिकारी सभी है।

यथा—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्री शूद्राणाञ्च पावनम् ।
शान्तये कर्मणामन्यद् यद्योगान्नास्ति मुक्तये ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री, इन को पवित्र करनेवाला, कर्मों की शान्ति के लिए मुक्तिप्राप्त्यर्थ योग से बढ़कर और कोई मार्ग नहीं है।

अत्याहार, प्रयास, प्रजल्प, नियमग्रह, जनसंग और चपलता ये योग के विनाशक हैं। और उत्साह, साहस, धैर्य, तत्त्वज्ञान, निश्चय, तथा जनसंग का परित्याग ये योगाभ्यास के साधक हैं। योगी को अभ्यास के योग्य कौन स्थान उपयुक्त होगा इस का परिचय गुरु तथा आकर ग्रन्थों से करना चाहिए। योगग्रन्थों में उस मठ का वर्णन अच्छी तरह किया गया है जहाँ योगसाधन सफलता से हो सकता है। यद्यपि सद्यः चमत्कारक फलप्रद होने के कारण हठयोग की उपादेयता सर्वजन विदित है। किंतु इस में जरा भी वैगुण्य होने से साधक जन्म भर के लिए निकम्मा हो सकता है। इस में गुरु की सहायता की आवश्यकता हरदम बनी रहती है। सही तो यह है कि यह शुरू से आखिर तक गुरु के सान्निध्य के बिना संपन्न नहीं हो सकता। किंतु राजयोग के लिए प्रायः ये बातें नहीं हैं। यह हानिप्रद भी नहीं होता और जितना इस विषय का अभ्यास किया जाय उतना ही उपयोग में आ सकता है। इस में प्रत्येक क्रिया समभाव से होनी चाहिए, अतिशयता नहीं; किसी भी काम में अति करना नीतिविरुद्ध है। इस लिए गीता में कहा है—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
—गी० ६।१६

बहुत खाने, बिल्कुल न खाने, बहुत सोने और बिल्कुल न सोने से योग नहीं होता। भाव यह हुआ कि योगसाधन के लिए अत्यन्त सात्त्विक होना आवश्यक है।

योग से ऐसी कोई सिद्धि नहीं है जो प्राप्त न हो सके। किंतु वास्तव में योग का उद्देश्य आत्मा और

परमात्मा का साक्षात् दर्शन करता है। इस में प्रवृत्त हुआ पुरुष, अपने परम उद्देश्य पर पहुँचने से पहले ही इतना शक्तिशाली हो जाता है कि उस को अध्यात्म और बाह्य, सारी शक्तियों का आधिपत्य प्राप्त हो जाता है। अगर साधक सिद्धियों के जाल में फँस गया तो उस तक ही रह जाता है, फिर आगे बढ़कर उस आस्पद को नहीं पा सकता जिस के लिए 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' यह वचन कहा गया है। जिसे नित्य आनन्द प्राप्त करने की भूख है वह सिद्धियों की सीमा से आगे बढ़े बिना तृप्त नहीं हो सकता।

चित्त की वृत्तियाँ क्षण क्षण में बदलती रहती हैं, यद्यपि उन की एक दिन की गिनती का भी कुछ ठिकाना नहीं है तथापि वे सारी 'प्रमाण' 'विपर्यय' 'विकल्प' 'निद्रा' और 'स्मृति' इन पाँच भेदों में आ जाती हैं। चित्त की अवस्था में भी 'क्षिप्त' 'मूढ' 'विक्षिप्त' 'एकाग्र' और 'निरुद्ध' ये पाँच प्रकार की होती हैं। इन में पहली अवस्था व्यवहारियों की, दूसरी नीचों की, तीसरी जिज्ञासुओं की और चौथी तथा पाँचवी योगियों की होती हैं, अर्थात् ये दो योग की अवस्थाएँ हैं। चौथी का नाम 'सम्प्रज्ञात योग' और पाँचवी का 'असम्प्रज्ञातयोग' है। इस पाँचवीं दशा में चित्त बिल्कुल रुक जाता है, यानी वृत्तिरहित हो जाता है अतएव कहा है—

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

निरोध के उपाय 'अभ्यास, और 'वैराग्य' हैं। चित्त को ठहराने का बार बार यत्न करना 'अभ्यास' है और चित्त का लोक परलोक की वासनाओं से रहित करना 'वैराग्य' है। अवश्य चित्त चञ्चल है, मगर उस के टिकाने का अभ्यास किया जाय तो वह स्थिर होकर ठहरना सीख जाता है। उस को न टिकने देनेवाली वासनाएँ होती हैं, ये चित्त को डुलाये रखती हैं। जब इन को छोड़ दिया जाय तो चित्त टिक जाता है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य से चित्त पहले एकाग्र हो जाता है, फिर इन्हीं उपायों से निरुद्ध हो जाता है। अभ्यास और वैराग्य जितना प्रबल होता है उतना ही जल्दी योग सिद्ध हो जाता है। ईश्वर के प्रणिधान से योग के विघ्न दूर हो जाते हैं। ओंकार का जप और ईश्वर का ध्यान यही 'ईश्वर प्रणिधान' कहाता है। योग में जो विघ्न हो जाते हैं वे ये हैं—'व्याधि' 'स्त्यान' (अयोग्यता) 'संशय' 'प्रमाद' 'आलस्य' 'अविरति' (विषयतृष्णा) 'भ्रान्तिदर्शन' 'अलब्ध भूमिकत्व' (समाधि अवस्था का न पाना) और 'अनवस्थितत्व' (समाधि अवस्था का पाकर भी उस में चित्त का न ठहरना) जिस का चित्त शुद्ध है, उस के लिए अभ्यास और वैराग्य साक्षात् उपाय हैं। किंतु जिस को अभी चित्त को शुद्ध करना है। उन के लिए 'क्रियायोग' से 'अविद्या' 'अस्मिता' 'राग' 'द्वेष' और 'अभिनिवेश' ये पाँचों क्लेश दूर हो जाते हैं।

योग के यम, नियम आदि आठ अङ्ग कहे गये हैं। इन में यम पाँच प्रकार का है और नियम के भी पाँच भेद हैं सर्व्व सत्र के प्रति प्रसिद्ध होने के कारण इन के विषय में विस्तार नहीं किया गया। समाधि के दो भेद हैं—'सबीज' और 'निर्बीज'।

यद्यपि अनुमान आदि साधनों से भी पदार्थों का परिचय हुआ करता है, पर समाधि में तो उन का साक्षात्कार हो जाता है। यही नहीं, योगी में सब कुछ करने की और चाहे जैसा हो जाने की सामर्थ्य भी हो जाती है 'युक्त' योगी को सभी कुछ का सदा भान हुआ करता है और 'युञ्जान' को सोचने विचारने पर सब बातों का पता लग जाता है। योगी कई से

भी हलका हो सकता है और पहाड़ से भी ज्याद: भारी बन सकता है वह चाहे मच्छर से छोटा आकार धारण कर ले और हाथी से भी स्थूल बन जाय। सूर्यमण्डल का भेदन करके योगी परम आद्य स्थान को बेरोक टोक जा सकता है। हनुमानजी अनायास समुद्र को गोष्पद की तरह योग के बल से लाँघ गये थे। नारदजी योग की महिमा से तीनों लोकों मे विचरा करते हैं। योग की ही महिमा थी जिस के बल से संजय दूर बैठे हुए, महाभारत के युद्ध की सब घटना देखा करते थे। योग के शतांश या सहस्रांश के आधार पर लोग बड़े से बड़ा काम करने में समर्थ हो जाते हैं।

बिना चित्तवृत्ति के लगाये कोई काम नहीं हो सकता, प्रत्युत बिगड़ जाता है। यदि चित्त ठिकाने न हो तो रोटी बनाते हुए हाथ जल जाय या पदार्थ ही जल जायँ या रामरस आदि के अधिक पड़ जाने से खराब ही हो जाय। कपड़ा सीते समय असावधानी हो तो सूई ही अँगुली के आर पार हो जाय। इन सब कामों में चित्तवृत्ति का निरोध करना पड़ता है, बस, यही तो योग का अंशतः पालन है।

हमारे देश से योग की प्रक्रिया नष्ट सी हो गई है, पहले विरक्त लोगों को इस के संपादन करने का बड़ा सौकर्य था। वे योगोपयुक्त स्थानों में जाकर अभ्यास करते थे, उन के पास समय था, उन का जीवन निश्चिन्त था, वे सभी दृष्टियों से योग जैसे कठिन कार्य को आसानी से सिद्ध कर सकते थे, इस से उन के लाभ के साथ साथ देश की एक सर्वोत्तम विभूति का संरक्षण होता था। अब तो तपोमय जीवन बिताने की प्रवृत्ति जाती रही। अस्तु;

अब तक जिस योग के संबन्ध में कहा गया है उस का मोटा अर्थ है जोड़ना, अर्थात् जीवरूप चैतन्य जो अविद्या में फँसकर परमात्मा परब्रह्म से अलग हो रहा है, उस की इस भिन्नता को दूर करके उस को पहले स्वरूप में लाकर, जहाँ से निकला था वहीं पुनः पहुँचा देने का नाम 'योग' है। इस प्रकार वेद, शास्त्रों में जीव को मुक्ति पद में पहुँचा देने के जितने साधन वर्णन किये गये हैं वे सब चार विभागों में विभक्त किये जा सकते हैं यथा—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। शास्त्रोक्त किसी मन्त्र या रूप के ध्यान से चित्तवृत्ति निरोध का नाम मन्त्रयोग है। शारीरिक क्रिया द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करना हठयोग है। षट्चक्रभेदन द्वारा बहिर्मुख शक्ति को ब्रह्माण्ड मे लय करना लययोग है। और केवल बुद्धि की सहायता से ब्रह्मविद्या विचार द्वारा चित्तवृत्तियो के उपराम होने का नाम राजयोग है।

योग से आत्म, अनात्म पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। इस अवस्था मे आत्मा अपने रूप में अवस्थित हो जाता है। पहले प्रकृति के बन्धन में था, अब उस से छूट जाता है, बस, यही 'मुक्ति' है, अर्थात पहले वह प्रकृति के साथ एक हो रहा था, अब उस से अलग होकर केवल स्वरूपस्थ हुआ है, इसी को 'कैवल्य' कहते हैं।



अध्यात्मयोग

(ले०—श्री अरविन्द)

अहंकार को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा, जिस से अनन्त ईश्वर की जो हमारे लिए इच्छा है उस के मापिक पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, ज्ञान तथा भागवत सत्ता की पूर्ण कर्मण्यता को प्राप्त कर सकें। पूर्ण आत्मसमर्पण का यह भाव यदि अपूर्ण रूप से भी स्थापित हो जाय तो यौगिक क्रिया की फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। कारण, तब स्वयं ईश्वर ही हम में साधक हो जाता है और वही सिद्ध, उस की भागवत शक्ति हम में कार्य करने लगती है, हमारी कृत्रिम प्रक्रियाओं द्वारा नहीं, किंतु उस प्रकृति की क्रियाओं द्वारा जो पूर्ण रूप से विज्ञ है, समस्त विषयों का अनुसंधान रखती है और अमोघ रूप से कार्यक्षम है। अत्यन्त शक्तिशाली राजयौगिक संयम, अत्यन्त उन्नत प्राणायाम, अत्यन्त अविरत ध्यान, अत्यन्त आनन्दपूर्ण भक्ति, अत्यन्त निष्काम कर्म भी भागवत शक्ति की परम क्रिया द्वारा होनेवाले लाभ की तुलना में कमजोर सिद्ध होते हैं। कारण, ये सब के सब कुछ हद तक हमारी अपनी योग्यता पर निर्भर रहते हैं, किंतु भागवत शक्ति की क्रिया का बल अपार है, क्योंकि यह ईश्वर की योग्यता है।

इस योगसाधन की सब से पहली प्रक्रिया यह है कि तुम आत्मसमर्पण का संकल्प करो, सर्वात्मना और संपूर्ण शक्ति के साथ अपने आप को भगवान् के हाथों में सौंप दो। कोई शर्त न रखो, कुछ भी न माँगो, कुछ योगसिद्धि भी मत चाहो, सिवाय इस के तुम में और तुम्हारे द्वारा भगवान् के संकल्प की ही अबाध पूर्ति होती रहे। जो मनुष्य भगवान् से कुछ माँगते हैं, उन को वे उस चाही हुई वस्तु को ही देते हैं। किंतु वे लोग जो अपने आप को दे देते हैं और कुछ नहीं माँगते उन को भगवान् उन सब चीजों को तो देते ही हैं। जिन की उन्हें आवश्यकता हुई होती, बल्कि वे स्वयं अपने आप को और अपने प्रेम के स्वतः-सिद्ध वरदान को भी प्रदान करते हैं।

इस योगसाधन की दूसरी प्रक्रिया यह है कि तुम कर्तृत्वाभिमान से विलग हो जाओ और भागवत शक्ति की तुम में जो प्रतिक्रिया हो रही है उस को तुम साक्षी रूप से देखते रहो। भागवत शक्ति की यह क्रिया जब होती है तब बहुधा देहादि में क्षोभ और कष्ट होता है, इस लिए तुम में श्रद्धा होनी चाहिए, यद्यपि पूर्ण श्रद्धा का एक बार ही हो जाना सदा संभव नहीं होता, कारण कि तुम में जो कुछ मलिनता दिखाई दे रही है या भीतर छिपकर घर किये हुए है वह ऊपर उमड़ आती है। जब तक उस को निर्मूल नहीं कर दिया जाता तब तक बराबर आक्रमण करती रहती है और इस समय में संदेह का उठना साधारण बात है। परंतु जब संदेह का आक्रमण हो तब भी उस से अलग हो जाओ और संदेह के चले जाने तक धैर्य रखो, तथा संभव हो तो उन लोगों के सत्संग का लाभ उठाओ जो इस मार्ग में कुछ आगे बढ़ चुके हैं।

किंतु इस सत्संग का अभाव हो तब भी इस योग के मूल सिद्धान्त आत्मसमर्पण को दृढ़ता से पकड़े रहो। जब अंदर व्याकुलता हो या बाहर से आक्रमण होता हो तब गीता के इन शब्दों का स्मरण करो—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।

'अपने आप को सर्वात्मना मुझे दे देने पर मेरे प्रसाद से तुम समस्त कठिनाई और संकटों को पार कर जाओगे' तुम्हें परेशान होने या संघर्ष में पड़ने की आवश्यकता नहीं, तुम्हारी सफलता की जिम्मेदारी को एक शक्तिशाली सत्ता अपने हाथ में लिये हुए है। रोग, संकट, पाप और मलिनताओं का उभाड़ इन से तुम जरा भी मत घबड़ाओ, केवल भगवान् से चिपके रहो। इन से वे मुक्त कर देंगे, परंतु मुक्ति किसी अचानक चमत्कार के रूप में न होगी, वह तो पवित्री-करण की एक प्रक्रिया द्वारा ही होगी और रोग आदि का उभाड़ इस प्रक्रिया का एक अङ्ग ही है। यह ऐसा है जैसे कोई कमरा बहुत दिनों से बिना झाड़े बुहारे पड़ा हो और अन्त में उस को साफ किया जाय तो उस की धूल बुरी तरह ऊपर को उठती है। यद्यपि वह धूल तुम्हारा गला घोटती सी मालूम पड़ती है फिर भी अपना प्रयत्न जारी रखते हो, वैसे ही यहाँ समझो।

अपने कर्तृत्वाभिमान से विलग होने के लिए यह आवश्यक है कि तुम्हें यह ज्ञात हो कि हम केवल साक्षी पुरुष हैं, ईश्वर के कार्य में अनुमति देते हुए फलों का भोग करते हैं। यथार्थ में कर्मों को शक्ति के रूप में भगवती या काली करती है और श्री कृष्ण को यज्ञरूप से अर्पण करती है, तुम तो यजमान की तरह हो जो यज्ञ को संपन्न होता हुआ देखता है उस की उपस्थिति यज्ञ को प्रत्येक क्रिया में आवश्यक है। इस प्रकार अपने आप को पृथक् कर लेना, कर्तृत्वा-भिमान का त्याग कर देना तुम्हें सहज हो जायगा यदि आधार क्या है इस का ज्ञान हो जाय। अन्तःकरण का सर्वश्रेष्ठ व्यापार बुद्धि है, किंतु उस से भी ऊपर परा बुद्धि या विज्ञान है जो ज्ञान के सत्य का, भाव के सत्य का, कर्म के सत्य का धाम है और इस आदर्श तत्त्व से भी ऊपर आनन्द है जिस में तुम्हारा भागवत अंश निवास करता है। ईसा ने जब कहा था कि ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अंदर है तब उस का अभिप्राय इसी विज्ञान और आनन्द से था, इस समय हम लोग निम्नतर प्रवृत्तियों में ही जाग्रत् हैं तथा विज्ञान व आनन्द में सुषुप्ति। अतः हमें चेतना के इन स्तरों को अपने अंदर जाग्रत करना है, इन का जाग्रत हो जाना और इन की विशुद्ध क्रिया का हम में होने लगना इसी का नाम योगसिद्धि है। जब ऐसा हो जाता है तब हम स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं जिसे गीता में भगवान् में वास करना कहा गया है, 'निवसिष्यसि मय्येव' 'निश्चयपूर्वक तुम मुझ में निवास करोगे' इस भगवद्वाक्य का यही तात्पर्य है। एक बार जहाँ इस स्थिति को प्राप्त कर लिया कि हम मुक्त और धन्य हो गये, हम ने उन सभी चीजों को पा लिया जिन के लिए अब तक चेष्टा करते रहे।

इस योगसाधन की तीसरी प्रक्रिया यह है कि हम वस्तुमात्र को ईश्वर अनुभव करें। ज्ञान की रस-प्रक्रिया में पहले तो साधारणतया यह होता है कि साधक अनुभव करने लगता है कि समस्त देश और काल को व्याप्त करती हुई एक दिव्य और नैर्व्यक्तिक सत्ता है, सत् आत्मा है जिस में कोई गति नहीं, कोई भेद या आकृति नहीं, वह शान्त और अलक्षण है। उस में समस्त नाम और रूप ऐसे जान पड़ते हैं कि उन में सद्वस्तु का अस्तित्व या तो अत्यन्त संदिग्ध हैं या नगण्य। इस अनुभूति में ऐसा बोध हो सकता है कि सद्वस्तु तो वह एक है और बाकी सब कुछ माया, निरर्थक और अनिर्वचनीय भ्रम है। परंतु उपर्युक्त अवस्था के बाद तुम यहीं नहीं रुक जाओगे

और अपने आप को इस नैर्व्यक्तिक अनुभूति द्वारा परिसीमित न कर लो तो तुम्हें यह दिखाई देगा कि वही आत्मा समस्त सृष्ट वस्तुओं को न केवल धारण कर रहा है और आश्रय प्रदान कर रहा है, बल्कि इन में आविष्ट होकर इन्हें परिपूर्ण कर रहा है। अन्त में तुम इस ज्ञान को समझने के योग्य हो जाओगे कि नाम और रूप भी ब्रह्म ही हैं। तब तुम उस ज्ञान में अधिकाधिक निवास कर सकोगे जिसे उपनिषद् और गीता ने जीवन का सिद्धान्त माना है। तब तुम समस्त विद्यमान वस्तुओं में आत्मा को और आत्मा में समस्त विद्यमान वस्तुओं को देख पाओगे—

आत्मानं सर्वभूतेषु सर्वभूतानि चात्मनि।

तब तुम को सब वस्तुएँ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ही भासित होंगी। (क्रमशः)

आधुनिक कर्तव्य

(ले०—श्रीमती विभूति देवी अध्यापिका)

हमारे शास्त्रों में त्याग पर बहुत जोर दिया गया है। जो सांसारिक वैभव को समझ बूझकर त्याग करके भीख माँगने लगता था उस के चरणों में बड़े बड़े नृपतियों के मुकुट झुक जाते थे। इसी प्रकार भक्तों की भी बड़ी महिमा थी, जो अपना सर्वस्व ही क्यों, बल्कि स्वत्व तक भूलकर भगवान् के प्रेम में निमग्न हो, पागलों की तरह नाचता फिरता था उस का दर्शन करके लोग अपना जन्म सफल मानते थे। ऐसे ही यज्ञ करनेवालों की भी बड़ी प्रतिष्ठा थी, दक्षिणा में अपना सर्वस्व देकर मिट्टी के बर्तनों से काम चलानेवाले यजमान उन दिनों स्वर्ग में जाने के अधिकारी समझे जाते थे। उस समय यह सर्वथा उपयुक्त था, शायद इस की आवश्यकता भी थी। क्योंकि हमारे पास सब कुछ था, हम सब कुछ थे, इसी लिए हमारा त्याग, भक्ति और भजन सर्वथा उपयुक्त होता था। उस समय हम चाहे जितना दे दे सकते थे, जो छोड़ना चाहें, छोड़ सकते थे।

आज भी हम त्याग (ज्ञान), भक्ति और यज्ञ में आहुति डालने की आवश्यकता है। सिर्फ़ करना यह होगा कि पहले जो ज्ञान, भक्ति और यज्ञ के अनुष्ठान की विधि थी आज हम उस में परिवर्तन कर देंगे, क्योंकि आज हमारी वही दशा, स्थिति नहीं है जो आर्यशास्त्र के निर्माणकाल में थी। पहले ज्ञान का पर्यवसान त्याग में था अर्थात् ज्ञानी होने की शोभा त्यागी होने में थी। और भक्ति का अर्थ अपनापन भूलकर उन्मत्त सा हो भगवान् में मिल जाना था।

अब हमें अपने स्वार्थ के संरक्षण के लिए देश-भक्ति में तन्मय हो जाना होगा। क्योंकि अब देश ही भगवान् है, क्या हुआ जो पहले भगवान ही देश था। पहले यज्ञ में सब कुछ देकर अकिञ्चन हो जाना होता था। अब देशसेवा ही हमारा यज्ञानुष्ठान है, अब देश की वेदिका पर अपने आप को सर्व-कल्याणार्थ अर्पण कर देना होगा। अब तो देशोन्नति यज्ञकुण्ड है। और प्रत्येक देशवासी को आहुति बनने से काम चलेगा, साथ ही इस प्रतिज्ञा की दीक्षा लेनी होगी—

हिन्दुस्तानं तथा हिन्दी हिन्दुजातिम् सद्व्रतम्।
स्वदेशी यानि वस्तूनि वर्तनीयानि सर्वतः॥

अर्थात् पहले जैसे आत्मानात्मवस्तुविवेक, जीव और ब्रह्म की एकता प्रभृति का मनन किया जाता था, आज उसी प्रकार हिंदुस्तान, हिंदीभाषा, हिंदूजाति, और खद्दर आदि स्वदेश की बनी-वस्तुओं को उपयोग में लाना होगा। यह काम किसी दवाव से नहीं, बल्कि अपना धर्म समझकर करना चाहिए। 'धारणाद्धर्ममित्याहुः' के अनुसार स्वदेशी वस्तु ही और हमारी सभ्यता की धारणा (रक्षा) कर सकती हैं।

राजा प्रजा धनी दीनो मजूरः कृषकः सुधीः ।
विदेशी वा स्वदेशी वा सम्मान्या आर्य्यभावतः ॥

भारतवर्ष अतिथिसत्कार में सब से बढ़ चढ़कर रहा है और है। अलबेरूनी के भारतभ्रमणवृत्तान्त से पता लगता है कि विदेशी लोग, हमारे अतिथि-सत्कार की कैसी प्रशंसा करते हैं। राजा, प्रजा, धनवान्, मजदूर, खेतिहर और पण्डित आदि चाहे कोई विदेशी हो या स्वदेशी, सब का संमान करना चाहिए, क्योंकि यह प्राचीन आर्यभाव यानी हिंदूसभ्यता है कि हम सब की खातिरदारी करें, जैसे देशनिकाले की आपत्ति के समय हम ने पारसियों को अपने देश का अपने समान नागरिक बना लिया था। इस विषय में उस समय के राजा चन्द्रगुप्त के फरमान देखे जा सकते हैं।

ज्ञानं विज्ञानसहितं धनं मानं सुकौशलम् ।
देशतो वा विदेशाद् वै संग्राह्यं कोटियत्नतः ॥

हम सदा से जिज्ञासु रहे हैं, इस लिए आजकल के उपयोगी कलाकौशल, सॉइंस द्रव्य, संमान (डिगरी) हुनर कारीगरी आदि सीखने में हमें खानदानी सपने के झगड़े में न पड़ना चाहिए। योग्यता संपादन करनी उचित है, वह देश में प्राप्त हो सके या परदेश में जाने से मिल सके। समुद्रपार तो क्या दूसरी दुनियाँ में भी जाना पड़े तो जाकर वह योग्यता प्राप्त करने में कभी न चूकना चाहिए, जो हमारे देश को संपन्न और प्रतिष्ठित बना सके। 'समुद्र न लाँघना चाहिए' यह हमारे धर्मशास्त्र की आज्ञा है। हम भी इस को शिरोधार्य मानते हैं क्योंकि इस से आहार विहार दूषित होते हैं। पर इस का आजकल की भाषा में यह अर्थ है कि मनोविनोद के लिए, सैर-सपाटा करने समुद्रपार जाकर अपने देश का धन और धर्म न फूँकना चाहिए। जो इस के लिए समुद्र-पार जाते हैं उन का सागरोल्लङ्घन धर्मशास्त्र की दृष्टि से निन्दनीय है। किंतु समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह नियम आवश्यक नहीं है, अतः देश का अभ्युदय करने के लिए जाने आनेवालों को कोई रुकावट नहीं है, न होनी चाहिए।

मा भवन्तु पराधीना निर्भयास्तु भवन्तु ते ।
धर्म्मज्ञाः प्रभवो विज्ञा हिन्दवः सन्तु सर्वदा ॥

हिंदू लोग, कभी पराधीन न हों, वे निर्भय रहें, तथा वे धर्मात्मा, सामर्थ्यवाले और समझदारी से काम करनेवाले बनें। यह प्रभु से हमारी प्रार्थना है।

रैयतैः सह जमींदाराः प्रजया भूभृतस्तथा ।
मजूरैः सह सेठाश्च, वर्त्तन्तां प्रेमतः सदा ॥

जमींदार रैयत के साथ, राजा प्रजा के संग, और सेठ लोग मजूरों के साथ, सदैव प्रेम के साथ व्यवहार करें।

दशा हि भारतीयानां हिन्दूनाञ्च विशेषतः ।
सञ्जाता शोचनीया वै दैवतः स्वास्थ्यतोऽर्थतः ॥

भारतदेशनिवासियों की खासकर हिंदुओं की हालत भाग्य से, तंदुरुस्ती से और संपत्ति से भी बहुत ही शोचनीय हो गई है।

विना यात के, हर एक तेवहारों पर शहरों तथा

ग्रामों में साम्प्रदायिक झगड़ा हुआ करता है। यह बात कितनी शर्म की है कि भाई या साथी होकर भी हम उपद्रव करने से बाज नहीं आते।

यह समय बड़ा ही भयंकर और शान्तिभंग करनेवाला है, ऐसे मौके पर किसी आवेग में न आकर अपनी बुद्धि दुरुस्त रखनी चाहिए, उस की स्थिरता में फरक न पड़ने पावे। आये हुए झंझट को दूर करने के लिए 'संगठन' और 'एकता' की बड़ी आवश्यकता है। संकट सिर पर आ रहा है। यदि इस समय 'संगठन' और 'एकता' न की गई तो अनर्थ हो जायगा। इस लिए—

विवादो नैव कर्तव्यः कर्तव्यं हेलमेलकम्।
नोचेद् वैदेशिकाःश्येना हनिष्यन्तीव वर्तिकाम्॥

परस्पर कलह नहीं करो, हिल मिलकर रहने में ही भलाई है। यदि मिलजुल कर नहीं रहोगे तो दूसरे (विदेशी) लोग तुम्हें इस प्रकार नष्ट कर देंगे, जैसे बाज चिड़ियों को मार डालता है।

इस लिए आजकल के समय में उन सब कामों के करने की दृढ़ता से आवश्यकता है जो अपनी जाति और राष्ट्र को उन्नत कर सकें, जिन से धार्मिक हानि न हो और जो प्राचीनता को पुष्ट करते हुए आधुनिकता के अनुकूल हों। आजकल कुछ तो ऐसे विषय हैं जो हमारे लिए ठीक ठीक वैसे ही उपयोग में आ सकते हैं जैसे प्राचीन काल में आते थे। कुछ विषयों को रद्दो बदल के साथ बर्ता जा सकता है। कुछ बातें ऐसी हो सकती हैं जो इस काल में सुरक्षित रख छोड़नी चाहिए, अभी उन से काम ही न लिया जाय। इन बातों का निर्णय शिष्टमण्डल कर सकता है। शिष्ट वे हैं जो धर्म की उन्नति और देशोद्धार की बातें सोचें, कहें तथा करें तथा गीताशास्त्र जिन का मार्गदर्शक हो। अन्त में प्रभु से प्रार्थना है कि वे हमारी इन कामनाओं को पूरी करें।

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

(ले०—श्री सुदर्शन)

आनन्दकन्द पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण के समान धर्ममर्यादारक्षक आज तक कोई दूसरा नहीं हुआ, यह कहना अत्युक्ति न होगी। वे साक्षात् परमात्मा के पूर्ण रूप से लोक के उद्धारार्थ और संग्रहार्थ ही अवतीर्ण हुए थे। उन के आदर्श लीलाचरित्र को पढ़ने, सुनने और स्मरण करने से हृदय में पवित्र भावों की लहरें उठने लगती हैं, मन जागृत अवस्था में रहता हुआ ही समाधि अवस्था के सुखसागर में निमग्न हो जाता है। उन के अवतार के ये दो प्रयोजन हैं—लोक का उद्धार और लोकसंग्रह, जिन्हें गीता के शब्दों में अधर्मनिवृत्तिपूर्वक धर्मसंस्थापन तथा इस मार्ग पर दुष्कृतों के विनाशपूर्वक साधुओं का परिपालन कह सकते हैं। पर इस के साथ ही अपने आनन्दमय चरित्रों द्वारा दुःखित लोगों को आप्यायित करना भी उन के अवतार का प्रधान प्रयोजन था।

यही कारण है कि भगवान् की बाललीलाएँ सर्वाधिक हृदयग्राही होकर माधुर्य की सीमा को

लाँघ गईं। इसी से जगत की उच्चतम शक्तिशाली विभूतियाँ उन के निकट खिंची चली आईं और उन के प्रेम में विभोर होकर आत्मविस्मृत हो गईं। इन में स्वर्गीय देवतावृन्द के बाद पूर्णकाम और महातपस्वी गर्गाचार्यजी पहले पहल अग्रसर हुए। भगवान् के जन्म के कुछ दिन बाद मानो अपनी तपस्या और ज्ञान को सफल करने के लिए गर्ग ऋषि नामकरण के मिष व्रज में आये। नन्दजी ने स्वागत सत्कार और आदर के साथ उन्हें टिकाया, वे जानते थे कि ये बड़े ही आचारवान् कर्मनिष्ठ महात्मा हैं इस लिए पूजा पाठ और स्थालीपाक (रसोई) आदि की सुविधा एकान्त में कर दी गई। उधर गर्गजी नियमानुसार वैश्वदेव की विधि से नैवेद्य अर्पण करने के लिए यज्ञपुरुष का ध्यान करने लगे तो भगवान् साक्षात् रूप से बगल के घर में विराज रहे थे, धीरे से घुटुनुओं से चलकर गर्गजी की थाली में भोग लगाने लगे। ऋषि ने नेत्र खोले तो बड़े असमञ्जस पड़े कि असंस्कृत बालक ने चौका छू दिया! खैर नन्दगृहिणी ने फिर सब सामग्री प्रस्तुत की किंतु वही हाल हुआ। यह क्रम कई बार चला, तब जाकर गर्गजी को चेत हुआ कि जिस के पीछे हम ने जीवन गँवाया वही तो यह है! अस्तु; कुछ दिन बाद भूतभावन शंकरजी काशीपुरी से व्रज में पहुँचे और नन्दपौर पर शृङ्गीनाद बजाया। नन्दरानी द्वार पर आईं और अवधूत बाबा से पूछा कि आप के खप्पर में कौन सी भिक्षा दी जाय? बाबा बोले कि सिर्फ तुम्हारे लाल की दर्शनभिक्षा का सवाल है। पर नन्दरानी ने साँप लपेटनेवाले योगी से कहा कि आप का खप्पर मोतियों से भर दूँ, पर बच्चे को न दिखाऊँगी, शायद नजर लग जाय! आखिर भोलानाथ लौट गये तो लालजी की बेचैनी बढ़ी, सचमुच नजर सी लग गई। अब यशोदा समझीं कि उस बाबा ने कोई टोना किया है, बालकों द्वारा उन्हें खोजकर बुलाया गया और बाबा को देखते ही लालजी खिलखिलाकर हँस पड़े। खैर, इसी प्रकार उन की मधुर मुस्कान पर तब से सारी दुनियाँ अपने को निछावर करती आ रही है, यहाँ तक कि कर्कश तर्क से वज्रादपि कठोर बुद्धिवाले महावेदान्ती मधुसूदन स्वामी भी व्रज में जाने पर कहने लगे—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥

'अद्वितीय ब्रह्म में लीन रहनेवालों में भी सर्वश्रेष्ठ हम को ग्वालिनों के बीच में रहनेवाले एक अवारा लड़के ने जबर्दस्ती अपना दास बना लिया।' इस तरह भक्तियोग का प्रसार भी इस अवतार का मुख्य प्रयोजन था, जो वात्सल्य आदि, रसों की भावना से बखूबी हो सकता है।

जो बालक अपनी खूबियों से पत्थरदिलवालों को भी गलाकर पानी पानी कर सकता है उस आठ दस वर्ष के सुकुमार बालक पर भोली गोपियों का रीझ जाना कोई आश्चर्य नहीं। वे उन्हें पुत्र और बन्धु जैसा ही समझती रहीं, इस के अलावा आगे चलकर जिन व्रजलीलाओं का आरोप भगवान् पर

किया जाता है वे एक खास उपासनाविधि के लिए ही हैं। उस उपासनाविधि के अधिकारी सर्वसाधारण नहीं, किंतु भक्तियोग की चरमावस्था को प्राप्त, निभृत एकान्तवासी अमलात्मा संतविशेष ही हैं।

अनुभवी रसिकों ने श्री राधातत्त्व का स्पष्ट प्रकाशन भागवत में न होने का यही कारण माना है। इस लिए भगवान् की रास आदि की भावना के अधिकारी रस की उपासना करनेवाले परमहंस ही हो सकते हैं, अन्य संसारी लोग नहीं। वैसे तो भगवान् की दिव्य लीलाएँ हर तरह से निरन्तर हो रही हैं, उन के लिए किसी खास समय का बन्धन नहीं। उन्हीं में से भावुक लोग किसी एक लीला को उपासना के उपयुक्त समझकर विकसित कर लेते हैं। पर लोकसंग्रहार्थ यह मानना ही होगा कि भगवान् का पूरा चरित्र शुद्ध सात्त्विक और आदर्शभूत था। यदि यह न माना जाय तो भगवान् की अनेक गीता की उक्तियाँ अनर्थक हो जायँगी। वे अर्जुन से कहते हैं कि मैं तो पूर्णकाम हूँ, सिर्फ लोक में आदर्शस्थापन के लिए ही मेरे सब काम हो रहे हैं, मैं जैसा करूँगा उसी का अनुसरण और लोग करेंगे इस लिए मैं पूर्व परंपरा में तिल भर भी गड़बड़ी करूँ तो अनेक प्रकार का संकरतादोष मुझे लगेगा। (३-२४) अतः प्रवृत्तिमार्ग के प्रत्येक पथिक को भगवान् का निम्नलिखित चरित्र सदा अनुसरणीय है—

जब उन्होंने व्रज में बालसुलभ सभी लीलाएँ कर लीं तो ग्यारह वर्ष की वय में ही व्रज छोड़ दिया और सान्दीपनि मुनि के पाठशाला में विद्याध्ययन समाप्त किया। आगे जब वे धर्मसंस्थापन के प्रसंग में द्वारका में रहने लगे तब नित्य प्रातःकाल से राजदरबार में जाने तक शास्त्रीय मर्यादा के पालनार्थ इन विधियों को करते थे—

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥

भगवान् ब्राह्ममुहूर्त में उठकर पवित्र जल से हाथ मुँह धोकर प्रसन्नहृदय से मायातीत आत्मस्वरूप का चिन्तन करते थे।

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि
क्रियाकलापं परिधाय वाससी।
चकार संध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः॥
—भा० १०।७

फिर वे विधिपूर्वक निर्मल जल में डुबकी लगाकर स्नान करते, धोती दुपट्टा पहनकर श्रद्धा से संध्या, अग्निहोत्र करते तथा फिर गायत्री आदि का जप करते थे। यह सब सूर्योदय से पहले ही समाप्त हो जाता था, उस के बाद सूर्यार्घ्य, तर्पण, वृद्धों को नमस्कार और ब्राह्मणों का पूजन होता था, सुन्दर भूषणों से भूषित गौओं का दान होता था, तब अनेक माङ्गलिक कार्यों के बाद वे दरबार में जाते थे। भगवान् ने इन आचरणों को स्वयं करके लोगों के समक्ष पूर्ण मर्यादा का मार्ग स्थापित किया है।

अत एव जगद्गुरु भगवान् के इस आदर्श पर ही सब को चलना होगा और इसी दृष्टि से उन के प्रत्येक कार्य की संगति बैठानी होगी। यद्यपि

भगवान् श्री कृष्ण की लीला तथा चरित्र अलौकिक हैं, उन का यथावत् अनुकरण क्या ज्ञान भी होना अशक्य है, पर बाललीलाओं के बाद जब वे संस्कृत होकर गुरुकुल में गये तब से लेकर उन के आचरण मनुष्यों को उस माफिक चलने के लिए ही हुए। उन्हें लोकसंग्रहार्थ इस की सब से बड़ी चिन्ता थी कि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
—गी० ३।२१

बड़े लोगों का जैसा चाल चलन होता है, छोटे लोग उसी माफिक चलते हैं (इस लिए) बड़ों को अपना आचरण प्रामाणिक रखना पड़ता है कि लोग उसी का अनुसरण करें। जगत् के अखिल पदार्थों की विशिष्टता इकट्ठी हो जाय तो वह भगवान के समक्ष समुद्र में बिन्दु की तरह भी न होगी। जगत् की समग्र शक्ति, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र लक्ष्मी और समग्र ज्ञान वैराग्य भगवान् श्री कृष्ण में ही निवास करते हैं, इन की पूर्णता वहीं से होती है, इस लिए—

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥

बड़ी कठिनता से प्रसन्न होनेवाले, सब ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् विष्णु की आराधना करते हुए भी जो प्राणी विषयभोगों की कुछ भी मान्यता रखता है वह बड़ा ही दुर्बुद्धि है, क्योंकि भगवान् के समक्ष विषयों की सत्ता का लेश भी नहीं रहता। आज भी वे प्रभु ज्ञान वैराग्य आदि से समुज्ज्वल, लोकाभिराम और धारणा ध्यान के लिए सर्वथा उपयुक्त अपनी दिव्य छवि की स्मृति गीता, भागवत आदि द्वारा सब के समक्ष प्रकट कर रहे हैं, उस का स्मरण और चिन्तन करके अपना जीवन सफल करना चाहिए; यही श्रीकृष्ण का आदेश है, अतः हमें इस आदेश और आदेष्टा के प्रति सिर झुका देना चाहिए।

धन्य भाग्य

[ले०—श्री गोविन्द स्वामी 'हरीजी']

जै जै धुनि सुहात सुर स्वर्ग में सिहात, हरषि नृत्य करत जात नन्दराय आँगन।
गोपाल कों गोद लैंय जसुदहिं आशीष देंय, ब्रह्मानन्द अप्रमेय उमड़त व्रज गागन ॥
पावत सुख गोपी ग्वाल रोहिणी दाऊ दयाल, मोर चंदर देत ताल गाय प्रेम पागन।
लहि दर्शन सनाथ भूमि सब टेकैं माथ, किलकि किलकि लेत हाथ 'गोविंद' धनि भागन ॥

सुखी जीवन

(ले०—पं० श्री वासुदेव शास्त्री तैलङ्ग, शु० द्वै० वे० विशारद)

शिष्य—गुरुवर्य, क्या सुखी जीवन के अंदर मनुष्य का हर तरह का कर्तव्य आ जाता है और उस से उचित या अनुचित कर्तव्य का ज्ञान हो जाता है?

गुरु—कर्तव्य उस को कहते हैं जिस के न करने से प्रत्येक मनुष्य की समाज एवं संसार भर के साथ बुराइयाँ होती हैं, इस लिए मनुष्य को अपने माता पिता एवं गुरुओं से कैसा व्यवहार करना यह बात सीखनी चाहिए। सब से पहले यह कर्तव्य हो जाता है कि अपने पूज्यों की एकचित्त से सेवा करना आज्ञापालन करना, उन से शिक्षा ग्रहण करना एवं उन को प्रसन्न रखना, साथ ही उन की मर्यादा का भी ध्यान प्रत्येक क्षण रखना।

शिष्य—गुरु और माता पिता का अपनी संतानों के प्रति क्या कर्तव्य हो जाता है?

गुरु—अपनी संतान को बाल्यकाल में ही धर्म, ईश्वरभक्ति, सन्मार्ग पर ले जाना और सुसंगति पर लगाना चाहिए, क्योंकि नीति पुकार पुकार कर कहती है कि 'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।' विभीषण सुग्रीव से कहते हैं कि—

तात स्वर्ग अपवर्गसुख धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग॥

सत्संग का प्रभाव बड़ा ही उत्तम होता है। इसी से तो प्रत्येक बालक को छात्रावस्था से ही सत्संगति और सद्ग्रन्थों की ओर लगाना चाहिए।

यस्यास्ति सद्ग्रन्थविमर्शभाग्य
किं तस्य शुष्कैश्चपलाविनोदैः।

सज्जनों के सदुपदेशों में निमग्न रहनेवाले को विलाससुख फीके मालूम होते हैं। इस लिए अपनी संतान को बाल्यकाल से ही सन्मार्ग पर लगाना चाहिए।

शिष्य—सब से प्रथम गुरु के निकट पहुँचे हुए बालक का क्या कर्तव्य होता है?

गुरु—नीति में कहा है कि 'पालनीया गुरोराज्ञा' क्योंकि गुरु विद्यादान करता है। और 'सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं महत्तरं' इस से विद्यादाता की उत्तमता सर्वोपरि होने से उस का पूरा अनुवर्ती होना उचित है।

शिष्य—प्राचीन काल में विद्यादान किस प्रकार दिया जाता था?

गुरु—गुरुकुलों में एवं ऋषिकुलों में पढ़ाने की शैली बड़ी सुखद थी, आजकल की तरह अनेक प्रतिबन्ध नहीं थे। पढ़नेवालों व पढ़ानेवालों में परस्पर पिता पुत्र का सम्बन्ध रहता था। अमीर, गरीब, देशी, विदेशी एक साथ पढ़ते हुए भ्रातृभाव से एक समान रहते थे, सब को एक समान रखा जाता था। आजकल कालेजों के लड़के जब तक पढ़ते हैं तब तक नमस्ते आदि का व्यवहार रखते हैं, जहाँ पढ़ चुके कि बस, गुरुओं तक से अभिवादन आदि का व्यवहार टूट जाता है। नीति में कहा है—

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते,
पशुर्वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।

एक अक्षर बतानेवाला भी गुरु हो जाता है जो उस को गुरु की दृष्टि से नहीं देखता है वह साठ हजार वर्ष कीट योनि में गिरता रहता है।

शिष्य—वर्तमान दृष्टि से हम को कौन कौन से नियम पालने चाहिएँ ?

गुरु—प्रत्येक मनुष्य तथा छात्र को नियमबद्धता, सत्यप्रियता तथा परिश्रमशीलता तीनों बातें पालनी चाहिएँ। इस का स्पष्ट अर्थ यह है कि नियम से पढ़ना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए और पढ़ने में परिश्रम करना चाहिए। बालकों के लिए श्री शंकराचार्यजी कहते हैं कि—हितोपदेष्टा गुरु हैं और गुरु की आज्ञापालन करनेवाला शिष्य है। इसी से तो 'गुरुशुश्रूषया विद्या' का उपदेश मुख्य है। नीति कहती है कि—

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम्।

विद्यार्थी को चाहिए कि आलस्य, मद, मोह, चपलता, व्यर्थ बात करना, अभिमान करना, स्वार्थी होना, ये अपनी सात विशेषताएँ छोड़ दें।

शिष्य—कुछ शिक्षा की बातें सुनाकर कृतकृत्य करिए गुरुदेव।

गुरु—(१) ईश्वर हमारे अच्छे कर्मों का साथी है, पर बुरे का साथी नहीं है।

(२) ईश्वर सब का आधार है, पालन पोषणकर्ता है उसे कभी मत भूलो, भूलनेवाला कृतघ्न है। क्या कोई कभी माता पिता को भूलता है ? नहीं, तो फिर ईश्वर भी पिता है। (३) जिस के हृदय में अच्छे विचार हैं वह कभी दुखी नहीं होता। (४) मनुष्य उन्नत विचारों से ही अपने को उन्नत बनाता है। (५) धन और स्वास्थ्य से भी बढ़कर सदाचार का अधिक मूल्य है। (६) मानसिक वृत्तियों को निष्कलंक बनाने के लिए सतत चेष्टा करनी चाहिए। (७) गुण ही पूजा का स्थान है। (८) चरित्रगठन के लिए आदर्श पुरुषों का अनुकरण करना चाहिए। (९) धर्म और ईश्वर से डरना चाहिए। (१०) पापी मनुष्यों से कभी नहीं डरना चाहिए। (११) समय एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। (१२) सदाचारी विद्यार्थी का शारीरिक और मानसिक वेग बढ़ जाता है। (१३) न्याय, स्नेह, उत्साह, बुद्धि, विद्या, प्रेम जिस पुरुष में हैं वह देवतुल्य है। (१४) उत्साही पुरुष कभी दरिद्री नहीं हो सकता। (१५) शत्रु से भी गुण ले लेना बुद्धिमानी की बात है। भगवान् राम ने भी लक्ष्मण को रावण से राजनीति सीखने को भेजा था।

शिष्य—विद्यार्थी के प्रति गुरु का क्या कर्तव्य है ?

गुरु—(१) 'कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः।' गुरु को चाहिए कि कुशिष्य को नहीं पढ़ावे। (२) सब छात्रों पर समान दृष्टि से व्यवहार करे। (३) चित्त की अशान्ति के समय कभी शिक्षा न दे। (४) शिष्यों के भाषण एवं कार्य से योग्यता की जाँच करता रहे। (५) गुरु को क्रोधी, लोभी, असत्यभाषी, परनिन्दक, असहिष्णु, द्वेषी नहीं होना चाहिए, क्योंकि छात्रों पर इस का नाशकारी दुष्प्रभाव पड़ सकता है। (६) प्रभाव और स्नेह के बिना शिष्यों को योग्य विद्वान् नहीं बनाया जा सकता। उपरोक्त गुरु एवं शिष्यों के कर्तव्यपालन से दोनों का ही जीवन सुखी बन जाता है।

राखी !

(ले०—श्री लक्ष्मीप्रसादजी त्रिपाठी अकिंचन)

किसे बाँधने को आई है, पुण्य दिवस बनकर यह राखी।
आज उड रही है दुनियाँ के, अब उजड़े जीवन की राखी॥

शक्ति सा आज धर्मबन्धन को, कौन मनस्वी महिमा देगा।
कौन आज बँध करके इस में, मानवेन्द्र की गरिमा लेगा॥

शासन का गौरव दर्शाती, रक्ततृषाकुल ले खर असिधारा।
न्याय दण्ड धारण हित उत्सुक, कौन आज है विश्वदुलारा॥

अपनी अपनी धान कमाए, सब अपने मुँह बहक रहे हैं।
अपने स्वार्थसिद्धि साधन का, गौरव देते चहक रहे हैं॥

पथ में कण्टक जाल बिछाकर, इस कुल कह हर्ष मनाते।
समरभूमि में दीख रहे हैं, निज उमंग रस के रणमाते॥

हा हा खाते दुखित जनों की, दुनिया का रक्षण अभिलाषी।
कौन! अरे किस के कर बाँधे, जनता मानवता की राखी॥

कौन भला पशुता की दाढ़ों से, इस की रक्षा कर लेगा।
कौन आज युग की करुणामय, राखी की लज्जा रख लेगा॥

शङ्का

(प्रे०—एक संदिहान श्रद्धालु)

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः०
पुत्रान पौत्रान सखींस्तथा।
श्वशुरान् सुहृदश्चैव०
सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥
१-२६, २७

कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥
१-३८

'वहाँ अर्जुन ने अपने पुत्र, पौत्र, सखा, श्वसुर, सुहृद् और सब बन्धुओं को स्थित देखा।' 'कुलक्षय करने के दोष तथा मित्रों के साथ द्रोह करने के पाप को कौरव नहीं समझते।'

इन श्लोकों में अर्जुन कौरवों का उल्लेख करते हुए चार शब्दों का प्रयोग करते हैं, यथा—सखा, सुहृद, बन्धु और मित्र। गीता के ऊपर आक्षेप है कि उस में अनावश्यक पुनरुक्ति बहुत है। जिन की गीता के भगवद्वाक्य होने में कम श्रद्धा है और उस की व्यासकृत रचना में भी संदेह है ऐसे ही पुरुष इन शङ्काओं को करते हैं। तथापि उन्हें निरुत्तर करने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त नहीं कि उन की श्रद्धा में कमी है, क्योंकि आजकल का समय बुद्धिप्रामाण्य को मानता है। अतः मैं जानना चाहता हूँ कि व्यास-जी उपरोक्त श्लोकों में सखा आदि शब्दों का प्रयोग पर्यायवाचकरूप से करते हैं अथवा उन के अर्थ में कोई सूक्ष्म भेद है।

—o—

समाधान

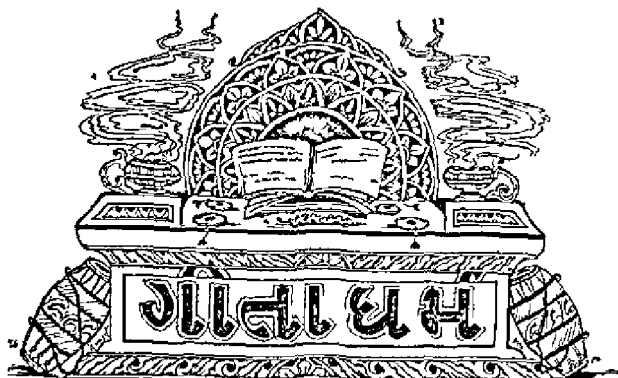
(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी)

गीताकार के ऊपर जो आक्षेप किया जाता है वह सर्वथा अनभिज्ञतामूलक है, गीता में कहीं भी वृथा शब्दों का प्रयोग नहीं। सच तो यह है कि गीता की यथार्थ व्याख्या अभी तक किसी ने की है या नहीं इस में संदेह है। उस में उपनिषद्, ब्रह्म-विद्या व योगशास्त्र इन तीनों प्रस्थानों का गूहन है, इस बात का परिचय किसी टीका में शायद ही मिलता हो। अधिक से अधिक टीकाकारों ने अब तक "श्री कृष्णार्जुनसंवाद" की ही व्याख्या की है तथा वह भी सदोष है यह हम ऊपर कह चुके हैं, अस्तु। प्रकृत बात यह है कि इन चारों शब्दों में सूक्ष्मभाव से ही क्यों न हो, अर्थभेद अवश्य है। तथा हि—

अवियोगसहो बन्धुः सर्वदानुगतः सुहृद्।
एककार्यं भवेन्मित्रं समप्राणः सखा मतः॥

जो साथी बेचैनी के साथ वियुक्त हो जाय उस को बन्धु कहते हैं, जो कभी साथ न छोड़े वह सुहृद् है, जो हर एक कार्य को साथ में करता हो उस को मित्र कहते हैं तथा जो अनुराग की अधिकता से प्राणों की तरह कदापि पृथक् न हो उस का नाम सखा है। इस प्रकार इन शब्दों में तारतम्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

સંસ્થાપક—શ્રીમત્પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકસંગ્રહી, ગીતાવ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી, મહારાજ



સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ, અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચ.

વર્ષ ૭ મું } કાશી સપ્ટેમ્બર ૧૯૪૨ { અંક ૯ મો

ચરણસરોજ

બન્દૌં ચરણ સરોજ તુમ્હારે ;
સુન્દર શ્યામ કમલદલ લોચન લલિત ત્રિભંગ પ્રાણપતિ પ્યારે ;
જે પદપદ્મ સદાશિવ કે ધન સિન્ધુ સુતા ઉરતે નહિં ટારે.
જે પદપદ્મ પરસિ જગપાવન સુરસરિ દરસ કટત અઘ ભારે ;
જે પદપદ્મ પરસિ ઋષિ પત્ની બલિ નૃગ વ્યાધ પતિત બહુ તારે.
જે પદપદ્મ રમત વૃન્દાવન અહિ શિર ધરિ અગણિત રિપુ મારે,
જે પદપદ્મ પરસિ વ્રજભામિનિ સર્વસ દૈ સુત સદન વિસારે.
જે પદપદ્મ રમત પાણ્ડવદલ દૂત ભયે સબ કાજ સઁવારે,
સૂરદાસ તેઈ પદ પંકજ ત્રિવિધ તાપ દુખ હરન હમારે.

—સૂરદાસજી

સચ્ચિદાનંદ રૂપ

(લેખકઃ—રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

પરમાત્માની પ્રાપ્તિ થવા માટે મનોનિગ્રહની જરૂર છે. મનોનિગ્રહ કરવા સારૂ સંસાર વાસનાથી ચિત્તને અલગ રાખવું, ચિત્ત વાસનાઓથી અલગ થયું એટલે ચિત્ત વૃત્તિની સ્થિરતા થઈ એટલે અંતઃકરણની શુદ્ધિ થાય છે અને અહંતા મમતા જતી રહે છે. સર્વ કામનઓનો નાશ થાય છે અને જેમ પ્રકાશ થવાથી આપોઆપ અંધકારનો નાશ થાય છે તેમ મનુષ્યના હૃદયમાં પ્રકાશ થાય એટલે સર્વ વાસનાઓનો આપોઆપ નાશ થાય છે.

મનોનિગ્રહ થયો એટલે નિદિધ્યાસન કરવાં જોઈએ અને ત્યાર પછીની અવસ્થા અંતરાય રહીત છે. એકાગ્રતા આવતી જાય છે અને વૃત્તિઓનું વિસ્મરણ થતા બ્રહ્મદર્શન આત્મદર્શન થાય છે.

અંતઃકરણની શુદ્ધિ કરી જીવની ભેદ બુદ્ધિ શાંત પાડે છે. અને પછી સર્વત્ર અદ્વૈત ભાસ થાય છે અને આત્માભ્યાસનો અનુભવ કરી એક બ્રહ્મ, સર્વેશ્વર અચ્યુત પ્રભુ, તેજોમય દિવ્ય જ્યોતિરૂપ પરબ્રહ્મનો અદ્દભુત પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર અનુભવે છે. આ પરમ પુરૂષ ભેદ રહીત પરબ્રહ્મ એવા સચ્ચિદાનંદ રૂપને પ્રાપ્ત થાય છે, બ્રહ્મ તથા આત્માની એકતામાં આનંદ મગ્ન કરી બ્રહ્માકાર વૃત્તિને સ્થિર કરી સચ્ચિદાનંદ સ્વસ્વરૂપના અખંડીત આનંદમાં મસ્ત રહે છે. અને પોતે બ્રહ્મ વિચારમાં પરમાનંદ અનુભવતો પરમાત્મ સ્વરૂપના દર્શનના વિચારમાં એકાગ્ર ચિત્ત જોડી સાન ભાન વગરનો થઈ જાય છે અને સચ્ચિદાનંદ અનુભવતો શુદ્ધ અદ્વિતીય મંગળરૂપ ઓમકારરૂપ, શાન્તસ્વરૂપ, ચૈતન્ય વિવર્તમાં તલ્લીન જ્યોતિમા પરમાનંદની પ્રાપ્તિ મેળવી અચ્યુત સ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર અનુભવે છે. ઓમ અસ્તુ.

ગીતાનો ઉપસંહાર

(લે૦—શ્રીમત્ પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય બ્રહ્મનિષ્ઠ લોકસંગ્રહી ગીતાવ્યાસ જગદ્ગુરુ
મહામંડલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ.)

ગીતાશાસ્ત્રનો ઉપદેશ ભગવાને અર્જુનને આપ્યો. અને તેનો ઉપસંહાર—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥

—ગી૦ ૧૮।૬૩

'હે અર્જુન, આ પ્રકારે મેં ગુહ્યમાં ગુહ્ય જ્ઞાન તને સંભળાવી દીધું છે તેને સારી પેઠે સમજી વિચારીને પછી તારી ઇચ્છામાં આવે તેમ કર' આ શ્લોકથી કર્યો

અહિં સ્પષ્ટ શબ્દોમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે ગીતાનો પ્રતિપાદ્ય વિષય જ્ઞાન છે

આ શાસ્ત્રને સંજયે પણ ધૃતરાષ્ટ્રને સંભળાવ્યું અને છેવટમાં તેનો ઉપસંહાર કરતા સંજયે કહ્યું—

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्॥

—ગી૦ ૧૮।૭૪

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

—ગી૦ ૧૮।૭૮

'આ પ્રકારનો મહાત્મા વાસુદેવ અને મહાત્મા અર્જુનનો આશ્ચર્યકારક અને રોમાંચકારી સંવાદ મેં સાંભળ્યો અને તે તમને હમણાં સંભળાવ્યો, એના કહેનારા યોગેશ્વર સાક્ષાત્ ભગવાન શ્રી કૃષ્ણ છે અને એનો વિષય પરમ રહસ્યમય યોગ છે. એ તો હું જે એને સાંભળવા પામ્યો તે માત્ર ભગવાન વ્યાસદેવજીનો મારા ઉપર અનુગ્રહ છે કેમકે તેમણે મને દિવ્ય દૃષ્ટિ આપી હતી હે રાજા ધૃતરાષ્ટ્ર, એનું હું વાર વાર સ્મરણ કરું છું અર્થાત્ મનન કરું છું અને તે અદ્ભુત અને પુણ્યપ્રદ હોવાથી મને વળી વળીને હર્ષજ થઈ રહ્યો છે અને સાથે સાથે જ ભગવાનના તે અદ્ભુત વિશ્વરૂપનું પણ મને સ્મરણ થયા કરે છે અને વાર વાર હર્ષનો અનુભવ કરું છું એ તો બધું જે છે તે છેજ, પણ તમારે જાણવા જેવી ખાસ મહત્વની વાત તો એજ છે કે જે પક્ષમાં યોગેશ્વર શ્રી કૃષ્ણ છે અને ધનુર્ધારી અર્જુન છે, તેજ પક્ષમાં એકાન્ત અને અત્યંત ભાવપૂર્વક ધર્મ અર્થ કામ અને મોક્ષ એ ચારેય પુરૂષાર્થ જરૂર હાજર રહે છે એવુંજ હું સમજું છું'

કહેવાની જરૂર નથી કે ઉપરના બન્ને શ્લોકોમાં "योग" અને "ज्ञान" પર્યાયવાચક છે. આ જ્ઞાનનું સ્વરૂપ શું છે? ગીતાની પુષ્પિકા જોવાથી માલુમ પડે છે કે એમાં ઉપનિષદ, વિદ્યા અને શાસ્ત્ર અર્થાત્ જેને વિદ્વાનો પ્રસ્થાનત્રયી કહે છે તેની ચર્ચા છે તેને શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુન એ બન્ને વચ્ચે થયેલા સંવાદનું રૂપ આપવામાં આવેલું છે, એટલા માટે પ્રથમ જોરપૂર્વક સંજય એટલુંજ કહે છે કે મેં શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનો સંવાદ સાંભળ્યો.

"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" तथा "वादः प्रवदतामहम्"

—ગી૦ ૧૦।૩૨

એનોજ ધ્વનિ પુષ્પિકામાં આવેલા—

"ब्रह्मविद्यायां" અને "श्री कृष्णार्जुनसंवादे" એ

શબ્દોમાં સાંભળવામાં આવે છે. અર્થાત બ્રહ્મ અને અધ્યાત્મ એકાર્થવાચી છે. અર્જુનના પ્રશ્નનો ઉત્તર આપતાં, અધ્યાત્મ શબ્દનો અર્થ શ્રી ભગવાન આ પ્રમાણેનો આપે છે—

स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

—गी० ८।३

વાંચકોને જરૂર શંકા થશે કે "गुरुमस्तीति वक्तव्यं, लेखनी पत्रादि अस्तीति लेखितव्यम्" માત્ર એજ ન્યાયે હું કંઈક લખી રહ્યો છું, બધી વાતો ધડ માથા વગરના જેવીજ છે. છતાં પણ હું તેમને વિશ્વાસ આપું છું કે મારૂં લક્ષ્ય સ્થિરજ છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે પુષ્પિકામાં જે "ब्रह्मविद्यायां" શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે તેમાં બ્રહ્મ શબ્દનો અર્થ સ્વભાવ છે, અર્થાત્—

स्वभावस्तु प्रवर्तते । —गी० ५।१४

એમાં જે સ્વભાવનો અર્થ છે—સગુણ બ્રહ્મ, પ્રકૃતિમાં પ્રતિબિમ્બિત પુરૂષ, પ્રકૃતિસ્થ પુરૂષ—તેજ અહિં સમજવાનો છે. મારો ઉદ્દેશ્ય એજ બતાવવાનો છે કે સંજયનો ઉપસંહાર અને વ્યાસ દેવજીનો (અથવા ગીતાકારનો) ઉપસંહાર એ બન્નેમાં પુરી એકતા છે.

મહાભારતના જેટલા હસ્તલિખિત ગ્રંથો મળ્યા છે તે સર્વમાં ગીતાની પુષ્પિકા મળી આવતી નથી. તેથી કેટલાએક વિદ્વાનો શંકા ઉઠાવે છે કે એ કોઇ નકલી લેખકની પોતાની કપોલકલ્પિત રચના હશે, વ્યાસજીની નહીં હોય, એટલુંજ નહીં પણ સ્વયં ગીતાજ વ્યાસ રચિત છે કે નહીં એમાં પણ ઘણાઓની શંકા છે. એટલા માટે હું એજ સિદ્ધ કરવા માગું છું કે શરૂથી અંત પર્યંત ગીતાના નિર્માતા એકજ વ્યક્તિ છે. અસ્તુ

પુષ્પિકામાં સ્પષ્ટપણે ચાર ભાગ જોવામાં આવે છે. જેવા કે—

१ श्रीमद् भगवद्गीतासु उपनिषत्सु,

२ ब्रह्मविद्यायां,

३ योगशास्त्रे,

४ श्री कृष्णार्जुनसंवादे ।

અને સંજય કૃત ઉપસંહારના પણ ચાર અંશ છે. જેવા કે—

१ यत्र योगेश्वरः कृष्णः इत्यादि ।

—१८।७८

२ तच्च संस्मृत्य" इत्यादि ।

—१८।७७

२ राजन् संस्मृत्य" इत्यादि ।

—१८।७६

३ व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान्"' इत्यादि ।

—१८।७५

४ इत्यहं वासुदेवस्य"' इत्यादि ।

—१८।७४

ઉપસંહારના શ્લોક ઉલટા ક્રમથી શા માટે લેવામાં આવ્યા અને ૭૬, ૭૭ ને એકઠા કેમ કરવામાં આવ્યા એનું કારણ આગળ જણાઈ જશે. હવે એ બન્નેનું સારૂપ્ય બતાવવામાં આવશે.

સૌ કોઈ જાણે છે કે પ્રાણિમાત્રમાં દુઃખજીહાસા સ્વભાવ સિદ્ધ હોય છે, પુરૂષાર્થ એજ છે. જેમ કે સાંખ્યકાર કહે છે—

त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।

—सांख्यदर्शन १।१

સંસારી પ્રાણીને ત્રણ પ્રકારનાં જે દુઃખ અપરિહાર્ય ભાવથી ભોગવવાં પડે છે તેનો નાશ થવો એજ સૌની એક અભિલાષા રહે છે. જ્ઞાનથી

કે અજ્ઞાનથી સર્વ હોઈ એજ ચાહે છે શાસ્ત્રકાર દુઃખના ત્રણ પ્રકારના ભાગ પાડે છે. જેવા કે—

આધિભૌતિક—

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥

—ગી૦ ૨।૪

'હે મધુસૂદન, પ્રત્યક્ષ પૂજા કરવાને યોગ્ય ભીષ્મ અને દ્રોણની સાથે હું બાણો વડે સામું યુદ્ધ કેવી રીતે કરીશ બાણોના મારથી તેમના શરીરને પીડા થશે આ શારીરિક દુઃખ છે '

આધિદૈવિક—

'गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥

—ગી૦ ૨।૫

'મહા મહિમાવાન ગુરૂજનોને ન મારીને આ સંસારમાં ભિક્ષા દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલું અન્ન ખાઈને ગુજરાન કરવું એ વધારે સારૂ છે આ અર્થ લાલુ ગુરુઓની હત્યા કરવાથી તો આ લોકમાંજ લોહીથી ખરડાયલા ભોગ ભોગવવા પડશે ' આ ક્ષુધા આદિ જન્ય પ્રાણોનું દુઃખ છે

આધ્યાત્મિક—

'न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥'

—ગી૦ ૨।૬

'આ યુદ્ધમાં જો કે અમારી જીત થશે કે એ લોકોની જીત થશે અને એ બેમા કોની ઉત્તમ ગણાય તે પણ જાણવામાં આવતું નથી.'

'જેમને મારીને અમે લોકો જીવવા ચાહતા નથી તેજ ધાર્તરાષ્ટ્રના પુત્રો લડવા માટે સામે આવી ઉભેલા છે ' આ માનસ દુઃખ છે'

એ સર્વનું મુળ શરીરાદિ જન્ય કર્મ છે એટલા માટે એનું મુળ જે કર્મ છે તેનોજ નાશ કરવો જોઈએ. કર્મનું મુળ અજ્ઞાન છે. અને—"अहं कर्ता, मम कर्माणि कर्मफल संयोगश्च" ૫।૧૪ આ એ અજ્ઞાનનું સ્વરૂપ છે અને 'આત્મા અકર્તા અભોક્તા છે' એ ઉપનિષદુક્ત જ્ઞાનથી એની નિવૃત્ત થાય છે 'અમે માત્ર યંત્રારૂઢ છીએ, યોગેશ્વર અમારા હૃદયમાં સ્થિત રહીને અમને કર્મમાં પ્રવૃત્ત કરે છે, અમે તો એમા નિમિત્ત માત્ર છીએ.' આ એ જ્ઞાનનો આકાર છે. એટલા માટે કહ્યું છે કે—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । ૨, ૪, ૫, ૬ મા અર્જુન પોતાને નિમિત્ત માત્ર સમજે છે કર્તા નહી, એ ઉપનિષદ જ્ઞાનનો ભગવાને અર્જુનને ગીતામાં ઉપદેશ કરેલો છે એમા કર્મ અકર્મ બની જાય છે કેમકે તે ભગવદર્પણ, બ્રહ્માર્પણ થઈ જાય છે, અને આધિભૌતિકાદિ (વિજયાદિના લાભથી) ત્રિવિધ દુઃખનો અત્યંત (ધ્રુવ) નાશ થઈ જાય છે.

આ પ્રકારે પુષ્પિકાના "श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु" આ અંશની ૧૮।૭૮ ની સાથે ઐક્યતા બતાવવામા આવી.

હવે 'ब्रह्मविद्यायां' એ અંશનો વિચાર કરવામા આવશે તેના પહેલા સાંખ્ય વિષયક એક શંકાનું

સમાધાન કરી લેવું જોઇએ. કોઈ કોઈ કહે છે કે સાંખ્ય દર્શન નિરીશ્વર છે. તેના પ્રમાણમાં—

'ईश्वरासिद्धेः'।

આ સૂત્રનો આધાર આપવામાં આવે છે. એ વિષયમાં તર્ક વિતર્ક કરીને શાખા પ્રશાખા વધારવાની બીલકુલ ઇચ્છા નથી. વસ્તુતઃ તો આ સૂત્ર એટલુંજ બતાવે છે કે ઈશ્વર પ્રત્યક્ષ પ્રમાણુથી સિદ્ધ થઈ શકતો નથી. એટલુંજ નહી પણ, સાંખ્ય દર્શનમાં પરાપર બ્રહ્મ પ્રતિપાદક એક સ્વતંત્ર સૂત્ર પણ છે.

सिद्धानां कपिलो मुनिः।

—गी० १०।२६

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिः।

—गी० २।३९

एकं साङ्ख्यं च योगं च।

—गी० ५।५

આ ગીતા વચનોથી ભગવાનની અસત્તા કેવી રીતે સિદ્ધ થશે? છતાં પણ સૃષ્ટિ નિર્માણમાં પ્રકૃતિ ઈશ્વર નિરપેક્ષ છે, એટલોજ સાંખ્ય શાસ્ત્રનો કટાક્ષ હોય તો તે જુદી વાત છે. એટલા માટે ગીતામાં સેશ્વર સાંખ્ય અને નિરીશ્વર સાંખ્ય એ બન્ને મતોનો પુરસ્કાર કરીને તેમનો સમન્વય કરવાને માટે ૧૮।૭૬ અને ૧૮।૭૫ એવા બે શ્લોક કહ્યા છે. નિરીશ્વરના અભ્યહિતત્વને કારણે તેનો સેશ્વરના પહેલાં ઉલ્લેખ કરેલો છે. કેમકે સાંખ્ય દર્શનનો મુખ્ય પ્રતિપાદ્ય વિષય સૃષ્ટિ છે.

પુષ્પિકાના 'योगशास्त्रे' એ અંશનો ગીતાના ૧૮।૭૫ સાથે આનુરૂપ્ય સુસ્પષ્ટ છે.

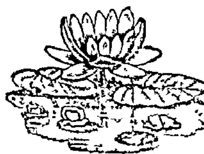
તેવીજ રીતે 'श्री कृष्णार्जुनसंवादे' એની સમાનતા ૧૮।૭૪ સાથે કંઠતઃ પ્રોક્તવત્ છે.

આ સાદૃશ્ય ગ્રંથકારે જાણી જોઇને બતાવ્યું નથી, કોઈ લિપિકારનું છે, એમ કહેવું તો કેવળ દુઃસાહસ માત્ર છે.

અહિ એક પ્રસંગોપાત વાત એ છે કે ગીતાના પુષ્પિકામાં ત્રણેય સ્થાનોનો ઉલ્લેખ હોવાથી જાણવું જોઇએ કે ત્રણેય શાસ્ત્રોનો સિદ્ધાંત અહિ તહીં અનુસંધેય છે અને તેથીજ ગીતોક્તિમાં વૈચિત્ર્ય આવી ગયું છે, એટલે સુધી કે કહીં કહીં તો પરસ્પર વિરોધ પણ પ્રતિત થાય છે.

અસાવધાન વાંચકોને માટે એ સૂચના આપવાની જરૂર છે. ઠીકજ કહ્યું છે—

गीता "सु" गीता कर्तव्या।



કરૂણા લહરી

[પંડિતરાજ શ્રી જગન્નાથ વિરચિતા]

(અનુવાદક.—લાલજી વીરેશ્વર જાનિ)

[અનુસંધાન ગતાંક પૃ૦ ૯૯૯ થી આગળ]

દુઃખિયાં જનનાં દુઃખો હરે,
  ભગવન્, એમજ જાણી મેં ખરે;
સુકૃતે [1]અવહેલના કરી,
  ત્યજ કાં તુ મુજને હવે હરિ ? ૨૨.

વરદ પ્રભુ વેદથી સુણ્યું,
  પતિતોદ્ધારક નામ તાહરૂં;
બહુ પાપ કર્યું સદૈવ મેં,
  ધરી વિશ્વાસ અમાપ તું વિષે. ૨૩.

સુકૃતો ન કર્યા જરા કદી,
  અપકૃત્યો બહુએ કર્યાં વળી;
અતિ શર્મ વિહીન હું હવે,
  ભગવન્ શું કહી રે શકું તને ? ૨૪.

મદ—કામ—વિમોહ મત્સર,
  કરતા શત્રુ મને સુવિહ્વલ;
દમતા તવ દેખતાં મને,
  હરિ, શું લાજ ન આવતી તને ? ૨૫.અ

ધરિયાં હરિ શાસ્ત્ર, અસ્ત્ર તેં,
  વળી છે ચક્ર ગદા જ હાથ મેં;
તદપિ તુજ દેખતાં મને,
  દમતા આ રિપુ, શર્મ તે તને. ૨૫.બ

[2]હરિ, કૂપ વિષે પડંત કો,
  શિશુને સદ્ય બચાવતા જનો;
પડતાં ભવ—અર્ણવે પ્રભુ,
  મુજને કાં ન બચાવતા પિતુ ? ૨૬.

"સુકૃતો કરનારને સદા,
  સુખ દેવું" પ્રભુ તારી એ પ્રથા;
પણ પાપ ન હું જ સેવતો,
  તદપિ કાં સુખ તું ન આપતો ?
મુજને નથી સૌખ્ય આપતો,
  તુજ વિશ્વંભર નામ કેમ તો ? ૨૭.

કડવાં વચને કદિ પ્રભો,
  ઉપજ્યો ક્રોધ જ હોય જો વિભો;
બકવાદ વૃથા ગણી બધો,
  ભગવન્ એ મુજ મહાન પાપીનો;
કરૂણાકર હે દયાનિધિ,
  જગથી તું ઝટ ખેંચી લે મને. ૨૮.

મુજની કૃતિ જોઇ જો પ્રભો,
  મુજને દે, ન સ્વીકારૂં તે વિભો;
પણ જો શુભ આશયે હરિ,
  ધરીને પ્રેમ પ્રસન્નતા ખરી;
મુજને કંઇ આપશો વિભો,
  શિરપે તે ધરી લેઉં હું પ્રભો. ૨૯.

પતિત પ્રભુ હું જ નીચ હું,
  અપરાધી અતિ હું કૃતઘ્ની છું;
તદપિ તુજનો જ જાણીને,
  કરૂણાથી જ વિભો ઉગારી લે. ૩૦.

---

૧ અવગણના—બેદરકારી. ૨ અતીવ કરુણાજનક હોવાથી આ શ્લોક નિત્ય પ્રાર્થનામાં ગાવા યોગ્ય હોવાથી તેનો મૂળ સંસ્કૃત પાઠ પણ અત્રે આપ્યો છે

अयि गर्तमुखं गतं शिशुं पथिकेनापि निवार्यते जवात्।
जनकेन पतन्भवार्णवे न निवार्यो भवता कथं विभो ॥

[1]સુકૃતિ કરતા જનો પ્રત,
કરૂણાલુ તુજની કૃપા થતી;
યદિ હું પ્રતિ તેમ થાય જો,
તવ કીર્તિ વદ કેવી થાય તો ? ૩૧.

શિશુનાં પિતુ [2]લાલનો કરે,
પ્રણયે બાલવયે જ એ ખરે;
કરતાં કંઇ ભુલ યૌવને,
ફરી તે તાત [3]સુતાડનો કરે;
પણ તેં નથી લાલનો કર્યા,
તદપિ તાડન કેમ આચર્યાં ? ૩૨.

*હરિ, હું જ છું દોષ—દુષિત,
તદપિ દોષ હું કાઢતો તવ;
[4]રમણી—વિરહે બળ્યો નર,
[5]કુમતિ, ચંદ્ર જ નિંદતો જયમ. ૩૩.

કરુણાલુ હું દુર્દશાકુલ,
[6]પતિતાલંબન પાપી હું ખલ;
[7]અમૃતામ્બુનિધે ત્યજે ન તું,
મુજને મહા જ્વર તુલ્યને પ્રભુ. ૩૪.

ગણશો નહિ ક્રોધરૂપની,
કટુવાણી મુજ અલ્પ પ્રાણીની;
[1]કુપિતાતુર—બાલ—બોલને,
જન મોટાં મન શું મહત્વ દે ? ૩૫.

[2]ભુજગાહિત—અંકિત—ધ્વજ,
પ્રભુ હું [3]આશ—ભુજંગ—દંશિત;
[4]પ્રબલ જ્વર—કુંજરાંકુશ,
તજશો ના જ્વર તપ્ત હું શિવ[5]. ૩૬.

"નથી મેં કંઈ દુષ્કૃતો કર્યાં,"
પ્રભુ એવું કહીં હું શકુંજ ના;
તદપિ મુજ ભીતિ છે ટળી,
પતિતોદ્ધારક નામને સ્મરી. ૩૭.

જગમાં પુરૂષોત્તમ પ્રભુ,
ભજવા યોગ્ય શિવાદિથી જ તું;
ઠપકો તદપિ તને વિભુ,
દઇને ઉદ્ધત હું જ રે બનું;
ધિક આ અવિવેકી [6]ધીટને,
મુજને છે ધિક મારી બુદ્ધિને. ૩૮.

હરિ સર્વ જણાવિયું તને,
નવ માગું કંઈ અન્ય તું કને;
વસજો મમ માનસે વિભુ,
વપુ અદ્‌ભુત સદૈવ તાહરૂં. ૩૯.

હવે ચાલીસમા શ્લોકથી ભગવાન્ વિષ્ણુના સુંદર મનોહર દેહનું વર્ણન શરૂ થાય છે તેને માટે હવે પછીના અંકની રાહ જુઓ.

અપૂર્ણ.

---

૧ સારા કૃત્ય કરનારા માણસો પ્રત્યે. ૨ લાડ; લાડ પૂર્વક પાલન પોષણ ૩ સારી રીતે શિક્ષા કરવી શારીરિક શિક્ષા. ૪ સ્ત્રીના વિયોગથી. ૫ કુબુદ્ધિવાળો પુરૂષ

* અત્યાર સુધી પ્રભુને દોષિત ગણતો કવિ, હવે પોતાની ભૂલ સમજવા માંડે છે. જુઓ મૂળ પાઠ —
अहमेव हि दोषदूषितो, भगवस्त्वा समुपालभे मुधा।
रमणी विरहज्वरज्वलन्नमृतांशु कुमतिर्विनिन्दति ।।३३।।

૬ પતિત+આલંબન=પતિતના આધારરૂપ, હે પ્રભો. ૭ અમૃતના મહાસાગર હે વિભો.

૧ ગુસ્સે થયેલા અને દુઃખથી પીડાતા બાલકના બોલને. ૨ ભુજગ + અહિત=સર્પનો દુશ્મન (ગરૂડ) ગરૂડનું ચિન્હ છે જેમની ધ્વજામાં તે. ૩ આશારૂપી નાગથી ડંખાયેલો. ૪ ભયંકર તાવરૂપ હાથીને તાબે રાખનાર અંકુશ સમાન. ૫ હે પ્રભો. ૬ ધીટ=બેહૂ બોલકણો વાળો.

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(લે૦ વકીલ બાપાભાઈ નારણજી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૯૮૪ થી આગળ]

सर्वभूतहिते रताः ।

—ગી૦ ૫।૨૫ ૧૨।૪

એમાં જે વર્ણન છે તે ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે-ના તત્વવેત્તાના સ્વભાવની વસ્તુ સ્થીતિનું વર્ણન છે. ત્યારે હવે આ ઉપરથીજ—

वर्त एव च कर्मणि । —ગી૦ ૩।૨૨

એ વાક્ય ભગવાને પોતાને માટે ઉચ્ચારેલું છે તે ભગવાનની સ્વાભાવીક વાસ્તુ સ્થીતિનું દર્શક જ છે પણ ભગવાનને આજ્ઞા કરનારૂ તે વાક્ય નથી, તેમજ—

कुर्याद्विद्वांस्तथा० । जोषयेत्सर्वकर्माणि ।

—ગી૦ ૩।૨૫,૨૬

માં જણાવેલા વાક્યો પણ તત્વવેત્તાને આજ્ઞા કારક નથી પરંતુ તે વાક્યો તત્વવેત્તાની સ્વાભાવીક વસ્તુ સ્થીતિને દર્શાવનાર કીંવા અનુવાદક વાક્યો છે તેમ વળી એજ વાક્યો અજ્ઞાનીઓને પોતાની સાધના કરવા તરફ પ્રેરનાર અને પ્રેરણાત્મક કિંવા ઉત્તેજક કોઈ અર્થવાદરૂપજ છે.

જો ઉપર પ્રમાણે તે વાક્યોનો અર્થ ન કરીએ અને તત્વવેત્તાને પણ ઉપદેશ કરવા માટે તે વાક્યો લખાયલા છે એવો અર્થ કરીએ તો પછી તે ઉપદેશ કરનાર શાસ્ત્રનેજ વ્યર્થતા આવશે. કારણ પોતાના ઉપદેશનો અધીકારી મળ્યા વીનાજ શાસ્ત્ર ઉપદેશ કરવા બેઠી જાય તો પછી શાસ્ત્રે અરણ્યમાંજ રૂદન કર્યું ગણાશે અને એસ આગળ આગળ ચાલી કહેવાય.

કારણ તત્વવેત્તા તો તેવા ઉપદેશો સાંભળીને તેમાં પારંગત બની ગયો છે એટલે જે છોકરાએ સાતમી ચોપડી પાસ કરી હોય, મેટ્રીક પાસ કરી હોય, તેને કોઈ પહેલી ચોપડી બાળપોથી કે પ્રાઈમર નો ઉપદેશ કરવા બેસે—તેનું શીક્ષણ આપવા બેસે તો તેને માટે તેવો સાતમી ચોપડી પાસ થએલ અગર મેટ્રીક પાસ થએલ તે અધીકારી ગણાયજ નહીં, છતાં તેની પાસે તેવો ઉપદેશ કરવો તે ઉપદેશ કરનારનીજ અપૂર્ણતા સૂચવે, પરીણામે તેવો ઉપદેશ કરનારજ અજ્ઞાની ઠરે. ને તેવોજ દોષ તેવા શાસ્ત્ર પર પણ આવે તેટલા માટેજ શાસ્ત્રોમાં વીધી નીષેધના વાક્યો એ તત્વવેત્તાને માટે નથી જ પણ અજ્ઞાનીને માટે છે

મતલબ શાસ્ત્રને પોતાને કોઈ દોષ કે આરોપ ન આવે તે માટે શાસ્ત્ર લખનાર વિદ્વાનો બરાબર આગળ પાછળનો એક રંગ વીચાર કરીનેજ શાસ્ત્ર નો અર્થ કરે છે કારણ તેમ ન થાય તો ઉપર દર્શાવ્યું તેમ એક લાકડીએ બધાને હાંકવાનો પ્રસંગ આવે અને તેમ થાય તો વીધી નીષેધના વાક્યો તત્વવેત્તાને પણ કેટલાક વીદ્વાનો લગાડે પણ તે યોગ્ય નથી

ગીતા શાસ્ત્ર માટે તો શ્રીમત્ જગદ્ગુરૂ શ્રી આદ્ય શંકરાચાર્યે આ કામ આજથી ૨૩૬૧ વર્ષ પહેલા જ પર્યંત પેઠે કરેલ અને આજ કરેલું છે અને તે એ કે ગીતાની અંદરના વીધી નીષેધના વાક્યો એ કેવળ અજ્ઞાની અને મુમુક્ષુઓ માટેજ

છે પણ તત્ત્વવેત્તાને માટે તેવાં વાક્યો નથી. કારણ તત્ત્વવેત્તાને તો તેવી બાબતોમાં સ્વભાવજ બંધાઈ ગયો હોય છે. હવે આપણે આજ બાબતને જરા આગળ વધીને તપાસીએ તો જણાશે કે પ્રત્યેક તત્ત્વવેત્તા સ્વભાવથીજ લોકસંગ્રહ કરનારોજ હોય છે.

તત્વવેત્તાએ પોતાનું મોક્ષનું પરમ ધ્યેય સિદ્ધ કરી લીધું હોય છે. અને તે સિદ્ધ પદે પહોંચવા તેણે પોતાની અજ્ઞાન અવસ્થામાં જ પ્રથમ કર્મ યોગનો આરંભ કરેલો હોવોજ જોઇએ, ત્યાર પછી યોગાભ્યાસ, ઉપાસના, આત્મ અનાત્મ વિવેક, શ્રવણ, મનન, આદીક જ્ઞાનાભ્યાસ, એવા ક્રમથી મોક્ષ સુધીના અંતીમ ધ્યેયની પ્રાપ્તિ સુધી તે આવી પહોંચ્યો. હવે ત્યાર પછી લોક કલ્યાણ માટે તેવા તત્વવેત્તાએ જે કંઈ કરવાનું હોય છે, તેનો પણ અંતીમ ધ્યેય મોક્ષજ હોવો જોઇએ. અર્થાત્ કર્મ યોગના મૂળ આરંભથી તે બ્રહ્મ સાક્ષાત્કાર થતાં સુધીનાં તમામ સાધનો પૈકી જે જે સામાન્ય બુદ્ધીના માણસોને જોઇતાં હોય, છતાં મળતાં ન હોય અગર તેવાં સાધનોને સામાન્ય માણસ ઓળખી શકતો ન હોય, અને તેથી તેવાં સાધનને અભાવે સામાન્ય માણસ જ્યાં અટકી જતો હોય, તે તે સર્વ સાધનો તેને બતાવવાં, ઓળખાવવાં, પરીચય કરાવવો, અને તે રીતે સામાન્ય મનુષ્યને મોક્ષના માર્ગમાં આગળ વધારવો એજ લોક કલ્યાણ અને તેજ તત્વવેત્તાએ મોક્ષનું ધ્યેય સંપાદન કર્યાં પછી પણ કરવાનું હોય છે. તેમ છતાં બધાય તત્વવેત્તાઓને, સર્વકાલ, લોક કલ્યાણનું એક સરખું જ કાર્ય કરવાનું પણ હોતું નથી, પણ પ્રસંગ અને સંજોગો પ્રમાણે કરવાનું હોય છે.

પરિક્ષીત રાજાએ જાણ્યું કે પોતાને સાતમે દીવસે મૃત્યુ આવશે ત્યારેજ તે વીરક્ત થયો. અને કોનું રાજ્ય ? અને કોનું કોણ ? એવી સ્થતિમાં તે રાજ્ય છોડીને મરણ ભયથી મુક્ત થવાનો માર્ગ ન પકડે તો બીજું કરે પણ શું ? । તે ક્ષત્રી તો હતો છતાં રાજ્યની પરવા ન કરતાં ગંગા તીર પકડવું પડયું.

આવે સમયે પરીક્ષીતને ભગવાન કદાચ એમ કહે કે હે રાજા, તારૂં મરણ તો હજુ સાતમે દીવસે આવવાનું છે, તો પછી તું છ દીવસ સુધી તો મરવાનો નથી એ વાત તો નક્કી છે. તો પછી ક્ષત્રીય ધર્મ પ્રમાણે તારે તો રાજ્યનું રક્ષણ કરવું જોઇએ કે રાજ્ય છોડીને પોતાના એકલાના જન્મનું સાર્થક કરવા—મોક્ષ માર્ગ પકડવો ? ભગવાન ગમે તેમ કહે પણ પરીક્ષીત રાજાએ તો રાજ્યને તણખલાની સમાન ગણીને છોડી દીધું અને ગંગા કીનારે આવી અનશન વ્રત ધારણ કરીને ભાગવત 'શ્રવણ કર્યું', આવા પ્રસંગે શ્રી શુકદેવજીએ આવીને રાજા પરીક્ષીતને ૭ દીવસ સુધી શ્રી ભાગવત સંભળાવીને મરણના ભયથી મુક્ત કર્યો—એ મોટામાં મોટું લોક કલ્યાણ શ્રી શુકદેવજીએ કર્યું છે એમ કોણ નહી કહે ?

તત્ત્વવેત્તાએ લોકસંગ્રહ કરવો એવો જો કે શાસ્ત્રનો ઘોષ અને ઉદ્દેશ છે તો પણ સારાસાર વીચાર કરીનેજ તેવા લોકસંગ્રહનો અમલ બજાવણી કરવી એ તત્વવેત્તાના હાથની વાત છે અને તેવે પ્રસંગે સંજોગવશાત્ તત્વવેત્તાએ તારતમ્ય દૃષ્ટિ રાખ્યા વીના છુટકો નથી.

પ્રાચીનબર્હિ રાજાએ યજ્ઞ આરંભ્યા, હજારો પશુ માર્યાં, સર્વ પૃથ્વી પર દર્ભજ દર્ભ પાથર્યા, એવો પ્રકાર જોઇ નારદજીએ તે કર્માસક્ત રાજાનો બુદ્ધીભેદ કર્યો એટલે એવા કર્મયોગના અતીર-

કર્યો તેની મતી ચલીત કરી અને નારદે તે પ્રાચીન બર્હિ રાજાના કર્મયોગની મહત્તાને મુળમાંથી ઉખેડી કહાડી. નારદનું આવું વર્ત્તન કેવું દેખાય છે? અમોને તો તે યોગ્યજ દેખાય છે કારણ સામાન્ય રીતે પણ अति सवत्र वर्जयेत् । એ ન્યાય માન્ય કરવોજ જોઈએ બૌદ્ધોના વખતોગીઘામાં વેદીક કર્મયોગ આથમવા લાગ્યો, ત્યારે શ્રી કુમારીલ ભટ્ટાચાર્ય વીગેરેએ તેને ફરીથી ઉજ્જવલીત કર્યો પરંતુ તેજ પાછળથી એટલો બધો પ્રબળ થઈ પડ્યો કે તેના આડંબરમાં બીચારો શાંત વેદોક્ત નિવૃત્તિ માર્ગ સંન્યાસ બ્રહ્મજ્ઞાન—ઇત્યાદી—લુપ્તપ્રાય થઈ ગયા ત્યારે શ્રી શંકરાચાર્યે તેને પ્રકાશમાં આણીને સર્વ યથાયુક્તપણે વ્યવસ્થીત કરીને લોકોદ્ધાર કર્યો—

ઉપરની તમામ વાતો લોકસંગ્રહનીજ છે અને તેઓ પ્રસંગ પ્રમાણે તારતમ્ય લક્ષમાં રાખીને યોગ્ય રીતે થાય તેજ ઇષ્ટ છે પરંતુ જુના નાણાં જેવું સાચું નાણું ફેંકી દઇને ખોટા જેવું નવું નાણું લેવું તે તો ઇષ્ટ નથી અસ્તુ

ગીતાને જે નીત્ય અવીનાશી જોઇએ છીએ તેજ નીત્ય અને તેજ અવીનાશી શંકરાચાર્ય વીગેરેને પણ સર્વકાલમાં જોઇએ છે તેમ દરેકને પણ યોગ્ય પ્રમાણમાં યોગ્ય રીતે તેજ વસ્તુ જોઇએ છે અને આ સર્વ બાબત, જરૂર પ્રમાણે ભગવદ્ગીતામાં રહેલી છે જ અને ગીતાની ઈચ્છા એટલીજ છે કે સર્વે લોકો ગીતાની અંદર સમસ્ત વેદાંતનો સંગ્રહ છે એમ માની લઈ એમ સમજી લઈને તેનું અધ્યયન કરીને તે પ્રમાણે વર્તે

મુદ્દો એજ કે સર્વ તત્ત્વવેત્તાઓ લોક કલ્યાણનું કાર્ય કુદરતી રીતેજ સ્વભાવવશથીજ કરતા હોય છે તે દરેકની કરણીમાં—કરવામાં ફેર આપણને લાગતો હશે અને તેમની વર્તન પદ્ધતીમાં અને સ્વભાવમાં વીચીત્રતા પણ ભાસશે છતા તેઓમાં ઉત્તમ મધ્યમ કનીષ્ટનો ભેદ નથી અને પાડી શકાયજ નહી

ગીતાએ જે વ્યક્તીને, જે તત્ત્વવેત્તાને ઉત્તમ માન્યો છે તે તો આ રહ્યો—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

—અ० ૬ શ્લો० ૯

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।

—અ० ૭ શ્લો० ૧૯

ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।

—અ० ૭ શ્લો० ૧૮

ઉપરનાં વાક્યોમાં વર્ણવાએલી વ્યક્તીઓ—મનુષ્યો—તત્ત્વવેત્તાઓ એજ ગીતાના ધોરણ અનુસાર ઉતમમાં ઉતમ છે

સાધારણ જન સમાજને ઉપર જણાવેલા છે તેવી વ્યક્તી—તેવા મનુષ્યો—તેવા તત્ત્વવેત્તા હોવા સંબંધે શ્રદ્ધા ન બેસે વીશ્વાસ ન આવે તો અમે નીરૂપાય છીએ

પરંતુ શાસ્ત્રને તો તેવી પરીપૂર્ણ વ્યક્તીના અસ્તીત્વમાં પૂર્ણ શ્રદ્ધા છે શાસ્ત્ર તો કોઈપણ તત્વવેત્તાના લોકસંગ્રહના કાર્યો પરથી તેના વર્ગ કરાવતું નથી તેમ કોઇને ઉંચ-નીચ મધ્યમ તત્વવેતા છે એમ વર્ણવતું નથી

સાધક અવસ્થાની દ્રષ્ટિએ તેવા ભેદ દેખાય એ સ્વાભાવીક છે સારાંશ એજ કે વ્યાસ જનક વીગેરે તેમજ શુકદેવજી-યાજ્ઞવલ્ક્ય વીગેરે શાસ્ત્રની દ્રષ્ટીમાં તો સરખાજ છે ઉંચ નીચ નથી ઉપર જણાવેલા તત્વવેત્તાઓમાં કોઇએ લોકસંગ્રહ કર્યો હશે ને કોઇએ નહી કર્યો હોય તો પણ તેજ કારણથી કોઈ ઉત્તમ-મધ્યમ કનીષ્ટ ઠરી જતા નથી

નોની ખાત્રી થશે કે જનક રાજા કરતા શુકદેવજીની કીંમત ઓછી આંકવામા તે વીદ્વાનોની મોટી ભૂલ થાય છે

બૃહદારણ્યક શાનોત્તર ક્ષણે પ્રત્યક્ષ જનક રાજા શુરૂ યાજ્ઞવલ્કયને શું કહે છે તે આપણે જોઇએ—

याज्ञवल्क्य यो नो भगवन् अभयं वेदसे
नमस्तेऽस्तु इमे विदेहा अयमहमस्मि ।
— ४।२।४

सोऽहं भगवते विदेहान् ददामि मा चापि सह दास्यायेति
४।४।२३

ઉપરના શ્લોકોનો ભાવાર્થ જોઇએ તો જ્ઞાન સપન્ન થએલો જનક રાજા કૃતકૃત્ય થઇને શ્રીગુરૂ રૂપ યાજ્ઞવલ્કયને એવી પ્રાર્થના કરે છે કે 'હે ભગવન્, આપે મને આપની જે વીદ્યાથી સાક્ષાત્ અભય દાન—સાક્ષાત્ આત્મદાન આપ્યું તેને માટે આપને હું શું આપું ? આપવા જેવું મારી પાસે તો કાઇ પણ છે નહીં માટે બે હાથને ત્રીજુ માથુ નમાવી નમસ્કાર કરૂં છું મારો આ વીદેહ દેશ અને હું એ સર્વે આપનાજ છે હું મારા પોતાના સહ આ સર્વે આપની સેવામા અર્પણ કરૂ છઉં અસ્તુ

ઉપરની સ્થીતિમા જનક રાજા જો કે જન સમાજમા રહીને લોકકલ્યાણ કરે છે અને યજ્ઞ વલ્કય ત્યાગી થઇને જનક-યાણ કરે છે તેથી જનક ની રહેણી કરણી સારી અને યાજ્ઞવલ્કયની ખરાબ એમ જો આપણે કહેવા ધૃષ્ટતા કરીએ તો તુરતજ જનક રાજા એવો જવાબ આપશે કે—

एवनित्यो महिमा ब्राह्मणस्य,नवर्धते कर्मणा नो कनीयान्
(४।४।२३)

स न साधुना कर्मणा भूयान् नो हव असाधुना कनीयान्
एष सर्वेश्वर ।　　(४।४।२२)

એનો અર્થ એવો કે—બ્રહ્મ આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરેલ એવા આત્મભૂત તત્વવેત્તાને જે મહીમા પ્રાપ્ત થાય છે, તે મહીમા નીત્ય અને અવીનાશી હોય છે. જ્ઞાનોતર દશામા કર્મયોગનું આચરણ કરવાથી તેનો મહીમા કંઇ વધતો નથી, તેમ તેનું આચરણ ન કરવાથી તેનો મહીમા ઓછો થતો નથી મતલબ, જ્ઞાનોત્તર દશામા સત્કર્મથી મહીમા વધતો નથી અને અસત્કર્મથી ઘટતો નથી.

તાત્પર્ય એ જ કે સર્વ તત્વવેત્તામા પણ વિરાગી—લોગત્યાગી એવો એકજ શુકદેવજી સાધુ તો લોકસગ્રહનું કૃત્ય એટલું બધું અધીક મહત્વનું કરે છે કે તેટલું તો જનક રાજાથી પણ થતું નથી અને થવાનું પણ નથી

વગી લોકોમા જન સમાજમા ભળીને રહેનારા તત્વવેત્તાના ખરા સન્માર્ગ માટે લોકોને એટલી ભાવના પણ ઉત્પન્ન થવા જેવી હોતી નથી કારણ કે તેવો તત્વવેત્તા જન સમાજને પોતાની કોટીનોજ લાગવાનો અધીક સભવ છે, તેના કરતા તો ત્યાગી વીરાગી—એવા તત્વવેત્તાઓ જ ખરા તારણહાર મનાય છે. અને તેવાઓને લીધેજ જગત તેમને ભજે છે. આ બાબત તો આપણે પ્રત્યક્ષ દરરોજ જોઇએ છીએ

ગમે તે હો પણ સર્વથા ત્યાગી હોનારા શુકદેવજી ભરતમુની-યાજ્ઞવલ્કયાદીક મહાસાધુ તત્વવેત્તાઓજ અધીક લોકકલ્યાણ કરનારા ઠરે છે જ્યારે જનકાદીક તેવા ઠરતા નથી સારાશ એજ કે જ્ઞાનની દીવા મુક્તીની બાબતમાં જે પ્રમાણે તત્વવેતાઓમાં ઉત્તમ અધમ ભેદ ગણવો યોગ્ય નથી તેજ પ્રમાણે તેમના લોક કલ્યાણ સબધે પણ ઉત્તમ અધમ ભેદ ઠોકી બેસાડવો યોગ્ય નથી કારણ સર્વ તત્વવેત્તાનું જ્ઞાન એકજ, મોક્ષ પણ એકજ. અસ્તુ

પાંચમા અધ્યાયને આરંભે અર્જુનને જે પ્રશ્ન હતો તેને ભગવાને ઉત્તર આપ્યો છે કે પ્રથમ કર્મ-યોગનું આચરણ કર્યા સીવાય—કર્મ સંન્યાસની સ્થીતિ પ્રાપ્ત થવી ઘણીજ કઠીન છે. જ્યારે કર્મ-યોગ સંપન્ન થએલા મુનીને કર્મ સંન્યાસની સ્થતિ જલદી પ્રાપ્ત થાય છે. તેથી આત્મશુદ્ધી માટે કર્મ યોગજ મુમુક્ષુસાધક પ્રથમ કરે છે. ઉપર ટપકે જોતાં તત્ત્વવેત્તાઓ પણ કર્મ યોગજ કરેજ છે. પરંતુ એ તેવાઓને પ્રકુતિસીદ્ધ સ્વભાવજ છે.

અહીં પણ અર્જુન અગાઉની પેઠે પાપ પુણ્યની કથા કાઢે તો તે માટે અગાઉ નીર્ણય થઈ ગયો છે. તે એવો કે પાપપૂણ્ય કથા કંઇ દુર્બોધ નથી. કારણ કે પાપ અને પૂણ્ય એ બન્ને અજ્ઞાનમુલક છે એટલે અજ્ઞાનને લઇને ઉત્પન્ન થયાં છે, ખરી રીતે પાપ અને પૂણ્ય જ્ઞાન પ્રાપ્તિ થયામાં છેજ નહી. માટે આત્મતત્વ જ્ઞાનનો આશ્રય દરેક મનુષ્યે કરવો જોઇએ. આ પ્રમાણેનું ભગવાનનું વ્યાખ્યાન અધ્યાય ૫ માના શ્લોક ૧૩ થી ૨૬ સુધી આશરે ૧૫ શ્લોકોથી ચાલેલું છે. તેથી પણ સ્પષ્ટજ થાય છે કે અર્જુનનું મુખ્ય ખરૂં કલ્યાણ કીંવા રક્ષણ આત્મજ્ઞાનમાં જ છે. માટે આત્મજ્ઞાનનુંજ નીરૂપણ થવું જોઇએ.

ખરી રીતે કર્મ તો કોઇને છુટતુંજ નથી અને એ તો એમજ થયા પણ કરશે. તેના માટે કંઈ વિશેષ ચિંતાની જરૂર નથી. ચિંતા ફક્ત એટલી જ છે કે તેવાં કર્મ કરવાથી મનમાં જે શોક ગ્લાની થાય છે તે ન થવા જોઇએ અગર નીકળી જવા જોઇએ અને તે માટે અર્જુનને આત્મ—સાક્ષાત્કાર પર્યંત નીરૂપણની સવેગ ગતીથી પહોચતો કરવો જોઇએ.

આ પ્રમાણે મનમાં વીચાર કરીને ભગવાને ૫ માના ૨૭-૨૮ અને ૨૯ એ છેલ્લા ત્રણ શ્લોકોથી સમાધીયોગ અભ્યાસ વીષે સુત્રરૂપે ઉપોદ્ઘાત કરીને પાંચમો અધ્યાય પુરો કર્યો. મુદ્દા એજ કે આત્મ વીષયક સમાધીથી તત્વ સાક્ષાત્કાર થતાં એ સાધક સીદ્ધ થઇને શાંતી બ્રહ્મને પામે છે.

(ક્રમશઃ)

વર્ણ વિજ્ઞાન

(લે૦—શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનન્દજી સરસ્વતીના ઉપદેશ)

(અનુવાદક અને પ્રેષકઃ—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ)

तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥

ब्र० वै० पुराणम् ।

પ્રકાશ સ્વરૂપ, શ્રેષ્ઠ, ભક્ત ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે સાકાર, નિરવરૂપા, જગદીશ્વરી, જગતનો આધાર, એવી પણ થઇ તમે છો.

ઇન્દ્રિય દ્વારા વિષય ગ્રહણ કરીને જ્યારે તમો આત્મઅસ્તિત્વનો અનુભવ કરો છો, અર્થાત્ ઇન્દ્રિયને વિષય શબ્દમાંથી રોકવાથી "તમે છો" એ જ્ઞાન પણ રહેતું નથી, ત્યારે રૂપાતીત, ગુણાતીત, અરૂપ, નિર્ગુણ, સત્તામાત્ર પરમાત્માની ઉપાસના કરવી અસંભવ છે, તેથી આત્માનું સૂર્ય સ્થિત શુભ્ર જ્યોતિનું ધ્યાન કરવાનું ગાયત્રી મન્ત્રમાં કહેલ છે. શુભ્ર જ્યોતિનું ધ્યાન કરવાથી શું કલ્યાણ

પ્રાપ્ત કરશો ? ઋષિ બોલે છે ધ્યાન દઈ સાંભળો—

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
य पश्यन्ति यतय क्षीणदोषा । —मु० ३

હૃદયસ્થિત જ્યોતિર્મય શુભ્ર વર્ણનું દોષ રહિત યતિગણ અર્થાત્ સંન્યાસીગણ દર્શન કરે છે શુભ્ર વર્ણમાં બધા વર્ણ વિલીન થઈ જાય છે અથવા શુભ્ર વર્ણ બધા વર્ણને આવૃત—આચ્છાદન કરી પોતે જ્યોતિ રૂપમા પ્રકાશે છે શુભ્ર જ્યોતિનુ ધ્યાન કરવાથી શુ મળશે, સાંભળશો ? તમારા શુભ્ર જ્યોતિના ધ્યાનની સ્થિતિ અનુસાર અર્થાત્ ઉક્ત ધ્યાનની દીર્ઘ સ્થિતિ થવાથી અનન્તવર્ણ વ્યંજનામય વિશ્વ અને તમે શુભ્ર જ્યોતિર્મય થઈ જશો ત્યારે તમોને અનન્ત વિસ્તૃત એકમાત્ર શુભ્ર જ્યોતિનોજ અનુભવ થતો રહેશે ઉક્ત જ્યોતિ સમુદ્રમાં ગળી જઈ ભૂમા, જ્યોતિર્મય, શિવ હુંજ છું એ પ્રકારનો બોધ થતો રહેશે તે જ્યોતિનુ નામ ચિત્તાકાશ છે પાતંજલ યોગદર્શનમા તેને विशोका वा ज्योतिष्मती કહે છે આ જ્યોતિસ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરવાથી શોક દુ:ખાદિનો નાશ થાય છે અને બહુ સુખ વા આનન્દનો અનુભવ થતો રહે છે. ઉક્ત સ્થાનમા અર્થાત્ તે જ્યોતિ સમુદ્રમા અધિક દીર્ઘ સ્થિતિ થવાથી ઉક્ત શુભ્ર અંશમાં નીલ અંશ મળી જઈ અવર્ણ, અરૂપ, જ્ઞાનમય, સુખ સ્વરૂપ, ચિદાકાશનો પ્રકાશ થાય છે, તે ચિદાકાશ એજ ઈશ્વર—ભગવાન્ છે. અથવા આ ચિદાકાશને પ્રાપ્ત કરવુ એજ સમ્પ્રજ્ઞાત યોગ કે સવિકલ્પ સમાધિ છે. આ વિશ્વ બ્રહ્માંડમાં જે કાંઈ છે અને નથી તે બધુંજ તેમા છે. તન્ત્ર શાસ્ત્રમા ઉક્ત ચિત્તાકાશને ગુરુ અને ચિદાકાશને ઈશ્વર કહે છે ચિત્તાકાશ અને ચિદાકાશમાં ભેદ નથી ચિત્તાકાશની નિર્મલ અવસ્થા એજ ચિદાકાશ છે.

કાંઈક સ્થૂલ મૂર્તિમાં પહેલા ગુરુ આવે છે. તે ગુરુમા ઈશ્વર બુદ્ધિનો આરોપ કરી વિક્ષેપ રહિત થઈ દર્શન કરવું પડે છે કારણ કે પહેલા મનુષ્ય અવર્ણ, અરૂપ, જ્ઞાનમય, સુખસ્વરૂપ આત્મા વા માનુ દર્શન કરી શકતો નથી તેથીજ પરમ કરુણામયી મા ગ્રહણ વા દર્શન યોગ્ય થઈને આવે છે મે પહેલા કહ્યું છે કે શુભ્ર વર્ણમા નીલ વર્ણ મળી જવાથી તે અવર્ણ, પ્રતિબિમ્બ ગ્રહણ યોગ્ય, શુદ્ધ સ્ફટિકવત્ થાય છે તેથી શિવ શુભ્ર વર્ણ અને કંઠ દેશ નીલ વર્ણ છે શુભ્ર બલરામની પાસે નીલ વર્ણ શ્રી કૃષ્ણ છે અને મહાદેવની છાતી ઉપર મહાકાલીનું લીલા નૃત્ય છે.

વર્ણાનુક્રમે જાતિભેદ:—

સત્વગુણ સિદ્ધ શુક્લ-શુભ્ર સર્વોત્તમ વર્ણ વા જાતિ બ્રાહ્મણ છે ધી અર્થાત બુદ્ધિ વા જ્ઞાન તેનુ સ્વરૂપ છે રજોગુણાધિક રક્ત વર્ણ જાતિ ક્ષત્રિય છે જ્ઞાનલક્ષ કર્મ તેનો ધર્મ વા સ્વરૂપ છે રજસ્તમોગુણાધિક પીત વર્ણ જાતિ વૈશ્ય છે. વિષય વા પદાર્થ લક્ષકર્મ તેનુ સ્વરૂપ છે તમોગુણાધિક કૃષ્ણ વર્ણ જાતિ શૂદ્ર છે અને અજ્ઞાન તેનું સ્વરૂપ છે.

સાધક ! તમારામાં જેમ ધી વા બુદ્ધિ એક છે, તે બુદ્ધિની ઉપર પરમેશ્વર રહે છે અને શુદ્ધ બુદ્ધિ દ્વારા તેજ પરમેશ્વરને જેમ જાણી શકાય છે, તેમ બ્રાહ્મણના હૃદયમાં ભગવાન સર્વદા વાસ કરે છે બ્રાહ્મણજ સત્ય ભગવાનને જાણી શકે છે શાસ્ત્રે પણ બુદ્ધિ જ્યોતિનો શુભ્ર વર્ણ કહ્યો છે તમે પણ જો મિથ્યા, મલિનતા, આલસ્ય અને પ્રીકરનો ત્યાગ કરી શુભ્ર, નિર્મલ, દોષ રહિત, સત્યપરાયણ બ્રાહ્મણ જેવા થઈ શકશો તો તમારા હૃદયમા ભગવાનને પ્રાપ્ત કરીને ધન્ય થશો, તમારો મનુષ્ય જન્મ સાર્થક થશે.

હે બ્રાહ્મણ વંશમાં ઉત્પન્ન થયેલ દ્વિજગણ ? उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत મોહ નિદ્રામાં પડી પોતાના અધિકારથી વધારે કેટલો વખત વંચિત રહેશો ! ઊઠો ! જાગો ! કયા દોષથી આજ તમે લોકો સ્થાન ભ્રષ્ટ, અધિકારથી વંચિત થયા છો ? તે જાણવા યત્નશીલ થાઓ. ભગવાન મનુ વા બધા મનુષ્યો શું બોલે છે, સાંભળો :—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥

વેદાધ્યયન ન કરવાથી, આચાર રહિત થવાથી, આલસ્ય અને અન્નદોષને કારણે અર્થાત્ શાસ્ત્રનિષિદ્ધ અન્ન ગ્રહણ કરવાથી મૃત્યુ વિપ્રનો નાશ કરે છે. અર્થાત્ વારંવાર જન્મમૃત્યુના પેષણમાં ત્રાહિ ત્રાહિ ‍ારે છે. કિન્તુ તારે કોણ ? અવિદ્યા, મિથ્યા, ‍અનાત્મબોધ, ચાલાકી, ફીકર, પરિગ્રહ, અને ‍ાભ એ બધાં ત્રાણ કરશે કે બંધન કરશે ? જો ‍ાચવા ઇચ્છતા હો, જો પોતાના વર્ણમાં રહેલ, ‍ામાં રહેલ મર્યાદાની રક્ષા કરવા ઇચ્છા હોય ‍ાે સાંભળો:—

શુભ્ર, નિર્મલ, સત્વગુણ પ્રધાન, સત્યપરાયણ ‍ઈ શકતા ન હો તો સત્યાશ્રય કરી, મિથ્યા વગેરે‍ ‍ા ત્યાગ કરી, સાધન તત્પર થાઓ. ત્યારે તમે ‍ાધા શક્તિ બ્રહ્મવિદ્યાથી શક્તિ મેળવશો. અને ‍મારી આત્મમુખી ગતિ વેગવાળી થશે તેમજ ‍ાડા સમયમાં તમે દોષ રહિત, શુભ્ર, નિર્મલ, ‍ુદ્ધ સ્ફટિકવત્ થઈને આત્મલાભ—માતૃલાભ ‍રીને તમારા મનુષ્ય જન્મની સાર્થકતાનો અનુભવ ‍રી કૃતકૃત્ય થઈ જશો.

કોઈ બ્રાહ્મણેતર વર્ણ બ્રાહ્મણ ન હોવાથી ‍સંકુચિત ન થાઓ. જો સત્યાશ્રથી થઈ શુદ્ધ ‍નિર્મલ થઈ શકશો તો આવતે જન્મે બ્રાહ્મણ કુલમાં જન્મ લઈ સત્ય બ્રાહ્મણ થશો. કારણ કે પરમેશ્વર ન્યાયકારી છે. ત્યારે તમે બ્રાહ્મણ ધર્મનું પાલન કરી ચતુર્થાશ્રમમાં સંન્યાસ લઈ મોક્ષ-પરમશાન્તિ પ્રાપ્ત કરશો. ત્યારે આ યાદ રાખજો કે જે સત્ય બ્રાહ્મણ છે, તેને ચોથો આશ્રમ સંન્યાસ નક્કી છે. મિથ્યાશ્રયી, લોભી, સંસાર પાશમાં બંધાએલો બ્રાહ્મણ નામધારી વ્યક્તિ માત્ર બ્રાહ્મણ કુલને મલિન કરે છે. તેનાથી જગતનું કોઈ પ્રકારનું કલ્યાણ થઈ શકતું નથી. બ્રાહ્મણ તો પરિગ્રહ રહિત, પરમ કલ્યાણ સ્વરૂપ છે. અને જગતના હિત માટે જન્મ ગ્રહણ કરે છે. ભગવાન વિષ્ણુએ પોતાના હૃદયમાં બ્રાહ્મણના પદનું ચિન્હ ધારણ કર્યું છે. તેમજ બધા દેવતાઓએ બ્રાહ્મણની પાસે શિર નમાવી બ્રાહ્મણોને બધાથી ઊંચું સ્થાન આપ્યું છે.

બ્રાહ્મણ ગણ ? તમારા અધિકારને કોઈ લૂંટી ગયું નથી. જે દિવસ ઇચ્છશો, તેજ દિવસ પોતાનો અધિકાર મેળવશો. આલસ્ય કરી મોહ નિદ્રામાં વધારે પડી ન રહો. શ્રોત્રિય, બ્રહ્મનિષ્ઠ ગુરુના ચરણ પાસે પોતાનો અધિકાર જાણવા માટે સમિધ પાણિ થઈ જાઓ.

तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ मु॰

તે આત્માને જાણવા માટે પ્રણિપાત અને સેવા કરી પ્રશ્ન કરશો તો તત્વદર્શી જ્ઞાની ગુરુ તમારા અધિકાર પ્રમાણે જ્ઞાનનો ઉપદેશ કરશે.

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ -गीता

આવો પતિત બ્રાહ્મણ ગણ ? ગળે વસ્ત્ર લગાડી હાથ જોડી, ભક્તિ વિનમ્ર થઈ ઇષ્ટ દેવી બ્રહ્મવિદ્યા માતા ગાયત્રીના ચરણમાં પોતપોતાના પ્રાણની પુષ્પાંજલી અર્પણ કરીએ,

गायत्री छन्दसां मातर्ब्रह्मयोनि नमोऽस्तु ते ॥
ॐ તત્ સત

પછી તો કાંઇજ નથી.

(લે૦—સ્વામી શ્રી રામાનંદજી સન્યાસી, દર્શનશાસ્ત્રી, વ્યાકરણાચાર્ય)

ગંગાદ્વારના 'સિદ્ધાશ્રમ' ની વાત છે, એક વાર ત્યા એક સન્યાસી 'વિવેક' અને 'ચિત્તશ્રિ'ના સંવાદરૂપે બ્રહ્મવિદ્યાનું પ્રતિપાદન કરી રહ્યા હતા, તેમણે પ્રવચન ચાલુ રાખતા કહ્યુ—

અનેક જન્મોમા કરેલા પુણ્ય કર્મોથી નિત્ય અનિત્ય વસ્તુ વિવેક દ્વારા વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે તે પછી શમ દમ આદિ ષટ્ સંપત્તિના અનુષ્ઠાનથી મુમુક્ષુતા પ્રગટ થાય છે તે પછી વેદાન્ત વિચાર દ્વારા જ્ઞાન તથા મુક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે આ પ્રક્રિયાને સમજાવવા માટે રૂપક દ્વારા પણ કહી શકાય છે, જે આ પ્રમાણે છે—

'વિવેકાશ્રમ' 'વૈરાગ્ય તીર્થ' 'શમારણ્ય' 'દમ સરસ્વતી' 'ઉપરમ સાગર' એ પાંચ સન્યાસી તથા 'મુમુક્ષા' અને 'ચિત્તવૃત્તિ' એ બે તપસ્વિનિયો છે આ મનુષ્ય શરીરજ 'પાંચજન્ય મઠ' મણવામા આવ્યું છે કે જ્યાં વિવેકાશ્રમ આદિ સન્યાસી નિવાસ કરે છે

૧—નિત્ય તથા અનિત્ય વસ્તુનો વિવેક, ૨—ઇહામુત્ર ફળ ભોગ વિરાગ, ૩—શમ દમાદિ ષટ સંપત્તિ, અને ૪—મુમુક્ષા, એ ચારેયના હોવાથીજ વેદાન્તનું શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસન દ્વારા બ્રહ્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે, તે સિવાય નહીં એમા પૂર્વ પૂર્વ ઉત્તરોત્તરના પ્રતિ હેતુ છે, અર્થાત સૌથી પ્રથમ નિત્ય વસ્તુ તથા અનિત્ય વસ્તુનો વિવેક હોવો જોઇએ તે સિવાય 'ઇહામુત્ર ફલભોગ વિરાગ અર્થાત્ આલોક તથા પરલોકના ભોગોની અનિચ્છા થઈ શકતી નથી વૈરાગ્ય વિના શમ દમ આદિ સંપત્તિની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી અને તેના સિવાય મુમુક્ષુતા તથા મુમુક્ષુતા સિવાય બ્રહ્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી એટલા માટે સૌથી પ્રથમ નિત્ય વસ્તુ તથા અનિત્ય વસ્તુનો વિવેક હોવો જરૂરી છે જ્યારે મનુષ્યને નિત્યત્વ અનિત્યત્વનો વિવેક થઈ જાય છે ત્યારે તે સંસારને અનિત્ય અને દુઃખરૂપ સમજીને તેમા વિરાગપૂર્વક નિત્ય આનંદરૂપ પદાર્થ (પરમાત્મા) ને માટે પ્રયત્ન કરે છે આ વિષયને સ્પષ્ટ સમજાવવા માટે અહિ વિવેકાદિ સાધનોને સન્યાસીના રૂપમા દર્શાવવામા આવ્યા છે. હવે અહિ પ્રથમ 'વિવેકાશ્રમ' સન્યાસી ઉપસ્થિત થાય છે

તે સન્યાસીએ ઘણીએ શોધ ખોળ કરવા છતા પણ કંઇ પણ પોતાને રહેવા યોગ્ય મઠ અર્થાત્ સ્થાન મળી શક્યું નહિ, કે જ્યાં રહીને તેનું મન પ્રસન્ન થાય તેણે આ જગતમા ૮૩૯૯૯૯૯ અર્થાત એક કમ ચોરાસી લાખ મઠ જોઇ નાખ્યા પણ તેમનામાં ક્યાય તેની સ્થિતિ બની નહીં એ રીતે ઉત્તમમા ઉત્તમ પર્વત, નદી, સાગર અને વન આદિ અનેક સ્થાનોમા જોતા જોતા તેણે 'પાંચજન્ય' નામે મઠ જોયો તે મઠમા બે પાલખા છે તે કામગ છે એટલે કે તેમાં દરેક પ્રકારની કામનાઓ પૂર્ણ થઈ શકે છે, અથવા તેમા રાત દિવસ કામનાઓના જ ગીત ગવાયા કરે છે. તે વિષય સ્થાનમા ચાલ્યો જાય છે, સુંદર છે, નવ દરવાજાથી સુશોભિત છે સિદ્ધિને યોગ્ય છે અર્થાત્ જીવાત્માના નિષ્કામ કર્મ આદિ ઉચિત આચારોની સાધનાને લાયક છે અને તીર્થપદ છે એટલે કે બ્રહ્મના સાક્ષાત્કારનું સ્થાન

છે. આ મઠ સમસ્ત પૃથ્વિ લોકની ઉપભોગ પ્રાપ્તિનાં ઉત્કૃષ્ટ સાધનોથી સંપન્ન છે તથા ઘણા જન્મોમાં કરેલાં પુણ્યોથી પ્રાપ્ત થાય છે. જે પરમાત્માની ઉપાસનાથી વિદ્વાનોનાં ચિત્ત શુદ્ધ થાય છે, તે મંગલ મૂર્તિના (આત્મદેવની) આરાધનાને યોગ્ય આ પાંચજન્ય મઠ છે.

સજ્જનો, ઇશ્વરની કૃપાથીજ પુરૂષોને અદ્વૈત વાસના ઉત્પન્ન થાય છે. ભક્તિ વિના ઇશ્વર કૃપા પ્રાપ્ત થઇ શકતી નથી, ભક્તિથી ભક્તોનાં મન નિર્મલ થાય છે, અવિદ્યાની ગ્રંથી તુટી જાય છે અને આત્મસાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે, તેજ ઇશ્વરની ભક્તિને યોગ્ય આ મનુષ્ય દેહ છે, જેને 'પાંચજન્ય મઠ' કહેવામાં આવ્યો છે. ભકિત શું છે ?

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

'ભગવાનના ગુણોને સાંભળીને દ્રવિત થએલા મનની ગંગાના પ્રવાહ જેવી નિરન્તર ભગવદાકાર વૃત્તિને ભકિત કહે છે' ભગવાનના ગુણોનું શ્રવણ કરીને જ્યારે એકવાર પણ ભકત, જીજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુનું મન હર્ષથી દ્રવિભૂત થઇ જાય છે, પ્રેમ તથા આનંદથી ગદ્‌ગદ્ થઈ જાય છે અને ભકિત રસમાં ડુબી જાય છે, તે સમયે ભગવાનની જે મૂર્તિ તે મનમાં અંકિત થઇ જાય છે તે ચિત્ર પટ ઉપરથી ફરીથી કદિ પણ મટતી નથી હઠતી નથી. તેવા મનમાં બાહ્ય વિષય પણ પ્રવેશ કરી શકતા નથી, કેમ કે જે મનોમંદિરમાં રામચંદ્ર (પરબ્રહ્મ) નો નિવાસ થઈ ગયો, ત્યાં (સૂર્યની હાજરીમાં જેમ અંધકાર રહી શકતો નથી તેમજ) તુચ્છ વિષય વાસનાઓ પણ પ્રવેશ કરી શકતી નથી. એટલા માટે મન શુદ્ધ થઇને આત્મસાક્ષાત્કારનું અધિકારી થઇ જાય છે. એ સર્વ કાંઇ આજ મનુષ્ય શરીરમાં થઈ શકે છે. ઘણું કહેવાથી શું, શ્રેષ્ઠ સન્યાસીઓના નિવાસને યોગ્ય, પાતાલ, પૃથ્વી અને દ્યુલોકમાં પાંચજન્ય સિવાય બીજો કોઈ મઠ (સ્થાન) નથી.

અગર કહો કે સ્વર્ગાદિ લોકોમાં જે દેવતાઓના દિવ્ય દેહ છે તે તો મનુષ્ય શરીરની અપેક્ષા ઘણા ઉત્તમ છે, સ્વામિ વિવેકાશ્રમ સન્યાસીએ ત્યાં નિવાસ કરવાનું કેમ ઠીક ન ધાર્યું ? તો એ વિષયમાં કહેવાનું એ છે કે દિવ્ય શરીરોમાં યથા રૂચી ભોગ્ય પદાર્થો નિરંતર પ્રાપ્ત થતા રહેતા હોવાથી તેમાં વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ શકતો નથી. અર્થાત્ દેવતાઓને નિત્ય નવા ભોગ અનાયાસ, ઇચ્છા માત્ર થતાં જ પ્રાપ્ત થતા રહે છે પછી તે તેમને ત્યાગવાની ઇચ્છા શા માટે કરે ? ઉલટ તેમનો રાગજ વધતો જાય છે, એટલે તેઓ સદા વિષયોન્મુખજ રહે છે. પરંતુ મનુષ્ય દેહમાં તો અલ્પયોગોને કારણે ઇચ્છાનુસાર ભોગ્ય વસ્તુ નહિં મલવાથી કલેશ થાય છે તથા ભોગો પ્રાપ્ત કરવામાં પણ અનેક કષ્ટ ઉઠાવવાં પડે છે. અતઃ ભોગોમાં દોષ દ્રષ્ટિ થઈ જવાનો સંભવ છે, તેથી પુરૂષ આત્મજ્ઞાનને માટે યત્ન કરે છે અને તેથી મનુષ્ય દેહ સૌથી શ્રેષ્ટ માનવામાં આવ્યો છે. એવો નિશ્ચય કરી લીધા પછી લોક લોકાન્તરોમાં નિરંતર આવાગમનથી પિડિત થઇને તે વિવેકાશ્રમ સન્યાસી પાંચજન્ય મઠને પોતા માટે યોગ્ય સમજીને તેમાં નિવાસ કરવા લાગ્યો. શ્રોતૃગણ ! એમ સમજો કે મનુષ્ય જન્મમાંજ વિવેક વૈરાગ્ય થઈ શકે છે, પરંતુ તેમાં વિઘ્નો અને બાધાઓ પણ કંઈ ઓછી નથી. તેમાં સૌથી મોટું વિઘ્ન જે ભક્તિ, જ્ઞાનને તહસ નહસ કરી નાખે છે તે આ છે. (તેમજ આને માટે પુરૂ છે) ઇતિ-

હાસ પુરાણાદિકમાં એના સબંધમાં ફસાઇને છેતેદી બાજી હારી બયેલાઓનાં અનેક ઉદાહરણ ભર્યાં પડ્યાં છે. આજ પણ એજ દશા છે અગર જો અમારૂં કથન બરાબર ન લાગતું હોય તો અમે પૂછીએ છીએ કે સ્ત્રીઓ બનાવટી શોભા શરણગારમાં એટલો સમય અને દ્રવ્ય શા માટે વ્યર્થ ખર્ચી નાખે છે ? શું પ્રાકૃતિક અર્થાત સ્વાભાવિક ગુણો-થી પતિ આદિ સજ્જનોને પ્રસન્ન નથી કરી શકાતા ? એથી માલુમ પડે છે કે સ્ત્રીઓને ઈશ્વર તરફથી બક્ષિસ થએલા પોતાના સ્વાભાવિક ગુણો તથા યોગ્યતાઓ ઉપર વિશ્વાસ નથી અન્યથા તેઓ નિતલી બનીને પોતાના લાઘવનો પરિચય કેમ આપે છે ? એથી તો એમજ માલમ પડે છે કે તેઓ પણ બનાવટના ફંદામાં મનુષ્યોના શિકાર ફેલાવવા માગે છે. અસ્તુ ;

મઠમાં તપશ્ચર્યાથી કૃશ સ્વામી વિવેકાશ્રમ યતિને કોઈ પણ પ્રકારે (પૂર્વજન્મનાં પુણ્યોનો ઉદય થવાને કારણે) પાંચજન્ય મઠની પ્રાપ્તિ થતાંજ કામને જાગૃત કરનારી ચેષ્ટાઓથી યુક્ત રતિ સરખી કોઈ એક અપૂર્વ સ્ત્રી મંદ મંદ હસતી હસતી ત્યાં આવી પહોંચી—

> सा पञ्चमालापमुपात्तगाना,
> स्रक्चन्दनालिप्तमनोरयष्टि ।
> प्रतप्तजाम्बूनदरम्यवर्णा,
> पीतासवा घूर्णितपङ्कजनेत्रा ॥

અર્થાત્—તે સ્ત્રી પંચમ સ્વરમાં ગાઈ રહી હતી, પુષ્પમાળા અને ચંદનથી તેનું સુંદર શરીર વિભુષિત હતું, અત્યંત તપેલા સોનાના જેવું ગૌર એનું રૂપ હતું, મદિરા પીધેલી હતી, જેના પાનથી તેનાં કમલ સરખાં નેત્ર ઘુમી રહ્યાં હતાં અને દિવ્ય પુષ્પોથી ગુંથેલા સુંદર વાળના ભારથી તેનો વિલાસ વધી રહ્યો હતો, જેના પ્રભાવથી તે વિષ્ણુના પરમ પદને પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાવાળા મુમુક્ષુઓને પણ મોહિત કરી રહી હતી, પછી સામાન્ય મનુષ્ય તો તેનું શું નિવારણ કરી શકવાના હતા ?

તે સ્ત્રીને આવી સ્થિતિમાં જોઇને 'સ્વામી વિવેકાશ્રમ' નું મુખ કમલ કરમાઈ ગયું અને અત્યંત આશ્ચર્ય પામીને તે મનમાં ને મનમાં આ પ્રમાણેનો વિચાર કરવા લાગ્યો કે—

મેં ઘણા લાંબા વખત પછી અનેક કષ્ટ સહન કરીને આ સ્થાનને પ્રાપ્ત કર્યું છે, અહિં પણ આ વિઘ્ન ક્યાંથી આવી પહોંચ્યું ! 'વૈરાગ્ય તિર્થ' સંન્યાસી જે મને પ્રાણથી પણ પ્રિય છે, તે ઘણા બીકણ છે, તે આ સ્ત્રીની હાજરીમાં અહિં શી રીતે રહી શકશે ! તેના વિના શમ, દમ અને ઉપશમ આદિ સંન્યાસી પણ અહિં રહી શકશે નહીં એવી દશામાં અહિં 'મુમુક્ષા' તપસ્વીનિ શા માટે આવશે ! તેના નહિં આવવાથી 'મુક્તિ' ને પણ ગઈજ સમજો ! હાય ! તેના વિના અમે સર્વ આશ્રમ વગરના રહી જઈશું, આ મઠ તો અમારા જેવા વિરક્ત જનોને નિવાસ કરવાનું સ્થાન છે અહિં આ કોણ હરામખોર પિશાચિની જેવી આવી પહોંચી ?

> कदापि युवतिं भिक्षुर्न स्पृशेत् दारवीमपि ।
> इति वृद्धोक्तय सन्ति तद्युत स्यात् सहस्थिति ॥

અર્થાત્—સન્યાસીને સ્ત્રીઓનો સ્પર્શ કરવો એ યોગ્ય નથી, તો પછી તેની સાથે રહેવાની તો વાતજ ક્યાં રહી ! એવું મહા પુરૂષો કહી ગયા છે.

> मिताहारोऽथवा वृद्धो, विरक्तो व्याधितोऽथवा ।
> यतिर्न गच्छेत्त देश, यत्र स्यात् प्रतिमा स्त्रिय ॥

અર્થાત્—મિતાહાર, વૃદ્ધ, વિરક્ત અને રોગી

ગમે તેવી સ્થિતિના સન્યાસીને પણ સ્ત્રીના ચિત્ર-વાળા સ્થાનમાં પણ નહિં જવું જોઇએ. જે પ્રમાણે વિન્ધ્યાચલ ઉપર પ્રસરેલી ઝેરી વેલ સર્વ પ્રાણી-ઓને દુઃખીત કરે છે, તેજ પ્રમાણે સ્ત્રીના સ્પર્શથી દૂષિત જલ વાયુ પણ સન્યાસીને પતિત કરે છે. સ્ત્રીઓની સાથે વાર્તાલાપ અને તેમને જોવી આદિ તો દૂર રહ્યું તેમની સ્મૃતિ પણ સાપના ડંસ જેવી મૃત્યુને પમાડનારી છે. બ્રહ્મા, ઇન્દ્ર, ચન્દ્ર આદિ દિવ્ય શરીરધારિયોના પણ સર્વ અનર્થ સ્ત્રીઓને કારણે થયા છે. તો પછી તુચ્છ મનુષ્યોની તો ગણતરીજ શી છે ? એવો સન્યાસી દુર્લભ છે— જે રાજ્યને નરક સમાન, સુવર્ણને માટીના ઢેફા સરખું અને સ્ત્રીઓને મૃતક મડદાના જેવી સમજે. અસ્તુ,

આ સ્ત્રી અમારા યતિયોનો મઠ છીનવી લેવા ચાહે છે. એ ઘણા દોષોવાળી હોવાને કારણે સંભાષણ કરવાને યોગ્ય નથી. બીજો કોઈ મનુષ્ય પણ અહિં નથી કે જે એને પૂછે કે તે અહિ શું કરવા ચાહે છે ? શું તે અહિંથી ચાલી જશે ? કે પછી સદાને માટે અહિંજ રહેવા ચાહે છે ? અથવા હું જ તેને તેનો મનોરથ પૂછું ? જેનું મન પ્રત્યક્ષ આત્મામાં લાગેલું છે તેનું એ બિચારી શું કરી શકવાની છે ? આત્મદ્રષ્ટને સ્ત્રી આદિ વિષય બાધા પહોંચાડી શકતા નથી. જેવી રીતે સ્ત્રીમાં પ્રેમ ઉત્પન્ન થવાથી કામિ જનોનો માતૃપ્રેમ નાશ પામે છે તેવીજ રીતે આત્મ પ્રેમિયોનો વિષય સ્નેહ જતો રહે છે જેવી રીતે પ્રકાશ થતાં દોરડીમાંનો સાપ-નો ભ્રમ દૂર થઈ જાય છે તેવીજ રીતે સ્ત્રી આદિના કલ્પિત શરીરથી જ્ઞાનિયોને કોઈ ભ્રમ રહેતો નથી. જેવી રીતે પેટાં બકરાંનું વાઘ ઉપર કંઇજ જોર ચાલતું નથી તેવીજ રીતે વૈરાગ્ય નિષ્ઠ જેવા સાધી-ના સહાયક હોવાથી હું વિવેકાશ્રમ ઉપર સ્ત્રીઓ શું જોર અજમાવવાની હતી ? એ રીતે તે વેદજ્ઞ સંન્યાસી તે સ્ત્રીને દાસી જેવી અલ્પ સમજીને બોલ્યા—

> काऽसि ? कस्याऽसि ? ललने !
> कुत्रत्या ? किञ्च वाञ्छसि ?
> नोचिताऽस्मिन्मठे भाति
> स्थितिस्तव वरानने ॥

અર્થાત્—હે લલના ! તું કોણ છે ? કોની સ્ત્રી છે ? ક્યાંની રહેવાસી છે ? અને શું ચાહે છે ? હે વરાનને ! આ મઠમાં તારે રહેવાનું વ્યાજબી જણાતું નથી. જ્યાં શાન્ત, દાન્ત, ઉપરત, તિતિક્ષુ અને સમાધિસ્થ સન્યાસી, પોતાના આત્મા (સંસ્કૃત મન) થી આત્માનો સાક્ષાત્કાર કરી રહ્યા છે, જ્યાં મુમુક્ષુ શ્રેષ્ઠ યતિ લોકો પ્રત્યગાત્માને દેહ, ઇન્દ્રિય, પ્રાણ, મન અને બુદ્ધિથી પ્રથક જાણીને તેનું દર્શન કરી રહ્યા છે, જ્યાં વિદ્વાન લોકો, વેદાધ્યયન, યજ્ઞ, દાન અનેક પ્રકારનાં તપ અને ઉપવાસ આદિથી આત્મ જ્ઞાનાનુસંધાન કરી રહ્યા છે, અને પંડિત જન આ લોક તથા પરલોકના ભોગોથી વિરક્ત થઇને જે મઠમાં નિવાસ કરીને અસંગ બ્રહ્મના વિષ-યમાં શ્રુતિનાં તાત્પર્યોનો નિર્ણય કરવામાં ત્રસ્ત છે, એવા સજ્જનોને નિવાસ કરવા યોગ્ય આ પાંચ જન્ય મઠમાં તારે રહેવું ઉચિત નથી. પરંતુ તું આ મઠને છોડીને અન્ય સંસારનાં મંદિરો (શરીરો) માં જ રહેવાને યોગ્ય છે, કેમકે તેજ તારે ઉપયોગી નિવડશે.

સુવિશાલ નેત્રોવાળી તે સ્ત્રી વિવેકાશ્રમનાં ઉપરનાં વાક્યો સાંભળીને ક્રમવાર ઉત્તર આપવા લાગી—

હે ભદ્ર ! હું તારી મોટી બ્હેન 'ચિત્તવૃત્તિ' છું, તું મને નથી ઓળખતો, કેમ કે—તું હમણા ઉત્પન્ન થયો છે હે વત્સ ! જે જે મઠ તે ત્યાગી દીધા છે અને હાલ જે મઠમા તું વસી રહ્યો છે તે સર્વનું પાલન કરનારી અધિષ્ઠાત્રી દેવતા મનેજ જાણ હું મનને હરણ કરે એવા શબ્દ, રૂપ, રસ આદિ સમસ્ત વિષયોને ચાહુ છું, અને તે શબ્દ આદિનુ સંપાદન કરનારા શુભ કર્મોને પણ ચાહુ છું હું કર્મોના ત્યાગની ઇચ્છા રાખતી નથી અને તેમના ફળનો પણ ત્યાગ કરવા ચાહતી નથી જેવી રીતે તું કર્મ સન્યાસી બનીને કર્મ અને તેના ફળોને છોડવા ચાહે છે "અરે ! પુત્રૈષણા, તથા લોકૈષણાનો ત્યાગ કરી ઘેર ઘેર ભીખ માગવી જોઇએ" એવી મતિ સર્વથા વિચાર શુન્ય છે આરંભમા થનારા જાત કર્મ આદિ સંસ્કારોનુ જે વેદમા વિધાન છે તથા જે વેદનુ અધ્યયન પણ પ્રથમાવસ્થામાંજ થાય છે અને રમણીય ઘરોમા અનેક પ્રકારના ધન ધાન્યાદિકોથી યજ્ઞનુ અનુષ્ઠાન કરવું જે વેદમાં લખેલું છે, તે 'કર્મોપાસના કાન્ડરૂપ ૨ વેદ' તો ત્યાજ્ય છે ? અને વૃદ્ધાવસ્થામા (હાથા રીમાં) કરવા યોગ્ય સન્યાસનું જેમા વિધાન છે, તથા જંગલમા જેનું અધ્યયન કરવામા આવે છે અને ભિક્ષારૂપ અર્થનુંજ જેમા વિધાન કરવામા આવેલું છે તે "જ્ઞાનકાન્ડનું" રૂપ શ્રુતિ સમુહ ગ્રાહ્ય છે' ઇત્યાદિ મુર્ખાઓની વિપરિત મતિ છે "જ્યોતિષ્ટોમ યાગ દ્વારા સ્વર્ગ મળે છે" એ વેદ તો "ગુરુજિહ્વિકા" કહીને ઉપેક્ષણીય છે ? અને "માથુ મુંડાવીને નઙગ ધડંગ થઇને ભીખ માગતા ફરવું" એ વે૦ વચન તત્વર્થ (મુક્તિ) આપનાર છે, એવા પ્રકારની એટલે કે ભીખ માગવાની કલ્પના તે નિર્માલ્ય, દરિદ્ર, અનાથ અને મુર્ખ લોકોજ કર્યા કરે છે કે જેઓએ પૂર્વ જન્મ મા સત્કર્મ કરેલા હોતાં નથી અહો ! આ મરૂતીયા ઓને ભિક્ષા આદિથી આટલું મોટુ સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત થયું છે કે એમના કહેવાથી બહેકાઈ જઇને રાજા લોકો રાજપાટ છોડીને જંગલમાં ચાલ્યા જાય છે અગર સન્યાસી લોકો એમ કહે કે—'अथ भिक्षाचर्यं चरन्ति' ઇત્યાદિ શ્રુતિયોથી ભિક્ષાવૃત્તિનુ વિધાન થયેલું હોવાને કારણે તે અવશ્યમેવ ઇષ્ટનુ સાધન છે તો 'स्वर्गे संदेश" આદિ યોગોએ શો ગુન્હો કર્યો છે ? તેઓના પણ તો શ્રુતિ દ્વારા વિધાન કરેલા છે તેમને ઇષ્ટના સાધન કેમ નથી માનવામાં આવતા તેમનુ પણ અનુષ્ઠાન કેમ નથી કરતા ? વળી વ્યવહારથી પણ ભીખ માગવી એ કંઈ સારૂ થોડુ જ છે ? તેનાથી પુરૂષનુ તેજ નષ્ટ થઇ જાય છે જ્યારે કે મનુષ્યમા બુદ્ધિ છે અને તે સર્વાંગ છે, પછી કોઇની પાસે ભિક્ષા શા માટે માગે ?

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य" ઇત્યાદિ વેદાન્ત, જે આત્માને દ્રષ્ટવ્ય કહે છે શું અમે તેને પ્રસક્ષ નથી જોઇ રહ્યા ? આ શરીર રૂપ આત્મા તો સ્પષ્ટ નજર સામેજ છે જે હાથ પગ આદિ અવયવોની ખાસ રચનાવાળો છે તો પછી વેદનુ એમ કહેવું અર્થ વગરનુંજ છે કે—'આત્માનો સાક્ષાત્કાર કરવો જોઇએ' અગર ઉપનિષદ પ્રતિપાદ્ય આત્મા દેહ ઇન્દ્રિયાદિકથી ભિન્ન કોઇ વસ્તુ છે અને તે સૌને પ્યારી છે તો એવો આત્મા સ્ત્રી પુત્ર આદિ પ્રિય પદાર્થજ હોઈ શકે છે કહેવાની મતલબ એ છે કે દેહથી ભિન્ન અગર જો કોઈ આત્મા માનશો તો પુત્ર સ્ત્રી આદિ રૂપજ હશે અને તેજ પુત્રાદિ રૂપ આત્માને માટે શરીર ઇન્દ્રિયો આદિ જગત પણ પ્યારૂ હશે પછી તેના ત્યાગનુ વિધાન શા માટે કરો છો ? પુત્ર સ્ત્રી આદિ રૂપ આત્માને

ઇન્દ્રિયો દ્વારા અનુભવ કરવામાં આવેલા વિષયોથી તૃપ્ત કરો, સ્નાન માટીથી શૌચ, શિરમુંડન, ભૂમિશયન, વનમાં વાસ બ્રહ્મચર્ય અને શમ દમાદિ કઠોર સાધનોથી આત્માને શા માટે ક્લેશ આપો છો ? વીણા અને સ્ત્રીના મુખથી ગવાયેલા મનોહારી શબ્દો—ગીતોને સાંભળો, કોમલ કોમલ શૈયા, મૃદુ મૃદુ મૃગનયની સ્ત્રીઓનો સ્પર્શ કરો, સુવર્ણના જેવી કાન્તિવાળા સ્ત્રીઓના રૂપ લાવણ્યનું સદા અવલોકન કરો, ભક્ષ ભોજ્ય ચોષ્ય આદિ ઉત્તમોત્તમ સ્વાદિષ્ટ પદાર્થોનું રાત દિવસ સેવન કરો, માથા ઉપર કસ્તુરી લગાડો, ગળામાં પુષ્પોની માળા પહેરો અને સદા એજ ચિંતન કરો કે—

"યે મેરે સુખ બાર બાર હોવે"

કેટલું કહીએ, "ચિત્તવૃત્તિ" એ એવી ઘણીએ વાહીયાત વાતો કહીને ઘણી વાર સુધી બકવાદ કર્યો એ સર્વ વાતો સાંભળીને સ્વામી વિવેકાશ્રમે હસતાં હસતાં 'ચિત્તવૃત્તિને' કહ્યું—

તું વિપરિત બુદ્ધિવાળી છે, તારા અજ્ઞાનાંધકારને કરોડો સુર્ય પણ હઠાવી શકતા નથી, અજ્ઞાનમાં ડુબેલા વ્યક્તિને અવિદ્યાજ સારી લાગે છે, શું વિષ્ટાનો કીડો ખાંડની મીઠાશને પસંદ કરી શકે છે ? અગર વજ્રમુર્ખ તત્વાર્થને જાણી શકે છે, તો બહેરો પુરૂષ પણ વીણા તથા કંઠથી ઉચ્ચારેલા શબ્દોને સાંભળી શકે છે. અગર અત્યંત વિષયાસક્ત પુરૂષ બ્રહ્મના સ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર કરી શકે છે તો કાચબાનું બચ્ચું પણ પોતાની માતાના દુધના રસનો સ્વાદ લઈ શકે છે. અવિદ્યાના કાર્ય આ શરીરાદિકોમાં આત્મબુદ્ધિવાળા પુરૂષને તત્વની ગંધ પણ મળવી કઠણ છે. લસણ ખાનારા ભીલ કપૂરની સુગંધને શું મહત્વ આપવાના હતા ? આધ્યાત્મિક અધિદૈવિક અને આધિભૌતિક રૂપ તાપત્રયીના સંતાપથી તપી રહેલા પુરૂષને તત્વેચ્છાનું સુખ ક્યાંથી ?

હે ચિત્તવૃત્તિ ! તું વિષય સંબંધી આગ્રહનો પરિત્યાગ કરીને પ્રિય—ચિત્—સુખ રૂપ ઇશ્વરનું આલિંગન કર. જ્યાં જ્યાં તને આનંદ પ્રતીત થાય છે તે સર્વ આત્માનો છે. વિષયોમા સુખ નથી, એના પ્રેમીઓ રડતા ફરે છે. ક્ષીર સાગરની માછલી જેમ ક્ષીર સાગરના જલથી તૃપ્ત થતી નથી તેવી જ રીતે આત્માનંદ અનુભવ કર્યા પછી વિષય સુખ તુચ્છ અને હેય પ્રતિત થાય છે.

હે ચિત્તવૃત્તિ ! તું સમજ કે વાન્છિત વિષયોની પ્રાપ્તિથી સાન્ત થયેલા મનમાં આત્માના સુખાંશનો જે આભાસ પડે છે, તે જો કે આત્મ સુખજ છે, છતાં પણ અજ્ઞાનથી લોક તેને વિષયજન્ય માની લે છે; વસ્તુતઃ તે સુખ વિષયજન્ય નથી અગર જો કોઇ અલ્પ સુખ તજીને કોઈ મહા સુખ પ્રાપ્ત કરવાની તારી ઇચ્છા હોય અને જો તું વિનાશ રહિત સુખને ચાહનારી હોય તો દેહત્રયરૂપ ઉપાધિનો નાશ કરીને અક્ષય આત્મ સુખનો સ્વિકાર કર. જેવી રીતે પશુ ગોળ છોડીને ભુંસાનેજ આતુરતાપૂર્વક ચાહે છે તેવીજ રીતે તું આત્મસુખ તજીને વિષયોને શા માટે ચાહે છે ? વિષય સુખની નિરસતા અને અનિત્યતા જોઇને પણ જે ફરી તેનેજ ચાહે છે તે નર નહી પણ ખર છે. જેમ ઉંટ આંબાના સુંદર કુમળાં મધુર અને નવા પાન છોડી દઇને પીલુ, લીમડો, કરીર, શમી, અને કીકર આદિ કાંટાવાળાં તથા કડવાં પાનનીજ ઇચ્છા કરે છે, તેવીજ રીતે તું વિષયોની ઇચ્છાથી આત્માને તજી રહી છે. અને કુતરાની માફક વિષયોના ટુકડા પાછળ ભટકે છે.

હે ચિત્તવૃત્તે ! વધારે શું કહીએ, આત્મજ્ઞાન લ્યો પરિપૂર્ણ થઇને તું શાન્તિ પ્રાપ્ત કર વિષય નિયમ પૂર્વક સુખ આપનારા નથી, કેમકે પ્રાપ્તિ—કે અપ્રાપ્તિમાં એ ઘણું કરીને દુખજ આપે છે, વળી એ ટકાઉ પણ નથી અને એકરસ રહેતા પણ નથી અને આપાતત આજ જેને કંઇક સમયને માટે હસાવે છે, તેનેજ કંઇક સમય પછી સદાને માટે રડાવે છે. વિષયની આશામા નષ્ટ થનારા ભ્રમર, હરિણ હાથી પતંગ અને માછલીને શું તું નથી જોતી ? જ્યારે એ એક એક વિષયની આશામા નષ્ટ થતા દેખાય છે તો પછી તે પ્રમાદીનો સત્યાનાશ થવામા શું બાકી રહે કે જે પાંચેય વિષયોને પાંચેય ઇન્દ્રિયો દ્વારા ભોગવે છે કોયલના શબ્દ જેવો અગર જો શબ્દજ સુખનું કારણ હોય તો વિષયાસક્ત લોકો ગધેડાના ભુંકવાનો શબ્દ સાંભળી ને કેમ પ્રસન્ન થતા નથી ? સ્ત્રીઓના આલિંગનના જેવું અગર જો સ્પર્શમાંજ સુખ હોય તો વિષયી જન બળતા અંગારાના સ્પર્શને કેમ નથી પસંદ કરતા ? અગર જો સુવર્ણના રૂપ જેવું રૂપજ સુખ આપનારૂં હોય તો વિષયલંપટ મનુષ્યો કાગડાના રૂપ ઉપર કેમ નથી રાજી થઈ જતા ? અગર જો કેરીના રસનું સેવન કરવાથી થતો આનંદ જો રસમાજ હોય તો ઇન્દ્રવરણા નો રસ કેમ નથી સેવન કરવામા આવતો ? સુગંધિત ધુપના ધુમાડા જેવી મન્દ મન્દ વાયુથી વ્યાપેલી પુષ્પ આદિની ગંધ જો આનંદની આપનારી હોય તો ચિતાનો ધુમાડો પણ પ્રીતીકર હોવો જોઇએ ? સમજો, કે વિષયથી સુખ થાય છે તેનાથીજ દુઃખ પણ થાય છે જેવી રીતે નહિ પચેલી મધુર ખીર રોગ અને મૃત્યુનું કારણ બને છે

હે ચિત્તવૃત્તે ! એટલા માટે સંસાર દુઃખની દવા જે અનન્ત તથા સર્વોત્તમ આત્મ સુખ છે તેને પ્રાપ્ત કરીને તું સ્વસ્થ થઈ જા સંસારનો ત્યાગ અને કર્મોને છોડવા એ તો વિષયોના આક્રમણથી બચવાને માટે પરમ આવશ્યક છે અને ભિક્ષાચર્યા પોતાના અભિમાનનો નાશ કરીને યથા સંભવ આવશ્યકતાઓ ઓછી કરવા માટે છે એમ તો રાજ્ય અને લક્ષ્મીના ભંડાર મેળવીને પણ કોઇને સંતોષ થતો નથી, અને ભીખ માગવા છતાં પણ તે થઈ જાય છે વૈદિક કર્મકાન્ડ તો ઘણી પહેલાંની વાત થઈ જાય છે કર્મોપાસનામા સંતોષ નથી, સંતોષ નથી તો શાન્તિ નથી અને "પછી તો કાંઇજ નથી"



શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(સં૦—વામનરાવ પ્રા૦ પરેલ, બી. એ. એલ. એલ. બી. (મુંબઈ) એલ. સી. પી. (લંડન)
એમ. આર. એસ. ટી. (લંડન) સૉલીસીટર.)

[અનુસંધાન ગતાંક પૃ૦ ૫૨૯ થી આગળ]

પ્રકરણ ૯મું.

અભ્યાસ યોગ.

કથ્યું ગતાધ્યાયમાં જે,
સ્વરૂપ નિર્ધારી તે લેજે;
પછી એવો અભ્યાસ કરજે,
નિત્ય નિયમે. ૧.

જોઈએ સ્થાન એકાંત,
જ્યાં ન થાયે મન ભ્રાંત;
કરી સકળ વૃત્તિ શાંત,
બેસવું ત્યાં. ૨.

કરીને વિષયની નિવૃત્તિ,
ચિત્તની પ્રત્યગાવૃત્તિ[1];
દૃશ્યમાત્ર પર રાખો વિરક્તિ,
ત્યાગ બુદ્ધિ. ૩.

આસને સ્વસ્થ બેસજો,
અંતર માંહી પ્રવેશજો;
મનોવૃત્તિ એકત્ર કરજો,
ઇંદ્રિય [2]ચોકી કરીને. ૪.

અભિમાન સ્થૂળનું છોડજો,
ભાર [3]અંતરનો ધરજો;
અભાવ સર્વનો કરજો,
ગગન જોજો. ૫.

સ્થૂળ ઇંદ્રિયોમાંથી,
કહાડવું મન યુક્તિથી;
અંતરાકાશે કળાથી,
સ્થિર કરવું. ૬.

બાહ્ય સ્વભાવની જે જે વૃત્તિ,
અંદર ખેંચે થાય નિવૃત્તિ;
સ્થિર થાશે સર્વ વૃત્તિ,
અભ્યાસથી આપોઆપ. ૭.

અથવા વૃત્તિ વિહરવા દેવી,
ના પૂઠ તેની પકડવી;
અંતરમુખ દૃષ્ટિ કરવી,
સ્થાપવી પછી સ્વસ્વરૂપે. ૮.

પકડે મન વિષય જે જે,
સર્વ વિવેકે [1]વિદારજે;
તો તે અંતરે સ્થિર જાણજે,
કલ્પના—મુક્ત. ૯.

ત્યાં હૃદય—આકાશે,
હુંપણું જીવને સ્ફુરશે;
કેવળ વિવેકથી જે જોશે,
તેને માત્ર. ૧૦.

૧=અંતર મુખ વૃત્તિ.

૨=પહેરો ઇંદ્રિય ચોકી—ઇંદ્રિયોનો પહેરો દેખરેખ, નિયમન.

૩=સ્વસ્વરૂપનો.

૧=દોડજો.

ત્યારે તે સ્વયંભૂ સ્ફુરે,
તે ફરી સમાયે તેમાં ખરે;
જીવદશા ત્યારે ભાઇ રે,
નાશ પામે. ૧૧.

ઉગમે નહી રોકાવજો,
સિદ્ધત્વ પ્રાપ્ત નક્કી માનજો;
(તેમ) આ સ્થિતિમાં સ્થિર થાવજો,
જીવ બ્રહ્મ ના થાય શું. ૧૨.

અંતરે પાછા તેથી ફરો,
અભ્યાસ એ રીતે કરો;
તો કલ્પનાનો ભારો,
થાય સમરસ [1]અભ્યંતરી. ૧૩.

છાડીને સ્થૂળ ગતિ,
રહે એવી અંતર સ્થિતિ;
તે કાળે અભ્યાસ પ્રવૃત્તિ,
પડે કરવી. ૧૪.

ત્યાં જે જે દશ્ય સ્ફુરે,
તે છાડી પાછો ફરે;
જ્ઞાન સ્વરૂપ નિર્ધારે,
બને પોતે. ૧૫.

દષ્ટિ, દશ્ય છાડ્યાં પછી,
જો ઉલટી ફરે પાછી;
તો દશ્ય આકાર પછી,
[2]ઉરે કેવો ? ૧૬.

[1]=અંતરમાં એટલે સ્વરૂપમાં સમરસ એટલે એક રસ સ્વરૂપમય થાય
[2]=બાકી રહે

સાકારાદિ સર્વે,
શૂન્ય બને સ્વભાવે;
ત્યાં જોવું ભાવે,
આત્મ સ્વરૂપ. ૧૭.

જેમ પ્રલય નીર [1]પૂરે,
આકાર એકે ના ઉરે;
અંત:કરણાદિ વ્યવહાર નાશે[2],
એક પણ. ૧૮.

કૂર્મ જેમ આકુંચન [3]કરે,
એથી હાથ પગ શિર ખરે;
પોતે એકલો પછી ઉરે,
અખંડિત. ૧૯.

જાણ પ્રવેશ એ રીતે,
અંતરમાં જો નિરાંતે;
તો ત્યાં એકલી એક પોતે,
ખચિત ઉરશે. ૨૦.

પોતે એક એકલો દેખ્યો,
અન્ય ત્યાં નથી પેખ્યો;
જ્ઞાન માત્રે ભર્યો પૂર્યો,
આત્મારામ. ૨૧.

ઇતિ શ્રી અભ્યાસ યોગો નામ નવમ
પ્રકરણં સંપૂર્ણમ્.

[1]=પ્રલયના પાણીની રેલમાં
[2]=રહે નહીં
[3]=કાચબો જેમ પોતાનાં હાથ પગ તેમજ માથું શરીરમાં ખેંચી લઇ એકલોજ રહે છે



કૃષ્ણં વન્દે જગદ્ગુરુમ્

(લે૦—શ્રી સુદર્શન)

આનંદકંદ પૂર્ણતમ પુરૂષોત્તમ ભગવાન શ્રી કૃષ્ણના જેવો ધર્મમર્યાદા રક્ષક આજ સુધીમાં બીજો કોઇ થયો નથી, એમ કહેવામાં જરાય અતિશયોક્તિ થતી નથી. તેઓ સાક્ષાત્ પરમાત્માના પૂર્ણ રૂપથી લોકોના ઉદ્ધાર માટે અને સંગ્રહને માટે પ્રગટ થયા હતા! તેમનાં આદર્શ લીલા ચરિત્રો વાંચવાથી, સાંભળવાથી અને સ્મરણ કરવાથી હૃદયમા પવિત્ર ભાવનાઓની લહેરો ઉઠવા લાગે છે, મન જાગૃત અવસ્થામાં રહેતું હોવા છતાં પણ સમાધિ અવસ્થાના સુખ સાગરમાં નિમગ્ન થઈ જાય છે. તેમના અવતારનાં આ બે પ્રયોજન છે—એક તો લોકોનો ઉદ્ધાર અને બીજું લોકસંગ્રહ, જેમને ગીતાના શબ્દોમાં અધર્મ નિવૃત્તિપૂર્વક ધર્મ સંસ્થાપન અને તે માર્ગ ઉપર દુષ્કૃતોના વિનાશ-પૂર્વક સાધુઓનું પરિપાલન કહી શકાય છે. પણ એની સાથેજ, પોતાનાં આનંદમય ચરિત્રો દ્વારા તૃષિત લોકોને તૃપ્ત કરવા એ પણ તેમના અવતારનું મુખ્ય પ્રયોજન હતું.

એજ કારણ છે કે શ્રી ભગવાનની બાળલીલાઓ સૌથી વધારે હૃદયગ્રાહી થઇને માધુર્યની સીમા ઓળંગી ગઈ. તેથીજ જગતની સર્વશ્રેષ્ટ શક્તિ-શાળી વિભૂતિયો તેમના તરફ ખેંચાઈ આવી અને તેમના પ્રેમમાં વિભોર થઇને આત્મવિસ્મૃત થઈ ગઈ. એવાઓમાં સ્વર્ગીય દેવનાગ્ન્દ અને તે પછી પૂર્ણકામ અને મહાતપસ્વી ગર્ગાચાર્યજી સૌથી પ્રથમ આગળ આવ્યા. શ્રી ભગવાનના જન્મના થોડા દિવસો પછી જાણે પોતાની તપસ્યા તથા જ્ઞાનને સફલ કરવા માટે ગર્ગ ઋષિ નામકરણ કરવાને બહાને વ્રજમાં આવ્યા. નંદરાયજીએ સ્વાગત સત્કાર તથા માન સન્માનની, સાથે તેમને આવકાર્યા, તેઓ જાણતા હતા કે એ ઘણાજ આચારવાન કર્મનિષ્ટ મહાત્મા છે એટલે તેમનો પૂજાપાઠ અને રસોઇ ઇત્યાદિનો પ્રબંધ ખાસ એકાન્ત સ્થાનમાં કરી દેવામાં આવ્યો એક તરફ ગર્ગજી નિયમાનુસાર વૈશ્વદેવની વિધિથી નૈવેદ્ય અર્પણ કરવા માટે યજ્ઞ પુરૂષનું ધ્યાન કરવા લાગ્યા તો શ્રી ભગવાન સાક્ષાત્ રૂપથી પાસેનાજ ઓરડામાં બિરાજી રહ્યા હતા, ધીમે ધીમે ઘુંટણીએ ચાલી આવીને ગર્ગજીની થાળીમાંનો ભોગ આરોગવા લાગ્યા. ઋષિએ આંખો ઉઘાડી તો મહા ગુંચવણમાં પડી ગયા કે એક અસંસ્કૃત બાળકે ચોકો અભડાવ્યો! ખેર! નંદરાણીજીએ ફરીથી બધી સામગ્રી તૈયાર કરી આણી પણ પાછા તેના પણ તેજ હાલ થયા. આ ક્રમ કેટલીએ વાર ચાલ્યો, ત્યારે કંઇક ગર્ગજીને ભાન થયું કે જેની પાછળ અમે જીવન વિતાવ્યું છે તેજ તો એ છે. અસ્તુ; કેટલાક દિવસો પછી ભૂતભાવન શંકરજી કાશીપુરીથી વ્રજમાં પહોચ્યા અને નંદપોર પાસે શૃંગીનાદ બજાવ્યો નંદરાણીજી બારણે આવ્યાં અને અવધુત બાવાને પૂછ્યુ કે આપના ખપ્પરમાં શું ભિક્ષા આપવામાં આવે? બાવાએ કહ્યુ કે માત્ર તમારા લાલની દર્શન ભિક્ષાનો સવાલ છે. પરંતુ નંદરાણીજીએ સાપથી લપેટાયલા યોગીને કહ્યું કે આપનું ખપ્પર મોતીથી ભરી આપું, પણ મારા લાલને નહિ દેખાડું. કદાચ

નજર લાગી જાય તો! ઉલટે ભોળાનાથ પાછા ફર્યા. આ તો લાલને બેચેની ચઢી, ખરેખર જાણે કે નજરજ લાગી ગઈ. હવે યશોદાજી સમજ્યા કે પેલા બાવાએ કંઈક ટુચકો કર્યો છે, બાળકો દ્વારા તેમને પાછા કઢીને બોલાવી મંગાવ્યા અને બાવાજીને જોતાંજ લાલા ખડખડાટ કરીને હસી પડ્યા. ખેર! એવાજ પ્રકારની એમની મધુરી મુસકાન ઉપર આખી દુનિયા ત્યારથી જ પોતાને ન્યોછાવર કરતી ચાલી આવે છે, એટલે સુધી કે કર્કશ તર્કથી વજ્રથી પણ કઠોર બુદ્ધિવાળા મહાન વેદાન્તી મધુસુદન સ્વામી પણ વ્રજમાં જઈને એવું કહેતા થઈ ગયા કે—

अद्वैतवीथी पथिकैरुपास्या
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षा ।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

'અદ્વિતીય બ્રહ્મમાં લીન રહેનારાઓમાં પણ સર્વશ્રેષ્ઠ અને ગ્વાલણોની વચ્ચે રહેનારા એક નાદાન છોકરાએ બળાત્કારે પોતાનો દાસ બનાવી લીધો.' આ પ્રકારે ભક્તિયોગનો પ્રચાર પણ આ અવતારનું મુખ્ય પ્રયોજન હતું. જે વાત્સલ્ય આદિ રસોની ભાવનાથી સારી પેઠે થઈ શકે છે. જે બાળક પોતાની ચતુરાઈથી પત્થર જેવા કઠોર હૃદયવાળાઓને પણ પીગળાવીને પાણી પાણી કરી નાખે છે એવા આઠ દસ વરસના સુકુમાર બાળક પર ભોળીભાળી ગોપીઓનું રાજી થઈ જવું એ કંઈ બહુ આશ્ચર્યજનક નથી. તેઓ તેને પુત્ર અને બન્ધુ રૂપેજ સમજતી રહી, તે સિવાય આગળ જતાં જે વ્રજલીલાઓનો આરોપ શ્રી ભગવાન ઉપર કરવામાં આવે છે તે એક ખાસ ઉપાસના વિધિને માટેજ છે. તે ઉપાસના વિધિના અધિકારી સર્વ સાધારણ નથી, પરંતુ ભક્તિયોગની ચરમાવસ્થાએ પહોંચેલા એકાન્તવાસી અમલાત્મા સંત વિશેષજ છે.

અનુભવી રસિકોએ પણ શ્રી રાધા તત્વનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ શ્રીમદ્ ભાગવતમાં નહિ હોવાનું એજ એક કારણ માન્યું છે. એટલા માટે શ્રી ભગવાનની રાસ આદિની ભાવનાના અધિકારી રસની ઉપાસના કરનારા પરમહંસજ હોઈ શકે છે, અન્ય સંસારી લોકો નહીં. એમ તો શ્રી ભગવાનની દિવ્યલીલાઓ અનેક પ્રકારની અહર્નિશ ચાલી રહી છે, તેમને માટે કોઈ ખાસ સમયનું બંધન નથી. તેમાંથીજ ભાવિક લોક કોઈ એકાદ લીલાને ઉપાસના માટે યોગ્ય સમજીને વિકસિત કરી લે છે. પણ લોકસંગ્રહાર્થ એમ માનવુંજ પડશે કે શ્રી ભગવાનનું આખું ચરિત્ર શુદ્ધ સાત્વિક તથા આદર્શભૂત હતું. જો એમ ન માનવામાં આવે તો શ્રી ભગવાનની અનેક ગીતામાં વર્ણવાયેલી ઉક્તિઓ અર્થ વગરની બની જશે. તેઓ તો અર્જુનને કહે છે કે હું તો પૂર્ણકામ છું, માત્ર લોકોમાં આદર્શ સ્થાપન કરવાને માટેજ મારા સર્વ કામ થઈ રહ્યા છે, હું જેવું કરીશ તેવુંજ અનુસરણ બીજા લોકો કરશે એટલા માટે હું પૂર્ણ પર પથમાં તલમાત્ર પણ ફેરફાર કરું તો અનેક પ્રકારનો સંકરતા દોષ મને લાગશે (૩ ૨૧) એટલે પ્રવૃત્તિ માર્ગના પ્રત્યેક પથિકને શ્રી ભગવાનનું નીચે લખેલું ચરિત્ર સદા અનુસરણ કરવા યોગ્ય છે.

જ્યારે તેમણે વ્રજમાં બાળસુલભ સર્વ લીલાઓ કરી લીધી, ત્યારેજ અગીઆર વર્ષની ઉમરમાંજ તેમણે વ્રજનો ત્યાગ કર્યો અને સાંદિપનિ મુનિના આશ્રમમાં જઈને વિદ્યાધ્યયન સમાપ્ત કર્યું. આગળ જ્યારે તેઓ ધર્મ સંસ્થાપનના પ્રસંગમાં દ્વારકામાં રહેવા લાગ્યા ત્યારે રોજ પ્રાતઃકાળમાં રાજ દર)

ળારમાં જતા સુધીમાં શાસ્ત્રીય મર્યાદાના પાલન માટે નિમ્ન પ્રકારે કાર્ય કરતા હતા—

ब्राह्मे मुहुर्ते उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरणं आत्मानं तमसः परम् ॥

શ્રી ભગવાન બ્રાહ્મમુહુર્તમાં ઉઠીને પવિત્ર જલથી હાથ મોં ધોઇને પ્રસન્ન હૃદયથી માયાતીત આત્મ સ્વરૂપનું ચિંતન કરતા હતા.

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि
क्रियाकलापं परिधाय वाससी।
चकार संध्योपगमादिसत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥
—ભા० ૧૦।૭

પછી તેઓ વિધિપૂર્વક નિર્મલ જળમાં ડુબકી મારીને સ્નાન કરતા, ધોતી દુપટ્ટો પહેરીને શ્રદ્ધા સહિત સંધ્યા, અગ્નિહોત્ર, કરતા અને તે પછી ગાયત્રી આદિને જપ કરતા હતા. આ સર્વ સૂર્યોદયથી પહેલાંજ સમાપ્ત થઈ જતું હતું, તે પછી સૂર્યાર્ધ્ય, તર્પણ, વૃદ્ધ જનોને નમસ્કાર અને બ્રાહ્મણોનું પૂજન થતું હતું, સુંદર અલંકારોથી સજેલી ગાયોનું દાન કરતા હતા, તે પછી અનેક માંગલિક કાર્યો કરીને તેઓ દરબારમાં જતા હતા. શ્રી ભગવાને આ પ્રમાણેનાં આચરણ પોતે કરીને લોકોની સામે પૂર્ણ મર્યાદાનો માર્ગ સ્થાપિત કર્યો છે.

એટલા માટે જગદ્‌ગુરુ શ્રી ભગવાનના આ આદર્શ પ્રમાણેજ સર્વ કોઈએ ચાલવું જોઇએ. અને એજ દ્રષ્ટિથી તેમનાં પ્રત્યેક કાર્યની સંગતિ બેસાડવી જોઇએ. જો કે ભગવાન શ્રી કૃષ્ણની લીલા તથા ચરિત્ર. અલૌકિક છે તેમનું સંપૂર્ણપણે અનુકરણ તો શું તેનું જ્ઞાન પણ થવું અશક્ય છે, પણ બાળ લીલાઓ થઈ ગયા પછી જ્યારે તે સંસ્કૃત થઇને ગુરૂકુળમાં ગયા ત્યારથી લઇને તેમનાં આચરણ મનુષ્યોને તે પ્રમાણે ચાલવાને માટેજ થયાં. તેમને લોકસંગ્રહાર્થ એ વાતની સૌથી વધારે ચિંતા હતી કે—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
—ગી० ૩।૨૧

શ્રેષ્ઠ પુરૂષોનું જેવું ચાલચલણ હોય છે. સાધારણ લોકો તેનુંજ અનુકરણ કરે છે. (એટલા માટે) મોટાઓએ પોતાનાં આચરણ પ્રામાણિક રાખવાં પડે છે. કે જેથી લોક તેનું અનુસરણ કરે. જગતના બધાય પદાર્થોની વિશિષ્ટતા એકઠી થઈ જાય તો તે શ્રી ભગવાનની સામે સમુદ્રમાં એક ટીપા જેટલી પણ નહી હશે. જગતની સમગ્ર શક્તિ, સમગ્ર ધર્મ, સમગ્ર યશ, સમગ્ર લક્ષ્મી અને સમગ્ર જ્ઞાન વૈરાગ્ય ભગવાન શ્રી કૃષ્ણમાંજ નિવાસ કરે છે, એમની પૂર્ણતા ત્યાંથીજ થાય છે, એટલા માટે—

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥

ઘણીજ મુશ્કેલીથી પ્રસન્ન થનારા, સર્વ ઇશ્વરોના પણ ઇશ્વર ભગવન વિષ્ણુની આરાધના કરતા રહીને પણ જે પ્રાણી વિષય ભોગોની કંઇક પણ ચાહના રાખે છે. તે ઘણોજ દુર્બુદ્ધિ છે, કેમકે ભગવાનની સમક્ષ વિષયોની સત્તાનો અંશ પણ રહેતો નથી. આજ પણ તે પ્રભુ જ્ઞાન વૈરાગ્ય આદિથી સમુજ્જ્વલ લોકાભિરામ તથા ધારણા ધ્યાનને માટે સર્વ પ્રકારે ઉપયુક્ત પોતાની દિવ્ય છબીની સ્મૃતિ ગીતા, ભાગવત આદિ દ્વારા સર્વની સામે પ્રગટ કરી રહ્યા છે. તેનું સ્મરણ તથા ચિંતન કરીને પોતાનું જીવન સફળ કરવું જોઇએ; એજ શ્રી કૃષ્ણનો આદેશ છે, એટલે અમારે એ આદેશ તથા તે આદેશના આપનારા પ્રતિ માથું નમાવી દેવું જોઇએ.



ત્યાગ

(લેખક—સિકંદરરાય બાપાભાઈ દેસાઈ)

જ્ઞાની કહે છે કે હું વૈરાગીજ છું ભગવા લુગડાં પહેરવાથી નહિ, દીક્ષા લઈ અમુક સંપ્રદાયને વળગેલો એવો નહિ, કે નહિ ફક્ત થોડા વખતથી થયેલો, પણ અનાદિ કાલનો, જ્યારથી જન્મ્યો ત્યારનોજ વિરાગીજ છું એવો વિરાગ ઉદય કેમ થયો તેનું કારણ કહે છે કે રામ અથવા સર્વમાં રમી રહેનાર પરબ્રહ્મ તેમાંજ લીનતા થઈ છે, ને તે અચલ, કદાપિ ટળે નહિ તેવી થઈ છે એટલે બીજી કોઈ પણ વાત મિથ્યા છે—સર્વ વાત તેનેજ આધીન છે ને તેમાં હું સ્થીર છું એટલે બીજી વાતનો વિરાગ સ્વાભાવિકજ છે મૂળ બ્રહ્મ સ્વરૂપ કદાપી રાગ પામેલું છે નહિ, સર્વદા વિરાગીજ છે

મૂળથી વિરાગી હોવાનું કારણ એ છે કે જગ તમા જે વખતે આવવું થયું તે વખતે મારી સાથે આ શરીર વિના કાંઈ હતું નહિ, તેમ જવામાં પણ તેવુંજ થવાનું છે તો મારૂં મારૂં માની લીધેલું તો કાંઈ પણ મારૂં નથી, એ સિદ્ધ વાત છે, માટેજ જન્મ મરણની વચ્ચેનો બધો માયાનો વ્યવહાર મિથ્યા છે, સ્વપ્નવત છે, ત્રિકાલમાં સ્થીર રહે તેવો નિત્ય નથી માયાનું સ્વરૂપ કહેતાં શ્રીકૃષ્ણ ભગવાન કહે છે કે अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥ માયા કેવળ વ્યક્ત મધ્યજ માની છે, કેમ કે ભૂત અને ભવિષ્યમાં ન છતાં કેવળ વર્તમાનમાંજ તેની સત્તા મનાઈ છે આમ માયા નિત્ય નથી, ને જ્ઞાની તો વિરક્તજ છે ત્યારે તેને પૂછવું જોઇએ કે તમે કદાપિ કદાપિ ચળીને માયા પર પ્રેમ કરી જાઓ તો, તે શાથી? એનો સ્વભાવ તો નિત્ય નથી, એ તો ઘડીમાં તૂટી જાય છે અને ઘડીમાં સાજી થાય છે, આવી મિથ્યા વાત પર મમતા કેમ કરો છો? તમે નિર્લેપ સ્વરૂપજ ઓળખી વિરક્ત રહો

દુનિયામાં પ્રેમ, અર્થાત્ આ, તે, એવો અહિત નિષ્ઠ પ્રેમ માણસને હેરાન કરે છે, જેવો પોતાના સ્વાર્થ પર પ્રેમ હોય છે તેવો બીજા પર નથી હોતો, પણ તેથી તરતજ ઉતરતો પત્નિ પર હોય છે પણ વિચારવાન પુરૂષો જાણે છે કે એ પણ કેવળ સ્વાર્થની સગી છે, એનેજ માટે એની પ્રજાને માટે, કાળાં ધોળાં કરવાં પડે છે, એમ એ તો માણસની પછવાડે કષ્ટરૂપ થઈ પડી છે, મહા અનર્થ કરાવનાર ભૂતની પેઠે વળગી છે આમ વિચાર કરતાં કદાચ પત્નિનો સ્વાર્થ સમજાઈ તેના ઉપર વિરાગ આવે, પણ જેણે આપણને જન્મ આપેલો અને જેના હાથમાં ઉછરેલા તેના ઉપરનો સ્નેહ કેમ તૂટે? એમાં પણ વિચાર તો સ્પષ્ટજ છે સર્વે સ્વાર્થનું સગું છે કમાઈ લાવે તો દીકરો નહિ તો પથરો એ લોક પ્રસિદ્ધ છે, તો તે સંબંધમાં પણ લપટાઈ રહેવામાં માલ નથી અહો દેવ! કેવળ નિસ્વાર્થી જણાતાં મા બાપ તે પણ સ્વાર્થ સાધે! એ ખરે ખર આખરની છેલ્લીજ ઠોકર છે! પણ તેવી ઠોકર ખાધા વિના ખરો વિરાગ થતો નથી

લખવાનું તાત્પર્ય એમ નથી કે પત્નિ, મા, બાપ, વિગેરેને ત્યજીને નાશી જાઓ, પણ એમ છે કે તેજ તમારા પરમ ધ્યેયનું સ્થાન છે, એમ જાણી ભુલાવામાં ન પડો એ બધાં માયાનાં બંધન છે તેની ઉપાસનામાં આસક્ત ન થાઓ, પણ ખરો પ્રેમપૂર્ણ પુરૂષ પરબ્રહ્મમાં બાંધો કે મોક્ષ થાય—આત્મજનોના સંબંધમાં કદી ને કદી એવો અનુભવ જરૂર થશે કે જેથી મન ચીરાઈને મરી જવાય, પણ કોઇને કહેવાય નહિ, એમ કાળજાના ભીતર એવું દાઝશે કે કાંઇ ગમે નહિ, આમ પ્રત્યક્ષ અનુભવ થઈ, વિચાર કરતાં માયાનો ખેલ નકામો જણાવાથી મન ગભરાઈ રહે ને શું સાચું તે શોધે પણ તેને કોણ બતાવે? આમ જ્યાં ભીતર દાઝ્યું ત્યાં ઓસડ કેમ લગે, અને સાચી વાત કોણ બતાવે કે જેથી એ ભીતરમાં આનંદ ઉદય પામે! મા બાપ, સગાં સંબંધીથી તો ખરો, શોધેલો

ઉપાય મળવાનો નહિ કેમકે એ તો ધૂળ ઉપર લીંપણ છે, એમના પરના સ્નેહથી ખરો પ્રેમભાવ સમજવાનો નહિ. માટે જે જે લોક એવી વાતોમાં લીન થયા છે તે કાચી બુદ્ધિના; પામર પ્રાણી છે એમ નક્કી સમજજો.

માતા પિતાદિકમાં કદાપિ સ્નેહ ભલે ન લાગો પણ પોતે પસંદ કરી સમાનશીલ વ્યસનવાળો ખરો પ્રેમી મિત્ર કર્યો હોય તેનાથી કેમ છૂટા થવાય ? છૂટા થવા ન થવાની વાત નથી, પણ તેજ તમારો ઇશ્વર એમ સમજવામાં ભૂલ છે કેમકે તે શુદ્ધ બ્રહ્મમય, પ્રેમમય હોય તો તો જુદી વાત, પણ તેમ નથી, તે પણ માયામયજ છે. તેઓ પણ માયાના સંગીજ છે, પોતાની વાત પર રોકાયલાજ છે, હુંપદ ત્યજતા નથી, તન્મય થતા નથી, જે સર્વદા આ મારૂં આ મારા મિત્રનું એમ માની જુદાને જુદા રહી સ્વાર્થ બુદ્ધિ બતાવે છે, ને સ્વાર્થ પરાયણ હોય છે. વળી આવા સ્વાર્થ ઉપરાંત એવા અહંપદ યુક્ત હોય છે કે આપણપનમાં જે ખરૂં હોય તે સમજતા નથી તેથી આપણે તો આપણા મનમાંજ અટવાવું પડે છે, આટલુંજ નહિ પણ પોતેજ ડાહ્યા છે એમ સમજી આપણને મૂર્ખ પણ બનાવવા ચૂકતા નથી. આવા કેવલ ભેદભાવ અને સ્વાર્થ બુદ્ધિવાળા તે મિત્ર કેમ ગણાય ? એમાં પણ આસક્તિ હોવી મિથ્યા છે.

બધાનો દૈહિક ત્યાગ કરવાની જરૂર નથી. પરંતુ ત્યાગ કરવો એવી યુક્તિઓ બધા બતાવે છે ત્યારે સત્ય શું ? સત્ય એટલુંજ કે પ્રેમ જો કરવો હોય તો પરમાત્મા સાથે કરો, અનિત્ય વસ્તુઓ સાથે ને માયિક પદાર્થો સાથે ન કરો. એની પ્રક્રિયા એ છે કે યાવદ્ જ્ઞેય પર સમાન પ્રેમભાવ માનો, સર્વને પોતાનાં જાણો ને એ સર્વાધાર ઈશ્વર પર આત્મારામ પર પ્રેમ રાખો. વેદ પુરાણ વિગેરે શાસ્ત્રોનો તેમ જુદા જુદા મહાત્મા અને આચાર્યોનો એજ વાસ્તવિક અનુભવ છે. ખરો આનંદ માર્ગ એજ તેમણે શોધ્યો છે. આપણે પણ તેમજ કરવું જોઇએ ને તેમ કરતાં કદાપિ માયાના છત્ર ખોટું સારૂં કહે, કીર્તિ નિંદા ગમે તે કરે, તો તેની લેશ પણ દરકાર ન કરો, કર્તવ્યથી ચૂકવું નહિ, પણ એમાંજ આસક્ત ન થવું. કેમકે જે જ્ઞાની છે તે कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥

આમ કરવામાં તો ઘર વેચીને તીરથ કરવાની વાત થઇ, માટે એ ધર્મ કામનો નહિ. ઘર સાચવવું અને હરિભજન કરવું એ ખરો માર્ગ છે, એમ ઘણા કહે છે એ ઠીક છે પરંતુ એ વાત ખોટી છે, કારણ કે જેને હરિ ઉપર ખરો પ્રેમ છે તે હરિ વિના બીજું દેખતો નથી, ને હરિ તો સર્વત્ર છે, ત્યારે આ મારૂં ઘર ને આ હરિ એવો ભેદભાવ કયાં રહ્યો ? સિદ્ધાંત એજ છે કે મોક્ષ કેવલ અભેદનો અનુભવ કરવામાં છે બીજા કશામાં નથી, ઘર બાળી તીર્થ કરવાની વાત પણ નથી, કેવલ ભેદનો તથા ન્યૂનાધિકતાનોજ નિષેધ છે.

ત્યારે ખરો ભક્ત, ખરો પ્રેમી, ખરો જ્ઞાની કોણ ? જે અમે પ્રેમી છીએ એમ કહેતા ફરે છે તેવા રાગી લોક ખરા પ્રેમી નથી એ તો એમ કહે છે તેટલામાંજ તેમનો સ્વાર્થ જણાઈ આવે છે, અમે પ્રેમી ને બીજા નહિ, એ ભેદ બુદ્ધિજ તેમનું અજ્ઞાન જણાવે છે; પણ ખરા પ્રેમી, જ્ઞાની, તો એજ કે જે વિરાગી છે અર્થાત્ પોતાના જે પ્રેમસ્થાન-બ્રહ્મ-સિવાય બીજા તમામને જાણતા સરખા પણ નથી, બધું પ્રેમ સ્થાનમય દેખે છે, મારૂં તારૂં એ પરથી વિરાગ પામ્યા છે. ભેદ એ શબ્દ સમજતા નથી. આવાનેજ વિરાગી કહેવાતા હોય તો દુનીયામાં વિરાગી થઈ ફરે છે તે કેવા ? જેઓ રાગ અથવા પ્રેમ, અને વિરાગ—ત્યાગ—એ બંને એક રૂપે ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે નથી સમજતા તે તો દુનીયામાં ભીખ માગવા માટે વેષ ધરનાર વિરાગીયો છે. ખરા વિરાગી તો પ્રેમીજ છે; કોઈ પર પ્રેમ ન રાખતાં સર્વને ત્યજીને નાસનાર વિરાગી નથી એ તો કેવલ પેટને માટે ભમનારા છે.

આ પ્રમાણે હોવાથી સિદ્ધાંત કે નિર્વિકાર પરમાત્મા એજ પરમ પ્રેમાસ્પદ છે; તેનો પ્રેમ કરનાર અધિકારીઓને લોક પથ્થરરૂપ ગણે તો પણ ભલે એમના કહેવા ઉપર તે પ્રેમનો સંબંધ નથી.

સુખી જીવન

(લે૦—પં૦ શ્રી વાસુદેવ શાસ્ત્રી 'તૈનગ' શુ૦ હૈ૦ વૈદ્ય વિશારદ)

શિષ્ય—ગુરૂજી, વર્તમાન શિક્ષાનું અંતિમ પરિણામ સુખકારી આવે છે કે દુઃખકારી ?

ગુરૂ—પ્રિય વત્સ, આજકાલ પ્રથમના જેવા ગુરૂકુળ નથી, જો કે આજકાલ એકથી એક વધી જાય એવી કૉલેજો, યુનિવર્સિટીઓ, ખોલવામાં આવી રહી છે. પરંતુ તે સાચી શિક્ષા અને કળાનું અધ્યયન કરાવનારી નથી તેમનું કામ પરિક્ષા લેવાનું છે

શિષ્ય—ઘણી વાર સાંભળવામાં આવે છે કે આ શિક્ષાથી લાભ થવો તો કઠણજ છે, અને શારીરિક સંપત્તિ નષ્ટ થઈ જાય છે શું એ વાત સાચી છે, ગુરૂજી ?

ગુરૂ—આ શિક્ષાના ભયંકર રૂપ દ્વારા ભારત વાસિયોની સમસ્ત શારીરિક સંપત્તિ નષ્ટ કરી નાખવામાં આવે છે છ છ કલાક પર્યંત બાળક વિદ્યાર્થીઓને સ્કુલોમાં પૂરી રાખવાથી તેમના શરીર રક્તહીન, નિર્જીવ, અસ્થિ પિંજર, જેવાં બની જાય છે પ્રાચીન સમયમાં આજન્મ અંત સમય સુધી ચશ્માની જરૂર પડતી નહોતી-પરંતુ બલિહારી છે આ વર્તમાન શિક્ષાની, કે જેના પ્રભાવથી વિદ્યાર્થીને ચશ્માની જરૂર પડવા માંડે છે કદાચ આંખોમાં વિકાર ન પણ હોય, તોપણ બાબુજી બનવા માટે તો ચશ્મા આવીજ જાય છે જેના પરિણામે આંખો વહેલી નષ્ટ થવા માંડે છે બીજું, બાળકોની પાચન શક્તિ ખોઈ નાખે છે, એન્ટ્રન્સ હૃદય ખરાબ કરી નાખે છે, એફ૦ એ૦ પેટ અને આંતરડાઓનો આહાર કરી જાય છે, બી૦ એ૦ બરબાદ બનાવી દે છે અને આ પ્રમાણે કર્મ બચેલું બાકીનું અધમરું શરીર એમ૦ એ૦ ને અર્પણ કરી દેવામાં આવે છે

શિષ્ય—ગુરૂજી, એ જરા દ્રષ્ટાન્ત આપીને સમજાવો

ગુરૂ—અકબરના જમાનાની એક વાત પ્રસિદ્ધ છે કે એકવાર બાદશાહે પોતાના બાર વજીરોની બુદ્ધિ પરિક્ષા કરવા માટે ચાર બકરા તોળીને તેમને આપ્યા અને કહ્યું કે એક મહિના પછી બકરાનું વજન એટલું ને એટલુંજ રહેવું જોઈએ, નહીં તો સજા કરવામાં આવશે સૌએ તેને માટે અનેક ઉપાય કર્યા, પરંતુ બીરબલે એક નવોજ ઉપાય વિચાર્યો બીરબલ દીવસે બકરાને ખુબ ખવરાવતો અને રાત્રે તેને વાઘના પાંજરા પાસે બાંધી દેતો હતો તેથી થતું એમ કે બકરો દીવસે જેટલું ખાય પીએ તે બધુંય રાત્રે વાઘના ભયને માર્યે ખાખ થઈ જતું હતું આવીજ વિકટ પરિસ્થિતિ આજકાલ આપણા દેશના વિદ્યાર્થીઓની છે, એક તરફ વિદ્યાર્થીઓ ખાઈ પીને તૈયાર થાય કે બીજી તરફ પરિક્ષારૂપી વાઘ તેમના લોહીને ચુસી નાખે છે

શિષ્ય—ગુરૂજી, શું એ પણ સત્ય છે કે અમે અમારા સંતાનોને અમારા હાથેજ ઉંડા ખાડામાં નાખી દીધા છે ?

ગુરૂ—આજ અમે એવી માયા મરીચિકામાં ફસાએલા છીએ કે અમારી સંસ્કૃતિ, અમારી વેષભુષા અમારી જાતિ એ સર્વ કાંઈને ભુલી બેઠા છીએ મુસ્લિમ રાજ્યકાળમાં અમે અમારૂં અસ્તિત્વ નહોતું ગુમાવ્યું, પરંતુ ગત દોઢસો વર્ષોમાં અમે અમારૂં સર્વસ્વ સર્વ પ્રકારથી ગુમાવી દીધું જ્યારે નાના બાળકોને સ્કુલમાં મોકલ્યા અને તેમણે 'એ૦ બી૦ સી૦' એ અક્ષરો યાદ કર્યાં ત્યારે અમે સમજ્યા કે અમારા બાળકો પણ નવી ભાષા શીખી રહ્યાં છે, પરંતુ કેટલાક દિવસોમાં અંગ્રેજીના સારા જ્ઞાતા થઈને અને નવીન સભ્યતાના ઉપાસક થઈને માતા પિતાને ધમકાવવા લાગ્યા, હિન્દુ ધર્મની તથા વેદની નિંદા કરવા લાગ્યા અને સર્વ કાંઈને જુદું પાખંડ માનવા લાગ્યા. તેના મત પ્રમાણે કોટ, પાટલુન, બુટ, હેટ જ સર્વ દેવતા છે અને એજ ઈશ્વર પાસે પહોંચવાના સાધનો છે. પછી ભલે તેઓ બિહાર મંડળના સભાસદ બન્યા રહે, પરંતુ પોતાના ધર્મને તિલાંજલી આપવી એ તો એનું

પહેલું કામ હોય છે, જે આ શિક્ષાનો જન્મ સિદ્ધ અધિકાર છે. સાથેજ બીજી પણ કેટલાંક ખાસ ફૂલ ખીલવા માંડે છે, તે કયાં છે, સાંભળો—

હજુ થોડાક દિવસ ઉપરની વાત છે, મેં એક માસિક પત્રમાં એવો લેખ વાંચ્યો કે જેથી આશ્ચર્ય થયું, એક ઘાંચીનો છોકરો હતો, જેને પિતાએ પોતાના ઘરનો ધંધો છોડાવીને 'એમ૦ બી૦ સી૦ ડી' ભણવા મોકલ્યો. પિતાએ વિચાર્યું હતું કે ઘાંચીના ધંધામાં હવે શું કસ રહ્યો છે? અગર બાબુ બની જશે તો સો બસો મહિને કમાઇ લાવશે. જ્યારે તેણે કોઇ પણ રીતે મેટ્રિક પાસ કરી અને આગળ અભ્યાસ કરવાના ખર્ચની જોગવાઈ ન બની ત્યારે તે કોઇ નોકરીની શોધમાં ફરવા લાગ્યો. પણ જ્યારે નોકરીનો કયાંય પતો ન લાગ્યો ત્યારે પિતાએ કહ્યું કે ઘરનું કામકાજ જ ઠીક છે. તેમાંથી જરૂર પુરતી રોજી જરૂર મળી રહેશે. બસ, આમ-સાંભળતાંજ પુત્ર મહાશય બોલી ઉઠયા–હું એ કામ તો નથીજ કરવાનો, ભલેને ભુખે મરી જવાય. હવે કહો, આ નવીન સભ્યતાનું ઉદાહરણ છે કે નહી? આજકાલ વર્તમાન શિક્ષાનું ભુત સવાર છે, સગાઇ અને વિવાહ પણ પરિક્ષાના સર્ટિફિકેટ ઉપર નિર્ભર છે. પ્રાચીન કાળમાં જન્મપત્રીઓ જોવાતી હતી અને હવે સર્ટિફિકેટ.

પરિક્ષકોની તો ગતિજ વિચિત્ર છે. તેઓ કઠણમાં કઠણ પ્રશ્નો વિદ્યાર્થીઓને પૂછવામાંજ પોતાની વિદ્વત્તાની મહત્તા સમજે છે. પરિક્ષકોનું કર્તવ્ય તો છે વિદ્યાર્થીઓના જ્ઞાનને જાણવું, પરંતુ એ લોકો તો એજ જુએ છે કે એમને શું નથી આવડતું? જ્યાં સુધી બને ત્યાં સુધી વિદ્યાર્થી નપાસ થાય અને ચોરાસી લાખ યોનિયોની પેઠે ભટકયા કરે. આજકાલની શિક્ષાએ કેટલા કાલિદાસ, ભવભૂતિ, ધન્વન્તરિ, વ્યાસ, વાલ્મિકી, સૂરદાસ તથા તુલસીદાસ પેદા કર્યાં છે? અને કેટલાની શારીરિક સંપત્તિનું મહત્વ સાંભળવામાં આવે છે? ભીમની ગદા, હનુમાનનો હુંકાર, અર્જુનના ગાંડિવ આદિને ચાહે તમે પુરાણોની ગપ્પો સમજો, પરંતુ જેમણે વિરવર રાણા પ્રતાપનું બલિષ્ટ ચરિત્ર, શિવાજીની વિરતા અને પૃથ્વીરાજની ધનુર્વિદ્યા વિષે સાંભળ્યું છે, તેમાંથી શું કોઈ એમ કહેશે કે તેવા વીરોએ દેશોદ્ધાર અર્થે કમર નહોતી કસી? અવધના નવાબ સંબંધી વાત તો પ્રસિદ્ધજ છે કે જ્યારે તે હાથીનું પુંછડું પકડી લેતા હતા ત્યારે હાથી જરાય આઘો પાછો થઈ શક્તો નહોતો.

શિષ્ય—ગુરૂજી, એક પ્રશ્ન બીજો છે, ભારતિયોની એમાં શું ત્રુટિ છે કે જેથી આ રીતે તેઓ પોતાનું અધઃપતન કરાવી રહ્યા છે?

ગુરૂ—ભારતવાસીઓમાં અનેક દોષ છે, અન્ય દેશીય મનુષ્યો વિદેશ જઇને હુન્નરકળા શીખી લાવીને પોતાના દેશના લોકોને શીખવાડે છે ત્યારે ભારતીય જો કંઇ શીખે પણ છે તો તેનો પ્રચાર કરતા નથી. વિદેશી પોતાના દેશના ઉદ્ધાર અર્થે પરદેશ જાય છે ત્યારે ભારતવાસી મોજ શોખ કરવા પરદેશ જાય છે. વિદેશી પરદેશ જઇને નમ્રતા શીખે છે ત્યારે ભારતીય પોતાની માન મોટાઇનો ગાંસડો બાંધી લાવે છે. અન્ય દેશીય વિદેશમાં જઇને સ્વદેશને ભુલી જતા નથી ત્યારે ભારતીય વિલાયત જઈને સ્વદેશને ઠોકરે મારવાનું યાદ કરી લાવે છે. વિદેશી પોતાના પૂર્વજોને પૂજ્યભાવથી જોતાં શીખે છે ત્યારે ભારતીય પૂર્વજોને હીન દૃષ્ટિથી જોવામાંજ કર્તવ્ય સમજે છે. આવા અનેક દોષોથી અમેજ અમારૂં પતન કરી રહ્યા છીએ.

શિષ્ય—ગુરૂદેવ, શું ઉન્નત થવાનો કોઈ સરલ ઉપાય છે? અગર હોય તો તે બતાવવાની કૃપા કરો.

ગુરૂ—અમારી ઉન્નતિમાં બાધા નાખનારી છે માત્ર અમારી આપસની ફૂટ, સમાજની કુપ્રથા અને અમારી મૂર્ખતા. અમને બીજાઓએ એટલા પરાજીત નથી કર્યા, પરંતુ ઘણે ભાગે તો અમે જાતેજ પરાજીત થયા છીએ, અમારા આપસ આપસના કજીયા અને કુત્સિત આચાર વિચારથી.

વિદેશીઓને લાખોની ભેટ અર્પણ કરવામાં કોઈને વાંધો નહી, પણ પોતાના ભૂખ્યા તરસ્યા પડોશીને મુઠી અન્ન કે ઘુંટડો પાણી આપવામાં અમારા પ્રાણ કંઠે આવી જાય છે. તેથી જ્યાં સુધી ભારતીયોનાં હૃદય કુસંસ્કારનાં મંદિર બનેલાં છે, ત્યાં સુધી તો અમે આત્મોન્નતિ કે આત્મોદ્ધાર કરી શક્તા નથી.અને સુખી જીવન તો પછી સ્વપ્નનીજ વાતો રહી.

પુરૂષાર્થી

સાધારણ રીતે ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ એ ચાર પુરૂષાર્થ કહેવાય છે, જેમાં અર્થ અને ધર્મ કામ તથા મોક્ષના સાધક હોવાથી પરંપરયા પુરૂષાર્થ છે. પરંતુ અર્થ અને કામ ધર્માનુસાર હોય તો જ પુરૂષાર્થ કહેવાઈ શકે છે. અગર જો તે ભોગવિલાસના સાધન રૂપે હોય છે તો તેને પુરૂષાર્થ નામ ઘટતું નથી. જે અર્થ અને કામના પ્રેમમાં મસ્ત છે પરલોક માટે કંઈ કરવું એ આવશ્યક સમજતા નથી, એવા પ્રાણીઓને પશુઓથી જુદા ગણવા ન જોઈએ બલ્કે તેમની ગણના તો ગીધ જેવા માંસભક્ષી પક્ષીઓની કોટીમાં જ થવી બહુ ઉચિત છે.

જે પુરૂષ ધર્મનાં કામોમાં પ્રવૃત્ત છે, પરલોકમાં પૂરો વિશ્વાસ રાખીને એમ વિચારે છે કે દાન પુણ્ય આદિનાં ફળ ભવિષ્યમાં અવશ્ય મળશે તે મધ્યમ કોટીના વિચારક છે.

જેઓ ત્રિવર્ગને અનિત્ય જાણીને તેનાથી ઉપરામ થઈ જાય છે અને એક માત્ર મોક્ષને પરમ પુરૂષાર્થ માને છે તે ઉત્તમ કોટીના વિચારવાન છે.

મોક્ષાર્થીના પણ ત્રણ વર્ગ છે. જે અસમર્થ સ્ત્રી પુત્રાદિકોને હેય અને દુઃખપૂર્ણ સમજીને તેમનો ત્યાગ કરીને સંન્યાસ આશ્રમમાં પ્રવેશ કરે છે તે અધમ અધિકારી છે. જે સંસાર માત્રનો ત્યાગ કરીને કોઈ ખાસ સ્થાનમાં ન રહેતાં તત્ત્વજ્ઞાન અર્થે પરિભ્રમણ કરતા રહે છે તે મધ્યમ અધિકારી છે. જે તત્ત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને પણ પોતાને કૃતકૃત્ય સમજતા નથી બલ્કે જ્યાં સુધી સાતમી ભૂમિકા ઉપર આરૂઢ ન થઈ જાય ત્યાં સુધી મનોનાશ અને મનની વાસનાઓના નાશને માટે પ્રબલ પુરૂષાર્થ કરતા રહે છે તે પરમ ઉત્તમ અધિકારી છે. વસ્તુતઃ તેજ સાચા પુરૂષાર્થી કહેવાને યોગ્ય છે. જો કે એવા પુરૂષોથી સંસારને કોઈ દેખીતો લાભ નથી થતો, પરંતુ તે પોતાના આચરણથી નિષ્કામ કર્મ, ત્યાગ, નિર્લોભ, આદિના આદર્શ રાખીને લોકમાં એક ઉજ્જવલ સત્યની સ્થાપના કરે છે કે જેનાથી જગત આપોઆપ તેના તરફ ખેંચાય છે.

—સ્વામી વિદ્યાનંદ.

શ્રીમત્ પ૦ પ૦ પ્ર૦ શ્રો૦ ગી૦ શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરૂ મહામંડલેશ્વર સ્વામી
શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજનું ઠેકાણું—
ગીતામંદિર, ગોયાગેટ રોડ. વડોદરા (ગુજરાત)

REGISTERED NO. A158.

पुरुषार्थी

साधारण रीति से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं, जिन में अर्थ और धर्म काम तथा मोक्ष के साधक होने से परंपरया पुरुषार्थ हैं। किंतु अर्थ और काम धर्मानुसार हों तभी पुरुषार्थ कहे जा सकते हैं, यदि वे भोग विलास के साधन होते हैं तब उन्हे पुरुषार्थ नाम देना अनुचित है। जो अर्थ काम के प्रलोभन मे मस्त हैं, परलोक के लिए कुछ करना आवश्यक नहीं समझते; ऐसे प्राणियों को पशुओं से अलग करना कठिन है, उन की तुलना तो गिद्ध जैसे मांस की ताक मे रहनेवाले पक्षियों से ही हो सकती है।

जो पुरुष धर्म के कामों में प्रवृत्त हैं, परलोक में पूरा विश्वास रखते हुए सोचते हैं कि दान पुण्य आदि का फल आगे चलकर अवश्य मिलेगा वे विचारक मध्यम कोटि के हैं।

जो कि त्रिवर्ग को अनित्य जानकर उस से उपराम हो जाते हैं और एकमात्र मोक्ष को परम पुरुषार्थ मानते हैं वे उत्तम कोटि के विचारवान् हैं।

मोक्षार्थी की भी तीन श्रेणियाँ हैं, जो असमर्थ स्त्री पुत्र आदि को हेय व दुःखपूर्ण समझते हुए त्यागकर सन्यास आश्रम में प्रवेश करता है वह अधम अधिकारी है। जो संसारमात्र को तजकर किसी विशेष स्थान मे न रहते हुए तत्त्वज्ञानार्थ परिव्रजन करता है वह मध्यम अधिकारी है। जो तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने पर भी अपने को कृतार्थ नहीं समझता, बल्कि जब तक सातवीं भूमिका मे आरुढ न हो जाय तबतक मनोनाश व वासनानाश के लिए प्रबल पुरुषार्थ करता रहता है वह परमोत्तम अधिकारी है। वास्तव में वही सच्चा पुरुषार्थी कहलाने योग्य है। यद्यपि ऐसे लोगों से संसार का कोई दृश्य लाभ नहीं होता तथापि वे अपने आचरण से निष्काम कर्म, त्याग, निर्लोभ आदि का आदर्श रखकर लोक मे एक उज्वल सत्य की स्थापना करते हैं जिस से जगत् स्वतः उस ओर खिंचता है।

—स्वामी विद्यानन्द

श्रीमत् प. प. ब्र. लो. गो. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज
का पता— गीतामन्दिर, गोवागेट रोड, बड़ौदा (गुजरात)

संस्थापक—श्रीमत् प प ब्र लो गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

तात ऋषभ सौ होय मात मदालसा मानौ।
पुत्र कपिल सौ मिलै मित्र प्रह्लादहि जानौ॥
भ्राता विदुर दयाल योषिता द्रुपद दुलारी।
गुरु नारद से मिलें अकिंचन पर उपकारी॥
भर्ता नृप अम्बरीष सौ राजा पृथु सौ जो मिलै।
'भगवत' भवनिधि उद्धरै चिदानन्द रस में मिलै॥

वार्षिक मूल्य—
भारत में ४)
विदेश में ६॥)

एक हि धागा नाम का, सब घट मनियाँ माल।
फेरत कोई संत जन, सतगुरु नाम गुलाल॥

साधारण प्रति
भारत में ।)
विदेश में ।≈)

श्री गोवर्धनभाई मंगलभाई पटेल द्वारा गीताधर्म प्रेस, [illegible], काशी में मुद्रित और प्रकाशित।

विषयसूची [हिंदीविभाग]



[ગુજરાતી વિભાગ]

गीताधर्म का आगामी आठवें वर्ष का उपहार

गीतागौरवाङ्क

ग्राहक, अनुग्राहक और प्रेमी पाठकों की सेवा में सूचित करते हुए हर्ष होता है कि प्रतिवर्षानुसार इस बार भी आप की सेवा में नववर्षारम्भ पर विशेषाङ्क समर्पित किया जायगा। मुद्रणसामग्री की दुर्लभता और कठिनाइयों के रहते भी कार्यालय आप की सेवा में उतने ही मूल्य पर पहले जैसा ही सचित्र, सजिल्द, करीब ६०० पृष्ठों का विशेषाङ्क भेंट करना चाहता है, इस को भगवान् का अनुग्रह ही कहना होगा।

यह विशेषाङ्क गीता के ऊपर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज के लोकप्रिय, सुप्रसिद्ध भाष्य का अन्तिम तीन अध्यायों पर अवशिष्ट अंशरूप होगा। स्वामीजी की प्रतिपादनशैली कितनी सुव्यवस्थित, युक्तियुक्त और हृदयग्राहिणी होती है यह बताना पाठकों की रसज्ञता का अपमान करना है। गीता जैसे गहन ग्रन्थ के अन्तिम ज्ञानकाण्डात्मक षट्क के कठिन विषय को भी रोचक और सीधे सादे ढंग से समझाना और गूढ तत्त्वों को कोमल, सरस बनाते हुए हृदयगम कराना इस भाष्य की विशेषता है, जिस की नमूने के तौर पर पृष्ठ २३० से २३३ तक कुछ झाँकी इसी अङ्क में पाठक देखेंगे।

आशा है, ग्राहक महानुभाव निराली व्याख्यायुत इस गीतागौरवाङ्क के प्रथम भाग को स्वीकार कर गत चार विशेषाङ्कों की खाद्य पूर्णता करने में न चूकेंगे।

—व्यवस्थापक, 'गीताधर्म' काशी।



ગીતાધર્મની વાર્ષિક ભેટ

ગીતાગૌરવાંક

ગ્રાહક, અનુગ્રાહક અને પ્રેમી વાંચકોની સેવામાં જાહેર કરતાં હર્ષ થાય છે કે હરસાલની માફક આ સાલે પણ આપની સેવામાં વિશેષાંક સમર્પિત કરવામાં આવશે. મુદ્રણ સામગ્રીની દુર્લભતા તથા અડચણો હોવા છતાં પણ કાર્યાલય આપની સેવામાં તેટલાજ લવાજમમાં પ્રથમના જેવો સચિત્ર, સજીલ્દ, લગભગ ૬૦૦ પૃષ્ઠનો વિશેષાંક ભેટ કરવા ચાહે છે; એમાં ભગવાનની કૃપાજ મુખ્ય ગણાશે

આ વિશેષાંક ગીતા ઉપર સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દ મહારાજના લોકપ્રિય, સુપ્રસિદ્ધ ભાષ્યના છેલ્લા ત્રણ અધ્યાયો પર અવશિષ્ટ અંશરૂપ હશે. સ્વામીજીની પ્રતિપાદન શૈલી કેટલી સુવ્યવસ્થિત, યુક્તિયુક્ત અને હૃદયગ્રાહીણી છે એ વિષે કંઈક કહેવું એ વાચકોની રસજ્ઞતાનું અપમાન કરવા જેવું ગણાય ગીતા જેવા ગહન ગ્રંથના અંતિમ જ્ઞાનકાણ્ડાત્મક ષટ્કના કઠણ વિષયને રોચક તેમજ સરળ સીધા પ્રકારથી સમજાવવો અને ગૂઢ તત્વોને કોમળ, સરસ બનાવીને હૃદયંગમ કરાવવાં એ આ ગ્રંથની વિશેષતા છે. જેનો નમુનો આ અંકના પૃષ્ઠ ૧૧૧૭ થી ૧૧૧૯ સુધીમાં વાંચકને જોવા મળશે.

આશા છે કે ગ્રાહક મહાનુભાવ આ ગીતાગૌરવાંકના પાંચવા ભાગનો સ્વિકાર કરી પાછલના ચાર વિશેષાંકોની પૂર્ણતા કરી લેવા ચૂકશે નહીં.

—વ્યવસ્થાપક, 'ગીતાધર્મ' કાશી.

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ } अक्टूबर, १९४९, काशी { अङ्क १०

वाग्देवीवन्दना

जय जगदम्ब जगत सुखकारी ।
जय जगदीश्वरि मातु सरस्वती जय जगपालनहारी ।
जय जय सुखमयि जय दुखनाशिनि संकट देहु निवारी ॥
चन्द्रबिम्बसम वदन बिराजै भालापर गलधारी ।
वीणा वाम अङ्क में सोहत अद्भुत शक्ति तुम्हारी ॥
श्वेत वसन कमलासन सुन्दर पावन हंस सवारी ।
जा के हृदय बसहु तुम माता ताकी बुद्धि अपारी ॥
सदा सदय हम पै रहु जननी जानि अधम अघकारी ।
'कमलदास' चरनन सिर नावत देहु सुमति सुविचारी ॥

—महात्मा जय गौरीशंकर सीतारामजी ।

बन्ध और मोक्ष

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

उपनिषदों में यह प्रश्न आता है कि हम कहाँ से आते हैं, कहाँ को जाते हैं और बीच की दशा में कहाँ रहते हैं। इस का उत्तर दिया जाता है कि हम शुद्ध बुद्ध नित्य मुक्तस्वरूप परमात्मा से आते हैं, बन्धन में रहते हैं और फिर मोक्ष पाकर उसी महान् आत्मा में लीन हो जाते हैं। प्राणी जिस दशा में से निकलकर आते हैं वह मोक्ष या मुक्ति की दशा है, वर्तमान अवस्था बन्धन है और फिर जिस अवस्था को पहुँचेंगे वह मोक्ष की दशा होगी, जैसा महाभारतकार कहते हैं—

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥

सृष्टि के आरम्भ में सब प्राणी जहाँ से आते हैं और उस की समाप्ति पर फिर से जिस में लीन हो जाते हैं वही सब की परम गति है। यही बात गीता में इस प्रकार है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव..................... ॥

—२।२८

हे भारत, सभी जीव सृष्टि से पहले अज्ञात विलक्षण तत्त्व में लीन रहते हैं, बीच में इस अनित्य रूप में प्रकट हो जाते हैं, पुनः प्रलय के बाद उसी सर्वधर्मविनिर्मुक्त अव्यक्त दशा में पहुँच जाते हैं। प्राणी का कर्मबन्धन में आना ही सृष्टि और उस से छूटना ही प्रलय या मुक्ति है। इन तीनों दशाओं में आदि और अन्त तो ठीक हैं केवल बिचली दशा का झगड़ा है, इसी में वे बातें दिखाई देती हैं जिन्हें जीवनसंग्राम, उद्योग या 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' कहा जाता है। यह बन्धन की दशा महादुःखदायी है, इस ने प्राणियों के हाथ पैरों को बाँध रखा है। वे बहुतेरा चाहते हैं कि अध्यात्मजगत् के उच्च लोकों में उड़ जायँ, पर पैरों में भारी जंजीर पड़ी है। इच्छा होती है कि परम सुख का लाभ करें, पर बदले में दुःख ही मिलता है; रोते हैं, बिलखते हैं, कहीं कोई सुनवाई नहीं। बेबस है कुछ बन नहीं पड़ता, अभिलाषाएँ पूरी नहीं होतीं। इस चर्मखोल के भीतर भयानक अग्नि जल रही है, हृदय के बीच, अस्थियों के अंदर एक द्वन्द्वयुद्ध ठन रहा है। यह सच्ची घटना है, पर सब को इस का भान नहीं होता। जो कुछ भी समझ रखते हैं, सज्ञान हैं वे स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि अब भी मनुष्यों के हृदयों में महाभारत के युद्ध होते रहते हैं। यही बात आचार्य श्री शंकर ने अपने गीताभाष्य के आरम्भ में कही है—

'दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं' इत्यारभ्य 'न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह' इत्येतदन्तः प्राणिनां शोकमोहादिसंसारबीजभूतदोषोद्भवकारणप्रदर्शनार्थत्वेन व्याख्येयो ग्रन्थः।

'दृष्ट्वा तु पाण्डवानीक' यहाँ से लेकर 'उक्त्वा तूष्णीं बभूव ह' यहाँ तक बीच के श्लोकों का तात्पर्य यह है कि अर्जुन की तरह हर एक प्राणी के अंदर शोक, मोह, राग, द्वेष, आदि संसार बन्धन के कारणभूत दोष प्रकट हुआ करते हैं। यहाँ जिज्ञासा होती है, इस से बचने का या निकलने का उपाय क्या हो सकता है? इस का समाधान है कि यह भी संसार का स्वभाव है, उस में एक ओर जलानेवाली आग की चिनगारियाँ हैं वहाँ दूसरी ओर ठंडक देनेवाले निर्झर और झील भी हैं। एक ओर उथल पुथल है तो दूसरी ओर स्थिरता, शान्ति भी है। मनुष्य चेष्टा करने पर कर्मबन्धन के जाल से छूटकर सुख शान्ति के मार्ग में जा सकता है। जब वह स्वयं कर्म के जाल में फँसता है तो स्वयं ही निष्काम कर्म करके निकलने में भी समर्थ है। वस्तुतः संसार ऐसा जकड़ लेनेवाला नहीं, मनुष्य अपनी अज्ञानता से वैसा हो जाता है, जैसे कोई पेड़ के तने में लिपटकर कहे कि पेड़ जबर्दस्ती लपेटे हुए है, वही दशा बन्धनग्रस्त मनुष्यों की है।

बुद्धिमान् को उचित है कि बन्धन के कारण स्वरूप अवास्तविक शोक मोह को, कर्म की सकामना को त्याग दे। ईश्वर को साक्षी रखकर ऐसा करने पर बन्धन आप ही कट जाता है, बिना कारण के कार्य का उद्भम कहाँ से होगा? अहङ्कार जो अभिनिवेश है वह कल्पनामात्र है, अखण्ड विज्ञानघन वस्तु में यह अहङ्कार का आरोप केवल मनोराज्य है। अनुभवियों का कथन है—

अविद्यायोनयो भावा सर्वेऽमी बुद्बुदा इव।
क्षणमुद्भूय गच्छन्ति ज्ञानैकजलधौ लयम्॥

अविद्या से उत्पन्न जितने पदार्थ हैं वे सब जल में बुद्बुदों की तरह उत्पन्न और विलीन होते हैं। मन में किसी संकल्प की कामना हुई और मन का अच्छा या बुरा भाव उस पर जम गया, वही अनुकूल प्रतिकूल भाव राग द्वेष को जन्म देता है। यह अविद्यायुक्त मन जब तक है तब तक राग द्वेष है, सुषुप्ति में मन नहीं रहता तो राग द्वेष भी नहीं रहते। मनुष्य की बुद्धि पर यही एक परदा पड़ा हुआ है जिस से वह असलियत को नहीं जानता, फलस्वरूप भय और अज्ञान उस को दबाये रहते हैं। इस से बचने का उपाय यह है कि बुद्धि और विवेक को चैतन्य किया जाय, चित्त को ऐसा बनाया जाय कि उस में विषयों का प्रबल प्रभाव पड़ न सके, वह किसी से घृणा करे न मोह, न किसी कृतज्ञता पर फूलकर अहङ्कार जताए।

सिद्धान्त यह है कि निष्काम कर्मयोग का अनुष्ठान उपासना और ज्ञान द्वारा प्राणी अपने सब संस्कारों को परिशुद्ध करता हुआ संसार में

रहते हुए ही कर सकता है और जीवत्व को नष्ट करके नित्य शुद्धबुद्ध मुक्तस्वरूप सच्चिदानन्दसत्ता में परिणत होकर सब पुरुषार्थों के अन्तिम लक्ष्य निःश्रेयस पद को प्राप्त कर सकता है। तब उस जीवन्मुक्त सिद्ध का क्रियमाण कर्मसंस्कार स्वरूपज्ञान द्वारा वासनानाश के साथ ही समूल नष्ट हो जाता है, सञ्चित कर्मसंस्कार उस के केन्द्र को छोडकर अनन्तव्यापी महाकाश का आश्रय कर लेता है, केवल विदेहमुक्ति के पहले तक भोग द्वारा क्षय होने के लिए प्रारब्धसंस्कार बचे रहते हैं। वासना का नाश होने के कारण अवशिष्ट प्रारब्धभोग से क्रियमाण कर्म की उत्पत्ति नहीं होने पाती। वह प्रारब्धसंस्कार जब भुने हुए बीजों की तरह जीवन्मुक्त के अंदर रहकर धीरे धीरे क्षय हो जाता है तब जीवन्मुक्त की विदेहमुक्ति में देर नहीं लगती। उस समय बिन्दु जैसे सिन्धु में समा जाय उस तरह उस की आत्मा व्यापक महान् आत्मा में विलीन हो जाती है। प्रकृति के स्वाभाविक परिणाम से जो चित् जड ग्रन्थि बँध गई थी वह यहाँ खुल जाती है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

(मुण्ड० उप०)

जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ समुद्र में मिलने से नाम रूप को छोड़कर अस्त हो जाती हैं, इसी प्रकार अविद्याकृत नाम रूप से विमुक्त होकर विद्वान् पर से पर दिव्य पुरुष के धाम को प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य ससार में ऐसा उच्च जीवन बिताते है वे धन्य होकर फिर बन्धमोक्ष के झगडे में नहीं पड़ते, यही सुख शान्ति का सुन्दर जीवन है।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

अध्यात्मयोग

(श्री अरविंद)

इस योग की चरम उपलब्धि तब होती है जब इस बात का ज्ञान होता है कि समग्र जगत् एक अनन्त भागवत स्वरूप की ही अभिव्यक्ति, क्रीडा या लीला है। जब तुम समस्त भूतों में व्यक्त सृष्टि के आधार नैर्व्यक्तिक सत् आत्मा का ही दर्शन नहीं करते, बल्कि तुम सृष्टिमात्र में श्रीकृष्ण का दर्शन करते हो जो एक ही साथ इस सब कुछ के आधार हैं और इस समस्त व्यक्त और अव्यक्त सृष्टि से परे भी हैं, तभी अध्यात्मयोग मे स्थिति होती है। इस का कारण यह है कि इस सत् आत्मा के परे असत् की निश्चल नीरवता है जिस को बौद्धों ने शून्यरूप में अनुभव किया था, इस निश्चल नीरवता के परे परात्पर पुरुष है।

पुरुषो वरेण्य आदित्यवर्णस्तमसः परस्तात्।

इस परात्पर पुरुष ने ही अपनी सत्ता से इस

जगत् को रचा है, इस में अन्तर्यामी होकर वह बसा है तथा इसे वह धारण किये हुए है। उस ने ऐसा किया है अपने अनन्त और सान्त ईश्वररूप से, उस लीलामय श्री कृष्णरूप से, जो अपने प्रेम से हम सभी को अपनी ओर खींचता है, अपनी प्रभुता से हम सभी को विवश करता है और इस विविध जगत् में सुख, शान्ति, सामर्थ्य सौन्दर्य की अपनी शाश्वत लीला को खेलता रहता है।

यह जगत् उस के सत् चित् आनन्द की एक लीलामात्र है। तुम एक दिन अनुभव करोगे कि यह जड प्रकृति भी कोई जड रचना नहीं है, वह कोई द्रव्य नहीं है, बल्कि चेतना का ही रूप, गुण है, इन्द्रिय-ज्ञान के विषयीभूत हो सकने के गुण का परिणाम है। स्वयं ठोसपन केवल संहति और धृतिरूप गुणों का जुटाव है, सचेतन सत्ता की एक अवस्था ही है। जड पदार्थ (अन्न) सजीव पदार्थ (प्राण), मन बुद्धि और इन से परे भी जो कुछ है वह सब श्री कृष्ण या अनन्तगुण ब्रह्म ही है, जो इस जगत् में सच्चिदानन्दरूप से अपनी लीला कर रहा है। जब हम को यह अनुभूति हो जाती है, जब हम इस में सुरक्षित और स्थायी रूप से निवास करने लगते हैं, तब शोक, पाप, भय, भ्रम, आन्तरिक संघर्ष और दुःख की समस्त संभावनाओं तक को हमारी सत्ता में से निकालकर बाहर कर दिया जाता है। तब हमें उपनिषदों के इस सत्य का साक्षात् अनुभव होता है—

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।

जो कोई ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त कर लेता है उस को संसार की किसी चीज से भय नहीं रहता। इसी के साथ ईशोपनिषद् का यह सत्य भी अनुभूत होता है—

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥

जब विज्ञान को प्राप्त होने के फलस्वरूप समस्त सृष्ट वस्तुएँ उस के लिए आत्मरूप हो जाती हैं तब इस अवस्था में पहुँच कर सब वस्तुओं में एकत्व देखनेवाले के लिए क्या मोह हो सकता है और क्या शोक ? तब हम इस जगत् को दूसरे ही रूप में देखते हैं और यह हम को कल्याण, सौन्दर्य, प्रकाश और आनन्द का सागर दिखाई देता है। यह नजर आता है कि यह एक आनन्दमय प्रवृत्ति है जो शक्ति और शान्ति के आधार पर हो रही है। अब हम सभी वस्तुओं को शुभ, शिव, मङ्गल और आनन्दमय देखते हैं। सभी जीवों के साथ हम एकात्म, 'सर्वभूतात्मभूतात्मा' हो जाते हैं। इस अनुभूति में स्थिर होकर हम इस योग्य हो जाते हैं कि इसे संस्पर्श, एकता और प्रेम के द्वारा दूसरों तक पहुँचा सकें और फलस्वरूप इस ब्राह्मी स्थिति को अपने चारों ओर जगत् में फैलाने के हम केन्द्र बन जाते हैं।

हमें केवल सजीव वस्तुओं में ही नहीं, बल्कि निर्जीव वस्तुओं में भी नारायण का दर्शन होना चाहिए, शिव की अनुभूति होनी चाहिए, शक्ति का साक्षात्कार होना चाहिए। हमारे नेत्र जो इस समय जडता के भाव से अंधे हो रहे हैं, जब परम ज्योति की ओर खुलेंगे तब हम को यह पता लगेगा कि कोई भी वस्तु निर्जीव नहीं है, बल्कि सभी जीवों में व्यक्त या अव्यक्त रूप से, अन्तर्निहित या विकसित रूप से, न केवल चेतना की वह आवृत अवस्था विद्यमान है जिस को हम अन्न कहते हैं, किंतु प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द, चित् और सत् भी विद्यमान हैं। सब वस्तुओं में ईश्वर का स्वात्मचेतन व्यक्तित्व अधिष्ठित है और

अपने ही गुणों का आनन्द लेता रहता है। फूल फल, भूमि धातु आदि सभी वस्तुओ में अपना एक आनन्द है जिस को तुम एक दिन जानोगे, क्योंकि सभी में श्री कृष्ण का निवास है। यह निवास इन के अंदर चेतनरूप से प्रवेश करके हुआ है, जड या भौतिक रूप से प्रवेश करके नहीं, क्योंकि जड या भौतिक जैसी कोई चीज है ही नहीं। देश और काल तो इन्द्रियानुभूति के लिए केवल व्यवस्था और योजनामात्र हैं, ईश्वर की सृष्टिरचने की कला मे हृदय को यथावत् उतार लाने के लिए है, कारण कि—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत् ।

यह संपूर्ण जगत् और इस जगत् के प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ में केवल ईश्वरसत्ता का आवास है।

अध्यात्मयोग के लिए सभी प्राणियों और वस्तुओं में उन का दर्शन होना ही पर्याप्त नहीं है, प्रत्येक घटना, क्रिया, विचार और अनुभव में, अपने आप तथा दूसरों में तुम को उन का दर्शन होना चाहिए। इस उपलब्धि के लिए दो बातें आवश्यक हैं। पहली यह कि तुम अपने समस्त कर्मो के फलों को उन के अर्पण कर दो, दूसरी यह कि स्वयं कर्मों को ही तुम उन के अर्पण कर दो। कर्मफलो के अर्पण कर देने का यह अर्थ नहीं कि तुम्हें कर्मफलो से वैराग्य ले लेना चाहिए, उन से मुँह मोड लेना चाहिए या किसी विशिष्ट लक्ष्य को सामने रखकर कर्म करने से ही इनकार कर देना चाहिए। इस का अर्थ यह है कि कर्म तो अवश्य करने चाहिएँ, पर इस लिए नहीं कि इस से अमुक बात हो या अमुक बात का होना तुम आवश्यक समझते हो। कर्म करना इस लिए आवश्यक है कि यह तुम्हारा कर्तव्य है, इस को तुम्हारी सत्ता का स्वामी तुम से माँगता है और तुम्हें वह करना ही चाहिए, फिर ईश्वर उस का फल जो कुछ भी क्यों न दे। तुम जो कुछ चाहते हो उसे एक तरफ रख देना चाहिए और यह जानने की इच्छा करनी चाहिए कि ईश्वर क्या चाहता है। तुम्हारा हृदय, तुम्हारे आवेग या तुम्हारी अभ्यासगत समतियाँ जिन बातों को ठीक या आवश्यक समझती है उन पर विश्वास मत करो। उन से ऊपर उठ कर गीता के अर्जुन की तरह केवल उसे जानने की चेष्टा करो, जिसे ईश्वर ने ठीक और आवश्यक निर्धारित किया है। इस का दृढ विश्वास करो कि जब तुम अपने कर्तव्य का ठीक तरह से पालन करोगे तब उस के फलस्वरूप जो कुछ ठीक व आवश्यक है वह अवश्य होगा। यदि वह फल तुम्हारी आशा या पसंद के अनुकूल न हो तो भी तुम्हें उपर्युक्त विश्वास को बनाये रखना चाहिए। कारण कि जो शक्ति जगत् का शासन करती है वह कम से कम तुम्हारे जितनी बुद्धिमान् तो है ही और यह नितान्त आवश्यक नहीं है कि उस के शासन में तुम से सलाह ली जाय अथवा तुम को सतुष्ट किया जाय। इस प्रबन्ध की देख रेख ईश्वर रखता है। (क्रमश)



तो यह कथन है कि आपत्तियाँ आती अवश्य हैं। क्योंकि—

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः।
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम्॥

ऐसा कौन है, जिस के वंश में कोई त्रुटि न हो, कौन ऐसा है, जिसे किसी न किसी रोग ने न सता रखा हो, जिस को 'कभी भी विपत्ति नहीं झेलनी पड़ी' ऐसा भी कोई नजर नहीं आता। और ऐसा भी माई का लाल कोई दिखलाई नहीं देता जो सदा सुख के पालने में झूलता रहता हो, या सदा फूलों की शय्या पर ही शयन करता रहता हो। क्योंकि—

सदा न काहू की रही, पिय के गल में बाँह।
ढलते ढलते ढल गई, सब तरुवन की छाँह॥

जो विपत्ति के समय धैर्य धारण कर सकता हो, कठिन से कठिन आफत के आ जाने पर भी जो निर्विकारचित्त रह सकता हो, भर्तृहरि ने उसे महात्मा कहा है, क्योंकि महात्मा के लिए 'विपत्ति में धैर्य धारण करना' प्रकृतिसिद्ध बात मानी गई है।

'अभ्युदये क्षमा'

मनुष्य की स्थिति की इयत्ता की सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती, वह कहाँ से कहाँ पहुँच जायगी, उस की भविष्य में क्या गति होगी, यह नहीं कहा जा सकता। 'स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्' की बात मनुष्य तो क्या देवता भी नहीं बता सकते। बहुत से साधारण स्थिति के मनुष्य महत्त्वपूर्ण पदों को समलङ्कृत करने में समर्थ हो जाते हैं। हम ने बहुत से गली के भिखारियों को सिंहासन के अधिपति होते देखा है। साधुसंस्थानों के महंतों में तो अधिकांश ऐसे ही व्यक्तियों का प्राधान्य है। जिन्हें बोलने का भी शऊर नहीं था, जिन्हें कल भीख माँगने पर उदरपूर्ति के लिए टुकड़ा तक नहीं नसीब होता था वे आज सोने के हौदेवाले हाथी पर चढ़े चल रहे हैं। हमें ऐसे परिवर्तन के लिए कुछ नहीं कहना है। हमें तो शिकायत तब होती है, जब वे अपने अधिकार का दुरुपयोग करने पर उतारू हो जाते हैं। अधिकार को पाकर मनुष्य दुर्बलताओं का इतना बड़ा शिकार हो जाता है कि वह कुछ का कुछ दीखने लगता है। अधिकार पाकर मनुष्य उपकार की अपेक्षा अनुपकार ही अधिक करता है, अभ्युदय पाकर मनुष्य अपनी पूर्वदशा को भूल जाता है। वह 'अभ्युदये क्षमा', सहिष्णुता की शिक्षा को भूलकर 'अभ्युदये उद्दण्डता' का लक्ष्य बन जाता है। अभ्युदयशाली जमींदारों की अन्याय की तलवार गरीब कृषकों के गले को काटती हुई हम नित्य देख रहे हैं। सुनते हैं, खड्गबहादुरसिंह भूपति क्षणमात्र में चाहे जिसे मिटा देने की सामर्थ्य रखता है, उस का क्रोध बड़े गजब का है। इस ने अपनी चलती में बहुतों को जगत्पृष्ठ पर से अशुद्ध अक्षर की तरह सदा के लिए मिटा दिया। फिर कुछ दिन में यह भी सुना कि उसे लँकवा मार गया। अब वह खटिया पर पड़ा सड़ रहा है।

एक आदमी बता रहा था कि काशीजी के सब से बड़े मठ का महंत आजकल भी दिन में घी की मसाल जलाकर चलता है, जब कि साधारण लोगों को घृत दवाई के साथ मिलाकर सूँघने को भी नहीं प्राप्त होता। जम्बू और काश्मीर के महाराज काशी आने पर स्टेशन से पैदल चलकर विश्वनाथजी के दर्शन करते थे, मगर महंतजी अपने पास के मठ से भी पालकी में चलकर विश्वनाथजी की यात्रा करने पधारते हैं। कहिए इसी का नाम क्या 'अभ्युदये क्षमा' यानी अधिकार का सदुपयोग है? जिन के

हाथ में दूसरों की जान माल की रक्षा का भार है, जो तपोमय जीवन व्यतीत करनेवालों के लिये आदर्श जीवन का पाठ पढ़ानेवाले हैं, जो शासनदण्ड हाथ में लेकर दूध का दूध और पानी का पानी कर दिखाने का दम भरते हैं, जो सदा पोथी पत्रों से धर्मतत्त्व खोजकर जनता के समक्ष उपस्थित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले चुके हैं वे कहाँ तक अपने अधिकार का सदुपयोग कर रहे हैं? इसे संसार खूब जानता होगा। मनुष्यजीवन का महत्त्व प्रकृति के अस्थायी, आगमापायी, अशोभन पदार्थों की चकाचौंध में पड़कर अपना कर्तव्य भूल जाने में नहीं है। उस की विशेषता तो अभ्युदय में क्षमा गुण के अपनाने में है। अभ्युदय यानी संपत्तिप्राप्तिकाल में क्षमा, सहिष्णुता धारण करनी और उद्दण्डता का परित्याग करना यह योग्यता महानुभाव पुरुषों में स्वभावसिद्ध बात होती है।

'सदसि वाक्पटुता'

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे समाज में रहना है, वह समाज में रहकर ही सुख पा सकता है। जो अब एकान्तसेवी हैं वे पहले समाज में रह कर ही एकान्तवास के लाभ पर विचार करने का मौका पा सके हैं। किंतु समाज में रहनेवालों में अपने अपने स्वार्थों को लेकर संघर्ष हो जाया करता है, इसी से लड़ाई झगड़े तथा युद्ध प्रभृति अशान्तिप्रद नाना क्लेशों की सृष्टि हो जाती है। समाज में जो चतुर हैं, बुद्धिमान् हैं और दयालुस्वभाव हैं, वे संघर्ष को टालने का यत्न किया करते हैं। किंतु विवादों को वही मिटा सकता है जिस को उभयपक्ष के समझाने की योग्यता हो। जो वाक्पटु होगा, जिस को युक्तियुक्त बोलने की कला का परिज्ञान होगा, वही सभा में स्पष्ट उपस्थित करके उस का समर्थन कर सकता है। मौके बेमौके जो बहुत कुछ बोलता बकता रहता है उस की वाणी की सामर्थ्य नष्ट हो जाने के कारण उस के कहने का किसी पर असर नहीं होता, सभा में वही पुरुष निःशङ्क बोल सकता है जो चरित्रहीन न हो। ऐसा महात्मा सज्जन ही हो सकता है, 'सदसि वाक्पटुता' यानी सभा में बोलने चालने की तमीज महानुभावों की स्वाभाविकता में दाखिल है।

'युधि विक्रमः'

लड़ाई—भिड़ाई से सभी बचना चाहते हैं, इस से सभी को घृणा है। इस से किसी का लाभ नहीं, जो स्वार्थवश झगड़ों से लाभ होना मानते हैं उन को भी इस अनिष्ट व्यापार से अन्त में दुःखित होना पड़ता है। यह ध्रुव सत्य है कि युद्ध द्वारा बलात् आत्मसात् की हुई दूसरों की संपत्ति किसी के पास सदा स्थिर नहीं रह सकती और उस के पानेवाला संतुष्ट नहीं रह सकता। यह सामर्थ्य तो परिश्रमार्जित संपत्ति का है, जो बहुत दिनों तक टिकती है और उस से इष्टसाधन भी होता है। हमारा तो यह अनुभव है कि अन्यायार्जित विभूति सदा पास तो रहती ही नहीं, बल्कि वह अपने साथ और भी कुछ ले जाती है।

हम यह नहीं कहते कि युद्ध लड़े ही न जायँ। वे तो लड़ने ही पड़ेंगे। युद्ध किसी पर आक्रमण कर के शान्तिभङ्ग करने के लिए नहीं लड़ना चाहिए। हाँ, अपने देश पर जो आक्रमण करे वह चाहे जो हो, कितना नामी ग्रामी हो, उस से संमुख युद्ध करनेवाले योद्धाओं के लिए ही यह कहा गया है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः॥

'यह सूर्यमण्डल को भेदन करके योगियों जैसी

ऊँची गति को लाभ करता है। दूसरों को बरबाद करने के लिए नहीं, किंतु सब को आबाद करने के लिए यदि युद्धप्रसङ्ग आ उपस्थित होता है तो उसी के लिए 'युधि विक्रमः' रणाङ्गण में पराक्रम करने को कहा गया है।

जाति तथा देश की रक्षा के लिए अपने खून के तेल से अपनी पसली की हड्डी की बत्ती जलाकर रणचण्डी की आरती उतारनेवालों का ही स्वर्गाङ्गनायें यशोगान किया करती हैं। देश की रक्षा के समय माला और पोथी पत्रे फेंककर जो हाथ में शमसेर लेकर रणभूमि को चारों धामों की यात्रा समझकर अहमहमिकया पहुँच जाया करते हैं, वे ही महानुभाव कहा सकते हैं, मिट्टी और चन्दन के तिलक छाप की जगह जो अपने शरीर से निकले खून का ऊर्ध्व पुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र लगाकर रणदेवता की उपासना करते हैं वे ही मुक्ति (स्वतन्त्रता) पद के असल अधिकारी कहे जा सकते हैं। जो रणभूमिरूप अविमुक्त वाराणसी में जाकर मरनेवालों को अमर समझकर, स्वयं उसी गति को प्राप्त करने की इच्छा से रणक्षेत्र-धर्मक्षेत्र में सोत्साह जाते हैं उन के वरणार्थ अप्सरायें परस्पर विवाद करती हैं। जो परोपकारार्थ अपना खून बहा दे, जो किसी से लड़ाई झगड़ा न करे, जो विवाद के प्रसंग में शान्ति स्थापन करने कराने में सारी शक्ति लगा दे, जो बहुत छेड़े जाने पर भी शान्त बना रहे और जो राष्ट्ररक्षार्थ युद्ध में ज्वालामुखी बन जाय, भयंकर व्याघ्र हो जाय वह महानुभाव कहाता है, क्योंकि 'युधि विक्रमः' यानी राष्ट्रीय युद्ध में आगे बढ़कर पराक्रम दिखाना, राष्ट्ररक्षार्थ अपना जीवन सर्वस्व सहर्ष निछावर करना महानुभाव सज्जनों का स्वाभाविक धर्म है।

'यशसि अभिरुचिः'

लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करनी बड़ी कठिन है, यह योग्यता से प्राप्त होती है, योग्यता तपश्चर्या बिना मिलती नहीं। तपश्चरण संयमी, सदाचारी और विचारवान् ही कर सकते हैं। अभिप्राय यह हुआ कि जिन के नैतिक जीवन उन्नत और उत्तम होंगे, वे ही लोक में यशोलाभ कर सकेंगे। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करके कोई भी नामवरी नहीं हासिल कर सकता, नामवरी कर्तव्य से होती है। जो लोग अपने यशःसौरभ से अपनी जाति या देश को सुगन्धित करना चाहते हैं उन्हें कोई न कोई गुण अवश्य संपादन करना चाहिए। मनुष्य अपनी जीविका के लिए जो काम करता है उस में तो उस को परिश्रमी, बुद्धिमान् और अध्यवसायी होना ही चाहिए। किंतु इस के अतिरिक्त भी उसे एक कोई भी गुण, हुनर जरूर संपादन कर लेना चाहिए। जैसे कोई मनुष्य दुकान का काम करता है तो उस में तो वह पारंगत है ही, साथ ही उसे गान, वाद्य, गणित, पदार्थविद्या, अश्वारोहण, मोटर चलाना, साहित्याभिरुचि आदि किसी भी एक या अनेक विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए। ऐसी स्थिति में मनुष्य यशस्वी होने की प्रथम सीढ़ी पर चढ़ सकता है।

मनुष्य यदि यह सोचकर सभी काम करता रहे कि—'मेरा नाम हो बदनामी न हो' 'मुझे कोई बुरा न बतावे' तो वह बहुत सी खराबियों से बच सकता है। पर साथ ही यह भी सोचना चाहिए कि 'मैं समाज के लोगों की दृष्टि बचाकर यह काम भले ही कर लूँ, समाज की तीव्र आलोचनाओं का लक्ष्य चाहे न बनूँ, पर ईश्वर की दृष्टि से नहीं बच सकता, ईश्वर के न्याय से अपने को नहीं बचा सकता।' ऐसा मनुष्य कदापि कुमार्गगामी नहीं हो सकता, मनुष्य अपने बनाने बिगाड़ने में खुद समर्थ है। जो अपना सुधार चाहते हैं, अपने आप को बनाना चाहते हैं उन के लिए—

अय बन्दे ! तू उठ बाँध कमर क्यों डरता है ?
पर आगे पग फिर देख खुदा क्या करता है ?

इस कहावत के अनुसार परमेश्वर सहायक होकर उसे कार्यक्षेत्र में अग्रसर होने का सामर्थ्य प्रदान करता है। और जो अपने को मिटाने पर तुले हुए हैं उनको—

जिमि कुपंथ पग देत खगेशा।
रहै न तेज बल धी लवलेशा॥

वचनानुसार जान लेना चाहिए कि तेजस्विता, बल और बुद्धि जो सभी कार्यों के साधक हैं, कुमार्गगामी के पास नष्ट हो जाते हैं। यह निश्चय है कि एक प्रारम्भिक पुण्य की कोख में सौ पुण्यों को जन्म देनेवाला बीज निहित है। इसी तरह एक पहले पाप के भीतर हजार पापों के उत्पन्न करने की सामर्थ्य भरी है। जो 'यशसिअभिरुचि' हैं, अपनी कीर्ति चाहते हैं, उन के लिए पापकर्मों में अप्रवृत्ति स्वभावसिद्ध होती है।

'व्यसनं श्रुतौ'

संसार का कोई पदार्थ मनुष्य को मनुष्यता नहीं प्रदान कर सकता, ऐसी कोई शक्ति है तो विद्या है— 'विद्याविहीन पशु' यह कहावत प्रसिद्ध ही है। विद्या मनुष्य के लिए कितनी आवश्यक है, इस पर अधिक कहने की इस लिए आवश्यकता नहीं है कि मनुष्यजीवन के लिए इस की अनिवार्य आवश्यकता को सभी लोग जानते हैं।

हम यह अवश्य कहेंगे कि अपना भला चाहनेवाले को एक क्षण भी गप शप, कलह विवाद या दूसरे खोटे कार्यों में नष्ट न करना चाहिए, अब शतरंज, चौपड, ताश आदि खेलने का समय नहीं। किसी का कहना है कि इन खेलों से मनोरञ्जन के साथ साथ बुद्धि की उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है। यह बात बहुत विचारने पर भी हमारी समझ में नहीं आई, क्या ग्रन्थों के देखने, विचारने तथा मनन करने से भी बढ़कर शतरंज आदि में बुद्धि के विकास करने की सामर्थ्य है ? शतरंज, गंजीफे आदि में किसी एक प्रकृतिवाले पुरुष का चाहे कुछ मनोरञ्जन हो जाय, पर ग्रन्थों में तो सब प्रकार की रुचिवालों के लिए पुष्कल सामग्री भरी पड़ी है। पुस्तकों से शिक्षा मिलती है, शतरंज आदिकों से समय बरबाद होता है। जिन लोगों को ग्रन्थावलोकन करना नहीं आता वे उसे सीख सकते हैं। जो किसी नेत्र व सिर के रोग या अधिक अवस्था हो जाने से ग्रन्थाभ्यास करने में असमर्थ हैं, वे दूसरों से सुन सकते हैं और वैसा ही लाभ उठा सकते हैं जैसा पढ़नेवाले। सब लोगों को स्वाध्याय करना चाहिए चाहे सुनकर करें या पढ़कर।

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥

इन हेतुओं के कारण विद्या का मुकाबला संसार का कोई पदार्थ नहीं कर सकता कि 'अहार्यत्वात्' 'अनर्घत्वात्' 'अक्षयत्वात्', विद्या चुराई नहीं जाती, उस की कोई कीमत आँक कर क्रय विक्रय नहीं कर सकता, तथा देने पर बजाय बढ़ने के घट नहीं सकती। यद्यपि लोक में उन्नति करने के लिए शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या का नाम लिया जाता है, किंतु बुढ़ापे में त्यागी से शस्त्रविद्या का व्यवहार नहीं बन पड़ता, किंतु शास्त्रविद्वान् वृद्धावस्था में भी अधिक अनुभवी होने के कारण श्रद्धा से देखा जाता है।

मतलब यह है कि आपत्ति के समय धैर्य धारण करना, सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर सहनशीलता से काम लेना, सभा में चतुराई से बातें करना, लड़ाई में पराक्रम दिखाना, हमेशा नामवरी हासिल करने

की इच्छा से योग्य काम करना और शास्त्र के पठन पाठन का शौक रखना ये गुण महापुरुषों में स्वभाव से ही होते हैं।

दूसरे लोगो को भी महापुरुषों के उक्त गुणों से लाभ लेना चाहिए। संन्यासी संतों मे एक दूसरे को 'महापुरुष' कहते हैं। जो दूसरे संसारी पुरुषों की अपेक्षा विशेषता रखता है उस को महत्त्व दिया जाता है, इसी से वह महापुरुष कहाता है। भगवान् को भी 'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्' आदि स्तुतिवचनों में महापुरुष कहा गया है। सभी देशों और जातियों में महापुरुषों का अवतार होता रहता है। वे अपने उपदेशो से तथा स्वयं आदर्श बनकर सब का कल्याण करने की भावना से मनुष्यो के लिए एक ऐसा शास्त्रीय सुगम मार्ग बता देते हैं जो सब के लिए सीधा हो, सरल हो।

महापुरुष और उन के गुण सब का कल्याण करते हैं, अतः कहना पड़ता है कि धन्य हैं 'महापुरुष'।

महादेव की महामहिमा

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

इस चातुर्मास्य के आरम्भ में एक आश्रम मे कोई महानुभाव महादेवजी की महिमा के विषय मे इस प्रकार का प्रवचन कर रहे थे—

यों तो बहुत सी उपासनाएँ हैं, किंतु सब में शीघ्रतः फलवती उपासना शंकर महादेव की है। महादेवजी की कृपा से जिन स्थानों और व्यक्तियों की महामहिमा लोक में प्रसिद्ध है, आज हम उन का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को पुण्यशील बनायेंगे—

१—श्री काशीपुरी—

सारी दुनिया में मरना बुरा समझा जाता है, किंतु काशी के मरण को मङ्गल कहा गया है। यह काशी की महिमा है और इस महत्त्व का कारण भगवान् कैलाशपति हैं। जैसे जीवमात्र में मनुष्य, उस मे ब्राह्मण और उस मे भी ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ है, इसी प्रकार पृथ्वी में आर्यावर्त, उस में तीर्थस्थल और उस में भी काशी का स्थान सर्वोत्तम है। क्योंकि यह अविमुक्त क्षेत्र पंचकोशात्मकरूप से विद्या और मुक्ति दोनो का देनेवाला है। जहाँ की विद्या सब तीर्थों के महत्त्व को प्रकाश मे लाती है वह पुरी प्रलयकाल मे भी नष्ट नहीं होती। क्योंकि वह महादेवजी के त्रिशूल पर अवस्थित है, अतएव वहाँ तक प्रलयकाल का अथाह जल और प्रलयाग्नि की ज्वाला पहुँच नहीं पाती। यहाँ विश्वनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग के साक्षात् दर्शनों का लाभ प्राप्त होता है, जो गङ्गा और अन्नपूर्णा के बीच में प्रतिष्ठित है। दूसरे तीर्थों मे जो प्राणी मरता है वह उन तीर्थों की महिमा से काशी मे जन्म ग्रहण करता है, फिर वह काशी मे मरकर मुक्ति को प्राप्त होता है।

व्रजभूमि मे भगवान् कृष्णचन्द्र ने अवतार धारण करके क्या क्या लीलाएँ की, अयोध्या को अपने जन्म से कृतार्थ करनेवाले श्री राजा राम ने कौन कौन चरित्र दिखाये, नैमिपारण्य मे अठासी सहस्र ऋषियों के कैसे कैसे प्रश्नोत्तररूप में सुसंवाद हुए, विन्ध्यक्षेत्र की क्या महिमा है, चारों धाम, बावन अड्डे क्यों

बनाये गये मान्धाता आदि नृपतियों ने कौन सा जनता का उपकार किया, रघु विक्रमादित्य कौन थे, आचार्य शंकर का विज्ञान कैसा है इत्यादि प्रश्नों का उत्तर आप लोग किस आधार पर दे सकते हैं ? और और भी बहुत से ऋषि मुनि भक्त संत साधु वीर आदि प्राचीन समय में हो चुके हैं आप इन के विषय में किसी परिचय से कैसे परिचित हो सकते हैं ? इन सब का ज्ञान करानेवाले शास्त्र हैं गाथाएँ हैं और इतिहास हैं। ये सब आर्यों का परिचय देने वाले हैं इन सब का निर्माण इसी काशी नगरी में हुआ है। जिन ग्रन्थों की रचना यहां नहीं हुई उन के खरे खोटे होने की परीक्षा यहां हुई है। ऐसी यह काशी नगरी है इसे जो यह गौरव प्राप्त हुआ है इस का एकमात्र कारण महादेवजी की महिमा है जो यहाँ के लोगों की बुद्धि में इतनी शक्ति हो सकी है

२—चन्द्रमा के पुत्र बुध ने काशी में बुधेश्वर शिवलिङ्ग स्थापन कर उन की पूजा से यह वरदान पाया था कि तुम्हारा लोक सब नक्षत्रों से ऊंचा होगा तुम्हारे पूजन से बुद्धि का विकास होगा।

(काशी ख० अ० ५)

३—एक समय गरुड़ के पंख अचानक गिर गये यह देखकर आश्चर्यचकित हो विष्णु ने कहा कि वज्र के प्रहार से जिस का एक बाल भी बाँका नहीं हो सकता ब्रह्माण्ड भी जिस के पक्ष पर विफल है उस के पक्ष कैसे गिर गये ? इसी समय उन की दृष्टि तपस्विनी शाण्डिली पर पड़ी। देखते ही विष्णु ताड़ गये कि हो न हो गरुड़ ने इस तपस्विनी का कोई अपराध किया है इसी के शाप से ऐसा हुआ है। भगवान् बोले—देवि गरुड़ ने आप का कौन सा अपराध किया है जिस कारण इसे इतना कठोर दण्ड दिया गया है। तपस्विनी ने उत्तर दिया—इस ने मेरे सामने स्त्रीजाति की घोर निन्दा की है अनेक दोष लगाये हैं और जो मन में आया नि संकोच बक गया मैं इस को सहन न कर सकी। भगवान् ने नम्र स्वर में कहा—गरुड़ का अभिप्राय स्त्रीजातिमात्र की निन्दा करने का नहीं था उस ने स्त्रियों में जो कुछ दुर्बलताएँ होती हैं उन का दिग्दर्शन कराया है वह नारी जाति पर कलङ्क क्या लगायेगा ? आप क्षमा करें तपस्वीजनों को कठोर दण्ड देना शोभा नहीं देता। यह सुन शाण्डिली ने कहा—मेरा कथन कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता जो कह दिया है, वह होकर रहेगा इस का एक ही उपाय है— गरुड़ शंकरजी की उपासना करके उन्हें प्रसन्न करले तो वह पूर्वस्थिति को प्राप्त हो सकता है। यह सुनकर गरुड़ ने विष्णु की आज्ञा से शाकम्भरीक्षेत्र में जाकर गरुडेश्वर महादेव की स्थापना की और शंकर के वरदान से फिर पहले जैसी स्थिति प्राप्त की।

(नागर खण्ड अ० ८१)

४—देवगण नर्मदा के तट पर स्थित ओङ्कारेश्वर महादेव की तपस्या करने से दैत्यसमूह को जीत सके थे। (रेवा खण्ड अ० ४७)

५—चन्द्रमा को दक्षप्रजापति की रोहिणी आदि सत्ताईस कन्याएं ब्याही थीं यद्यपि उन में सभी एक से एक सुन्दरी थीं किंतु चन्द्रमा का प्रेम रोहिणी पर अधिक हो गया उस भेददृष्टि से दुःखित हो अन्य सपत्नियों ने अपने पिता दक्ष से चन्द्रमा को समझा देने को कहा। प्रजापति ने अनेक बार समझाया पर चन्द्रमा न माना। अन्त में प्रजापति ने जो समान श्रेणीवालों में विषमता का व्यवहार करता है वह नरकगामी होता है इस प्रकार फटकार कर चन्द्रमा को यह शाप दे दिया कि तू क्षय रोगग्रस्त हो।

अन्त में चन्द्रमा की इन्द्र आदि देवता और

वशिष्ठ प्रभृति ऋषियों ने यह दुर्दशा देखकर कहा कि जो होना था वह हो गया, अब यह प्रभास तीर्थ में जाकर दिव्य हजार वर्ष तक महामृत्युञ्जय का जप करे, तब इस का 'तपेदिक' रोग दूर हो सकता है, अन्यथा कोई उपाय इस के अच्छा होने का नहीं है। चन्द्रमा के ऐसा ही करने से महादेवजी ने उस का रोग हर लिया। (रेवा खण्ड)

६—एक बार अग्नि को यज्ञों का माल खा खाकर अजीर्ण रोग हो गया। वह किसी तरह अच्छा ही न होता था, अतः वह भृगुकच्छ नामक तीर्थ में जाकर महादेवजी का तप करने लगा। देवताओं ने भी महादेवजी की स्तुति करते हुए कहा कि प्रभो, यह अग्नि हमारा मुख है आप इस का रोग नष्ट कर दें। महादेवजी ने ऐसा ही कर दिया। (रेवाखण्ड)

७—कुबेर के पूर्व जन्म की कथा यों है कि—यज्ञदत्त ब्राह्मण ने अपने गुणनिधि नामक पुत्र को द्यूत आदि का दुर्व्यसनी होने के कारण अपने घर से निकाल दिया। वह भूखा प्यासा भोजन की खोज में एक मन्दिर के दरवाजे पर जा पहुँचा और वहाँ शिवकीर्तन सुनने लगा। रात को सब के सो जाने पर प्रकृतिवश मन्दिर में भोग चुराने को घुसा और अपना कपड़ा फाड़कर बत्ती बनाकर प्रकाश किया। जब भोग चुराकर बाहर निकलने लगा तो पाँव लगने से एक आदमी जाग गया। उस ने चोर के सिर में ऐसी लाठी मारी कि वह वहीं मरकर ढेर हो गया।

उस दीपदान के फल से दूसरे जन्म में वह कलिङ्ग देश का राजा हुआ। पूर्वस्मृति के बल से उस ने राज्य भर के मन्दिरों में दीपदान का प्रबन्ध कर दिया। फिर मरकर वह पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के घर में उत्पन्न हुआ जिस से उस ने महादेवजी की उग्र तपस्या की। महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम अपना अभीष्ट वर माँगो। ऐसा सुमधुर वचन सुनकर जब उस ने आँखें खोलीं तो सब से पहले उस की दृष्टि पार्वती पर पड़ी, वह उसे क्रूर दृष्टि से घूर घूरकर देखने लगा। इस का परिणाम यह हुआ कि उस की बाईं आँख फूट गई, यह दुर्व्यवहार देखकर पार्वती ने कहा कि यह तापस बड़ा दुष्ट प्रतीत होता है जो मुझे बुरी तरह देख रहा है। इस पर महादेवजी ने यों समझाया कि यह तेरा पुत्र है, तुझे आद्याशक्ति समझकर एकटक देख रहा है। इस के बाद महादेवजी ने उसे देवताओं का कोशाध्यक्ष बना दिया। पर कुदृष्टि से पार्वती को देखने के कारण कुबेर नाम पड़ा, बाकी उस का सब ऐश्वर्य महादेवजी की कृपा का फल है। (शिवपुरा० अ० १६२)

८—एक बार यमराज ने मरने पर परलोक गये हुए माण्डव्य ऋषि को पूर्वजन्मार्जित कर्मानुसार शूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया। यह दण्डभोग कर ऋषि ने यमराज के पास जाकर पूछा कि कौन से पाप से आप ने मुझे फाँसी की सजा दी है? यमराज ने कहा—अमुक जन्म में बाल्यावस्था में आप ने अनेक जीवों को शूल की नोक से बींधा था, उन की यातना से आप को नरक भोगना होगा, जिस का एक भाग आप ने शूली का दण्ड भोग लिया है। यह सुनकर अप्रसन्न हो ऋषि ने 'इतने छोटे अपराध पर यह कठोर दण्ड देकर आप ने मेरे साथ घोर अन्याय किया है' यह कह कर यमराज को शाप दिया कि तुम मनुष्ययोनि में चाण्डालजाति को प्राप्त हो जाओ।

यमराज उक्त शाप से मुक्त होने के लिए जगन्नाथ पुरी के कपालमोचन स्थान में जाकर शंकर की आराधना करने लगे। शंकरजी के प्रकट होने पर यमराज ने अपने ऊपर हुई ज्यादती की ओर उन का ध्यान

खींचते हुए कहा कि अपने कर्मफलानुसार माण्डव्य ऋषि को फल भोगना पड़ा, इस में मेरा क्या अपराध था ? फिर भी ऋषि ने मुझे शाप दे दिया।

यमराज के करुणापूर्ण वचनों को सुनकर शंकरजी ने कहा—तपस्वी के वचन वृथा नहीं हो सकते, हाँ, मैं यह कर सकता हूँ कि शूद्रयोनि में रहते हुए भी तुम को ब्रह्मज्ञान बना रहेगा और शूद्रयोनिजनित ग्लानि भी तुम को न होगी। अन्त में यमराज ने एक दासी के घर जन्म धारण किया और उन का नाम विदुर पड़ा, जो बड़े प्रभुभक्त और ज्ञानी हुए। यह कृपा शंकरजी की थी। (मानस खण्ड)

९—इन्द्र ने त्वष्टा ऋषि के पुत्र विश्वरूप को मार डाला। पुत्रवध से दुखी और क्रुद्ध हो त्वष्टा ने दारुण तप करके ब्रह्मा से देवताओं को भयभीत करनेवाले पुत्र होने का वरदान माँगा, जिस से त्वष्टा के घर 'वृत्र' नाम का परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र से बदला लेने के लिए वृत्रासुर ने घोर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। उस के तप को देखकर भयाकुल इन्द्र ने दधीचि ऋषि की हड्डियों के बने वज्र से उसे मार डाला।

वृत्र ब्राह्मण था, अत ब्रह्महत्या इन्द्र के पीछे ऐसी पड़ी कि जहाँ जहाँ इन्द्र गया वहाँ वहाँ उस का पीछा न छोड़ा। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन और विश्वासघात इन महापातकों से बचना कठिन है, इस से दुखित हो इन्द्र सिंहासन और शची को त्यागकर तप करने चले। अनेक तीर्थ, मन्दिर, समुद्र, नदी, तड़ाग आदि में जाने पर भी जब ब्रह्महत्या का दोष दूर न हुआ तो अन्त में इन्द्र ने हिमालय पर्वत पर आकर चान्द्रायण, ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तप, वृष्टि में मैदान में स्थिति, तथा शीत में जलधारावास आदि के द्वारा शंकर की तपस्या में दस हजार वर्ष बिता दिये। जब इन्द्र की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उसे वरदान देने आये तो उस समय वहाँ सभी देवता उपस्थित हो गये, तब बृहस्पतिजी महादेवजी से कहने लगे कि इन्द्र ने देवताओं के कहने से वृत्रासुर को मारा है, फिर भी इन को ब्रह्महत्या लग गई, इसे आप दूर कीजिए।

यह सुन शंकरजी ने ब्रह्महत्या के चार टुकड़े कर दिये। एक भाग नदी में, दूसरा पृथ्वी में, तीसरा रजस्वला स्त्री में और चौथा शूद्रसेवक ब्राह्मण में बाँट दिया। इन्द्र महादेवजी के प्रताप से पहले जैसे ही हो गये। (देवीभागवत)

१०—शुक्राचार्य ने जो दैत्यों के गुरु हैं, अर्बुद पहाड़ पर महादेवजी की घोर तपस्या करके यह वर माँगा—

यदि तुष्टो महादेव विद्यां देहि महेश्वर।
यया जीवन्ति सम्प्राप्ता मृत्युं सर्वेऽपि जन्तवः॥

आप प्रसन्न हैं तो वह विद्या दीजिए जिस से मरे हुए प्राणी जी उठें। शंकरजी के तथास्तु कहने पर उस विद्या के प्रभाव से शुक्राचार्य के शिष्य मरे हुए दैत्य जीवित होकर युद्ध में देवताओं का सामना करने में समर्थ होते थे।

११—बृहस्पति के विषय में कहा गया है कि ब्रह्मा ने सृष्टि करने की इच्छा से मरीचि, अत्रि और अङ्गिरा आदि सात मानसपुत्र उत्पन्न किये, उन में से अङ्गिरा ने काशी में शंकरजी का तप किया। फलस्वरूप महादेवजी ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा तो अङ्गिरा ने कुछ वर नहीं माँगा, केवल यह कहा कि मुझे सिर्फ आप के दर्शनों की इच्छा थी, मैं और कुछ नहीं चाहता। इस पर महादेवजी ने कहा कि ऋषिवर, तुमने बृहद् (बड़ा भारी) तप किया है,

वशिष्ठ प्रभृति ऋषियों ने यह दुर्दशा देखकर कहा कि जो होना था वह हो गया, अब यह प्रभास तीर्थ में जाकर दिव्य हजार वर्ष तक महामृत्युञ्जय का जप करे, तब इस का 'तपेदिक' रोग दूर हो सकता है, अन्यथा कोई उपाय इस के अच्छा होने का नहीं है। चन्द्रमा के ऐसा ही करने से महादेवजी ने उस का रोग हर लिया। (रेवा खण्ड)

६—एक बार अग्नि को यज्ञो का माल खा खाकर अजीर्ण रोग हो गया। वह किसी तरह अच्छा ही न होता था, अत. वह भृगुकच्छ नामक तीर्थ में जाकर महादेवजी का तप करने लगा। देवताओं ने भी महादेवजो की स्तुति करते हुए कहा कि प्रभो, यह अग्नि हमारा मुख है आप इस का रोग नष्ट कर दें। महादेवजी ने ऐसा ही कर दिया। (रेवाखण्ड)

७—कुबेर के पूर्व जन्म की कथा यों है कि—यज्ञदत्त ब्राह्मण ने अपने गुणनिधि नामक पुत्र को द्यूत आदि का दुर्व्यसनी होने के कारण अपने घर से निकाल दिया। वह भूखा प्यासा भोजन की खोज मे एक मन्दिर के दरवाजे पर जा पहुँचा और वहाँ शिवकीर्तन सुनने लगा। रात को सब के सो जाने पर प्रकृतिवश मन्दिर में भोग चुराने को घुसा और अपना कपडा फाड़कर बत्ती बनाकर प्रकाश किया। जब भोग चुराकर बाहर निकलने लगा तो पाँव लगने से एक आदमी जाग गया। उस ने चोर के सिर मे ऐसी लाठी मारी कि वह वहीं मरकर ढेर हो गया।

उस दीपदान के फल से दूसरे जन्म मे वह कलिङ्ग देश का राजा हुआ। पूर्वस्मृति के बल से उस ने राज्य भर के मन्दिरों में दीपदान का प्रबन्ध कर दिया। फिर मरकर वह पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के घर मे उत्पन्न हुआ जिस से उस ने महादेवजी की उग्र तपस्या की। महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम अपना अभीष्ट वर माँगो। ऐसा सुमधुर वचन सुनकर जब उस ने आँखें खोलीं तो सब से पहले उस की दृष्टि पार्वती पर पड़ी, वह उसे क्रूर दृष्टि से घूर घूरकर देखने लगा। इस का परिणाम यह हुआ कि उस की बाईं आँख फूट गई, यह दुर्व्यवहार देखकर पार्वती ने कहा कि यह तापस बड़ा दुष्ट प्रतीत होता है जो मुझे बुरी तरह देख रहा है। इस पर महादेवजी ने यों समझाया कि यह तेरा पुत्र है, तुझे आद्याशक्ति समझकर एकटक देख रहा है। इस के बाद महादेवजी ने उसे देवताओं का कोशाध्यक्ष बना दिया। पर कुदृष्टि से पार्वती को देखने के कारण कुबेर नाम पड़ा, बाकी उस का सब ऐश्वर्य महादेवजी की कृपा का फल है। (शिवपुरा० अ० १९२)

८—एक बार यमराज ने मरने पर परलोक गये हुए माण्डव्य ऋषि को पूर्वजन्मार्जित कर्मानुसार शूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया। यह दण्डभोग कर ऋषि ने यमराज के पास जाकर पूछा कि कौन से पाप से आप ने मुझे फाँसी की सजा दी है ? यमराज ने कहा—अमुक जन्म में बाल्यावस्था में आप ने अनेक जीवों को शूल की नोक से बींधा था, उन की यातना से आप को नरक भोगना होगा, जिस का एक भाग आप ने शूली का दण्ड भोग लिया है। यह सुनकर अप्रसन्न हो ऋषि ने 'इतने छोटे अपराध पर यह कठोर दण्ड देकर आप ने मेरे साथ घोर अन्याय किया है' यह कह कर यमराज को शाप दिया कि तुम मनुष्ययोनि मे चाण्डालजाति को प्राप्त हो जाओ।

यमराज उक्त शाप से मुक्त होने के लिए जगन्नाथ पुरी के कपालमोचन स्थान में जाकर शंकर की आराधना करने लगे। शंकरजी के प्रकट होने पर यमराज ने अपने ऊपर हुई ज्यादती की ओर उन का ध्यान

खींचते हुए कहा कि अपने कर्मफलानुसार माण्डव्य ऋषि को फल भोगना पड़ा, इस में मेरा क्या अपराध था ? फिर भी ऋषि ने मुझे शाप दे दिया।

यमराज के करुणापूर्ण वचनों को सुनकर शंकरजी ने कहा—तपस्वी के वचन वृथा नहीं हो सकते, हाँ, मैं यह कर सकता हूँ कि शूद्रयोनि में रहते हुए भी तुम को ब्रह्मज्ञान बना रहेगा और शूद्रयोनिजनित ग्लानि भी तुम को न होगी। अन्त में यमराज ने एक दासी के घर जन्म धारण किया और उन का नाम विदुर पड़ा, जो बड़े प्रभुभक्त और ज्ञानी हुए। यह कृपा शंकरजी की थी। (नागर खण्ड)

९—इन्द्र ने त्वष्टा ऋषि के पुत्र विश्वरूप को मार डाला। पुत्रवध से दुखी और क्रुद्ध हो त्वष्टा ने दारुण तप करके ब्रह्मा से देवताओं को भयभीत करनेवाले पुत्र होने का वरदान माँगा, जिस से त्वष्टा के घर 'वृत्र' नाम का परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र से बदला लेने के लिए वृत्रासुर ने घोर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। उस के तप को देखकर भयाकुल इन्द्र ने दधीचि ऋषि की हड्डियों के बने वज्र से उसे मार डाला।

वृत्र ब्राह्मण था, अतः ब्रह्महत्या इन्द्र के पीछे ऐसी पड़ी कि जहाँ जहाँ इन्द्र गया वहाँ वहाँ उस का पीछा न छोड़ा। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन और विश्वासघात इन महापातकों से बचना कठिन है, इस से दुखित हो इन्द्र सिंहासन और शची को त्यागकर तप करने चले। अनेक तीर्थ, मन्दिर, दस हज़ार वर्ष बिता दिये। जब इन्द्र की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उसे वरदान देने आये तो उस समय वहाँ सभी देवता उपस्थित हो गये, तब बृहस्पतिजी महादेवजी से कहने लगे कि इन्द्र ने देवताओं के कहने से वृत्रासुर को मारा है, फिर भी इन को ब्रह्महत्या लग गई, इसे आप दूर कीजिए।

यह सुन शंकरजी ने ब्रह्महत्या के चार टुकड़े कर दिये। एक भाग नदी में, दूसरा पृथ्वी में, तीसरा रजस्वला स्त्री में और चौथा शूद्रसेवक ब्राह्मण में बाँट दिया। इन्द्र महादेवजी के प्रताप से पहले जैसे ही हो गये। (रेवाखण्ड)

१०—शुक्राचार्य ने जो दैत्यों के गुरु हैं, अर्बुद पहाड़ पर महादेवजी की घोर तपस्या करके यह वर मागा—

यदि तुष्टो महादेव विद्यां देहि महेश्वर।
यया जीवन्ति सम्प्राप्ता मृत्युं सर्वेऽपि जन्तवः॥

आप प्रसन्न हैं तो वह विद्या दीजिए जिस से मरे हुए प्राणी जी उठें। शंकरजी के तथास्तु कहने पर उस विद्या के प्रभाव से शुक्राचार्य के शिष्य मरे हुए दैत्य जीवित होकर युद्ध में देवताओं का सामना करने में समर्थ होते थे।

११—बृहस्पति के विषय में कहा गया है कि ब्रह्मा ने सृष्टि करने की इच्छा से मरीचि, अत्रि और अङ्गिरा आदि सात मानसपुत्र उत्पन्न किये, उन में से अङ्गिरा ने काशी में शंकरजी का तप किया। फल-

संबन्ध नहीं रहता है। दोनों ही भक्त होते हैं, सिर्फ ईश्वरीय बात करते, ईश्वरीय प्रसंग लेकर रहते और भक्तों की सेवा करते हैं। पर इस तरह होना हो, तो दोनों ही अच्छे भाववाले होने चाहिएँ। दोनों यदि उस ईश्वरसंबन्धी आनन्द को पा चुके हों तभी यह संभव होता है। भगवान् की विशेष कृपा चाहिए, नहीं तो हमेशा पति स्त्री में बेमेल होता है, एक को दूर हटना होता है। यदि दोनों में मेल न हो, तो बड़ी यन्त्रणा, अशान्ति होती है।

३—संसार में रहना हो, तो सुख दुःख भी लगा हुआ है, थोड़ी बहुत तो अशान्ति रहती ही है। काजल की कोठरी में रहने से तन पर कुछ कालिख लगती ही है। हथेलियाँ बजाकर प्रातः और सायं काल 'हरिनाम' भजना चाहिए। (मतलब यह है कि मन की चञ्चलता के कारण ध्यान जप न हो सकने पर भी भगवान् का नामकीर्तन तो सहज में हो जायगा)

४—सभी को, कहने से संसार का त्याग नहीं होता। जिन के भोगों का अन्त नहीं हुआ, उन के लिए ससार का त्याग करना वृथा है। उन को तो निष्काम कर्म करने का प्रयत्न करना चाहिए।

५—संसार करो, उस में दोष नहीं, पर ईश्वर पर मन रखकर करो। यह जानो कि धन संपत्ति, जमीन जायदाद, ठौर ठिकाना, परिवार ये सब तो मेरे नहीं, ये सब ईश्वर के हैं, मेरा तो घरद्वार है ईश्वर के पास। मैं यह कहता हूँ, उन के चरण-कमलों में भक्ति होने के लिए व्याकुल होकर सर्वदा प्रार्थना करो।

६—संसारी लोग यदि हरिनाम लिया करें, तो बहादुरी है। देखो न, जनक राजा खूब बहादुर थे, साथ ही मानों दो तलवार खींचते थे—एक ज्ञान की और दूसरी कर्म की। ऐसे संसारी लोगों को एक ओर रहता है पूर्ण ब्रह्मज्ञान और दूसरी ओर वे सांसारिक कर्म करते रहते हैं।

७—यह बहुत अच्छा है कि धन है, ऐश्वर्य है और भी, ईश्वर को पुकार (मनन कर) रहे हो। गीता में कहा है, जो योगभ्रष्ट हैं, वे ही भक्त होकर धनियों के घर में पैदा हुआ करते हैं,—

"शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।"

—गी॰ ६।४१

८—फिर संसार में रहो, आँधी में जूठी पत्तलों की तरह। आँधी जूठी पत्तलों को कभी मकान के अंदर ले जाती है, तो कभी कूड़े करकट के कारखाने में। हवा जिस ओर बहती हो पत्तल भी उसी ओर जाया करती हैं, कभी अच्छी जगह में गई तो कभी बुरी जगह पर। तुम अब संसार में फेंके गये हो, अच्छी बात है, अब उसी जगह पर रहो; फिर जब वहाँ से उठाकर उस से भी कहीं अच्छी जगह पर वे (ईश्वर) फेंकेंगे, तब जो होगा हो वह होगा। उन पर आत्मसमर्पण (अपने को निछावर) करो। ऐसा हो तो फिर कोई भी गोल माल न रहेगी। तब देखोगे कि वे ही सब कुछ कर रहे हैं, सभी 'राम की इच्छा' है।

९—ईश्वर दो बार हँसते हैं। एक बार तो जब दो भाई आपस में जमीन का बखरा करते और रस्सी से नाप जोखकर कहते हैं कि 'इधर मेरी

जमीन है, उधर तेरी है।' ईश्वर यह सोचकर हँसते हैं कि यह सारा जगत् तो है मेरा; उस की थोड़ी सी मिट्टी लेकर ये झगड़ते हैं कि 'इधर मेरी है, उधर तेरी।' ईश्वर और एक बार हँसते हैं। लड़के का रोग दुःसाध्य (कठिन) है। माँ रो रही है, वैद्य आकर कहते हैं—"डर क्या है? माई, मैं अच्छा कर दूँगा।" वैद्य नहीं जानते कि ईश्वर यदि किसी को मारें, तो किस का साध्य (शक्ति) है कि उसे रक्षित करे?

१०—पङ्क में रहनेवाली मछली की तरह रहो। वह पङ्क में रहती है, पर वह बदन में नहीं लगता। ईश्वर के ऊपर मन को स्वच्छ रखकर संसार के सारे काम निकालो।

११—सभी काम काज करोगे, पर मन ईश्वर की ओर रखना। स्त्री, पुत्र, बाप, माँ सभी को लेकर रहोगे और उन की सेवा भी करोगे, मानों वे कितने हो अपने हैं, परंतु मन ही मन जानना कि वे तुम्हारे कोई नहीं। बड़े अमीर आदमी के घर की नौकरानी सब काम काज करती है, पर उस का मन देश में अपने ही घर की ओर पड़ा रहता है। इधर वह प्रभु के बालबच्चों को अपने बच्चों की तरह पालती है और कहती है 'मेरा राम' 'मेरा हरि'। पर अपने मन में भली भाँति जानती है कि 'ये मेरे कोई नहीं हैं'। संसार में सब कर्म करोगे, पर अपने ही घर की ओर, अमीर के घर की नौकरानी की तरह, अपना मन ईश्वर की ओर लगा रखना।

१२—चैतन्य (ज्ञान) लाभ के बाद जाकर संसार में रहो। बहुत उद्यम कर यदि किसी को सोना मिले, तो वह उस सोने को मिट्टी में दबा रख सकता है, बक्स के भीतर रख सकता या जल के अंदर भी रख दे सकता है, पर सोने का कुछ नहीं होता। मैं कहता हूँ, अनासक्त होकर संसार करो। हाथों में तेल लगाकर कटहल तोड़ो, तो हाथों में कटहल का लासा नहीं लगेगा। कच्चे मन को संसार में रख छोड़ने से मन मलिन हो जाया करता है। ज्ञानलाभ कर तब संसार में रहना चाहिए। शुद्ध जल में भी दूध रखने से नष्ट हो जाता है। उसी दूध का मक्खन उठाकर जल के ऊपर रख छोड़ने से फिर कोई डर नहीं रहता।

१३—संसार में—विशेष कर कर्मों के भीतर-रहकर पहले पहल मन स्थिर करने में बहुत ही विघ्न होते हैं। जैसे, मार्ग के पार्श्वस्थ पेड़; जब अङ्कुर-रूप में रहते हैं, तब उन्हें घिराव में घिरे हुए न रखने से गायें, बकरें खा लेते हैं। उन्हें पहली अवस्था में घेरे में रखना होता है। प्रकाण्ड हो जाने पर फिर घिराव की आवश्यकता नहीं रहती। तब तो उस मोटे प्रकाण्ड में हाथी बाँध छोड़ने से भी पेड़ का कुछ नहीं बिगड़ता है।

(क्रमशः)



मृत्यु

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

मरण का भय जीवमात्र को होता है, इस को शास्त्रीय परिभाषा में अभिनिवेश कहते हैं जो कि पाँच क्लेशों में एक है। हर एक जीव को जो दुःख उठाने पड़ते हैं उन में से मौत का दुःख सब से अधिक होगा ऐसा मालूम पड़ता है। क्योंकि यह बात केवल अनुमान के ऊपर निर्भर है, मुमूर्षु, म्रियमाण या मृत व्यक्ति का चेहरा देखकर अनुमान किया जा सकता है कि मृत्यु कोई भयानक घटना है। वस्तु वस्तु वह क्या चीज है यह तो मृत व्यक्ति ही जान सकता है अथवा नहीं भी जान सकता, क्योंकि कहा जाता है कि मृत्यु के अव्यवहितपूर्व क्षण में उस व्यक्ति को मूर्च्छा घेर लेती है। इस दशा में वह भी मौत का स्वरूप नहीं जान सकता। जो कुछ हो, मृत्यु के डर का अपलाप नहीं किया जा सकता।

यह बात सर्वजीवसंमत होने पर भी दार्शनिक पण्डितों का मत इस के विपरीत है, इस का मुख्य कारण यह है कि पण्डितों की राय यह है कि मृत्यु के पश्चात् दूसरा जीवन लब्ध होता है। मृत्यु होने से ही जीवन का अन्त न समझ लेना चाहिए। जिस विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता उस के बारे में मतभेद होना तो स्वाभाविक ही है। इस मतामत का झगड़ा तो अनन्त है इस लिए भगवान् के वचन का आप्तवाक्य मानकर यह समझना चाहिए कि आगे पुनर्जन्म अवश्य है और यह मान लेने पर सुदीर्घकाल से चली आई जन्मान्तरवाद की परंपरा सिद्ध हो गई। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन का यह विचार है कि यह शरीर ही सब कुछ है। उन की तर्कना यह है कि मृत्यु होकर जब सब शरीर नष्ट हो गया तो फिर बाकी आत्मा आदि कुछ नहीं रहता। ये लोग भी एक श्रेणी के दार्शनिक कहलाते हैं। यह मत सब देशों और सब कालों में रहा है। भारतवर्ष में इस के प्रधान एवं प्राचीनतम आचार्य चार्वाक नामक कोई महापण्डित थे। इस दल के लोग आजकल नास्तिक कहलाते हैं। उन के अनुयायियों को छोड़कर क्या सभ्य, क्या असभ्य प्राय सब लोगों का यह विश्वास है कि यह देह जीवन का अधिष्ठानमात्र है। जन्म और मरण जीवात्मा के साथ शरीर का योग होना और वियोग होना ही कहलाता है। एक शरीर नष्ट होने के बाद जीवात्मा का अत्यन्त नाश नहीं होता, एक देह के नष्ट हो जाने पर जीव दूसरे में प्रवेश करता है। वर्तमान समय में यही मत सब को ग्राह्य हो गया है, यहाँ तक कि पाश्चात्य देशों में भी लोग प्रकृतिवाद को धीरे धीरे छोड़कर विश्वास करने लगे हैं कि मृत्यु के बाद भी जीवन है। वे लोग अपने अध्यवसाय द्वारा मृत व्यक्ति का दर्शन तक कर लेते हैं तथा बात चीत का सम्बन्ध भी स्थापित होते सुना गया है। कहाँ तक कहा जाय, वहाँ के पण्डितों ने इस मसले की अधिक गवेषणा करने के लिए एक वैज्ञानिक शाखा स्थापित की है जिस का मुख्य काम यह है कि मृत्यु के पश्चात् होनेवाली बातों का अनुसंधान इस जीवन में ही कर लिया जाय। इस विषय में गीताकार का मत बता देना अनुचित न होगा—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

—गी० २।२२

जैसे कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये ग्रहण करता है वैसे ही शरीर का स्वामी आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर धारण कर लेता है।

किंतु यह विषय इतना सहज बोधगम्य नहीं है जितना मालूम होता है। इस की विशेष मीमांसा कपिल मुनिजी के सांख्य दर्शन में की है, उन का सिद्धान्त और वेदान्त का सिद्धान्त एक ही है। कहना न होगा कि इस से गीताकार की भी इस में संमति है।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

—गी० २।२०

अर्थात् जन्म मृत्यु मिथ्या ही है। इसी हेतु से अविद्यमान वस्तु का डर भी अलीक अयौक्तिक है। तात्पर्य यह है कि मृत्यु डरने की वस्तु नहीं है, इस विषय में योगवाशिष्ठ से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

'वशिष्ठजी का कहना है कि मृत्यु से डरना तो बिल्कुल मूर्खता है, क्योंकि मौत का दो में से एक ही अर्थ हो सकता है, या तो मरने पर मनुष्य का सर्वथा नाश हो जाना या मृत्यु के बाद उसे दूसरा जीवन मिलना। इन दोनों बातों में से जो भी हो अच्छी ही है। अन्त ही हो गया तो डर किस बात का? चलो सब आफतों और मुसीबतों से सदा के लिए छुट्टी मिली; जीवन का, जिस में नाना प्रकार के क्लेश सहने पड़ते हैं, झंझट ही मिटा। ऐसा होने से अफसोस किस बात का और डर किस बात का है? मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता बल्कि एक शरीर को छोड़कर दूसरे में प्रवेश होता है तो फिर भी डर या अफसोस क्यों हो? पुराने और रोगी शरीर को छोड़कर नये में प्रवेश करना किस को बुरा लगता है? यह तो ऐसा ही है जैसा कि फटे पुराने कपड़ों को फेंककर नये कपड़े पहनना अथवा पुराने, टूटे फूटे मकान को छोड़कर नये मकान में प्रवेश करना। ऐसा होने पर तो दुःख के बजाय सुख ही मानना चाहिए। अगर मौत से प्राणी का सर्वथा नाश हो जाता हो और मरकर फिर किसी प्रकार का जीवन न हो तो इस से बढ़कर कौन सा लाभ है? क्योंकि तब तो संसार के सभी दुःखों से छुटकारा मिल गया; होने न होने या लेने देने के ज्वर की शान्ति हो गई। ऐसी मौत ही तो सच्चा जीवन है, क्योंकि उस के बाद न सुख है न दुःख। मृत्यु के पीछे जीव को यदि दूसरे नवीन शरीर की प्राप्ति होती है तो बहुत ही हर्ष का अवसर है, क्योंकि तब तो मौत का अर्थ शरीर का ही नाश है। ऐसा होने पर तो सुखी होना चाहिए, एक शरीर को छोड़कर यदि दूसरा शरीर मिलता हो तो बहुत ही खुशी की बात है; मरने पर तो आनन्द ही होना चाहिए न कि अफसोस।' यद्यपि आत्मा के अस्तित्व का कभी लोप नहीं होता तथापि उस का जन्म मरण अवश्य होता है, यह मानकर उपर्युक्त बातें कही गई हैं।

वास्तव में जन्म मरण का अनुभव होना आत्मा को अज्ञानमूलक है; गीता के मत से आत्मा अशोच्य है; कारण, प्राणमय कोष का आना जाना ही जन्म व मृत्यु कहा जाता है। पाठकों को यह कहना अना-

वश्यक है कि उपर्युक्त उद्धरणों में मन्थ से श्लोक इत-स्तत चुन लिए गये हैं, अब उपसंहार में वैसे ही श्लोक लेकर यह दिखाया जाता है कि आत्मा के लिए जीवन मरण दोनों मिथ्या घटनाएँ हैं।

चेतन पुरुष (आत्मा) न कभी जन्म लेता है न मरता है, भ्रम के कारण स्वप्न की नाईं इन सब बातों का अनुभव करता है। पुरुष तो चेतनामात्र है, यह कब और कहाँ नष्ट होता है ? चेतना के अतिरिक्त पुरुष में और क्या है ? लाखों शरीरों का नाश होता रहता है, लेकिन चेतन आत्मा तो अक्षय स्थित रहता है। कौन ऐसा जीव आज तक मरा है जिस की चेतना किसी प्रकार नष्ट हो गई हो ? वास-नाओं की नाना रूपों में तबदीली होने का नाम ही जीवन और मरण है। न कोई मरता है न उत्पन्न होता है, केवल अपनी वासनाओं के भँवरवाले गड्ढे में गिरकर लोट पोट होता रहता है।

यदि आत्मा का जन्म मरण मिथ्या कायम हुआ तो बन्ध मोक्ष भी सुतरां वैसे ही हैं। आत्मा के बन्धन का अभाव बहुत सुन्दर रूप से कपिलजी ने अपने सांख्य दर्शन में विशद किया है, किसी आगामी अङ्क में उस का विचार पाठकों के सामने रक्खा जायगा।

पुकार

(र०—श्री लक्ष्मीप्रसाद त्रिपाठी 'अकिञ्चन')

हम प्रभु के लघु पामर चाकर।

प्रभुसेवा की आश लगाए, दृगकोरों में प्यास जगाए।
जगजीवन के कण्टक पथ पर, आहत विवश बढ़ रहे सत्वर॥
पदपङ्कज की विमल चाकरी, में रख लो अब तो करुणाकर।
हमें न विभव बनीजी देना, हमें न इष्ट रहा सुख लेना॥
इस काया की नाथ धरोहर, श्री पद पर अर्पित कर देना।
पावन पदनख की मृदु आभा, दो अरण्य आनँद का निर्झर॥
प्यास लिए था रोता आया, अब तक बुझा उसे ना पाया।
नित ठोकर पर ठोकर खायी, भ्रम की गाँठ खोल ना पाया॥
प्राणपथिक अब तो अकुलाकर, रहा पुकार थकित दुखकातर।
मध्य मार्ग के दुगम तट पर, विश्वम्भर मनमोहन नटवर॥
ले करुणा की पावन झोरी, नाथ करो, कर बद ठिठोली।
दीन 'अकिञ्चन'—सकल पुकारें, निज पद सेवा में अपनाकर॥

सती और संतोषी

(ले०—श्रीमती विभूति देवी अध्यापिका)

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।'

किसी नगर में एक बहुत बड़े सेठ रहते थे। उन के घर में सात पुत्र, सात पुत्रवधू, स्वयं सेठजी, सेठानी और एक साधु, इस प्रकार सत्रह प्राणियों का कुटुम्ब था। एक समय उस देश के एक प्रसिद्ध ज्यौतिषी ने सेठजी से आकर कहा—'सेठजी! बड़ा भारी अकाल पड़नेवाला है, बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होगी, अन्न बिना देश उजाड़ हो जायगा। कहाँ तक कहूँ, योग भयानक पड़े हैं, उन के फल से बारह कोस दूर भी मुश्किल से दीया जलेगा।' यह फलादेश सुनकर बनिये के होश उड़ गये। दुर्भिक्ष की विभीषिका से बचने के लिए सेठ ने अन्न का बहुत बड़ा संग्रह किया और अपने घर में आज्ञा दी कि आज से मेरे सब कुटुम्बी लोगों को दो दो रोटी नित्य मिला करेंगी। बारह वर्ष तक सब लोगों को इतने आहार पर ही निर्वाह करना होगा, अब अनेक व्यञ्जन खाकर शरीर पुष्ट करने का प्रश्न नहीं है, सवाल है येन केन प्रकारेण जीवित रहने का, अतः सब को कड़ाई से इस व्यवस्था का पालन करना होगा।

सेठ का यह हुक्म सुनकर क्रमशः छः पुत्रवधुओं ने कुटुम्ब का भोजन पकाना छोड़ दिया, उन्होंने कहा कि हम लोग, इस नियम से रोटी बनाकर गिनती से नहीं खिला सकतीं। यदि किसी ने दो रोटियों से अधिक रोटी माँग ली तो हम उस को क्या कहेंगी, क्या करेंगी? हम से इन्कार करते नहीं बनेगा। अधिक देने पर सेठजी की आज्ञोल्लङ्घन का दोषी होना पड़ेगा इस से रसोई बनाना हमारे काबू के बाहर की बात है। किंतु सतवंती पतिव्रता छोटी बहू ने रोटी बनाना स्वीकार कर लिया। घर में और तो सब लोग दो दो रोटी खाकर उठ जाते थे, किंतु उस सब से छोटी बहू का पति बड़ा जवान था, वह दो रोटी खाने पर भी भूखा रह जाता था, इस से और रोटी माँग लेता था। तब वह भाग्यवाली अपना हिस्सा भी उसे दे देती थी, इस तरह अपना भाग पति को खिलाकर आप बर्तनों को धोकर पी लेती थी।

उधर सेठ के मकान के बाहर बगीचे में शिवालय के पास कुटिया में जो साधुजी रहते थे, उन के पास एक साधु आ गया। पहला साधु दूसरे को एक रोटी देकर दूसरी स्वयं खाता था। एक दिन कोई तीसरा साधु आ गया। पहले साधु ने अपने भाग की रोटी उसे खिलानी शुरू की और आप जंगली फलों तथा पत्तों के रस पर निर्वाह करने लगा। यह साधु हृषीकेश के तपोवन में रह चुका था, वहाँ भी अन्नछत्रवाले प्रत्येक साधु को प्रति दिन दो रोटी देते हैं। इस प्रथा को माधुकरी कहते हैं, उसी तरह यहाँ भी साधुजी को सेठ के घर से दो मधुकरी नित्य मिला करती थीं।

इस प्रकार निर्वाह करते जब एक वर्ष व्यतीत हो गया तो एक दिन खूब जोरों से पानी बरसा। यह देखकर साहूकार ने आश्चर्य करते हुए ज्योतिषीजी को बुलाकर पूछा कि क्या कारण है जो वृष्टि हो गई? आप तो कहते थे कि बारह वर्षों तक पानी नहीं बरसेगा। क्या शास्त्र झूठे हैं या आप अनभिज्ञ हैं? आप का फलादेश आज तक कभी मिथ्या नहीं हुआ,

आप का गणित और फलितज्ञान बहुत ऊँचा है। आप की पण्डिताई सची है, इस पर मुझे पूर्ण विश्वास है, क्योंकि अनेक बार मैं ने आप की योग्यता का परिचय पाया है, पर इस बार आप से यह भारी भूल कैसे हो गई ? यह सुनकर कुछ सोच विचार करने पर ज्योतिषीजी ने जवाब दिया—'तुम्हारे घर में जो सब से छोटी बहू है वह पतिव्रता है, बर्तनों का धोवन पीकर जीवित रहती हुई तुम्हारे सारे परिवार की सेवा कर रही है। और तुम्हारे मकान के बाहरवाले बगीचे की कुटिया में जो साधुनी रहते हैं वे परम संतोषी हैं। वे अपनी दोनों रोटियाँ साधुओं को खिलाकर आप वन्य कन्द फलों से निर्वाह करते हैं। इन सती स्त्री और संतोषी साधु के तप प्रभाव से यह सुवृष्टि हुई है।

कहने का भाव यह है कि जो स्त्रियाँ सती हैं तथा जो सत संतोषी हैं, वे जहाँ रहेंगे, उस परिवार या देश को कभी कष्ट नहीं हो सकता। ऐसे ही पुरुषों से जमीन आसमान टिके हुए हैं, नहीं, तो आकाश में खंभे तो लगे नहीं है और न जमीन किसी खूँटे से ही बँध रही है। ये ही स्तम्भ और आधार हैं। किंतु सही अर्थ में स्त्री को सती होना चाहिए। पर सती के माने यह नहीं कि कठपुतली की तरह हर बात में पति का मुँह जोहती रहे, पति न खाये तो आप भी न खाय, चाहे पतिदेव जूआ खेलने में ही क्यों न व्यस्त हो। पुरानी रूढ़ियों के साथ स्त्रियों में परिष्कृत पातिव्रत्य की भी आवश्यकता है।

ऐसी पतिव्रता सती वे हैं जो सब से पहले अपने स्वरूप को पहचानती हैं, अपनी मर्यादा पर स्थित हैं, अपने नियमों को पालती हैं, घर को स्वर्ग बनाने में स्वतन्त्र हैं, कुटुम्ब को एकसूत्र में माला की तरह गूँथने में चतुर हैं। योग्य पतियों का चुनाव करने की स्वतन्त्रता भी सतियों में देखी जाती है। सीता, पार्वती, द्रौपदी प्रभृति ने अपने पतियों का स्वयं वरण किया था। सावित्री ने पतिदेवता का स्वयं वरण ही नहीं किया, बल्कि उसे मृत्यु के आक्रमण से भी छुड़ाया था। सती स्त्रियाँ अपने पतियों को कुमार्ग पर नहीं जाने देतीं, वे उन को दुर्व्यसनों से हटा देने में लाचार नहीं, समर्थ होती हैं। जिस में कुटुम्बसेवा का साहस हो, जो आप न खाकर दूसरों को खिलावे, जो अपने पर कुदृष्टि करने वालों की आँखें निकालकर पाँवों तले कुचलने की सामर्थ्य रखती हो, जो सुपतियों की धर्मपत्नी हो, जो धूर्त कामी पतियों के लिए काली नागिन हो और सत्पतियों के लिए जिस की आँखें फूलों की पँखड़ियों की तरह चरणों के नीचे बिछ जायँ उस को सती कहते हैं। जिस की वाणी कुवाच्य से दूषित न हो, जिस का पाप से हृदय कलुषित न हो, जिस की तरफ कुदृष्टि करके आततायी निःशङ्क ताकने की ताकत न ला सकता हो वह सती है। ऐसी सती जहाँ होगी वहाँ वृष्टि न हो, वहाँ अकाल पड़ जाय, ऐसा कैसे हो सकता है ?

इसी तरह संतोषी वे हैं जो दूसरों के लिए ही सब कुछ किया करते हैं। जिन का अपना कोई स्वार्थ न हो, प्रत्युत परार्थ ही जिन का स्वार्थ हो, जो दूसरे के पसीने की तरह अपना खून खर्च कर दे, जो आप भीग कर दूसरों को छाया में कर दे वह संतोषी है।

जो हाथ पर हाथ धरे बैठा हो, हरदम मुर्दे की तरह पड़ा रहता हो, जहाँ पड़ा है, जिस दशा में पड़ा है उसी में संतुष्ट हो रहता हो वह संतोषी नहीं है। वह तो आलसी है, दरिद्रियों का राजा है। अर्जुन ऐसा ही होने जा रहा था, इस पर भगवान् से न रहा गया, उसे फटकारकर कहा—

सती और संतोषी

(ले०—श्रीमती विभूति देवी अध्यापिका)

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।

किसी नगर में एक बहुत बड़े सेठ रहते थे। उन के घर में सात पुत्र, सात पुत्रवधू, स्वयं सेठजी, सेठानी और एक साधु, इस प्रकार सत्रह प्राणियों का कुटुम्ब था। एक समय उस देश के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने सेठजी से आकर कहा—'सेठजी! बड़ा भारी अकाल पड़नेवाला है, बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होगी, अन्न बिना देश उजाड़ हो जायगा। कहाँ तक कहूँ, योग भयानक पड़े हैं, उन के फल से बारह कोस दूर भी मुश्किल से दीया जलेगा।' यह फलादेश सुनकर बनिये के होश उड़ गये। दुर्भिक्ष की विभीषिका से बचने के लिए सेठ ने अन्न का बहुत बड़ा संग्रह किया और अपने घर में आज्ञा दी कि आज से मेरे सब कुटुम्बी लोगों को दो दो रोटी नित्य मिला करेंगी। बारह वर्ष तक सब लोगों को इतने आहार पर ही निर्वाह करना होगा, अब अनेक व्यञ्जन खाकर शरीर पुष्ट करने का प्रश्न नहीं है, सवाल है येन केन प्रकारेण जीवित रहने का, अतः सब को कड़ाई से इस व्यवस्था का पालन करना होगा।

सेठ का यह हुकुम सुनकर क्रमशः छ पुत्रवधुओं ने कुटुम्ब का भोजन पकाना छोड़ दिया, उन्होंने कहा कि हम लोग, इस नियम से रोटी बनाकर गिनती से नहीं खिला सकतीं। यदि किसी ने दो रोटियों से अधिक रोटी माँग ली तो हम उस को क्या कहेंगी, क्या करेंगी? हम से इन्कार करते नहीं बनेगा। अधिक देने पर सेठजी की आज्ञोल्लङ्घन का दोषी होना पड़ेगा इस से रसोई बनाना हमारे काबू के बाहर की बात है। किंतु सतवंती पतिव्रता छोटी बहू ने रोटी बनाना स्वीकार कर लिया। घर में और तो सब लोग दो दो रोटी खाकर उठ जाते थे, किंतु उस सब से छोटी बहू का पति बड़ा जवान था, वह दो रोटी खाने पर भी भूखा रह जाता था, इस से और रोटी माँग लेता था। तब वह भाग्यवाली अपना हिस्सा भी उसे दे देती थी, इस तरह अपना भाग पति को खिलाकर आप बर्तनों को धोकर पी लेती थी।

उधर सेठ के मकान के बाहर बगीचे में शिवालय के पास कुटिया में जो साधुजी रहते थे, उन के पास एक साधु आ गया। पहला साधु दूसरे को एक रोटी देकर दूसरी स्वयं खाता था। एक दिन कोई तीसरा साधु आ गया। पहले साधु ने अपने भाग की रोटी उसे खिलानी शुरू की और आप जंगली फलों तथा पत्तों के रस पर निर्वाह करने लगा। यह साधु हृषीकेश के तपोवन में रह चुका था, वहाँ भी अन्नछत्रवाले प्रत्येक साधु को प्रति दिन दो रोटी देते हैं। इस प्रथा को माधुकरी कहते हैं, उसी तरह यहाँ भी साधुजी को सेठ के घर से दो मधुकरी नित्य मिला करती थीं।

इस प्रकार निर्वाह करते जब एक वर्ष व्यतीत हो गया तो एक दिन खूब जोरों से पानी बरसा। यह देखकर साहूकार ने आश्चर्य करते हुए ज्योतिषीजी को बुलाकर पूछा कि क्या कारण है जो वृष्टि हो गई! आप तो कहते थे कि बारह वर्षों तक पानी नहीं बरसेगा। क्या शास्त्र झूठे हैं या आप अनभिज्ञ हैं? आप का फलादेश आज तक कभी मिथ्या नहीं हुआ,

साधारण संसारी पुरुष मन में जो भाव रखते हैं उसी के माफिक शब्द बोलते हैं, पर ज्ञानी तपस्वियों के बोलने के माफिक अर्थ जबर्दस्ती बन जाता है। सावित्री को यमराज ने पुत्रवती होने की आशीष दी तो विधि का नियम तोड़कर सत्यवान् को जीना ही पड़ा; प्रभुध्यान में बैठे हुए महात्मा तुलसीदासजी ने अनजान में एक स्त्री को सौभाग्यवती होने को कह दिया तो उस का मृतपति भी उठा। इसी तरह उन्मनी अवस्था में कोई साधु संत किसी को 'ससुर' की गाली दे दे, तो वह निपुत्री हो तो भी पुत्रवान् बनकर लड़के के विवाह में ससुर होने का सौभाग्य पा जायगा। अस्तु सत्य वाणी को हित बोलने के लिए जो भगवान् कहते हैं उस का और सत्यगुण का फल तब प्रकट होता है जब तदनुसार शिक्षा उपदेश, प्रवचन और अध्यापन द्वारा लोगों का उपकार किया जाता है, अथवा यज्ञ आदि की सिद्धि से सर्वलाभकारक अपना भी हित होता है। हित के बाद वाणी का प्रियता गुण है जिस के व्यवहार से सर्वप्रियता और सम्मान तो मिलता ही है यदि मनुष्य पूर्वजन्म के पुण्यपुञ्ज से वाग्देवी का कृपापात्र बन जाय तो कवित्व शक्ति पाकर यश, द्रव्य, व्यवहारज्ञान पावनता और सब सुख की प्राप्ति से साम्राज्यसुख को भी तुच्छ समझता है। इस में और उन्नति हुई तो प्रभु के लीला, गुण नामकीर्तन से अपने व भावुक भक्तों के मानस को आनन्दसिन्धु में मग्न कर सकते हैं और अन्त में प्रभुप्राप्ति करके कृतकृत्य हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि ऐसी सत्यपूत वाणी बोलना सब से बड़ी तपस्या है, इस कामधेनु गौरूप वाणी की उपासना से सब कामना, चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार वाणी के हितत्व गुण का ही एक उत्तम रूप स्वाध्यायाभ्यसन है, स्व=आत्मा के उन्नतिकारक अध्याय-पठन पाठन का अभ्यसन=बिना नागा नियम रखना, यह उस का भाव है। इस लिए स्वाध्याय में विश्व भर की विद्याओं का समावेश होता है और सम्पूर्ण सद्विद्याओं का कोई भण्डार या आधार हो सकता है तो वह साङ्गोपाङ्ग वेद ही है।

सज्जनो, सम्भव है कि वेद का स्वाध्याय तुम्हारे वश की बात न हो, इस के लिए परम कृपालु द्वैपायन (व्यास), वाल्मीकि, तुलसी आदि ऋषियों ने गीताग्रथित महाभारत भागवत, रामायण रच दिये हैं जिन से तुम्हारा काम बहुत सहज हो गया है। इतना स्वाध्याय तुम ढंग से कर लो तो फिर, चाहे तुम भी शूद्र कोई होओ, वेदों के स्वाध्याय की योग्यता या अधिकार अवश्य पा जाओगे। वेदों की पुनरुक्ति ही तो सरलता से इन ग्रन्थों में हुई है। अस्तु, यदि यह स्वाध्याय चाय का आचमन और बीड़ी का अग्निहोत्र करते हुए अखबार पढ़ने में किया जायगा या तिलस्मी उपन्यास, कहानी सिनेमा में समय नष्ट होगा तो इसे भी एक तप कह सकते हैं पर इस का फल खौलती चाय से अधिक झुलसानेवाला और तमाखू से अधिक जहरीला ही होगा यह याद रखो।

भगवान् के बताये हुए ऊपर कथित रीति से यह सोचकर कि 'मैं जो बोल रहा हूँ वह सत्य है, प्रिय है, हित है ?', ये तीन प्रश्न पूछते हुए तथा इन प्रश्नों का उत्तर अन्तरात्मा से अनुकूल मिलने पर भाषण करोगे तो बहुत बक बक करने में वक्त बर्बाद न होगा, इस से तुम्हारी यही अद्भुत शक्ति बढ़ेगी। यह वाङ्मय तप मनुष्य को हर तरह से उन्नति करनेवाला है।



सुखी जीवन

(ले०—पौं० श्री वासुदेवशास्त्री तैलङ्ग, शु० द्वै० वे० विशारद)

शिष्य—आदरणीय गुरुवर्य, एक दिन किसी प्रस्तर मूर्ति को अजायब घर (संग्रहालय) में देखकर मैं ने आप से बड़े कुतूहल से पूछा था कि ये मूर्तियाँ जो इतनी सुदृढ हृष्ट पुष्ट, प्रत्येक अङ्ग के अवयव से गठी हुईं दीखती हैं, क्या वास्तव में प्राचीन पूर्वज ऐसे ही विशालकाय होते थे या यों ही ये मूर्तियाँ शोभार्थ स्थापित हैं ? तब आप ने कहा था कि यह प्रश्न तो प्रत्येक मनुष्य के लिए लाभकारी है और प्रत्येक मनुष्य का इस से अत्यन्त घनिष्ट संबन्ध है, इस पर फिर विचार करेंगे। आज उस का समाधानात्मक उत्तर दीजिए।

गुरु—प्रिय वत्स, जैसा सुन्दर प्रश्न स्वस्थ रहने का तुम ने किया है ऐसा ही एक समय प्रसिद्ध पहलवान 'सेंडो' ने अपने पिता से पूछा था कि ये मूर्तियाँ इतनी गठी हुई, मजबूत, मनोहर और प्रत्येक अङ्ग से चमकती फड़कती मालूम होती हैं। क्या ऐसे मनुष्य भी हो सकते हैं ? तब पिता ने उस की उत्साह एवं उन्नतिपूर्ण बातें सुनकर कहा कि ये मूर्तियाँ उस समय की हैं जब शारीरिक बल तथा आत्मिक बल ही सब कुछ था। उस समय मनुष्य कायिक, वाचिक, मानसिक बल से पूरा भरा हुआ रहता था। इन शब्दों ने दुबले पतले उदासीन 'सेंडो' के शरीर में आश्चर्यकारक बिजली सा प्रवाह पहुँचाया और वह थोड़े दिनों में विश्वविख्यात 'सेंडो' हो गया, जिस का सानी कहीं भी न था। आजकल 'सेंडोव्यायाम' का घर घर प्रचार हो रहा है, क्या तुम भी इसी प्रकार आदर्श पुरुष बनोगे और संसार में अपना उदाहरण छोड़ोगे ?

शिष्य—ऐसा स्वास्थ्य कब और कैसे ठीक हो सकता है यह भी तो कहिए ?

गुरु—नीति पुकार कर कहती है कि 'धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं परम्।' धर्मादि सब इसी शरीर से होते हैं और यही शरीर यदि रोगी हुआ तो हम किसी कार्य के करने में समर्थ नहीं हैं। जब शरीर निरोग एवं हृष्टपुष्ट होगा तो हमारे स्वास्थ्य तथा विचार सबल होंगे और स्मरणशक्ति भी हरी भरी रहेगी। कहावत है कि जैसा शरीर होगा वैसा ही मस्तिष्क भी होगा। प्रत्येक क्षण हम देखते हैं, जो मनुष्य दुखी है, वह चिड़चिडा, उदासीन एवं शरीरसंपत्ति से हीन है, इस के विपरीत जो सुखी है, वह स्वस्थ, तंदुरुस्त है; प्रत्येक कार्य को उछलता कूदता हुआ अच्छे मनोयोग से कर सकता है।

शिष्य—स्वस्थ मनुष्य के क्या लक्षण हैं ?

गुरु—आयुर्वेद में कहा है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

जिस मनुष्य के वात पित्त कफ बराबर हों, अन्न पचानेवाली और भूख लगानेवाली अग्नि ठीक हो, जिस के रस, रक्त, मेदा, अस्थि, वीर्य, मल, मूत्र उचित अवस्था में हों, जिस के आत्मा, इन्द्रिय, मन, प्रसन्न तथा अपने कार्यों में लगे हों वह पुरुष स्वस्थ कहा जाता है।

शिष्य—तब तो बड़े पेटवाले सेठजी और गद्दी तकियों में बैठनेवाले बाबू लोग अवश्य तंदुरुस्त रहते होंगे !

गुरु—नहीं, बड़े मोटे पेटवालों को और जो गद्दी तकियों में पड़े रहते हैं उन्हें स्वस्थ नहीं कह सकते। हम तन्दुरस्त उसी को कह सकते हैं जो ऊपर कहे हुए गुणों से मिलता हो। आरोग्यशास्त्र में कहा है कि दिनचर्या (प्रात से सायं तक के कर्म) रात्रिचर्या (सायंकाल से प्रातःकाल तक के कर्म) एवं ऋतुचर्या (छः ऋतुओं में आहार विहार के नियम) पालने से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है।

'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत' ब्राह्म मुहूर्त में उठकर धर्म अर्थ का चिंतन करना चाहिए, यह ब्राह्म मुहूर्त अदा-जन चार बजे प्रातः रहता है, दिनचर्या का आरम्भ तभी से होता है, अन्य चर्याओं की यही जड़ है।

'स्वल्पाहारः सुखावहः' थोड़ा भोजन सुखकारक है, यह प्रत्येक मनुष्य को ध्यान में रखना चाहिए। जो लोग समझते हैं कि जितना विशेष भोजन करेंगे उतने ही बलवान् होंगे, यह भ्रम है। किसी विशेषज्ञ का कहना है कि अधिक भोजन करनेवाला अपने पास मृत्यु को बुलाता है। भोजन जीने के लिए किया जाता है न कि मरने के लिए।

शिष्य—क्या व्यायाम को भी आप शरीरोपयोग की वस्तु समझते हैं?

गुरु—सुश्रुतसंहिता एक वैद्यक का ग्रन्थ है, उस में व्यायाम के बारे में कहा है कि इस से शरीर में कान्ति, अङ्ग में गठीलापन, स्फूर्ति, आरोग्य आदि प्राप्त होते हैं। और साथ ही जिस का वर्णन सब से पहले किया था वह ब्रह्मचर्य स्वस्थता का विशेष अङ्ग है। उसी से वीर्य जिस को हम शरीर का जीवनरस कहते हैं, तिल में तेल की तरह, फूल में इत्र की तरह शरीर में स्थिर रहता है।

शिष्य—आप ने एक दिन मेरी तबियत खराब हो जाने से उपवास कराया था, क्या यह भी आरोग्य रहने का उपाय है?

गुरु—प्रकृति के अनुसार प्राकृतिक उपचार करना ही आरोग्यप्रद है। एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा, जन्माष्टमी आदि दिनों में उपवास करने का यह फल है कि अन्न से उत्पन्न हुए दोष मिट जाते हैं। इसी को दूसरे प्रकार से हम अपने आप प्राकृतिक दवा करना कह सकते हैं। इस विधि से शारीरिक स्वास्थ्य के स्थिर होने पर शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का आरोग्य प्राप्त होता है और फलस्वरूप तभी हम पूर्ण आनन्द और सुखी जीवन लाभ कर सकते हैं।



प्रेमपद—

(र०—स्वामी श्री गोविन्दहरिजी)

जै गोपाल नन्दलाल कस्तूरी तिलक भाल, सग सखा गोपी ग्वाल श्री राधिका दुलारी।
गोविन्द गोइन्द साम मोरपंख सोहै माथ, मोहिनी मुरली हाथ पीत बसन धारी॥
बिंद्राबन ब्रजधाम कदम्ब कुञ्ज हैं ललाम, यमुना किनारे श्याम विहरत विहारी।
दया दृष्टि देव चहत यशुदा को धन्य कहत, निशदिन मगन रहत प्रेमपद मुरारी॥

शङ्का

(प्रे०—श्री सुदर्शन)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

—गी० २-५३

'नाना प्रकार के वेदवाक्यों से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब समाधिवृत्ति में स्थिर और निश्चल होगी तब समत्वबुद्धिरूप योग तुझे प्राप्त होगा।'

इस श्लोक में निश्चल और अचल शब्द एकार्थक मालूम पड़ते हैं। द्विरुक्ति करने में ग्रन्थकार का क्या अभिप्राय है?

एक प्रश्न यह है कि 'श्रुतिविप्रतिपन्ना' इस विशेषण का अर्थ क्या है? विप्रतिपत्ति मतभेद को कहते हैं, तो क्या श्रुति के विषय में मतभेद होना अच्छा है या न होना अच्छा है? ग्रन्थकार क्या यह चाहते हैं कि अर्जुन की बुद्धि श्रुति के अर्थ के विषय में डाँवाडोल हो जाय?

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

इस श्लोक का अर्थ अन्यवहित पूर्व श्लोक के अर्थ को दृष्टि में रखकर करना चाहिए। वह श्लोक यह है—

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

—गी० २।५२

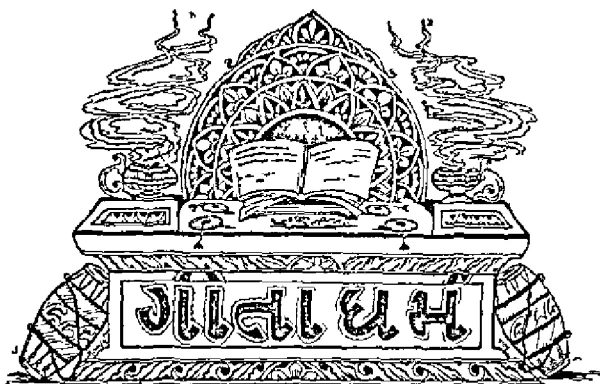
'जब तेरी बुद्धि मोह के दलदल को पार कर जायगी तब तू उन बातों से विरक्त हो जायगा, जो सुनी हैं और सुनने को हैं।'

इस श्लोक में श्रोतव्य और श्रुत का अर्थ क्रम से ऐहिक भोग और पारलौकिक भोग है, जैसा कि दूसरे अध्याय के आठवें श्लोक में अर्जुन ने कहा है—'पृथ्वी का निष्कण्टक समृद्ध राज्य और स्वर्ग के देवताओं का स्वामित्व मिल जाय, तथापि मुझे ऐसा कोई साधन नहीं सूझता जो मेरे मनस्तापी शोक को दूर कर दे।' यहाँ पृथ्वी का राज्य श्रोतव्य और स्वर्ग का स्वामित्व श्रुत समझना चाहिए। ऊपर के श्लोक के बाद ही 'श्रुतिविप्रतिपन्ना०' यह श्लोक आया है, अतएव इस पद का अर्थ यह हुआ कि श्रुति माने श्रोतव्य और श्रुत, तथा विप्रतिपन्न का अर्थ है निर्विण्ण या विरक्त (ऊब जाना)। शङ्काकार यह समझते हैं कि श्रुतिविप्रतिपन्न अर्थात् वेदान्तवाक्यों के अर्थ में मतभेद होना। पर ऐसा अर्थ नहीं है। महामुनि कपिलजी ने अपने दर्शन के चतुर्थ अध्याय में बहुत से दृष्टान्त और आख्यायिकाओं द्वारा मुमुक्षु के लिए सदुपदेश दिया है। वहाँ पर तेइसवाँ सूत्र शङ्काविषयक इस श्लोक के ही अनुसार रचा गया है—

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।

इस का श्लोक के अर्थ से मेल करने पर यह तात्पर्य निकलता है कि बुद्धि को हेय का अर्थात् श्रोतव्य और श्रुत कर्मफल का हान करना चाहिए तथा उपादेय अर्थात् समाधि का उपादान करना चाहिए। इसी लिए निश्चल और अचल दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है; यह द्विरुक्ति सार्थक है निरर्थक नहीं। दोनों का अर्थ यही है कि त्याग में स्थिर बुद्धि हो और योग में भी स्थिर बुद्धि हो। यहाँ पर स्थिर शब्द में भी पुनरुक्ति दोष नहीं, एक स्थिर शब्द का अर्थ है विक्षेप, चलनवर्जित और दूसरे का अर्थ है संदेहरहित। इत्योम्।

સંસ્થાપક —શ્રીમત્પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકમહર્ષિ, ગીતાવ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્‌ગુરૂ, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી, મહારાજ



સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ , અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચ.

વર્ષ ૭ મું } કાશી આકટોબર ૧૯૪૨ { અંક ૧૦ મો

વાગ્દેવીવન્દના.

જય જગદમ્બ જગત સુખકારી,
જય જગદીશ્વરિ માતુ સરસ્વતી જય જગપાલનહારી.
જય જય સુખમયિ જય દુખનાશિનિ સંકટ દેહુ વિદારી,
ચન્દ્રબિંબસમ વદન વિરાજૈ માલાંબર ગલધારી.
વીણા વામ અંક મેં સોહત અદ્‌ભુત શક્તિ તુમ્હારી,
શ્વેત વસન કમલાસન સુન્દર પાવન હંસ સવારી.
જાકે હૃદય વસહુ તુમ માતા તાકી બુદ્ધિ અપારી,
સદા સદય તુમ પૈ રહુ જનની જાનિ અધમ અધિકારી.
'કવલદાસ' ચરનન સિર નાવત દેહુ સુમતિ સુવિચારી,

—મહાત્મા જય ગૌરીશંકર સીતારામજી

એકાગ્રતા

(લે૦—રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

જીવ મિથ્યા કામનાથી રહિત એટલે તદ્દન નિસ્પૃહ થાય છે ત્યારેજ શાન્તિના માર્ગનો રસ્તો જડે છે. મનુષ્ય ઇન્દ્રિયાદિનો સ્વકલ્પિત આનંદ મોહ અને ક્ષણિક સુખના આનંદને જ્યારે નિષ્કામ કર્મોથી નષ્ટ કરે છે અને સંસારિક વાસનાઓથી પર રહે છે ત્યારેજ અંતઃકરણની શુદ્ધિ થાય છે. આ વસ્તુ પ્રથમજ આવશ્યક છે. ત્યાર પછી અમુક અનુભવો થયા પછી એકાગ્રતા થયા પછી અધિકારી થવાય છે.

પરબ્રહ્મ આત્મદર્શનની પ્રાપ્તિ તે આત્યંતિક સુખ છે તે કેવળ બુદ્ધિથી ગ્રાહ્ય અને અતીન્દ્રિય છે, તે અનુભવથી પ્રાપ્ત થાય છે, આ માટે ભગીરથ પ્રયાસની જરૂર છે. આ પ્રયાસો કરવા શારીરિક પ્રયાસોની જરૂર નથી, સંસારિક પદાર્થોની જરૂર નથી, ધનની જરૂર નથી, નાનાં કે મોટાં યંત્રોની જરૂર નથી, પરંતુ આ વસ્તુ પ્રાપ્ત કરવા માટે વિચાર માળાની જરૂર છે, વિચાર કેળવવાની જરૂર છે, બુદ્ધિની જરૂર છે, મનને તેના વેગને સંસારની માયામાં જતો અટકાવવાની જરૂર છે, મનને ભટકતું અટકાવવાની જરૂર છે, એને સ્થિર કરવાની આવશ્યકતા છે. મન સ્થિર કરવું એ નાની સુની વસ્તુ નથી, એ વસ્તુ તો મહાન કઠિન છે. તે કાંઇ બજારમાં મળી શકતી નથી. યાત્રાઓમાં જવાથી, ગામે ગામ ફરવાથી મળવાની નથી, પરંતુ કોઇ વિરલા પુરૂષની શોધમાં જઈ મહાત્માની શોધ કરી તેમની સાથે સત્સંગ કરી, મનન કરી, જ્ઞાનનો અધિકાર મેળવી પછીજ પુણ્યનો ઉદય થાય છે અને ત્યારેજ આ વસ્તુ પ્રાપ્ત થાય છે. જે મહાન પુરૂષ વિરલા-પુરૂષને આ વસ્તુ પ્રાપ્ત થઈ છે તેઓ આ સંસારમાં રહેવા છતાં મસ્ત થઈ ફરે છે. તેઓ નિસ્પૃહી છે, તેઓ માયાવી પદાર્થોની પરવા કરતા નથી અને અનંત જ્યોતિ સ્વસ્વરૂપ આત્માનાં દર્શન અનુભવતાં હરહંમેશ અખંડિત આનંદ અનુભવતાં મસ્ત મને વિચરતા પરમાનંદ સાક્ષાત્કાર મેળવી છેવટે કૈવલ્ય ધામની પ્રાપ્તિ મેળવી જીવન મરણના ફેરામાંથી મુક્તિ મેળવે છે.



સિદ્ધિ

(લે૦—શ્રીમત્પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય બ્રહ્મનિષ્ઠ લોકસંગ્રહી ગીતાવ્યાસ શ્રી ૧૦૮
જગદ્‌ગુરુ મહામણ્ડલેશ્વર સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી મહારાજ)

ઉપાસનાના ફળસ્વરૂપ સાધકને જે સિદ્ધિયો પ્રાપ્ત થાય છે તેમને દત્તાત્રયજીએ અર્જુનને આ પ્રમાણેની કહી છે—

अणिमा महिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च।
प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं च तथा परम्॥
यत्र कामावसायित्वं गुणानेतानथैश्वरान्।
प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परनिर्वाणसूचकान्॥

—मार्क॰ पु॰

અણિમા, મહિમા, લઘિમા, પ્રાપ્તિ, પ્રાકામ્ય, ઈશિત્વ, વશિત્વ અને કામાવસાયિત્વ, પરનિર્વાણના સૂચક આ આઠ ઐશ્વર્યના ગુણોને સાધક પ્રાપ્ત કરે છે

सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरोऽणीयान् शीघ्रत्वाल्लघिमा गुणः।
महिमाशेषपूज्यत्वात् प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत्॥
प्राकाम्यमस्य व्यापित्वात् ईशित्वं चेश्वरो यतः।
वशित्वाद् वशिता नाम योगिनः सप्तमो गुणः॥
यत्रेच्छा स्थानमप्युक्तं यत्र कामावसायिता।
ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा॥

યોગી લોકો સૂક્ષ્મથી પણ સૂક્ષ્મ થઈ જાય છે તેથી તેમનામા અણિમા હોય છે, સર્વના પૂજ્ય હોવાથી મહિમા, હલકા થઇને ગમે ત્યાં પહોંચી જતા હોવાથી લઘિમા, તેમને ન પ્રાપ્ત થઈ શકે એવી કોઈ વસ્તુ નહિ હોવાથી પ્રાપ્તિસિદ્ધિ, તેઓ સર્વત્ર વ્યાપ્ત થઈ શકે છે એટલે પ્રાકામ્યસિદ્ધિ, તથા સર્વ કાર્ય કરવા સમર્થ હોવાથી ઈશિત્વસિદ્ધિ, વશી હોવાથી વશિત્વસિદ્ધિ અને સર્વ ઇચ્છાઓને સ્થાને કામનાઓની સમાપ્તિ થઈ ગયેલી હોવાથી કામાવસાયિત્વ સિદ્ધિ એ આઠ સિદ્ધિયો તેમને પ્રાપ્ત થયેલી હોય છે એ આઠ સિદ્ધિયો તો પ્રસિદ્ધજ છે, પરંતુ બીજી પણ નાની મોટી સિદ્ધિયો યોગીઓને તેમના અભ્યાસ ક્રમથી પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, એવો તે તે વિષયોના ગ્રંથોમાં ઉલ્લેખ થયેલો જોવામા આવે છે છતા પણ તે સર્વ સાચા મુમુક્ષુની નજરમા તો હેયજ હોય છે ગીતામા સિદ્ધિ શબ્દનો કંઇ બીજોજ અભિપ્રાય છે, તા આ શબ્દનો પ્રથમ પ્રયોગ નીચે જણાવેલા શ્લોકમાં આવે છે—

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥

—गी॰ ३।४

અહિં સિદ્ધિનો અર્થ નૈષ્કર્મ્ય સિદ્ધિ છે એ તો સ્પષ્ટજ છે, ઉપર્યુક્ત શ્લોકોમાં વર્ણવેલી સિદ્ધિયો સાથે એનો કોઈજ સબંધ નથી.

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

—गी॰ ७।३

આ ગીતોક્ત સિદ્ધિનો પણ નૈષ્કર્મ્યસિદ્ધિ અર્થ છે 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' આ વાકયમા અર્થ એવોજ હોવા છતાં પણ કપિલજીનું અન્યાન્ય સિદ્ધિ સંપન્ન હોવું વિસંગત નથી, છતા પણ મોક્ષ શાસ્ત્રમા સિદ્ધિ શબ્દથી ખાસ કરીને નૈષ્કર્મ્ય સિદ્ધિ જ માન્ય છે અર્જુનને ભગવાને એજ સિદ્ધિની પ્રાપ્તિ માટે પ્રયત્ન કરવાનું કહેલું હતું, કેમકે ગીતાનો મુખ્ય ઉપદેશ જ્ઞાનનિષ્ઠાનો છે, અર્જુન અજ્ઞાનનો નાશ કરવા ઇચ્છતો હતો અજ્ઞાન નાશનું

કારણ જ્ઞાન પ્રાપ્તિજ નક્કી છે, એ વાત કપિલ મુનિએ સાંખ્ય દર્શનના અધ્યાય ૧, સૂત્ર ૫૬ માં કહી છે—

नियतकारणात् तदुच्छित्ति र्ध्वान्तवत्।

જેવી રીતે અંધકારનો નાશ તેના વિરોધી પ્રકાશથી થાય છે તેવીજ રીતે અજ્ઞાનનો નાશ જ્ઞાન પ્રાપ્તિથી થાય છે. આ પ્રસંગમાં ગીતાનો પ્રતિપાદ્ય વિષય કર્મયોગ છે કે જ્ઞાનયોગ એ વિવાદમાં પડવાનું કોઇ કારણ નથી, કારણ કે તે વ્યાખ્યાન આજના પ્રતિપાદ્ય વિષય સાથે કશોજ સંબંધ ધરાવતું નથી; કેમકે નિબંધના પ્રારંભમાં જે સિદ્ધિ શબ્દનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે તેની ગીતાની સાથે એક નવી અને ખાસ પ્રકારની સંગતિ બેસાડી દેખાડવી, એજ અહિં માત્ર કર્તવ્ય છે.

કપિલજીના અભિપ્રાય પ્રમાણે સિદ્ધિનો મતલબ ન કર્મસિદ્ધિ છે કે ન જ્ઞાનસિદ્ધિ, પરંતુ કંઇ બીજીજ છે, બીજા સાંખ્યકારોએ પણ એનો ખાસ મતલબથી પ્રયોગ કરેલો છે. જેમકે—

सिद्धिरष्टधा।

—सा० द० ३।४०

पञ्च विपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदास्तुष्टिर्नवधाष्टधा सिद्धिः ॥ ४७॥

—साख्य का०

આ બન્ને ઉદાહરણોમાં સિદ્ધિયો આઠ છે એમ કહેલું છે, પણ સાંખ્યકારે એમ સ્પષ્ટ નથી કહ્યું કે તે કયી કયી છે, તેનો ખુલાસો કારિકામાં છે—

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः ॥५१॥

આ કારિકાનો અર્થ કરવામાં વ્યાખ્યાન કરનારા લોકો એકમત નથી. વાંચકોને એનો સાચો અભિપ્રાય સમજવામાં સહેલું પડે, એટલા માટે પ્રથમ અહિં પૂર્વ પરંપરાગત અર્થ દેખાડવામાં આવે છે, તે પછી ગીતાની સાથે તુલનાત્મક દ્રષ્ટિથી વિચાર કરીને, અમારો અભિપ્રાય પ્રગટ કરવામાં આવશે. પૂર્વ વ્યાખ્યાને માટે 'સ્વામી હરિહરાનંદ આરણ્ય' કૃત અનુવાદ આપવો ઠીક ગણાશે—

ઉહ, શબ્દ, અધ્યયન, સુહૃત્પ્રાપ્તિ, ત્રણ દુઃખ વિઘાત અને દાન એ આઠ સિદ્ધિયો છે. વિપર્યય, અશક્તિ અને તુષ્ટિ એનાં વિરોધી છે.

ઉહ અર્થાત્ પ્રતિભા; પ્રતિભા કે પોતાના પૂર્વસંસ્કારથી જે તત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે તેને ઉહ કે તાર સિદ્ધિ કહે છે. બીજાનું કથન સાંભળીને જે તત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે તેને શબ્દ કે સુતાર સિદ્ધિ કહે છે. સ્વયં ભણવા—શીખવાથી જે તત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે તેને અધ્યયન સિદ્ધિ કે તાર તાર સિદ્ધિ કહે છે ગુરૂ, સહાધ્યાયી કે મોક્ષપથના કોઇ સહાયકનું પ્રાપ્ત થવું તે ચોથી સુહૃત્પ્રાપ્તિ કે રમ્યક સિદ્ધિ છે. તેના પછી સાધનો દ્વારા ત્રિવિધ દુઃખ વિઘાત નામની સિદ્ધિયો હોય છે, જેમને પ્રમોદ, મુદિત અને પ્રમોદમાન પણ કહે છે. છેવટની દાન કે અવદાન સિદ્ધિ છે, જને સિદ્ધિયોની સમ્યક્ નિર્મળતા રૂપ વિવેકખ્યાતિ કહેવામાં આવે છે, તેને સદા પ્રમુદિત પણ કહે છે. આ પ્રકારે તાર, સુતાર, તારતાર, રમ્યક, પ્રમોદ, પ્રમુદિત, પ્રમોદમાન અને સદા પ્રમુદિત એ આઠ સિદ્ધિયો મોક્ષ માર્ગની સહાયક છે.

હવે ગીતા અનુસાર એમનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

સાંખ્યદર્શન ગીતાના આધાર ઉપર રચાયલું છે એ વાત વિદ્વાનોના લક્ષમાં તો હશેજ, એટલે અમારા મત પ્રમાણે આ સિદ્ધિયોનો ઉલ્લેખ ગીતાના અધ્યાય ૨ શ્લોક ૭-૮ માં છે. જેમકે—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः

पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्

यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।

अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं

राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

'દૈન્ય દોષથી મારી બુદ્ધિ નષ્ટ થઈ ગઈ છે, તેથી હું ધર્મના વિષયમાં વ્યાકુળ છું. તેથી આપને પૂછું છું કે સાચું કલ્યાણકારી કર્તવ્ય બતાવો, મને શરણાગત શિષ્યને યોગ્ય આજ્ઞા આપો. પૃથ્વીનું નિષ્કંટક રાજ્ય કે ઇંદ્રપદ પ્રાપ્ત કરીને પણ ઇન્દ્રિયોને સૂકવનારો આ મારો શોક દૂર થશે નહિ' અહિં પૂર્વોક્ત સિદ્ધિયોજ અનુસ્યુત છે કે જે શાસ્ત્રોપદેશના અવ્યવહિત પૂર્વ સિદ્ધ અધિકારને જણાવે છે.

ગીતા ૨।૮ માં અર્જુન ભગવાનને પ્રાર્થના કરે છે કે ઐહિક અને આમુષ્મિક સમસ્ત કામ પ્રાપ્ત થવા છતાં પણ મારો શોક દૂર થશે નહિ, આપ તેનો ઉપાય બતાવો અહિં વિચારવાની વાત છે

३ કે ઐહિક રાજ્ય ભોગ તથા સ્વર્ગભોગની સ્મૃતિ અર્જુનને અવશ્ય થઈ છે ત્યારેજ આ પ્રાર્થના સંભવ કરી શકે છે એનુંજ નામ પ્રતિભા અર્થાત્ પારિભાષિક નામ ઉહ છે આ સિદ્ધિ તેના પૂર્વ ભવીય સંસ્કારોથી થઈ છે વળી તેજ શ્લોકમાં અર્જુન કહે છે કે 'मां शाधि' 'शासु अनुशिष्टौ' થી શાધિ બને છે અને શાસનનો અધિકાર માત્ર વેદનેજ છે. એજ વાત વ્યાસજીએ 'शास्त्रयोनित्वात्' (વેદશાસ્ત્રોથી પરમાત્મજ્ઞાન થાય છે) આ વેદાન્ત સૂત્રમાં કહી છે

ગીતાના ૫ંદરમા અધ્યાયમાં કહ્યું છે કે 'इति गुह्यतमं शास्त्रम्' મતલબ એ છે કે વેદશાસ્ત્રનો ઉપદેશજ અર્જુન ચાહે છે અને ભગવાન એજ આજ્ઞા આપે છે—'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' (તારે શાસ્ત્રનુંજ પ્રમાણ માનવું જોઈએ) એને જ શબ્દ સિદ્ધિ કહેવામાં આવે છે, તેનો ગૂઢ અભિપ્રાય એ છે કે વેદોપદેશમાં અર્જુનની બુદ્ધિ સ્વભાવ સિદ્ધ છે આ મનોવૃત્તિને સ્વાભાવિક શ્રદ્ધા પણ કહે છે. આ પ્રમાણે પ્રથમ ગણાવેલી બે સિદ્ધિયોનો કટાક્ષ એજ વાત ઉપર છે કે પૂર્વભવીય સંસ્કારથી પરમ વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત થઈને વેદ શાસ્ત્ર પર રૂચિ ઉત્પન્ન થાય છે તે પછી અધ્યયન સિદ્ધિ છે તેનો ઉલ્લેખ "शिष्यस्तेऽहं" વાક્યથી કરવામાં આવેલો છે. અર્જુનના પ્રપન્ન શબ્દથી જાહેર થાય છે કે તે શ્રી કૃષ્ણને ગુરૂ અને ઈશ્વરની અભેદ બુદ્ધિથી જુએ છે, જેમકે ઉપનિષદમાં કહ્યું છે—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

જેનો દેવમાં અને ગુરૂમાં એક સરખો પરમ અનુરાગ છે તેવા મહાત્મા પ્રતિજ શાસ્ત્રીય ઉપદેશ રત્નોનો પ્રકાશ પડે છે

ચોથી, પાંચમી અને છઠ્ઠી સિદ્ધિ ત્રિવિધ દુઃખોનો વિઘાત છે, તેમનો ઉલ્લેખ બીજા અધ્યાયના ૪, ૫, ૬ શ્લોકોમાં થઈ ગયો છે, તે દુઃખ અર્થાત્ તાપોનો વિઘાત અર્જુનમાં અનુમાન કરી શકાય છે, કેમકે 'यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे' આ વાક્ય દ્વારા, તેને ૪, ૫, ૬ શ્લોકોમાં કથિત દુઃખ નિવૃત્તિના ઉપાયો પર વિશ્વાસ નથી, એ સૂચિત થાય છે.

સાતમી સિદ્ધિ સુહૃત્પ્રાપ્તિ છે, અર્જુનને સહ કાર્યેજ ભગવાન સુહૃદ રૂપે મળ્યા છે આ વિષે મહાભારતમાં કહ્યું છે—

एकं सत्त्वं द्विधा कृतम् ।

જાણે કે એકજ વ્યક્તિના બે ભાગ થઈ ગયા હોય, એવું આઠ સૌહાર્દ એ બન્નેનું હતું. પ્રકૃતમાં એ સમજવું જોઇએ કે અર્જુન ભગવાનનો શિષ્ય થવાને તૈયાર થયો તો ભગવાન પણ તેના ગુરૂ થવા રાજી થઈ ગયા.

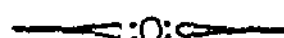
આઠમી સિદ્ધિ દાન છે. ગુરૂને સર્વસ્વ અર્પણ કરી દેવાની શાસ્ત્રની આજ્ઞા છે. અર્જુન કહે છે—

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

જેમને માટે અમને રાજ્યભોગ તથા સુખ જોઇએ, તેજ આચાર્ય, પિતામહ આદિ સર્વ કાંઇ છોડીને યુદ્ધમાં મરવા માટે ઉભા છે. એ લોકો મને ભલે મારતા રહે, તો પણ હું એમને પૃથ્વી તો શું ત્રૈલોક્યના રાજ્યને માટે પણ નહિ મારૂં" અહિં પૃથ્વીનું રાજ્ય કે ત્રૈલોક્યનું રાજ્ય ગુરૂઓને માટે છોડવાની તો વાતજ કયાં રહી ? 'घ्नतोऽपि' પદથી પોતાના પ્રાણ પણ ત્યાગવાની તૈયારી છે. આ ત્યાગની ચરમ સીમા છે અને ગુરૂને માટે 'त्वां प्रपन्नम्' કહેવાથી અર્જુનની ત્યાગ બુદ્ધિની સીમા અસીમ થઇ ગઇ છે.

હવે આ અર્થ સાથે અન્ય વ્યાખ્યાતાઓનો અર્થ મેળવીને વાંચક જોઇ લઈને ઉચિત અનુચિતનો નિર્ણય સ્વતઃ કરી લેશે. માતાને પોતાનોજ પુત્ર સર્વથી પ્યારો લાગે છે, એ ન્યાયે અમને પણ આજ અર્થ ઠીક લાગે છે.

આ સિદ્ધિયોનાં નામાંતર જે 'આરણ્યજી' અથવા બીજા ટીકાકારો દ્વારા ઉલ્લિખિત થયેલાં છે તેમના સંબંધમાં અનુમાન દ્વારા માત્ર એટલુંજ માલમ પડે છે કે એ નામ મુમુક્ષુની ક્રમોન્નતિ દર્શાવે છે એમજ તેમના શબ્દગત અર્થથી પ્રતીત થાય છે, નહિ તો તે કેવળ સંજ્ઞા માત્ર છે.



"શ્રવણ કાવડીઓ"

(મંગાદક— શ્રી કલ્યાણરાય હરિદાસ છાયા)

સાત સમુદ્ર અધવચ બેટ, શ્રવણ સરજ્યો માને પેટ. સમર રામને જી.
કુવાને કાંઠે પીપળો હુવો, ત્યાં શ્રવણને જન્મ હુવો.—સમર ... ...
લીલુડી વેલને લીલુડાં પાન, શ્રવણ ધાવે એનીમાનાં થાન.—સમર ... ...
જેમ જેમ માતા પાણીલાં ભરે, તેમ તેમ શ્રવણ ડગલાં ભરે.—સમર ... ...
પાંચ વર્ષ શ્રવણ થયો, ગેડી દડો લઇને રમવા ગયો.—સમર ... ...
સાત વર્ષનો શ્રવણ થયો, પાટી લઇને ભણવા ગયો.—સમર ... ...

બાર વર્ષનો શ્રવણ થયો, ને ભણી ગણીને હોશીયાર થયો.—સમર રામને ૭
સોળ વર્ષનો શ્રવણ થયો, નાર સુન્દરીને પરણવા ગયો —સમર
સુંદરી નાર મારા વચન સુણો અંધા મા બાપની સેવા કરો —સમર
તમારા માબાપને કુવામા નાખો, મને મારે પિયર મૂકો —સમર
ત્યાથી શ્રવણ ચાલ્યો જાય, સાસરાના ઘર પૂછતો જાય —સમર
સાસુજી મારા વચન સુણો તમારી દીકરીને ખુણે ધરો —સમર
જુઓ જમાઈ તમે જમતા જાવ અમારી દિકરીના અવગુણ ગાવ —સમર
તમારી દીકરી નાર કુવડ, નાસીદું વાળી સૂવામા જાગે —સમર
ઘર રૂઠીને પરઘર જાય એનો અવતાર એળે જાય —સમર
ત્યાથી શ્રવણ ચાલ્યો જાય, વણકરના ઘર પૂછતો જાય —સમર
વણકર ભાઈ મારા વચન સુણો, જાડી જોડીના લુગડા વણો —સમર
લુગડા વણજો ઘાટ સુઘાટ, સોહ્યા પેરે મારા મા ને બાપ —સમર
ત્યાથી શ્રવણ ચાલ્યો જાય દરજીના ઘર પૂછતો જાય —સમર
દરજી ભાઈ મારા વચન સુણો અંધા માબાપના લુગડા સીવો —સમર
લુગડા સીવજો ઘાટ સુઘાટ સોહ્યા પેરે મારા માને બાપ —સમર
ત્યાથી શ્રવણ ચાલ્યા જાય, મોચીના ઘર પૂછતો જાય —સમર
મોચી ભાઈ મારા વચન સુણો, અંધા માબાપની મોજડી સીવો —સમર
મોજડી સીવજો ઘાટ સુઘાટ સોહ્યા પેરે મારા માને બાપ —સમર
ત્યાથી શ્રવણ ચાલ્યો જાય, કુંભારના ઘર પૂછતો જાય —સમર
કુંભાર ભાઈ મારા વચન સુણો, રાતી માટીની ઘાઘર ઘડો —સમર
ઘાઘર ઘડજો ઘાટ સુઘાટ, પાણીડા પીએ મારા માને બાપ —સમર
ત્યાથી શ્રવણ ચાલ્યો જાય, સુતારના ઘર પૂછતો જાય —સમર
સુતાર ભાઈ મારા વચન સુણો, અગર ચંદનની કાવડ ઘડો —સમર
કાવડ ઘડજો ઘાટ સુઘાટ, સોહ્યા બેસે મારા માને બાપ —સમર
કાંધ કાવડ શ્રવણ ચાલ્યો જાય, વૃંદાવનની વાટે જાય.—સમર
કાવડ મેલી આવલીની ડાળ શ્રવણ ચાલ્યો પાણી ભરવા.—સમર
દશરથ મામા ગજબ કર્યો સગા ભાણેજને તમે માર્યો.—સમર



શંકા

(પ્રે૦—એક અશ્રદ્ધાળુ)

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थ.०
पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा।
श्वशुरान् सुहृदश्चैव०
सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥
१–२६, २७।
कुलक्षयकृत दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥
१–३८

'ત્યાં અર્જુને પોતાના પુત્ર, પૌત્ર, સખા, શ્વસુર, સુહૃદ અને સર્વ બન્ધુઓને ઉભેલા જોયા.' 'કુલ-ક્ષય કરવાના દોષ તથા મિત્રો સાથે દ્રોહ કરવાના પાપને કૌરવો સમજતા નથી.'

આ શ્લોકોમાં અર્જુન કૌરવોનો ઉલ્લેખ કરીને ચાર શબ્દોનો પ્રયોગ કરે છે, યથા—સખા, સુહૃદ, બન્ધુ અને મિત્ર. ગીતાના ઉપર આક્ષેપ છે કે તેમાં અનાવશ્યક પુનરૂક્તિ ઘણીજ છે. જેમની ગીતાને ભગવદ્ વાક્ય માનવામાં ઓછી શ્રદ્ધા છે તથા તેની વ્યાસ કૃત રચનામાં પણ સંદેહ છે એવાજ પુરૂષો આ શંકાઓ ઉઠાવે છે. છતાં પણ તેમને નિરૂત્તર કરવા માટે એટલુંજ કહેવું પૂરતું નથી કે તેમની શ્રદ્ધા ઓછી છે, કેમકે આજકાલનો સમય બુદ્ધિ પ્રામાણ્યને માને છે. તો હું જાણવા ચાહું છું કે વ્યાસજી ઉપરોક્ત શ્લોકોમાં સખા આદિ શબ્દોનો પ્રયોગ પર્યાયવાચક રૂપથી કરે છે અથવા તેમના અર્થમાં કાંઇ સૂક્ષ્મ ભેદ છે?

સમાધાન

(લે૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

ગીતાકાર ઉપર જે આક્ષેપ કરવામાં આવે છે તે સર્વથા અનભિજ્ઞતા મૂલક છે, ગીતામાં ક્યાંય પણ વૃથા શબ્દોનો પ્રયોગ નથી. સાચું તો એ છે કે ગીતાની યથાર્થ વ્યાખ્યા હજુ સુધીમાં કોઇએ કરી છે કે નહિ એમાં સંદેહ છે તેમાં ઉપનિષદ, બ્રહ્મવિદ્યા અને યોગશાસ્ત્ર એ ત્રણે પ્રસ્થાનોનું ગૂહન છે, એ વાતનો પરિચય કોઈ પણ ટીકામાં કદાચજ મળતો હશે. વધારેમાં વધારે ટીકાકારોએ હજુ સુધી "श्रीकृष्णार्जुन संवाद" નીજ વ્યાખ્યા કરી છે તથા તે પણ સદોષ છે એમ અમે ઉપર કહી ચૂક્યા છીએ. અસ્તુ, પ્રકૃત વાત એમ છે કે એ ચારેય શબ્દોમાં સૂક્ષ્મ ભાવથી જ કેમ ન હોય, અર્થ ભેદ અવશ્ય છે. તથા—

अवियोगसहो बन्धुः सर्वदानुगत. सुहृत्।
एककार्यं भवेन्मित्रं समप्राण. सखा मत. ॥

જે સાથી બંનેની સાથે વિયુક્ત થઈ જાય તેને બન્ધુ કહે છે, જે કોઈ પણ સાથ ન છોડે તે સુહૃદ છે, જે હરેક કાર્યને સાથમાં કરતો હોય તેને મિત્ર કહે છે તથા જે અનુરાગની અધિકતાથી પ્રાણની પેઠે કદિ પણ પ્રથક ન થાય તેનું નામ સખા છે. આ પ્રકારે આ શબ્દોમાં તારતમ્ય સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.

વિલક્ષણ ઉપદેશ

(લે૦ સ્વામી શ્રી રામાનંદજી સંન્યાસી, દર્શનશાસ્ત્રી વ્યાકરણાચાર્ય)

એક પ્રમુખ સમાચારના 'હિતધર્મ' માં નાગા, પરમહંસ, દંડી, જ્ઞાની, ધ્યાની, મૌની, અવધૂત, વિરક્ત, સંત, મહંત, આદિ સંન્યાસી મહાત્માની ચર્ચા ચાલી રહી હતી તેમાં 'રામધારા શરી' નામના સન્યાસી વ્યાખ્યાન આપી રહ્યા હતા, વ્યાખ્યાનના અનુસંધાનમાં તેમણે કહ્યું—

એક વખત હું અમુક દેશમાં ભ્રમણ કરી રહ્યો હતો ત્યાંના એક ભાવિક પુરુષ મને પૂછ્યું કે મહારાજ, અમે ભગવાનોની કથાઓ તથા સાધુ પુરુષોનાં ચરિત્રો સાંભળીએ, પરંતુ તે પ્રમાણે આચરણ ન કરી શકીએ, તો તેનાથી શો લાભ થઈ શકે છે? એવું સાંભળવું વ્યર્થ છે તેના જવાબમાં મેં કહ્યું—ભાઈ, એના બે લાભ તો પ્રસિદ્ધ જ છે, પહેલો એ કે જે શ્રોતાની ભગવાન ઉપર સાધારણ શ્રદ્ધા હશે, એટલે કે પ્રભુનું થોડું ભજન સ્મરણ કરવાનું કરતો હશે, તે કથા સાંભળીને વધારે શ્રદ્ધાળુ બનશે અને વધારે ભજન પૂજન કરશે "અહીં તહીંની નકામી વાતો કરવામાં વખત વિતાવવા કરતાં કથા સાંભળવામાં વખત વ્યતીત કરવો સારો છે" જો એ વાત સામાન્યપણે સમજતો હશે તેને કથાનો ઉપદેશ શ્રવણ કરવાથી ઉત્તમ કર્મ કરવામાં અધિક ઉત્સાહ આવશે, તેનાથી તેના દુર્વ્યસનો છૂટી જઈ શકશે બીજી વાત એ છે કે જે શ્રોતામાં અભિમાનની માત્રા વધારે હશે તેનું અભિમાન ઓગળી જશે અને તે ક્રૂરતા આદિ પ્રમાદોને દોષ સમજીને તેમનો ત્યાગ કરવા તત્પર રહેશે.

આર્ય, ઋષિ, મુનિ, સાધુ, સંતરૂપ એન્જીની અને આ સંસારરૂપી ઘોર વનમાં અનેક કષ્ટ સહન કરીને, જ્ઞાન અને સદાચારની સુંદર સડક આપી ગયા છે, પોતાના જ્ઞાન અને અનુભવના આધારે ઉપદેશની અનેક સ્થાયી કલમો એ સડક ઉપર રાખી ગયા છે, અને સાધના તથા સ્ફૂર્તિ પ્રદાન કરનારા સન્મતિ અને સૂચનાઓના 'ડાક બંગલા' ઊભા કરી ગયા છે, અને શાસ્ત્રો, ગ્રંથોના ગુરુગમ બનાવી ગયા છે જેનાથી જીજ્ઞાસુ યાત્રી ક્રોધ, લોભ આદિ શત્રુઓના ફંદામાં નહિ ફસાતા સચ્ચિદાનંદ પરમ ધામમાં વગર અડચણે આનંદપૂર્વક જઈ શકે કથા શ્રવણ કરનારાને એ તો માલુમ પડી જશે કે અમારા ઋષિ, મુનિ, કેવા પ્રભુ પ્રેમી, મોક્ષગામી ધર્મપ્રાણ પરોપકારી, સત્યપરાયણ અને પવિત્ર સજ્જન હતા તેમણે વેદપાઠન, ઉપનિષદોના આદેશ, દર્શનશાસ્ત્રોનું તત્ત્વજ્ઞાન, આધ્યાત્મિક ધ્યેય, અનેક પ્રકારના ભાષ્ય, ટીકા, વ્યાખ્યાનની યોગ્યતા, વર્ણાશ્રમ ધર્મની મર્યાદાને અક્ષુણ્ણ રાખનારા, ધર્મશાસ્ત્રાનુમોદિત મનુષ્યત્વ તથા દેવત્વના પ્રયોજક આચાર, લોક પરલોકને સમજવાની શિક્ષા તથા સર્વોત્તમ સાધનને સમજવાની કુશળતાનો કેટલો ગૂઢ પરિચય પ્રાપ્ત થયેલો હતો. તેમણે કેવા કેવા અનાચારી, અસ્થિરચિત્ત, જડવાદી તથા ધનલાલસોને યથાર્થ માર્ગ ઉપર લાવવા માટે કેવાં પ્રબલ ચરિત્ર, તલસ્પર્શી બુદ્ધિ વૈભવ, પરમાર્થ તથા વ્યવહારનો અનુભવ અને નિઃસ્પૃહ ભાવ પ્રગટ કર્યો હતો. ભલા જે શ્રોતાને એવા ચરિત્ર રોજ રોજ સાંભળવા મળશે, તેનું જીવન અનુકુળ પલટો ન ખાય એમ કદિ પણ બની શકતું નથી.

પહેલાંના મહાત્મા ગુરૂપદ, આચાર્યપદ, પુરોહિતપદ, મહંતપદ, મંડલેશ્વરપદ અને અધ્યક્ષપદને અલંકૃત કરતા હતા, તેમનામાં રાજા, મહારાજા, વીર, મહાવીર, ગ્રંથકાર, ભાષ્યકાર, સમર્થ વ્યાખ્યાતા, પ્રેરક, કથાકાર, નિસ્પૃહ રાજગુરૂ, મહાન સ્મૃતિકાર, નિષ્પક્ષ ન્યાયાધીશ, ૠષિ, મુનિ, અને સાચા સાધુ બ્રાહ્મણોનો આવિર્ભાવ થતો હતો. તે સમયે રાજા પ્રજા સર્વ તેમનું શિષ્યત્વ ગ્રહણ કરતા હતા, તે સમય ભારતવર્ષની ચતુર્વિધ ઉન્નતિનો સમય હતો. દેશમાં જ્યારથી યથાર્થ ગુરૂત્વ અને શ્રેષ્ઠ શિષ્યત્વ ઘટવા લાગ્યું, ત્યારથી સાચું જ્ઞાન અને ચરિત્ર આથમી ગયું, તેથી મનોબળ, શરીરબળ અને અંતમાં ધન જનબલ પણ ક્ષીણ થઈ ગયું.

આ સર્વ વાતો પૂર્વજોનાં ચરિત્ર તથા ભગવત્ કથા શ્રવણ કરવાથીજ માલુમ પડી. શકે છે. 'અમે કેવા હતા અને કેવા થઈ ગયા ?' એનું જ્ઞાન એને શી રીતે થવાનું જે કથાનક શ્રવણ કરતો નથી ? જે સાંભળશે તે કોઇ વાર મનન પણ કરશે, મનન પછી નિદિધ્યાસનનો વારો છે, એવું કરનારો શ્રોતા અવશ્ય લાભ મેળવશે.'અમારાથી એ પ્રમાણે ચાલી શકાતું નથી' એવું સમજીને જે અવતાર કથા તથા સંત ચરિત્રો સાંભળતા નથી તેમને કાંઈ લાભ તો થશે નહિ, ઉલટા તે પૂર્વજોની પ્રસિદ્ધ ખ્યાતિથી અજાણ્યા રહી જશે; જે જાણવાની રાષ્ટ્રિયતાને માટે અત્યંત આવશ્યકતા છે.

ભાઇઓ, વેદ, શાસ્ત્ર, સ્મૃતિ, આદિનાં ગહન તત્ત્વોને વિદ્વાન જ જાણી શકે છે, એ સર્વ તથા તેમાં થનારાં ખંડન મંડન તો પંડિતોને માટે છે. સર્વ સાધારણને માટે તો સાધુ સંતોની ઉપદેશ કથાજ લાભદાયક થઈ શકે છે, કેમ કે તેઓ શાસ્ત્રોના કઠણમાં કઠણ ભાવને સરલ દ્રષ્ટાન્તો તથા યુક્તિઓ દ્વારા સમજાવવાની કૃપા કરતા રહે છે. દુનિયામાં સાધારણ મનુષ્યોની જ સંખ્યા અધિક છે, તેમના ઉપકાર માટે સંતોએ સર્વ શાસ્ત્રોને મથીને જે તત્ત્વ કાઢયું છે તેજ સૌના કામની ચીજ છે. સંતોનો ઉપદેશ સર્વ લોકોને એટલા માટે માન્ય થઈ જાય છે કે તેઓ વિષય લોલુપતા, ચમત્કાર, સિદ્ધિ અને લોકપ્રતિષ્ઠાનો ત્યાગ કરીને શુદ્ધ જ્ઞાન, પવિત્ર ચરિત્ર, સાધુ સ્વભાવ, પ્રભુ પરાયણતા, અપ્રસિદ્ધિ અને આસુરી સંપત્તિના ત્યાગને અપનાવી રાખે છે. એવા શ્રેયઃસાધક પ્રભુપ્રેમી મહાપુરૂષ હૈય ધર્મોદ્ધારક હોઇને જગદ્ગુરૂના ગૌરવપૂર્ણ પદને સુશોભિત કરે છે. ભાઇ, એવા મહાપુરૂષના મુખથી સાંભળેલી કથા કદિ નિષ્ફળ જતી નથી, કેમકે બ્રહ્મનિષ્ઠ અને બ્રહ્મ શ્રોત્રિયના મુખથી ઉચ્ચારિત ભગવદ્ ગુણાનુવાદનું શ્રવણ અવશ્ય સફળ થાય છે. પ્રથમ બધી વાતો સાંભળવામાંજ આવે છે, પછીજ તે પ્રમાણે કાર્ય કરવાનો અવસર આવે છે. તમે એ વાતની ફિકર ન કરો કે અમે જે વાત કથામાં સાંભળીએ છીએ તે પ્રમાણે આચરણ થતું નથી. તમે તો 'અમે સત્સંગમાં અવશ્ય જતા રહીશું' એવોજ નિશ્ચય કરી રાખો, પછી તો કામ બન્યું બનાવ્યું જ છે

તે પછી મહાત્માજી કહેવા લાગ્યા—હું ઘેરથી નીકળીને એક વાર વિદ્યાભ્યાસને માટે કાશી ગયો ત્યાં એક વૈભવપૂર્ણ મઠ જોયો, જે એક મહંતના અધિકારમાં હતો; મઠમાં, કોઈ પણ ઉપભોગ સામગ્રીની કસર નહોતી, મહંતજીને ઘણા લોકો માનતા પણ હતા. તે સ્થાન તથા મંદિરના અધ્યક્ષ વૃદ્ધ હોવાને લીધે તેનો ત્યાગ કરવા ચાહતા હતા. મને તે મંદિરની અધ્યક્ષતા પ્રાપ્ત કરવાનો લોભ

થઈ આવ્યો તેથી હું ત્યાં નિત્ય જઈને ઘણીએવાર સુધી વ્રત, સાધન, ભજન, ઉપાસના આદિ કરવા લાગ્યો. એક દિવસ મને આકાશવાણી સંભળાઈ કે દેવદત્ત! આ શું? તું આ સર્વ વ્રત ઉપાસના શુદ્ર લાલસાની પૂર્તિને માટે કરી રહ્યો છે? એમ ન કર (ઉપાસના કરવાથી, ચાહે તે સ્વાર્થને કારણે જ હતી, હૃદયમાં કંઈક પવિત્રતા આવી ગઈ, તેથી હૃદયરૂપ આકાશથી આ પ્રેરણા થઈ, એજ આકાશવાણી કે દેવ પ્રેરણા હતી જે દમ્ભ નહીં કરવાની આજ્ઞા આપી રહી હતી) હું આ પ્રકાર—ની દેવવાણી સાંભળીને મારા દમ્ભપૂર્ણ વ્યવહાર ઉપર પશ્ચાતાપ કરતો વિચાર કરવા લાગ્યો—હું એક વર્ષ પર્યંત કપટ સહિત સકામ ભાવથી ઈશ્વર-ની ઉપાસના કરી પ્રભુના ઉપર સાચો પ્રેમ તથા વિશ્વાસ છોડીને લાલચમાં ફસાઈ રહ્યો, એ કેટલી શરમની વાત છે, પવિત્ર અંતઃકરણથી મેં ભગવાનની ઉપાસના ન કરી, મહત્તાની લાલસાથી સ્વાર્થી બન્યો રહ્યો.

બીજે દિવસે ત્યાં નગરના કેટલાક ભદ્ર પુરુષો જે મહંતજીના સેવક તથા મઠના ભક્ત હતા, મંદિરમાં દર્શન કરવા આવ્યા અને આપસમાં કહેવા લાગ્યા કે આ ધર્માલયની ઉન્નતિ તથા પ્રબંધને માટે કોઈ યોગ્ય પુરુષને અધ્યક્ષ સ્થાને નિયુક્ત કરીને ઉપદેશક નિમવાની આવશ્યકતા છે એવા વિચાર વિનિમય કરતા કરતા તે લોકોની દૃષ્ટિ મારા ઉપર પડી, તેમને તે સમયે હું જ સૌથી યોગ્ય જણાયો. તેથી તેમણે આવીને મને તે મંદિર તથા મઠનું અધ્યક્ષ પદ ગ્રહણ કરવાની પ્રાર્થના કરી હું મારા મનમાં વિચારવા લાગ્યો—હે પ્રભો, મેં કપટ સહિત એક વર્ષ પર્યંત આપની ઉપાસના કરી, પરંતુ ત્યારે તો કોઈએ મારા તરફ આંખ ઉઠાવીને જોયું સરખુંય નહોતું, આજ આપને હૃદય અર્પણ કર્યું અને યથાર્થ વિશ્વાસ ધારણ કર્યો, ત્યારે આ ભલા માણસોને આપે મારી પાસે મોકલીને અધ્યક્ષપદ અર્પણ કરવાની કૃપા કરી, પણ હવે હું આપના મહત્વને પીછાણી ચૂક્યો છું, તેથી મારા મનમાં હવે એ અધ્યક્ષતાની અભિલાષા રહી નથી અને તો આપની ચાહ છે, આપ સર્વ જગાએ છો, આમ વિચાર કરતો હું તે મંદિર અને મઠની બહાર નીકળી ગયો.

તે પછી હું અવન્તિકાપુરી ચાલ્યો ગયો, ત્યાં મારી પડોશમાં એક મહા પાખંડી અને ઉપદ્રવી યુવક રહેતો હતો, તેની કુપ્રવૃત્તિઓથી દુઃખિત કેટલાક ભલા મનુષ્યો સાથે હું શાન્તિ તથા પ્રેમથી સમજાવવા માટે તેની પાસે ગયો. તે અકડાઈને બોલ્યો—જાણતા નથી હું રાજાનો પ્રેમપાત્ર છું મને કોઈ પણ કહેવાની કોઈનામાં શક્તિ નથી અમારામાંના જ એકે એમ કહેવાથી કે અમે રાજા પાસે જઈને ફરિયાદ કરીશું, તે બોલ્યો—ઠીક છે, જાઓ, રાજા મારો જ પક્ષ કરશે, હું જે કરીશ તેજ તે માનશે. આખરે નિરાશ થઈને સૌ પાછા ફર્યા તે યુવકના રોજ રોજ વધતા જતા ઉપદ્રવથી ત્રાસેલા કેટલાક લોકો સાથે હું ફરી એકવાર તેને સમજાવવા જતો હતો, ત્યાં રસ્તામાં સૌએ એવી આકાશવાણી સાંભળી કે, ખબરદાર! તમે મારા ભક્ત ઉપર હસ્તાક્ષેપ ન કરતા, આમ સાંભળીને સૌ ચકિત થઈ ગયા અને કહેવા લાગ્યા—આ દુષ્ટ પ્રભુનો પ્યારો ક્યારથી? મેં કહ્યું—હું એકલો જઈને જોઈ લઉં કે સાચી વાત શું છે? મારા ત્યાં જવાથી તે યુવાને પૂછ્યું, વળી પાછું કેમ આવવું થયું? મેં કહ્યું—હું તમને એક ઉત્તમ સંદેશો સંભળાવવા આવ્યો છું, તમે પ્રભુના પ્યારા છો એવી દેવીવાણી

અમે સાંભળી છે. 'યુવકે કહ્યું—મહોદય, મને મારાં કર્તવ્યો માટે પશ્ચાતાપ થાય છે, ગઈ કાલથી મારા મનમાં પરિવર્તન થઈ ગયું છે, હું સૌની પાસે ક્ષમા માગીશ, મારી પાસે જે કાંઇ છે તે સર્વનો પ્રભુના નામ ઉપર ત્યાગ કરીશ, આમ કહીને પોતાની સર્વ સંપત્તિ ગરીબોમાં વહેંચી દઇને તે કયાંય ચાલ્યો ગયો, તે દિવસ પછી કોઈ નગરવાસીએ તેને ફરી તે નગરમાં જોયો નથી. ઘણાં વર્ષો પછી મેં તેને કાશીમાં જોયો, તે તૃણવત્ દુર્બળ હતો અને મરણોન્મુખ હતો. મને જોઇને તેણે કહ્યું—હું મારા બન્ધુ પ્રભુની પાસે જાઉં છું, તેના વિના મને ગમતું નથી, મારાં કૃત્યો પર હું પૂરેપૂરો પશ્ચાતાપ કરૂં છું. હું મારા અપરાધોનાં ફળ ભોગવવા તૈયાર છું અને એવી પ્રતિજ્ઞા કરૂં છું કે હું ફરીથી કદિ પણ એવાં કૃત્ય કરીશ નહીં.

તે પછી મેં અહિં (કાશીમા) નિયમપૂર્વક સન્યાસ ધારણ કરી લીધો, હવે હું ઘણા દિવસોથી મીઠાઈ અને ખટાશ ખાતો નથી, જોડા અને સીવેલું વસ્ત્ર પહેરતો નથી, તમાલ, તામ્બુલ આદિ પદાર્થોને અડકતો નથી. ઘેર ઘેરથી ભીક્ષા માગીને ખાઉં છું. હવે મારૂં મન તુષ્ટ અને શરીર પુષ્ટ છે, મને પ્રભુજ માત્ર ઇષ્ટ છે બાકી સર્વ દુષ્ટ છે, એમ સ્પષ્ટ કહું છું.

એક દિવસ અસ્વસ્થ દશામાં મને મીઠાઇ ખાવાની ઇચ્છા થઇ. કેટલીક વાર સુધી ધિરજ ધારણ કરી રાખ્યા છતાં પણ હું તે લાલચને રોકી શકયો નહી. એક દિવસ કહેવાથી એક ભક્તે મીઠાઇ લાવીને મને આપી, મેં તેને ત્રણવાર સુંધીને કહ્યું—અરે મનવા, તારે માટે આજ ભોગ પુરતો છે, એથી વધારે ઉપયોગ કરવો ઠીક નથી, એટલું કહીને મેં તે મીઠાઇ એક ભીખારીને આપી દીધી અને કહ્યું—અરે દુર્બલ મન, નિયમસર રાખવા માટે હું તને કલેશ પહોંચાડું છું. કોઇ વેરભાવને લીધે નહીં પણ માત્ર મિત્ર ભાવેજ તેમ કરૂં છું એમ સમજજે, તું થોડા દિવસ ધૈર્ય ધારણ કર, એક દિવસ દુઃખનો અંત આવશેજ અને તે કદિ પાછું દેખાશે નહિ.

લોકો કહે છે કે જે મનુષ્ય ચાલીસ દિવસો સુધી પૌષ્ટિક આહાર નથી લેતા તેમની બુદ્ધિ ભ્રષ્ટ થઈ જાય છે. પણ હું નથી સમજી શકતો કે એ વાતમાં કેટલું તથ્ય છે, વીસ વર્ષ પર્યંત મેં એવો આહાર લીધો છે કે જેમાં ઘી દુધ જેવા પુષ્ટ પદાર્થનું નામ પણ નહોતું, વળી એવું સુકું ભોજન પણ એકજ વાર ખાવાને મળતું હતું. હું મીઠું ખાઇને બાર વરસ સુધી સાંજનું વાળુ કરતો રહ્યો પરંતુ મારી બુદ્ધિ જરાય બગડી નથી, ઉલટી સુધરી ગઈ. ખાવા પીવાની કોઇ વાત નથી. નિશ્ચિંત જીવન અને ઉત્તમ વિચારોથી શરીર પુષ્ટ અને તેજસ્વી, થાય છે. જેમના વિચાર ઉત્તમ હશે તેજ બીજાઓ કરતાં અધિક ચિન્તારહિત હોઇ શકે છે. 'चिन्ता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता तु प्राणघातिनी' ની કહેવત સાચી છે. કહ્યું છે—

એક મુર્ગ દીદમ, ન પાવો ન પર।
ન અજ સિકમે માદર, ન પુસ્તેપિદર ॥
ન વર આસમાં, ન જેરે જમીં।
હમેશઃ ખુર્દ ગોસ્તે, આદમી ॥

અર્થાત્ અમે એક એવો મરઘડો જોયો છે કે જેને પગ પણ નહિં તેમજ આંખો પણ નહી, માતા પિતાથી એ પેદા પણ થયો નથી, નથી તે આકાશમાં રહેતો કે નથી પૃથ્વી ઉપર રહેતો, પરંતુ તેનામાં એટલું સામર્થ્ય છે કે તે પ્રતિદિન મનુષ્યનું માંસ ખાયા કરે છે. આ રૂપકમાં જે મરઘડાનું વર્ણન છે તે 'ચિન્તા' છે.

સંન્યાસી મહારાજે પોતાનું વ્યાખ્યાન ચાલુ રાખતા કહ્યું—નૈમિષારણ્યમાં એક વૃદ્ધ સ્ત્રીએ મારે માટે 'કપટી' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો હું તે સાંભળીને વિચાર કરવા લાગ્યો—ઠીક છે, વીસ વર્ષથી મને આ યથાર્થ નામથી કોઇએ નથી બોલાવ્યો, આજ આ વૃદ્ધ ડાહીમાએ સાચા નામથી બોલાવ્યો છે હું જેવો મનુષ્ય છું તેવો એ બરાબર ઓળખી ગઈ, મારૂ નામ તો એણે બરાબરજ પાડયું છે એમાં કાંઇ શંકા નથી, પણ એણે એ કેવી રીતે જાણ્યું એજ આશ્ચર્યની વાત છે તેથી મે તે વૃદ્ધ ડાહીમાને પૂછયું—આપે મારૂ નામ તો યથાર્થ કહ્યુ, પણ એ આપે કેવી રીતે જાણ્યુ કે એ નામ બરાબર છે? તેણે કહ્યુ—તું સન્યાસ ધારણ કરીને પણ આત્મચિંતન કરતો નથી, આમ તેમ ભટકયા કરે છે—

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा।
कनिष्ठा प्रतिमापूजा तीर्थयात्राऽधमाऽधमा॥

શું તું નથી જાણતો કે આત્મચિંતન પરાયણ સંન્યાસીને માટે ઉપાસના, ધ્યાન, પૂજા, અને તીર્થાદિ તો બહુ પહેલાની વાતો રહી જાય છે, એ તો મન્દ, કનિષ્ઠ અધિકારિયોની ચિત્ત શુદ્ધિના સાધન છે, ત્યારે તો એનાથી આગળ વધવું જોઇતું હતું, પણ નથી વધ્યો, એટલે તું 'કપટી' નહી તો કેવો છે? વૃદ્ધાના કહેવાનો પ્રભાવ મારા ઉપર ઘણોજ પડ્યો તેથીજ હવે નિશ્ચલ થઇને ભગવતી ભાગીરથીના તટવર્તી 'સિદ્ધાશ્રમ' માં કેટલોક સમય નિવાસ કરવાનો વિચાર કર્યો છે.

અગર કોઈ કહે કે આ આશ્રમથી જે તમારા સૌમાં અધિક અધમ હોય તેને બહાર કાઢી મૂકો, તો મારેજ બહાર નીકળી જવુ પડે કેમકે હું જ એવો ગયો ગુજર્યો છુ

મહાત્માજી પ્રમાણ શતાન્ત પુર સર શિક્ષાપૂર્ણ વિલક્ષણ ઉપદેશ આપીને ચૂપ થઇ ગયા. 'કાલથી આશ્રમમાં આજ સમયે 'ગીતાધર્મ' ના રહસ્યનું વિવેક સમન્વિત વિવેચન રોજ થયા કરશે' એવો નિર્ણય કરીને સંત સભા સમાપ્ત થઈ

—o—

નામ મહિમા—

(દયારામ કૃત)

હરદમ કૃષ્ણ કહે, શ્રી કૃષ્ણ કહે તુ જીભ્યા મેરી,
યહી મતલબ કે ખાતર કરતા હુ ખુશામત તેરી —હર૦
દહી ઓર દુધ શકર, દેતા હુ હર બખ્ત તુજે,
તોભી હરરોજ હરીનામ, સુનાતી ના મુજે. હર૦
કરે ગુન ગાન ગોવિંદ કા, તુ સુખમે પરી રહે બથા,
નહિ તો એ ભેદ નિકાલુ, કરા મુખમે ચામ બથા —હર૦
ખોઇ જીંદગાની સારી, સોઇ ગુન્હા માફ તેરા
દયા પ્રિતમ ભજે મતિ નામ, આખર બખ્ત મેરા —હર૦

કરૂણા લહરી

[પંડિતરાજ શ્રી જગન્નાથ વિરચિતા]

(અનુવાદકઃ—લાલજી વીરેશ્વર જાનિ)

[અનુસંધાન ગતાંક પૃ. ૧૦૪૦ થી આગળ]

"वपुरी दशमीश तावकं हृदयालम्बनमस्तु मे सदा ॥"

'આવું તારૂં કમનીય શરીર હે વિભો, મારા હૃદયને આલંબન આધારરૂપ હો'

હરિયાળી જમીનમાં રહ્યું,
વર વૃંદાવનમાં વિલાસતું;
મણિમંડપ મધ્ય શોભતું,
વપુ એ [1]દેવતરૂ તલે રૂડું. ૪૦.

માથે ધરેલા મયૂરપિચ્છ તથા વાળનું વર્ણનઃ—

શિખિ-પિચ્છ વિષે મણિ સ્ફુરે,
સુકુટાકુંચિત વાલ માથરે;
અતિ નીલ સુવાલની લટો,
લટકે ચારુ લલાટમાં અહો! ૪૧.

પ્રભુના મુખનું વર્ણનઃ—

[2]શરદિન્દુ—સમાન [3]આનન,
વિકસેલાં વળી લાલ લોચન;
દિસતાં કમળો સમાં રૂડાં,
અથવા પુષ્પ સમાં પલાશનાં. ૪૨.

કપોળ મંડળ—ગાલનું વર્ણનઃ—

જરી પીળું [4]કપોળ મંડળ,
પ્રતિબિંબો વહતાં સુકુન્ડલ;
મણિ—મોતી જડેલ છે કડી,
[5]કમનીયા હરિ-કાનમાં જડી. ૪૩.

૧ કલ્પવૃક્ષ નીચે. ૨ શરદ કાળનો ચંદ્રમા. ૩ મુખ. ૪ ગાલનું મંડળ કુંડળના પ્રતિબિંબથી જેના ગાલનું મંડળ જરા પીળું દેખાય છે. ૫ સુંદર-મનોહર.

ભગવાન વિષ્ણુની કંધરા (neck) નું વર્ણનઃ—

પૃથુ વર્તુલ ચારુ કન્ધરા,
દીપતી મૌક્તિક-માલથી મહા;
વધતી હરિ—દેહની દ્યુતિ,
અધિકી નીલગિરિ-પ્રભાથકી;
નમતો હરિ—કંઠ છે જરી,
કમલાના ઉર-સાર-ભારથી. ૪૪.

પ્રભુના કંઠનું વર્ણનઃ—

વળી કંઠ વિષે અહો ધરી,
વનમાળા ચરણાવલમ્બિની;
ઘન શ્યામ જ [1]અભ્ર રંગની,
[2]ભુજગાકાર ભુજાન્તરે પડી;
કુસુમે વનમાળ શોભતી
[3]સુષુમા હરિતણી અહો અતિ. ૪૫.

શ્રી હરિના હાથનું વર્ણનઃ—

કમનીય કરો પ્રભુ તણા,
પતિતોદ્ધારણના વ્રતે વસ્યા;
મણિ—કંકણ—કાંતિથી અહા,
કરાગ્ર અંબુજ તુલ્ય શોભતાં. ૪૬.

આંગળીઓનું વર્ણનઃ—

નવ રત્ન મઢેલ વીંટિયો,
પ્રભુની અંગુલીએ સજીઅહો;

૧ વાદળ-આકાશ ૨ સાપના જેવા આકારની લાંબી. ૩ શોભા.

+ હરતા મન ને ,,તિ હરિ,
– કરીને વેણુ—નિનાદ પ્રેમથી. ૪૭.

ઉદર ઊપરના રોમનું વર્ણન —

ઉદર—દ્યુતિને વધારતા,
લહરિ રૂપક રોમ નાભીના,
પશુપાલ—પ્રિયા—સુનેમને,
અતિ આકર્ષણરૂપ એ બને. ૪૮.

શ્રી વિષ્ણુના ઉરુ–સાથળનું તથા જાનુ ઘૂંટણનું વર્ણન

[1] કનક દ્રવ—ગૌર વસ્ત્રને,
ધરતા સુંદર ઉરુ ઊપરે,
હરિ–જાનુ પરે પરૂ દ્યુતિ,
પગના નૂપુરના મણિ તણી ૪૯.

જંઘાનું વર્ણન—

હરિ—જાંઘ અલૌકિકી અતિ
કરિયો શુક્ર ગજેન્દ્ર' સૂંઢથી,
[2] ત્રિજગત્કમનીય છબીની,
વર જંઘા તણી જોડ શોભતી ૫૦.

પગના તળિયાનું વર્ણન —

[3] કુલિશાંકુશ શંખ ચક્રના,
શુભ ચિહ્નો ધ્વજ પદ્મ આદિના,
ધરતા પ્રભુ—ચરણના તળ,
કમનીય અરુણ દ્યુતિ સહ ૫૧.

શ્રી વિષ્ણુના ચરણ યુગલનું વર્ણન.—

[4] વિધિ—શંકર—આદિ દેવના,
મુકુટોના મણિ તેજથી ભર્યા,
પ્રભુના પ્રિય પાદ યુગ્મ આ,
નખ ચંદ્રે સહુ તાપ ટાળતા. ૫૨.

કવિની અભિલાષ —

હરતા ફરતા ય માર્ગમાં,
વદતા ઉંઘી જતાંય ગેહમાં,
વપુ આવું પરેશ તાહરૂં,
હૃદયાબ્જ ભાન થાવ માહરૂં ૫૩

પ્રભુના સમગ્ર રૂપનું વર્ણન —

[1] નવ નીરદ નીલિમા—દ્યુતિ—
ધરતું સુંદર રૂપ આ અતિ,
નિગમો પણ જેમને નમે,
વસજો એ પ્રભુરૂપ [2] મન્મને,
નરકે વળી હું પડું તને,
કરુણા દૃષ્ટિથી તારજો હરે. ૫૪

પુષ્પિતાગ્રા

તવ ચરણ પડી હરિ હું માગું,
કર–દ્વય જોડી વિનમ્રતાથી યાચું
[3] નૃપતિવર કુલમાં ભલે હું જન્મું
ત પિ તને પ્રભુ લેશ હું ન ભૂલું ૫૫

શાર્દૂલ વિક્રીડિત

વાચા નિર્મળ રે સુધા સમ વહી,
જે શીખ આપી મને,
તે સ્વપ્ને પણ ના સ્મરી અરર મે,
ગર્વે કરી નિર્દયે!

+ હરતા મન મિતાંઈ હરિ } ૫ ક તરે
– કરીને વેણુ–સુનાદની કૃતિ }

૧ સોનાના રસ જેવાં પીળા વસ્ત્રને (ધારણ કરતા)
૨ ત્રણે જગતમાં સર્વથી વધારે સુંદર ૩ કુલિશ=અંકુશ
કુલિશ=વજ્ર અને અંકુશ ૪ બ્રહ્મા.

૧ નવ–નવીન વર્ષાકાળનાં નીરદ=વાદળ દ્યુતિ=
તેજ નીલિમ=આસમાની રૂપ વર્ષાકાળના વાદળો જેવું
ઘનશ્યામ સુંદર તેજ જેમનું શરીર ધારણ કરે છે તેવુ પ્રભુનું
રૂપ. ૨ મારા મનમાં ૩ મોટા તના કુળમાં

આ રીત અપરાધ લાખ કરિયા,
તોયે ગણ્યો [1]આપ્ત તેં;
તુંથી મ્હાન દયાનિધિ નથી હરે,
હુંથી ન કો [2]મત્તરે. ૫૬
જા પાતાળ વિષે જ ઇંદ્રપુરી કે,
મેરૂ શિરે તું ભલે;
પારાવાર—મહોદધિ તર ભલે,
આશા શમી ના ઉરે.
આધિ—વ્યાધિ—જરાથી પીડિત
યદિ કલ્યાણ ઇચ્છે સદા;
પીને જીવ "રસાયન [3]શ્રીહરિ",
તું મિથ્યા શ્રમે અન્યથા. ૫૭
જે છે વજ્ર સમાન [4]પાપ-ચયના,
પહાડો સદા તોડતું;
જે છે ઔષધ સિદ્ધ સદ્ય હણવા,
સંસાર વ્યાધિ તણું.
ક્રૂર—ક્લેશ સ્વરૂપ વૃક્ષ દહવા,
જે અગ્નિ રૂપે રહ્યું;
એવું નામ "શ્રીકૃષ્ણ" હાર સુખદું,
સર્વત્ર જય પામતું. ૫૮

૧ પોતાનો; સ્વજન. ૨ પ્રમત્ત; મૂર્ખ. ૩ શ્રીહરિ= "શ્રીકૃષ્ણ" નામનું રસાયન, હે જીવ, તું પીલે. ૪ પાપના ઢગલાના; પાપના સમૂહના, ચય=સમૂહ; ઢગલો.

પૃથ્વી છંદ.

વિષાલ વિષયાટવી તલ—
સુલગ્ન—દાવાનલે,
પ્રચંડ ભડકે મદીય મન,
વ્યગ્ર થૈ [1]પ્રજ્વલે;
સંપૂર્ણ વિકસીત પદ્મ સમ,
માધુરી મંદિરે,
[2]મુકુન્દ મુખ—મંદિરે, મન
[3]ચકોર મારૂં થજો. ૫૯

શિખરિણી

અહો! બેસી ગંગા-સુર નદી
તટે અંતર સુખે,
સમાધિ ધારીને, વિષમ
વિષયો છાડી ઝડપે;
મધુરી મૂર્તિમાં [4]નવ જલદ શા
શ્યામ હરિ પે,
કદા શુદ્ધાત્મા થૈ, મમ મનડું
રે મગ્ન બનશે. ૬૦

इति पंडितराज श्री जगन्नाथ विरचता
करुणा लहरी समाप्त।

૧ બળે છે. ૨ શ્રીકૃષ્ણના મુખરૂપ ચંદ્ર પ્રત્યે ૩ ચકોર પક્ષી. ૪ નવાં વાદળા જેવા ઘનશ્યામ.]



ગીતાગૌરવ ભાગ-પાંચમામાંથી કંઈક—

आत्मसंभाविताः स्तब्धा
धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते
दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

પોતાને મોટા માનનારા, અક્કડબાજ, ધન, માન અને મદમાં મસ્ત એ આસુરી લોક, દંભપૂર્વક વિધિહીન યજ્ઞો દ્વારા નામના મેળવવાને સારૂ કર્મ કરે છે.

ગી૦ ઓ૦—હે અર્જુન, જે પોતાનાજ મનથી પોતામે સર્વ વાતોમા શ્રેષ્ઠ, સન્માન્ય અને પૂજ્ય માને છે, અહંકારથી પૂજનીય વ્યક્તિઓ પ્રત્યે પણ જેઓ વિનયનો વ્યવહાર કરતા નથી, અને પોતાના ધન સપત્તિના નિશામા ચકચૂર રહે છે, એવા આસુરી સ્વભાવના મનુષ્ય, જે યજ્ઞ દાન કરે છે તે શાસ્ત્રની રીતીથી થતા નથી કારણ તેવાઓની પાસે કોઈ યોગ્ય સત્પુરૂષ તો આવતાજ નથી તેમને તો તેમની હા આ હા મેળવનાર, બગલા ભગત ધર્મની ધજા લઈ ફરનારાજ મળે છે જેઓ શાસ્ત્ર વિધિથી શૂન્ય હોય છે. તેથી તેના ફળમાં વૈગુણ્ય (ઉલટો ગુણ) થવુજ જોઈએ. એ લોક શ્રદ્ધા વગર કેવળ પાખંડથી લોકોમા વાહ વાહ કહેવડાવવાને સારૂ યજ્ઞ અને દાનના નાટક રચે છે. તેથી તેમના કર્મ તામસી હોવાને કારણે 'અધો ગચ્છન્તિ તામસા' અનુસાર તેમને નરકજ મળે છે

હ૦ પ્ર૦—મિત્રો, મારા પ્રાણોનું એ સ્વાભાવિક લક્ષણ છે કે તેઓ પોતાને સૌથી નાના સમજે છે, ભગવાનની મહત્તાનો તો કોઈ અંતજ નથી, છતાં પણ યુધિષ્ઠિરના રાજસૂય યજ્ઞમાં અતિથિઓના પગ ધોવાનું કામ પોતે માથે લીધું, તેનું ફળ એ આવ્યું કે, તેમના તરફ સદાએ વાંકી નજરે જોનારા મોટા મોટા આસુરી સંપત્તિવાળીઓએ પણ ભગવાનનેજ અગ્રપૂજાને યોગ્ય માન્યા (શિશુપાળનો વિરોધ બીજી દ્દષ્ટિથી હતો, કારણ કે એક રીતે તેના હાથમાં આવેલી રૂકિમણીનું શ્રી કૃષ્ણે હરણ કરેલુ હતુ) તે સમયે શિશુપાળે જબરદસ્તીથી મોટા બનવાની ઇચ્છા કરી ત્યારે તેનું અસ્તીત્વજ મટી ગયું. મતલબ એ છે કે—તમે સન્માનને યોગ્ય જેઓ હોય તેમનું સન્માન તો કરોજ, પણ તમારાથી નાનાને પણ જેટલું માન આપશો તેટલુંજ તમારૂં માન અધિક વધશે. જે પોતાને સર્વથી મોટો સમજે છે. તે સર્વથી નીચો પડવાનીજ અજાણપણે કોશિષ કરે છે. તમે સારાં કામ કરશો તો આપોઆપજ કીર્તિ અને સન્માન મળશે. જેમ ફળ લોભેલું વૃક્ષ નમેલું રહે છે તેમજ તમારામાં સદ્‌ગુણ હશે તો તમે આપોઆપજ નમી જશો અને સદ્‌ગુણ નહીં હોય તો ઠુંઠા ઝાડના જેવા અક્કડ રહેશો. આસુરી લોકનાં એજ ચિન્હ હોય છે કે, તેઓ ઉદ્ધત અને અક્કડબાજ હોય છે, તેમનામાં ક્ષમા, દયા તથા નમ્રતા હોતી નથી આમ તેમથી ઉતરપંડી કરીને ધન ભેગું કરવાથી તેઓ જાતે પોતેજ ઉભરાઈ બહાર ડહોળાઈ જાય છે. ગોસ્વામીજી કહે છે કે—

> છુદ્ર નદી ભરિ ચલી ઉતરાઈ।
> જસ થોરે ધન ખલ બૌરાઈ॥

ચોમાસામાં નાનાં નાનાં નદી નાળાં વરસાદ થતાજ ઉભરાઈ જાય છે, પણ વરસાદ બંધ થયા પછી એક બે દિવસમાં તો તેમનામાંથી આચમન કરવા જેટલું પણ પાણી મળતું નથી. અને મોટી મોટી ગંગા યમુના આદિ નદીઓ કે તેમા સદાએ પાણી રહે છે તેજ પ્રમાણે નીચ આદમી કે કુ અવસર અનુચિત રીતે ઘણું ધન મેળવીને તેના મદ

અહંકારમાં આવી જાય છે. પરંતુ જે ખાનદાન મનુષ્ય હોય છે તેઓ અમીર હોય કે ગરીબ હોય પણ તેમનામાં ધીરજ, નમ્રતા સભ્યતા અને સદાચાર રહેવાનાંજ. નીચ લોક તેનાથી વિપરીત સદા નાચરંગ, સિનેમા અને ખાનપાનમાં મસ્ત રહીને સર્વ લોક ઉપર પોતાનો પ્રભાવ જમાવીને પોતાને લોકો 'નગર શેઠ' કહે એવી ઇચ્છા રાખે છે. અને તેમ કરતાં જ્યાં તીજોરીનું તળિયું આવ્યું તો પછી હોટેલોમાં માખીઓ મારતા રહે છે. તમે બીજા બધા નિશા વખતે જીરવી શકો (અગર તેનાથી જો નુકશાન થાય તો તમને એકલાને જ થાય) પણ ધનનો નિશો જીરવી શકાતો નથી. એ ચારે તરફ ફેલાઈને ઘણા ઘણા ઉપદ્રવો ઉભા કરે છે. કવિ બિહારીલાલે કહ્યું છે કે–

કનક કનક તે સૌ ગુની, માદકતા અધિકાય ।
યહ ખાયે બૌરાત હૈ, વહ પાયે બૌરાય ॥

કનક (ધંતુરો) થી વધતી કનક (સોનુ) ની માદકતા છે. પહેલાના તો ખાવાથીજ ગાંડપણુ થાય છે, પણુ બીજાના તો મળવાથીજ ગાંડાપણુ થઈ જાય છે. વાત એવી છે કે આજકાલ ધન ઉપાર્જનના ઉપાયજ બહુ દુષિત થઈ ગયા છે. પહેલાં પોતાના વર્ણને અનુસરીનેજ સર્વ લોક જીવન નિર્વાહ કરતા હતા. અને ધન એકઠું થતાં તેના વિતરણના અનેક (યજ્ઞ યાગાદિ) માર્ગ હતા, તેથી ધનની માદકતા એટલી વધતી નહોતી પણ હવે તો સર્વને પોતાની પાશમાં બાંધતું તૃષ્ણાનું દાસત્વ નવાનવા ઉપાયોથી ધનપતિ થવાની ફરજ પાડે છે. બીજાના રોજગાર તૂટી જાય છે કે ગરીબોના મ્હોનો કોળિયો છિનવાઇ જાય છે, તેની પરવાહ રહેતી નથી. અગર જો આ યાંત્રિક કારખાનાંઓ પણ કોઇ શાસ્ત્રીય મર્યાદાથી ચલાવવામાં આવ્યાં હોત—એટલે કે, કાપડની મીલો વણકરોનીજ વ્યવસ્થામાં હોત, તેલની મીલોના માલિક તેલીજ હોત, બૂટના કારખાનાં ચમારોનાજ હોત, ખાંડનાં કારખાનાં ખેડૂતોની માલીકીમાં હોત, દરેક તેરોનાં હરેક કામ કારીગરોના હાથમાં હોત અને કોલેજ વિશ્વવિદ્યાલયોમાં બ્રાહ્મણોજ ભણાવતા હોત તો કળજુગનો રોગ આટલો ન વ્યાપત. શાસ્ત્રીય પદ્ધતીને જો માનીએ તો "મિલ્સ ઍ હાઉસ" માં વેચવા બેઠેલા પંડિતજીને ચમાર તથા કાપડની મીલ સાથે સંબંધવાળા સર્વ વ્યક્તિઓને વણકરજ કહેવા જોઇએ. પણ એ બધું થાય ક્યારે ? જ્યારે 'વર્ણાશ્રમ વ્યવસ્થાપક' ક્ષત્રિય રાજા હોય ત્યારે. આ કુળ કર્મસાંકર્યને કારણે આપણી ધાર્મિક રાજ સત્તા નષ્ટ જ થઈ જવાની અને એ પ્રકારે દુર્નીતિથી સંચિત કરેલું ધન અધોગતિ, અશાંતિને માર્ગેજ ખેંચી જવાનું, તથા એ રીતે આસુરી સંપત્તિના સામ્રાજ્ય વિસ્તારને સુનેરી તક સાંપડી ગઈ છે, પરિણામે—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

જે કામને સારૂ જે યોગ્ય છે તેને હટાવીને તે કામ અયોગ્ય પાસેથી લેવાથી દુષ્કાળ, જુદા જુદા પ્રકારના રોગ તથા લડાઈ ઝઘડા થવાજ જોઇએ. એવા ધન સન્માનમા ડૂબેલા લોકોને પાત્રાપાત્રનો કાંઈ વિવેક તો રહેતો જ નથી. જ્યારે જુવે છે કે, લોકોમાં નિંદા થાય છે, લોકોમાં અસંતોષની માત્રા હદથી વધી ગએલી છે ત્યારે આબરૂ રાખવાને સારૂ કોઈ ધર્મ કર્મનો ઢોંગ રચવાની તૈયારી થાય છે. તેનો વ્યય પોતાની મૂડીમાંથી તો થતોજ નથી, પરંતુ ગ્રાહકો પાસેથી લેવાતી કીમત સાથે એક પ્રકારના કરના રૂપમાંજ છેતરપંડીથી એવાં ફંડ એકઠાં થાય છે અને એ દ્રવ્યનો ઉપયોગ 'પુન્ય ખાતે' થાય છે. થોડા દેવતા સળગાવી તેમાંથી ધૂણી કહાડી બનાવટી યજ્ઞ કરીને હજાર બ્રાહ્મણોને નોતરાં આપવામાં આવે છે, પછીનું દૃશ્ય તો જોવા જેવું બને છે. સમાજની વિષમ અવસ્થાથી થએલા દીન હીન લોકો એક ઉપર એક ઘેટાની પેઠે તૂટી પડે છે, અપમાન થાય છે, અને કદી તીરસ્કાર અને મારામારીના પ્રસંગ પણ ઉભા

થાય છે. એવી દશામાં કદી પણ પ્રભુનો ઉદ્ભવ શી રીતે થઈ શકે ? શું, મહાપુરુષ પેદા થઈ શકે ? કદાપિ નહીં અને પછી કહેવામાં આવે છે કે બ્રાહ્મણો અને દેવતાઓમાં કોઈ શક્તિ રહેલી નથી સમાજને દૂષિત કરનારા ધનિકોના દોષ, અને તેનું કારણ ધર્મને માથે ઓઢાડવામાં આવે. ધર્મ અને ધાર્મિક લોક તો એવા પ્રપંચોથી દૂર જ રહે છે.

અગર કર્મ કર્તાની નિયત સારી પણ હોય, તો પણ જો જરા જેટલું પણ વૈગુણ્ય થઈ જાય તો, તેનાથી અનુષ્ઠાનનું વિપરીત ફળ થાય છે, તે ત્યાં સુધી કે મંત્રોચ્ચારણમાં, માત્ર અવાજ જ યથારીતે ન નીકળતાં જો જરા ઉંચોનીચો થઈ જાય તો પણ યથોક્ત ફળ મળતું નથી. શબ્દ શાસ્ત્રકાર મહામુનિ પાણિનિજી કહે છે—

मन्त्रो हीन स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात् ॥

મંત્રોના ઉંચા નીચા ઉચ્ચારણ અગર એકાદ અક્ષરની ગરબડથી ઇપ્સિત અર્થ નીકળતો નથી. એ મંત્ર ઉલટો વાણીરૂપ વજ્ર બનીને યજમાનનો નાશ થઈ જાય છે, જેવો કે 'ઇન્દ્રશત્રુ' શબ્દની ગડબડથી વૃત્રનો હતો.

મિત્રો, એ વાત એવી છે કે એકવાર દેવ પિતૃદેવ ઇન્દ્રને થોડી આસુરી સંપત્તિની હવા લાગી. એક દિવસ એ ત્રિલોકના ઐશ્વર્યથી મસ્ત થઈને શચીની સાથે સિંહાસન ઉપર બેઠેલો હતો. આગળ પાછળ એ ઓગણપચાસ મરુત, બાર આદિત્ય, અગિયાર રુદ્ર દશ વિશ્વેદેવા, આઠ વસુ તથા ગંધર્વ અપ્સરા આદિ ઋષિ મુનિઓનો સમુદાય બેઠો થયેલો હતો. તેટલામાં સ્વર્ગના ગુરુ, બૃહસ્પતિજી દરબારમાં આવ્યા પણ ન તો ઇન્દ્ર ઊભો થયો કે ન તો તેમનો સત્કાર કર્યો, એટલું જ નહીં પણ સિંહાસન ઉપર બેઠે બેઠે માથું પણ નમાવ્યું નહીં. નિરાદરથી બૃહસ્પતિજીએ જોયું કે આ ઐશ્વર્ય મદનો દોષ છે. તેઓ તરતજ ત્યાંથી પાછા વળી ગયા અને યોગ બળથી અન્તર્ધાન થઈ ગયા. જ્યારે ઇન્દ્ર સચેત થયો ત્યારે તેને ઘણો પસ્તાવો થયો પણ હવે શું થાય ? આ રાજા અને મંત્રીના અણબનાવની ખબર દૈત્યોને મળી ગઈ. તેઓ તો લાગ જોઈનેજ બેઠા હતા, શુક્રાચાર્યના આદેશ અનુસાર સ્વર્ગ ઉપર ચઢાઈની નોબત વાગી, લડાઈ થઈ તેમાં દૈત્યોને સફળતા મળી. દેવતા લોક રોતા કકળતા બ્રહ્માજી પાસે ગયા ત્યારે તેમણે કહ્યું કે—તમે ત્વષ્ટાના પુત્ર વિશ્વરૂપ ઋષિની શરણમાં જાઓ, એ સાચા સંયમી અને તપસ્વી બ્રાહ્મણ છે. જો તેઓ તમારા પુરોહિત થઈ જશે તો તમારો બેડો પાર થઈ જશે. દેવતા લોકો વિશ્વરૂપના આશ્રમમાં ગયા અને તેમને ઘણી રીતે સમજાવ્યા કે—તમારે અમારી ગુરુજન (દેવતાઓની) તથા આપના પિતૃજનની સહાયતા અને સેવા (માર્ગદર્શન) કરવી જોઈએ. વળી આપ બ્રહ્મનિષ્ઠ છો તેથી અમારા પણ ગુરુ છો, તેથી કૃપા કરીને અમારા પુરોહિતનું પદ સ્વીકારો.

તેના જવાબમાં પરમ તપસ્વી વિશ્વરૂપે કહ્યું—પુરોહિતનું કામ બ્રહ્મતેજને ક્ષીણ કરનાર છે, તેથી ધર્મશીલ મહાત્માઓ તેની નિંદા કરે છે. અમે અકિંચન જન કોઈ પણ સંગ્રહ કરતા નથી પરિગ્રહ રાખતા નથી. અમારી પાસે, ખેતરમાં પાકેલું અન્ન લણી લીધા પછી ત્યાં પડેલા દાણા વીણી તેનાથી દેવ કાર્ય તથા પિતૃ કાર્ય કરવું, એટલું જ માત્ર પૂંજીમાં હોય છે. એ રીતે મારી જીવિકા ચાલે છે તો પછી હું નિંદનીય વૃત્તિનો ગ્રાહક કેમ બનું ? તો પણ આપ લોકેશ્વરોની પ્રાર્થનાને પણ હું ટાળી શકતો નથી. થોડા દિવસને માટે આપની પ્રાર્થનાનો હું સ્વીકાર કરું છું. આ પ્રકારે દેવતાઓ દ્વારા વિશ્વરૂપનું વરણ થઈ ગયા પછી ઘણા આનંદની સાથે તેઓ પુરોહિતનું કામ કરવા લાગ્યા. જો કે શુક્રાચાર્યે પોતાના નીતિ

બળથી દૈત્યોને સુરક્ષિત રાખેલા હતા, તો પણ સમર્થ વિશ્વરૂપે પોતાની વિદ્યાના પ્રભાવથી તેમની સર્વ સંપત્તિ છિનવી લઈને તે ઈન્દ્રને અપાવી દીધી.

થોડા દિવસ પછી દેવતાઓની સાથેનો વિશ્વરૂપનો સંબંધ વિકૃત રૂપથી તૂટી ગયો. વિશ્વરૂપના પિતા તો આદિત્ય ત્વષ્ટા હતા પણ માતા દૈત્યકુળની હતી, તેથી વિશ્વરૂપ સ્નેહવશ થઈ ગુપ્ત રીતે દૈત્યોને પણ યજ્ઞભાગ આપ્યા કરતા હતા. ઇન્દ્રને ખબર પડી કે એ રીતે તેઓ પોતાનો અપકાર અને ધર્મને નામે કપટ કરે છે, વખતે તેઓ દૈત્યોનું બળ વધારીને હમારો નાશ પણ કરી દે. એવો વિચાર કરીને ઇન્દ્રે વિશ્વરૂપનો શિરચ્છેદ કરાવી દીધો. એ રીતે વિશ્વરૂપનું મૃત્યુ થયા પછી તેમના પિતા ત્વષ્ટાને ઘણોજ ક્રોધ ચડયો અને તેમણે તેનો બદલો ઇન્દ્રને આપવાનો નિશ્ચય કર્યો અને—

"इन्द्रशत्रुर्विवर्धस्व स्वाहा" 'ઇન્દ્રશત્રુની અભિવૃદ્ધિ થાઓ' એ મંત્રથી તેમણે યજ્ઞ કર્યો, પણ 'ઇન્દ્રશત્રુ' શબ્દ બોલવામાં સ્વર ઉપર ધ્યાન રાખ્યું નહીં. તેના ઉચ્ચારણથી એ અર્થ નિકળતો હતો કે 'ઇંદ્ર જે શત્રુ છે તેની' નહી કે 'ઇંદ્રના શત્રુની' બસ થોડીજ વારમાં યજ્ઞ કુંડમાંથી મહા ભયાનક વૃત્ર નામક રાક્ષસ પેદા થયો અને અંતમાં મંત્રના અર્થ અનુસાર તે ઇંદ્ર દ્વારા મરાયો. એક જરા જેટલી ત્રુટી થઈ જવાથી યજ્ઞ કર્મમાં કેટલો અનર્થ થાય છે તેનું નિદર્શન વૃત્રાસુર વધ છે. આ ઘોર કળીકાળમાં તો યજ્ઞની અનેક સાધન-સામગ્રીઓ દૂષિત થઇ ગએલી છે. ઘીને બદલે જે આ આસુરી લોકોએ 'વનસ્પતિ ઘી' બનાવેલું છે તેમાં કાસ્ટિક સોડા, ગિલટ ધાતુની ધૂણી તથા કદી કદી માછલીનું તેલ નાખવામાં આવે છે. એવી ચીજોથી તથા અજ્ઞાનમૂલક વિધિઓ દ્વારા જે દેવકાર્ય કે પિતૃકાર્ય થાય તેનાથી દેવ કે પિતર કદાપિ તૃપ્ત થવાના નથી બલ્કે રાક્ષસ અને પિશાચજ તૃપ્ત થવાના, યજ્ઞાદિ કર્મોમાં શાસ્ત્રોક્ત વિધિને પૂરેપૂરી રીતે માનવી જોઇએ, ત્યારેજ તેનું યથાર્થ ફળ થાય. પરંતુ ઉપરનો દેખાવ કરી કેવળ વાહવાહને સારૂ જે લોક એવાં કર્મ કરે છે તેમાં ઘણીએ ત્રુટિઓ રહી જાય છે. જ્યારે માત્ર સ્વરના અપરાધથી યજમાન વૃત્ર માર્યો ગયો ત્યારે વિધિહીન તામસ યજ્ઞ કરનારાની એટલી દુર્ગતી થાય કે તેનું કાંઇ ઠેકાણુંજ ન રહે. લોકોમાં નામના થાય એ ઇરાદેથી શર્માશર્મી પૂજા કરવી એ તામસી પૂજા છે એનું કોઈ ફળ થતું નથી. ચતુર લોક જેમ નકલી વાછરડું બતાવી ગાયનું દૂધ દોહી લે છે તેમજ આસુરી સ્વભાવના લોક અનેક આશાઓ રાખીને યજ્ઞાદિ નામનું બહાનું બતાવી અનેક લોકોને લૂટે છે. એવા યજ્ઞોનેજ ભગવાન નામ માત્રના યજ્ઞ કહે છે. એજ પ્રમાણે આસુરી લોકોનાં, તેમનાં કહેવાતાં બીજા સત્કર્મોના સંબંધમાં સમજી લેવું.

અહીં સુધી ભગવાને આસુરી લોકોના ધર્મનાં બહિરંગ સાધનોની અયથાર્થતા, નિરર્થકતા બતાવી. દાન, યજ્ઞ આદિ બહિરંગ સાધનોની સફળતાનું કારણ જે ભાવ શુદ્ધિ છે, તે તે લોકોમાં હોતી નથી. ભાવ શુદ્ધિનો હેતુ જે વિવેક, વૈરાગ્ય અને પ્રભુ ભક્તિ, આ અંતરંગ સાધનોનો પણ આસુરી લોકોમાં અભાવજ હોય છે. તેનું નિરૂપણ કરતાં અને આસુરી સંપત્તિનો ઉપસંહાર કરતાં ભગવાને જે કહ્યું છે તેને માટે ગીતાગૌરવ ભાગ-પાંચમો છપાઈ રહ્યો છે. તેમાં જોઈ લેવું.



વામમાર્ગ.

(લે૦—શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનન્દજી સરસ્વતીનાઉ પદેશ)

(અનુવાદક અને પ્રેષક—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ)

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्॥
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात्परतरं नहि॥

कु० तन्त्र।

સર્વોત્તમ ઉપાસના વેદ છે અર્થાત્ વૈદિક કર્મકાંડ રૂપ ઉપાસના સર્વશ્રેષ્ઠ છે પણ સાધારણ મનુષ્યને વેદ—વૈદિક કર્મકાંડ બોધગમ્ય ન હોવાથી વૈદિક કર્મકાંડ ઉપાસનામાં બધાનો અધિકાર નથી, તેથી અલ્પજ્ઞ મનુષ્ય માટે વિષ્ણુ ઉપાસના ઉત્તમ છે ચિતિશક્તિનું દર્શન કરવું વા ચેતન સ્વરૂપ આત્માજ ખંડ પ્રાણ અને મહાપ્રાણરૂપમાં અથવા જીવ અને ઈશ્વર રૂપમાં રહેલ છે, તેનો અનુભવ કરવો એજ વિષ્ણુ ઉપાસના છે વા વિષ્ણુની સામે બેસવું છે પ્રાણ કે વિષ્ણુ એકજ છે પ્રાણનો ધર્મ ચેતનમય થવું, આર્દ્ર થવું, ભક્તિગદ્ગદ થવું, એ છે તેથી વિષ્ણુ ઉપાસના ભક્તિપ્રધાન છે જો કે જ્ઞાન, ભક્તિ અને કર્મનો સમન્વય ન કરવાથી આત્મલાભ થતો નથી, તો પણ વિષ્ણુ ઉપાસનામા જ્ઞાનકર્મ કાંઈક ગૌણ અને ભક્તિ મુખ્ય છે વિષ્ણુ ઉપાસનાથી શિવ ઉપાસના ઉત્તમ છે કેમકે, અમંગલ, અકલ્યાણ, દુઃખ, શોક, અને તાપરહિત થવું, એજ શિવ ઉપાસના છે અર્થાત્ જ્યારે તમારા જ્ઞાનમા દુઃખ, શોક, તાપ, વગેરે નહિ રહે અને કેવળ કલ્યાણ કલ્યાણનોજ અનુભવ થતો રહેશે, ત્યારે તમારી શિવ ઉપાસના થાય છે, એમ જાણશો. અકલ્યાણનો ત્યાગ કરી કલ્યાણના સંનિધ્યને પ્રાપ્ત કરવું, એજ શિવ ઉપાસના છે જ્ઞાન વા શંકર એકજ છે, તેથી શિવ ઉપાસના જ્ઞાનપ્રધાન છે ભક્તિ અને કર્મ ગૌણ છે શિવ ઉપાસનાથી દક્ષિણ ઉપાસના શ્રેષ્ઠ છે કારણ કે દક્ષિણામૂર્તિનો અર્થ ગુરૂ વા જ્ઞાન છે આત્મા વા ઈશ્વરને પોતાના બોધ—જ્ઞાનરૂપમા જાણવો કે પ્રાપ્ત કરવો એજ દક્ષિણ ઉપાસના છે દક્ષિણ ઉપાસનાથી વામ ઉપાસના ઉત્તમ છે કેમકે, વામ શબ્દનો અર્થ પરમ સુંદર વામમાર્ગનો સત્ય અર્થ અહોરાત્ર્ય દ્વારા શોભાયમાન પથ મહર્ષિ યાજ્ઞવલ્કયે ઈશાવાસ્ય ઉપનિષદ્‌ના છેલ્લા મન્ત્રમા "સુપથા" કહીને આ વામ માર્ગનોજ નિર્દેશ કર્યો છે સાધારણ માણસની સમજણ માટે ઉક્ત મન્ત્ર અને તેનો અર્થ નીચે સંનિવેશિત કરૂં છું

अग्ने नय सुपथा रायऽस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम॥

હે કર્મમય વૈશ્વાનર ! હે યજ્ઞહવ્યના વાહન ! આશ્રમ ધર્મના નિત્યકેન્દ્ર અગ્નિ ! તમે અમ લોકોને પુનરાવર્તન રહિત અહોરાત્ર્યમા શોભાયમાન પથમાં બ્રહ્મ સારૂપ્યમા લઈ ચાલો હે દેવતા ! હે પરમાત્મન્ ! તમે કર્મ અને જ્ઞાન બન્નેના જ્ઞાતા છો કારણ કે જ્ઞાન અને કર્મ બન્ને તમારૂં સ્વરૂપ છે તમે ઉભય લિંગ પરમાત્માનીજ મૂર્તિ છો. તમે

અમોને તમે તમારા ચિન્મય વિશ્વરૂપને અચેતન, મિથ્યામય, જગત્માત્ર રૂપમાં દર્શન કરવારૂપ વંચનામય અને કુટિલ દ્રષ્ટિમય સકલ પાપોથી અમોને મુક્ત કરો. અમારાં બધાં પાપો નાશ કરો. પુનઃ પુનઃ તમોને પ્રણામ હો.

અરે ! વામ માર્ગનો અર્થ વ્યભિચાર નથી, ઐચ્છિક આહાર વિહાર નથી, પણ પરમ સુંદરતામાં મુગ્ધ થઈ જવું પડે છે. જે ઉપાસના બ્રહ્મનું શક્તિના તરફથી દર્શન કરાવે છે, અર્થાત્ જે ઉપાસના દ્વારા બ્રહ્મમહીમા, બ્રહ્મશક્તિ અને બ્રહ્મ ઐશ્વર્યાદિનો અનુભવ થતો રહે છે, તેમજ પોતાની સત્તા રાખી શકાતી નથી પણ કેવળ અર્ધ નારીશ્વરનો વામ ભાગ વા શક્તિ ભાગનોજ અનુભવ થતો રહે છે, તેજ ઉપાસના વા પથનું નામ વામ માર્ગ છે.

આ વામ ઉપાસનામાં ઉત્તીર્ણ એક માત્ર શંકર જ છે, કેમકે બ્રહ્મૈશ્વર્ય વા બ્રહ્મવિદ્યા ઉમા તેના સદા અંકમાં રહેલાં છે, પરન્તુ બિન્દુમાત્ર કામનો ગન્ધ પણ નથી. મહર્ષિ વ્યાસ આ વામદેવનું વર્ણન કરતાં બોલ્યા છે કે:—

गौरीनिरन્तरविभूषितवामभागं
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारम् ।

અર્થાત ગૌરી વા પરમ સુંદરી કે સમસ્ત રૂપ જેના રૂપની ચિનગારી માત્ર છે. એવી જે સમષ્ટિ રૂપ ભગવતીથી નિરન્તર જેનો વામ ભાગ વિભૂષિત છે, છતાં પણ નારાયણ પ્રિય એવા તેને કામદેવની શક્તિ થોડી પણ જેને ચલાયમાન કરી શકતી નથી, કામ જ્યાં ભસ્મીભૂત થઈ જાય છે, એવો જે બ્રહ્મલગ્ન પુરુષ તેને વામદેવ જાણવો.

વામમાર્ગમાં અધિકારી કોણ છે, તે મેરુ તન્ત્રમાંથી થોડું સંભળાવું છું.

परद्रव्येषु योऽन्धश्च परस्त्रीषु नपुंसकः ।
परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥
तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे स्यादधिकारिता ।
अयं सर्वोत्तमो धर्मः शिवोक्तः सर्वसिद्धिदः ॥
जितेन्द्रियस्य सुलभो नान्यस्यानन्तजन्मभिः ।

જે પર દ્રવ્યમાં અન્ધ છે, અર્થાત્ પારકાના દ્રવ્ય તરફ જે જોતો નથી, અને બીજાની સ્રીમાં પોતાને નપુંસક માને છે. તેમજ બીજાનું ખરાબ બોલવામાં જે મૂંગો છે અને સર્વદા જિતેન્દ્રિય છે તેજ બ્રાહ્મણ આ વામ માર્ગનો અધિકારી છે.

આ સર્વોત્તમ ધર્મ શિવનો કહેલો સર્વ સિદ્ધિ આપનાર છે તે જીતેન્દ્રિય પુરૂષને સુલભ છે અને બીજાને અનન્ત જન્મે પણ સહેલો નથી.

તમે બીજી રીતે વામ માર્ગને દેવયાન માર્ગ કહી શકો છો. વામ માર્ગથી સિદ્ધાન્ત વા વેદાન્ત ઉત્તમ છે. અન્ય તન્ત્ર પણ કહે છે કે—उत्तमो ब्रह्मसद्भावः અર્થાત્ अहं ब्रह्मास्मि—"હું જ બ્રહ્મ છું" આ પ્રકારના જ્ઞાનમાં સ્થિર થઈ જવું એજ ઉત્તમ ઉપાસના છે. પણ આ વેદાન્ત ઉપાસના વા બ્રહ્મસદ્ભાવ કેવળ જ્ઞાની માટેજ બતાવવામાં આવેલ છે. આ કેવળ સંન્યાસીનેજ કરવા યોગ્ય છે. સંસારીને માટે આ અતિશય કઠિન છે. સિદ્ધાન્તથી કૌલ ઉત્તમ છે. કારણ કે કૌલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થવાથી ઈશ્વર અને પરબ્રહ્મ બન્નેનો પ્રકાશ થાય છે. પરબ્રહ્મ પરમાત્મા અને ઈશ્વર એકજ છે. બ્રહ્મ છોડીને કોઈ કે કાંઈ નથી એમાં કોઈ પ્રકારનો સંશય રહેતો નથી. ઉક્ત કૌલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થવાથી મનુષ્ય વેદાન્તના सर्वं खल्विदं ब्रह्म એ મહામન્ત્રનો દ્રષ્ટા થાય છે, ઋષી થાય છે.

કુલ અર્થાત્ કિનારો, અકુલ અર્થાત્ સમુદ્ર, કુલ—શક્તિ—સગુણ બ્રહ્મ કે ઈશ્વર છે. અકુલ-

શિવ કે પરબ્રહ્મ—પરમાત્મા છે એમ સમુદ્રના કિનારા પાસે જવાથી કાંઠો અને સમુદ્ર બન્નેને જાણી શકાય છે, તેજ રીતે કૌલજ્ઞાન થવાથી પર બ્રહ્મ પરમાત્મા અને સગુણ બ્રહ્મ બન્નેને જાણી શકાય છે. કારણ કે સગુણ બ્રહ્મજ નિર્ગુણ બ્રહ્મને જાણે છે. અન્ય કોઈ જાણી શકતું નથી तद् ब्रह्म वेदते ब्रह्मयोनिम् (श्वे० उ०) તેથીજ સગુણ બ્રહ્મના સ્થાનમા જવાથી અર્થાત્ સગુણ બ્રહ્મનું સારૂપ્ય પ્રાપ્ત કરવાથી—સગુણ બ્રહ્મ વા ઈશ્વર થવાથી પર બ્રહ્મ પરમાત્માને જાણી શકાય છે

સાધકગણ ! વધારે સમય વિલંબ ન કરતા આગળ ધાઓ. તમારે મસ્તકે પરમ ગુરુનો અભયકર સ્થાપિત હો તમે વૈકો કૌલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરો અર્થાત્ કુલ—શક્તિ કે ઈશ્વર, અને અકુલ—શિવ કે બ્રહ્મને એકજ બોલીને ઓળખી લ્યો તેમજ પાછળ રહેલા બધા ભાઈઓને પથપ્રદર્શન કરો

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते ।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते ॥

—कु० तन्त्रम्

કુલ એટલે શક્તિ અને અકુલ એટલે શિવ કહેવાય છે કુલમા અકુલના સંબન્ધને કૌલ કહેવામાં આવે છે

સાંભળો સાધકો ! આ જે વિષ્ણુ ઉપાસના અને શિવ ઉપાસના વિગેરે કહી જુદી નથી. આ સાધનાનો સ્તર વા ક્રમ છે પહેલી વિષ્ણુ ઉપાસના અર્થાત્ ચેતન વા પ્રાણ ઉપાસના છે તે પછી શિવ ઉપાસના અર્થાત્ ઉક્ત વિષ્ણુ વા પ્રાણને પરમ કલ્યાણ સ્વરૂપ મહેશ્વરરૂપમા જાણવો પછી દક્ષિણામૂર્તિ વા ગુરૂની ઉપાસના છે અર્થાત્ ઉક્ત પરમ કલ્યાણ સ્વરૂપ મહેશ્વરને પોતાના જ્ઞાન-બોધરૂપે જાણવો પછી વામ ઉપાસના અર્થાત્ ઉક્ત ગુરૂ જે પરમસુન્દર, સમસ્ત રૂપ, સમસ્ત સુંદરતા એ મારા ગુરુનીજ વા જ્ઞાનનીજ છે એમ જાણવું, પછી બધાનો પોતામા બોધ કરવો અર્થાત્ બધા નામ, બધા રૂપો, બધી શક્તિ, ઇત્યાદિ મારાજ છે એ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને ગ્રહણ અને ત્યાગના અભાવજન્ય કર્મથી મુક્ત થઇ "હું જ બ્રહ્મ" એ જ્ઞાનમાં શાન્ત થઈ જવુ એજ સિદ્ધાન્ત વા વેદાન્ત ઉપાસના છે ઉક્ત સિદ્ધાન્ત વા વેદાન્ત ઉપાસનાની પાકી અવસ્થા અર્થાત્ "હું જ બ્રહ્મ છુ" એ જ્ઞાનમા અવિશ્વાસ અને સંશય રહિત થઈ હું બ્રહ્મ છું એ જાણીને, માનીને બ્રહ્મ થઈ જવુ એજ કૌલ જ્ઞાન છે સગુણબ્રહ્મ વા ઈશ્વરજ કૌલજ્ઞાની પુરૂષ છે

नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥

આત્માનુભવ

(લેખક—શિકારરાય બાલાભાઈ દેસાઈ.)

આ વિશ્વમા પાંચ પ્રકારની ભ્રાંતિ છે, જીવ તથા ઈશ્વર ભિન્ન છે આ પહેલી ભ્રાંતિ, કર્તા ભોક્તા પણ વસ્તુતાએ આત્મામા રહ્યુ છે આ બીજી ભ્રાંતિ, આત્મા ત્રણ શરીરોના સંયોગથી સંગી છે આ ત્રીજી ભ્રાંતિ, જગતનું કારણ બ્રહ્મ વિકારી છે આ ચોથી ભ્રાંતિ અને કારણથી ભિન્ન જગત્ સત્ય છે આ પાંચમી ભ્રાંતિ છે બિંબ અને પ્રતિબિંબના દર્શન વડે ઈશ્વરના અને જીવના ભેદની ભ્રાંતિ દૂર

થઈ, રક્ત સ્ફૂટિકના દર્શન વડે આત્માના વાસ્તવિક કર્તા લોકતાપણાના ભ્રમની નિવૃત્તિ થઈ, ઘટાકાશના તથા મહાકાશના દર્શન વડે આત્માના સંગીપણાની ભ્રાંતિ નાશ પામી, કનકના અલંકારો જોવાથી કારણના વિકારીપણાની ભ્રાંતિ નિવૃત્ત થઈ, અને રજ્જુ સર્પના દર્શનથી કારણથી ભિન્ન જગતના સત્યપણાનો ભ્રમ મટી ગયો. "હું બ્રહ્મ છું, અને જે કાંઈ આ દેખાય છે તે ગંધર્વનગર જેવું વા મૃગજલ જેવું મિથ્યા છે" એમ ભાવના કરો. "જગત્ મિથ્યા છે" એવી ભાવનાથી ચિત્ત ક્ષય પામી સામાન્ય ચૈતન્ય સત્તાની પ્રાપ્તિ થાય છે, અર્થાત્ સહજાકાશનો અનુભવ થાય છે. ચિત્ત વાસનારહિત સ્થિર થાય તે ધ્યાન, ને અંતઃકરણમાં શીતલતા રહે તે સમાધિ છે. "હું કર્તા છું" એવી ઘન વાસના સર્વ દુઃખ આપનારી છે તેથી તે વાસનાને ક્રમાત જતી કરવી. અંતઃકરણમાં શીતલતા હોય તો જગત્ શીતલ જણાય છે, અને અંતઃકરણ તૃષ્ણાથી તપતું હોય તો જગત્ દાવાનલ જેવું જણાય છે. જે આત્મામાંજ પ્રીતિવાળો છે, અને કર્મેન્દ્રિયો વડે ક્રિયા કરે છે, પણ હર્ષ શોકને વશ થતો નથી તે સમાહિત કહેવાય છે. સર્વ ભૂતોને પોતાના જેવાં જુએ, પર દ્રવ્યોને માટીના ઢેફા સમાન જાણે, ને જેને સ્વભાવથીજ ભયાદિ નથી તે જ્ઞાની છે. જ્ઞાની જનોનાં મન, હાથી જેમ ગાયના પગલાના જલમાં ડુબી જાય નહિ, તેમ સંસારમાં ડુબતાં નથી, અને અજ્ઞાનીઓનાં મન, મચ્છર જેમ ગાયના પગલાના જલમાં ડુબી જાય તેમ સંસારમાં ડુબી જાય છે. અંતઃકરણમાંથી સર્વ વસ્તુનો પરિત્યાજ કરવાથીજ આત્માની પ્રાપ્તિ થાય છે તેથી આત્માના અનુભવ માટે સર્વનો પરિત્યાગ કરવો. મોક્ષ આકાશમાં નથી, પાતાલમાં નથી, ને ભૂતલમાં પણ નથી; સર્વ આશાનો સારી રીતે ક્ષય થતાં ચિત્તનો ક્ષય થાય તે મોક્ષ કહેવાય છે. જે જગત્માંથી સ્નેહ ત્યજી સર્વના અધિષ્ઠાનરૂપ સચ્ચિદાનંદ બ્રહ્મમાં જીવે છે તે જીવનમુક્ત કહેવાય છે. જેમ મહાન પર્વતને મંદ પવન ક્ષોભ પમાડી શકે નહિ તેમ બ્રહ્મવેત્તાના વિશાળ ચિત્તને કામાદિ શત્રુઓ લેશ પણ ક્ષોભ પમાડી શકતા નથી.

જેને કાંઈ ઇચ્છા હોય તે તેની સિદ્ધિને માટે સાધન કરે છે, ઇચ્છારહિત પરિપૂર્ણને કદી પણ ઇચ્છા સંભવતી નથી. સર્વ ઇચ્છાઓનો સમૂહ સારી રીતે શાંત થયે આત્માની પ્રાપ્તિ થાય છે. ઇચ્છા રહિત થયેલો પુરૂષ સિદ્ધિઓના સમૂહને કેમ ઇચ્છે? સૂર્ય અત્યંત શીતલ થાય, ચંદ્ર અત્યંત ઉષ્ણ થાય ને અગ્નિ નીચી જવાળાવાળો થાય તો પણ જીવનમુક્તને વિસ્મય થતો નથી. દોરડીમાં સર્પની પેઠે અધિષ્ઠાનરૂપ પરમ તત્વ વિષે કલ્પિત આશ્ચર્ય સમૂહોમાં જ્ઞાનીને કુતૂહલ ઉપજતું નથી. સુખ દુઃખ જેના ચિત્તને ચલાયમાન કરી શકતાં નથી તેનું ચિત્ત મરણ પામ્યું એમ જાણવું. ચિત્તનો નાશ બે પ્રકારનો છે, સરૂપ અને અરૂપ. જીવનમુક્તના ચિત્તનો સરૂપ નાશ થાય છે ને વિદેહમુક્તના ચિત્તનો અરૂપ નાશ થાય છે. ચિત્તના સદ્ભાવ વડે દુઃખ ને ચિત્તના નાશ વડે સુખ થાય છે. માટે ચિત્તના સદ્ભાવનો ક્ષય કરવો. ચિત્તરૂપ વૃક્ષનાં બે બીજ છે, એક પ્રાણની ગતિ, ને બીજી દૃઢ વાસના. જ્યારે પ્રાણની ગતિ થાય છે ત્યારે ચિત્ત જાગ્રત થાય છે તેમજ વાસનાથી પણ ચિત્ત ચલાયમાન થાય છે. પ્રાણાયામ વડે અને ધ્યાન વડે ચિત્ત શાંત થાય છે દૃઢ વેગ વડે પૂર્વાપરનો વિચાર ત્યજી પદાર્થનું જે ગ્રહણ તે વાસના કહેવાય છે. જ્યાં સુધી મન વિલીન ન થાય ત્યાં

સુધી વાસનાનો ક્ષય થતો નથી, જ્યાં સુધી વાસના ક્ષીણ ન થાય ત્યાં સુધી ચિત્ત શાંત થતું નથી ને જ્યાં સુધી તત્વનું વિજ્ઞાન ન થાય ત્યાં સુધી ચિત્તની શાંતી ક્યાંથી થાય ? જ્યાં સુધી ચિત્ત શાંત ન થાય ત્યાં સુધી તત્વજ્ઞાન થાય નહિ—જ્યાં સુધી વાસનાનો નાશ ન થાય ત્યાં સુધી તત્વજ્ઞાન કેમ થઈ શકે ? અને જ્યાં સુધી તત્વજ્ઞાન ન થાય ત્યાં સુધી વાસનાનો ક્ષય પણ ન થાય, એવી રીતે તત્વજ્ઞાન, મનોનાશ અને વાસનાક્ષય પરસ્પર કારણપણાને પામે છે. જીજ્ઞાસુએ ભોગેચ્છાનો દૂરથી ત્યાગ કરી એ ત્રણેનો સાથે ચીરકાલ અભ્યાસ કરવો જોઈએ. ત્રણેનો ચીરકાલ આદર પૂર્વક સાથે અભ્યાસ કરવામાં આવે તો હૃદયની દૃઢ ગ્રંથીઓ નિ:શેષ તુટી જાય છે. શ્રી ગુરૂએ આપેલી યુક્તિ વડે પ્રાણાયામનો દૃઢ અભ્યાસ કરવાથી તથા આસનની ને ભોજનની યુક્તિથી પ્રાણની ગતિ નિરોધ પામે છે. નિ:સંગ રહી વ્યવહાર કરવાથી, સંસારના સત્યપણાની ભ્રાંતિ ત્યજવાથી ને શરીરનો વિનાશ વિચારવાથી વાસના દૂર થાય છે. જેમાં વાસના લીન થએલી છે એવી સુષુપ્તિ મોક્ષ આપનારી નથી, પણ જેમાં વાસના નિર્બીજ થયેલી છે તે તુર્યા મોક્ષ આપનારી જણાય છે. વાસના, અગ્નિ, ઋણ, વ્યાધિ, શત્રુ, સ્નેહ, વૈર ને વિષ થોડા અવશેષ રહ્યા હોય તો પણ પીડા કરે છે તેથી તેમનો નિ:શેષ નાશ કરવો જોઈએ. નાસિકાની બહાર બાર આંગળ નાસિકા દ્વારા નીકળેલો પ્રાણ લીન થાય છે, ને ત્યાંથી ઉઠેલો અપાન શરીરના અંતર હૃદયમાં લીન થાય છે. તે સ્થલના ચૈતન્યમાં ક્રમથી જ્યારે પ્રાણ બહાર નીકળી અપાનમાં અસ્ત પામ્યો હોય ને ત્યાંથી અપાનનો ઉદ્ભવ ન થાય ત્યાં સુધી, તથા અપાન હૃદયમાં લીન થયો હોય ને ત્યાંથી પ્રાણનો ઉદ્ભવ ન થાય ત્યાં સુધી, ચિત્તને સ્થિર કરવું. આથી પ્રાણની તથા ચિત્તની સ્થિરતા થાય છે. બુદ્ધિ વડે આ સર્વ સમજીને જો તમે નિશ્ચલ રહેશો તો અહંકારનો વિલય થયે તમેજ પરમ પદ છો. "અદ્વિતીય, આદિ અંતથી રહિત, ચિન્માત્ર, અવિદ્યાદિ મલથી રહિત, વ્યાપક અને આકાશથી પણ અતિ સૂક્ષ્મ જે બ્રહ્મ છે તે હું છું એમાં સંશય નથી. હું બદ્ધ નથી, હું મુક્ત નથી પણ નિરામય બ્રહ્મજ છું. દ્વૈત ભાવથી વિમુક્ત છું ને સચ્ચિદાનંદ રૂપ છું" એવી ભાવના યત્ન વડે કરો, તેથી જીવનમુક્ત થશો. આ રમ્ય છે અને આ રમ્ય નથી, આવી ભાવના દુ:ખના પ્રવાહનું મૂલ છે તેને સમભાવરૂપ અગ્નિ વડે દગ્ધ કર્યા પછી દુ:ખનો અવસર ક્યાંથી ? જે કોઈ સર્વ ભૂતોને પોતાના આત્મામાંજ જુએ છે, અને સર્વ ભૂતોમાં પોતાના આત્માને જુએ છે, તે બ્રહ્મને પામે છે. સમાધિમાં સ્થિર થયેલો જ્યારે સર્વ ભૂતોને જોતો નથી, ને પરમાત્માથી એકીભૂત થાય છે ત્યારે તે કેવલરૂપ થાય છે. શાસ્ત્રના અને સત્પુરૂષના સમાગમ વડે વૈરાગ્યનું તથા અભ્યાસનું અનુષ્ઠાન થવા લાગે તે મુમુક્ષુપણું આપનારી પહેલી ભૂમિકા જાણવી, વિચારપૂર્વક પૂર્વોક્ત પ્રવૃત્તિ થાય તે વિચારણા નામની બીજી ભૂમિકા, અસંગ ભાવના થાય તે ત્રીજી ભૂમિકા, વાસનાનો વિલય થાય તે ચોથી ભૂમિકા, શુદ્ધ ચૈતન્ય ઘન આનંદરૂપે સ્થિતિ તે પાંચમી ભૂમિકા, આમાં અર્ધ જાગતા જેવો ને અર્ધ સૂતા જેવો જીવનમુક્ત રહે છે. અસંવેદનરૂપ (બહારના પદાર્થના જ્ઞાનના અભાવરૂપ) છઠ્ઠી ભૂમિકા છે, તે આનંદઘનરૂપ ને સુષુપ્તિ જેવી સ્થિતિ છે, અને તુર્યાવસ્થારૂપ સાતમી ભૂમિકા મુક્તિરૂપ છે, પ્રથમની ત્રણ ભૂમિકા

જાગ્રત કહેવાય છે, કેમકે તેમાં જગતની સત્યતાની પ્રતીતિ મટેલી નથી, ચોથી અવસ્થા સ્વપ્ન કહેવાય છે, કેમકે તેમાં જગતની વિસ્મૃતિ રહેવા લાગે છે. છઠ્ઠી ગાઢ સુષુપ્તિ ને સાતમી ઘન સુષુપ્તિ કહેવાય છે, કેમકે તેમાં જગતની અધિકતર ને અધિકતમ વિસ્મૃતિ થયેલી હોય છે. "હું નિર્લેપ, અજર, શમરહિત, વાસનારહિત, નિરવયવ ને ચિદાકાશ રૂપ છું." એમ જાણીને વિદ્વાન શોક કરતો નથી. જ્ઞાની તીર્થમાં શરીર ત્યજે વા ચાંડાલના ઘરમાં શરીર ત્યજે તોપણ આ વાસનારહિત થયેલો જ્ઞાની જ્ઞાનના પ્રાપ્તિ કાલમાંજ મુક્ત છે. સંકલ્પજ બંધનનું કારણ છે તેથી તેનો પરિત્યાગ કરવો જોઇએ અને અસંકલ્પથી મોક્ષ થાય છે માટે તેનો બુદ્ધિ વડે અભ્યાસ કરવો જોઇએ. સર્વ દ્વૈતની નિવૃત્તિ કરવી એજ અધ્યાત્મ શાસ્ત્રનો સિદ્ધાંત છે. અંતરમાંથી સર્વનો પરિત્યાગ કરી બહાર જે વ્યવહાર પ્રાપ્ત થાય તેને યથાયોગ્ય આચરવું જોઇએ. ચિત્તની સત્તા એ પરમ દુઃખ ને ચિત્તનો ત્યાગ એ પરમ સુખ છે. આથી ચિત્તનો ચિદાકાશમાં ક્ષય કરવો જોઇએ. રમ્ય અથવા અરમ્યને જોઇ સર્વદા પાષાણની પેઠે સ્થિત થવું જોઇએ. આવો પ્રયત્ન કરવાથી સંસાર જીતાય છે.

શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(સં૦— વામનરાવ પ્રા૦ પટેલ, બી. એ એલ. એલ. બી. (મોઝ્બે) એલ. સી. પી. (લંડન)
એમ. આર. એસ. ટી. (લંડન) સૉલીસીટર.)

[અનુસંધાન ગતાંક પૃ૦ ૧૦૫૭ થી આગળ]

પ્રકરણ ૧૦મું.

દશ્યભાસ ખંડન.

એ જ્ઞાનાનુભવ ના આવે,
તો અજ્ઞાન ખૂબ ભટકાવે;
ન જાણે તેથી ભમાવે,
ગાંડપણ આવે. ૧.
એ ભ્રમ તો પોતે વહે,
અજ્ઞાન દ્રઢ પકડી રહે;
વ્યર્થ સંદેહ એતો લહે,
જાણતો નથી તેથી. ૨.
પ્રકાશમાંથી ઘરમાં જાય,
આંખે તો અંધારાં થાય;
છતી આંખે ના દેખતો થાય,
પોતાને. ૩.
વા રાત્રિને બીજે [1]પ્રહરે,
આંખો ગાઢ તમથી ભરે;
તેવાં અજ્ઞાન—અંધારે,
ગુંચવાય છે. ૪.
ત્યાં તો મન જે જે કલ્પે,
તે તે સર્વ સન્મુખ દેખે;
દશ્ય નિરખી તેથી રહે,
સ્વસ્વરૂપે [2]નિશ્ચયત્વે. ૫.

૧=મધરાતે
૨=પ્રકાશમાંથી અંધારામાં ગયેલો માણસ કંઇક જોઇ

ગુરૂ ઉપદેશ. (૨)

ઓરે પોતાની સાથે પોતે,
　　ઉરે [૧]સ્વોપદેશી પોતે,
એ પ્રકારનો વિવેક પોતે,
　　આકૃતિ કંઇ ધરતો નથી. ૬
એ વિવેક ઉત્પત્તિ જ્યાંથી,
　　તે અંતઃકરણ જો તેથી,
છે ઉરે જાણ હેતુ તેથી,
　　જાણવું તે થાય છે. ૭
પછી દેહ સહિત બ્રહ્માંડ શૂન્ય,
　　થતાં ઉરે પરિપૂર્ણ,
કંઇ ન દિસે [૨]સ્થાન [૩]માન,
　　કોઇ સ્થળે ૮
સાકાર છે ત્રણે લોક,
　　ના જાણું ક્યાં ગયા દેહ.
અપૂર્ણ પૂર્ણ હું એકાએક,
　　ચિદાકાશ. ૯
અંતર્બાહ્ય પરિપૂર્ણ,
　　શૂન્ય થયું દૃશ્ય—ભાન,
રહેવું પોતે નિરંજન,
　　એકત્વ રહિત ૧૦
અંધારૂં તો ત્યાંથી ગયું,
　　મન બુદ્ધિ નાટક [૪]આવરણ,
આત્મ તેજ તો પ્રકાશ્યું,
　　ચિદાદિત્યનું. ૧૧
એ રીતે સ્થૂળ દેહની,
　　પ્રવૃત્તિ તોડી જાગૃતની,
તોડી તેમ લિંગ દેહની,
　　પ્રવૃત્તિ સર્વ. ૧૨
જ્યાંથી સ્ફુર્તિ સ્ફુરે છે,
　　[૫]અસ્ફુર્તિપણે પ્રથમ તે છે,
જવ આત્મ સ્ફુર્તિ દેખાય છે,
　　સ્ફુર્તિ નાશે તત્કાળ ૧૩
શું તે સ્ફુર્તિનો જ્ઞાતા,
　　સંકલ્પ [૬]વિકલ્પ જીવન દાતા,
[૭]નિશ્ચયનું કારણ, જ્ઞાતા,
　　તુજ છે ૧૪
અનુસંધાન તો પ્રથમથી છે,
　　[૮]શરૂ થતાં તે દેખાય છે,
તારેજ લીધે અહંતા છે,
　　તેથી તે પણ તુજ છે ૧૫
આ પાંચ ભેદનું અંતઃકરણ,
　　છે તુજ કેવળ તેનું સ્ફુરણ,
હોતાં સ્ફુર્તિ શું તુજ વિણ,
　　કદી જુદી પડે છે? ૧૬
શું [૯]તરંગ જળથી છોડાય કે?
　　શું વાયુ વ્યોમથી છોડાય કે?

---

† ઠાલો નથી તેમ ગ્રન્થ ન સ્વરૂપે આપણે અદ્દન અંધકારને લીધે ખરૂં એમ સમજાતું નથી ને અંધારામાં સપડાયો મનુષ્ય જેમ જે જે કલ્પે તે તે તેની નજર આગળ ખડું થાય છે તેમ અજ્ઞાનમાં સપડાયેલા મનુષ્યને ઘર દાર એની પોતાની કલ્પના વડે દેખાય છે તેને વિવેકથી નિરખી દૂર કરો અને સ્વરૂપમાં સ્થિર થાવ. એવી જેની સ્થિતિ થાય તેનું વર્ણન ૬. ૮. ૯માં પદમાં છે

૧=પોતે પોતાને ઉપદેશ કરે તેથી
૨ ઠેકાણું
૩=માપ
૪—નાટક પાડ્યું દેખવું બંધ થયું
૫ સ્વસ્વરૂપે
૬-૭=મન તથા બુદ્ધિના વ્યાપાર.
૮=અંતર્મુખ વૃત્તિ વા અનુસંધાન કરતાં ચેતન
૯=સમુદ્રનાં મોજાં.

તેમ સ્ફુર્તિ તારી તોડાય કે,
કોઇ રીતે ? ૧૭.
તરંગ જળમાં સમાશે,
વાયુ ગગને સમાશે;
તેમ સ્ફુર્તિ તારી સમાશે,
તારામાં. ૧૮.
આપણો હાથ કયાં નાંખીએ ?
છે ચોંટ્યો શરીરે એ;
ત્યમઅંતર સ્ફુર્તિ કયમ ટાળીએ,
એ તો મૂર્તિ મંત છે. ૧૯.
છોડીએ સ્ફુર્તિ તો છે સ્વરૂપ,
કાર્યમાં એ વૃત્તિ સ્વરૂપ;
વિચારે મતિ છે સ્વરૂપ,
[1]મન ચિત્ત પણ એજ છે. ૨૦.
ચિંતને સ્વરૂપ ચિત્ત તો બને,
કહેતાં હું અહંકાર તે બને;
સ્તબ્ધ રહેતાં સ્વસ્થ તે બને,
જેથી સ્ફુરે સ્વસ્થતા. ૨૧.
જો તેને સ્તબ્ધ કહીએ,
તો સ્ફુરણ સ્મૃતિનું શે થાએ ?
સંકલ્પ વિકલ્પ કયાંથી થાએ,
તે કહો. ૨૨.
ધર્યો છે એક નિશ્ચય જો,
ચિંતનફરીફરી શેનું થાય તો ?
હું હું દેહત્વે શે થાય તો,
તે કહો. ૨૩.
માટે અસત્ જેથી ટળે,
વર્મ તે તું જાણજે કળે;

૧=વૃત્તિમાત્રને સ્વરૂપના રૂપ તરીકે જુઓ, મન, ચિત્ત તથા બુદ્ધિના સર્વ વ્યાપાર એ રૂપજ છે.

અહંકાર છે જ્ઞાન [2]બળે,
વિના જ્ઞાન તે હોયે કયાં ? ૨૪.
સ્મરણ ચિત્તમાં જે રહે છે,
જ્ઞાન વિણ તે અન્ય શું છે ?
વિના જ્ઞાન સ્થિરતા કયાં છે,
બુદ્ધિને ? ૨૫.
છે તે જ્ઞાન અધિષ્ઠાન,
તોજ સંકલ્પ વિકલ્પાત્મક મન;
તેજ જ્ઞાન પરિપૂર્ણ,
માટે એને સ્ફુરણ નથી. ૨૬.
સ્મરતાં નથી તેનું સ્મરણ,
સ્મરણ એનું તો વિસ્મરણ;
તે નથી જ્ઞાન કે અજ્ઞાન,
જ્ઞપ્તિ માત્ર જે. ૨૭.
ભાસ વૃત્તિ સ્ફુરણનો છે,
સ્ફુરતાં જ તે દેખાય છે;
પણ પોતે તો નિરાભાસ છે,
સ્વરૂપે. ૨૮.
તે નિરાભાસ કહેવો કોને ?
તેની પણ જાણ છે તેને;
નિરાભાસ જાણવા આ જાણને,
ત્યાં ને ત્યાં સમાવો. ૨૯.
જાણ ને અજાણ તેમાં નથી,
ભાવ અભાવ તેમાં નથી;
સ્વયં વિના બીજું કંઈ નથી,
સ્વ સ્વ રૂપ તે. ૩૦.

ઇતિ શ્રી દૃશ્યભાસ ખંડનં નામ દસમ પ્રકરણં સમાપ્ત.

૨=અંતઃકરણ મન બુદ્ધિ ચિત્ત અહંકારનાં સ્મરણ સંકલ્પ વિકલ્પ, નિશ્ચય, ચિંતન હું હું ભાવના, સર્વ જ્ઞાન છે. એ જ્ઞાન અધિષ્ઠાન પરિપૂર્ણ, સ્ફુરણ રહિત, જ્ઞપ્તિ માત્ર છે.

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(લે૦—વકીલ બાલાભાઈ નારણજી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૧૦૪૬ થી આગળ]

ગીતાના ૬ ઠ્ઠા અધ્યાયમાં સમાધી—અભ્યાસનું નીરૂપણ અવશ્ય સવીસ્તર કરવાલાયક છે તેમ છતા ભગવાને ફરીથી એક વાર પોતે થઇને અગાઉ વર્ણવેલા કર્મ યોગમાં અર્જુનને લેશ માત્ર શંકા ન રહે તે માટે છઠ્ઠા અધ્યાયની શરૂઆતમા કર્મ યોગ—તેની મહત્તા અને તેની અવધી એ સબધે પ્રથમ ૩ ત્રણ શ્લોકથી ભગવાને ફરીથી ત્રીજી વાર કર્મ યોગનો ઈશારો અર્જુનને કર્યો છે અને તેમ કર્યા પછીજ સમાધી અભ્યાસના ક્રમના નીરૂપણુનો પ્રશંસાપૂર્વક ભગવાને ૬ ઠ્ઠા અધ્યાયમા આરભ કર્યો. આ સમાધી અભ્યાસના નીરૂપણનો ઉપયોગ અર્જુન જે યુદ્ધ કરવાનો હતો તે કાર્યમાં તો ઉપયોગી નથી એમ તો આપણે સૌ કોઈ કબુલ કરીશું કારણ ૬ ઠ્ઠા અધ્યાયમા જણાવેલ સમાધીનું નીરૂપણ એ યુદ્ધ માટે તો નીરૂપયોગી છતા આત્મસાક્ષાત્કાર માટે જરૂરનું છે

આ ૬ ઠ્ઠા અધ્યાયમાનો સમાધી અભ્યાસ પણ આત્મશુદ્ધી માટેજ છે એમ ૬ ઠ્ઠાનો ૧૩મો શ્લોક જોતા આપણને જણાશે અને તેમા પણ પહેલા ૩ શ્લોકથી કર્મયોગ માટે કરેલો ઇશારો પણ કીમતી છે એટલે જેમ વર્ણાશ્રમ કર્મયોગ પોતે આત્મ શુદ્ધી માટે જેમ જરૂરનો છે અને તે કારણે જ તેનું વારવાર પુનરાવર્તન કરવામાં આવ્યું છે તેમ તે કર્મયોગ, એ સમાધી યોગને માટે પણ જરૂરનો છે માટે પણ કર્મયોગનો ઈશારો શરૂઆતમાજ જરૂરી છે.

કર્મયોગ એ સમાધી યોગ માટે જરૂરનો એ માટે પાતંજલ યોગ શાસ્ત્ર આધાર પ્રમાણભૂત છે

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः

(पातञ्जल २।१

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च

(पातञ्जल २।२

એટલે યોગશાસ્ત્રના મત પ્રમાણે તપશ્ચર્યા વેદ શાસ્ત્ર મંત્ર વીગેરે અભ્યાસ ગ—ઈશ્વર પ્રણીધાન (ઉપાસના) એ સર્વ ક્રીયાયોગ છે એટલે કર્મ યોગ છે અને તે બધું સમાધી યોગનું સાધન છે તેમ વળી ચીત્તશુદ્ધી દ્વારા અવિદ્યાદિ ક્લેશોનો નાશ કરનાર જ્ઞાનનું પણ તેજ સાધન છે. મતલબ એજ કે ગીતામાં કહેલ કર્મયોગ એ ચીત્તશુદ્ધી—સમાધી સીદ્ધિ—જ્ઞાનસીદ્ધિ—વીગેરેના સાધન ભૂત છે માટે તેવા કર્મયોગનું દુર્લક્ષ કરવું નહીં આ હેતુથીજ ૬ ઠ્ઠા અધ્યાયની શરૂઆતમાજ ભગવાને કર્મયોગનો ઇશારો ફરીથી અર્જુનને કર્યો અને ત્યાર પછી સમાધી ક્રમના નીરૂપણનો ભગવાને આરભ કર્યો આ પ્રાસ્તાવીક વીવેચનથી નીચેના શ્લોકોનો અર્થ સરળ રીતે સમજાશે

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

—गी० ६।३

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

—गी० ६।४

ઉપરના વીવેચનથી આ શ્લોકોનો અર્થ તદ્દન સરળ અન્વયથી જેવો દેખાય છે તેવોજ તે રસીક અને સ્વાદુતર પણ છે.

તાત્પર્ય એજ કે તે ઉપપત્તિ યુક્ત અને અનુભવથી સત્યજ છે ઉલટ ખોટી રીતે અગડં બગડં અન્વય કરીને ખોટો અર્થ કરવામાં કંઈ મજા નથી.

તાત્પર્ય એજ કે યોગ એટલે સમાધી (નીદાન ધ્યાન એક નીષ્ઠત્વ) પ્રાપ્ત થાય એવી ઇચ્છા કરનારાએ પ્રથમ ઉપર કહેલા કર્મયોગરૂપ સાધનનું અવલંબન કરવું જોઇએ ઉપયોગ કરવો જોઇએ અને જ્યારે સમાધી અવસ્થા સાધ્ય થવાની ખાત્રી જણાતાં ઉપર જણાવેલ કર્મયોગ અટકાવવો જોઇએ, અને તો જ સમાધી સીદ્ધ થશે.

મતલબ કે જ્યારે ઇંદ્રીયો તેમના શબ્દાદીક વીષયો અને તે વીષયોનું સંપાદન કરાવનારો કર્મયોગ જયારે ઉપશાંત થાય છે—ઉપરમ પામે છે ત્યારેજ યોગારૂઢત્વ, સમાધી નીષ્ઠત્વ પ્રાપ્ત થવાનો અનુભવ મળશે એ ખાસ ધ્યાનમાં રાખવું. અને તેવે પ્રસંગે કર્મયોગ અટકવોજ જોઇએ. કારણ કે—

આત્મા કાર્ય કારણાત્મક પીંડ બ્રહ્માંડમાં જુદો છતાં પરોવાયલો પરંતુ અલીપ્ત એટલે શોક મોહ હર્ષ વીગેરેથી પર છે માટે પ્રથમ પીંડ બ્રહ્માંડ પર દ્રષ્ટી ફેરવવી જરૂરી છે અને તે માટે ૭ મા અધ્યાયના ૧૪મા શ્લોક સુધી ભગવાને જડ–અષ્ટધા–અપરા–પ્રકૃતિરૂપે અને જીવરૂપે એકમય પરા–પ્રદત્તીરૂપે જગત કેવી રીતે વીસ્તાર પામ્યું છે તેનું વર્ણન કર્યું. અને તેજ સ્થળે પછી ધીરેકથી ભગવાને જણાવ્યું કે—

> दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
> मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
>
> —ગી० ૭।૧૪

એટલે કે આ સર્વે આત્માથી જુદી નહીં એવી પરમેશ્વરની અચીંત્ય ત્રીગુણાત્મક, દુર્લંઘ્ય (અર્થાત પ્રથમની અજ્ઞાન–અવસ્થામાં આશ્ચર્યરૂપ અને અંતે વીચારજન્ય જ્ઞાન અવસ્થામાં મીથ્યારૂપ તુચ્છ એવી અનિર્વચનીય) માયા નામની કોઈ એક એક્ટ્રેસ અર્થાત નાટકીયાણી છે. અને જગત એ તે નાટકીયાણી માયાનું લીલાડંબર છે. અને તે લીલાડંબરને લઇને આખું જગત તે વમળમાં સપડાઇ ગયું છે. પરંતુ તે નાટકીયાણી માયા, એનો ધણી મેનેજર એ ભગવાન છે માટે માયાના ધણી ભગવાનને શરણે જે જાય તે પેલી નાટકીયાણી માયાથી છુટી જાય છે. અર્થાત તે માયામાંથી તેનો છુટકો થાય એવું કોઈ માણસને જરૂર હોય તો તેવા માણસે માયાના ધણી પરમેશ્વરની પ્રીતીપૂર્વક ઉપાસના ધ્યાન–ધારણા–કર્મયોગરૂપ સેવા એ બધું કરવું જોઇએ અને ખરેખર પુણ્યકર્મનો આરંભ અને પાપકર્મનો છેડો આવવાનો સંયોગ જેના નસીબમાં લખ્યો હોય, એવાનેજ ભગવાનની સેવા–ભક્તી, ધારણા, શરણાંગતી પ્રાપ્ત થાય છે અને તે મનુષ્યજ પરમેશ્વરનો દૃઢ આશ્રય કરે છે—અને બ્રહ્મ જ્ઞાનથી પણ યુક્ત થાય છે. આ પ્રમાણે નીરૂપણ કરીને ભગવાને સાતમો અધ્યાય સમાપ્ત કર્યો. આગળ આઠમા અધ્યાયનો આરંભ થવાનો, તેમાં અર્જુને આઠ પ્રશ્નો પૂછયા છે. તે તેણે સાતમાને અંતે ભગવાનના મુખમાંથી નીકળેલા સૂચક ઉદગાર ઉપરથી પૂછેલા છે. અસ્તુ.

> यत्रोपरमते चित्तम्
>
> —ગી० ૬।૨०

એટલે ચિત્તજ ઉપરમ પામે છે અને સમાધી લાગીને યોગી આત્મદર્શન પામે છે અને સુખી થાય છે.

તાત્પર્ય કે યોગારૂઢત્વને માટે કર્મયોગ અટકવોજ જોઇએ આવી રીતે સમાધી યોગથી સંપન્ન થએલા સાધકને પરમાત્માજ દેખાય છે પછી તેવા સાધકનું બહારનું વર્તન ગમે તેવું હોય તો પણ તેને તો સર્વત્ર પરમેશ્વર સ્વરૂપજ બીરાજતું લાગે છે આનું નામજ યો !!

આવો અભીપ્રાય દર્શાવીને ભગવાને આ ૬ ઠ્ઠા અધ્યાયની સમાપ્તી કરતા પહેલા એવો ઉપદેશ કર્યો કે—

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

—गी० ६।४६

કેવળ વર્ણાશ્રમ સંબંધી કર્મયોગ કરનારા યોગી સાધક કરતાં આત્મ સમાધી યોગ સંપન્ન થનારો યોગી અધીક શ્રેષ્ઠ છે માટે હે અર્જુન, તું પણ તેવો યોગી થા એવી ભગવાને અર્જુનને તાકીદ કરી છતા તે બાબતમા પણ હજુ ઘણું કહેવાનું છે તે સારી પેઠે લક્ષમાં રાખવું અને તે એ કે શ્રદ્ધાથી ઈશ્વર ભક્તી સાથે સમાધી યોગનો અભ્યાસ કરવો જોઇએ

આવી આજ્ઞા માનીને તે પ્રમાણે વર્તનારો સાધકજ પરમ યોગ યુક્ત છે એ ગીતાને માન્ય છે

તાત્પર્ય એજ કે એવા ભક્તીયુક્ત યોગીને પૂર્ણ બ્રહ્મજ્ઞાન થાય છે આવો અભિપ્રાય દર્શાવીને ભગવાને ગીતાનો ૬ ઠ્ઠો અધ્યાય સંપૂર્ણ કરી ૭મો અધ્યાય શરૂ કર્યો

આ ૭મા અધ્યાયમાં જ્ઞાન વીજ્ઞાનનો જે વીચાર ભગવાન દર્શાવે છે તે જો બરાબર સમજાઈ જાય તો આગળ કંઈ પણ વીશેષ જાણવાપણું રહે તેમ નથી અને તેજ અભીપ્રાય ભગવાને ૭માના બીજા શ્લોકમા પ્રતિજ્ઞા કરીને દર્શાવ્યો છે

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

—गी० ७।२

સાતમા અધ્યાયમા ભગવાને કર્મયોગ માટે કંઈ પણ ઉચ્ચાર કર્યો નથી તે બરાબર જ છે કારણ કર્મયોગની કાણ વધારે વખત ચલાવે તો હવે અર્જુનનું માથુ જ પાકી જાત અને પાછો અર્જુન ફસકી જાત તેના કરતા કર્મયોગ કરતા બીજી ઘણી બાબતો અર્જુનને કહેવા માટે ભગવાન પાસે શીલકમા હતી અને તેથી અર્જુનના મનનો શોક ગમે તે પ્રકારે જવોજ જોઇએ જો તે શોક નહીં જાય તો અર્જુન યુદ્ધ કરશેજ નહીં એમ ભગવાન બરાબર સમજતા હતા માટે અર્જુનના મનનો શોક દુર કરવા માટે આત્માને કંઈ હર્ષ કે કંઈ શોક નથી તે બાબત અર્જુનને ગળે ઉતાર્યા શીવાય તેનો શોક જશે નહીં, તેમ માની અર્જુનને આત્માનો અપરોક્ષ અનુભવ કરાવવા માટે ભગવાન આ ૭ મા અધ્યાયમા પ્રવૃત્ત થયા ને કહેવા લાગ્યા કે—

આઠમા અધ્યાયમાં તો સ્મરણીય અને વીચાર કરવા લાયક તત્વ શું છે તેનો થોડો વીચાર કરીએ તો બ્રહ્મ એટલે શું એ પ્રશ્નનો ઉત્તર તેમા આપેલો છે અને તે જો બરાબર લક્ષમાં લઇએ તો ગીતાની અંદર જે બ્રહ્મ સંબંધી જ્ઞાન વર્ણવાયું છે તે સહજ જ જાણી શકાય તેમ છે શબ્દાર્થ પરથીજ બ્રહ્મનો અર્થ જાણવો હોય તો જે પરમ અક્ષર તેને બ્રહ્મ કહેવાય છે

ઘડાનું કારણ માટી અને તે માટી અક્ષરરૂપ એટલે અવીનાશી અને તેમાથી બનેલો ઘડો તે ક્ષરરૂપ એટલે નાશવંત આ ક્રમથી, એકેક ચીજનું કારણ વળી તે કારણનું કારણ એમ કારણ પરંપરા જોતાં જોતા ત્રીગુણ સામ્યરૂપ—મૂળ પ્રકૃતિરૂપ મૂળ

કારણ સાબીત થઈ જાય છે અને તે મૂળ કારણને અવ્યાકૃત—અવ્યક્ત એવાં પણ નામો અપાય છે અને તે મૂળ કારણ મૂળ પ્રકૃતી એજ અક્ષરરૂપ—એટલે અવિનાશી છતાં તે વીકારશીલ છે. અને તે વીકારશીલ છે એમ જેના સ્વયં સીદ્ધ અખંડ પ્રકાશથી સીદ્ધ થાય, તેનેજ પરમ અક્ષર—પરમ અવિનાશી, યાને પરબ્રહ્મ કહી શકાય છે તેનેજ ૐ તત્ સત્ ઈત્યાદી સંજ્ઞા—નામ, ગીતાજીમાં પણ અધ્યાય ૧૭ શ્લોક ૨૩ માં આપેલ છે. અને તેજ બ્રહ્મનું વર્ણન ૧૩મા અધ્યાયમાં બારમાથી ૧૭મા શ્લોક સુધીમાં કરવામા આવેલું છે. તે બ્રહ્મની, ૐ એ એકાક્ષરી મંત્રથી ઉપાસના—યોગ ધારણા કરવી જ જોઈએ તે બાબત પર ગીતામાં ખાસ ભાર મુકવામાં આવ્યો છે.

તોપણ તે બ્રહ્મની ઉપાસના ભક્તીપૂર્વક અને યોગાભ્યાસના બળ સાથે થવી જોઈએ એમ તો સુદ્દામ કહેવાયેલું છે "હે અર્જુન દરેક મનુષ્યને વર્ણાશ્રમ સંબંધી પોતપોતાનો કર્મયોગ તો કરવાનો હોયજ છે. અને તને પણ તેજ કર્મયોગ (સુદ્ધ) કરવાનુંજ છે. છતાં એ ખાનગી રહસ્ય ભરી વાત તને કહું છું તે તું લક્ષમાં રાખજે. અને તે ખાનગી વાત એ છે કે કોઇ પણ વસ્તુના અખંડ સ્મરણથી તે પોતાનીજ થઇ જાય છે એ ખાસ ધ્યાન રાખજે. જેમ કે—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

—ગી૦ ૮।૬

એટલે કે જે જે વસ્તુનું અથવા જે જે સ્થીતીનું સ્મરણ સદા સર્વદા થાય છે તેનું તે આ દઢ ભક્તને ભાવના પ્રકર્ષથી પરંતુ અંતકાળ પર્યંત તે ભાવના અખંડ રહેતાં અંતે તે વસ્તુ અગર તે સ્થીતિ સિદ્ધ થાય છે. આ સિદ્ધાંતના જોર પર ભગવાન એમ કહે છે કે—હું પરમેશ્વર પણ તેવા નીષ્ઠાવાન પ્રયત્નશીલ સાધકને સુલભ રીતે પ્રાપ્ત થાઉં છું. તે અવ્યક્ત-અક્ષર-અવીનાશી સ્વરૂપ-પરમગતી ત્રીકાલ અબાધીત-પરમધામ છે. પરંતુ તેવું ધામ અનન્ય ભક્તીથીજ મેળવી શકાય છે. જે મનુષ્યથી પરમેશ્વર પદનો લાભ-કર્મયોગ ભક્તી જ્ઞાન વીગેરે સાધનોથી મેળવવા પ્રયત્ન કરતો નથી તે મનુષ્ય સંસારમાંથી છુટતો નથી પરંતુ વારંવાર સંસારમાં જન્મે છે ને મરે છે. માટે મનુષ્ય માત્રે સર્વ સાધન સંગ્રહ કરનારા યોગી થવું જોઇએ તોજ તેને પરમ આદ્ય પદ પ્રાપ્ત થશે.

તાત્પર્ય એજ કે અંતરમાં પરમેશ્વર ભાવનાનું અધીષ્ઠાન દઢ થયા પછી દેહ ઇંદ્રીઓના કોઈપણ વીકારની ધાસ્તી રાખવાનું કારણ નથી.

આ પ્રમાણે કહીને ભગવાને આઠમો અધ્યાય સંપૂર્ણ કર્યો. (ક્રમશઃ)



ઉદાસીનતા

સંસારી મનુષ્યો સમજે છે કે અમારા સુખ દુઃખના વિધાતા પરમેશ્વર છે. તેમને એ ખબર નથી કે તે તો નિર્લેપ છે, કોઈના સુખ દુઃખ સાથે તેને કાંઈજ લાગતું વળગતું નથી. સૂર્યની સામે આતશી કાચ રાખીએ તો સૂર્યથી તે કાંઈ બળી જતો નથી પરંતુ તે સૂર્યના કિરણો મેળવીને ભભકી ઉઠે છે અને તેનામાં રહેલો જે કંઈ મેલ હોય છે તે બળીને ભસ્મ થઈ જાય છે. એજ પ્રમાણે મનુષ્યમાં જે કાંઈ ગુણ દોષ હોય છે તેના ફળ રૂપે તેને તેજ પ્રાપ્ત થાય છે. એ તો નિયમજ છે કે "જે જેવું કરશે તે તેવું પામશે" એમાં ઈશ્વરનો દોષ નથી પોતાના કર્મોનો દોષ છે.

બેડોળ અને સુંદર બંને દર્પણની સામે ઊભા રહે તો સુંદરનું સુંદર અને બેડોળનું બેડોળ જ પ્રતિબિંબ પડશે એમાં દર્પણનો શું દોષ? તે તો એ બાબતમાં પક્ષપાત રહિત ઉદાસીન છે. હસતા હસતા જુઓ તો હસતો ચહેરો જણાશે રડતા રડતા જોશો તો રડતું મોઢું દેખાશે એમાં દર્પણનો દોષ કાઢનાર અજ્ઞાનીજ ગણાય.

એજ દશા આત્મદર્શી મહાત્માઓની છે. તેઓ નથી કોઈનું કંઈ બૂરૂં કરતા કે નથી ભલું કરતા. જેઓ સારા ભાવથી તેમનો સંગ કરવા જાય છે તેમના ભાવો ઉન્નત થાય છે અને બૂરા ભાવે જનારામાં બૂરા ભાવો ઉભરાઈ આવે છે. પરમાત્માની બરાબરીમાં જઈ પહોંચેલા સાધુ મહાત્મા પણ ભલા બૂરાથી અલિપ્ત રહે છે. તેથીજ આપ [illegible] સાધુ જનોની જમણી બાજુએ પ્રાણીઓનાં શુભ કર્મોના ફળ અને ડાબી બાજુએ અશુભ કર્મોનાં ફળ લાગી રહેલા હોય છે. સારા મનુષ્ય શ્રદ્ધાપૂર્વક દર્શન કરવાથી સારાં ફળ અને અશ્રદ્ધાથી જોવાને કારણે બૂરા લોક બૂરાં ફળ પ્રાપ્ત કરે છે. એટલા માટે મના કરવામાં આવે છે કે જો તમારામાં શ્રદ્ધા ન હોય તો કોઈ સાધુ મહાત્મા પાસે જશો નહીં. એમનામાં પણ દર્પણના જેવાજ ગુણ છે. તેઓ કોઈના મિત્ર થતા નથી. કેમકે મિત્ર તે છે કે જે કોઈનો શત્રુ પણ હોય. મિત્રતા અને શત્રુતા રાગ દ્વેષથી રહે છે. સમદર્શી જ્ઞાનીનો આત્મા એ બંનેથી પર છે.

—સ્વામી વિદ્યાનંદ

શ્રીમત્ પ૦ પ૦ પ્ર૦ શ્રો૦ બ્ર૦ શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરૂ મહામંડલેશ્વર સ્વામી
શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજનું ઠેકાણું—
અમદાવાદ—ગીતા મંદિર આસ્ટોડીયા દરવાજા બહાર (ગુજરાત)

उदासीनता

संसारी मनुष्य समझते हैं कि हमारे सुख और दुःखों का विधाता परमेश्वर है। वे यह नहीं समझते कि वह तो निर्लेप है, किसी के सुख दुःख में शामिल नहीं होता। सूर्य के सामने आतशी शीशा रखा जाता है तो सूर्य उस को दग्ध नहीं करता, वह आप ही सूर्य की किरणों से मिलकर भभक उठता है और उस में जो कुछ मल होता है वह जलकर भस्म हो जाता है। इसी तरह मनुष्य में जो कुछ गुण दोष होते हैं, उनका फल ईश्वरीय नियम से टकराकर अपने आप मिल जाता है। यह नियम है कि जो जैसा करेगा वह वैसा पायेगा, इस में ईश्वर का दोष नहीं अपने कर्मों का दोष है।

कुत्सित और रूपवान् दोनों ही दर्पण के सामने खड़े होते हैं, उन में बदसूरत का रूप बुरा और सुन्दर का रूप उत्तम दिखाई देता है, इस में दर्पण का क्या दोष; वह तो इस व्यापार में इच्छारहित, उदासीन है। हँसते हो तो अपना खिला हुआ चेहरा देख लो और रोते हो तो मुरझाया हुआ मुँह देख लो। इस में कोई दर्पण को दोषी ठहरावे तो समझना चाहिए कि उसे ज्ञान नहीं है।

यही दशा आत्मदर्शी महात्माओं की है, वे किसी का न बुरा करते हैं न भला। अच्छे आदमी उन की संगति में जाते हैं तो उन के अच्छे भावों की उन्नति होती है और जो बुरे भाव लेकर जाते हैं उन के बुरे भाव उभर आते हैं। परमात्मा के समकक्ष पहुँच जाने से साधु भी भला बुरा करने से कोई वास्ता नहीं रखते। इसी से साधारणतः यह भावना फैली हुई है कि साधुओं की दाहिनी ओर प्राणियों के शुभकर्मों के फल और बाँई ओर अशुभ कर्मों के फल लगे रहते हैं। अच्छे लोग श्रद्धा के साथ दर्शन करने पर अच्छे फल के भागी और अश्रद्धा से देखने के कारण बुरे लोग बुरे फल के भागी होते हैं। अतएव वर्जित किया जाता है कि तुम में जब तक श्रद्धा न हो, किसी साधु सज्जन के पास न जाओ, इन में भी दर्पण का सा प्रभाव है। वे किसी के मित्र नहीं होते, क्योंकि मित्र वह है जो किसी का शत्रु भी हो; मित्रता और शत्रुता राग द्वेष के साथ रहते हैं। समदर्शी ज्ञानी का आत्मा इन से परे है।

—स्वामी विद्यानन्द

श्रीमत् प. प. ब्र. श्रो. नी. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज

का पता— अहमदाबाद—गीतामन्दिर आस्टोडिया दरवाजा बहार (गुजरात)

बड़ौदा—गीतामन्दिर, गोयागेट रोड, (गुजरात)

संस्थापक—श्रीमत् प प श्री श्री गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

जय निर्विकार जय निराधार जय अप्रतिम प्रतिमाधार।
जय निराकार निरपेक्ष अमल जय मायाधीन साकार॥
अखिल विश्वपालक घालक दानवकुल दैत्यप्रचार।
जयति अजन्मा अजय विजय हरि निर्गुण सगुणागार॥

वार्षिक मूल्य—
भारत में ४)
विदेश में ६॥)

नीलोत्पलतन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुनग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक॥

साधारण प्रति
भारत में ।)
विदेश में ।=)

श्री गोवर्द्धनभाई मंगळभाई पटेल द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में मुद्रित और प्रकाशित।

विषयसूची [हिंदीविभाग]

विषय | पृष्ठ



[ગુજરાતી વિભાગ]

ग्राहकों से—

यह ग्यारहवाँ अङ्क आप के हाथ में है। इस के बाद के (बारहवें) अङ्क के बाद आप का चालू चंदा समाप्त हो जाता है। आप का आगामी वर्ष का चंदा आने पर आप को नये (आठवें) वर्ष का विशाल विशेषाङ्क 'गीता-गौरवाङ्क' (पाँचवाँ भाग) उपहार मिलेगा। चंदा बारहवें मास के अन्त तक अवश्य आ जाना चाहिए, जिस से ग्राहक-रजिस्टर आदि समय से व्यवस्थित हो जाय और ठीक समय पर आप को अपना उपहार प्राप्त हो जाय। इसी लिए हम ने इस अङ्क में मनीआर्डर फार्म भी नत्थी कर दिया है।

कागज, स्याही और प्रेस संबन्धी प्रत्येक वस्तु कितनी महँगी मिल रही है इन दिनों, यह अब किसी से छिपा नहीं है। इस महँगी की चपेट में पड़कर सर्वसाधनसंपन्न बड़े बड़े विख्यात पत्रों ने अपने आकार प्रकार में कमी कर दी है और ऊपर से चंदे के द्रव्य में वृद्धि, लेकिन हम ने न तो पत्र का आकार घटाया, न वार्षिक चंदा बढ़ाया। हम अब भी आप की वैसी ही सेवा करते जा रहे हैं जैसी पहले से करते आ रहे हैं अर्थात् इस वर्ष भी गत वर्ष की तरह लग भग ६०० छ सौ पृष्ठों और पूर्ववत् चित्रों के साथ विशेषाङ्क हम आप को भेंट करेंगे जिस में १६ से १८ अध्याय तक का विस्तृत व्याख्यान पढ़कर आप प्रसन्न हो जायेंगे।

आप लोगों की सहायता और प्रभु की कृपा से ही हम निर्विघ्न रूप से ऐसी सेवा करने में समर्थ हो रहे हैं। इस लिए आप को भी चाहिए कि अपना चंदा भेजने के साथ साथ एक दो नये ग्राहकों से भी चंदा भेजवाने का पूर्ण प्रयत्न करें। यह प्रभु का कार्य है, इस लिए प्रभु आप के प्रयत्न को अवश्य सफल करेंगे।

चंदा भेजने में देर करने से पछताना ही हाथ लगेगा, क्योंकि इस महँगी में द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की कोई आशा नहीं। निम्न लिखित बातों पर विशेष ध्यान दीजिए—

१—अपना चंदा भेजने में इस अङ्क में नत्थी किये हुए मनीआर्डर फार्म का अवश्य उपयोग कीजिए।

२—मनीआर्डरफार्म के कूपन पर ग्राहक नंबर के साथ अपना पूरा पता साफ साफ लिखिए।

३—आप चंदा भेज चुके हों, तो इस फार्म पर अपने मित्र का पता ठिकाना लिखकर उन से ही चार रुपये भेजवाने का अनुग्रह कीजिए।

४—वी० पी० मँगाने की अपेक्षा मनीआर्डर से चंदा भेज देना अधिक अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार आप का विशेषाङ्क सुरक्षित रूप से आप को प्राप्त होगा।

५—३१ दिसंबर ४२ तक मनीआर्डर न आने पर आप का विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा आप की सेवा में भेज दिया जायगा जिस में आप के अधिक पैसे खर्च हो जायेंगे। इस लिए जहाँ तक शीघ्र मनीआर्डर अवश्य भेज दें।

६—यदि मनीआर्डर और वी० पी० खर्च दोनों से बरी रहना चाहते हैं, तो अपने निकट की गीताधर्म शाखाओं में चंदा जमा करके रसीद ले लीजिए और वहीं से अपनी प्रति प्राप्त कीजिए। शाखाएँ निम्न लिखित स्थानों में हैं—

१ कलकत्ता, सेठ श्री रामप्रसादजी मूँदड़ा, ३२ कासस्ट्रीट।
२ कलकत्ता, एल० के० मेघानी, १४ अमरतला स्ट्रीट।
३ नागपुर, लाला नन्दलाल मैकूलाल, सीतावर्डी।
४ जबलपुर, लाला रामचन्द्र रईस, मुकादमगंज।
५ अकोला, सेठ जगन्नाथ छांवसरिया।
६ करांची, रतीलाल नरभेजी कोटक, प्रिंसेस स्ट्रीट।
७ किशनगढ़, बाबू उमराव बिहारी माथुर स्टेट मेंबर।

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु

महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ } नवम्बर, १९४२, काशी { अङ्क ११

शरणप्रतिज्ञा

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ ।
सुनहु सखा कपिपति लङ्कापति तुम्ह सन कौन दुराउ ।
सब विधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाउँ ॥
आये सरन भजौं न तजौं तिहि यह जानत ऋषिराउ ।
जिनहि लागि धरि देह करों सब डरौं न सुजस नसाउ ॥
पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतियाउ ।
नहिं कोउ प्रिय मोहि दास सम कपट प्रीति बहि जाउ ॥
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन प्रेम मगन मन चाउ ।
'तुलसिदास' तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥

—गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ।

गणपति और गीता

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८
जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

(गत गणेशोत्सव के अवसर पर बड़ोदानरेश के 'लक्ष्मीविलास' राजमहल में सरकारी गणपतिपूजा के उपलक्ष्य में महाराजदम्पती, राजबालक, सामन्त और आमन्त्रित सद्गृहस्थों के प्रति पूज्य स्वामी जी महाराज का जो प्रवचन हुआ था उस का साराश)—

अन्तरायतिमिरोपशान्तये
शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् ।
तन्नरं वपुषि कुञ्जरं मुखे
मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥

विघ्नरूपी अन्धकार की निवृत्ति के लिए हम ऐसे किसी अनिर्वचनीय तेज का ध्यान करते है जो शान्त होते हुए भी पावन है, जिस के वैभव का प्रकाश बुद्धि की कल्पना से परे है, जो मुख से हाथी के आकार का और शेष देह में नराकार तथा लम्बोदर है। वह गणपति अनादि और अव्यय है उन को शंकरसुअन कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे शंकरजी के आदि, अन्त और जन्म आदि का निश्चय नहीं है वैसे ही इन के भी आदि अन्त का निर्णय नहीं हो सकता। शकरजी अष्टमूर्ति कहे जाते हैं, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यज्ञकर्ता ये सब उन के स्वरूप है। गीता के शब्दों में कहें तो यह भगवान् की परा और अपरा प्रकृति हैं। अस्तु, यह सामग्री जुटानेवाले तो शंकरजी हुए, इस लिए वे पिता कहे जाते हैं तथा इस सामग्री से यज्ञ (कर्म) करनेवाले जीवों को सिद्धिदाता गणेश ही है, इस लिए वे उन के पुत्र कहे जाते हैं। उन की अनादिता इसी से सिद्ध है कि शिवपार्वती के विवाह में प्रथम पूजा उन्हीं की हुई और पञ्चदेवपूजा में उन का अग्रासन है ही, बल्कि यह भी कहा जाता है—

'कलौ चण्डीविनायकौ'

कलियुग में दुर्गा और गणपति ही प्रत्यक्ष फलदाता जाग्रत देवता हैं। कहने को तो उन की ऋद्धि सिद्धि दो पत्नियाँ है, पर वे इतने निष्कामव्रती है कि इन को अपने भक्तों के कार्यों को सफल बनाने में ही लगाये रखते हैं। अतएव शायद वृद्ध शंकरजी को पौत्र का मुख देखने का सौभाग्य नहीं हुआ। क्योंकि अब तक यह सुनने में नहीं आया कि गणपतिजी का अमुक पुत्र है। तुलसीदासजी तो उन में बहुत से गुण देखते है—

सिद्धिसदन गजबदन विनायक।
कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥
मोदकप्रिय मुद मङ्गलदाता।
विद्यावारिधि बुद्धिविधाता ॥

वे उन के बुद्धिविधातापने से यही माँगते हैं कि 'बसहु रामसिय मानस मोरे।' अर्थात् वे बुद्धि के देवता भी है, जिस आदमी में जितनी बुद्धि होती है वह उतना ही अधिक गम्भीर होता है। उन का हाथी का मस्तक कहने का यही भाव है, क्योंकि गजराज बड़ा गम्भीर और समझदार होता है—

गजपुङ्गवस्तु धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ।

—भर्तृहरि

चूहे के ऊपर उन की सवारी है इस का यह अभिप्राय है कि चूहे का स्वभाव दूसरों की चीजों को निरर्थक कतर कतरकर नष्ट भ्रष्ट कर डालना होता है। यह उन आदमियों का रूपक है जो व्यर्थ ही परहित का हनन करते और निन्दा बुराई या निष्फल बक बक किया करते हैं। गणेशजी जब कृपा करते हैं तो उन की चूहास्वरूप कुप्रवृत्ति के ऊपर सुबुद्धिस्वरूप स्वयं आ विराजते हैं और इस प्रकार लोगों को सन्मार्ग में चलाते हुए वे चूहे की सवारी करते हैं।

गीताधर्मियों की दृष्टि से देखा जाय तो वे इन को परब्रह्म ॐकारस्वरूप विज्ञानमय ही मानते हैं। गणेशजी की लम्बोदरवती शुण्डाकृति जो 'ॐ'कार के साथ सुसादृश्य रखती है, उस का यही तत्त्व है। गीता में भगवान् ने तो इन के साथ इतनी तादात्म्यता दिखाई कि (भागवत में श्री राधा की तरह) नाम न लेकर इशारे से इतना ही कहा—'प्रणव सर्ववेदेषु' तथा 'बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि ।' और गीता में यम, कुबेर, वरुण, सूर्य, चन्द्र, शुक्र, कन्दर्प जैसे छोटे देवताओं के साथ रुद्र और गणेशजी के प्रसिद्ध भाई स्कन्द का नाम आया है, पर इतने प्रसिद्ध, अग्रपूज्य, ऋद्धि सिद्धिदाता गणेशजी का नाम नहीं आया इस का यह भी कारण है कि गीता के असली मूल लेखक तो गणेशजी ही हैं। अपनी विभूतियाँ दर्शाते हुए भगवान् ने उन का नाम तो अवश्य लिया होगा, पर गणेशजी ने अपना नाम प्रकट करना अच्छा न समझकर उसे निकाल दिया होगा। क्योंकि प्रसिद्ध ग्रन्थकर्ताओं के निबन्धों में अपना नाम प्रकट न करने की परिपाटी पुराने लोगों में अभी कुछ दिन पहले तक चली आयी थी। शायद गणेशजी ने इन संकेतों में ही अपना परिचय रहने दिया होगा। ज्ञानेश्वरजी के शब्दों में इन के स्वरूप की व्याख्या यों है—हे वेदों से वर्णनीय आदिरूप ॐकार, आप को नमस्कार है। आप ही सकल अर्थ और बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले गणेश हैं। जो ये अखिल वेद हैं वही आप की सुन्दर मूर्ति है, वेदों के अक्षर आप का निर्दोष शरीर है। स्मृतियाँ आप के अवयव हैं, शरीर का भाव देखिए तो अर्थ की सुन्दरता आप के लावण्य की धुति है। अठारह पुराण मणि-भूषण हैं, प्रमेय रत्न हैं, पदरचना उन का कुन्दन है। उत्तम पदलालित्य रँगा हुआ वस्त्र है, जिस में साहित्यशास्त्र ही उत्तम ताना बाना है और काव्य नाटक रुमझुम करनेवाली क्षुद्र घण्टियाँ हैं, काव्य नाटकों का अर्थ ही उन घण्टियों की ध्वनि है। व्यास आदि ऋषियों की बुद्धि मेखला सी सुहाती है। जो षड्दर्शन कहलाते हैं वही आप की भुजाएँ हैं और जो भिन्न भिन्न मत हैं वे ही भुजाओं में शस्त्र हैं। तर्कशास्त्र फरसा है, न्यायशास्त्र अङ्कुश है और वेदान्त अत्यन्त सुरस मोदक है। एक हाथ में जो आप ही आप टूटा हुआ दाँत है वह वार्तिककारों के व्याख्यान से खण्डित किये हुए बौद्धमत का संकेत है। वरदायक करकमल सत्कार्यवाद का सूचक है, धर्म की प्रतिष्ठा आप का अभय कर है। जिस में महासुख का आनन्द है वह अत्यन्त निर्मल विवेक आप की लंबी सूँड़ है। उत्तम संवाद आप के शुभ्रवर्ण दन्त हैं, ज्ञानदृष्टि आप के सूक्ष्म नेत्र हैं, दोनों मीमांसाएँ आप के दीर्घ कानों के स्थान में

दिखाई देती हैं, ज्ञानामृत मद है और विवेकी मुनि उस का सेवन करनेवाले भ्रमर जान पड़ते हैं। तत्त्वार्थ ही प्रकाशमान बाल हैं, द्वैत और अद्वैत निकुम्भ हैं और दोनों द्वैताद्वैतों का जहाँ मिलान होता है वही आप का शोभित भाल है। वेदान्त और उपनिषद् जो उत्तम ज्ञानामृत से युक्त हैं वे मस्तक-स्थित मुकुट में पुष्पों के समान हैं। अकार आप के दोनों चरण हैं, उकार विशाल उदर है और मकार मस्तकाकार महामण्डल है, ये तीनों जहाँ एकत्र होते हैं वहाँ वेद समाविष्ट है। उस आदिबीज ॐकार-रूप गणेश की उपासना योगीजन किया करते हैं।

यह तो गणेशजी की आध्यात्मिक व्याख्या हुई। इन की दैविक मूर्ति की सफल चरितार्थता महाभारत के लेखकरूप से सर्वविदित है ही। भारतान्तर्गत गीता में जिस उत्तम बुद्धियोग का प्रतिपादन है उस का सुबोद्धा लेखक इन से बढ़कर कौन हो सकता था? जहाँ इस बुद्धियोग के ज्ञाता ये लोग बतलाये गये हैं—

अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा।

इस वचन में गणेशजी को भी अग्र स्थान देना चाहिए, क्योंकि व्यासजी ने करार किया था कि आप बिना समझे कुछ मत लिखिएगा। अस्तु, जिस प्रकार यह गीता का प्रतिपाद्य तत्त्व राजविद्या (राजा, क्षत्रियों की विद्या) कहा जाता है और उपनिषदों में अनेक क्षत्रिय राजा इस विद्या के प्रवक्ता कहे गये हैं (भक्ता राजर्षयस्तथा—गी० ९।३३) उसी न्याय से गणेशजी ने अपने सेनापति भाई स्कन्द को इस का तत्त्व अवश्य समझाया होगा। अतएव अब के राजा, प्रजा, सैनिक सब को इस गीता को अपनाना चाहिए। इस पर तो क्षत्रियों को अपना विशेषाधिकार समझना चाहिए, क्योंकि गीता के वक्ता भगवान् क्षत्रिय और श्रोता अर्जुन क्षत्रिय ही थे। किंतु एक शोधक किसी तत्त्व का आविष्कार करता है तो उस पर विशेषाधिकार तो उसी का होता है, पर उस का लाभ सभी उठाते हैं उसी तरह क्षत्रियों का ग्रन्थ होते हुए भी यह सब का ग्रन्थ है। आविष्कारक तो एक व्यक्ति होता है, पर गीता तो राजाओं का एक सांप्रदायिक ग्रन्थ है, सुदीर्घकाल से उन का इस में प्रवेश है; जैसा कि भगवान् कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः॥

—गी० ४।१।२

'मैं ने इस तत्त्व को सूर्यनारायण से कहा, उन्होंने राजा मनु को सुनाया, मनु ने इक्ष्वाकु को; इस प्रकार इस को बहुत से राजर्षि कुलपरंपरा से सीखते चले आये हैं।' किंतु 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार सर्वसाधारण को भी इस उत्तम गीताग्रन्थ से अपना गौरव बढ़ाना चाहिए। इस के अभ्यासियों को यदि भगवान् प्रसन्न होकर श्री, विजय, भूति और नीति देते हैं तो गीता गणेशजी का प्रिय आलेख्य होने से, वे भी इन के साथ ऋद्धि और सिद्धियों को अवश्य भेज देंगे इस में संदेह नहीं। ॐ तत्सत्



श्री श्री रामकृष्णदेव की अमृतवाणी

[संग्रहकर्ता— स्वामी श्री चिन्मयानन्दजी महाराज]

"संसाराश्रम" (गताङ्क से आगे)

१४—विवेक, वैराग्य को प्राप्त करके संसार-व्यवहार करना चाहिए। इस संसार-सागर में काम, क्रोध आदि रूप बहुत से मगर हैं। बदन में हल्दी लगाकर जल में उतरने से मगर का डर नहीं रहता। विवेक, वैराग्य ही 'हल्दी' है। सत् और असत् के विचार का नाम है 'विवेक'। ईश्वर ही सत् और नित्य वस्तु, और सभी असत्, अनित्य तथा दो दिन के लिए हैं। बस, इसका ही बोध रहना चाहिए।

१५—वैद्य के पास न जाने से रोग अच्छा नहीं होता है। साधु का संग एक ही दिन करने से नहीं होता, सर्वदा ही इस की आवश्यकता है। रोग तो लगा ही है। फिर वैद्य के पास न रहने से नाड़ी का ज्ञान नहीं होता। साथ साथ रहने से यह बोध होता है कि कौन कफ की नाड़ी है, और कौन पित्त की। साधुसंग से ईश्वर में अनुराग होता है, ईश्वर के ऊपर 'प्रेम' होता है। व्याकुलता न होने तक कुछ नहीं होता, साधुसंग करते करते ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल हो उठता है। साधुसङ्ग करने से और एक उपकार होता है, वह है सत्-असत् का विचार। सत् नित्य पदार्थ अर्थात् ईश्वर है और असत् है अनित्य वस्तुएँ। असत् मार्ग की ओर मन के जाते ही विचार करना चाहिए। हाथी पराये केले के पेड़ों को खाने के लिए सूँड़ बढ़ाता है तो उस समय महावत उसे अङ्कुश मारता है। इसी तरह आत्मविचार या ईश्वरचिन्तन छोड़कर अनात्म वस्तुओं की ओर मनरूप हाथी के भागकर सूँड़ बढ़ाते ही उस पर विचाररूप अङ्कुश मारना चाहिए।

१६—मनुष्य मन से ही बद्ध और मन से ही मुक्त होता है। मन को जिस रंग में रंगाओगे उसी रंग में वह रंग जायेगा। जैसे धुले हुए कपड़ों को लाल रंग में रंगाओ तो लाल, नीले में रंगाओ तो नीले और हरे रंग में रंगाओ तो हरे हो जाते हैं, इसी तरह जिस रंग में रंगाओ मन वही रंग ले लेगा। देखो न, यदि थोड़ी सी अंग्रेजी पढ़ो, तो बात बात में अंग्रेजी शब्द आ जाते हैं फिर साथ ही पैरों में बूट जूते और सीटी बजाकर गाना, ये सब भी आ पहुँचते हैं। मन को कुसंग में रखने से उसी प्रकार उसका वाक्यव्यवहार और चिन्तन हो जायगा। यदि भक्तों का साथ रखोगे तो ईश्वरीय चिन्तन हरिकथा, ईश्वरीय प्रसंग, यही सब होंगे। मन को लेकर सभी बातें हैं। एक ओर बीवी और दूसरी ओर संतान हो, तो अपनी बीवी को एक भाँति और संतान को दूसरी भाँति आदर किया जाता है। पर उस आदर का साधन तो है एक ही मन।

१७—संसार में रह कर साधना करना बड़ा कठिन है। बहुतेरे विघ्न हैं, उन को तुम्हें बतलाना नहीं होगा—रोग शोक, गरीबी तथा स्त्री के साथ मेल न हो या लड़का आज्ञा न माननेवाला, मूर्ख और हठी हो। फिर भी उपाय है। कभी कभी एकान्त में जाकर उन से प्रार्थना करना और उन को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। जब भी अवसर पाओ, किसी एकान्त जगह में जाकर एक दो दिन ऐसे रहो कि संसार के साथ कोई भी सम्बन्ध न रहे और किसी भी विषयी व्यक्ति के साथ सांसारिक विषयों को लेकर वार्तालाप न करना हो। या तो एकान्त में निवास, नहीं तो साधुसंग होना चाहिए।

१८—संसार मानो जल है और मन है दूध। यदि

जल में अर्थात् मन को संसार में फेंक रखो तो दूध जल में मिलकर एक हो जाता है, निखालिस दूध नहीं मिलता। दूध का दही बनाकर उस के मक्खन को जल में रखा जाय तो वह जल के ऊपर ही बहता रहता है। इसी लिए एकान्त में कुछ दिन रहकर साधना द्वारा पहले ज्ञान और भक्तिरूप मक्खन प्रस्तुत कर लो। बाद में उस मक्खन को संसाररूप जल में फेंक रक्खो, तो वह संसाररूप जल के साथ नहीं मिलेगा।

१८—साधुओं के चित्रपट देखने से मन में साधु (ऊँचे) भावों का उद्दीपन होता है, जैसे लकड़ी का बना नकली फल देखने से असल फल का उद्दीपन होता है। इसी लिए तुम लोगों से कहता हूँ कि सर्वदा ही साधुसंग आवश्यक है। संसार की ज्वालाएँ (दुःखभोग आदि) तो देख रहे हो। भोगों को स्वीकार करने से ही ज्वालाएँ (दुःख, कष्टरूप ताप) हैं। साधुसंग में शान्ति मिलने से ही तापदग्ध व्यक्ति साँस लेकर बचते हैं।

१९—जीव ईश्वर का चिन्तन करता है, पर ईश्वर पर विश्वास नहीं होने से फिर भूल जाता है, संसार में आसक्त होता है। हाथी को स्नान करा देने पर, फिर भी वह बदन में धूल या मिट्टी लगा लेता है। मन है मत्त करी। पर हाथी को नहलाकर हो यदि हाथीखाने में घुसा दिया जाय तो फिर वह धूल या मिट्टी नहीं लगा सकता। यदि जीव मृत्यु के समय ईश्वर का चिन्तन करे तो उस का मन शुद्ध हो जाता है, फिर वह मन विषय में आसक्त होने का अवसर नहीं पाता, ईश्वर पर विश्वास नहीं है इसी लिए इतना कर्मभोग होता है। शरीर त्यागते समय ईश्वर का चिन्तन हो सके, इसी लिए पहले से उस का उपाय करना चाहिए। वह उपाय है "अभ्यासयोग।" पहले से ही ईश्वर के चिन्तन का अभ्यास करने से आखिरी दिन में भी उन की याद रहेगी।

२०—संसारी लोग सोचते हैं कि हम बड़े बुद्धिमान हैं, पर वे हैं विषयासक्त। वे तो स्वयं खेल रहे हैं, इस लिए निजी चाल भलीभाँति नहीं समझ सकते। परंतु संसार के त्यागी साधु लोग तो विषय में अनासक्त हैं। वे संसारियों से बुद्धिमान् हैं, वे स्वयं तो नहीं खेलते, इसी लिए ऊपरी चाल ठीक ठीक बतला दे सकते हैं। (अर्थात् जैसे कि शतरंज, ताश आदि के खेल में उन के खेलनेवाले निजी हार जीत का फिक्र रहने से जितना समझ सकते हैं, उन से भी अधिक सुगमता से बेफिक्र दर्शक इन की चाल बतला सकता है।)

२१—विषयी लोगों का ज्ञान कभी कभी एक आध बार दीख पड़ता है। विषयी लोगों की टेक (अटल संकल्प) नहीं है। कुछ भी काम हो, पूरा हुआ तो अच्छी बात है, नहीं भी हुआ तो कोई परवाह नहीं। जल की आवश्यकता हुई, तो कुआ खोद रहे हैं। खोदते खोदते ज्यों ही कुछ नीचे पत्थर निकला, त्यों ही वह जगह छोड़ दी। फिर और एक जगह खोदते खोदते रेत ही रेत निकली, तो उसे भी छोड़ दिया। जहाँ खोदना शुरू किया, उसी जगह खोदते जाना चाहिए, तब तो जल पाओगे। जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

२२—हजार उपदेश दो, पर विषयी लोगों का कुछ कर नहीं सकोगे। पत्थर की दीवार पर क्या कील गाड़ी जा सकती है? उस का सिर टूट जायगा, तो भी दीवार का कुछ न होगा। तलवार से चोट मारने से घड़ियाल को क्या होगा? साधु का कमण्डल (तूँबा) चारों धाम घूम कर लौटता है, पर वह जैसा कड़ुआ था वैसा ही कड़ुआ रहता है। बछड़ा एकबारगी खड़ा नहीं हो सकता। बीच बीच में वह गिर जाता है, फिर खड़ा होता है; तब तो वह खड़ा होना और चलना सीखता है। (अर्थात् मन विषयासक्त होने पर भी कहीं घबड़ाना नहीं चाहिए; कोशिश करते करते कभी गिरते कभी उठते हुए अपनी साधना में बछड़े की तरह सभी कृतकार्य हो सकते हैं)।

(क्रमशः)

अध्यात्मयोग

(श्री अरविन्द)

[गताङ्क से आगे]

कर्तव्य कर्म क्या है, इस को बताना बडा कठिन है, 'गहना कर्मणो गति ।' अधिकांश लोग कर्तव्य कर्म का वह अर्थ करेंगे जो अंगरेजी के 'ड्यूटी' शब्द से लिया जाता है। यदि उन से इस शब्द की व्याख्या करने को कहा जाय तो कहेंगे कि इस का अर्थ है उचित और नैतिक कर्म, वह कर्म जिस को लोग न्याय और सदाचार की कसौटी से ठीक सममते हैं। या जिस को तुम स्वयं अपने अन्तःकरण की साक्षी के साथ यह कह सको कि यह उचित कर्म है अथवा ऐसा कर्म, जिस की समाज, राष्ट्र और मानव जातिका हित तुम से आशा रखता है। परंतु वह मनुष्य जो कर्तव्यविषयक इस प्रकार के व्यक्तिगत और सामाजिक विचारों के बन्धन में जकडा रहेगा, निःसंदेह एक ऐसा मनुष्य बन सकेगा जिस को लोग भला आदमी कहते हैं। यद्यपि ये विचार अज्ञानी मनुष्य की शोर मचानेवाली कामनाओं और व्यक्तिगत अहंकार को संयत और नियन्त्रित करने के लिए आवश्यक हैं, पर ऐसे विचार रखनेवाला आदमी इस योग की सिद्धि को कभी नहीं पा सकेगा। वह तो केवल कर्मफलों की एक प्रकार की इच्छा के स्थान पर दूसरे प्रकार की इच्छा स्थापित करेगा, इन उच्चतर फलों को पाने के लिए शायद और अधिक आवेश के साथ संघर्ष करेगा और इन के न मिलने पर बुरी तरह दुखी भी होगा। परोपकार करने के आवेश से अधिक भयङ्कर और कोई भी आवेश नहीं होता, पुण्यकर्म के जमे हुए अहंकार को हिला डालना जितना कठिन होता है उतना अन्य किसी प्रकार के अहंकार को हिला डालना नहीं। इस का कारण यह है कि इस प्रकार का आवेश या अहंकार स्वयं अपनी ही दृष्टि में और दुनियाँ की दृष्टि में भी उचित दिखाई देता है, अतएव वह किसी उच्चतर नियम के आगे सिर झुकाने की आवश्यकता जरा भी अनुभव नहीं करता। ऐसे मनुष्य को यदि फल के विषय में शोक न भी हो तो भी उस में राजसिक कर्ता का प्रयास और परिश्रम तो रहेगा ही। वह संघर्ष करेगा, युद्ध करेगा, उत्सुक होगा, श्रान्त हो जायगा, गुणों के बन्धन में सदा जकड़ा रहेगा, त्रिगुणातीत नहीं हो सकता।

इसी प्रकार की व्यक्तिगत पुण्य की भावना और सामाजिक कर्तव्य की भावना के वशीभूत होकर ही अर्जुन ने युद्ध करने से इन्कार किया था। उस की युक्तियों के विरुद्ध श्री कृष्ण ने दो भिन्न प्रकार के विचार उस के सामने रखे। एक हीन कोटि का उस मनुष्य के उपयोग के लिए जो गुणों के बन्धन में है पर उन से मुक्त होना चाहता है, दूसरा श्रेष्ठ कोटि का विचार मुक्त मनुष्य के लिए। पहला विचार है शास्त्र और दूसरा कर्मफलों का ही नहीं बल्कि कर्मों का भी भगवान् को समर्पण। शास्त्र की देन यह होती है कि वह हम से परे हमारी व्यक्तिगत इच्छाओं, युक्तियों, आवेशों और पक्षपातों से भिन्न, हमारी इच्छा और स्वार्थपरता से ऊपर उठकर एक ऐसे आदर्श को उपस्थित करता है जिस के अनुसार यदि हम सच्ची भावना के साथ अपने जीवन को बना लें तो न केवल हम आत्मसंयम ही प्राप्त कर लेते हैं, बल्कि सात्त्विक अहंकार के भी

बहुत अधिक मात्रा में घट जाने के कारण हम अपने आप को मुक्ति के लिए भी तैयार कर लेते हैं। प्राचीन काल में वैदिक धर्म ही शास्त्र था। यह वैदिक धर्म मनुष्य के मनोविज्ञान और जगत् के नियमों के गम्भीर ज्ञान पर आधार रखता था और मनुष्य के सामने उस के सच्चे स्वरूप को खोलकर रख देता था तथा उस को यह दिशा देनेवाला होता था कि वह अपने स्वभाव के अनुकूल किस तरह का जीवन वितावे। बाद में स्मृतियों की व्यवस्था हुई। स्मृतियों ने भी अधिक मोटे रूप में वही करने का यत्न किया जिसे वेदों ने चातुर्वर्ण्य कहा है, उसी के अनुसार मनुष्यों का सामान्य विभागों में वर्गीकरण करने का वैसा ही यत्न किया। आज यह चातुर्वर्ण्य अन्ध यान्त्रिक रिवाज और सामाजिक रूढियों का भी गया गुजरा रूप रह गया है।

बड़े से बड़े शास्त्र का भी अहंकार के लिए, पुण्य-कर्म के अहंकार, पक्षपात और व्यक्तिगत संमति के अहंकार के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है। शास्त्र अधिक से अधिक यही है कि वह मुक्ति की तैयारी के लिए एक महान् साधन है। वह शब्द-ब्रह्म है।

परंतु हमें केवल तैयारीमात्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि ज्यों ही हमारी आँखें खुलें त्यों ही वास्तविक मुक्ति की ओर दौड़ पड़ना चाहिए। मुक्त आत्मा और वह मुक्ति का साधक भी जिस ने अपने कर्मों को भगवान् के समर्पण कर दिया है, बड़े से बड़े शास्त्र के भी परे हो जाता है; 'शब्दब्रह्मातिवर्तते।'

कर्म के समर्पण की सब से बढ़िया नीव यह है कि साधक यह अनुभव करे कि प्रकृति ईश्वर के आदेशानुसार हमारे समस्त कर्मों को करती है और ईश्वर हमारे स्वभाव के द्वारा उन कर्मों को निर्धारित करता है। इस नीव के पड़ते ही समस्त कर्म ईश्वर के हो जाते हैं, तुम्हारे नहीं रह जाते, न तुम पर कोई उत्तरदायित्व ही रह जाता है। वास्तव में न तो कोई उत्तरदायित्व है न कर्मबन्धन, कारण एक ईश्वर किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है, वह हर तरह से स्वामी है स्वतन्त्र है। तब हमारे कर्म शास्त्र के अनुसार चलने-वाले पुरुष के कर्मों की तरह न केवल स्वभावनियत अतएव धर्म बन जाते हैं, अपि तु हमारा स्वभाव भी स्वयं एक यन्त्र की तरह ईश्वर द्वारा ही नियन्त्रित हो जाता है। ज्ञान की इस स्थिति को प्राप्त कर लेना हमारे लिए सहज नहीं है, कारण कि अज्ञान के संस्कारों से हम भरे पड़े हैं। किंतु तीन क्रमिक अवस्था हैं जिन के द्वारा इस स्थिति को शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है। प्रथम अवस्था है इस श्लोक के भाव में तन्मय हो जाना—

त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।

हे हृषीकेश, मेरे हृदय में वर्तमान तुम से जैसा मैं नियुक्त किया जाता हूँ वैसा ही करता हूँ। जब यह भाव तुम्हारे दैनिक जीवन में प्रविष्ट हो जायगा तब दूसरी अवस्था को प्राप्त करना सहज होगा और तुम गीता के इस ज्ञान में निवास कर सकोगे—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

ईश्वर सब जीवों के हृदय में स्थित है और सब को वहाँ से अपनी त्रिगुणात्मिका माया द्वारा इस तरह घुमा रहा है मानों वे किसी यन्त्रचक्र पर आरूढ हों। तब तुम तीनों गुणों की क्रिया को अपने अंदर अनुभव कर सकोगे और इस यन्त्र की गतिविधि पर लक्ष्य रख सकोगे। अब तुम 'मैं करता हूँ' न कहोगे,

बल्कि यह अनुभव करोगे कि ये गुण ही हैं जो कर्म करते हैं। इन अवस्थाओं में विशेषतः उस समय तक जब तक कि तुम गुणों की क्रिया को विवेकपूर्वक न पहचानने लगो, एक बहुत बड़ी कठिनाई रहती है और वह है अपने स्वभाव के अंदर अशुद्धि का भान और पीछे लगे हुए पाप और पुण्य के विचारों का भूत। तुम्हें यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि जब तुम ने अपने आप को ईश्वर के हाथों में सौंप दिया है तब इन अशुद्धियों को वह आप ही अपनी प्रक्रिया द्वारा निकाल देगा। तुम्हें तो केवल सावधान रहना चाहिए, तुम तो न पाप में और न पुण्य में किसी में भी आसक्त नहीं हो सकते। क्योंकि भगवान् ने बार बार अभय वचन दिया है, 'प्रतिजाने' मैं तुम से प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ 'न मे भक्तः प्रणश्यति' मेरे भक्तों का नाश नहीं हो सकता।

(क्रमशः)



मेरे आराध्य देव !

(गद्यगीत)

(ले०—श्री सुरेन्द्रनाथजी आजाद, विशारद)

प्राणेश ! दीनता की आह सुननेवाले ! प्रकृतिपटरानी के प्राङ्गण में अखिल नव वसन्त के घनतिमिर लानेवाले !! चपल पुचल के युग में रणचण्डिका बननेवाले मेरे भगवन् !!! तुम्हारी सौन्दर्यशाली अलौकिक माया देखकर मानव आत्मविभोर हो उठता है। मेरे हृदयमन्दिर के आराध्य देव ! मैं तुम्हारी अर्चना करने के लिए शैल, वन, उपवन, निकुञ्जों में सुगन्धमयी पुष्पों की क्यारियाँ ढूँढता फिरा, किंतु निकुञ्जों से लेकर पर्वतीय प्रदेशों के झाड़ झंखाड़ों में भी तुम्हारी पूजन की सामग्री प्राप्त नहीं हुई।

सुना है तुम दग्ध हृदय को अनुपम ज्वाला हो, भावुक हृदय का अभिलाष बनकर अखिल विश्व के प्राङ्गण में प्रेमवीणा झंकृत करते हो। पुष्पित वल्लरियाँ, कुसुमकली बनकर मनमोहिनी भुवनमोहिनी माया का आवाहन करते हुए मनमतङ्ग को चलायमान करते रहते हो।

तुम वृन्दावनविहारी की अमल छटा तो कलकलवती कालिन्दी में, गङ्गा के सुरम्य गङ्गोत्तरी पथ में दृष्टिगोचर होती है। तुम्हीं हृदय के मानसरोवर में सहस्र दलवाले पङ्कजों को खिला, मानसभुवन में शुभ्र ज्योति प्रसार, दारुण दुःख हरने को करुणासागर बन जाते हो, कलियों का प्रसुप्त अभिशाप, विश्व का चिरसंचिततिमिर, मानव की नश्वर पीड़ा इन सब को परिवर्तन करनेवाले करुणाकर, दीनानाथ, दीनबन्धु, जनार्दन तुम्हीं हो।

त्रिभुवर ! प्रकम्पित विश्व को सान्त्वना देने के निमित्त महामारी में माँ दुर्गा की अलौकिक महाशक्ति का बाण तुम्हीं छोड़ते हो। तुम्हीं नश्वर प्राणी के प्राणों का झंकृत वीणा हो नाथ ! तुम्हारी

वह मन्द मुसकान कुसुमकलियों में, विकासोन्मुख बागों में, रसाल की डालों पर, मधुवनों की कुञ्जों में, प्रकृति की हरीतिमा में, विश्व की राग रागिनियों में, प्रेमी भक्त के मानससरोवर में श्वेत पुण्डरीक बनकर विहँसा करते हो करुणेश !

भावों के निर्मल आकाश में तुम्हीं दीपमालिका बनकर नेत्रों को चकाचौंध दिया करते हो। तुम्हारी कला रहस्यदर्शन की कुंजी है, वेदान्त की मूल प्रतिभा ही है। तुम्ही विश्वशुचि वाटिका में सुगन्धिमय पुष्प बनकर नश्वर जीवों को अमृतरस पिलाते रहते हो नाथ !

प्रेम की मनोरम कलियाँ चुन चुनकर जीवात्मा तुम्हारे निमित्त हीरकहार गूँथने को प्रस्तुत है, किंतु प्रेमपुष्पवाटिका का पथ तिमिराच्छन्न हो चुका है। उस में हरि की प्रेरणारूपी दीपशिखा को प्रज्वलित करने की आवश्यकता है।

मैं इस दुनियाँ का अबोध बालक हूँ, अनभिज्ञ भोला पथिक ! इस स्वप्न की दुनियाँ में उस अनोखी चितवन और मन्द मुस्कान को मैं ने एक टक देखना ही चाहा था कि वह सूरत अन्तर्धान हो गई। तब से प्रेमभक्ति का दीवाना मन, मानसनिकुञ्ज में अपने प्यारे प्रियतम प्राणेश को हीरकहार पहनाने की महिमा का गायन गा, प्रेमसिन्धु में गोते खाने लगा। तुम उस शून्य में तिनके को सहारा बना टेढ़ी चितवन से मेरी ओर देख रहे थे। मैं ने भी अहंकार के गुणगान को मिटाकर अपने में मिला, मन में प्रेमसंबलता का संचार किये हुए भवजाल से बेडा उस पार कर लिया नटवर !

भगवन् ! अब यह जीवात्मा तुम में मिलकर प्रेम की द्रवित रसधार बन गया ! मैं ने अपना सर्वस्व अर्पण करने के हेतु ही इस पुष्पाञ्जलि के रूप में गोपालवल्लभ श्याम को हीरकहार पहनाने की ठानी थी। भक्तहितकारी ! सुर नर रक्षक ! गोवर्धनधारी ! आवो, मेरी पूजन की थाली से हीरकहार पहनकर विश्वबन्धुओं के हृदयस्थल में गीताधर्म को बिठाकर निर्वाणपथ दिखा दो ! बस, तुम्ही कल्याणकारी हो नाथ ! इस स्वर्णिम अभिलाष की परिपूर्णता करना तुम्हारे ही हाथ है व्रजविहारी ! केशव !! जनार्दन !!!

रामनाम जिन चीन्हिया झीना पिंजर तासु ।
नैन न आवै नींदरी अंग न जामै मासु ॥
विरह भुजंगम तन डस्यौ मन्त्र न माने कोय ।
रामवियोगी ना जियै जियै तो बाउर होय ॥
मन सायर मनसा लहरि बूडे बहुत अचेत ।
कहहिं कबीर ते बाचि हैं जिन के हृदय विवेक ॥

महादेव की महामहिमा (२)

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

शंकर बड़े दयालु हैं, अन्य देवताओं की अपेक्षा वे जल्दी और थोड़े ही उपाय से प्रसन्न हो जाते हैं। वे अपने शरीर पर भस्म रमाकर जगत् को यह उपदेश दे रहे हैं—'अन्त में सब को भस्मीभूत हो जाना होगा।' उन की नृमुण्डमाला संसार की अनित्यता का बोधन कर रही है। शंकर की सभी वस्तुएँ शिक्षाप्रद हैं। अनभिज्ञ लोग उन्हें अमङ्गल बताते हैं, पर उन्हें यह नहीं मालूम कि 'शिव' 'शंकर' जैसे अन्वर्थ नामधारी महापुरुष की कोई भी चीज अमङ्गलजनक हो कैसे सकती है? अस्तु, अब हम उन की महिमा का वर्णन करते हैं, यथा—

१—लक्ष्मणजी—श्री रामचन्द्रजी ने सीताजी के उद्धार के लिए वानरी सेना लेकर रावण के जीतने को लङ्का पर चढ़ाई की। युद्ध में रामचन्द्रजी की जीत होते देख, मेघनाद निकुम्भिला शिला पर यज्ञानुष्ठान करके दैवास्त्र प्राप्त करने गया। विभीषण से समाचार जानकर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को मेघनाद के मारने के लिए भेजा और लक्ष्मण वहाँ जाकर बाण बरसाने लगे। उस समय मेघनाद के पास कोई शस्त्रास्त्र नहीं था, तो भी वह बाहर आकर लक्ष्मण से लड़ने लगा और अन्त में मारा गया। उधर रामचन्द्र रावण को मारकर लङ्का का राज्य विभीषण को दे अयोध्या में आ गये।

अयोध्या में लक्ष्मण को क्षयरोग हो गया, वे सूखकर काँटा हो गये। भाई लक्ष्मण की यह दशा देखकर रामचन्द्रजी ने गुरु वसिष्ठ को सब हाल बताकर उन से इस रोग के होने का कारण पूछा। वसिष्ठजी ने कहा कि लक्ष्मण से कुछ बड़े पाप हो गये हैं, एक तो युद्धक्षेत्र से बिलकुल अलग, दूसरे निरस्त्र, तीसरे तपश्चर्या में प्रवृत्त और चौथे ब्राह्मणशरीर मेघनाद को मारनेवाला लक्ष्मण सुखी कैसे रह सकता है? यदि लक्ष्मण किसी पवित्र तीर्थ में जाकर शिवार्चन करे तो इस का यह रोग दूर हो सकता है।

यह सुनकर लक्ष्मणजी परमपावनी श्री गङ्गा के तट पर हरिद्वार के उत्तर हृषीकेश तीर्थ में जाकर तप करने लगे। कुछ दिन में महादेवजी ने प्रसन्न होकर लक्ष्मणजी को अच्छा कर दिया। आज भी उस 'लक्ष्मणझूला' नामक स्थान का सब दर्शन करते हैं, इसी का नाम 'कुब्जाम्रक्षेत्र' भी है।

—माया पु० मा०

२—परशुराम ने त्रेतायुग में पिता की आज्ञा से अपनी माता का शिर काट लिया था। इस से प्रसन्न होकर पिता जमदग्नि ने पुत्र परशुराम को वर दिया था कि "तुम को संग्राम में कोई नहीं जीत सकेगा।"

एक समय कामधेनु गाय की प्राप्ति की लालच से हैहयवंशीय सहस्रार्जुन नामक प्रसिद्ध राजा ने परशुराम के पिता का शिर काट लिया। इस से क्रुद्ध हो, परशुराम ने युद्ध में सहस्रार्जुन के हजार हाथ ऐसे काट लिये जैसे हाथी कमलनालों को छिन्न भिन्न कर देता है। उन का क्रोध इतने पर भी शान्त न हुआ, उन्होंने इक्कीस बार भूमण्डल के समस्त क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर दिया।

परशुराम ने इस क्षत्रियवध की पापनिवृत्ति के

लिए अश्वमेध यज्ञ किया और दक्षिणा में सब पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान कर दी, पर मनुष्यवध की हत्या दूर न हुई। उन्होंने इस के लिए रैवत पर्वत पर जाकर घोर तपस्या की, इतने पर भी पाप न कटा। इस के बाद महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमालय, नर्मदा, यमुना, गङ्गा, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, चर्मण्वती, गोमती, गोदावरी, गया, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर, प्रभास आदि पर्वत, नदी और तीर्थों की यात्रा करने पर भी परशुराम नरहत्या के पाप से मुक्त न हो सके।

इतने पर भी सफलता न मिली तो निराश होकर परशुराम कहने लगे—मैं ने आज तक शरीर को व्यर्थ ही कष्ट दिया, प्रतीत होता है आजकल सभी तीर्थ निस्सत्त्व हो गये। वे यह विचार कर ही रहे थे कि इतने में नारदजी वहाँ आ गये और परशुराम के अपनी विफलता सुनाने के बाद बोले कि आप महाकालवन अवन्तिका (उज्जैन) पुरी में जाकर महाकाल शिव की तपस्या करें। अन्त में ऐसा करने पर परशुरामजी का उद्धार हो गया।

३—श्री कृष्णचन्द्र—की आठ पटरानियों में जाम्बवती के कोई पुत्र नहीं था। एक समय उस ने श्री कृष्ण से कहा—जिस प्रकार आप ने शंकरजी की उपासना करके रुक्मिणी के आठ पुत्र उत्पन्न किये उसी प्रकार मेरे लिए भी शिव आराधना कीजिए, जाम्बवती की प्रार्थना सुनकर श्री कृष्णजी हिमालय पर्वत पर उपमन्यु ऋषि से दीक्षा लेकर घोर तपस्या करने लगे। उस तपश्चर्या से प्रसन्न हुए भगवान् शंकर के 'वरं ब्रूहि' कहने पर कृष्णजी ने ये वर माँगे—

१—मेरी बुद्धि धर्म में दृढ हो। २—रण में सब शत्रुओं का विनाश हो। ३—यश की वृद्धि हो। ४—अलौकिक बल प्राप्त हो। ५—योग-साधन की ओर प्रवृत्ति रहा करे। ६—आप में अटल भक्ति हो। ७—आप का सान्निध्य प्राप्त हो। ८—और एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हों।

कृष्णजी ने गौरीसहित शिव का तप किया था, अतः पार्वतीजी ने भी वरदान माँगने को कहा, तब कृष्णजी ने हाथ जोड़कर महामाया से भी ये वर माँगे—

१—मुझे ब्राह्मणों के ऊपर कोप करने का अवसर न प्राप्त हो। २—मेरे ऊपर पूज्य पितरों की प्रसन्नता हो। ३—मेरे अनेक पुत्र पौत्र हों। ४—मुझे सांसारिक भोग सदा प्राप्त होते रहें। ५—मेरा कुल पारस्परिक वैमनस्य से बचता रहे। ६—माताएँ प्रसन्न रहें। ७—हृदय में सदा शान्ति बनी रहे। ८—और सब पत्नियों के ऊपर मेरा समान स्नेह बना रहे। उक्त वरप्रदान करके गौरीशंकर की युगल मूर्ति अन्तर्धान हो गई। —महा० भा० अनु० पर्व

४—रामचन्द्रजी—के असहाय अवस्था में घर-बार छोड़कर वन में आने और उन पर सीताहरण की विपत्ति पड़ने का इतिहास सब कोई जानता है। सीता को लङ्का का राजा रावण बलात् चुराकर ले गया। राम ने वानर भालुओं की सैन्य संग्रह करके रावण से युद्ध करने की तैयारी की, किंतु अपना और शत्रु का बलाबल देखकर चिन्ता में पड़ गये। क्योंकि राम के पास रथ, दुर्ग, कोश, और शिक्षित सेना आदि कोई भी युद्धोपयोगी सामग्री नहीं थी। ऐसी अवस्था में राम ने महादेवजी का विधिपूर्वक पूजन किया तो उन्होंने प्रसन्न होकर रामचन्द्र को रावण पर विजय प्राप्त करने की आज्ञा दी। यद्यपि रावण भी शिवभक्त था और राम ने भी उन का तप किया था, ऐसी स्थिति में शंकरजी इस लिए तटस्थ नहीं रह सके कि परस्त्री सीताहरण के कारण रावण अपराधी था। मर्यादारक्षणार्थ रावण दण्डनीय था और

राम अभिनन्दनीय। इस प्रकार राम के न्याय्य पक्ष की रक्षा शिवजी की कृपा से हो सकी। —स्क० पु०

५—नृसिंह—यह विलक्षण स्वरूप भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा के लिए धारण किया था। बात यह है कि हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद हरिभक्त था। उस की भक्ति पिता को बहुत ही अप्रिय लगी, मना करने पर भी जब प्रह्लाद न माना तो उस के पिता ने उसे मार डालने के लिए नाना प्रकार के यत्न किये। उस को दी गई यातनाओं से भक्त की रक्षा करने के लिए भगवान् ने नृसिंहरूप धारण करके अतिक्रोध से उस के पिता को मार डाला, इतने पर भी नृसिंह का क्रोध शान्त न हुआ। देवताओं तथा ऋषि मुनियों ने अनेक स्तुतियाँ कीं, पर सफल न हो सके। अन्त में सब ने महादेवजी की स्तुति की तब उन के यत्न से नृसिंह का क्रोध शान्त हुआ। इस के बाद नृसिंहजी अपना व्याघ्रचर्माम्बर महादेवजी को देकर अन्तर्धान हो गये। —लिं० पु०

विष्णु भगवान् देवताओं के रक्षक हैं। एक समय दैत्यगण बड़े बलवान् हो गये। देवताओं के घोर युद्ध करने पर भी उन का पराजय नहीं हुआ। अन्त में विष्णु ने भी सारा जोर लगाया, पर राक्षसगण उस से मस्त न हुए। आखिर कैलास पर्वत पर जाकर विष्णुजी शंकरजी का अर्चन करने लगे। उन्होंने मानसरोवरसंभूत स्वर्णकमलों से शिवजी की नित्य पूजा शुरू की। विष्णुजी का नियम था कि शिव-सहस्रनाम का पाठ करते समय एक नाम का उच्चारण करके महादेवजी पर एक कमल चढ़ाते थे। एक दिन महादेवजी ने उन की भक्ति की परीक्षा लेने के लिए अपनी माया से एक हजार फूलों में से एक फूल कम कर दिया। सहस्रनाम समाप्त होने समय जब अन्तिम नाम आया तो एक कमल कम देखकर विष्णुजी बहुत चिन्तित हुए। उस समय उन्होंने कहीं से कमल का आगमन न देख झटपट अपना नेत्ररूपी कमल निकालकर शंकरजी की सेवा में अर्पण कर दिया। पुष्पदन्ताचार्य ने इसी घटना का अपने शिवमहिम्नस्तोत्र में 'हरिस्ते साहस्रं कमलबलिम्' श्लोक में वर्णन किया है। इस भक्ति से प्रसन्न होकर महादेवजी ने विष्णु को सुदर्शन चक्र का प्रसाद दिया, जिस से वे दैत्यों को दण्ड देने में समर्थ हो सके। —शि० पु०

७—कल्कि अवतार—के विषय में कहा गया है कि वे 'यदा यदा हि धर्मस्य' 'परित्राणाय साधूनाम्' इस गीतावचन को सत्य सिद्ध करने के लिए घोर कलिकाल में सम्भलग्राम में अवतीर्ण होंगे और परशु-रामजी से दीक्षा लेकर महादेवजी का तप करके उन की कृपा से गरुड़ के अंशरूप घोड़े पर चढ़कर धर्मसंस्थापन और साधु सज्जनों की रक्षा करेंगे।

इसी प्रकार ब्रह्मा, गणेश, कार्तिकेय प्रभृति देवताओं ने भी जो प्रतिष्ठा, सत्कार तथा नाम पाया है, वह सब सदाशिव की कृपा का फल है। मार्कण्डेय आदि ऋषिगण भी शंकरभक्ति से पाशमुक्त हो सके हैं।

पूर्वोक्त जितने शैव देवों का वर्णन आया है उन सबने प्रतिमास्थापनपूर्वक भगवान् शंकर की तपस्या या आराधना की है। महादेवजी का नाम कल्याण-कारी होने के कारण ही वे शिव, शंकर, शम्भु प्रभृति नामों से प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार असंख्य स्त्रियों ने भी महादेवजी के आराधन से अपनी अपनी मनःकामना पूर्ण की है। उन में कुछ के शुभ चरित्र नीचे लिखे जाते हैं।

१—सती—महादेवजी ने एक दिन बात करते समय काले रंगवाली होने के कारण पार्वती को 'काली' कह दिया। यह बात पार्वती को चुभ गई। उन्होंने कहा—अब मैं वहाँ जाती हूँ जहाँ 'गौरी' बन सकूँगी।

वे विन्ध्याचल पर जाकर महादेवजी का तप करने लगीं तो शंकरजी ने उन्हें गौरी बना दिया।

२—लक्ष्मी—एक समय सूर्य के पुत्र रेवन्त उच्चैःश्रवा घोड़े पर चढ़कर वैकुण्ठ में आये। लक्ष्मीजी अश्व का सौन्दर्य देखकर इतनी तन्मय हो गईं कि उन्होंने विष्णुजी का आना और 'क्या देख रही हो' इस प्रश्न के कई बार पूछने पर भी कुछ उत्तर नहीं दिया। यह व्यवहार विष्णु को अशिष्टता का जँचा। उन्होंने लक्ष्मी को शाप दे दिया कि 'जा घोड़ी हो जा' तू बहुत चंचल है और चाहे जहाँ रमण करने लगती है। अतः आज से 'चंचला' 'रमा' कहायेगी।

शाप सुनते ही लक्ष्मी सन्न रह गई और बोली 'इस जरा से अपराध पर यह कठोर दण्ड! आप की अप्रसन्नता तो शत्रुओं पर होनी चाहिए थी। मैं तो आप की दासी हूँ, स्त्री हूँ।' ऐसा कहकर वे रोने लगीं। विष्णु बोले—'जब तेरे एक पुत्र होगा तब तू इस शाप से मुक्त हो जायगी।'

इस के बाद लक्ष्मीजी ने कालिन्दी और तमसा नदी के तट पर जाकर महादेव का तप किया। इस से प्रसन्न होकर शंकरजी ने विष्णु को भेजा, उन से एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो हैहयवंशीय क्षत्रियों का आदि पुरुष हुआ। इस से लक्ष्मी का उद्धार हो गया।

—दे० भा०

३—अदिति—अदिति और दिति दक्ष की दो कन्या कश्यप ऋषि की स्त्री थीं। जब अदिति के पुत्र देवता दितिपुत्र दैत्यों से संग्राम में हारकर स्वर्गपद से च्युत हो गये तो अदिति की तपस्या से प्रसन्न हो महादेवजी ने उस के पुत्र देवताओं को विजयी बना दिया था। —दे० भा०

४—प्रभा—प्रभा सुन्दर न होने के कारण अपने पति सूर्य की उतनी प्रेमास्पद नहीं थी जितनी होनी चाहिए। उसने भी शंकर की उपासना से अपने पति का प्रेम प्राप्त किया था।

५—रति—कामदेव के भस्म हो जाने पर रति विधवा हो गई, उस ने महादेवजी का तप किया। इस से उस ने 'प्रद्युम्न' के रूप में अपने पति को पाया।

६—सावित्री—इस ने प्रभास क्षेत्र में तप करके महादेवजी से वरदान लिया कि मेरे हाथ से स्थापित शिवलिङ्ग को पूजन करके मनुष्य अपनी मनःकामना पूर्ण करें।

अनसूया—ब्रह्मा के मानसपुत्र अत्रि महर्षि अपनी पतिव्रता पत्नी अनसूया के साथ दक्षिण के कामदवन में निवास करते थे। एक समय वहाँ सौ वर्षों तक पानी न बरसने से सब वन और जलाशय सूख गये। कहीं एक बूँद पानी के न प्राप्त होने के कारण अत्रि के शिष्य एक एक करके सब चले गये, उस समय अत्रि ने समाधि लगा रखी थी, उन्हें पता ही नहीं था कि दुनियाँ में कैसा हाहाकार मचा हुआ है। अत्रि के पास केवल अनसूयामात्र रह गई, उस ने भी महादेवजी का घोर तप प्रारम्भ कर दिया। वह महादेवजी की पूजा और पति की सेवा करती थी, उस के उग्र तप के प्रभाव से सब देवता वहाँ आये और चले गये किंतु गङ्गाजी वहीं ठहर गईं, क्योंकि वे अनसूया के पातिव्रतधर्म से बड़ी प्रसन्न थीं। सैकड़ों वर्ष बाद अत्रि ऋषि की समाधि टूटी तो उन्होंने जल माँगा। किसी तरह गङ्गाजी की सहायता से पत्नी ने ऋषि को जल ला दिया।

अत्रि वन को सूखा व अपने स्थान को शिष्यरहित देखकर अवर्षण के कारण बड़े विस्मित हुए। तब अनसूया के पातिव्रतधर्मप्रभाव से उस मूर्ति में से जिस का वह पूजन करती थी एक सुन्दर पञ्चमुखी स्वरूप का आविर्भाव हुआ तथा अनसूया की प्रार्थना से उस

अवतीर्ण शिव ने खूब जल बरसा दिया। यह अनसूया आश्रम अब भी चित्रकूट के पास में है।

—काशीखण्ड

७—अहल्या—इन्द्र के द्वारा छले जाने के कारण उस के पति गौतम ऋषि ने अहल्या को 'पाषाण की मूर्ति' हो जाने का शाप दिया। साथ ही इन्द्र को कुष्ठी हो जाने का शाप दे दिया। इन्द्र मारे लज्जा के मेरु पर्वत की गुफा में जा छिपे। इधर दैत्य लोग देवगणों को सताने लगे। स्वर्ग का राज्य हाथ से निकल जाने के भय से सब देवताओं ने इन्द्र को खोजना शुरू किया। अन्त में पता लगाने पर इन्द्र ने कहा—मैं अब किसी को अपना मुख नहीं दिखा सकता। किंतु देवताओं ने गौतम ऋषि को प्रार्थना करके राजी कर लिया, अतः ऋषि ने इन्द्र के सहस्र नेत्र कर दिये। उधर विश्वामित्र के कहने से रामचन्द्रजी ने अहल्या का उद्धार करके उस को पहले रूप में परिणत कर दिया और वह गौतम के पास गई। महर्षि गौतम ने विचार कर यह व्यवस्था दी कि तीर्थयात्रा, सौ चान्द्रायण व्रत, एक हजार कृच्छ्र चान्द्रायण, दश हजार प्राजापत्य व्रत और पृथ्वी के अड़सठ तीर्थों में स्नान करने से तू शुद्ध हो सकती है।

अहल्या के सब कुछ करने पर जब वह अन्त में हाटकेश्वर महादेव के दर्शन करने गई तो उन के किवाड़ बन्द हो गये। अहल्या वहीं तप करने बैठ गई पर घोर तप करने पर भी शिव के दर्शन न हुए। इधर अहल्या का पुत्र शतानन्द बहुत दिन से गई हुई अपनी माता को खोजता हुआ वहाँ पहुँचा और उस से घर चलने को कहा, किंतु उस के न मानने पर वह भी वहीं तप करने लगा। इस के बाद गौतम ने अपने पुत्र को बहुत दिन बीतने पर भी लौटते न देखकर भी, पुनः दोनों की खोज की, आखिर वहाँ आकर पत्नी और पुत्र की घोर तपश्चर्या देखकर प्रसन्न हुए और उन दोनों को घर चलने को कहा। पर दोनों ने बिना शिवदर्शन किये जाने का निषेध कर दिया।

तब गौतम भी उन दोनों को महादेवजी का दर्शन दिलाने के निमित्त तप करने लगे। अन्त में भगवान् शिव ने प्रसन्न हो अहल्या को निष्पाप घोषित किया। यह स्थान जहाँ वे तीनों तपे थे राजगृह नाम से प्रसिद्ध है।

—नागर खण्ड

८—काशी की एक ब्राह्मणकन्या—काशी के हरिरथ नामक ब्राह्मण की एक अत्यन्त रूपवती कलावती नामक कन्या थी। वह नित्य 'ज्ञानोद तीर्थ' (ज्ञानवापी) का दर्शन करती थी। इस के प्रभाव से वह सब कुछ शिवमय देखने लगी। एक समय उस के आँगन में से उस के रूप पर मोहित हो एक विद्याधर उसे उठा ले गया। जाते समय विद्याधर को आकाश में एक राक्षस मिला। दोनों लड़ने लगे और दोनों ही मर गये। कलावती विद्याधर को पति मानकर उस के साथ सती हो गई।

विद्याधर मरकर कर्णाटक का राजा हुआ और विद्यावती मलयदेश में पैदा हुई, दोनों का विवाह हो गया।

एक समय कोई चित्रकार काशी का नकशा लाया। उसे देखकर विद्यावती बड़ी प्रसन्न हुई, उस में जब ज्ञानवापी का स्थान आया तो उसे देखकर वह मोहित हो गई। उस ने पति से कहा—मनुष्यजन्म दुर्लभ है इसे पाकर सफल बनाना चाहिए। संसार में रहकर कोई मायिक प्रपञ्च के बन्धन से बच नहीं सकता है, जो बचे हैं वे विरल हैं और उन्होंने घोर परिश्रम किया है जो सब के लिए साध्य नहीं है। इस लिए हम लोग काशी जाकर बस जाँय तो वहाँ के महापुरुषों के सत्संग और अन्त में तारक मन्त्रो-

पदेशमहिमा से हमारे जैसे असमर्थ संसारियों का अनायास उद्धार हो सकता है। अपनी पत्नी की पारमार्गिक बातें सुनकर वह राजा पुत्र को राज्य सौंपकर काशीवास करने आ गया। इस प्रकार आज भी असंख्य नर और नारी श्री शंकरपरायण होकर जन्म सफल कर रहे हैं।

हो जा अचिन्त्य ! हो जा स्वतन्त्र !!

(र०—कविवर श्री ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश' साहित्य-आचार्य, रत्न)

भारत-उपवन में चला आज
करने रे मानव एक भ्रमण।
घासों के मृदुल बिछौने ने
उस के श्रम का कर लिया हरण ॥१॥
क्यारी क्यारी में फूलों की
कलियाँ करती थी आकर्षण।
मरुतों में झूम झूम पाटल
करता था रस-रस रसवर्षण ॥२॥
पर थी शोभा यह क्षणभङ्गुर
इस का न किसी को रहा ध्यान।
वह दर्शक लौट गया चिर-
दिन के बाद पुनः आया समान ॥३॥
था स्वर्ग नरक में बदल गया
जलकर पीली थी पड़ी घास।
अपने अतीत पर अश्रु गिरा
सोचा, सब का है यहाँ ह्रास ॥४॥
इस परिवर्तन को देख वृद्ध
दर्शक कर उठा महाट्टहास।
फूलों के गुच्छों के बदले
काँटे लेते थे खड़े साँस ॥५॥
उस का निश्चित है नाश
कि जो बनता है मिट्टी पानी से।
ध्रुव है विनाश का मार्ग अरे!
वञ्चित हम हुये जवानी से ॥६॥
उस ने अपने प्रति कहा न तुझ में
धर्मज्ञान और बोधशक्ति।
तू है निर्लज्ज अब भी हिंद्
ऋषि सा कर जीवन से विरक्ति ॥७॥
जग के प्रलोभनों में मत फँस
वे तुझ को ग्रसने को तयार।
तू कब तक हाय! उठायेगा
रे एक पुष्प सा भ्रमरभार ॥८॥
अपनेपन का अभिमान व्यर्थ
अभिमान प्रेम का है बाधक।
अभिमान कभी सुख का साधक
अभिमान कभी दुख-आराधक ॥९॥
ऐसा प्रयत्न कर आज तोड़
अभिमान चित्त का एकतन्त्र।
हो आज जीव से ब्रह्मरूप
हो जा अचिन्त्य! हो जा स्वतन्त्र!!१०॥*

* सूफी कवि अबू मुहम्मद निजामी की 'हिकायत मोचिदे हिंद कि मारिफतयाफ्त' के अनुसार।

मधुशाला से

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी 'किशोर' भिषगाचार्य)

मनपथिक! देखता है, यही है वह दीवाना जो पीता है अथाह मादक मदिरा! और रहता है मद से मदान्ध! खोये है अपना आपा! इसे मान ही कहाँ है?

इस की प्रियतमा ने न जाने कितनी बार अपना सर्वस्व चढ़ाने की उत्सुकता लिए, अपनी जीवन प्रभात की शुभ घड़ी में पुलकित प्रेमसलिल से स्नान द्वारा पवित्र हो, नयनसलिल से सिंची हुई हृदय-वाटिका से सुमन चयन कर सुशोभित किया है विशुद्ध भावनामन्दिर! और स्नेहतैल से पूरित जीवनज्योति से जगाया है सुन्दर चतुर्मुख दीपक! वह पूजनथाल सजाये तन, मन, नवयौवन सभी अर्पित करने को इस की प्रतीक्षा में न जाने कितनी बार अगणित घड़ियों से खड़ी रही, और इस उमंगभरे आवेग में न जाने कितनी बार द्वार पर हो गई विसुध धरा शायी! ऐसी दशा में कितनी ही बार रूपहली चादर खींच, समेटकर निशा-नवेली अकेली निर्मोही की भाँति चुप चाप चली गई और कितनी ही बार उस की अज्ञानावस्था ही में प्राची ने अपने लालिमायुक्त स्नेहांचल से आवृत कर रख ली उस की लज्जा! और इसी बीच पधारे भगवान् भास्कर! जब जब उसे होश आता, तब तब रह जाती अवाक्! अब देखती कि बुझ गया दीपक और कुम्हला गये सुमन! और हृदय मन्दिर के पूजनीय देवता द्वार से कुछ दूर नालियों के नरकसंगम के समीप अचेत अवस्था में मद से मत वाले न जाने किस स्वर्गिक सुख की काल्पनिक यात्रा में हैं तल्लीन! तब वह उठती है और व्यथित वेदना युक्त मर्माहत तन की रही सही भक्ति संचित कर जर्जरित हृदय को सँभालती हुई क्षीण स्वर में बोलती—उठो! मेरे देवता!! उठो!!! फिर से सजाऊँगी सुन्दर साज! और करूँगी पूजा अर्चना!!

मनपथिक! देखा इस प्रेमिका का प्रेम और उस मदान्ध का दुर्दशाभरा दुष्परिणाम! तथा स्वर्गीय सुधा धारा के प्रति करने लायक अनुराग का दुरुपयोग! पूछता है क्यों?

अरे! इसी तरह यदि हरिचरणकमलमकरन्दमन्दाकिनी के पीयूषपूर्ण पानीय का करे पान, अथवा सौरभेयी धेनु से आराधनापूर्वक दुग्ध, माधुर्यमिश्रित, नीहारधवल नवनीत का वृन्दासमेत वृन्दावनविहारी को आरोगित कर, ले सके उस का अमृतमय आस्वाद, तो निश्चय ही ये दोनों सुमधुर सुधा की भाँति दे सकते हैं, शान्ति, पुष्टि और तुष्टि! तब वह शराबी अपना चिर संचित कश्मल बहाकर क्या न पा जायेगा बुद्धि, स्मृति, कान्ति और प्रीति?

मनपथिक! समझ!! यदि इस नियमभरी साधना की समा जाय मादकता! तो वह बन सकता है दानव से मानव, दैत्य से आदित्य! फिर दे सकता है अपनी प्रियतमा का प्रेम का यथार्थ प्रतिदान! तब वे दम्पती ले सकते हैं वास्तविक अलौकिक आनन्द!

इसी लिए तो बार बार कहता है कि शराबी! समझ ले अपने कर्म की अवास्तविकता! अब भी कर ले उक्त सुधामयी दिव्य रीति के द्वारा अपने हृदय का परिवर्तन और प्राप्त कर वास्तविक सुख! शाश्वत शान्ति!! अनुपम कल्याण!!!



सुख की मीमांसा

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

सुख का विषय प्राणियों के जीवनसंग्राम से इतना घनिष्ठ संपर्क रखता है कि इस की चर्चा या वान्छा जान या अनजान में प्रतिक्षण सब कोई करते रहते हैं। कहा गया है कि 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।' दुनियाँ में रहनेवाले प्राणियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है: एक मन्द या मूढ़ दूसरा बुद्धिमान्। जब मूढ़ों की ये मतलब प्रवृत्ति नहीं होती तो अक्लमंदों का कहना ही क्या है। यहाँ विचार्य यह है कि इन दोनों का प्रेरक अभिप्राय क्या है? यह भी स्पष्ट भासित है कि वह तो एक ही है और उस का नाम वे सुख रखते हैं। यह बात अलग है कि नाम एक होने पर भी सब भूतों के लिए नामी विभिन्न प्रकार के हों। अर्थात् सब की दृष्टि में सुख एक किस्म का नहीं हो सकता। मोटे हिसाब से सांख्यमतानुसार सुख के तीन प्रकार हैं—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥
—गी० १८।३७

यह सुख प्रथम साधन के आरम्भकाल में यद्यपि विष के समान ज्ञात होता है, पर परिणाम में अमृत के तुल्य है इस लिए जो भगवत्संबन्धी बुद्धिप्रसाद से उत्पन्न सुख है वह सात्त्विक कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥
—गी० १८।३८

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से हो वह भोगकाल में तो अमृत के सदृश ज्ञात होता है पर परिणाम में विष के तुल्य है, वह सुख राजस कहा गया है।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥
—गी० १८।३९

जो सुख भोगकाल और परिणाम में आत्मा को मोहनेवाला हो वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होनेवाला सुख तामस कहा गया है।

इन तीनों सुखों में से राजस और तामस के ही अधिकारी अधिकांश होते हैं। प्रथम श्रेणि का सुख कोई कोई भाग्यवान् ही अनुसंधान करते हैं। और यही सुख तो गीता का लक्ष्यभूत उपदेश है, भगवान् ने अर्जुन को इसी सुख के लिए स्पृहा करने को कहा है। इस का पद इतना ऊँचा है कि—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन् मां वेत्ति तत्त्वतः॥

हजारों मनुष्यों में कोई ही मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है, और ऐसे अनेक यत्नशील सिद्धों में से किसी विरले को ही मेरा तत्त्वज्ञान होता है। इस श्लोक के कथनानुसार उस प्रथम श्रेणि के सुख का अधिकारी दुनिया में कोई नहीं है, ऐसा कहने में कुछ अत्युक्ति न होगी। क्योंकि सात्विक सुख का प्रधान लक्ष्य और योग का प्रधान लक्ष्य एक समान है। जैसे—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥
—गी० ६।१९

निर्वात स्थान में जैसे दीप की ज्योति स्थिर रहती है, वही उपमा संयत चित्तवाले आत्मयोगी को दी गई है।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥
—गी० ६।२०, २१

'इस अवस्था में योगाभ्यास से निरुद्ध किया हुआ चित्त उपराम पाता है, आत्मा से ही आत्मा का दर्शन कर के योगी आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है। बुद्धि से ग्राह्य और इन्द्रियों से अगोचर, ऐसे अत्यन्त सुख का अनुभव होता है। इस स्थिति में पुरुष स्वरूपच्युत नहीं होता और इस से बढ़कर कोई लाभ नहीं समझता एवं भारी दुःख में भी इस स्थिति से भ्रष्ट नहीं होता। दुःख के साथ एक ही समय में संयोग और वियोग होना यही योग कहलाता है, खेदरहित तथा दृढ़ मन से ऐसा योगाभ्यास बढ़ाना चाहिए।' यहाँ पर जो परमसुख है वह योग के साथ मिश्रित ही कहा गया है। इस का स्वरूप यह है कि अपने वश में की हुई राग द्वेषशून्य इन्द्रियों से विषयोपभोग करने पर चित्त में जो प्रसन्नता होती है उस से सब दुःखों का अन्त हो जाता है। और इस प्रसन्नता से ही बुद्धि की स्थिरता या चित्तवृत्तिनिरोधरूप योग सिद्धि का लाभ समझना चाहिए।

अब देखना चाहिए कि जिस सुख के लिए चतुर्दिक् से लोग अनुधावन कर रहे हैं वह उन्हें यह मिल रहा है या नहीं और मिलता भी है तो किस कोटि का? जिस के पीछे सब लोग व्यापृत हैं उस संसार में तो सुख का लेश भी नहीं, क्योंकि उस के लिए भगवान् का कहना है—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
—गी० ८।१५

मुझे प्राप्त करके परम सिद्धि को पाये हुए महात्मा लोग अनित्य और दुःखों से पूर्ण इस संसार में पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते। अतएव—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।

अनित्य और सुखविहीन मर्त्यलोक में आकर भगवान् का भजन करने में ही सार है। इस सब की विवेचना करने से मालूम होता है कि यहाँ कुछ भी सुख नहीं। सुख की यही तो परिभाषा है कि 'अनुकूलवेदनीयं सुखम्' मन में जिस को पाने की बराबर इच्छा रहे वह सुख है। पर इन सांसारिक वस्तुओं में—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।
—यो० द० २।१५

विचारशील को सर्वत्र परिणाम ताप, संस्कार-दुःख और गुणों के वृत्तिविरोध से दुःख ही दुःख नजर आता है। इस का प्रतियोगी सुख यहाँ हो नहीं सकता, 'नाल्पे सुखमस्ति' अपूर्ण में सुख कहाँ?

फिर भी जो इस असुख में सुखबुद्धि रखते हैं उन के मननार्थ योगवासिष्ठ का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

यह संसार का प्रवाह क्या सुखदायक है ? यहाँ तो प्राणी मरने के लिए उत्पन्न होते और उत्पन्न होने के लिए ही मरते हैं। संसार की सभी चेष्टाएँ चञ्चल हैं और विभवकाल में प्राप्त जितने विषयभोग हैं वे आपत्ति के मूल और पापजनक हैं। यहाँ की सब संपत्तियाँ आपत्तिरूप हैं, सुख केवल दुःख के लिए है और जीवन मरण के लिए है। कोई भी भोग तब तक सुखदायी, रमणीय मालूम पड़ते हैं जब तक उन पर विचार दृष्टि नहीं पड़ती। सभी भोग भयंकर परिणामवाले, शीघ्र ही विकारयुक्त, क्षणभङ्गुर, संसार में फँसानेवाले और सिर्फ शुरू में ही रमणीय मालूम पड़नेवाले हैं। जैसे दिनमाला का अन्त कालिमा में होता है वैसे ही सुखाशाओं का अन्त दुःखमय है। जितने वर्तमान पदार्थ हैं उन सब के सिर पर नाश अवश्य स्थित है, सब रमणीयों के सिर पर अरम्यता और सुखों के ऊपर दुःख स्थित है। भोग के विषय विष के समान दुःखदायक और सभी रस सरस पुरुषों में भी विरसता उत्पन्न करनेवाले हैं, फिर इन में रमण करता हुआ कौन नष्ट नहीं होगा ? विषयभोग जहरीले साँप के फणों जैसे हैं, स्पर्शमात्र से ही काटकर देखते देखते अदृश्य हो जाते हैं। यह संसार संपूर्ण दुःखों का उद्भव स्थान है इस में रहते हुए सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?

अत्यन्त खेद की बात है कि मूढ बुद्धिवाले लोग झूठे सुख से इस प्रकार खिंचे जा रहे हैं जैसे कि मृगतृष्णा के जल से मूढ मृग वन में दूर खिंचे चले जाते हैं। यद्यपि इन को किसी ने बेचा नहीं तथापि इस प्रकार स्थित हैं जैसे क्रीत दास हों। बड़े अफसोस की बात है कि सब को मायामय जानकर भी लोग सुखाभास के पीछे विमूढ हो रहे हैं।

ॐ तत्सत्

माया

(२०—कुमारी श्री सरस्वती देवी श्रीवास्तव्य)

सारी दुनियाँ में उलझन ;
उलझाती दिव्य कला से !
है मुक्ति भुक्ति की आशा ;
सौरभ की भरी घटा से ॥ १ ॥
नश्वर के शुचि प्राङ्गण में ;
क्रीड़ा लौकिक दर्शाती !
मानस की मञ्जु कली से ;
माया मुसकाती भाती ॥ २ ॥
तुम तो मनोज्ञ मृगशावक ;
छिप गई सुधाकर में हो !
अविरल अमन्द लहरी में ;
बन कर प्रसून खिलती हो ॥ ३ ॥

सपनों की सारी दुनियाँ ;
तुम उथल पुथल फैलाती !
नामद कानन के सर में ;
तुम नील कमलिनी गाती ॥ ४ ॥
ममता माया फैलाकर ;
सुषमा सौन्दर्य दिखाती !
तुम राग रागिनी काया ;
अम्बर तल में दिखलाती ॥ ५ ॥
माया मरीचिका रानी ;
कर दो मणि की उजियाली !
जीवन की काली रातें ;
बीतें, हो स्वर्णिम लाली ॥ ६ ॥

पण्डित और मूर्ख

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

बहुत से लोगों की आदत दूसरों की अनावश्यक समालोचना करने की हो जाती है। वे आप कुछ नहीं करते, पर करनेवालों के काम में पख लगाया करते हैं। उन की कैंची जैसी जबान दूसरों के कीर्तिपट को कतरने से नहीं चूकती, वे खुद तो आलस्य का निकम्मा जीवन व्यतीत करते ही हैं, किंतु दूसरों को भी हतोत्साह करना उन का धर्म सा हो जाता है। वे यह खयाल करना भूल जाते हैं कि वाद विवाद से उतना काम नहीं बनता जितना उसे क्रियात्मक रूप देने से होता है। 'वादे वादे जायते तत्त्वबोध:' यह बात ठीक है, किंतु इस से यह 'वादे वादे जायते कार्यसिद्धि:' ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

सारा ससार पण्डित और मूर्ख इन दो श्रेणियों में विभक्त है। कौन पण्डित है तथा कौन मूर्ख है? इसका निर्वचन करना बहुत कठिन है पर पता लगाने पर यह बात असंभव नहीं है। जो लोग अपने आप को पण्डित मानते हैं या जिन्हें दुनियादारों ने पण्डित करार दे रखा है, उन की जिम्मेदारी समाज के प्रति तथा उनके प्रति जो अनभिज्ञ हैं, मूर्ख हैं बहुत अधिक हो जाती है। पण्डितों को उचित है कि वे अनभिज्ञों को, अनजानों को, मूर्खों को उपदेश ही भर न देते रहें, बल्कि उन से काम भी कराते रहें। अगर कोई बुद्धिमान् अज्ञानियों के साथ किसी विषय पर वाद विवाद करे तो उसे अपनी इज्जत की आशा त्याग देनी चाहिए। यदि कोई मूर्ख यह समझ ले कि मैं ने किसी एक विद्वान को परास्त कर दिया है तो इस में आश्चर्य न करना चाहिए। क्योंकि मामूली पत्थर भी तो बहुमूल्य मोती को तोड़ सकता है। बहुत कम कीमत की लोहे की हथौड़ी सोने को पीट सकती है। जब कौवे काँव काँव करने लगते हैं तो कोयल गाना छोड़ देती है और जिस समय जनता हो हल्ला मचाती हुई अपनी मूर्खता का परिचय देने पर उतारू होती है तो विद्वान् व्याख्याता अपनी उपदेशपूर्ण वक्तृता बद कर देता है। अत पण्डितजन, मूर्खों से विवाद न करें, प्रत्युत उन्हें कार्य में लगाते रहें। भाव यह है कि मूर्ख के अन्याय तथा अशिष्टतापूर्ण व्यवहार से बुद्धिमान पुरुष कुपित और शोकार्त नहीं हुआ करते। अगर एक निकम्मा पत्थर बहुमूल्य सोने के प्याले को फोड तोड दे तो पत्थर बहुमूल्य और सुवर्ण कम कीमती न हो जायगा। क्योंकि—

इभतुरगरथैः प्रयान्ति मूढा

धनरहिता विबुधाः प्रयान्ति पद्भ्याम्।

गिरिशिखरगताऽपि काकपङ्क्तिः

पुलिनगतैर्न समत्वमेति हंसैः॥

जगत् में सब जगह यह देखने में आता है कि मूढ लोग हाथी, घोड़ों और रथों आदि पर चढ़कर बड़े ठाट बाट के साथ सँभल तथा अकड़ कर चलते हैं। किंतु पण्डित लोग निर्धन होने के कारण पैदल चलते दिखाई देते हैं। इस से किसी को यह गलत धारणा न कर लेनी चाहिए कि 'मूर्ख श्रेष्ठ और पण्डित कनिष्ठ होते हैं।' क्या पहाड़ के ऊपर सब से ऊँचे बैठे हुए कौवे उन हंसों से उत्तम समझे जा

सकते हैं जो नदी किनारे के नीचे भाग में बालू पर बैठे हुए हों ? कदापि नहीं। बहुत से मूर्ख ऊँचे आसन पर बैठकर अपने आप को सब से बड़ा मान लेते हैं। किंतु वे यह बात भूल न जायँ कि उन से भी ऊँचा वह कौवा या बगुला है जो बाँस के अग्र भाग में उन से भी ऊँचा बैठा है। यदि उठने बैठने में ही श्रेष्ठता की कसौटी से काम लिया जाता हो तो किसी भी विश्वविद्यालय के धुरंधर विद्वान् से विन्ध्याचल के पहाड़ पर रहनेवाला भील उत्तम गिना जाना चाहिए। क्योंकि वह बहुत ऊँचे पर बैठा है।

बहुत से मनुष्य हैं जो मूर्ख पर धनी हैं, वे धनपात्र होकर दुनियावी ऐशो आराम की जिंदगी व्यतीत कर रहे हैं। जैसे हमारे देश के बहुत से सेठ, साहूकार, राजकुमार, जमींदार और महंत आदि हैं। इन के लिए उन्नत होने का बहुत ही स्वर्णसुयोग हाथ लगा हुआ है। इन के पास उन्नति के सब साधन सुलभ हैं। ये चाहें तो स्वर्ग में सीढ़ी लगा दें, चन्द्रमा का अमृत सर्वसाधारण में बाँट दें। पर ये ऐसा करते नहीं अपने भोग विलास में इतने निमग्न हैं कि इन्हें और कुछ करने का अवकाश ही नहीं मिलता। अतएव इन के लिए काला अक्षर भैंस बराबर है, पोथी पत्थर की पटिया जैसी भारी है, पाठशाला ऊपर खेत के समान है, पण्डित पागलों जैसे हैं और कागज पाले की सफेदी की सतह के समान है। फिर भी—

निरक्षरे वीक्ष्य महाधनित्वं
विद्यानवद्या विदुषा न हेया।
रत्नावतंसाः कुलटाः समीक्ष्य
किमार्य्यनार्य्यः पतिता भवन्ति॥

मूर्ख लोगों को धनवान् समझकर समझदारों को विद्यानुराग न त्याग देना चाहिए। क्या नाना रत्नजटित आभूषणों को धारण करनेवाली कुल्टा को देखकर आर्य्य ललना पतित हो जाती हैं ? कदापि नहीं। मूर्ख नट के ढोल के समान है, जो शोर तो बहुत करता है किंतु भीतर से पोला है। पण्डितजन इत्र की शीशी की तरह हैं, वहाँ हल्ला गुल्ला तो कुछ नहीं, पर डाट खोल देने से गुण प्रकट होने लगता है। कहाँ तक कहें अन्धों के घर में सुन्दर कन्या और नास्तिकों के समुदाय में वेद की जो गति होती है वही हालत विद्वान् की मूर्खों में है।

बड़े बड़े उच्च कोटि के महापुरुषों ने मूर्खों में अपनी जान तक दे डाली, एक कापालिक श्री शंकराचार्य का शिरच्छेदन करने पर उतारू हो गया, गौतम बुद्ध पर लोगों ने ढेले फेंके, स्वामी दयानन्द को जहर का प्याला पीना पड़ा, हजरत मुहम्मद को अपने कार्यक्षेत्र से भागना पड़ा और ईसामसीह को शूली स्वीकार करनी पड़ी थी। और भी बहुत से उपकारी, सुधारक, संतों के ऊपर बजाय फूलों के मूर्खों ने अनेक प्रकार के गजब ढाये थे।

चाहे जो हो, संतों को उपकार करने से मुँह न मोड़ना चाहिए। जब कि मूर्ख अपकार करने के लिए हैं तो विद्वान् संतों को उपकार करने से कभी पीछे कदम न रखना चाहिए। काँटे उपवन में आने से मना करते हैं, किंतु पुष्प लोगों को अपने पास आने के लिए आकर्षित करते हैं। यह निश्चय है कि मूर्खता संसार से कभी भी बिल्कुल न मिटाई जा सकी, किंतु उस का विषैला प्रभाव अवश्य कम किया जा सकता है, जो बहुत काल तक स्थायी रह सकता है। पानी नित्य नहीं बरसता, पर उस की तरी का असर अगली बरसात तक काम देता है। भोजन हरदम नहीं खाया जाता, पर उस की तृप्ति बहुत देर तक बराबर बनी रहती है। इसी तरह महात्मा सदा नहीं होते। सैकड़ों वर्षों के बाद किसी विशिष्ट

व्यक्ति का आविर्भाव हो जाता है, वे विशेष विभूतियाँ अपना काम करके चली जाती हैं, इस लिए उन के सदुपदेश सदैव नहीं सुनने को प्राप्त होते। पर वे श्रवण किये हुए वचन उस समय भी काम देते हैं, जब कि उन का सुनना बंद हो जाता है। जगत् में मूर्ख बहुत हैं और विद्वान् कम, पर इस से कोई हानि नहीं है। दुनियाँ में मिट्टी, कंकड़ बहुत हैं और अन्न, फल, फूल प्रभृति कम हैं, फिर भी कोई काम रुकता नहीं।

एक संत विद्या की प्रशंसा में कहा करते थे कि विद्या बड़ी चीज है 'विद्याविहीन पशु' कहा गया है, इस के बिना मनुष्य अंधा बताया गया है। कोई कोई इस को विवाद का साधन बना लेते हैं, पर वस्तुत है यह ज्ञान का कारण। विद्या का सब से पहला काम मनुष्यत्व संपादन करना है, फिर बाद में इस से धन कमाना आदि कोई भी काम ले लिया जाय। इसे केवल धन प्राप्त करनेमात्र का साधन बनाने व माननेवाले, मोती के बदले साक खरीदने जैसी भूल करते हैं। जिस ने धन एकत्र करने के लिए अपनी नामवरी और विद्या खर्च कर दी, वह उस के समान है, जिस ने खलिहान बनाया और उसे जला डाला।

नैमिषारण्य में हम ने एक महात्मा से यह सुना—जो विद्वान् संयमी नहीं है वह अंधा मशालची है, वह दूसरों को तो राह दिखाता है, किंतु उसे आप अपने को मार्ग नहीं मिलता। जिस ने अवस्था प्रमाद, अज्ञान में नष्ट कर दी, वह उस के तुल्य है जिस ने रुपया तो खर्च कर डाला, पर खरीदी कोई चीज नहीं। विद्या की शोभा सदाचार के साथ है, जो विद्वान् सदाचारी होते हैं उन का मुकाबला देवता भी नहीं कर सकते। दुराचारी के पास जाकर विद्या, ऐसे दूषित हो जाती है जैसे कुत्ते की खाल में भरा गङ्गाजल। मणि उत्तम पदार्थ है, पर यदि वह साँप के फण पर स्थित हो तो किसी काम की नहीं।

एक समय सिद्धाश्रम में कोई सन्यासी महात्मा कह रहे थे कि हम लोग बहुत से पोथी पत्रे बाँचने या लिखनेवाले को पण्डित नहीं मान सकते, जैसा दुनियाँदार माना करते हैं। हमारे मत से—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥
परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः।
अपरिच्छेदकर्तॄणां विपदः स्युः पदे पदे॥
मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

ज्ञानी पुरुष उसी को पण्डित कहते हैं कि—जिस के सभी समारम्भ अर्थात् उद्योग फल की इच्छा से विरहित होते हैं और जिस के कर्म ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाते हैं। अर्थात् जो फल की इच्छा छोड़कर कर्म करे वही पण्डित है, जो विचार से काम नहीं लेते उन की विपत्ति का कोई ठिकाना नहीं, अतः जो खूब सोच समझकर काम करता है वही पण्डित है। जो दूसरे की स्त्री को माता के समान, पराये धन को ढेले की तरह तथा सब जीवों को अपनी आत्मा के बराबर मानता है वह पण्डित है।

पण्डित लोग राजा महाराजाओं की मित्रता का भरोसा नहीं रखते और न बालकों की मीठी मीठी बातों पर ही विश्वास करते हैं, क्योंकि राजाओं की दोस्ती जरा से संदेह पर टूट जाया करती है, और बालकों की बातें रात भर में बदल जाती हैं। जो पण्डित ऐसा करते हैं वे विद्या को भार बनाते हैं, जब कि विद्या से काम न लिया जाय तो बोझा ही है। विद्या एक दीपक है जो मनुष्य को गड्ढे में गिरने से

बचा लेता है तथा चट्टान से सिर टकराने नहीं देता। एक समय मनुष्य, राक्षस और देवता ये तीनों मिलकर ब्रह्मा के पास गये और उपदेश देने की प्रार्थना करने लगे,ब्रह्माजी ने तीनों को 'द' इस अक्षर का मन्त्रोपदेश दिया। यह श्रवण करके मनुष्य ने 'द' का अर्थ 'दान' लगाया, राक्षसों ने 'द' का प्रयोजन 'दया' समझा और देवताओं ने 'द' का अभिप्राय 'दमन' इन्द्रियनिग्रह माना। इस 'दत्त, दाम्यत, दयध्वम्' के उपदेश को तीनों ने सिद्धान्तरूप से अङ्गीकार कर लिया। क्योंकि ब्रह्माजी विद्वान् थे, अतः उन्होंने तीनों का उपकार एक इशारे से तथा संक्षेप से कर दिया। कहा भी है—

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च
विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च।
तानि यो धारयते स विद्वा-
न्न केवलं यः पठते स विद्वान्॥

जो सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों को नमन और सुशीलता को धारण करता है वह पण्डित है केवल पोथी पढ़नेवाला ही पण्डित नहीं कहाता।

इसी प्रकार—

मूर्खचिन्हानि षडिति गर्वो दुर्वचनं मुखे।
विरोधी विषवादी च कृत्याकृत्यं न मन्यते॥

जो गर्व, दुर्वचन, विरोध, कटुभाषण, कृत्याकृत्य-विचार से रहित होता है उसे मूर्ख समझना चाहिए।

किसी कवि ने बहुत ही ठीक कहा है—

मूर्खत्वं सुलभं भजस्व कुमते
मूर्खस्य चाष्टौ गुणाः।
निश्चिन्तो बहुभोजनोऽतिमुखरो
रात्रिन्दिवा स्वप्नभाक्॥
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो
मानापमाने समः।
प्रायेणाऽऽमयवर्जितो दृढवपु-
र्मूर्खः सुखं जीवति॥

हे कुबुद्धि जन! मूर्ख बना रह, क्योंकि इस की प्राप्ति में कोई कठिनता नहीं। मूर्खता में आठ गुण रहते हैं एक तो निश्चिन्तता, दूसरे खूब खाने की आदत, तीसरे बकवादी होना, चौथा दिन रात सोना, पाँचवें क्या करना उचित है, क्या अनुचित इस के विचार में अंधे और बहिरे की तरह शून्य रहना, छठे मान और अपमान दोनों में बराबर, सातवें प्रायः रोग-रहित रहना और आठवें मोटा ताजा बने रहना।

यहाँ तक पण्डित और मूर्ख के विषय में विचार हुआ। इस कथन को कोई बुरा न माने, बुरा आदमी बुरा नहीं है, किंतु उस की बुराई मात्र हमें बुरी प्रतीत होती है। जो व्यक्ति जिमेदारी के स्थान को रोककर अपनी मूर्खता से बाज नहीं आता वह वह शिकायत के योग्य है ही। जो सेठ होकर मजदूरों को अपना कुटुम्बी नहीं समझता, भूस्वामी होकर कृषकों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करना नहीं चाहता, हमारे मन से वह भी मूर्ख है। जो महंतजैसे महत्त्व के पद को तो प्राप्त हो गया, पर किसी को कुछ नहीं समझा सकता, मन्दिर के पुजारी पद को हथियाकर जो पूजा अर्चा के साधारण मन्त्र और विधान से एकदम शून्य है, वह अवश्य मूर्ख है। किसी व्यक्ति का धर्मगुरु के स्थान को इस लिए दखल किये रखना कि वह भूतपूर्व धर्माचार्य का शिष्य या पुत्र है, तो यह आर्य्य जाति के लिए सब से बड़े दुर्भाग्य की बात है। जिस आसन से बड़ी बड़ी शङ्काओं के समाधान की आशा हो, जो गद्दियाँ

सदाचार की शिक्षा देने के लिए स्थापित हों। उन्हें यदि मूर्ख अधिकृत कर लें तो कितने कष्ट की बात है ?

हमें मालूम है कि हमारी इन सच्ची बातों को शक्तिशाली मूर्ख और उन का पोष्य वर्ग आक्षेप करार देंगे। वे हमें पण्डिताई का गर्व करनेवाला अभिमानी बता सकते हैं। कोई च है जो कुछ भी क्यों न कहे, हम तो अपना कर्तव्य पालन करना चाहते हैं। हमारा उपदेशरूपी चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका सर्वत्र फैलावेगा ही, कोई भी जगह बची नहीं रह सकती, इस लिए चातक की प्रसन्नता और चारों के ताप की हमें जरा भी परवाह नहीं। भले बुरे, सत्य असत्य, पाप पुण्य, सुख दुःख आदि का सदैव साथ रहना सांसारिक नियति है। अतएव विधाता की सृष्टि में रहकर हम प्रसन्नता और ताप को कदापि अलग अलग नहीं कर सकते। जहाँ एक है वहाँ दूसरा रहेगा ही, दोनों की ओर ध्यान देते हुए अपना काम करते ही रहना होगा। हमारे कथन से मर्मोहत सज्जनों को रुष्ट न होना चाहिए, क्योंकि हम उन की गद्दियाँ हथियाने की गरज से तीव्र समालोचना में प्रवृत्त नहीं हुए हैं। जो अपने स्वरूप के अनुरूप और अपनी पद प्रतिष्ठा के अनुकूल अपना कर्तव्य पालन करने में प्रवृत्त है उस का कोई कुछ नहीं कर सकता।

संन्यासी धर्मप्रधान है, उसे धर्म के विषय में विचार और प्रचार करने का अधिकार आचार्यचरण श्री शङ्कर भगवान् से प्राप्त है। वैदिक काल के सन्यासी भले ही 'जडवत् मूकवत् चरेत्' हों। पर श्री शङ्कराचार्य्य के सन्यासी योग और उपदेश के लिए ही अवतरित हुए हैं। अतः वे किसी स्थान के अधिष्ठाता का दुराचारी और मूर्ख देखना नहीं सहन कर सकते, या तो वे अपनी स्थिति सुधारें जो कि यत्न से सम्भव है। अन्यथा उस पद या स्थान को खाली कर दें जो इन की अयोग्यता से अनुपयोगी हो रहा है।

गीतागौरव-गभस्ति

(आगामी विशेषाङ्क—गीतागौरवाङ्क, पाचवें भाग के एक सदंर्भ की झलक)

नियतस्य तु संन्यासः
कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः
परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

नियत कर्म का त्याग नहीं बन सकता है, अविवेक से उस को छोड़ देना तामस त्याग कहा गया है।

गी० गौ०—हे अर्जुन, कर्म करते रहना मनुष्य-स्वभाव के लिए अनिवार्य है, इस लिए निषिद्ध कर्मों से बचने के लिए शास्त्रों ने जिन यज्ञ, तप आदि शुभ कर्मों का मनुष्यहित की दृष्टि से निश्चित कर दिया है, उन नित्य नैमित्तिक कर्मों का त्याग अस्वाभाविक और अहितकर है। जो व्यक्ति उन कर्मों से होनेवाले अन्तःकरणशुद्धिरूप आत्महित और लोकोपकाररूप परहित का अविचारवश न समझकर कर्म त्याग कर देते हैं उन का यह तमोगुणी त्याग है।

क० प्र०—प्रिय सज्जनो, जिस में हिताहित के लिए निरन्तर चेष्टा बनी रहे उस का नाम शरीर है—'चेष्टाश्रयं शरीरम्' यह तार्किकों का सिद्धान्त है। अतएव कोई शरीरधारी कितना ही निष्कर्म बने किसी न किसी रूप से

उस में चेष्टा होती ही रहेगी जब तक कि देह का संबन्ध है। वह चेष्टा सत्कार्योन्मुखी होती रहे इस के लिए ऋषि मुनियों ने नित्य नैमित्तिक यज्ञ, दान, तप कर्मों का विधान कर दिया है साथ ही इन के अङ्गभूत पठन पाठन, प्रजापालन, दुष्टदमन, कृषि, वाणिज्य और इन कामों में सहायता आदि के कर्म स्वभाव और परिस्थिति की अपेक्षा से नियत कर दिये हैं। इन कर्मों का स्वरूप से त्याग करनेवाला मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन न करने के कारण पाप का भागी होता है। क्योंकि इस तरह से कर्मों की परंपरा टूट जाती है और संसार भर में विप्लव मच जाता है। अच्छे कर्म छोड़ दिये जायँ तो उन का स्थान बुरे कर्म ले लेंगे यह निश्चित है, इस लिए भगवान् कह रहे हैं कि स्वभावसिद्ध नियत कर्मों का त्याग बन ही नहीं सकता है। जैसा त्याग करने का आदेश भगवान् कर रहे हैं वह ऐसा त्याग नहीं, किंतु आसक्ति और फल का त्याग है। ऐसा त्याग करने से संसार का भार भी बहुत हलका हो जाता है, नहीं तो कर्ममात्र का या जीवनोपयोगी आवश्यक कर्मों का सन्यास कर देने से उस का भार दूसरों पर पड़ता है। हर एक मनुष्य को जीवित रहने के लिए अन्न जल की आवश्यकता रहती है, त्यागी भी इस से छूटते नहीं। और एक मनुष्य के कर्तव्य कर्म त्याग देने से यदि औरों के कष्ट बढ़ते हैं तो वैसे कर्मत्यागी बहुत से हो जाने पर वह समाज दुखी हो जायगा।

यह कोई आवश्यक नहीं कि अवधूत संन्यासी लोग भी अपना अन्न पकावें और अपने लिए व्यापार रोजगार करें। वे तो ऐसे कर्म करें जिन से जनता सत्य ज्ञान से युक्त होकर अपना कर्तव्य करने में समर्थ बने, यज्ञ, दान, तप में उस की रुचि बढ़े। इन कर्मों के त्याग को तामस कहने का मतलब यही है कि ऐसा करने से दुनियाँ भर में अंधेरखाता मच जाता है। रास्ता कितना ही बुरा हो वह चलने से ही तय हो सकता है, इस के लिए पैरों को ही काट डालना अच्छा नहीं। भूखे के सामने रखा हुआ अन्न कितना ही गर्म हो, यदि वह बुद्धि का उपयोग न कर थाली को फेंककर लङ्घन कर दे तो उस मूढ़ के समान ही कर्मत्यागी कहा जायगा। कर्म की बाधा कर्म करने के रहस्य से ही मिटती है और वह रहस्य है यज्ञार्थ (सर्वहितार्थ) कर्म करना। भ्रम से आच्छन्न रहने से तामसी लोग इस बात को नहीं समझ पाते, अतः वे अपने हिस्से में आये हुए कर्मों को भी छोड़ बैठते हैं।

सज्जनो, कच्चेपन में किसी कर्म का त्याग मत करो, तुम में से कोई ऐसा त्यागी न बन जाय कि 'घर पर हुई खटपट, तो हम चले मठ पर। बाबा ने काटी चोटी, तब खाने को दी रोटी। बाबा ने बताया काम, हम तो बचा रमते राम।' इस का उदाहरण यों है कि एक महात्मा किसी वटवृक्ष के नीचे कुटी बनाकर भगवद्भजन में अपना अधिकांश समय बिताते और यथावकाश संध्या समय सर्वसाधारण को उपदेश दिया करते थे। उन की इस निष्काम चर्या से बड़ी दूर दूर तक प्रसिद्धि हो गई, इस लिए विविध विषयों के समाधान और सत्संग के लिए चारों ओर से उन के पास लोग आया करते थे। इसी सिलसिले में एक लड़का उन के आश्रम पर चला आया और वहीं रहने लगा, महात्मा के बहुत मना करने पर भी वह वहाँ से न हटा, किंतु शिष्य बनने के लिए जिद करने लगा। महात्मा ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह लड़का बड़ा आलसी और पढ़ने से जी चुराया करता था, एक दिन संरक्षकों ने मारा पीटा तो घर से भागकर महात्माजी के यहाँ चला आया। महात्मा तो लोगों को कर्ममार्ग पर चलाने के लिए ही वहाँ रहते थे, उन्होंने यह सोचकर कि जो बात घर पर थी वह यहाँ भी होगी, उस को परीक्षा के तौर पर नकली शिष्य बना लिया और आज्ञापालन का अभ्यास डालने के लिए लड़के से मोटे मोटे काम लेने लगे, जैसे बर्तन माँजना, नदी से जल भर लाना, बगीचा सींचना आदि। दो चार रोज तो चेलाजी ने पक्का पकाया ठाकुरजी का प्रसाद मजे से खाया, पर अब काम अखरने लगा। एक दिन वह नदी पर घड़ा लेकर पानी भरने गया तो तंग आकर घड़े को वहीं छोड़कर भागने लगा।

जब कुछ दूर चला गया तो घड़े ने भनाते हुए स्वर में जोर से आवाज दी कि ए बाबाजी, जरा ठहरिए, कुछ मेरा भी निवेदन सुनते जाइए। चेले ने इधर उधर नजर दौड़ाई कि कहीं गुरुजी ने तो मुझे भागते हुए नहीं देख लिया ! जब कोई नजर न आया तो वह दबे पावँ फिर बढ़ने लगा। इतने में घड़े ने फिर वही आवाज दी तो उसे सुनकर चेला सन्न रह गया, क्योंकि अब चौकन्ना होने से उस की नजर पीछे की ओर भी

इस से घड़े को बोलते हुए स्पष्ट सुन लिया। वह एक बार तो आवाज को सुनकर डर गया कि मालूम होता है गुरुजी ने इस में जादू की करामात भर दी है और जो इस प्रकार बोलता है वह मुझे घेरकर डंडा की मार से मेरी हड्डियाँ तोड़ डाले तो यह भी कोई बड़ी बात नहीं। अब यह सोचकर उस ने घड़े की शरण में आना ही श्रेयस्कर माना और काँपता हुआ घड़े के पास आकर कुछ दूर से ही हाथ जोड़कर खड़ा हो गया

इस पर उस को अभयदान देते हुए घड़ा बोला—बच्चे तू ज़रा सी तकलीफ से घबड़ा गया पर इस हालत में मुझे भूख प्यास, सरदी गरमी के बड़े कष्ट उठाने पड़ते। अरे मूर्ख मुझे तो देख कि मैं जड़ होकर तुझ चेतन के सिर पर नित्य चढ़ता हूँ तूने कभी इस पर भी विचार किया है? लड़का बोला कि हे गोल मटोल महाराज मैं कुछ नहीं जानता हूँ आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगा पर अभी मुझ पर इतनी दया करो कि पहले की तरह चुपचाप आकर एक बार फिर मेरे सिर पर चढ़ जाओ नहीं तो गुरुजी चिमटा लिए आते ही होंगे और मेरी खाल खींच लेंगे

इस पर हँसते हुए घड़े ने कहा अरे नीच मैं यही तो पूछना चाहता हूँ कि अपने से नाचीज़ मुझ को तू अपने सिर पर खुशी से क्यों चढ़ाता है अगर नहीं मालूम तो कान लगाकर सुन—

मैं पहले मिट्टी में लगातार होकर अपने आप में मस्त रहता था एक दिन एक कुम्हार आया और कुदार मार मारकर मुझे अपने मा बाप से बिछुड़ाकर चूर चूर कर डाला। फिर मुझे गदहे पर लादकर घर लाया और पानी उड़ेलते हुए कूट कूटकर मसल डाला यदि मैं ने अपने किसी अवयव को छिपाकर बचाने की कोशिश की तो उसी क्षण पर मुगरी की अटूट मार पड़ी। मैं ज्यों ही यह सोचता कि मेरे आफत के पहाड़ों की इति होनेवाली है त्यों ही उस से भारी आफत मुझ पर टूट पड़ती एक दो बार गदहे की सवारी और चाक पर फिरते हुए इतना जैसे उस पोने से मुझे बीच बीच में यह भान होता कि अब मैं सकटों से पार पा गया हूँ पर कुछ देर में ही पानी के बुलबुलों की तरह मेरी आशा धूल में मिलती जाती। फिर डंडा से पीटते हुए तो मेरा कचूमर ही निकाल डाला गया और एक मुझ जैसे अभागे के साथ चिपकाकर धूप में तपाने को छोड़ दिया तब मैं ने जाना कि अब राहत मिल गई और बस कृतघ्न कुम्हार से पिण्ड छूटा, इस से मैं ने अपने में जुटे हुए साथी के साथ ठंडी साँस ली तो मेरा रहा सहा विश्वास भी बाष्प बनकर निकल गया। एक सहारा था तो यही कि मुझ जैसे बहुत से दुर्दैवाक्रान्त बन्धु सिसक सिसककर प्राण धारण किये हम घेरकर पड़े थे उन में कुछ हतभाग्य टूट फूटकर अपनी प्यारी प्रकृति मिट्टी में तल्लीन होने की ताक में थे। मैं ने समझा कि शायद इसी तरह हम सब को छुटकारा मिल जाय पर अभी तो मेरा सब से भारी वह सत्यानाश होने को बाकी था जिस की कल्पना मैं अपने क्रूर द्रोही कुम्हार के लिए स्वप्न में भी नहीं कर सकता था यानी पहले तो हम सब एक खास जगह में सजाकर रखे गये हम प्रत्येक के बीच में घास फूस का सहारा दिया गया मैं भी उस समय इस से ऐसे नाच उठा जैसे साँप के मुँह में फँसा हुआ मेंढक मक्खी पकड़ने में रस लेता है बस इतने ही में चारों तरफ से हमारा सम्बन्ध काटकर निर्दयतापूर्वक आँच चेट दी गई और हमारे रहे सहे अस्तित्व को मटियामेट करने में कोई कसर न रखने के लिए विकराल आग की वेदना में धुँधकाया गया उस के समक्ष महारुद्र का कालानल तथा आगे दौज़ख की भी फीकी पड़ जाती और विकराल काल भी ऐसी करनी में कुशल न होता। ऐसी अखण्ड घोर यातना हमें चौसठ पहर भोगनी पड़ी।

नादान बच्चे तू समझता होगा कि यह भी कोरी गप्प हाँककर विलम्ब में फँसाते हुए तुझ पर गुरुजी के क्रोधानल को उद्दीप्त करने में सहारा दे रहा है नहीं तो इतनी व्यथा की धक धक करने के लिए ज्वालामुखी को भी मात करने वाली आग से सही सलामत साबित निकल आना नामुमकिन बात है पर इस बात को तू सच मान क्योंकि उस विपत्तिमाला में शुरू से आखीर तक हमारा सबल एकमात्र वह परम प्रभु था जिस ने हिरण्यकशिपु के राज्य में ऐसी आँवे के बीच हमारे सजातियों को जल जाने दिया और बिल्ली के बच्चों को अछूता रख दिया तथा भक्त प्रह्लाद को होलिका के दावानल और सीता माता को अग्नि के अंगारों से अछूत रखा कम से कम मैं तो अपने इस शुभ विश्वास से नहीं डिगा और जिस ने टीक ठाक को यह टेढ़ा तिरछा या काला कुबड़ा हो गया। इसी से उन सब के बीच इन महात्माओं को मैं ही पसन्द आया और इन्होंने मुझे लाकर यह देवदुर्लभ (कलश—) प्रतिष्ठा की शान में ही सम्पूर्ण अवस्था

ालक का चालक होऊँ। महात्माजी ने निगमवाक्यों द्वारा मेरे मुख में विष्णु, कण्ठ में रुद्र, तल में ब्रह्मा और मध्य में सब देवी, देवता और तीर्थों को भर दिया असंख्य नर नारियों के समक्ष विनीत भाव से मेरी पूजा कर के यह प्रार्थना की गई कि 'सर्वकामप्रदो भव।' तब नवरात्र की विजयादशमी के शुभ अवसर पर मैं धान्याङ्कुरों पर समासीन होकर कामधेनु से भी अधिक पवित्र, सामर्थ्यशाली बनकर मस्ती से झूम रहा था तो मैं ने देखा कि वही मेरा चिरशत्रु या परम हितकारी कुम्हार अन्यमनस्क सा सब के पीछे खड़ा था। उस समय मैं ने इन महात्माजी का ही लिहाज किया नहीं तो मन यही कहता था कि उस की गोदी में जा विराजूँ। बचे, बूढ़ा होने से अब मुझे महात्माजी ने अवकाश प्रदान (पेंशन) कर दिया है, पर मैं नहीं चाहता कि बेकार ैठकर मुफ्त में दिन काटूँ। यद्यपि अब मैं कृतकृत्य और क चतुर्थाश्रमी हूँ तथापि अकर्मण्यता को त्यागकर कुछ न ुछ महात्माजी की निष्काम सेवा कर ही दिया करता हूँ, योंकि जीवन का यही आदर्श है। अब तू मेरी इस आप-ीती रामकहानी से समझ गया होगा कि मैं क्यों तुझ चेतन े मस्तक पर सवार हुआ करता हूँ। मेरी तरह तू यदि ष्टों को सहर्ष झेलकर मोहान्धता से कर्मों को न त्यागेगा ो न जाने इन्द्रपद पर चढ़ेगा या ब्रह्मपद पर! क्योंकि ुझ जड़ का पाला तो एक निरे गवाँर कुम्हार से पड़ा था, ूने तो एक नररत्न महानुभाव की शरण ली है। इस लिए ू समझदारी से काम लेकर अज्ञान की ऊबड़ खाबड़ जमीन में मत भाग, ज्ञानचक्षु को खोलकर कर्मयोग का आश्रय ले।

सज्जनो, इस मनमोहक घटना से अचरज में भरकर निर्निमेष दृष्टि से चेला कुम्भोपदेश श्रवण कर रहा था, अतः उसे भान ही न हुआ कि गुरुजी जल की प्रतीक्षा में बैठे हुए जल भुनकर खाक हो रहे होंगे। किंतु दम्य बछड़े के समान उद्दण्ड चेले को राह पर लाने के लिए ही गुरुजी दुर्वासावतार थे, अन्तर में तो उनके वही करुणा की तरङ्गिणी हिलोरे ले रही थी। इस लिए कुछ विलम्ब होते ही वे नदी की ओर चले आये और एक लता की ओट से यह सारा किस्सा सुन लिया। जब घड़े ने मौन मुद्रा बाँध ली तो गुरुजी सामने आये और वात्सल्यभाव से चेले की तरफ देखते हुए उस घड़े को मन्त्रपाठ करते हुए नदी के गंभीर ह्रद में स्थापित कर दिया। अस्तु, यह तो दृष्टान्त की बात हुई, उस चेले के समान तुम लोग इस कुम्भज उपदेश को धारण करोगे तो किसी कुम्भपर्व में नहाने जितना ही पुण्य के भागी होओगे।

केवल विद्या पढ़ लेने से भी अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता, उस के लिए कर्मों की कर्तव्यता अनिवार्य है, क्योंकि उस बुद्धिविवेक के आजमाने का अखाड़ा या परखने की कसौटी कर्म ही ठहरेंगे। विकारयुक्त काम तो सभी करते हैं पर विद्वत्ता की चरितार्थता इसी में है कि असंग, अराग, अद्वेष, अफल होकर कर्म किये जायँ। यदि विद्वान् होकर भी कामना, क्रोध, लोभ, मोह आदि रिपुओं को न जीता गया तो मूर्ख और विद्वान् एक से हैं—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
क्या पण्डित क्या मूरखा, दोनों एक समान॥

यहाँ शुभ कर्म की अनिवार्यता बतलाने का यह तात्पर्य है कि एक सुशिक्षित और एक मूर्ख दोनों तीसरे दर्जे का टिकिट लें, यानी दोनों एक से ही कर्म करें तो इन को यात्रा में साथ साथ एक ही प्रकार की गाड़ी में बैठना होगा और एक ही दरवाजे से निकलना पड़ेगा। यदि उस विद्वान् शास्त्री को मूर्ख के साथ नहीं बैठना है तो ऊँचे दर्जे का टिकिट लेना चाहिए, यानी अच्छे कर्म करने चाहिएँ। शुष्क विद्या पढ़ने से मूर्खों के समाज से भिन्नता नहीं होती, कर्मों से होती है,— 'शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् स नरो हि विद्वान्।' अतएव भगवान् कहते हैं कि 'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्' बुद्धिमानों की पवित्रता निष्काम कर्मों से ही प्रकट होती है। यह अन्तःकरण मलिन होने के स्वभाववाले कपड़ों के समान है, राजा रंक, धनी दरिद्र, पण्डित मूर्ख इन सब के कपड़े मलिन होते और धोने पड़ते हैं, इसी तरह अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए भी साव-धानी के साथ कर्मों की आवश्यकता सभी को है; चाहे जोगी जती, सिद्ध साधक, जंगम त्यागी कोई भी हो। अन्तःकरण के शुद्ध रहने पर ही श्रद्धा, भक्ति उपजती हैं,—'स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संभवन्ति', और वह शुद्ध न हुआ तो उस में झाड़ झखाड़ों के तुल्य कँटीले अत्याचार पैदा होंगे। विशेषता यह है कि ऐसा होने पर मूर्ख लोग तो कम, पर पढ़े लिखे या चतुर सुजान लोग ही अनाचारों की भयंकरता में बाजी मार ले जाते हैं तथा अपनी बुद्धि, बल या धन के प्रभाव से मूर्खों

को हर तरह से दबाते रहते हैं। इस लिए बुद्धिमानों को सदा अन्तःशुद्धि पर जिम्मेवारी के साथ ध्यान देना चाहिए, जैसे कि किसान अपनी खेती का ख्याल करता रहता है—

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
यहि तनकर फल विषय न भाई।
स्वर्ग उस्र अन्तहु दुखदाई॥

—तु० रामायण

यज्ञ, दान व तप से क्रमानुसार मन धन और तन की शुद्धि होती है। इन को दोषरूप समझनेवालों का यह आशय है कि जैसे काम्य कर्म दोषपूर्ण हैं उसी तरह अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य ज्योतिष्टोम इत्यादि नित्य कर्म भी दोषपूर्ण हैं। क्योंकि इन नित्य कर्मों के लिए धान को तिल कूटने, चलाना पकाने और लीपने पोतने में तथा हवनकाल में जीवनाश या पशुघात से हिंसा का ढेर गँज जाता है। इस लिए नित्य कर्म भी काम्य कर्मों के तुल्य दुष्ट होने से त्याज्य हैं क्योंकि किसी प्राणी को न मारो (मा हिंस्यात् सर्वभूतानि)' यह वेद की वाणी है। अतः यज्ञों की हिंसा भी निषिद्ध समझनी चाहिए। रही अन्तःकरणशुद्धि की बात सो तो हिंसाप्रधान नित्य कर्मों के बिना ही गायत्री मन्त्र आदि के जप से सुगमतया हो सकती है; जैसे लगे न फिटकिरी, रंग चोखा आवे तो क्यों इन नित्य कर्मों की झंझट में पड़ा जाय। जैसा कि महाभारत का कथन है—

जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते।
अहिंसया हि भूतानां जपयज्ञः प्रवर्तते॥

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि इस भगवदाज्ञा से जपरूप यज्ञ सब से श्रेष्ठ है क्योंकि इस में हिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इस उक्ति का खुलासा यही है कि हिंसावाले नित्य कर्मों को त्याग देना चाहिए। अस्तु इन कर्मभीरुओं की युक्तियों पर गीता तथा अन्यान्य शास्त्रों का वक्तव्य इस प्रकार है— "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" यह वेदवचन जो प्राणिहिंसा का निषेध करता है वह यज्ञादि कर्मों में परहितार्थ दुष्टदमन युद्ध और धर्मरक्षार्थ हिंसा का निषेध नहीं करता, क्योंकि दूसरे वेदवचन ऐसी हिंसा करने की आज्ञा देते हैं। इस लिए सब वेदवचनों के पूर्वापर का लिहाज करके यह मानना पड़ता है कि यह शास्त्रानुमोदित हिंसा करने में कोई दोष नहीं होता है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' कहने का यही मतलब है कि लोक और धर्मरक्षा से इतनी हिंसा अनिवार्य है अहिंसा को मजबूत बनाने के लिए होने से वह भी अहिंसा ही है। और यज्ञों में साक्षात् पशु काटकर चढ़ाना जरूरी नहीं सात्त्विक पूजा में उन के बदले दूसरी चीजें नियत हैं बल्कि पशुबलि तो तामस धर्म है। इसी वास्ते हिंसाबहुल अश्वमेध गोमेध आदि काम्य यज्ञों की कीमत कितनी ही अच्छी क्यों न मिलती हो इन काम्य कर्मों का भगवान् जो जोड़ विरोध कर रहे हैं। और नित्य कर्मों में जो कुछ हिंसा होती है वह फल और आसक्ति का त्याग कर देने के कारण भगवान् के मत्थे पड़ेगी न कि निमित्तमात्र निष्कामकर्मियों के हिस्से में। गीता का अवतार इस प्रकार की हिंसा को अहिंसा में परिणत कर देने के लिए ही तो हुआ है। इस लिए यह सिद्धान्त स्पष्ट है कि नित्य नैमित्तिक कर्म दोषपूर्ण नहीं इन का त्याग अज्ञानमूलक है। यहाँ भगवान् के ऐसे त्याग को तामस कहने का यही भाव है कि जो कोई अपने वर्ण, आश्रम, स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार शास्त्रों में विधान किये हुए कर्तव्य कर्म के त्याग को भ्रम से मुक्ति का हेतु समझ कर वैसा त्याग करता है तो वह मोह से होने के कारण तामस है। क्योंकि मोह की उत्पत्ति तमोगुण से है और तामसी मनुष्यों की अधोगति निश्चित है इस लिए उपर्युक्त त्याग वह त्याग नहीं है जिस के करने से मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। वह तो लोकसंग्रह या कर्तव्यविमुख छोड़ देने के कारण ज्ञानियों के लिए भी अधःपात का हेतु है।

शङ्का

(प्र०—एक गीताप्रेमी)

योगदर्शन के साधनपाद में उन सिद्धियों का उल्लेख है जो पाँच यमों में प्रतिष्ठित होने से प्राप्त होती हैं। वे सूत्र क्रमशः ये हैं—३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०। अर्जुन को गीताश्रवण का योग्य अधिकारी यदि भगवान् मानते हैं तो क्या उस में ये आवश्यकीय गुण थे? इस का कोई उल्लेख गीता में है या नहीं, यदि है तो कृपया श्लोकों का स्पष्ट निर्देशपूर्वक विवरण करने की कृपा कीजिए।

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। इन प्रत्येक में सुप्रतिष्ठित होने का फल शङ्का में निर्दिष्ट सूत्रों में दिया ही गया है, यथा—

१—अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संन्निधौ वैरत्यागः।

अहिंसा में प्रतिष्ठित होने से साधक के प्रति सब कोई वैर त्याग कर देते हैं या वैरि के प्रति वैरभाव नहीं रहता है। अर्जुन में यह अहिंसा की प्रतिष्ठा कहाँ तक हुई थी इस का प्रमाण गीताप्रकरण के पूर्ववर्ती महाभारत के सदर्भ में उस समय मिलता है जब युद्ध का प्रारम्भ करने के पहले अर्जुन आदि पाण्डव निरस्त्र होकर विनीत वेष में शत्रुसैन्य के अंदर पितामह भीष्म और गुरु द्रोण के पास युद्धविजयार्थ आशीर्वाद ग्रहण करने गये थे। उस समय किसी शत्रु ने उन को मारने की तो बात ही क्या, बन्दी भी नहीं बनाया। गीता से ही इस के समाधान का आग्रह हो तो उस के लिए यह श्लोक है—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

यहाँ पर भीष्म और द्रोण के हमले का जवाब बाणों से देने में अर्जुन अपनी असमर्थता दिखला रहा है। इस से सूचित है कि उस में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो गई थी।

२—सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

सत्य में प्रतिष्ठित होने से क्रियाफल की प्राप्ति अवश्य होती है। अर्जुन में इस की सत्ता की सूचना गीता के २।५ वें इस वाक्य से होती है—

गुरूनहत्वा हि ······रुधिरप्रदिग्धान्॥

इस श्लोक में गुरुओं को मारकर पापपूर्ण राज्य भोग की अपेक्षा गुरुओं को न मारकर भिक्षा के अन्न से निर्वाह करने को सुखकर बतलाना अर्जुन की सत्यनिष्ठा को ही सूचित करता है।

३—अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

दूसरे की चीज को आत्मसात् न करना अस्तेय है, इस की प्रतिष्ठा से सर्वरत्न उपस्थित होते हैं। अर्जुन में इस की प्रतिष्ठा के लिए यह श्लोकांश दिखाया जा सकता है—

'येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।'

इस श्लोक के अनुसार अर्जुन राज्य को कुटुम्ब या दूसरों की वस्तु मानता था, अपने लिए इस की जरूरत उसे नहीं थी। 'प्रतिष्ठा' माने बाहरी दिखावा नहीं किंतु उस पर टिके रहने का हृदय से असल इरादा चाहिए, यह नहीं कि 'मन में भावे मूँड हिलावे।' इस प्रतिष्ठा के साथ यह श्लोक भी संबन्ध रखता है—

'अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।'

यहाँ पृथ्वी और स्वर्ग का एक छत्र निष्कण्टक राज्य भी अपने लिए हेय बतलाया गया है।

४—ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने से वीर्यलाभ होता है। यहाँ ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है गुरु के पास जाकर शिष्यभाव से रहना। सो अर्जुन कह ही रहा है—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'

मैं शिष्य होकर आप की शरण में पड़ा हूँ, मुझे आदेश दीजिए। इस ब्रह्मचर्य व्रत से अर्जुन को वीर्यलाभ के लिए भगवान् की यह आज्ञा है—"युद्ध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।"

५—अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः।

अपरिग्रह माने अलोभ; इस का आधार गीता का १८।५३ वाँ यह वचन है—

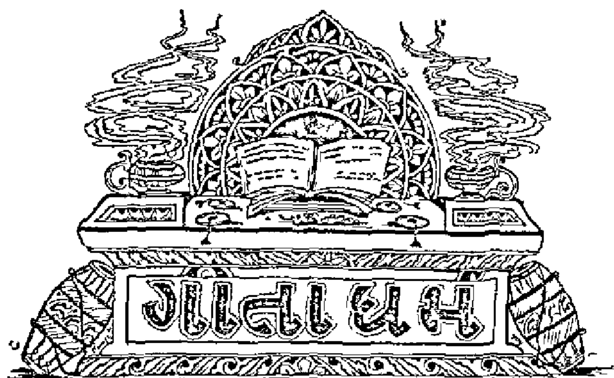
'अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।'

यहाँ क्रम से छः रिपुओं का उल्लेख होने से परिग्रह का अर्थ लोभ हुआ, जो कि पाँचों का मूलभूत है। अतः सूत्र का अर्थ यों हुआ—योगी लोग निर्लोभ होते पर यह जान लेते हैं कि हमारा आगामी जन्म कैसा होगा। यह फल अर्जुन को हाथों हाथ मिल चुका था, क्योंकि वह कहता है—

'अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।'

इस विवेचन से अर्जुन में पाँचों सिद्धियों की सत्ता सुस्पष्ट होती है।

સંસ્થાપક:—શ્રીમત્પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકપ્રસિદ્ધ, ગીતાવ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્‌ગુરૂ, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી, મહારાજ.



સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ, અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચઃ.

વર્ષ: ૭ મું } કારતક નવેમ્બર ૧૯૪૨ : { અંક ૧૧ મો

શરણ પ્રતિજ્ઞા.

સત્ય કહોં મેરો સહજ સુભાઉ;
સુનહુ સખા કપિપતિ લંકાપતિ તુમ્હ સન કૌન દુરાઉ.
સબ બિધિ હીન દીન અતિ જડમતિ જાકો કતહું ન ઠાઉ;
આયે સરન ભજૌ ન તજૌ તિહિ યહ જાનત ઋષિરાઉ.
તિનહિ લાગિ ધરિ દેહ કરોં સબ ડરો ન સુજસ નસાઉ;
પુનિ પુનિ ભુજા ઉઠાઇ કહત હોં સકલ સભા પતિયાઉ.
નહિં કોઉ પ્રિય મોહિ દાસસમ કપટ પ્રીતિ બહિ જાઉ;
સુનિ રઘુપતિ કે વચન બિભીષન પ્રેમ મગન મન ચાઉ.
'તુલસિદાસ' તજિ આસ ત્રાસ સબ ઐસે પ્રભુ કહેં ગાઉં;

— ગોસ્વામી તુલસીદાસજી

આત્મભાવ

(લે૦—ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઇ)

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
—गी॰ २।१३

મનુષ્યની બાલ્યાવસ્થા ગયા પછી જ્યારે તેને યુવાવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે, ત્યારે પણ જે હું બાળક હતો તેજ હું જુવાન થયો છું, એવી રીતે બેય અવસ્થાઓમાં પોતાનું અસ્તીત્વ અને એકપણું તેને જણાઇ રહે છે. માટે દેહાભીમાનની જીવની બાલ, [illegible] તથા વૃદ્ધાવસ્થામાં જે ફેર જણાય છે તે તો [illegible]ત્ર શરીરની અવસ્થા બદલાવાથી જણાય છે, [illegible]ત્મા બદલાવાથી નહીં. એજ પ્રમાણે બીજું [illegible]રીર પ્રાપ્ત થવું, એ પછી આગલા દેહના નાશને [illegible]ધે છે; પૂર્વ શરીરમાં રહેલા આત્માનો નાશ થવાથી નહીં. વળી તુરતના જન્મેલા બાળકની સ્તનપાનમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે તે પણ પૂર્વ જન્મના સંસ્કારને લીધે થાય છે. માટે બુદ્ધીમાન પુરૂષો શરીરનો નાશ થવાથી આત્માનો નાશ માનતા નથી તેમ અજ્ઞાની જેમ શોક કરતા નથી.

આત્માનું યથાર્થ સ્વરૂપ જાણનારા મહાપુરૂષોએ સત્ તથા અસત્ પદાર્થો વિષે નીર્ણય કરેલો હોય છે તેથી આત્મા સત્ય સ્વભાવવાળો સાક્ષી રૂપે વ્યાપી રહેલો છે તેનું સ્વરૂપ નાશ રહીત છે. ક્ષય તથા વૃદ્ધી આદિ છએ વિકારથી રહિત છે અને તે આત્માનો નાશ કરવાને કોઇ પણ સમર્થ નથી.

તત્વવેત્તાઓએ કહ્યું છે કે આત્માનો કોઇ કાળે નાશ થતો નથી. સુખ દુખાદિ સાથે સંબંધ નથી અને સદાય એકરૂપ રહેનાર, નાશ રહિત તથા અમાપ અને સર્વવ્યાપક છે.

આ આત્મા કોઇ કાળે જન્મતો નથી અને મરતો પણ નથી તેતો જન્મ તથા નાશના વિકારોથી રહિત છે તે કંઇ ઉત્પન્ન થઇને કે જન્મીને અસ્તીત્વ ભોગવતો નથી. પણ પોતે સત્ રૂપ છે. અજન્મા છે. તે જેવો છે તેવેજ રૂપે તે સદા એક રસ રહે છે. તે વૃદ્ધીના ક્ષીણતાના વિકાર રહિત છે તેથી શરીરનો નાશ થવા છતાં આત્માનો નાશ થતો નથી.

માટેજ તત્વજ્ઞાની મહાપુરૂષો સર્વથા આનંદી શોક મોહ વિગેરેથી પર રહીને અખંડીત આનંદ અનુભવે છે. આવા મહાન પુરૂષો પોતે જ્ઞાનનો પરમાનંદ અનુભવે છે અને પરોપકારાર્થે જીજ્ઞાસુઓને આત્મજ્ઞાનનો ઉપદેશ આપી જીવન મરણના ફેરામાંથી મુક્ત કરાવે છે અને પોતે મુક્તી મેળવે છે અને જીજ્ઞાસુ જનતાને મુક્તી અપાવે છે.

પણ મુક્તી મળે ક્યારે?
પ્રથમ જીજ્ઞાસુતા થાય ત્યારે.

ॐ તત્સત્



તૂર્ણીં બભૂવ હ' અહીં સુધીના વચ્ચેના શ્લોકોનું તાત્પર્ય એ છે કે અર્જુનની માફક દરેક પ્રાણીની અંદર શોક, મોહ, રાગ, દ્વેષ, વિગેરે સંસાર બન્ધનના કારણભૂત દોષ પ્રકટ થયા કરે છે. અહિં જીજ્ઞાસા થાય છે કે તેનાથી બચવાનો કે તેમાંથી નિકળવાનો ઉપાય કયો થઈ શકે છે ? તેનું સમાધાન એ છે કે એ પણ સંસારનો સ્વભાવ છે, તેમાં એક બાજુ બળતી આગની ચીનગારીઓ છે, તો બીજી બાજુ ઠંડક આપનાર નિર્ઝર કેટલાક ઝરા પણ છે, એક બાજુ ઉથલપાથલ છે, તો બીજી બાજુ સ્થિરતા, શાંતી પણ છે. મનુષ્ય પ્રયત્ન કરવાથી કર્મ બન્ધનની જાળથી છુટીને સુખશાંતીના માર્ગમાં જઈ શકે છે. જ્યારે તે પોતે કર્મની જાળમાં ફસાય છે.ત્યારે તે પોતેજ નિષ્કામ કર્મ કરીને નિકળવામાં પણ સમર્થ છે. વસ્તુતઃ સંસાર એવો પકડી લેવાવાળો નથી, મનુષ્ય પોતાની અજ્ઞાનતાથી એવો થઈ જાય છે કે જેમ કોઈ ઝાડના થડને બાથમાં પકડીને કહે કે ઝાડે મને જબરદસ્તી પકડી રાખ્યો છે, એવીજ દશા બન્ધનગ્રસ્ત મનુષ્યોની છે.

બુદ્ધિમાનને ઉચિત છે કે બન્ધનના કારણ સ્વરૂપ અવાસ્તવિક શોક મોહને, કર્મની સકારતાને, છોડી દે. ઇશ્વરને સાક્ષી રાખીને એવું કરવાથી બન્ધન પોતેજ કપાઈ જાય છે, વગર કારણે કામનો ઉદ્યોગ કેવી રીતે થશે ? અહંરૂપ જે અભિનિવેશ છે તે કલ્પનામાત્ર છે, અખંડ વિજ્ઞાનઘન વસ્તુમાં આ અહંકારનો આરોપ માત્ર મનોરાજ્ય છે. અનુભવિયોનું કહેવું છે—

अविद्यायोनयो भावा सर्वेऽमी बुद्बुदा इव ।
क्षणमुद्भूय गच्छन्ति ज्ञानैकजलधौ लयम् ॥

અવિદ્યાથી ઉત્પન્ન થયેલા જેટલા પદાર્થ છે તે સર્વ પાણીના પરપોટાની માફક ઉત્પન્ન અને વિલીન થયા કરે છે. મનમાં કોઈ સંકલ્પની કામના થઈ અને મનનો સારો કે બુરો ભાવ તેના પર પડ્યો, તેજ અનુકુલ પ્રતિકૂલ ભાવ રાગ દ્વેષને જન્મ આપે છે. આ અવિદ્યાયુક્ત મન જ્યાં સુધી છે, ત્યાં સુધી રાગ દ્વેષ છે, સુષુપ્તિમાં મન નથી રહેતું તો રાગ દ્વેષ પણ નથી રહેતો. મનુષ્યની બુદ્ધિ પર આ એક પડદો પડ્યો છે. જેનાથી તે અસલીયતને જાણતો નથી, ફલસ્વરૂપ ભય અને અજ્ઞાન તેને દબાવી રાખે છે. તેનાથી બચવાનો ઉપાય એ છે કે બુદ્ધિ અને વિવેકને ચૈતન્ય બનાવી રાખે, ચિત્તને એવું બનાવવામાં આવે કે તેમાં વિષયોનો પ્રબલ પ્રભાવ પડીજ ન શકે. તે કોઇથી ન ઘૃણા કરે ન મોહ, ન કોઈ કૃતકૃત્યતા પર ફુલાઈને અહંકારી બની જાય.

સિદ્ધાન્ત એ છે કે નિષ્કામ કર્મયોગનાં અનુષ્ઠાન ઉપાસના અને જ્ઞાન દ્વારા પ્રાણી પોતાના સર્વ સંસ્કારોને સંસારમાં રહીનેજ પવિત્ર કરી શકે છે. અને જીવત્વને નષ્ટ કરીને નિત્ય શુદ્ધબુદ્ધ મુક્તસ્વરૂપ સચ્ચિદાનંદ સત્તામાં પ્રેરીત થઇને સર્વ પુરૂષાર્થોના અંતીમ લક્ષ મોક્ષ પદને પ્રાપ્ત કરી શકે છે. ત્યારે તે જીવનમુક્ત સિદ્ધના ક્રિયમાણ કર્મસંસ્કાર સ્વરૂપજ્ઞાન દ્વારા વાસનાનાશની સાથેજ મુળમાંથી નષ્ટ થઈ જાય છે, સંચિત કર્મ સંસ્કાર તેના કેન્દ્રને છોડીને અનંતવ્યાપી મહાકાશનો આશ્રય કરી લે છે. કેવલ વિદેહ મુક્તિ થતા પર્યંત ભોગ દ્વારા ક્ષય થવાને માટે પ્રારબ્ધ સંસ્કાર બચી જાય છે. વાસનાનો નાશ થવાને કારણે અવશિષ્ટ પ્રારબ્ધ ભોગથી ક્રિયમાણ કર્મની ઉત્પત્તિ થવા પામતી નથી. તે પ્રારબ્ધ સંસ્કાર જ્યારે શેકી નાખેલાં બીજની માફક જીવન્મુક્તની અંદર રહીને

છે. શ્રી ગીતાજીમાં વિભૂતિ યોગમાં કહ્યું છે તેમ તે દરેકમાં છે. આપણે તુળશી પત્ર કે પુસ્તક—ધર્મનાં પુસ્તકો ગીતા આદીને આંખે શા માટે અડાડીએ છીએ ? કારણ, તેમાં ઇશ્વર છે, તેથી તે આંખે અડાડવાથી આંખો પવિત્ર થાય છે.

કેટલાકને સ્વર્ગમાં જવાની પણ ઇચ્છા નથી. કારણ ત્યાંથી મોક્ષ નથી. કોઈ કોઈ સકામ સાધકો તે ચાહે છે. એ મળી પણ શકે છે, એ કાંઈ મોટી વાત નથી. કોઈ ઈશ્વર સાથે એક રૂપ થવાનું માગે છે.

"Hinduism is the Empire of all Religions" કારણ દરેક ધર્મના સિદ્ધાન્તો આપણે તેમાં લેઇએ છીએ. દાખલા તરિકે, પારસી અગ્નિને માને છે, આપણા ધર્મમાં અગ્નિ દેવ છે, મુસલમાન પોતાને ખુદાના બંદા (દાસ) માને છે, આપણામાં પણ દાસ—સખા ભક્તિ છે. દાખલા તરિકે હનુમાન, અર્જુન વગેરે. ખીસ્તીઓ પોતાને Son of God માને છે, ચીના Confucious (પવિત્રતા) પરોપકાર માને છે.

વિવેકાનંદ કહે છે "Buddhism is not Legitimate" (વિદ્રોહિ સંતાન છે) છતાં બુદ્ધ ધર્મ શંકરાચાર્યે તજ્યો નથી. પણ જરૂર પડતાં તેને અંદર સમાવ્યો છે. "Hinduism" માં એવી એક મોટી તાકાત છે, ભારે ઉદાર ધર્મ છે.

મૂર્તિ પૂજા.

બધાજ મૂર્તિપૂજક છે. છતાં કેટલાક હિન્દુઓની નીંદા કરે છે. એવો એક પણ ધર્મ કે પંથ નથી કે જેમાં મૂર્તિપૂજા નથી. મુસલમાન મસીદ કાં બનાવે ? પરમેશ્વર એક નાની સરખી મૂર્તિમાં પણ સમાઈ શકે છે અને સમગ્ર જગતમાં પણ વ્યાપી શકે છે. "परमात्मा अणोःअणीयान महतो महीयान्" છે. ખ્રીસ્તીઓમાં "Roman catholic" તો પૂજે છે, "Protestent" ના ચર્ચમાં ક્રોસ છે, આર્ય સમાજીઓ ના પાડે છે. કારણમાં જણાવે છે કે પૂજા કરીને જ્યાં ત્યાં ફૂલો ફેંકાય છે, તેથી ત્યાં દુર્ગંધ મારે છે. અને દયાનંદ સરસ્વતિની છબી તેઓ પોતાની પાસે રાખે છે. વેદમાં મના કહેવાય છે, પણ હવન તો એ લોકો પણ કરતા. આગ તો મૂર્તિ જ છે. જડ (માટી પત્થર જેની મૂર્તિ બને તે) પણ ચેતન છે ઘણા દેવ દેવોની વાત છે તેથી ગલતી થઇ જાય. આર્યોના હવનમાં પણ ઘણાય છે.

इन्द्राय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, वायवे स्वाहा, अग्नये स्वाहा તેઓ બધા બ્રહ્મ છે, તો અમારા બધા પણ બ્રહ્મ કેમ નહિ ? અમે પણ કહી શકીએ કે કૃષ્ણ, કાર્તિક સ્વામી, લક્ષ્મી, પાર્વતિ વગેરે બ્રહ્મ છે. જેને જે ચાહે તે રૂપે તે પૂજે.

साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना હકીકત આમ છે કે સાધક ભક્તની ખાતર ભગવાન સાકાર બન્યા છે. મૂર્તિમાં તમે કલ્પો તો ત્યાં પણ વસ્યા છે. જુઓ—

"તુલસીદાસ કે કારણે કૃષ્ણ ભયે રઘુનાથ" એ સત્ય વાત છે. તે સાધારણ નિયમ છે. મોટા માટેજ છે એમ નથી, બધાને માટે છે. તુલસીદાસ તો મોટા હતા, તેવી ઉચ્ચ સ્થીતિમાં પણ પૂજા તો કરતા. (તુલશીદાસ ચંદન ઘસે તિલક કરે રઘુવીર) રામકૃષ્ણ (અદ્વૈતવાદમાં) સિદ્ધ હતા. सोहम् शिवोहम् હતા. તે પણ કાલિની પૂજા તો કરતા. આ બધા માટે સત્ય છે. કોઇને પ્રેમ ન હોય એ જૂદી વાત છે. નિરાકાર રૂપમાં જોવા માગતા હો તો એ પણ હિન્દુ ધર્મમાં છે. "નિંદા ન કરો" એ સિદ્ધાન્ત છે. એ મોટી અને સત્ય વાત છે.

ચૈતન્યજી પંડિત નામે શાસ્ત્રી હતા. તેઓ શાક્ત સરાવતા, હતા તે વખતે શક્તિનો સંચાર

થયો બસ થઈ ગયું ! તે પાગલ બની ગયા ! કૃષ્ણ ! કૃષ્ણ ! બોલવા લાગ્યા. ન્યાય દર્શનની ચોપડીઓ જળમાં ડૂબાડી દીધી, રાધા માફક સખી ભાવને પ્રાપ્ત થયા આવા પંડિત પણ પ્રકાશ થતાં મૂર્તિ પૂજક બન્યા કેટલાય પ્રખર "યૂરોપીય" નાસ્તીક જીવનની છેલ્લી ઘડીએ આસ્તીક બન્યાના દાખલા છે

ભગવાન ગુરુ રૂપમાં આવે છે ગુરુને મૂકી શિવ ભાવ કરો તો દોષ છે "નાદ્વૈતમ્ ગુરુણા સહ" ગુરૂ પાસે રહી એની સેવા આજ્ઞા પાલનથી ચિત્ત શુદ્ધિ થાય, આ ગુરૂ મંત્ર છે વિદ્યા મેળવવા માટે સેવા નહિ કરે અને ચોરી કરે, તેથી કંઈ વળે નહિ વિદ્યા તો મળે નહિ અને મળે તો ફળે નહિ અને જેવા હોય તેવા રહી જાય, લાભ તો ન મેળવો ગુરૂ પ્રભુ થઈ આવે ત્યારે પાગલ બની જાય, અને તે ચીજ આવી ગયે બધું વ્રત તપ છોડી દો એજ ભગવાનની ગુરુની પૂજા અને તેની વાણીનો પ્રચાર

ઋષીઓ તપ કરતા હતા, ત્યાં ફરતા ફરતા રામચંદ્રજી પધારે છે, ઋષીઓ પ્રણામ કરીને કહે છે—અમે જાણીએ છીએ આપ સ્વયં પ્રભુ છો. આદેશ આપો અમે પૂજા કરીશું, સેવા કરી શું રામે કહ્યું અત્યારે હું રાજા—મનુષ્યની મર્યાદામાં આવ્યો છું માટે તમે કહો છો તેમ ન થાય હમણાં વ્રત કરો વૃંદાવનમાં ગોવિંદ બાળ સ્વરૂપે અવતરશે ત્યાં પૂજા થઈ જાય બુદ્ધાવતાર થયો તો એને સેવો બીજી વાત નહિ બુદ્ધમ્ શરણમ્ ગચ્છ, સંઘમ્ શરણમ્ ગચ્છ વેદાન્તને હાથે રાખો પણ ગુરૂ (પ્રત્યક્ષ પ્રભુને) ન મૂકો

મૂર્તિ પૂજા કેમ કરવી "ફોટો" મૂર્તિ પર ભગવાન પર ભાવ કેમ આવે, કલ્પનાનો આશરો લો સારામાં સારી મૂર્તિ રાખો શ્રદ્ધાથી ભાવ આરોપો, વિશ્વાસ રાખો કે "છે" તુલસીદાસે અનુભવ્યો, રામકૃષ્ણે અનુભવ્યો, વિશ્વાસ મોટી વાત છે "નેપોલિયન" નું પહેલું વાક્ય—

'There Shall be no Alps in my way"

યાદ હશેજ પ્રહલાદનો વિશ્વાસ "તે સ્તંભમાં છે" ક્રાઈસ્ટ કહેતા "મને ઇસુમાં વિશ્વાસ છે, એના નામે ઉઠો" વગેરે આંધળા દેખતા થતા. આજ વિશ્વાસ નથી. બધા આર્ય સમાજી છે અથવા બનશે વિશ્વાસ જાય તો પ્રાર્થના કરીને મેળવો. કલ્પના (Imagination) કરતા રહો પછી શું કામ થાય છે તે જુઓ

મિત્ર અમેરિકામાં છે, કલ્પનાથી તેનાથી મળાશે પતિ દૂર દેશ છે, કલ્પનાથી તેનાથી મળાશે સુદામાના ગુરુ દૂર બેઠે તેની સ્થીતિ જોઈ શક્યા, આમ તે હાજર છે તે કહે છે હું તમારી સાથે—હાજર છું મૂર્તિમાં એકતાર થવાથી—પ્રત્યક્ષ ભાવે થાય છે "Try" ધીરે ધીરે આપણા દિલમાં પ્રકટ થશે પ્રત્યક્ષ થશે ભગવાનનું સ્થાન રાખે ઘરમાં તેના માટે ઉત્તમ સ્થળ પસંદ કરો, ઘડીકલાક નહિ મૂર્તિ પાછળ પ્રાણાર્પણ કરો આ સિવાય હિન્દુ જાતિ—હિન્દુ સમાજનો પુનરૂધ્ધાર નથી સંગઠીત થાઓ, પ્રચાર કરો, પ્રેમ ભાવ રાખો, તે સિવાય ભારત કે દુનિયામાં ક્યાંય પણ શાન્તિ નથી.

ૐ શાન્તિ

——o——

શંકા

(પ્રે૦—શ્રી સુદર્શન)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

—ગી૦ ૨।૫૩

"અનેક પ્રકારનાં વેદ વાક્યોથી વિચલિત થએલી તારી બુદ્ધિ જ્યારે સમાધિ વૃત્તિમાં સ્થિર અને નિશ્ચલ થશે ત્યારે સમત્વ બુદ્ધિરૂપ યોગ તને પ્રાપ્ત થશે."

આ શ્લોકમાં નિશ્ચલ અને અચલ શબ્દ એકજ અર્થના માલુમ પડે છે. આવી દ્વિરૂક્તિ કરવામાં ગ્રંથકારનો શું અભિપ્રાય છે?

એક પ્રશ્ન એ છે કે 'श्रुतिविप्रतिपन्ना' આ વિશેષણનો શો અર્થ છે? विप्रतिपत्ति મતભેદને કહે છે, તો શું શ્રુતિના વિષયમાં મતભેદ હોવો સારો છે કે મતભેદ ન હોવો સારો છે? ગ્રંથકાર શું એમ ચાહે છે કે અર્જુનની બુદ્ધિ શ્રુતિના અર્થના વિષયમાં ડાંવાડોલ થઈ જાય?

સમાધાન

(લે૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

આ શ્લોકનો અર્થ અવ્યવહિત પૂર્વ શ્લોકના અર્થને નજર સામે રાખીને કરવો જોઇએ. તે શ્લોક આ છે—

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

—ગી૦ ૨।૫૨

'જ્યારે તારી બુદ્ધિ મોહના પડદાને ચીરી નાખશે ત્યારે તું તે વાતોથી વિરક્ત થઈ જઇશ, કે જે સાંભળી છે અને સાંભળવાની છે.'

આ શ્લોકમાં શ્રોતવ્ય અને શ્રુતનો અર્થ ક્રમથી ઐહિક ભોગ અને પારલૌકિક ભોગ છે, જેવું કે બીજા અધ્યાયના આઠમા શ્લોકમાં અર્જુને કહ્યું છે—'પૃથ્વીનું નિષ્કંટક સમૃદ્ધ રાજ્ય અને સ્વર્ગના દેવતાઓ ઊપર સ્વામિત્વ મળી જાય, છતાં પણ મને એવું કોઇ સાધન દેખાતું નથી, જે મારા મનને તપાવનારા શોકને દૂર કરી નાખે' અહિં પૃથ્વીનું રાજ્ય શ્રોતવ્ય અને સ્વર્ગનું સ્વામિત્વ શ્રુત સમજવું જોઇએ. ઉપરના શ્લોક પછીથીજ 'श्रुतिविप्रतिपन्न' એ શ્લોક આવ્યો છે, એટલા માટે એ પદનો અર્થ એ થયો, કે શ્રુતિ એટલે કે શ્રોતવ્ય તથા શ્રુત, તથા વિપ્રતિપન્નનો અર્થ છે નિર્વિણ્ણ કે વિરક્ત (કંટાળી જવું) શંકાકાર એમ સમજે છે કે श्रुतिविप्रतिपन्न અર્થાત્ વેદાન્ત વાક્યોના અર્થમાં મતભેદ હોવો. પરંતુ એવો અર્થ નથી. મહામુનિ કપિલજીએ પોતાના દર્શનના ચોથા અધ્યાયમાં ઘણાં ઘણાં દૃષ્ટાન્તો તથા વાર્તાઓ દ્વારા મુમુક્ષુને માટે સદુપદેશ આપ્યો છે. ત્યાં તેવીસમું સૂત્ર શંકા વિષયક આ શ્લોકનેજ અનુસાર રચવામાં આવ્યું છે.

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।

એનો શ્લોકના અર્થ સાથે મેળ કરતાં એવું તાત્પર્ય નીકળે છે કે બુદ્ધિને હેયનો અર્થાત્ શ્રોતવ્ય તથા શ્રુત કર્મફળનો ત્યાગ કરવો જોઇએ તથા ઉપાદેય અર્થાત્ સમાધિનું ઉપાદાન કરવું જોઇએ. એટલાજ માટે નિશ્ચલ અને અચલ બે વિશેષણોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે; આ દ્વિરૂક્તિ સાર્થક છે નિરર્થક નથી. બન્નેનો અર્થ એજ છે કે ત્યાગમાં સ્થિર બુદ્ધિ થાય અને યોગમાં પણ સ્થિર બુદ્ધિ થાય; અહીં સ્થિર શબ્દમાં પણ પુનરૂક્તિ દોષ નથી, એક સ્થિર શબ્દનો અર્થ છે વિક્ષેપ, ચલન વર્જીત અને બીજાનો અર્થ છે સંદેહ રહિત. ઇત્યોમ

મહાપુરૂષ

(લે૦—સ્વામી શ્રી રામાનન્દજી સન્યાસી દર્શનશાસ્ત્રી વ્યાકરણાચાર્ય)

'विपदि धैर्यम्'

આ સંસાર સાગર જેવો અથાહ અને દુર્ગમ છે એમા મનુષ્ય જીવન એક તુચ્છ નૌકાની માફક છે એ જીવન નૌકાને કેટલાય આઘાત અને પ્રત્યાઘાતોનો મુકાબલો કરવો પડે છે કોઈ કોઈ વખત તો તેનો આપત્તિયોના મજબુત પત્થરો સાથે અથડાઇને ભૂકેભૂકો થઈ જાય છે અને કોઈકવાર તે ચતુર નાવીકની સાવધાનીથી પાર પણ લગી જાય છે મનુષ્યના આયુષ્યનો મોટો ભાગ દુઃખોથીજ રીબાતો વ્યતિત થતો જોવામા આવે છે હમે તો સમજીયે છીએ કે અખો સંસાર દુઃખરૂપ કારૂ ઉપર પથારી પાથરીને સુઈ રહ્યો છે સુખ શાંતીનો મહીમા તો અમે બહુજ સાંભળ્યા કરીએ છીએ પરંતુ તે ત્યાં પણ બહુજ થોડી જોવામા આવે છે કે જ્યા તેનું સ્થાન બતાવવામા આવે છે સાંભળવામાં આવ્યું છે કે તીર્થોમા સુખ શાંતીનું વાતાવરણ હમેશા રહે છે, પણ જઇને જોવાથી તો તેનાથી વિપરીત દશાનોજ અનુભવ થયો. કેટલાક લોકોને એવું કહેતા સાંભળ્યા છે કે મોટાના મહેલાની અંદર સુખ સંતોષનું સામ્રાજ્ય સુશોભિત થઇ રહ્યું હોય છે, પરંતુ જઇને જોવાથી ત્યા રાગ દ્વેષ અને કામનાની જ્વાળાઓ શરીરને સળગાવી દેતી હોય તેવી લાગી. એમ પણ સમજાયું હતું કે ઉચા મહેલોમા, બજારના બંદરોમાં, ભ્રમણમાં, મેળમિલાપના મેળાઓમા અને નાચ ખેલ, કુદ આદિના તમાસામા, સુખ શાંતી પ્રાપ્ત થશે, પરંતુ એ ધારણા પણ સાચી ન નીકળી

એ નિર્વિવાદ સાચુંજ છે કે મનુષ્યજીવનાકાશ આપત્તિના વાદળોથી ઘેરાયેલું છે, અથવા તેનો માર્ગ કાંટા અને કાંકરાથી પથરાએલો છે, અર્થાત્ આપત્તિ એની સાથેજ લાગેલી રહે છે, જ્યારે એવીજ વાત છે, તો પછી સમજદારી એમાંજ છે કે મનુષ્ય આપત્તિયોથી બચે અને સૌથી પહેલો તેને ઓળખી લે, તથા તેને આવવાના માર્ગને શોધી કાઢે તેનો સામનો કરે, તેનાથી હારે નહિ, આપત્તિયો તેનાથી ડરી જવાથી—કે નાસી છુટવાથી પણ મટી જતી નથી, તેનો તો સામનો કરવો પડે છે રાજા હરિશ્ચંદ્ર આપત્તિઓને જીતતા હસતા હસતા પાર ઉતરી ગયા, રાજા રામચંદ્રજીએ વિપત્તિયોને ગળાની ફુલમાળાની પેઠે ધારણ કરીને વીતાવી દીધી, તથા નળ, પાણ્ડવ, પ્રતાપ, અને શિવાજી આદિએ આ વિપત્તિરૂપ સાગરને ગાયની ખરીની પેઠે ગણીને પાર કરી દીધો, આ સર્વ પ્રકારની આપદાઓનો સામનો કરવાનો સરલ ઉપાય ભર્તૃહરિએ 'विपदि धैर्यम्' સુત્રમા બતાવી દીધો છે અસલમા તો આપત્તિ એ મનુષ્યનું ખરા અને ખોટાપણુ પારખવાની પરિક્ષા છે, આપત્તિની ભઠ્ઠીમા ન પડ્યો હોય, એવો સંસારમા કોઇ મહાપુરૂષ નથી જેઓ આપત્તિનો સાગર તરવા-માં સફળતા પ્રાપ્ત કરી ચુક્યા છે, તેઓનેજ જીવનસુખનું રત્ન મળી શક્યું છે

> सुखंरू होता है इन्सां, आफत आने के बाद।
> रंग लानी है हिना, पत्थर पे पिस जाने के बाद ॥

જ્યા સુધી મેંદીને પથ્થર ઉપર બરાબર ન

ામાં આવે ત્યાં સુધી તેનો રંગ બરાબર પ્રગટ નથી. તેવીજ રીતે જ્યાં સુધી મનુષ્ય મુશી-ની આગમાં બરાબર તપતો નથી, ત્યાં સુધી સાચુ સોનું છે એમ નથી કહી શકાતું, હમારૂં એમ નથી કે શ્રેષ્ઠ અને સાચા બનવાને માટે ય ઉપર આપત્તિઓ આવવીજ જોઇએ. હમારૂં કહેવું એમ છે કે આપત્તિયો અવશ્ય આવેજ છે. કે—

ઽय दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः।
ऽसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम्॥

એવો કોણ છે કે જેના વંશમાં કાંઈ કલંકજ ન ય, એવો કોણ છે કે જેને કોઇ ને કોઈ રોગે ાન ન કર્યો હોય, જેને કદી પણ વિપત્તિઓ ી ઝીલવી પડી એવો પણ કોઇ નજરમાં નથી ાવનો, અને એવો પણ કોઈ માનો જણ્યો ાવામાં નથી આવતો કે જે હમેશાં સુખના પાલણામાં લતોજ રહેતો હોય અથવા તો જે ફૂલોની પથારી પર જ હમેશાં સૂઈ રહેતો હોય. કેમકે—

सदा न काहू की रही, पिय के गल में बाँह।
ढलते ढलते ढल गई, सब तरुवन की छाँह॥

જે આપત્તિની વખતે ધૈર્ય ધારણ કરી શકતો ાય, કઠીનમાં કઠીન આફતના સમયમાં પણ જે નવિકારચિત્ત રહી શક્તો હોય, તેને ભર્તૃહરિએ ાહાત્ । કહ્યો છે. કેમકે મહાત્માઓને માટે વેપત્તિમાં ધૈર્ય ધારણ કરવું' એ પ્રકૃતિસિદ્ધ ાત માનવામાં આવી છે.

'अभ्युदये क्षमा'

મનુષ્યના અસ્તિત્વની મુદતની સીમા નિર્ધારિત કરી શકાતી નથી, તે ક્યાંથી ક્યાં પહોંચી જશે, તેની ભવિષ્યમાં શું દશા થશે, તે નહિ કહી શકાય. 'स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्' ની વાત મનુષ્ય તો શું દેવતા પણ નથી બતાવી શક્તા, ઘણા ખરા સાધારણ સ્થિતિના મનુષ્યો મહત્ત્વપૂર્ણ પદ ઉપર પહોંચી જઈ તેને સમલંકૃત કરવામાં સફલતા પ્રાપ્ત કરી જાય છે. અમે ઘણા રસ્તામાં રખડના ભિખારીઓને સિંહાસનના અધિપતિ બનેલા જોયા છે. સાધુ-સંસ્થાઓના મહંતોમાં તો અધિકાંશ એવીજ વ્યક્તિયોનું પ્રાધાન્ય છે. જેઓને બોલવાના પણ હોશ ન હતા, જેઓને ગઇ કાલે ભિખ માંગતાં પણ પેટ ભરવાને માટે ટૂકડો રોટલો મળવો મુશ્કેલ હતો, તેઓને આજ સોનાની અંબાડીવાળા હાથી ઉપર બેસીને જતા જોઇએ છીએ. હમારે એવા પરિવર્તનને માટે કંઈજ કહેવાનું નથી. અમારે તો ફરીયાદ ત્યારેજ કરવી જરૂરી થઈ પડે છે કે જ્યારે તેઓ પોતાના અધિકારનો દૂરઉપયોગ કરવા તત્પર થઈ જાય છે. અધિકાર પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય દુર્બલ-તાઓનો એવો શિકાર થઈ જાય છે કે તેને કંઇને બદલે કંઈ જણાવા માંડે છે. અધિકાર પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય ઉપકારને બદલે અપકારજ વધારે કરે છે. અભ્યુદય પામીને મનુષ્ય પોતાની પૂર્વદશાને ભૂલી જાય છે. તે 'अभ्युदये क्षमा', સહિષ્ણુતાનો આદેશ ભૂલી જઇને 'अभ्युदये उद्दण्डता' નું લક્ષ્ય બની જાય છે. અભ્યુદયશાળી જમીનદારોની અન્યાયની તલવારને ગરીબ ખેડુતોનાં ગળાં કાપતી હમે રોજ જોઈ રહ્યા છીએ. સાંભળ્યું છે કે ખડગબહાદુરસિંહ ભૂપતિ ક્ષણ માત્રમાં ચાહે તેને નાબુદ કરવાનું સામર્થ્ય રાખતા, તેમનો ક્રોધ તો ગજબજ હતો. તેણે પોતાની હયાતિમાં કેટલાયને જગતપૃષ્ઠ ઉપર-થી અશુદ્ધ અક્ષરની માફક સદાને માટે નાબુદ કરી નાખ્યા હતા, પણ પછી થોડા દીવસોમાં એ પણ સાંભળ્યું કે તેને લકવાએ માર્યો છે, હવે તે ખાટલામાં પડ્યો પડ્યો સડ્યાજ કરે છે.

એક ભાઈ કહી રહ્યા હતા કે કાશીના સૌથી મોટા મઠના મહંત આજકાલ ખરે બપોરે ઘીની મશાલ સળગાવીને ફરવા નીકળે છે, જ્યારે કે સાધારણ મનુષ્યોને ઘી દવાની સાથે ઘસી ચોપડીને સૂંઘવાને પણ નથી મળતું જમ્મુ અને કાશ્મીરના મહારાજા સાહેબ કાશી સ્ટેશન પરથી પગે ચાલીને વિશ્વનાથજીના દર્શન કરવા જતા હતા, પણ મહંતજી નજીકના મઠમાંથી પણ પાલખીમાં બેસીનેજ વિશ્વનાથજીના દર્શન કરવા પધારે છે કહો, આનું નામ શું? 'अभ्युदये क्षमा' એટલે કે અધિકારનો સદુપયોગ છે? જેમના હાથમાં બીજાના જાનમાલની રક્ષાનો ભાર છે, જે તપોમય જીવન વીતાવનારાઓ માટે આદર્શ જીવનનો પાઠ શીખવનારા છે, જે રાજહંસ હાથમાં લઈને દૂધનું દૂધ અને પાણીનું પાણી કરી બતાવવાનો દમ રાખે છે, જે સદા ચોથી પત્રોમાંથી ધર્મતત્ત્વ શોધીને જનતાની સામે રજુ કરવાની જવાબદારી પોતાના ઉપર લઈ ચુક્યા છે, તેઓ ક્યાં સુધી પોતાના અધિકારનો સદુપયોગ કરી રહ્યા છે? તે સંસાર સારી રીતે જાણતો હશે મનુષ્ય જીવનનું મહત્ત્વ પ્રકૃતિનું સ્મરણથી, આગ આપવાથી, અશોભન પદાર્થોની વધારે પડતી ચમકમાં પડીને પોતાનું કર્તવ્ય ભૂલી જવામાં નથી, તેની વિશેષતા તો અભ્યુદયમાં ક્ષમાનો ગુણ કેળવવામાં છે અભ્યુદય અર્થાત્ સંપત્તિના પ્રાપ્તિ કાળમાં ક્ષમા, સહિષ્ણુતા ધારણ કરવી અને ઉદ્ધતતાનો પરિત્યાગ કરવો, એવી યોગ્યતા મહાનુભાવ પુરુષોમાં સ્વભાવ સિદ્ધ હોય છેજ

'सदसि वाक्पटुता'

મનુષ્ય સામાજીક પ્રાણી છે, તેને સમાજમાં રહેવું છે, તે સમાજમાં રહીનેજ કંઈક મેળવી શકે છે જે કમણ્ડ એકાન્તસેવી છે, તે પહેલાં સમાજમાં રહીનેજ એકાન્તવાસના લાભ ઉપર વિચાર કરવાનો અવસર મેળવી શક્યો છે પરંતુ સમાજમાં રહેવાવાળાઓમાં પોતપોતાના સ્વાર્થને માટે આપસમાં સંઘર્ષ થતો રહે છે, અને તેથીજ લડાઈ ઝગડા તથા યુદ્ધ ઈત્યાદિ અશાન્તિપ્રદ અનેક પ્રકારના કલેશોની સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, સમાજમાં જે ચતુર છે, બુદ્ધિમાન છે અને દયાળુ સ્વભાવના છે, તેઓ સંઘર્ષને ટાળવાનો પ્રયત્ન કર્યા કરે છે પરન્તુ વિવાદોને તો તેજ મટાડી શકે કે જેનામાં ઉભય પક્ષને સમજાવવાની યોગ્યતા હોય જે વાક્પટુ હશે, જેનામાં યુક્તિયુક્ત બોલવાની કળાનું પરિજ્ઞાન હશે, તેજ સભામાં સ્વપક્ષ ઉપસ્થિત કરીને તેનું સમર્થન કરી શકે છે વખત બે વખત જે બહુજ બેલ બોલ કર્યા કરે છે, તેની વાણીનું સામર્થ્ય નષ્ટ થઈ ગયેલું હોવાથી તેના કહેવાની કોઈના પર અસર થતી નથી, સભામાં તો તેજ પુરુષ નિઃશંકપણે બોલી શકે છે કે જે ચરિત્રહીન ન હોય, એવા મહાત્માજ સજ્જન હોઈ શકે છે 'सदसि वाक्पटुता' અર્થાત્ સભામાં બોલવા ચાલવાની રીતો તો મહાનુભાવોની સ્વાભાવિકતામાંથી સહજ જડી આવે છે

'युधि विक्रम'

લડાઈ—ઝગડાથી સૌ કોઈ બચવા ઇચ્છે છે, તેના પ્રત્યે સૌનો તિરસ્કાર છે, તેનાથી કોઈને લાભ નથી, જે સ્વાર્થવશ ઝગડાથી લાભ થતો માને છે તેમને પણ એ અનિષ્ટ વ્યાપારથી આખરે તો દુઃખી થવુંજ પડે છે એ તદ્દન સાચું છે કે યુદ્ધ દ્વારા બળાત્કારે પ્રાપ્ત કરેલી બીજાની સંપત્તિ કોઈની પાસે સદા સ્થિર રહી શકતી નથી, અને તેને મેળવનારો મનુષ્ય પણ રહી શકતો નથી. એ સામર્થ્ય તો પરિશ્રમાર્જિત સંપત્તિનું જ છે કે

જે ઘણા દિવસો પર્યંત ટકી રહે છે. અને તેનાથી ઇષ્ટ સાધન પણ થઈ શકે છે અમારો તો એવો અનુભવ છે કે અન્યાય દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલી વિભૂતિ હમેશાં તેની પાસે તો રહેતીજ નથી, ઉલટી તે પોતાની સાથે કઈક વધારેજ લેતી જાય છે.

અમે એમ તો કહેતાજ નથી કે યુદ્ધ કરવુંજ ન જોઇએ, એ તો લડવું જ પડશે, પણ યુદ્ધ કોઇના ઉપર-આક્રમણ કરીને શાન્તિભંગ કરવાને માટે તો નહિ જ લડાવું જોઇએ. હા, આપણા દેશ ઉપર જો કોઈ આક્રમણ કરે, તો પછી તે ચાહે તે હોય, કેટલાયે પ્રસિદ્ધ શક્તિ સામર્થ્યવાન હોય, તેમની સામે રહીને યુદ્ધ કરનારા યોદ્ધાઓને માટેજ તો એમ કહ્યુ છે કે—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हत ॥

'તે સુર્યમંડલને ભેદીને યોગી મુની જેવી ઉચી ગતીને પ્રાપ્ત કરે છે બીજાઓને બરબાદ કરવાને નહિ, પરંતુ સૌને આબાદ કરવાને માટે અગર જો યુદ્ધ કરવાનો પ્રસંગ આવી પડે તો તેનેજ માટે 'युधि विक्रम '—રણાંગણમાં પરાક્રમ કરવાનું કહેવામાં આવેલું છે.

જાતિ તથા દેશની રક્ષાને માટે પોતાના લોહીના તેલથી પોતાની પાસળીના હાડકાની બત્તી સળગાવી રણચંડીની આરતી ઉતારનારનાજ સ્વર્ગની અપ્સરાઓ યશોગાન કર્યા કરે છે. દેશની રક્ષાને વખતે માળા તેમજ અન્ય પોથી પત્રોને ફેંકી દઇને જેઓ હાથમા સમશેર પકડી રણભૂમિને ચારધામની યાત્રા સમજીને તુરતા તુરત પહોંચી જાય છે, તેમને જ મહાનુભાવ કહી શકાય, કુમકુમ અને ચન્દનના તિલક છાપાની જગ્યાએ જેઓ પોતાના શરીરમાંથી નીકળતા ખુનથી ઉર્ધ્વ પુણ્ડ્ર યા ત્રિપુણ્ડ્ર ધારણ કરીને રણદેવતાની ઉપાસના કરે છે, તેઓજ મુક્તિ (સ્વતન્ત્રતા) પદના સાચા અધિકારીઓ કહેવાવાને યોગ્ય છે, જે રણભૂમિરૂપ અવિમુક્ત વારાણસીમા જઇને મરી મટનારને અમર સમજીને, અને સ્વયં પણ તેજ ગતિને પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાથી રણક્ષેત્ર ધર્મક્ષેત્રમાં ઉમંગથી દોડી જાય છે, તેમની સાથે વરવા માટે અપસરાઓ અંદર અંદર વિવાદ કરે છે. જેઓ પરોપકારને માટે પોતાનું લોહી વહેવડાવે, જેઓ કોઇથી પણ લડાઈ-ઝગડા ન કરે, જેઓ વિવાદના પ્રસંગમાં શાન્તિ સ્થાપન કરવા કરાવવામા પોતાની સર્વ શક્તિ લગાડી દે, જેઓ બહુ છેડતી કરવા છતાં પણ શાંત બન્યા રહે, અને જેઓ રાષ્ટ્ર રક્ષાર્થ યુદ્ધમા જ્વાલામુખી બની જાય, ભયકર વાઘ બની જાય, તેઓને જ મહાનુભાવ કહી શકાય કેમકે 'युधि विक्रम ' અર્થાત્ રાષ્ટ્રિય યુદ્ધમાં આગળ પડીને પરાક્રમ બતાવવું, રાષ્ટ્રરક્ષાર્થ પોતાના સર્વસ્વ જીવનનો સહર્ષ ત્યાગ કરવો એ મહાનુભાવ સજ્જનોનો સ્વાભાવિક ધર્મ છે.

'यशसि अभिरुचि.'

લોકમા પ્રતિષ્ઠા મેળવવી ઘણી મુશ્કીલ છે, તે માત્ર યોગ્યતાથીજ મળે છે, યોગ્યતા તપશ્ચર્યા વગર મળતી નથી, તપશ્ચરણ સંયમી, સદાચારી, અને વિચારવાન હોય તે જ કરી શકે છે. મતલબ એ કે જેનું નૈતિક જીવન ઉન્નત અને ઉત્તમ હશે, તેજ લોકમાં સન્માન પ્રાપ્ત કરી શકશે. પોતાના મોઢે પોતાના ગુણગાન કરીને કોઇ પણ નામના મેળવી શકયો નથી, નામના કર્તવ્ય કરવાથીજ પ્રાપ્ત થાય છે. જે લોકો પોતાની પ્રતિષ્ઠાની સુવાસથી પોતાની જાતિ અને દેશને સુગન્ધિત કરવા ઇચ્છે છે, તેમણે કોઇને કોઈ ગુણ અવશ્ય પ્રાપ્ત કરવો જોઇએ, મનુષ્ય પોતાના જીવનને માટે

જે કાંઈ પ્રયત્ન કરે છે, તેમાં તો તેને પરિશ્રમિ, બુદ્ધિમાન્ અને અધ્યવસાયી બનવું જ પડે છે, પરન્તુ તે સિવાય કોઈ એક પણ ગુણ, હુન્નર જરૂર પ્રાપ્ત કરી લેવો જોઈએ એવી રીતે કોઈ એક મનુષ્ય દુકાનનું કામ કરે છે, તો તેમાં તો એ પારંગત છે જ, સાથેજ તેને ગાન, વાદ્ય, ગણિત, પદાર્થ વિદ્યા, અશ્વારોહણ, મોટર ચલાવવી, સાહિત્યાભિરૂચિ, આદિ કોઈ પણ એક અથવા અનેક વિષયોમાં વિશેષજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરવી જોઈએ એવી સ્થિતિમાંજ મનુષ્ય યશસ્વી થવાની પહેલી સીડી પર ચઢી શકે છે.

મનુષ્ય એમ સમજીને સર્વ કામ કરતો રહે કે—'મારી નામના થાય પણ બદનામી ન થાય' 'મને કોઈ બુરો ન બતાવે' તો તે ઘણીજ ખરાબીએથી બચી શકે છે, પણ સાથેજ વિચાર કરવો જોઈએ કે 'હું સમાજના લોકોની નજર ચુકાવીને આ કામ ભલે કરી લઉં, સમાજની તીવ્ર આલોચનાઓનું લક્ષ ભલે ન બનું, પણ ઈશ્વરની દ્રષ્ટિથી નહિ બચી શકું ઈશ્વરના ન્યાયથી મને પોતાને નથી બચાવી શકતો' એવો મનુષ્ય કદી પણ કુમાર્ગગામી થઈ શકતો નથી મનુષ્ય પોતે પોતાને બનાવવા બગાડવાને સમર્થ છે જે પોતાનો સુધાર ચાહે છે પોતે પોતાને સુધારવા ચાહે છે તેને માટે—

अय मर्द ! तूँ उठ बाँध कमर क्यों डरता है ?
घर आगे पग फिर देख खुदा क्या करता है ?

આ કહેવત મુજબ પરમેશ્વર સહાયક થઈને તેને કાર્યક્ષેત્રમાં આગળ વધવાનું સામર્થ્ય પ્રદાન કરે છે અને જે પોતાનો નાશજ કરવામાં મશગુલ છે તેમને—

जिमि कुपथ पग देत खगेशा।
रहै न तेज बल धी लवलेशा ॥

વચનાનુસાર જાણી લેવું જોઈએ કે તેજસ્વિતા, બલ, અને બુદ્ધિ જે સર્વ કામોનાં સાધક છે, તે કુમાર્ગગામીની પાસે નષ્ટ થઈ જાય છે એ નિશ્ચયજ છે કે એક પ્રાથમિક પુણ્યના પેટમાં સો પુણ્યોને જન્મ આપનારૂં બીજ છુપાયલું પડ્યું છે એવીજ રીતે એક પ્રાથમિક પાપની અંદર હજાર પાપોને ઉત્પન્ન કરવાનું સામર્થ્ય ભર્યું પડ્યું છે જે 'यशसि अभिरुचि' છે, પોતાની કીર્તિ ઇચ્છે છે, તેમને માટે પાપકર્મોમાં અપ્રવૃત્તિ સ્વભાવસિદ્ધ આવી જાય છે.

'व्यसनं श्रुतौ'

સંસારનો કોઈ પણ પદાર્થ મનુષ્યને મનુષ્યતા નથી આપી શકતો, એવી કોઈ શક્તિ અગર છે તો તે વિદ્યા છે—'विद्याविहीन पशु' એ કહેવત પ્રસિદ્ધજ છે વિદ્યા મનુષ્યને માટે કેટલી આવશ્યક છે, એના પર વધારે કહેવાની એટલા માટે આવશ્યકતા નથી કે મનુષ્યના જીવન માટે તેની અનિવાર્ય આવશ્યકતાને સૌ કોઈ જાણે છે

હમારે એટલું તો અવશ્ય કહેવું પડશે કે પોતાનું ભલું ચાહનારે એક ક્ષણ માત્ર પણ ગપસપ કે કલહ વિવાદ યા તો બીજા ખોટાં કામોમાં નષ્ટ ન કરવી જોઈએ હવે શેતરંજ, ચોપાટ, તાસ વિગેરે રમવા ખેલવાનો વખત નથી રહ્યો કેટલાકનું કહેવું છે કે એ રમતથી મનોરંજનની સાથે સાથે બુદ્ધિની ઉહાપોહ શક્તી વધી જાય છે. એ વાત બહુજ વિચાર કરવા છતાં પણ અમારી સમજમાં ન આવી, શું ગ્રંથો જોવા, વિચારવા તથા મનન કરવા તે કરતાં પણ વધારે શેતરંજ વિગેરેમાં બુદ્ધિને વિકસિત કરવાનું સામર્થ્ય છે? શેતરંજ, ગંજીફા, વિગેરેમાં કોઈ એક પ્રકૃતિવાળા મનુષ્યનું ભલે કંઈ મનરંજન થઈ જતું હોય પણ ગ્રન્થોમાં તો સર્વ પ્રકારની રૂચિવાળાને માટે પુષ્કળ સામગ્રી ભરી પડી છે પુસ્તકોથી શિક્ષા મળે છે ત્યારે શેતરંજ

વિશેષથી વખત બરબાદ થાય છે. જે લોકોને ગ્રંથાવલોકન કરતાં નથી આવડતું તેઓ તે શીખી શકે છે. જેઓ કોઇ આંખ અથવા માથાના રોગથી અથવા તો વધારે અવસ્થા થઇ જવાથી ગ્રંથાભ્યાસ કરવામાં અસમર્થ છે, તેઓ બીજા પાસેથી તે સાંભળી શકે છે અને તેથી એવોજ લાભ ઉઠાવે છે કે જેવો વાંચવાવાળો ઉઠાવે છે. બધા લોકોએ સ્વાધ્યાય તો કરવુંજ જોઇએ, ચાહે તો તે સાંભળીને કરે કે પછી વાંચીને—

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तम्।
अहार्य्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥

આ હેતુઓને લઇને વિદ્યાનો મુકાબલો સંસારનો કોઈ પદાર્થ કરી શકતો નથી. 'अहार्यत्वात्' 'अनर्घत्वात्' 'अक्षयत्वात्', વિદ્યા ચોરી કરીને ચોરાતી નથી, તેને કોઈ કિંમત કરીને વેચી કે ખરીદી શકતું નથી, તથા તે આપવાથી ઘટી શકતી નથી પણ વધે છે. જો કે લોકોમાં ઉન્નતિ કરવાને માટે શાસ્ત્ર વિદ્યા અને શસ્ત્ર વિદ્યાનાં નામ લેવામાં આવે છે, પરન્તુ વૃદ્ધાવસ્થામાં લાચારીથી શસ્ત્રવિદ્યાનો ઉપયોગ થઇ શકતો નથી. પણ શાસ્ત્ર વિદ્વાનને વૃદ્ધાવસ્થામાં પણ વધારે અનુભવી હોવાને કારણે શ્રદ્ધાની દ્રષ્ટિથી જોવામાં આવે છે.

ભાવ એ છે કે આપત્તિને વખતે ધૈર્ય ધારણ કરવું, સંપતિ પ્રાપ્ત થયા પછી સહનશીલતાથી કામ લેવું, સભામાં ચતુરાઇથી વાતો કરવી, લડાઈમાં પરાક્રમ બતાવવું, હમેશાં નામ પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાથી યોગ્ય કામ કરવું અને શાસ્ત્ર વાંચવાનો શોખ રાખવો એ ગુણો મહા પુરૂષોમાં સ્વભાવથીજ હોય છે.

બીજા લોકોએ પણ મહાપુરૂષોના ઉક્ત ગુણોનો લાભ લેવો જોઇએ. સન્યાસી સાધુ સંતોમાં એક બીજાને 'महापुरुष' કહે છે. જે બીજા સંસારી પુરૂષોની અપેક્ષા વિશેષતા રાખે છે, તેને મહત્વ આપવું પડે છે, તેનાથીજ તે મહાપુરૂષ કહેવાય છે. ભગવાનને પણ 'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्' ઇત્યાદિ સ્તુતિ વચનોમાં મહાપુરૂષ કહ્યા છે. બધા દેશો તથા જાતિયોમાં મહાપુરૂષોના અવતાર થયા કરે છે. તેઓ પોતાના ઉપદેશોથી તથા સ્વયં આદર્શ બનીને સૌનું કલ્યાણ કરવાની ભાવનાથી મનુષ્યોને માટે એક એવો શાસ્ત્રીય સુગમ માર્ગ બતાવે છે કે જે બધાને માટે સીધો હોય અને સરલ હોય.

મહાપુરૂષો અને તેમના ગુણો સૌનું કલ્યાણ કરે છે, અતઃ કહેવુંજ પડે છે કે ધન્ય છે, 'મહાપુરૂષ.'

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(સં૦—વકીલ બાલાભાઈ નારણજી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૧૧૨૮ થી આગળ]

ગતાંકમાં જણાવ્યા પ્રમાણે કહીને ભગવાને આઠમો અધ્યાય સંપૂર્ણ કર્યો. અને પછી નવમા અધ્યાયનો આરંભ કર્યો. આ નવમો અધ્યાય તો નીરૂપમ છે, એટલે તેને કોઇની ઉપમા આપી ન શકાય તેવો છે. સારાંશ એજ કે આ નવમો અધ્યાય શરૂથી છેવટ સુધી મધુર અને સર્વ અમૃતના સારરૂપ છે. એટલુંજ અમો ટુંકાણમાં જણાવીશું.

ગીતા રસીકોએ આ નવમા અધ્યાયની મધુ

દના સ્વરૂપનો પોતાની મેળે સમજીને રાખવી જોઈએ. આ નવમો અધ્યાય જ્ઞાનપ્રધાન, ઉપાસનાપ્રધાન, અને કર્મપ્રધાન છે, એટલે આ નવમા અધ્યાયમાં જ્ઞાન સંબંધી, ઉપાસના સંબંધી અને કર્મ સંબંધી મુખ્યત્વે, પ્રધાનપણે નીરૂપણ કરેલું છે, તેમ છતાં આ નવમા અધ્યાયમાં પણ એક વાક્ય ભગવાનના મુખમાંથી એવું સરી પડ્યું છે કે—

संन्यासयोगयुक्तात्मा ।

—ગી૦ ૯|૨૮

એટલે કર્મફળના ત્યાગરૂપી સંન્યાસયોગથી યુક્ત ચીત્તવાળો થઈને હે અર્જુન, તું મુક્ત થઈશ ને મને પામીશ.

"संन्यासयोगयुक्तात्मा" આ શબ્દોમાં વળી નિવૃત્તિ અને પ્રવૃત્તિ એ બન્ને નિષ્ઠાનો ઉદ્દેશ કરવામાં આવેલો છે

આ પરથી પ્રસ્તુત ગીતાશાસ્ત્ર કઈ વસ્તુ સીદ્ધ કરવા માગે છે, કયો મુદ્દો ગીતાને સાબીત કરવાનો છે, તે બાબત સર્વ મુમુક્ષુના લક્ષમાં રહે અને કોઈ પણ ગીતાભ્યાસી ભૂલથાપ ખાઈ આડે રસ્તે ચઢી ન જાય, તે ખાતર ભગવાન ગીતામાં વખતો વખત ઈશારા કરતા રહે છે તે પૈકીનો એક ઈશારો તે "संन्यासयोगयुक्तात्मा" શબ્દોમાં સમાયેલો છે. તે એ કે છેવટ તો કર્મફળનો ત્યાગ કરીને તે બાબથી મુક્ત ચીત્તવાળા થઈને મનુષ્યે મોક્ષ પામવાનો છે આ ગીતાનો પ્રતિપાદ્ય વીષય.

આ નવમા અધ્યાયને અંતે ૩૩ મા શ્લોકની ભાષા અને શબ્દો જોતાં આપણને સહજ લાગશે કે આ નવમા અધ્યાયનો ૩૩ મો શ્લોક ભગવાને ભક્ત ઉદ્દેશીને જઈને કહ્યો છે તે શ્લોક આપણે જોઈએ—

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

આશય કે જેઓ પાપ યોનીવાળા સ્ત્રીઓ, વૈશ્યો અને શૂદ્રો છે તેઓ પણ મારો આશ્રય કરીને પરમ ગતીને પામે છે તો પછી પવિત્ર એવા બ્રાહ્મણો, ભક્તો અને રાજર્ષીઓ તો પરમ ગતીને પામે એમાં તો કંઈ નવાઈ જ નથી. પરંતુ આ અનીત્ય નાશવંત અને દુઃખમય સંસારમાં આવીને લોકોએ ઈશ્વરની જ ઉપાસના, સેવા કરવી જોઈએ, તે સીવાય બીજો રાહતનો માર્ગ દુનીયામાં નથી

ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે નવમા અધ્યાયનો સાર છે

આગળ દશમા અધ્યાયમાં અર્જુનની પ્રાર્થનાથી ભગવાને પોતાની અનેક વિભુતીઓનો ઉલ્લેખ કર્યો છે પરંતુ તેમાંનો ઉદ્દેશ એટલો જ છે કે જેને વ્યાપક ઈશ્વરની વીરાટ સ્વરૂપની ભાવના થઈ શકતી નથી, જેને નીરંજન નીરાકારમાં ઈશ્વરની ભાવના થઈ શકતી નથી, ભાવના અનુભવી શકતી નથી, તેવાઓ માટે અમુક અમુક વસ્તુમાં પરમેશ્વર રહેલો છે એવું યાદ દેવડાવવામાં આવે કે તુરત તેને પરમેશ્વરની સ્મૃતિ થઈ આવે છે પણ તેવા ઉપાસકે પોતાની ભાવના એક વસ્તુમાંથી બીજીમાં અને બીજી વસ્તુમાંથી ત્રીજીમાં એમ દરેક વસ્તુમાં ઈશ્વર વ્યાપેલો છે રહેલો છે, એવી ભાવના વધારતા જવી, તેમ કરતા કરતાં છેવટ વીરાટ ઈશ્વરની ભાવના તરફ મનુષ્ય પહોંચી શકશે. આજ પ્રમાણે દરેક મુર્તીની અંદર ઈશ્વરના અસ્તીત્વનું સમજવું એટલે કે દરેક મુર્તી એ ઈશ્વરની અમુક એક શક્તી, સત્તાના પ્રતીક તરીકે રાખેલી છે, તેથી તેટલા પુરતી શક્તી સત્તા બતાવનાર

ઇશ્વરનું ભાન તે મુર્તીની સેવા, પૂજા, ભકતી અને દર્શનથી થાય છે, પરંતુ ધીમે ધીમે ઇશ્વરની બીજી મુર્તીઓ, બીજા પ્રકારની શકતીઓના પ્રતીકો તરફ આપણી ભાવના લંબાવી છેવટ વીરાટ, નીરંજન, નીરાકાર ઇશ્વર તરફ ભાવના પહોંચશે.

ઇશ્વરની મુર્તી ખરી રીતે હોઇ શકે નહીં. પરંતુ તેની અમુક અમુક શકતીઓને લક્ષમાં રાખી તેવી તેવી મુર્તિઓ વિદ્વાનોએ કલ્પેલી છે.

ઇશ્વરને જ્યારે જગતનું અગર ધર્મીષ્ટ અને ગરીબોનું રક્ષણ કરવાનું હોય છે ત્યારે ઇશ્વરની વીષ્નુ મૂર્તી કલ્પવી પડે છે, કારણ વીશ્નુનું કાર્ય જગતનું રક્ષણ કરવાનું છે, પરંતુ શકતી વીના, સામર્થ્ય વીના, જેમ મનુષ્ય પાંગળો ગણાય તેમ દેવ પણ પાંગળાજ હોય. તેથી વીશ્નુરૂપે જગતનું પાલન કરવાનું હોય છે, ત્યારે પાલન કરવાના સાધન તરીકે લક્ષ્મીની જરૂર પડે છે કારણ લક્ષ્મી યાને દ્રવ્ય શીવાય સર્વ પ્રકારનું રક્ષણ અશકય છે. તેથી રક્ષણ કરનાર દેવ વીશ્નુની શકતી યાને સ્ત્રી તરીકે કે લક્ષ્મીજીની કલ્પના વીદ્વાનોએ કરેલી છે તેજ પ્રમાણે જગત અગર પાપીઓનો સંહાર કરવાનો હોય ત્યારે ભગવાનની સંહારક શકતીને મહાદેવ અગર શંકર તરીકે કલ્પી તેની મુર્તી વિદ્વાનોએ કલ્પી છે પણ તેવા મોટા દેવ મહાદેવ અને શંકર પણ શકતીને અભાવે કંઇ કરી શકે નહીં માટે તેની શકતી પાર્વતી યાને હીમાલય પર્વતની કન્યાને કલ્પવામાં આવેલી છે. કારણ અગાઉના જમાનામાં જ્યારે પાષાણ યુગ ચાલતો હતો ત્યારે મનુષ્યો પાસે પાષાણનાં હથીઆરો હતાં તેવે સમયે સંહાર કરનાર દેવને સંહારક શકતી તરીકે પાષાણના મોટા ગંજ જેવા હીમાલયની પુત્રી પાર્વતીનેજ શકતી તરીકે આલેખી છે.

આ સંહારક દેવને મહાદેવ એટલે મોટા દેવ અથવા શંકર એટલે કલ્યાણ કરનાર કહેવાય છે. તેનું કારણ એ કે તે પાપીલોકોનો સંહાર કરી પ્રવીત્ર લોકોનું કલ્યાણ કરે છે, એટલે સૃષ્ટીને સારી રીતે ચલાવે છે, માટે તેનું નામ શંકર. હાલના જમાનામાં મેજીસ્ટ્રેટો પણ જો પાપી ખરા ગુન્હેગારોને સખત નસ્યત કરી, પવિત્ર પુન્યશાળી મનુષ્યને નિર્ભય બનાવે તો તેવા મેજીસ્ટ્રેટ પણ તેટલા પુરતા તે તે પ્રદેશના મહાદેવ અગર શંકર ગણાય

આ રીતેજ બીજી ઇશ્વરી શકતીની મુર્તીઓનું સમજવું. જેવા કે ગણપતી નવ દુર્ગાઓ વીગેરેનુ સમજવું. આ બધા દેવોમાં ઇશ્વરની એક અંશ એક પ્રકારની શકતીને અનુલક્ષી મુર્તી બનાવી છે અને પછી તે શકતીને અનુલક્ષી તેની સ્તુતીનું એક મોટું પુરાણ લખાયલું છે. જેમકે વીષ્નુ પુરાણ શીવ પુરાણ, દેવીપુરાણ, ગણેશ પુરાણ વીગેરે.

આ બધાથી ઇશ્વરની એકેક શક્તીનું ભાન મનુષ્યને થાય છે

પરંતુ આ પ્રણાલીકામાં આ રૂઢીમાં ખામી એ છે કે એક શક્તીમાંથી બીજી શકતી અને પછી ત્રીજી શક્તી તરફ ઇશ્વરની ભાવના વધારી છેવટ સર્વ શક્તીઓ સર્વ દેવોમાં એક નીરંજન નીરાકાર, વીરાટ ઇશ્વરનીજ શક્તીઓ નીરનીરાળી આરોપાએલી છે એમ સમજી જઈ વીરાટ ઇશ્વર તરફ ભાવના વધારવી જોઇએ.

જ્યારે હાલ તો મુર્તીઓને લઇને લોકો એક ડગલું પણ આગળ વધતા નથી. બીજી શક્તી કલ્પીજ શક્તા નથી શીવ ભકતો વીશ્નુ શકતીને માનતા નથી. વીશ્નુ ભકતો શીવનું નામ લેતાં અભડાય છે, આ સ્થીતિ નર્કમાં લઇ જનારી છે.

(ક્રમશઃ)

ગીતાગૌરવ ભાગ-પાંચમામાંથી કંઈક—

अशास्त्रविहितं घोरं
तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः
कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं
भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं
तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

જે મનુષ્ય શાસ્ત્ર વિધિથી રહિત કેવળ મન કલ્પિત ઘોર તપ કરીને દંભ, અહંકાર, કામના, આસક્તિના બળ ઉપર શરીરસ્થ પંચ મહાભૂતોના-સમુદાયને તથા શરીરાન્તર્ગતરૂ અન્તર્યામીને પણ કષ્ટ આપે છે તેવા અવિવેકી મનુષ્યોને તું આસુરી સિદ્ધાંતવાળા જાણ.

ગી૦ મો૦—હે અર્જુન, જે તપ આદિ કર્મો કરવાનું શાસ્ત્રમાં વિધાન નથી, જેમાં કોઈ સુક્ષ્મ મત વિધિનું પાલન કરવામાં આવતું નથી તથા નાના પ્રકારના આડંબરોથી શરીર, ઈંદ્રિઓને કષ્ટ પહોંચાડવામાં આવે છે એ બીભત્સ રીતીને ઘોર તપ કહેવામાં આવે છે એવા કર્મ કરનારાઓમાં શ્રદ્ધાનો લેશ માત્ર પણ હોતો નથી એવા લોકો પોતાનો પ્રભાવ જમાવવાને તથા બીજાને ઠગવાને એવાં પાખંડ રચીને પોતાની તપસ્યાના અહંકારથી ફુલ્યા રહે છે ભોગોમાં તેમની અત્યંત આસક્તિ રહેલી હોય છે, તેથી તેઓ ઈશ્વરના દાસ તો નહી પણ કામનાના દૃઢ દાસ બનીને કઠોર કર્મોથી પોતાના પંચ મહાભૂત, મન, બુદ્ધિ, અહંકાર, દશ ઈંદ્રિઓ અને ઈંદ્રિઓના પાંચ વિષય રૂપ ભૂત સમુદાયને (ગી૦ ૧૩।૫) એટલે કે શરીરને ક્ષીણ દુર્બળ તથા શુષ્ક કરીને પોતાના તથા બીજાના આત્માને પણ ત્રસ્ત કર્યા કરે છે આ પ્રમાણે શાસ્ત્રથી પ્રતિકુળ આચરણ કરનારા બોધ શક્તિથી રહિત તથા આવરણ દોષ સહિત ઘમંડી તથા સ્વાર્થી મનુષ્ય સોળમા અધ્યાયમાં વર્ણન કરેલી આસુરી સંપત્તિનાજ અનુરાગી પથિક છે. રાવણ, ત્રિપુરાસુર, બાણાસુર આદિની પેઠે તેમની તપસ્યાથી પણ સંસારને કલેશ પહોંચે છે

ક૦ પ્ર૦—મિત્રો, આજ કાલ ઘણા લોકો પોતાના સ્વાર્થ સાધનાના બીજા કોઈ ઉપાય ન દેખાતા જપ, તપ, સમાધિ લગાવવી અગર ધૂણી તાપવી આદિના વ્યવસાય ચલાવ્યા કરે છે. મોટા મોટા મેળામાં, તીર્થ સ્થાનોમાં અગર કોઈ ધાર્મિક પર્વના અવસર ઉપર તમે જોયું હશે કે, કોઈ ભીષ્મ પિતામહની બાણશૈયા ઉપર સૂતા છે, કોઈ પંચાગ્નિથી બાળીને એ રાસી અગ્નિ સ્થીના તપ કરે છે, કોઈ ખડેશ્વરી છે, કોઈ ઉર્ધ્વબાહુ છે, કોઈ ઊંધે માથે લટકાએલા છે તો કોઈ ચરમ ઓઢીને ધ્યાનસ્થ બેઠેલા હોય છે, પરંતુ તેમની દાનત પૈસા ઉપર લાગેલી હોય છે, ભગવાનથી તેઓ ઘણા ગાઉ દૂર રહે છે આ પ્રમાણે જે આસુરી તપરૂપી ઝેરમાં પીડારૂપી બીજ વાવે છે તેનાથી પેદા થનારા ફળથી તેમને આખો જન્મારો પીડાજ ભોગવવી પડે છે. જો અંતઃકરણ સ્વચ્છ હોય, તેમાં તુચ્છ સ્વાર્થની ગંધ પણ ન હોય અને પરમાત્મા તરફજ લાગેલું હોય તો તો એ તપસ્યાના ઉપરોક્ત પ્રકાર દુષિત નથી પણ કેટલાક પ્રકાર તે શાસ્ત્રાનુમોદિત પણ છે પણ જો અંતઃકરણ સાફ હોય તો કોઈ તપસ્યાની દુકાનદારી કરવાને એવાં વિક્ષેપવાળા

સ્થળોમાં આવેજ શા માટે ? જે લોકોના શરીર તેમના કાબુમાં રહેતાં નથી અને મન, યમ નિયમોનું પાલન કરવામાં અશક્ત હોય છે એવા લોકોને સારૂ કેટલાક હઠયોગનાં આસન, મુદ્રા, બંધ આદિ બતાવેલાં છે, તથા શીતોષ્ણ આદિ દ્વંદ્વ સહનના અભ્યાસને અર્થે પંચાગ્નિ તાપન આદિની પણ પ્રક્રિયા છે, પણ એ સર્વ ઉચ્ચ સ્થિતિમાં પહોંચવાને સારૂ થોડા કાળ સુધી કરવા યોગ્ય સાધન માત્ર છે. અજાણ્યા લોકો એ વાત ઉપર ધ્યાન ન આપતાં એ બાહ્ય આડંબરોનેજ પ્રધાન ધ્યેય સમજે છે અને જન્મભર તેમને ગળામાં લટકાવી રાખે છે. પ્રથમના ઋષિ મુનિઓ પણ મનોનિગ્રહ તથા પોતાના ધ્યેય ઉપર સદાએ દૃઢ રહી શકાય તેને સારૂ કેટલાક વિશેષ નિયમોની સાથે કઠોર તપ કરતા હતા, પણ તે પ્રભુપ્રિત્યર્થે થતું હતું, નહી કે જરા પણ અંશે પૈસા પ્રિત્યર્થે. અસલમાં તો ભજન, ધ્યાનના સાત્વિક પ્રકાર ગીતાના છઠ્ઠા અધ્યાયમાં કથિત છે તેજ ઉત્તમ છે. યથા—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७

જેના આહાર વિહાર નિયત છે, જેમના કર્મોનો વ્યવહાર તોળી માળીને થાય છે, જે નિયમિત રીતે ઊંઘે છે અને નિયમિત રીતે જાગતો રહે છે, તેવાઓને સારૂ યોગ દુઃખને નષ્ટ કરનારો અને સુખપ્રદ થાય છે. થોડું ખાવું અગર એકવાર ખાવું એ એક પ્રકારનો ઉપવાસ છે. જો કોઈ મનની પ્રસન્નતાને ખોઈ જીદ્દથી ભૂખે મરે તો તેને ઉપવાસ કહેવાય નહી. મનનું સમત્વપણું જાળવી રાખવાને સારૂ વ્રત કરવામાં આવે છે. તેમ ન થાય તો વ્રતોનું કાંઇ પણ પ્રયોજન નથી. હઠ અગર બળાત્કારથી જે કામ થાય તે અસુરોનું થવાનું, દેવતાઓનું નહી. તેથી એવા ઉપવાસ, વ્રત અગર નિયમ રાખો કે જેનાથી શરીરની શક્તિ ક્ષીણ ન થતાં મનનો ઉત્સાહ બન્યો રહે. આ વાતોમાં લોકમાં દેખાડો કરવાની ભાવના કદી પણ ન રહેવી જોઇએ. પ્રભુ તો તમારાં કર્મોને હજારો આંખોએ દેખે છે, તેમની દર્શનશક્તિ સુવિશાળ પહાડોને ભેદીને અંધારી ગુફાઓમાં જેટલી સહેલાઇથી પહોંચે છે તેટલી બહાર પહોંચતી નથી. કોઇ કર્મ ઉજાગરો કરીને (સ્વરથતાથી નહી) કરવામાં આવે તો તેમાં દંભ અને અહંકારની માત્રા જરૂર હોવાની. તેવે સમયે 'પ્રભુ તિરોહિત' થઇ જાય છે અને તપસ્યા કેવળ એક વ્યવસાય માત્રજ થઇ જાય છે.' અહંકારભરી તપસ્યા, ઉપાસના, પ્રભુના દરબારમાં કદી પહોંચતી નથી. એ વિષયનું એક રોચક દૃષ્ટાંત સંભળાવવાનું અનુચિત નહી ગણાય —

હિમાલયના કોઇ તપોવનમાં એક ભારે તપસ્વી તપોધન નામના મહાત્મા રહેતા હતા. તેઓ કદી ઉર્ધ્વબાહુ થઇને, કદી એક પગે ઉભા રહીને, કદી માત્ર એકજ ગ્રાસ ખાઇને તો કદી મહીનાઓ સુધી પવનનો આહાર કરીને, એમ એકથી એક કઠણ તપ કરતા હતા. તેમનાં એવાં કઠોર વ્રતોની વાત સાંભળીને દૂર દૂરથી અનેક સાધુ મહાત્માઓ તેમના દર્શને આવવા લાગ્યા. ત્યારે મહાત્માજીએ પોતાનો ક્રમ એનાથી પણ વધારી દીધો. તેમણે સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ કરી દીધું કે પ્રત્યેક બાર બાર વર્ષે હમે હમારો એક એક નિયમ વધારતા ચાલીશું અર્થાત, પહેલા મુનિ, પછી તેની સાથેજ ક્રમશઃ ઉર્ધ્વબાહુ, અગ્નભક્ષી, વાયુભક્ષી ઇત્યાદિ થઇને તપ કરીશું. તેઓ એવો વિચાર કરતા હતા કે—હું જેટલાં સાધન કરૂં છું તેટલાં સાધન કરવાની હિંમત કોઇ પણ તપસ્વીમાં નથી. ઘણાએ સાધુ આ તપોવનમાં આવ્યા પણ મારી શ્રેણીએ પહોંચેલો તેમાંનો કોઇ પણ નહોતો, આટલું કઠણ સાધન હુંજ કરૂં છું. અસ્તુ, આ પ્રકારે તપસ્યા કરતાં કરતાં ઘણાં વર્ષો વીતી ગયાં. અને તેમની ખ્યાતિ સર્વો નારદજીના કાન સુધી પણ પહોંચી ગઇ એટલે તેઓ પણ પોતાની દિવ્ય વીણા વગાડતા અને મુખથી શ્રી નારાયણ ધ્વનિ કરતા કરતા તપસ્વી મહાત્માના આશ્રમ ઉપર

આવી ગયા. પરંતુ નારદજીના આવવાથી પણ મહાત્માના ચિત્તમાં કોઈ પણ આદરભાવ પ્રગટ થયો નહીં અને મામુલી રીતથી તેમને કહ્યું—કહો નારદજી, આપ કેણી બાજુ જઈ રહ્યા છો ?

નારદજીએ કહ્યું—મહર્ષે, હું ભૂલોકમાં ફરીને વૈકુંઠ તરફ જતો હતો, ત્યાં માર્ગમાં મેં આપની ઘણી ખ્યાતિ સાંભળી, તેથી આપનાં દર્શનની ઈચ્છાને રોકી શક્યો નહીં.

મહાત્માજીએ કહ્યું—આપે ઘણી કૃપા કરી. પણ આપ વૈકુંઠમાં જાઓ છો તો ત્યાં પ્રભુને એ જરૂર પૂછી જોજો કે મારો ઉદ્ધાર કરવામાં આટલી વાર શા માટે થાય છે ? મારાથી અધિક તપ કરનારો પણ શું કોઈ ભક્ત તેમની દૃષ્ટિમાં છે ? નારદજીએ એ વાતનો સહર્ષ સ્વીકાર કર્યો. તેમની તો એવી વાતોમાં પ્રાકૃતિક જ રુચિ છે. 'આપ આમ ન થશો, હું શીઘ્ર પ્રભુને પૂછીને આપને સૂચના આપીશ' એટલું કહીને નારદજીએ ત્યાંથી વિદાય લીધી. વૈકુંઠમાં જઈને તેમણે પ્રભુને દંડવત પ્રણામ કર્યા અને અન્યાન્ય સમાચારોની વચમાં એ ગમ્મત પણ છેડી કે—હિમાલયના તપોવનમાં તપ કરનારા તપોધન મહાત્માનો ઉદ્ધાર હજી સુધી કેમ થયો નથી ? ભગવાને પૂછ્યું કે—એ કેટલા દિવસથી તપ કરે છે ? નારદજીએ કહ્યું—હું શું કહું. આપ જાણતાજ હશો, કહે છે સેંકડો વર્ષ થયાં તેઓ તપ કરે છે. તેમણે કહેવામાં કહેલ એટલાં બધાં તપ, યોગ આદિ સાધન કર્યાં છે કે કોઈએ એક જ જીવનમાં એટલાં તપ કરેલાં સાંભળ્યાં પણ નહીં હોય. હવે તો તેઓ વૃદ્ધ થઈ ગયા. દાંત પડી ગયા અને વાળ તો પાકીને ગુંજ થઈ ગયા.

ભગવાને કહ્યું—જુઓ નારદ આ ચોપડીઓ પડી છે તેમાંથી ભક્ત નામાવળી પુસ્તક ઉઘાડીને તેમનું નામ જોઈ લો. તેમાં જે પ્રમાણે લખ્યું હશે તે પ્રમાણે થશે. નારદજી પુસ્તક લઈને આદિથી અંત સુધી વાંચી ગયા. એક વાર નહીં બેવાર નહીં, પણ ત્રણ વાર પણ તપોધન મહાત્માનું નામ તેમાંથી નીકળ્યું નહીં. અંતમાં જરા હસીને બોલ્યા—પ્રભો, સાંભળ્યું છે કે મર્ત્યલોકની દફતરોમાં ઘણો ગોટાળો ચાલે છે, પણ હવે તો એમ જણાય છે કે આપને ત્યાં પણ એવુંજ અંધેર ચાલુ થવા માંડ્યું છે. આટલા મોટા તપસ્વીનું આપને ત્યાં નામ સુધ્ધાં પણ નથી !

પ્રભુએ હસતાં હસતાં કહ્યું—આ નામાવળીમાં એમનું નામ ન હોય તો તેમાં મારો દોષ નથી, અહંભાવથી જે લોક તપ કરે છે તે ગમે તેટલા મોટા તપસ્વી હોય તો પણ તેમનું નામ અહીં દાખલ કરવામાં આવતું નથી. આ સાંભળતાંજ નારદજીએ વિચાર કર્યો કે—વાત તો બરાબર છે. એ તપસ્વી જરૂર અહંકારી છે તેમાં સંદેહ નથી. તેણે મારી સાથે પણ તપસ્યાના બળ ઉપર લુખો વર્તાવ કર્યો હતો. નારદજી ભગવાન પાસેથી વિદાય લઈને ક્રમશ મૃત્યુલોક તરફ આવ્યા અને તપસ્વીજીના આશ્રમ ઉપર પહોંચી ગયા. તેમને દેખતાંજ તપસ્વીએ પૂછ્યું—મહારાજ, મારી વાતનો જવાબ લાવ્યા કે નહીં ?

નારદજીએ કહ્યું—હા મેં આપને માટે પૂરી કોશિશ કરી પણ ભગવાનના ઉત્તરથી મને ઘણું આશ્ચર્ય થયું. તેમણે કહ્યું કે આપની ઉપાસના અહંકારના ભારની સાથે બંધાયેલી છે. તેથી તે આપને ઉપર આવવા દેતી નથી. આ સાંભળીને તપસ્વીજી મહાજ લજ્જિત થઈને બોલ્યા—દેવર્ષે, ભગવાને યથાર્થજ કહ્યું છે. ખરેખર છે કે મારામાં અહંકારની માત્રા વધેલ છે. હું સર્વદા મારી તપસ્યાનું અભિમાન રાખું છું. મારામાં એ મોટો દોષ છે. હવે આજથી હું આપની દ્વારા સંકલ્પ કરીને અભિમાનનો ત્યાગ કરું છું. એટલું કહીને મહાત્માએ તે તપોવનમાં રહેનારા નાના મોટા સર્વ સિદ્ધ, સાધક તપસ્વીઓને સમષ્ટિરૂપે પોતાના આશ્રમમાં આમંત્રિત કર્યા અને પોતાને હાથે સર્વનાં ચરણ પ્રક્ષાલન કર્યાં. વિનિત ભાવથી

સર્વનો સત્કાર કરીને નારદજીની સાક્ષિમાં પ્રાર્થના કરી કે—મહાનુભાવ વૃંદ, અત્યાર સુધી હું મને પોતાને સર્વ શ્રેષ્ઠ તપસ્વી સમજતો હતો તે મારી મોટી ભૂલ હતી. તપસ્યાના ગર્વમાં ચકચૂર રહીને આટલું જીવન મેં ટાઢ તડકો સહન કરીને ઠુંઠા સમાન નિરર્થક વીતાડી દીધું છે. હવે હું આપની શરણમાં છું. આપ મારી સામર્થ્યાનુસાર યોગ્ય તપશ્ચર્યાનું વિધાન કરીને મને અનુગ્રહિત કરો. વૃદ્ધ તપસ્વીજીનાં વિનમ્રપૂર્ણ વચનોથી સર્વ સમાગત મુનિવૃંદના હૃદય ગદ્‌ગદ થઈ ગયા. એ તો સ્વાભાવિકજ હતું, પરંતુ એક અઘટિત ઘટના પણ બની ગઈ. એક ખુણામાં દિવ્ય ધ્વનિની સાથે પ્રકાશ છટા ફેલાઈ ગઈ અને તેમાંથી વિમાન સમેત બે સ્વર્ગીય વ્યક્તિઓ પ્રગટ થતાની સાથેજ તપોધન મહાત્માને વિમાનમાં બેસાડીને ચાલી ગઈ. તે પછી સર્વ લોક નારદજીની પ્રદક્ષિણા કરી કરીને પોતપોતાના આશ્રમમાં ચાલ્યા ગયા. કહેવાનો અભિપ્રાય એ છે કે, કોઈ બીજા ઉપર મોટા થઈને પોતાનો પ્રભાવ જમાવવાને સારૂ કોઈ ગમે તેટલાં સારાં કામ કરે પણ તેનાથી સફળતા મળશે નહી. ધાર્મિક કામમાં સરળતા અને નમ્રતાની સર્વથી અધિક આવશ્યકતા છે. એમ હોય તો કોઈ ક્રિયામાં કાંઈ ભૂલ ચૂક થઈ જાય તો તેને ભગવાન પૂરી કરી દે છે.

વસ્તુતઃ વિચાર કરવામાં આવે તો કોઈ પણ કર્મ સૂક્ષ્મથી પણ સૂક્ષ્મ વિધિ વિધાનથી ઘણા યત્નપૂર્વક કરવામાં આવે તો પણ તે પ્રભુના મહીમાને પહોંચી શકે એવી યોગ્યતાવાળું થતું નથી. સર્વ સમર્થ, અનંત બ્રહ્માંડોના અધિપતિ સર્વ શક્તિમાન પરમેશ્વરનો પ્રેમ મેળવવાને અર્થે, ક્ષુદ્ર જંતુ મનુષ્યોનાં કર્મ સમર્થ થઈ શકતાં નથી. ક્યાં તેનું અનંત ઐશ્વર્ય અને ક્યાં આપણી અકિંચનોની ક્ષુદ્ર ક્ષુદ્ર વસ્તુઓ! આપણે સમજીએ છીએ કે તેની સ્તુતિ પ્રાર્થના અગર જપ તપ કરીને તેને સંતુષ્ટ કરી લઈશું, પણ એ તો મન વાણીથી અગોચર છે. આપણે સમજીએ છીએ કે પ્રભુને સુંદર સિંહાસન ઉપર બેસાડીને તેમને સુશોભિત કરીશું, પરંતુ એ તો સમસ્ત ભુવનોના સિંહાસનોનો અધિપતિ છે. આપણે ધારીએ છીએ કે સુંદર સુંદર વસ્ત્રાભૂષણોથી તેને પ્રસન્ન કરી શકાય છે, પણ એ તો પોતાના ભક્તોને અષ્ટસિદ્ધિ નવનિધિ પ્રદાન કરે છે. તેની પાસે ક્યાં વસ્ત્રાભૂષણનો અભાવ છે? આપણે સમજીએ છીએ કે પ્રભુને વિવિધ ફળ, મિષ્ટાન, છપ્પન ભોગ આદિથી સંતુષ્ટ કરી લઈશું, પણ એમની પાસે તો મહાલક્ષ્મી અને અન્નપૂર્ણા વિરાજી રહ્યાં છે. ખરી વાત એ છે કે પ્રભુને કોઈ પણ વસ્તુની ખોટ નથી, તો પણ પોતે મહાન દયાળુ છે, તે પોતાને માટે નહી પરંતુ કૃપા કરીને આપણો ઉદ્ધાર કરવાને સારૂ, આપણને પોતાના શાંતિ નિકેતનમાં લઈ જવાને સારૂ તથા આપણી શ્રદ્ધાનું તારતમ્ય જોવાને સારૂ અતિ સામાન્ય કર્મો અને પદાર્થોનો પોતે અંગીકાર કરે છે. એ અંગીકાર કોઈ અભાવને કારણે નહી પણ આપણા ઉપર અપાર દયા દેખાડવાને સારૂ કરે છે. ગરીબ, દુખી સર્વ પોતાના સામર્થ્ય અનુસાર સાદામાં સાદો ઉપહાર લઈને પ્રભુના શરણમાં પહોંચી શકે છે. પ્રભુ કર્મના ગૌરવ કે વસ્તુના મૂલ્ય ઉપર ધ્યાન નથી આપતા, પરંતુ અંતરના પ્રેમ તરફ શુદ્ધ હૃદયની શ્રદ્ધાભરી ભક્તિ તરફ નિરંતર ધ્યાન રાખે છે. એક સ્થળે શિવપુરાણમાં તેમણે કહ્યું છે કે—

परिपूर्णस्य नित्यस्य मम किं क्रियते नरैः।
किन्तु सर्वात्मना देवि मया भावो हि गृह्यते ॥

અર્થાત્ હું નિત્ય પરિપૂર્ણ સ્વરૂપ છું, મારો સંતોષ મનુષ્યો દ્વારા ભલા કેવી રીતે થઈ શકે? હે દેવી, સર્વ ભૂતોનો અંતરાત્મા હું કેવળ તેમના ભાવનેજ ગ્રહણ કરૂં છું. અહીં પ્રભુની ઉદારતાને જુઓ, ઉપહાર તો કાંઈ પણ લેતા નથી પણ બદલામાં કેટલો પુરસ્કાર અર્પણ કરી દે છે, એ ઉદારતા સર્વ સમર્થ પ્રભુને યોગ્યજ છે. જો કોઈ

અજાણ્યો બાળક કોઇ ધનિકને ફુલનો એક ગુચ્છો ભેટ કરે છે તો તે ધનિક સહેજમાં તેને ચાર આઠ આના પુરસ્કાર આપી દે છે, કોઇ કૃષક (ખેડુત) પહેલા ઉપજની વસ્તુ જમીનદારને નજર કરે છે તો જમીનદાર તેના સામર્થ્ય પ્રમાણે કંઇને કંઇ પ્રતિદાન આપે છે, કોઇ ભિક્ષુક બ્રાહ્મણ કોઇ રાજાની પાસે એક પુષ્પમાત્ર લઇને ઉપસ્થિત થાય છે તો રાજા તેને સંતુષ્ટ કરીને વિદાય કરે છે આ સર્વ ધનિક, જમીનદાર અગર રાજા અલ્પ સમૃદ્ધિવાન અને અલ્પ ઉદાર છે તો પણ નાના શા ઉપહારને બદલે મોટા મોટા ઉપહાર આપી દે છે તો પછી સર્વ ઐશ્વર્યવાન, અનન્ત ઉદાર પરમ દયાળુ ભગવાન ભક્તોએ આપેલા નજીવા ઉપહારને બદલે મોટો પુરસ્કાર આપે તેમાં શો સંદેહ છે? પ્રભુને નિમિત્તે કરેલું કોઇ કામ વિફળ જતું નથી એ એક સુનિશ્ચિત વાત છે પણ તે કામમાં કેવળ માત્ર પ્રભુજ નિમિત્ત હોવા જોઇએ, લોકોમાં પ્રતિષ્ઠા વધારવાની કામના કે રૂપીયા પૈસા મેળવવાની વાસના તેમાં અપ્રધાનરૂપમાં પણ રહેલી હશે તો તે કામ પ્રભુ પ્રીતિ સંપાદન કરી શકશે નહીં હા, થોડા અંશમાં એટલીજ ઇચ્છા પૂર્તિ ભલે થઇ જાય, પરંતુ જે લોક કેવળ લોક દેખાવને માટે, સીધા સાદા લોકોને ઠગવાને માટે જપ તપના ઢોંગનો શ્રમ કરે છે તેમના તો બન્ને લોક નષ્ટ થઇ જાય છે

અહીં સુધી અર્જુનના 'શાસ્ત્રવિધિ ન જાણનારા શ્રદ્ધાળુઓની ભજન પૂજન કરવાથી શી ગતિ થાય છે?' એ પ્રશ્નનું સમાધાન ભગવાને કર્યું આ કથનનો ભાવ એ નિકળે છે કે—મનુષ્યની શ્રદ્ધા તેની પ્રકૃતિ સ્વભાવને અનુસાર સાત્વિક, રાજસ અગર તામસ હોય છે તથા તેને અનુસરીનેજ મનુષ્યના કર્મોમાં અંતર પડે છે અને તે કર્મોને અનુરૂપજ તેને પૃથક્ પૃથક્ ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે પરંતુ રાજસ કે તામસ શ્રદ્ધા હોવાથી આસુરી કક્ષામાંજ હંમેશને માટે તેને રહેવું પડે એવું કંઇ નથી પોતાની સ્વાધીનતાના ઉપયોગને નિયંત્રિત કરીને શાસ્ત્રીય આચરણોને જોઇને અગર સાંભળીને પોતાની પ્રકૃતિના સ્વભાવને ધીરે ધીરે સુધારતા જવું એ દરેક મનુષ્યનું કર્તવ્ય છે હા, જેઓ તેમ નથી કરતા અને દુષ્ટ પ્રકૃતિ સ્વભાવનુંજ અભિમાન રાખીને શાસ્ત્રોથી વિપરીત આચરણ કરે છે તેમને આસુરી બુદ્ધિનાજ કહેવા જોઇએ અસ્તુ

—o—

મહાદેવનો મહામહીમા

(લે૦—સ્વામી શ્રી શિવાનન્દજી, યોગીરાજ, વૈદ્ય, ધન્વન્તરિગુરૂ)

આ ચાતુર્માસ્યની શરૂઆતમાં એક આશ્રમમાં કોઇ એક મહાનુભાવ મહાદેવજીના મહિમાના વિષયમાં આવી રીતે પ્રવચન કરી રહ્યા હતા—

એમ તો ઉપાસનાઓ ઘણા પ્રકારની છે પરંતુ બધામાં શીઘ્રતાથી ફલવતી થતી હોય તેવી ઉપાસના શંકર મહાદેવની છે મહાદેવજીની કૃપાથી જે સ્થાનો અને વ્યક્તિઓનો મહામહીમા લોકમાં પ્રસિદ્ધિ પામ્યો છે, તેમનું દિગ્દર્શન કરાવીને આજ અમે શ્રોતાઓને પુણ્યશાળી બનાવીશું—

૧—શ્રી કાશીપુરી—બધી દુનિયામાં મૃત્યુને બુરૂં સમજવામાં આવે છે પરન્તુ કાશીના મરણને મંગલ કહ્યું છે. એ કાશીનો મહીમા છે, અને એ મહત્વનું કારણ ભગવાન કૈલાશપતિ છે જેમકે જીવમાત્રમાં મનુષ્ય, મનુષ્યોમાં પણ બ્રાહ્મણ અને

બ્રાહ્મણોમાં પણ બ્રહ્મનિષ્ઠ શ્રેષ્ઠ છે, તેવીજ રીતે પૃથ્વીમાં આર્યાવર્ત, તેમાં વળી તીર્થસ્થળ અને તેમાં પણ કાશીનું સ્થાન સર્વોત્તમ છે, કેમકે આ અવિમુક્ત ક્ષેત્ર પંચકોશાત્મકરૂપથી વિદ્યા અને મુક્તિ બન્નેને આપનારૂં છે. જ્યાંની વિદ્યા બધાં તિર્થોના મહત્વને પ્રકાશમાં લાવે છે તે પુરી પ્રલય કાલમાં પણ નષ્ટ થતી નથી. કેમકે તે મહાદેવજીના ત્રિશુલ પર અવસ્થિત છે. અથવા ત્યાં સુધી પ્રલય કાળનું અથાહ પાણી અને પ્રલયાગ્નિની જ્વાળાઓ પહોંચી શક્તી નથી, અહિં વિશ્વનાથ નામના જ્યોતિર્લિંગનાં સાક્ષાત્ દર્શનનો લાભ પ્રાપ્ત થાય છે, જે ગંગા અને અન્નપૂર્ણાની વચમાં પ્રતિષ્ઠિત છે. બીજાં તિર્થ સ્થાનોમાં જે પ્રાણી મરે છે, તે તે તિર્થોના મહિમાથી કાશીમાં જન્મ ધારણ કરે છે. પછી તે કાશીમાં મરીને મુક્તિને પ્રાપ્ત થાય છે.

વ્રજભુમિમાં ભગવાન કૃષ્ણચંદ્રે અવતાર ધારણ કરીને કેવી કેવી લીલાઓ કરી, અયોધ્યાને પોતાના જન્મથી કૃતાર્થ કરવાવાળા શ્રી રાજા રામે કેવાં કેવાં ચરિત્ર બતાવ્યાં, નૈમિષારણ્યમાં અઠયાસી હજાર રૂષીયોએ કેવા કેવા પ્રશ્નોત્તરરૂપમાં સુસંવાદ કર્યા, વિન્ધ્યક્ષેત્રનો શું મહીમા છે, ચારે ધામ અને બાવન હદ્દો કેમ બનાવવામાં આવ્યા, માન્ધાતા વિગેરે ભૂપતિઓએ જનતાનો શો ઉપકાર કર્યો, રઘુ, વિક્રમાદિત્ય કોણ હતા, આચાર્ય શંકરનું વિજ્ઞાન કેવું છે, વિગેરે પ્રશ્નોના ઉત્તર તમે કયા આધાર પર આપી શકશો ? બીજા પણ ઘણાજ ઋષિ, મુનિ, ભક્ત, સંત, સાધુ, વીર વિગેરે પ્રાચીન કાળમાં થઈ ગયા છે, તમે તેમના વિષયમાં વગર પરિચયથી કેવી રીતે પરિચિત થઇ શકશો ? એ બધાનું જ્ઞાન કરાવનારૂં શાસ્ત્ર છે, લોક કથાઓ છે અને ઇતિહાસ છે. એજ બધા આર્યોનો પરિચય આપનાર છે, એ બધાંનું નિર્માણ આ કાશી નગરીમાં થયું છે. જે ગ્રંથોની રચના અહિં નથી થઇ, તેના ખરા ખોટાની પરિક્ષા અહિં થઇ છે. એવી આ કાશી નગરી છે, તેને જે એ ગૌરવ પ્રાપ્ત થયું છે તેનું એકમાત્ર કારણ મહાદેવજીનો મહીમા છે, જે અહિંના લોકોની બુદ્ધિમાં આટલી શકિત લાવી શક્યો છે.

૨—ચંદ્રમાના પુત્ર બુધે કાશીમાં બુધેશ્વર શિવલિંગ સ્થાપન કરીને તેની પૂજાથી એ વરદાન મેળવ્યું હતું કે 'તમારો લોક બધા નક્ષત્રોથી ઉંચો રહેશે, તમારી પૂજાથી બુદ્ધિનો વિકાસ થશે.'

કાશી ખં૦ અ૦ ૫

૩—એક વખત ગરૂડની પાંખો અચાનક તૂટી પડી, તે જોઇને આશ્ચર્ય ચકિત થઈ વિષ્ણુએ વિચાર કર્યો કે વજ્રોના પ્રહારથી જેનો એક વાળ પણ વાંકો થઈ શકતો નથી, બ્રહ્માસ્ત્ર પણ જેની પાંખો ઉપર વિફલ નિવડે છે, તેની પાંખો કેમ તૂટી પડી ? તેટલામાં તેમની દૃષ્ટિ તપસ્વિની શાણ્ડિલી પર પડી, તેને જોતાંજ વિષ્ણુ સમજી ગયા કે ગમે તેમ હોય પણ ગરૂડે આ તપસ્વિનીનો કોઈ અપરાધ કર્યો છે, તેના કોપથીજ આમ બન્યું છે. ભગવાને કહ્યું—દેવિ ! ગરૂડે તમારો શો અપરાધ કર્યો છે કે જેને કારણે તેને આટલો કઠોર દંડ આપ્યો ? તપસ્વિનીએ જવાબ આપ્યો—તેણે મારી સામે સ્ત્રી જાતિની ઘોર નિન્દા કરી છે, તેને અનેક દોષ લગાડ્યા છે, અને જેમ મનમાં આવ્યું તેમ નિઃસંકોચ બોલી નાખ્યું છે, હું તેને સહન કરી શકી નહિ. ભગવાને નમ્ર સ્વરમાં કહ્યું—ગરૂડનો અભિપ્રાય સ્ત્રી જાતિ માત્રની નિંદા કરવાનો ન હતો, તેને સ્ત્રીઓમાં જે કંઈ દુર્બળતાઓ છે તેનું માત્ર દિગ્દર્શન કરાવ્યું છે, તે નારી જાતિ ઉપર કલંક શા માટે લગાડે ? આપ

ક્ષમા કરો, તપસ્વિ જનોએ આવો કઠોર દંડ આપવો એ ઠીક નથી. તે સાંભળીને શાંડિલ્યે કહ્યું—મારૂં કહેલું કોઈ પણ અન્યથા કરી શકતું નથી, જે કહી દીધું છે, તે થઈનેજ રહેશે. તેનો માત્ર એકજ ઉપાય છે—'ગરૂડ શંકરજીની ઉપાસના કરીને તેમને પ્રસન્ન કરી લે, તો તે પૂર્વ સ્થિતિને પ્રાપ્ત થઈ શકશે.' એ સાંભળીને ગરૂડે વિષ્ણુની આજ્ઞાથી ગોકર્ણક્ષેત્રમાં જઈને ગરૂડેશ્વર મહાદેવની સ્થાપના કરી અને શંકરના વરદાનથી ફરીથી પહેલાંના જેવી સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરી.

૪—દૈત્યગણ નર્મદાના કિનારા પર સ્થિત ઓંકારેશ્વર મહાદેવની તપસ્યા કરીને દૈત્ય સમૂહને જીતી શક્યા હતા. (રેવા ખંડ અ૦ ૪૭)

૫—ચંદ્રમાએ દક્ષપ્રજાપતિની રોહીણી વિગેરે સત્તાવીસ કન્યાઓ સાથે વિવાહ કર્યા હતા, જો કે તેમાં એકથી એક સર્વ સુંદર હતી, પરંતુ ચંદ્રમાનો પ્રેમ રોહિણી પર અધિક થઈ ગયો. એ ભેદ દૃષ્ટિથી દુઃખિત થઈ અન્ય સપત્નિઓએ પોતાના પિતા દક્ષને તે વિષે ચન્દ્રમાને સમજાવી દેવા કહ્યું. પ્રજાપતિએ અનેક વાર સમજાવ્યું, પણ ચંદ્રમાએ ન માન્યું. છેવટે પ્રજાપતિએ—'જે સમાન શ્રેણી વાળાઓમાં વિષમતાનો વ્યવહાર કરે છે તે નરકગામી થાય છે' એ પ્રકારનો ધિક્કાર આપીને ચંદ્રમાને એવો શાપ આપી દીધો કે તું ક્ષય રોગગ્રસ્ત થા.

અન્તે ચંદ્રમાની ઇન્દ્ર આદિ દેવતાઓએ તથા વશિષ્ઠ આદિ ઋષિઓએ એવી દુર્દશા જોઈને કહ્યું કે જે થવાનું હતું તે તો થઈ ગયું, હવે તો તે પ્રભાસ તીર્થમાં જઈને દિવ્ય હજાર વર્ષ સુધી મહામૃત્યુંજયનો જપ કરે, ત્યારે તેનો 'તપેદિક' રોગ દૂર થઈ શકે, અન્યથા બીજો કોઈ ઉપાય તેને માટે સારા થવાનો નથી. ચંદ્રમાએ તેમ કરવાથી મહાદેવજીએ તેનો રોગ દૂર કર્યો. (રેવા ખંડ)

૬—એકવાર અગ્નિને યજ્ઞોનો માલ ખાઈ ખાઈને અજીર્ણ રોગ થઈ ગયો હતો, તે કોઈ પણ પ્રકારે સારો થતોજ ન હતો, તેથી તે ભૃગુકચ્છ નામના તીર્થમાં જઈને મહાદેવજીનું તપ કરવા લાગ્યો. દેવતાઓએ પણ મહાદેવજીની સ્તુતિ કરતાં કહ્યું કે પ્રભુ, આ અગ્નિ અમારૂં મુખ છે આપ તેનો રોગ નષ્ટ કરી દો. મહાદેવજીએ તે પ્રમાણેજ કરી દીધું. (રેવાખંડ)

૭—કુબેરના પૂર્વ જન્મની કથા એવી છે કે—યજ્ઞદત્ત નામના બ્રાહ્મણે પોતાના ગુણનિધિ નામના પુત્રને તે જુગાર વિગેરેનો દુર્વ્યસની હોવાને કારણે પોતાના ઘરમાંથી કાઢી મુક્યો. તે ભૂખ્યો તરસ્યો સાંજની વેળામાં એક મંદીરના દરવાજા પર જઈ પહોંચ્યો અને ત્યાં શિવકીર્તન સાંભળવા લાગ્યો. રાત્રે બધાના સૂઈ ગયા પછી તે પ્રકુલ્લિતચિત્ત મંદીરમાં ભોગ ધરાવેલા પદાર્થો ચોરવા માટે પેઠો અને પોતાનું કપડું ફાડીને તેની બત્તી બનાવી સળગાવીને પ્રકાશ કર્યો. જ્યારે પદાર્થો ચોરીને તે બહાર નિકળવા લાગ્યો ત્યારે તેના પગની ઠોકર વાગવાથી એક આદમી જાગી ગયો અને તેણે તેને ચોર સમજીને માથામાં એવી લાઠી મારી કે તે ત્યાંજ મરીને ઢગલો થઇ પડ્યો.

એ દીપદાનના ફળથી બીજા જન્મમાં તે કલિંગ દેશનો રાજા થયો. પૂર્વસ્મૃતિના બળથી તેને રાજ્યભરનાં મંદીરોમાં દીપદાનનો પ્રબન્ધ કરી દીધો. ત્યાંથી મરીને તે પુલસ્ત્યના પુત્ર વિશ્રવાના ઘરમાં ઉત્પન્ન થયો. ત્યાં તેણે મહાદેવજીની ઉગ્ર તપસ્યા કરી. મહાદેવજીએ પ્રસન્ન થઈને કહ્યું કે તમે તમારૂં અભિષ્ટ વરદાન માગો. એવું સુમધુર

વચન સાંભળીને જ્યારે તેણે આંખ ખોલી ત્યારે સૌથી પ્રથમ તેની દૃષ્ટિ પાર્વતી પર પડી, તે તેને ક્રૂર દૃષ્ટિથી તાકી તાકીને જોવા લાગ્યો. તેનું પરિણામ એ થયું કે તેની ડાબી આંખ ફૂટી ગઈ, આ દુર્વ્યવહાર જોઈને પાર્વતિએ કહ્યું, કે આ તાપસ ઘણો દુષ્ટ માલમ પડે છે, જે મને બુરી નજરે જોઈ રહ્યો છે. તે ઉપરથી મહાદેવજીએ તેમને એમ સમજાવ્યું કે એ તારો પુત્ર છે, તમે આદ્યાશક્તિ સમજીને એકીટસે જોઇ રહ્યો છે. તે પછી મહાદેવજીએ તેને દેવતાઓનો કોશાધ્યક્ષ બનાવી દીધો, પણ કુદૃષ્ટિથી પાર્વતીને જોવાને કારણે કુબેર નામ પડયું, બાકી તેનું બધું ઐશ્વર્ય મહાદેવજીની કૃપાનું ફળ છે. (શિવપુરા॰ અ॰ ૧૨૧)

૮—એકવાર યમરાજે મરીને પરલોક ગયેલા માણ્ડવ્ય ઋષિને પૂર્વજન્માર્જિત કર્માનુસાર શૂળી પર ચઢાવવાનો દંડ કર્યો. આ દંડ ભોગવીને ઋષિએ યમરાજની પાસે જઈને પૂછ્યું કે કયા પાપથી તમે મને ફાંસીની સજા આપી છે! યમરાજે કહ્યું—અમુક જન્મમાં બાલ્યાવસ્થામાં તમે અનેક જીવોને સોયની અણીથી વિંધ્યા હતા, તેમની યાતનાથી તમારે નરક ભોગવવું પડશે, જેનો એક ભાગ તમે શૂળાનો દંડ ભોગવીને ભોગવી લીધો છે. એ સાંભળીને ઋષિએ 'આટલા નાના અપરાધ માટે આવો કઠોર દંડ આપીને તમે મારી સાથે ઘોર અન્યાય કર્યો છે' એમ કહીને તેમણે યમરાજને શ્રાપ આપ્યો કે તમે મનુષ્ય યોનીમાં ચંડાલ જાતિને પ્રાપ્ત થાઓ.

યમરાજ ઉક્ત શ્રાપથી મુક્ત થવાને માટે જગન્નાથપુરીના કપાલમોચન સ્થાનમાં જઇને શંકરની આરાધના કરવા લાગ્યા. શંકરજીના પ્રગટ થવાથી યમરાજે પોતાના ઉપર થયેલી બળ જબરાઇ પ્રતિ તેમનું ધ્યાન ખેંચતાં કહ્યું કે પોતાના કર્મફળાનુસાર માણ્ડવ્ય ઋષિને ફળ ભોગવવું પડયું, તેમાં મારો શું દોષ હતો ? તો પણ ઋષિએ મને શ્રાપ આપ્યો

યમરાજનાં કરૂણાપૂર્ણ વચનો સાંભળીને શંકરજીએ કહ્યું—તપસ્વિનાં વચન વૃથા થઈ શકતાં નથી, હા, હું એટલું કરી શકું છું કે શુદ્રયોનીમાં રહેવા છતાં પણ તમને બ્રહ્મજ્ઞાન રહેશે, અને શુદ્ર યોનિ જનિત ગ્લાનિ પણ તમને થશે નહિ. આખરે યમરાજે એક દાસીને ઘેર જન્મ ધારણ કર્યો અને તેમનું નામ વિદુર પડયું, જે મોટા પ્રભુભક્ત અને જ્ઞાની થયા. આ કૃપા શંકરજીની હતી.

(નાગર ખંડ)

૯—ઇન્દ્ર મહારાજે ત્વષ્ટા ઋષિના પુત્ર વિશ્વરૂપને મારી નાખ્યો. પુત્રવધથી દુઃખી થઈ અને ક્રોધ કરીને ત્વષ્ટાઋષિએ દારૂણ તપ કરીને બ્રહ્મા પાસે દેવતાઓને ભયભીત કરનારો પુત્ર ઉત્પન્ન થાય એવું વરદાન માગ્યું, જેનાથી ત્વષ્ટાને ઘેર 'વૃત્ર' નામનો પરમ પ્રતાપી પુત્ર ઉત્પન્ન થયો. ઇન્દ્ર પાસેથી બદલો લેવા માટે વૃત્રાસુરે ઘોર તપસ્યા કરવાનો પ્રારમ્ભ કરી દીધો. તેનું તપ જોઇને ભયભીત થયેલા ઇન્દ્રે દધીચી ઋષિના હાડકાંથી બનેલા વજ્રથી તેને મારી નાખ્યો.

વૃત્ર બ્રાહ્મણ હતો, તેથી બ્રહ્મહત્યા ઇન્દ્રની પાછળ એવી પડી કે જ્યાં જ્યાં ઇન્દ્ર ગયા ત્યાં ત્યાં તેનો પીછો ન છોડ્યો. બ્રહ્મહત્યા, સુરાપાન, ચોરી ગુરૂપત્નિગમન અને વિશ્વાસઘાત એ મહા પાપોથી બચવું ઘણુંજ કઠણ છે, તેનાથી દુઃખી થઇને ઇન્દ્ર સિંહાસન અને શચીનો ત્યાગ કરી તપ કરવા માટે નીકળી પડ્યા. અનેક તીર્થ, મંદીર, સમુદ્ર, નદી, તલાવ વિગેરેમાં જવાથી પણ જ્યારે બ્રહ્મહત્યાનો દોષ દૂર ન થયો ત્યારે આખરે ઇન્દ્રે હિમાલય પર્વત

પર જઈને કૃચ્છ્ર ચાન્દ્રાયણ, ગ્રીષ્મ ઋતુમાં પંચાગ્નિ તપ, વર્ષામાં ખુલ્લા મેદાનમાં રહીને તથા ઠંડીમાં જલધારાવાસ આદિ કરીને શંકરની તપસ્યામાં દશ હજાર વર્ષ વિતાવ્યાં ત્યારે ઇન્દ્રની તપસ્યાથી પ્રસન્ન થઈને શંકરજી તેને વરદાન આપવા આવ્યા, ત્યારે ત્યાં સર્વ દેવતા હાજર થઈ ગયા. તે સમયે બૃહસ્પતિજી મહાદેવજીને કહેવા લાગ્યા કે ઇન્દ્રે દેવતાઓના કહેવાથી વૃત્રાસુરને માર્યો છે, છતાં પણ તેને બ્રહ્મહત્યા લાગી, તો તેને તમે દૂર કરો.

આ સાંભળીને શંકરજીએ બ્રહ્મહત્યાના ચાર ટુકડા કર્યા એક ભાગ નદીમાં, બીજો પૃથ્વીમાં, ત્રીજો રજસ્વલા સ્ત્રીમાં અને ચોથો શૂદ્રસેવક બ્રાહ્મણમાં એમ વહેંચી દીધા. ઇન્દ્ર મહાદેવજીના પ્રતાપથી પહેલાના જેવા થઈ ગયા. (રેવાખંડ)

૧૦—શુક્રાચાર્ય જે દૈત્યોના ગુરૂ છે, તેમને અર્બુદ પહાડ પર શંકરજીની ઘોર તપસ્યા કરીને આવું વરદાન માગ્યું—

यदि तुष्टो महादेव विद्या देहि महेश्वर ।
यया जीवन्ति सम्प्राप्ता मृत्युं सर्वेऽपि जन्तवः ॥

આપ પ્રસન્ન હો તો એવી વિદ્યા આપો કે જેનાથી મરી ગયેલા પ્રાણી જીવતાં થાય. શંકરજીના તથાસ્તુ કહેવાથી એ વિદ્યાના પ્રભાવથી શુક્રાચાર્યના શિષ્ય મરી ગયેલા દૈત્યો જીવતા થઈને યુદ્ધમાં દેવતાઓનો સામનો કરવામાં સમર્થ થતા હતા.

૧૧—બૃહસ્પતિના વિષયમાં એમ કહેવાય છે કે બ્રહ્માએ સૃષ્ટિ કરવાની ઇચ્છાથી મરીચી, અત્રિ અને અંગીરા વિગેરે સાત માનસપુત્ર ઉત્પન્ન કર્યા તેમનામાંથી આ અંગીરાએ કાશીમાં જઈ શંકરનું તપ કર્યું. ઉગ્રસ્વરૂપ મહાદેવજીએ પ્રસન્ન થઈને વરદાન માગવા કહ્યું ત્યારે અંગિરાએ કંઈ વરદાન માગ્યું નહીં, કેવળ એમ કહ્યું કે મને ફક્ત તમારા દર્શનની ઇચ્છા હતી, હું બીજું કંઈ ઇચ્છતો નથી તે ઉપરથી મહાદેવજીએ કહ્યું કે ઋષિવર, તમે બહુ ભારે તપ કર્યું છે, તમે ઇન્દ્રાદિ સર્વ દેવતાઓના ગુરૂ થશો, તમારૂં 'બૃહસ્પતિ' નામ થશે હું તમને વાચસ્પતિની ઉપાધીથી વિભૂષિત કરૂં છું તેમનું સર્વના ગુરૂ બનવું મહાદેવજીની કૃપાથી થયું (કાશી ખં૦)

૧૨—નરનારાયણનો ઉત્તરાખંડમાં મોટો મહીમા છે, આ પ્રદેશને બદ્રીનારાયણધામ કહે છે કે જે ચાર ધામમાં એક મુખ્ય ધામ છે ત્યાં નરનારાયણે ભગવાન શિવજીનું તપ કર્યું હતું તેમની તપસ્યાથી પ્રસન્ન થઈને જ્યારે મહાદેવજીએ તેમને વરદાન માગવા કહ્યું, ત્યારે નરનારાયણ શંકરજીનું સ્વરૂપ જોઈને પ્રસન્ન થઈ ગયા અને બોલ્યા—'અમને તમારા દર્શનના લાભથી સર્વ કાંઈ મળી ગયું, હવે તો એટલીજ પ્રાર્થના કરીયે છીએ કે સદા આપનો નિવાસ અહિંજ રહે' ત્યારથી શિવજી કેદારનાથના નામથી ઉત્તરાખંડમાં નિવાસ કરે છે આ તેજ સ્થાન છે કે જ્યાં મહિષનું રૂપ ધારણ કરીને ઓળખી લેવાથી શંકરજીએ પાંડવોનો ઉદ્ધાર કર્યો હતો આજ કાલ ઉત્તરાખંડના એ પવિત્ર પ્રદેશને કેદારખંડ કહે છે અહિં મોટામોટા ઋષિ, મુનિ, યોગી યતિ, તપ, ધ્યાન કરવામાં હમણાં પણ લાગેલા જોવા મળે છે

આ સર્વ નિદર્શનોનો ફલીત [illegible] અર્થ એ નિકળે છે કે જેનાથી મનુષ્ય તથા સ્થાન પણ પૂજનીય થઈ જાય છે અને તેવા સામર્થ્યનું નામ છે, 'મહાદેવનો મહામહીમા'

પ્રારબ્ધ

(લે૦—સિકંદરરાય બાલાભાઇ દેસાઈ)

વ્યવહાર ઉપર આત્મપ્રેરણાનુસાર દૃષ્ટિ કરાવી, યત્ર તત્ર સર્વત્ર આત્મ લાભ છે એટલા અનુભવ સુધી લાવનાર જે પ્રારબ્ધ તે મનુષ્ય માત્રને કેવી રીતે દગો દે છે તે પણ જોવું જોઇએ, જો કે તે ગમે તે કરે કરાવે તોપણ આત્માનંદમાં વિક્ષેપ આવવાનો નથી.

હે કીસ્મત ! તેં આજ સુધી બહુ દગાબાજી કરી છે. અમુકમાં પરિપૂર્ણ સુખ છે એમ દેખાડી, પરિણામે તેમાંથી મહા કષ્ટ નીપજાવી આપ્યું છે એવી દગાબાજી તેં પ્રથમથી મારી સાથે ચલાવી છે એમ હવે મને સમજાયું છે, એટલે હવે તું મને ક્યાં લઇ જાય છે ? શા માટે તું મને લઈ જવાનો યત્ન કરે છે, હું તો હવે અભેદરૂપી સમુદ્રના તટે આવી ચૂકયો છું. તું મારો છે એમ સમજાવીને તે મને તારે ભરોંસે લીધા છતાં તેં મારી ભરબજારમાં હરરાજી કરી એજ તારી દગાબાજી છે, હવે તારો વિશ્વાસ નકામો છે, તારાથી દોરાવું એ ભૂલ છે. અભેદના પ્રદેશમાં પ્રારબ્ધનો અવકાશજ નથી.

પ્રારબ્ધ—કીસ્મત કેવી દગાબાજી કરે છે તેનો મને પૂર્ણ અનુભવ છે અને એવો અનુભવ પ્રત્યેક માણસને થયો હશેજ. પ્રથમ અને સર્વથી મોટી દગાબાજી તો એજ છે કે આ દુનિયાંમાં અવતરવાનો હેતુ જે છે તેજ કીસ્મતે વ્યર્થ કરી નાંખ્યો છે. નીજરૂપ થવું, આત્મ લાભ પામવો, અભેદ અનુભવવો એ અર્થે જગતના અનુભવની યોજના છે, તો તે દૃષ્ટિથી વ્યવહારને ન ભોગવવા દેતાં કીસ્મતે તો આપણને પોતાના જેવાં કરી દીધાં, પોતારૂપ બનાવ્યાં. કીસ્મત જે ખરૂં ખોટું બતાવે તેજ ખરૂં ખોટું માનતા આપણે થયાં. એમ થવામાં બાધ કાંઇ નથી, પણ આણે તો એમ કરી કરીને આપણને રંજાડવા માંડયાં, પ્રત્યેક અનુભવમાં રંજ-દુઃખ આપવા માંડયું પણ એણે વિસ્તારેલી વિરવાસની મોહિની એવી છે કે જેમ જેમ એવી રંજમાં પડતાં ગયાં તેમ તેમ પણ આપણે કીસ્મતને ને કીસ્મતનેજ વળગતાં ગયાં, બીજી કોઇ પાસ દૃષ્ટિ કરી નહિ. કીસ્મતે પણ આપણને પોતાની ગોદમાં વધારે લપેટી લેવા માંડયાં; એમ લપેટીને પણ છેવટ શું કર્યું ? ભરોંસે લઇને હરરાજી કરી. છુપી રીતે ઘા કર્યો; નિરંતર માર્મિક વેદનારૂપ કલેષ આપ્યો. એવા કીસ્મતને ભરોંસે રહી તે દોરે ત્યાં દોરાવું વ્યર્થ છે.

કહીં કહીં અતિ રમણીય તેજોમય બ્રાહ્યાકાર બતાવીને પણ અંદરથી તો મહા આપત્તિરૂપ પરિણામ ઉપજાવી આપ્યું. ખરા સુખને પણ મરણ વિયોગ-આદિ ભયના ત્રાસથી સુખરૂપે ભોગવવા ન દીધું, સનમ—માશુક—સાંસારિક દારાદિ સમજો, કે પારમાર્થિક આત્મમયતા સમજો પણ તે સનમના દીદારનું જે પરમ સુખ તેમાંએ તેં જુદાઇ પાડવાની યોજના સ્વભાવ સિદ્ધજ જડી રાખી-વ્યાવહારિક માશુકના દર્શનમાં આંખોનું નિમિષો-ન્મેષ પામવું તેમાં જુદાઇ પાડવાની યોજના કરી રાખી છે, પરમાર્થિક માશુક આત્મમયતા તેમાં પણ વ્યવહારના વિક્ષેપરૂપી ક્ષણ તેં સ્વાભાવિક રીતેજ ઘાલી દીધી છે. તારી દગાબાજી પકડાય કે સમજાય તેમ નથી, વસ્તુ—શક્તિથી સ્વભાવ સિદ્ધ પદાર્થોમાં પણ તારી દગાબાજીની રચના તેં ઘાલી દીધી છે, એવું જે તું તેનો વિશ્વાસ વ્યર્થ છે.

અમુક કાર્ય સાધવું છે, તેના આટલાં આટલાં કારણો—સાધનો છે, એ સર્વનો યોગ્ય હીસાબ કરીને અમે સાંકળ ગોઠવીએ છીએ અને એ સાંકળને છેડે ફલ-કાર્ય-મળશેજ એમ આશા રાખીએ છીએ, પણ તે સાંકળના આંકડા અમે ગોઠવતા હોઇએ છીએ તેમાં, કોણ જાણે કેવી રીતે, તું કેટલાક આંકડા એવા ઉલટા ભરાવી દે છે કે એ સાંકળને છેડે પહોંચવાને બદલે વખતે ચોથા ઉલટા આંકડાથી ફેરાઇ અમે જ્યાંથી નીકળ્યા હતા ત્યાંજ પાછા આવીએ છીએ, કે વખતે ઇષ્ટ ફલને પ્રાપ્ત ન કરતાં કોઈ વિપરીત ફળને પ્રાપ્ત કરીએ છીએ ઘણીવાર અમે સ્પષ્ટ જાણતા હોઇએ છીએ કે અમુક વસ્તુનો સરવાળો અમુકજ થાય છે છતાં તેનો સરવાળો અમે કાગળ ઉપર લખવા બેશીએ છીએ ત્યારે તું અમારી પાસે કાંઇકનું કાંઇક લખાવી દે છે શા માટે એમ કરે છે ? તું દગાબાજ ન હોય તો આવું શા માટે કરે ? પાપ સમજતાં છતાં પાપ કરાવે ! ખોટું સમજ્યા છતાં ખોટું કરાવે ! તારો વિશ્વાસ વ્યર્થ છે

જે જે પદાર્થો, મનુષ્યો આદિને મારાં, મારાં એમ ગણીને જેમનું અને મારૂં હૃદય જે પ્રેમથી ભરપૂર ભર્યું, એક તલપૂર અવકાશ રહે નહિ તેવું ભર્યું, છતાં તેમનાં હૃદયોમાં કેવે પ્રકારે, શા હેતુને અર્થે, તે ઝેર ભરી દીધું ! પ્રેમમાં પણ અપ્રેમ શી રીતે દાખલ કરી દીધો ! લાખો આશાઓરૂપી પાયો ચણીને તૈયાર તે કરી આપ્યો, તે તે પાયો ધર્યો અને તે ઉપર અમારી પાસે મ્હોટી મ્હોટી ઈમારતો ચણાવી, સંસાર પરમાર્થ, લાભ અલાભ ઈત્યાદિમાં અનેક લ્હાવા લેવાના અભિલાષની ઈમારતો બંધાવી, છતાં ઈમારત તૈયાર થતાં થતાંમાં તો તે તારો આપેલોજ પાયો તુરત કોણ જાણે કેવી રીતે તાણી લીધો, અને ઈમારત બરબાદ કરી નાખી કોઈ સ્થાને કોઇના ખોળામાં તે અમારૂં માથું મુકાવ્યું, તે ખોળાને વળી મીઠો, એવો કે તુરત વિશ્વાસ આવે ને બેભાનરૂપ નિદ્રા આવે, તેવો બનાવ્યો, ઘણા વિશ્વાસથી ત્યાં માથું મુકાવ્યું, છતાં કોણ જાણે કેવી રીતે એવા મનુષ્યનીજ પાસે પાછું તે અમારૂં માથું કપાવ્યું. સંસાર, પ્રેમમાં ઝેર, આશાના પાયાની ઈમારતનું બરબાદ થવું, વિશ્વાસમાં વિશ્વાસઘાત, એથીજ ભરેલો છે, આપણે સમજી ન શકીએ તેવી રીતે કીસ્મત એવા લાખો અનુભવ કરાવે છે, એજ તેની દગાબાજી છે, એનો વિશ્વાસ વ્યર્થ છે

કોઇ એમ કહેશે કે તમે સંસારના વિષયોને વળગવા જાઓ ત્યારે એવાં પરિણામ આવે એમાં કાંઈ આશ્ચર્ય નથી તો તે ઉપર કહેવાનું કે "છે" એવી પ્રતીતિ જે જે વિષય માટે થાય છે, જ્યાં જ્યાં હું હોઉં, મને અમુક મળે, મારૂં અમુક થાય, એવી પ્રતીતિથી આશા બંધાય છે, તે સર્વ 'છે' માંથી છેલને ઉડાવી લીધું અને કાંઈ નથી, કોઈ મારૂં નથી એ આદિ "નથી" માં ઠરાવ્યું અને 'છે' ને મુકી 'નથી' માં પડવાથી જે કલેષ થાય, દિલમાં દર્દ થાય, તેથી માત્ર રોઇનેજ સંતોષ માનવો ધાર્યો, પરંતુ એવા રોવામાએ તે અમને ફાંફવા વારો આપ્યો નથી, એટલે તું દગાબાજ છે—એવ રોવામાં દુનીયાનું વખોણું દુનીયાના એવા મિથ્યા આરોપ, અનેક નિંદા દ્વેષ ઈર્ષા આદિના પ્રલાપ, અમારે માટે તે તૈયાર કર્યાં છે—એવું રોવું શા માટે પડે છે ? અસ્તિથી નાસ્તિમાં જતાં શું દર્દ થાય છે ? એમ પ્રશ્ન કરવાનું કારણ નથી કારણ કે અમે જે દર્દ દીલ રોઇએ છીએ તેનો મર્મ જુદોજ છે અમારી આંખોજ અશ્રુધારા રૂપ થઈ ગઈ

છે, આંખોજ અંદરના પરિતાપથી ઓગળીને અશ્રુધારા રૂપે વહે છે, કલેષ પીઠા આદિથી વહે છે, એમ નથી, એ તો દીલમાં જે ઉંડા દાગ છે, જે ઉંડા તીવ્ર ઘા રૂપી ડાઘ પડેલો છે, તેને ધોવા માટે ચાલતી જલ ધારા છે, આવી જાતની જે ધારા તેજ ખરા પશ્ચાતાપરૂપ છે, તેથી માણસનું અંતઃકરણ સુપરિશુદ્ધ થતાં તેને આત્મસાક્ષાત્કાર થાય છે, એ અશ્રુધારામાં ગળી જતી આંખો, દીલદાગ જેનો સાક્ષી પોતાનો આત્મા તે વિના અન્ય કાંઈ જોતી નથી પરમ પ્રેમમાં વિલીન છે, ને એજ આવાં અશ્રુની ખુદાઇ છે, મીઠાઈ છ છતાં આવી દિવ્ય મીઠાઈ તેમાં પણ કીસ્મતનો દગો વિદ્યમાન છે કે તેણે, કોણ જાણે શા પ્રકારે, એ મિષ્ટ અશ્રુધારાને ખારી બનાવી મુકી છે! ત્યારે એવી રીતે પરિતાપ પામવા કરતાં ત્યાગ કરવો તેજ સારો છે, અસ્તિથી ઉઠીને ખરી રીતે નાસ્તિમાં જવું એ તેનુંજ નામ છે તો તે વિષે જોતાં પણ ત્યાંએ કીસ્મતની દગાબાજી ઉભી છે. આવા પરિતાપના મારથી કોઇને મુંડાવ્યું, કોઇને ભગવાં કરાવ્યાં અને ત્યાગ કરાવ્યો તો પણ ફળ શું આવ્યું? જે અસ્તિમાંથી તેમને કાઢ્યાં તે કરતાં બેવડી અસ્તિ તેમને વળગાડી, એક ઘર મુકાવ્યું અને સો ઘર કરાવ્યાં, બેવડી ઉપાધિ લોકૈષણાથી વળગાડી, તારો વિશ્વાસ કરાયજ કેમ?

અસ્તિમાં, નાસ્તિમાં સર્વત્ર કિસ્મતની દગાબાજીની જાળ પ્રસરી છે એવો અનુભવ થાય તો તેનું કારણ એકજ હોવું જોઇએ કે અનુભવ પામનારને આત્મ પ્રેરણાનું ઉચ્ચ તાન લાગેલું છે, તેથી જ તેને કિસ્મતમાં તૃપ્તિ આવતી નથી, તેને છેવટે આત્માનુભવ થાય છે જ, પ્રારબ્ધનો જ્યાં અવકાશ નથી ત્યાં સર્વમયતાનો સ્વાદ જડે છેજ, એજ અદ્વૈત પણ જાણવા છતાં, મોઢે અદ્વૈત બોલવા છતાં, મનમાં તેનો પરિપૂર્ણ સાક્ષાત્કાર છતાં, આવા લેખો લખવાનું જે દ્વૈત તે પણ કોણ જાણે શા માટે કિસ્મત કરાવે છે. એવી સૂક્ષ્મ એ કિસ્મતની દગાબાજીની જાળ છે, એનો વિશ્વાસ શો?

આવો આવી દગાબાજી કયાં કયાં કહીએ? કિસ્મત તો એટલે સુધી દગાબાજીમાં રમે છે કે "હા" ની "ના" કરે છે, ને "ના" ની "હા" કરે છે, હતું ન હતું કરે છે ને ન હતું હતું કરે છે, એ વિશ્વાસ આપી અન્ય ઉપજાવે છે. એમ તેનું સ્વરૂપજ અચિંત્ય, પણ દગાબાજીમય છે, ભલે કિસ્મત એમ કરે, એમ કરવાથી શું? એથી શું થનાર છે? એવી જે જે દગાબાજી કિસ્મત મારી સાથે રમ્યું છે તેમાં સર્વત્ર મને તેની દગાબાજી કરતાં મારો જે માલીક છે, મારો જે ગુરૂ છે, મારો જે તારનાર છે, તેવા સર્વમય આત્માનાજ ભણકારા કાને પડયા ગયા છે. જે જે સુખ સંપત્તિ પ્રેમ ભોગ ઇત્યાદિમાં મને તૃપ્તિ થઇ નથી, નિર્વેદ આવ્યો છે, કે વિશ્વાસમાં વિશ્વાસઘાત આશામાં નિરાશા, કારણ સતે કાર્યાભાવ એ આદિ અનુભવાયું છે, ત્યાં બધે મને સર્વ સુખ, સર્વ સંપત્તિ, સર્વ પ્રેમ, સર્વ વિશ્વાસ સર્વ વ્યવહાર, સર્વે સ્થૂલ, તેની પાર, છતાં તે સર્વમય અને તે સર્વરૂપ, એવા આત્મારૂપી માલીકનાજ અનુભવો અધિક દૃઢ થતા ગયા છે, પ્રારબ્ધનો તેને સ્પર્શ નથી, તેજ પરમ તત્વ છે, તેનાથીજ સર્વ પ્રકારે સમાધાન અને આનંદ છે, એમ અનુભવ થયો છે. આમ છે માટેજ કિસ્મતની દગાબાજીથી શું? એમ કહેવાનો સમય આવ્યો છે. આ પ્રકારે આવી દૃષ્ટિથી, આ આખી દગાબાજીમાં રમાડાતો છતાં પણ હું રમ્યો છું, એટલે કિસ્મતનો પામર ગુલામ ન થતાં હું ઉલટો તેનો મોટો ઉપકાર

માનનાર થયો છું, કે તેણે આવા અનુભવો કરાવી આત્મ પ્રેરણાના અંકુરને ઉદ્દીપિત કરી, યોગ્ય સ્થાને મનોવાળી મુકયો, એથીજ આ દગાબાજીમાં તે રમાડ્યા છતાં હું બહુ ખુશી છું. કેમકે જે તે રમતે મને છેવટ મારો માલીક મળી ગયો, મને આત્મ ભાન થયેલ તે સો હરરાજી કરવા માંડી હતી કોઇ ક્યો એમ મને વેચવા કાઢ્યો હતો, પણ જે મારો ખરો માલીક હતો તેજ મને એ હરરાજીમાંથી મળી ગયો છે, હવે હે કિસ્મત ! તું તારે ફાવે તે કરી લે, ગમે તે અનુભવ કરાવ, પણ તેથી મને કશું થનાર નથી, એટલી એ મારા માલીકની કુંક છે. તું જે વ્યર્થ છે તે વ્યર્થજ છે

સુખી જીવન

(લે૦—પં૦ શ્રી વાસુદેવ શાસ્ત્રી તૈલંગ, શુ૦ દ૦ વે૦ વિશારદ)

શિષ્ય—પૂજ્ય ગુરૂજી, એક દિવસ કોઇ એક પત્થરની મૂર્તિને સંગ્રહાલયમાં જોઇને મેં તમને ઘણા કુતૂહલથી પૂછ્યું હતું કે એ મૂર્તિયો જે આટલી સુદૃઢ હૃષ્ટપુષ્ટ, પ્રત્યેક અંગના અવયવથી મજબૂત જોવામાં આવે છે, તે શું વાસ્તવમાં આવા ઉના લોકો એવાજ વિશાલકાય થતા હતા કે આ મૂર્તિયોજ માત્ર શોભાર્થે તેવી સ્થાપિત કરેલી છે ? ત્યારે આપે કહ્યું હતું કે આ પ્રશ્ન તો પ્રત્યેક મનુષ્યને માટે લાભદાયક છે અને પ્રત્યેક મનુષ્યનો એની સાથે ઘનિષ્ટ સંબંધ છે, માટે એના વિષે ફરી કોઇ વાર વિચાર કરીશું તો આજ હવે તેનો સંતોષજનક જવાબ આપવાની કૃપા કરો

ગુરૂ—પ્રિય વત્સ, જેવો સુંદર પ્રશ્ન સ્વસ્થ રહેવાનો તમે આ વેળાએ કર્યો છે તેવોજ પ્રશ્ન એક વાર પ્રસિદ્ધ પહેલવાન 'સેન્ડો' એ પોતાના પિતાને પૂછ્યો હતો કે આ મૂર્તિયો આટલી બધી મજબૂત, મનોહર અને પ્રત્યેક અંગથી સુશોભિત ચમકતી ફડકતી જે માલુમ પડે છે, તે શું એવા મનુષ્ય પણ હોઇ શકે છે ? ત્યારે તેના પિતાએ તેનો ઉત્સાહ અને તેની ઉન્નતિપૂર્ણ વાતો સાંભળીને કહ્યું હતું કે એ મૂર્તિયો એ જમાનાની છે કે જ્યારે શારીરિક બળ તથા આત્મિક બળજ સર્વ કાંઈ ગણાતું હતું તે વખત મનુષ્ય કાયિક, વાચિક અને માનસિક બળથી પૂરા સંપન્ન રહેતા હતા એ શબ્દોએ દુબળા પાતળા ઉદાસીન 'સેન્ડો' ના શરીરમાં આશ્ચર્યકારક વિજળીના જેવો પ્રવાહ પહોંચાડયો અને તેથીજ થોડા દિવસોમાં તેઃ તે વિશ્વવિખ્યાત 'સેન્ડો' બની ગયો, કે જેની બરાબરી કરનાર કોઇ ન હતો, આજકાલ 'સેન્ડો વ્યાયામ' નો ઘેરેઘેર પ્રચાર થઇ રહ્યો છે, શું તમે પણ એ પ્રકારે આદર્શ પુરૂષ બનશો અને સંસાર સામે તમારૂં ઉદાહરણ મુકશો ?

શિષ્ય—એવું સ્વાસ્થ્ય ક્યારે અને કેવી રીતે પ્રાપ્ત થઇ શકે, તે તો કહેવાની કૃપા કરો ?

ગુરૂ—નીતિશાસ્ત્ર પોકારીને કહે છે કે 'ધર્માર્થ કામમोक्षाणां शरीरं साधनं परम्' ધર્માદિ સર્વ આ શરીરથી થાય છે અને આ શરીર જો કદી રોગી થઇ જાય તો અમે કોઇ પણ કાર્ય કરવાને સમર્થ રહેતા નથી જ્યારે શરીર નિરોગ અને હૃષ્ટપુષ્ટ હશે ત્યારેજ અમારૂં સ્વાસ્થ્ય તથા વિચાર સબળ બનશે અને સ્મરણ શક્તિ પણ ઉત્તેજીત રહેશે. કહેવત છે કે જેવું શરીર હશે તેવુંજ મસ્તિષ્ક

(મગજ) પણ હશે. પ્રત્યેક ક્ષણે અમે જોઇએ છીએ કે જે મનુષ્ય દુખી છે, તે ક્રોધી, ઉદાસીન અને શરીર સંપત્તિથી હીન છે, એનાથી ઉલટ જે સુખી છે, તે સ્વસ્થ અને તંદુરસ્ત છે, તે પ્રત્યેક કામને ઉછળતાં કુદતાં સારી પેઠે મન લગાડીને કરી શકે છે.

શિષ્ય—સ્વસ્થ મનુષ્યનાં કયાં લક્ષણો છે?

ગુરૂ—આયુર્વેદમાં કહ્યું છે—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

જે મનુષ્યમાં વાત, પિત્ત અને કફ બરાબર હોય, અન્ન પચાવવાવાળો અને ભૂખ લગાડનારો જઠરાગ્નિ તેજ હોય, જેનાં રસ, રક્ત, માંસ, અસ્થિ વિર્ય, મળ, મૂત્ર, સારી અવસ્થામાં હોય, જેનાં આત્મા, ઇન્દ્રીય તથા મન પ્રસન્ન તથા પોતાના કામમાં લાગેલાં રહેતાં હોય, તે પુરૂષ સ્વસ્થ કહેવાય છે.

શિષ્ય—ત્યારે તો મોટા પેટવાળા શેઠીઆઓ અને ગાદી તકીયા પર પડયા રહેનારા બાબુસાહેબો અવશ્ય તંદુરસ્ત રહેતા હશે?

ગુરૂ—નહી, ઘણા મોટા પેટવાળાને અને જે ગાદી તકીયા પર પડયા રહેતા હોય તેમને સ્વસ્થ કહી શકાય નહીં અમે તો તંદુરસ્ત તેને કહી શકીયે છીએ કે જે ઉપર કહેલા ગુણોથી યુક્ત હોય છે. આરોગ્યશાસ્ત્રમાં કહ્યું છે કે દિનચર્યા (પ્રાતઃકાળથી સંધ્યાકાળ સુધીનાં કામ) રાત્રિચર્યા (સંધ્યાકાલથી પ્રાતઃકાળ સુધીનાં કામ) અને ઋતુચર્યા (છ ઋતુઓનાં કાર્ય) આહાર વિહારના નિયમ પાળવાથી મનુષ્ય સ્વસ્થ રહી શકે છે.

'ब्राह्मे मूहूर्ते बुध्येत' બ્રાહ્મ મુહૂર્તમાં ઉઠીને ધર્મ અર્થનું ચિંતન કરવું જોઇએ, આ બ્રાહ્મ મુહૂર્ત આશરે ચાર વાગે સવારે રહે છે, દિનચર્યાનો આરંભ ત્યારથી થાય છે, બીજી ચર્યાઓનું આ મુળ છે.

'स्वल्पाहारः सुखावहः' થોડું ભોજન સુખકારક છે, એ પ્રત્યેક મનુષ્યે ધ્યાનમાં રાખવું જોઇએ. જે લોક સમજે છે કે જેટલું વિશેષ ભોજન કરીશું એટલાજ બળવાન થઈશું, એ ભ્રમ છે. કોઈ વિશેષજ્ઞનું કહેવું છે કે અધિક ભોજન કરનારા પોતાની પાસે મૃત્યુને બોલાવે છે. ભોજન જીવવા માટે કરવામાં આવે છે નહિ કે મરવા માટે.

શિષ્ય—શું વ્યાયામને પણ આપ શરીરોપયોગની વસ્તુ સમજો છો?

ગુરૂ—સુશ્રુતસંહિતા એક વૈદ્યકનો ગ્રંથ છે, તેમાં વ્યાયામના વિષયમાં કહ્યું છે, કે એનાથી શરીરમાં કાંતિ, અંગમાં મજબુતાઇ, સ્ફૂર્તિ, આરોગ્ય વિગેરે પ્રાપ્ત થાય છે. અને સાથેજ જેનું વર્ણન સૌથી પ્રથમ કર્યું હતું તે બ્રહ્મચર્ય સ્વસ્થતાનું વિશેષ અંગ છે. તેનાથી વીર્ય જેને અમે શરીરનો જીવનરસ કહીએ છીએ, તે તલમાં તેલની માફક અને ફૂલમાં અત્તરની માફક શરીરમાં સ્થિર રહે છે.

શિષ્ય—તમે એક દિવસ મારી તબિયત ખરાબ થયેલ હોવાથી ઉપવાસ કરાવ્યા હતા, શું એ પણ તંદુરસ્ત રહેવાનો ઉપાય છે?

ગુરૂ—પ્રકૃતિને અનુસરીને પ્રાકૃતિક ઉપાય કરવા એજ આરોગ્યપ્રદ છે. એકાદશી, પ્રદોષ, પૂર્ણિમા, જન્માષ્ટમી વિગેરે દિવસોમાં ઉપવાસ કરવાનું એ ફળ છે કે અન્નથી ઉત્પન્ન થયેલા દોષ તેનાથી મટી જાય છે. તેનેજ એક પ્રકારે અમે પોતે પોતાની પ્રાકૃતિક દવા કરવી એમ કહી શકીએ છીએ. આ વિધિ અનુસાર શારીરિક સ્વાસ્થ્યના સ્થિર થયા પછી શારીરિક અને માનસિક બન્ને પ્રકારનું આરોગ્ય પ્રાપ્ત થાય છે અને તેના ફલસ્વરૂપ ત્યારે અમે પૂર્ણ આનંદ અને સુખી જીવનનો લાભ પ્રાપ્ત કરી શકીયે છીએ.

ગ્રાહકોને—

આ અગીઆરમો અંક આપના હાથમાં છે. હવે પછીના (બારમા) અંકે પછી આપનું ચાલુ લવાજમ પૂરું થઈ જાય છે. આપનું આવતા વર્ષનું લવાજમ મળેથી આપને નવા (આઠમા) વર્ષનો વિશાળ વિશેષાંક "ગીતાગૌરવાંક" (પાંચમો ભાગ) ભેટમાં મળશે. લવાજમ બ૨મા મહિનાની આખર સુધીમાં અવશ્ય મળી જવું જોઈએ જેથી આપને ભેટનો અંક બરાબર વેળાસર મળી જાય. એટલા માટે અમે આ અંક સાથે મનીઑર્ડર ફૉર્મ પણ જોડેલ છે.

કાગળ, શાહી અને પ્રેસને ઉપયોગી પ્રત્યેક વસ્તુ આજકાલ કેટલી મોંઘી થઈ ગઈ છે એ હવે કોઈથી અજાણ્યું નથી. આ મોંઘવારીના કારણે સર્વ સાધન સંપન્ન મોટાં મોટાં પ્રસિદ્ધ પત્રોએ પોતાના આકાર પ્રકાર ઘટાડી દીધા છે અને ઉપરથી લવાજમમાં વધારો કર્યો છે. પરંતુ અમે નથી તો એના આકાર પ્રકારમાં ઘટાડો કર્યો કે નથી લવાજમ વધાર્યું. અમે આજ પણ આપની તેવીજ સેવા કરી રહ્યા છીએ કે જેવી પ્રથમથી કરતા આવ્યા છીએ. એટલે કે નવા વર્ષમાં પણ ગયા વર્ષની માફક લગભગ ૬૦૦ પૃષ્ઠ અને પ્રથમના જેટલાજ ચિત્રો સાથેનો વિશેષાંક આપને ભેટ તરીકે આપીશું, જેમાં ૧૫ થી ૧૮ અધ્યાય સુધીનું વિસ્તૃત વ્યાખ્યાન વાંચીને આપને અવશ્ય સંતોષ થશે.

આપ સૌની સહાયતા તથા પ્રભુની કૃપાથીજ અમે આવી સેવા કરવા શક્તિમાન થયા છીએ. તો આપ પણ આપનું લવાજમ મોકલી તથા સાથે સાથે એક બે નવા ગ્રાહકો પાસે પણ લવાજમ ભરાવી મોકલવા ઘટતો પ્રયત્ન કરશો. આ પ્રભુનું કાર્ય છે તેથી પ્રભુ આપના પ્રયત્નને અવશ્ય સફળ કરશે.

લવાજમ મોકલવામાં વિલંબ કરવાથી માત્ર પસ્તાવો કરવાનુંજ હાથમાં રહેશે, કેમકે આવી મોંઘવારીમાં બીજી આવૃત્તિ છપાવવા જેવા હાલ સંજોગ રહ્યા નથી. નીચેની વાતો ઉપર ખાસ ધ્યાન આપશો—

૧—આપનું લવાજમ મોકલવામાં આ અંકમાં જોડેલા મનીઑર્ડર ફૉર્મનો અવશ્ય ઉપયોગ કરશો.

૨—મનીઑર્ડર ફૉર્મના કૂપન ઉપર આપનો ગ્રાહક નંબર તથા પૂરેપૂરું સરનામું સ્પષ્ટ અક્ષરમાં લખશો.

૪—વી. પી. મંગાવવા કરતાં મનીઑર્ડરથી લવાજમ મોકલવાનું સુગમ પડે છે. કેમકે તેથી વિશેષાંક સુરક્ષિત સ્થિતિમાં આપને મળી જશે.

૫—૩૧ ડીસેમ્બર ૧૯૪૨ સુધીમાં મનીઑર્ડર નહિ આવે તો વિશેષાંક વી. પી. દ્વારા આપની સેવામાં મોકલવામાં આવશે જેમાં આપને ખર્ચ પણ વધુ આવશે. એટલા માટે તુરત મનીઑર્ડર કરી દેવાનું ચૂકશો નહિ.

૬—અગર વી. પી. કે મનીઑર્ડરના ખર્ચથી બચવું હોય તો આપને નજીકની કોઈ ગીતાધર્મની શાખામાં લવાજમ ભરી રસીદ મેળવી લેશો અને ત્યારેજ આપનો વિશેષાંક પ્રાપ્ત કરશો. કે જેનાં નામ ઠેકાણાં આ પૂંઠાના પૃષ્ઠ પર આપેલાં છે—જ્યાં જ્યાં અમારી શાખાઓ છે, ત્યાંના ગ્રાહકો માટે પત્રિકામાં મનિઑર્ડર ફૉર્મ બીડેલાં નથી. એટલે ગ્રાહક વૃન્દ સ્થાનિક શાખાઓમાં લવાજમ ભરવાની કૃપા કરશો.

ગીતાધર્મ મેળવવાનું ઠેકાણું.

૧ મુંબઈ, ગીતાધર્મ, ઑફીસ માધવબાગ સામે, મુલજીભાઈ બીલ્ડીંગ બીજે માળે સી૦ પી૦ ટેંક.
૨ મુંબઈ, શ્રી નગીનદાસ ફૂલચંદ ચિનાઈ, ચીનાઈ બીલ્ડીંગ મસજીદ બંદર રોડ.
૩ મુંબઈ, આર૦ મદનલાલની કંપની ૭૨ અબ્દુલ રહેમાન સ્ટ્રીટ.
૪ મુંબઈ, શાહ સુંદરજી ભગવાનજી, પ્રૉ૦ મગનલાલ, સુંદરજી, માધવબાગ દરવાજા સામે લાલબાગ.
૫ અમદાવાદ, મોદી છોટાલાલ મૂલચંદ, ગીતામંદિર, આસ્ટોડિયા દરવાજા બહાર.
૬ અમદાવાદ, ડા૦ નવનીતરાય પુરૂષોત્તમદાસ વ્યાસ, ગીતા નિવાસ, સારંગપુર, તળીયાની પોળ.
૭ અમદાવાદ, પારી લાલભાઈ, નરસીભાઈ, ચોક બજાર, માણેક ચોક.
૮ વડોદરા, મણીભાઈ જસભાઈ દેસાઈ, સુલતાનપુરા,
૯ વડોદરા, સ્વામી આત્માનંદજી મહારાજ, ગીતામંદિર, ગોયાગેટ રોડ.
૧૦ વડોદરા, જગજીવનદાસ હરગોવિંદદાસ શુકસેવર, રાવપુરા રોડ, લીમડાપોળને નાકે.
૧૧ ખંભાત, શા. મંગલદાસ. મગનલાલ માસ્તર, વડા વાસુદેવની પોલ.
૧૨ સુરત, ભાનુશંકર હરજીવનશર્મા વિઠ્ઠલવાડી નાણાવટ.
૧૩ આણંદ, પટેલ ગોરધનભાઈ શામલદાસ માસ્તર.
૧૪ ભરૂચ, હીરાલાલ ઠાકોરલાલ મેનેજર જ્ઞાનોદય પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ, નવા દહેરા રોડ.
૧૫ નડીઆદ, અંબાલાલ, ડાહ્યાભાઈ, માસ્તર, લખાવાડ.
૧૬ દાહોદ, ભટ્ટ સોમેશ્વરભાઈ રાજારામ.
૧૭ નવસારી, શેઠ હરગોવિંદદાસ. કે. ગોખરૂવાલા મોટાબજાર.
૧૮ ડભોઈ, શેઠ ચુનીલાલ ગિરધરલાલ જીનવાલા.
૧૯ મહેમદાવાદ, જોશી ગટોરલાલ છગનલાલ, ઘીવાલા.
૨૦ પેટલાદ, કાછિયા મોતીભાઈ જેઠાલાલ, વડકુવા પાસે
૨૧ પાદરા, પરસોતમદાસ, મનસુખદાસ, બજારમાં.
૨૨ ગોધરા, આશાભાઈ, શ્રીરામકૃષ્ણ ઑઈલ મિલ્સ.
૨૩ સંખેડા, બક્ષી જેઠાલાલ કેશવલાલ, બજારમાં.
૨૪ કોયલી, અમૃતલાલ કાલીદાસ ઠક્કર.
૨૫ રાજકોટ, એમ. જી. કોટેચા, ટાઉનહૉલ પાસે, રમેશ સ્ટુડીયો.
૨૬ રાજપીપલા, ભગવાનજી રામદાસ સ્ટેશન રોડ.
૨૭ ઉમરેઠ, ભટ્ટ સોમેશ્વરભાઈ રાજારામ, ચોકસીની પોળને નાકે.
૨૮ ભુજ, ડા૦ બી. એન. છાયા, છાયા હોમિયોપેથિક ડિસ્પેંસરી.
૨૯ બાજવા, શેઠ હીમતભાઈ રણછોડદાસ ઠક્કર.
૩૦ અમરેલી, મુલશંકરભાઈ જગજીવનદાસ, ત્રિવેદી નાગનાથ દરવાજા.
૩૧ કલોલ, ચીમનલાલ ત્રીકમલાલ શાહ, સ્ટોરકીપર ધી છોટાલાલ મિલ્સ, લીમીટેડ.
૩૨ ભાવનગર, શેઠ મગનલાલ નાનાભાઈ મોતીબાગ પાસે.
૩૩ ધર્મજ, મણીભાઈ જી. પટેલ ગિરધર ભુવન.
૩૪ માંડવી(કચ્છ) શેઠ મથુરાદાસ પુરૂષોત્તમદાસ કચરીઓ
35 Mombasa.—Chunibhai Magganbhai. Amin C/o The Bombay. Trading Stores. P. o. Box. No. 354.
36 Johannesburg—Raojeebhai. Chunibhai. P. o. Box. No. 4838.
37 Johannesburg—Ashabbai Gordhanbhai. patel. P. o. Box. No 6220.

જેમને અહીં મનીઑર્ડર મોકલવાની ખટપટ કરવી ન હોય તેમણે ઊપર લખેલાં સ્થળોમાંથી કોઇ એકાદ સ્થળે પૈસા ભરીને વિશેષાંક પ્રાપ્ત કરી લેવા.

ઊપર લખેલાં સ્થળોએ મનિઑર્ડર ફૉર્મ ભરેલાં નથી એટલે ત્યાં જાતે જઇને લવાજમ ભરી દેવાં જોઇએ.

શ્રેયનાં સાધન

વિદ્યાના જેવું બીજું નેત્ર નથી, સત્યના જેવું તપ નથી, રાગના જેવું દુઃખ નથી તથા ત્યાગના જેવું સુખ નથી. આ લોક તથા પરલોકમાં પાપ કર્મોથી બચીને પુણ્યવાન થવું, અંતઃકરણને શુદ્ધ રાખીને સદાચારનું પાલન કરવું એ સર્વોત્તમ શ્રેયનો માર્ગ છે. દુર્લભ મનુષ્ય જન્મ મેળવીને જે પ્રાણી સંસારમાં આસક્ત રહે છે તે અત્યંત મૂઢ છે. તે દુઃખથી છૂટી શકતો નથી, કેમકે આસક્તિજ દુઃખનું કારણ છે. જે પરમ શ્રેયને ચાહતા હોય તેમણે પ્રત્યેક ઉપાય દ્વારા ક્રોધથી તપની રક્ષા કરવી જોઇએ, મત્સરથી ધનની રક્ષા કરવી જોઇએ, માન તથા અપમાનથી વિદ્યાની રક્ષા કરવી જોઇએ તથા પ્રમાદથી પોતાની રક્ષા કરવી જોઇએ. દયા પરમ ધર્મ છે, ક્ષમા પરમ બલ છે, આત્મજ્ઞાન પરમ જ્ઞાન છે. જેણે સર્વ આરંભોનો ત્યાગ કરી દીધો છે, સર્વ આશાઓનો ત્યાગ કરી દીધો છે, પરિગ્રહ (દાન લેવા) માત્રનો ત્યાગ કરી દીધો છે તથા સર્વ વાસનાઓને દૂર કરી દીધી છે, તેજ પરમ વિદ્વાન છે. ભોગ્ય પદાર્થોનો ત્યાગ કરનારો કદી શોકાતુર થતો નથી, તે દુઃખના સંતાપથી સદા બચેલો રહે છે. શમ દમને ધારણ કરનારા તથા બ્રહ્મવેત્તા પુરૂષોનો સંગ કરનારા પુરૂષોને માટે આ સર્વ શ્રેયનાં સાધન કહેવામાં આવ્યાં છે.

—મહાભારત શાન્તિપર્વ.

શ્રીમત્ પ૦ પ૦ પ્ર૦ શ્રો૦ બ્રી૦ શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરૂ મહામંડલેશ્વર સ્વામી

શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજનું ઠેકાણું—

અમદાવાદ—ગીતામંદીર આસ્ટોડીયા દરવાજા બહાર (ગુજરાત)

REGISTERED NO. A158.

श्रेय के साधन

विद्या के समान नेत्र नहीं, सत्य के समान तप नहीं, राग के समान दुःख नहीं तथा त्याग के समान सुख नहीं है। इस लोक तथा परलोक में पापकर्मों से बचकर पुण्यशील होना, अन्तःकरण को शुद्ध रखते हुए सदाचार पालन करना सर्वोत्तम श्रेयोमार्ग है। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर जो प्राणी संसार में आसक्त रहते हैं वे अत्यन्त मूढ़ हैं। वे दुःख से छूट नहीं सकते, क्योंकि आसक्ति ही दुःख का कारण है। जो परम श्रेय चाहते हों उन्हें प्रत्येक उपाय द्वारा क्रोध से तप की रक्षा करनी चाहिए, मत्सर से धन की रक्षा करनी चाहिए, मान तथा अपमान से विद्या की रक्षा करनी चाहिए तथा प्रमाद से अपनी रक्षा करनी चाहिए। दया परम धर्म है, क्षमा परम बल है, आत्मज्ञान परमज्ञान है। जिस ने सब आरम्भों का त्याग कर दिया है, सब आशाओं को तिलाञ्जलि दे दी है, परिग्रह (दान लेना) मात्र को छोड़ दिया है तथा सब वासनाओं को दूर कर दिया है वही परम विद्वान् है। भोग्य पदार्थों का त्याग करनेवाला पुरुष कभी शोकातुर नहीं होता, वह दुःख के संताप से सदा बचा रहता है। शम दम को धारण करनेवाले तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषों का सङ्ग करनेवाले पुरुषों के लिए ये सब श्रेय के साधन कहे गये हैं।

—महाभारत, शान्तिपर्व

श्रीमत् प. प. ब्र. लो. गी. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज
का पता— अहमदाबाद—गीतामन्दिर आस्टोडिया दरवाजा बहार (गुजरात)
बड़ौदा—गीतामन्दिर, गोयागेट रोड, (गुजरात)

मा॰क॰ न॰

संस्थापक—श्रीमत् प प म लो गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज

गीता धर्म

१५४०९

वर्ष ७

अङ्क १२

B K Mitra

यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

जयति मनहरन सुखभवन दुखदमन
अगम ऐश्वर्य सकलेश स्वामी।
जयति व्रजराजसुत महाअद्भुतगते
जयति परब्रह्म सब अन्तर्यामी ॥

वार्षिक मूल्य—
भारत में ४)
विदेश में ६॥)

भला कहा रीझे नहीं, बुरा कहा न खिझंत।
'रूपरसिक' सो जानिए, आनंदरूपी संत ॥

साधारण प्रति
भारत में ।)
विदेश में ।=)

श्री गोवर्द्धनभाई मंगलभाई पटेल द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में मुद्रित और प्रकाशित।

विषयसूची [हिंदीविभाग]

[ગુજરાતી વિભાગ]

पहले इसे पढ़िए—

इस अङ्क के साथ गीताधर्म का सातवाँ वर्ष और साथ ही सातवें वर्ष का आप का चंदा समाप्त हो रहा है। आगामी अङ्क 'गीतागौरवाङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा जिस में गीता के सोलहवें अध्याय से अठारहवें अध्याय तक पर जगद्गुरु स्वामीजी महाराज का विस्तृत भाष्य और व्याख्यान संग्रहीत होगा, यह आप को मालूम ही है।

इस विशेषाङ्क की रुचिरता, उपयोगिता, और महत्ता के सबन्ध में हमें अब कुछ नहीं कहना है, क्योंकि वह बात अब आप से छिपी नहीं है। इस लिए हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि आप उस विशेषाङ्क को ठीक समय पर प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं, तो १९४३ के अपने चंदे का चार रुपया मनीआर्डर द्वारा ५ जनवरी, १९४३ तक गीताधर्म कार्यालय में अवश्य भेज दें। इस काम में आप को विशेष उद्योग न करना पड़े, इसी लिए हम ने गत (ग्यारहवें) अङ्क में छपा हुआ मनीआर्डर फार्म नत्थी कर दिया था। अतः प्रार्थना है कि अगर अभी तक आप ने उस का उपयोग न किया हो, तो अब से भी ध्यान दीजिए और अपना चंदा शीघ्र भेज दीजिए। अथवा अपने नगर के गीताधर्म की शाखा में ४) जमा कर दीजिए।

आप से विशेष प्रार्थना हम यह करना चाहते हैं कि जैसे आप ने गीताधर्म को स्वयं अपनाया है वैसे ही अपने दो चार मित्रों को भी गीताधर्म का ग्राहक अवश्य बनाइए। इस भयंकर महँगी के जमाने में जो हम एकरूप—बिना गीताधर्म को सकुचित किये और बिना चंदा बढ़ाये—आप की सेवा करते जा रहे हैं वह आप की इसी सहायता के बल पर। अतः गीताधर्म को अपना जान कर आप दो चार ग्राहक बनाने की अवश्य कृपा करें। गीताधर्म का प्रचार कोई व्यापारिक कार्य नहीं, प्रभु की सेवा और पुण्यप्रचार का कार्य है। इस लिए जो इस की वृद्धि में सहायक होंगे उन्हें प्रभु बढ़ायेंगे इस में जरा भी संदेह नहीं।

चंदा भेजने में विलम्ब न करें। अन्यथा, कहीं विशेषाङ्क समाप्त हो गया और बाद को आप का चंदा आया, तो बेकार ही होगा, क्योंकि ऐसे जमाने में विशेषाङ्क के पुनः प्रकाशन की कोई भी आशा नहीं है। नीचे लिखी बातों पर ध्यान दें—

१—अपना चंदा भेजने में इस अङ्क में नत्थी किये हुए मनीआर्डर फार्म का अवश्य उपयोग कीजिए।

२—मनीआर्डरफार्म के कूपन पर ग्राहक नंबर के साथ अपना पूरा पता साफ साफ लिखिए।

३—आप चंदा भेज चुके हों, तो इस फार्म पर अपने मित्र का पता ठिकाना लिखकर उन से ही चार रुपये भेजवाने का अनुग्रह कीजिए।

४—वी० पी० मँगाने की अपेक्षा मनीआर्डर से चंदा भेज देना अधिक अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार आप का विशेषाङ्क सुरक्षित रूप से आप को प्राप्त होगा।

५—५ जनवरी ४३ तक मनीआर्डर न आने पर आप का विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा आप की सेवा में भेज दिया जायगा जिस में आप के अधिक पैसे खर्च हो जायँगे। इस लिए जहाँ तक शीघ्र मनीआर्डर अवश्य भेज दें।

६—यदि आप ने मनीआर्डर भेज दिया हो और भूल से आप के नाम वी० पी० चली गई हो, तो आप वी० पी० लौटायें नहीं, वहीं अपने पोस्ट आफिस में रोक रखें और हम को सूचना दें। हम पोस्ट आफिस से प्रबन्ध करके आप को निःशुल्क वी० पी० दिला देंगे जिस से हमारा और आप का व्यर्थ खर्च बच जायगा। अथवा किसी मित्र को ग्राहक बनाकर वी० पी० उन्हीं को दिलवा सकते हैं।

७—यदि मनीआर्डर और वी० पी० खर्च दोनों से बरी रहना चाहते हैं, तो अपने निकट की गीताधर्म शाखाओं में चंदा जमा करके रसीद ले लीजिए और वहीं से अपनी प्रति प्राप्त कीजिए। शाखाएँ निम्न लिखित स्थानों में हैं—

१ कलकत्ता, सेठ श्री रामप्रसादजी मूँदड़ा, ३२ आर्मेनियन स्ट्रीट।
२ कलकत्ता, एल० के० मेघानी, १४ अमरतला स्ट्रीट।
३ नागपुर, लाला नन्दलाल भैरूलाल, सीताबर्डी।
४ जबलपुर, लाला रामचन्द्र रईस, मुरादमगंज।
५ अकोला, सेठ जगन्नाथ छावसरिया।
६ करोंची, रतीलाल नरसेजी कोटक, प्रिसेप स्ट्रीट।
७ किशनगढ़, बाबू उमराव बिहारी माथुर स्टेट मेंबर।

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ } दिसम्बर, १९४९, काशी { अङ्क १२

श्री गीतामहिमा

हरिमुखपङ्कजप्रकट, पार्थ उद्बोधनकारिणि ।
व्यास महामुनि रचित महाभारतसंचारिणि ॥
द्वैत दैत्यदलदारुणि, निखिल श्रुतितत्त्वप्रचारिणि ।
ब्रह्मात्मैक्यपियूषप्रवाहिनि, भवभयहारिणि ॥
जय दयामयी गीते जननि, महामोहतमनाशिनी ।
जय जयति दास 'बलवीर' हिय ज्ञानदिनेशप्रकाशिनी ॥

—रा०—कुँवर बलवीरसिंहजी ।

गीता के अध्यायों का नामकरण

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

यह विषय अत्यन्त महत्त्व रखता है, यहाँ तक कि उस का गीतासिद्धान्त से घनिष्ठतम संपर्क है। तथापि सर्वसाधारणों में—दिग्गज पण्डितों से लेकर ग्रामीण अज्ञों तक—यह समझ रूढ है कि गीता-ग्रन्थ के लिपिकारकों ने अध्यायों को मनमाना नाम दिया है। इस का मुख्य कारण तो गीतातात्पर्य का अज्ञान है ही। लेकिन अन्य एक गौण कारण भी है और वह भी उतना ही बलवत्तर है। वह यह कि परंपरागत गीता की हस्तलिखित प्रतियों में किंचिन्मात्र अनमेल देखने से परिवर्ती लेखकों ने समझा होगा कि यह बात अकिंचित्कर है, और इस के फलस्वरूप उन के भी पश्चात् होनेवाले लिपिकारों में अराजकता स्वाभाविक फैल गई और आज उपलब्ध पुस्तकों में प्रायः किसी का किसी से संपूर्णतया ऐक्य नहीं।

मेरी समझ में अगर अध्यायों का विषय निश्चित कर दिया जाय तो उन के नामकरण में भी—भाषा-शैथिल्य नैरपेक्ष्य से—एकसूत्रता आ सकती है, और गीता के पिण्डितार्थविषयक विप्रतिपत्ति मिलाने में भी बहुत सी सहायता मिलेगी।

इस बारे में "इदम् इत्थम्" करने की मेरी आन्तरिक इच्छा होने पर भी—

"कृष्णो जानाति वै सम्यक्"

यह ऋषि मुनियों की राय स्मरण करके इस विषम साहस में प्रवृत्ति नहीं होती तथापि—

"अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः"

अथवा गीतोक्ति के अनुसार—

"कर्मज्यायो ह्यकर्मणः"

—गी० ३।८

इस न्याय से एतद्विषयक एक प्रयत्न मेरे अवलोकन में आया है जिस से मैं सर्वथा सहमत हूँ। पाठक पाठिकाओं के लाभार्थ उस को आगे अपने अभिप्रायानुसार लिखता हूँ। उस का मनन करने से गीतार्थ समझने में सब का बड़ा उपकार होगा।

प्रथमाध्याय का नाम पुष्पिका में "अर्जुनविषादयोग" ऐसा दिया है। इस में अर्जुन शब्द का स्वारस्य ठीक नहीं जँचता। गीता कहने के लिए संजय को प्रवृत्ति देनेवाला धृतराष्ट्र शोकग्रस्त ही था। क्योंकि युद्ध के दसवें दिन भीष्मपितामहजी के पतन का वृत्तान्त सुनकर यह महाप्रश्न पूछा गया।

और दुर्योधन को भी शोक हुआ था। यह बात "तस्य संजनयन् हर्षम्" इस पाद से प्रमाणित होती है।

इस प्रकार तीनों को शोक होने से एक ही का नाम लेना तर्कशुद्ध नहीं मालूम पड़ता।

इस पर कहा जा सकता है कि जो विषय अधिकता से रहता है उसी पर से अध्याय का नाम पड़ता है।

लेकिन यह कारण भी संतोषजनक नहीं। किस का शोक ज्यादा, किस का कम यह नापने का कोई तोल माप नहीं है।

"योग" शब्द की भी समालोचना आवश्यक प्रतीत होती है। गीता का प्रतिपाद्य विषय योग है इस में भगवान् की, व्यास की (पुष्पिका में "योगशास्त्रे" यह पद) और सञ्जय की एक सम्मति है। यथा—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

—गी० ४।१०

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्॥

—गी० १८।७५

तथापि 'योग' विषयक ग्रन्थ में प्रत्येक अध्याय के नाम में "योग" शब्द रहना चाहिए ऐसी बात नहीं कही जा सकती।

समझ लीजिए किसी ने पाकशास्त्र का ग्रन्थ रचा। उस में "तण्डुलप्रक्षालनपाको नाम प्रथमोऽध्यायः" ऐसा कहना कहाँ तक सार्थक होगा।

"विषादयोग" कहने में यही आपत्ति होगी। तिस पर भी इस का समर्थन योगदर्शन की परिभाषा की सहायता से कथंचित् हो भी सकता है।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"

यो० द० स० पा० सू० २

क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त ये तीन भूमिका परमार्थतः योगोपयोगी न होने पर भी "योग" पदवाच्य जरूर हैं। प्रथमाध्याय में शोकग्रस्त अर्जुन के इन्हीं अवस्थाओं का चित्रण है।

फलतः पहले अध्याय का नाम सर्वांश में नहीं तो बहुतांश में मेरा सम्मत है।

द्वितीय अध्याय का प्रचलित नाम "साङ्ख्ययोग" है। यह नाम सर्वथा यथार्थ है। अर्जुन का स्पष्ट पूछा हुआ प्रश्न एक ही है—

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।

—गी० २।७

प्रथमाध्याय में और (इस श्लोक को छोड़के) द्वितीय के आठ श्लोकों में अर्जुन का सब रोना गाना ही है। तथापि योगाधिकार की सीढ़ी पर उठने का काम बड़ी कुशलता से ग्रन्थकार ने इस में दिखाया है। पश्चात् भगवान् का प्रतिवचन शुरू हुआ। अर्जुन जैसा श्रेय चाहता था उस का स्वरूप भी उस ने भगवान् से कह दिया—

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्यात्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।

—गी० २।८

शोक का कारण भी बता दिया—

पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः।

—गी० १।३६

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्॥

—गी० १।४५

अन्त में भगवान् ने भी सब व्याख्यान का उपसंहार करते हुए उसी का उपाय बताया है—

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

—गी० १८।६६

लेकिन श्रुति कहती है—

तरति शोकमात्मवित्।

सो १८।६६ के पूर्वार्द्ध में भगवान् ने जो कहा "मामेकं शरणं व्रज" इस का और श्रुतिवचन का एक ही तात्पर्य हुआ। दशमाध्याय में भगवान् आत्मा को अपनी प्रधान विभूति बतलाते हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

—गी० १०।२०

सब भूतों में एक ही आत्मा है और वह मैं अर्थात् ब्रह्म है। ब्रह्मनिर्वाण ही परम श्रेय है जिस का उपाय

ीय अध्याय में कहा है। फलतः यहीं पर गीता ाप्त है। ब्रह्मविद्या और सांख्य एक ही बात है।

ज्ञानं महद् यच्च महत्सु राजन्
वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे।
यच्चापि दृष्टं विविधं पुराणे
सांख्यागतं तत्सकलं नरेन्द्र॥

सांख्यदर्शनकार ने ज्ञान की परा कोटि दिखाई। क्योंकि पुरुष और प्रकृति का अन्तर दिखाने में रुप का असल स्वरूप कहना पड़ता है, और पुरुष ह्मस्वरूप है यह कहने से वह उपनिषदों का तिपाद्य विषय हो जाता है। ब्रह्म तो—

'एकमेवाद्वितीयम्'

है, ऐसा श्रौत सिद्धान्त है। तब क्या सांख्य का भी यही मत है। यह शङ्का आनुषङ्गिक होने पर भी उस का समाधान यहाँ देना उचित समझता हूँ। सो पुरुषनानात्व का खण्डन सांख्यसूत्र के आधार से ही किया जाता है।

जन्मादि व्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्।

सां०, द०, प्र०, सूत्र १४१

आदि पद से व्याधि, जरा, मृत्यु वगैरह समझना। पुरुष एक ही हो तो एक का ही जन्मादिभोग होगा। लेकिन बहुपुरुषों का जो देखने में आता है उस की व्यवस्था होना जरूर है। इसी के कारण पुरुषों का नानात्व मानना पड़ेगा। परंतु वस्तुतः पुरुष ब्रह्मरूप होने से एक ही है, बहु नहीं।

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः।

१।१५०

देह नाना होने पर भी देही एक ही है। सूत्र का अर्थ स्पष्ट है।

उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान्।

१।१५१

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः।

१।१५२

"निर्गुणं गुणभोक्तृ च" इत्यादि परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले गीतोक्त धर्म विवर्तवाद का आश्रय करने से सुसंगत ही है। पुरुष एक ही है, नाना नहीं।

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात्।

१।१५३

कर्तृत्व भोक्तृत्वादि प्रकृति के नाना धर्म हैं। उन का आरोप पुरुष में करने से नानात्व सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह (पुरुष) आत्मरूप एक ही है।

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात्।

१।१५४

श्रुति में नानात्व का उपदेश जातिपरत्वेन (देव मनुष्यादि) ज्ञेय है, आत्मा एक ही है।

यहाँ प्रसंगतः अवश्य ज्ञातव्य एक बात कहना यह है कि सूत्रों का अर्थ स्वतन्त्रभाव से किया है। वस्तुतस्तु वे गीता के आश्रय से रचित हैं। समयान्तर में उन श्लोकों का संबन्ध दिखाया जायगा।



श्री श्री रामकृष्णदेवजी की अमृतवाणी

[सम्पादकर्ता—स्वामी श्री चिन्मयानन्दजी महाराज]

"संसाराश्रम" (गताङ्क से आगे)

१३—संसार में रह जाने से ही ऐसा हुआ करता है, कभी ऊँचे में उठा, तो कभी नीचे गिरा। कभी खूब भक्ति भाव होता है, तो फिर वह कम हो जाता है। विषयों को लेकर रहने से ऐसा होता है। संसार में भक्त भी कभी ईश्वर का चिन्तन, हरिनाम भजन करते हैं, तो फिर कभी विषय में मन दे बैठते हैं। जैसे साधारण मक्खियाँ कभी मिठाइयों पर बैठती हैं, तो कभी घाव या मल पर भी बैठती हैं।

१४—तुम तो स्वयं देख रहे हो कि संसार अनित्य है। इसी मकान को देखो न! कितने लोग आये और कितने गये! कितने पैदा हुए और कितने शरीर छोड़ गये। संसार अभी है तो अभी नहीं, अर्थात् अनित्य है। जिन के लिए इतना 'मैं मेरा' (मोह) कर रहे हो, आँखें मूदते ही कोई नहीं। (बाल बच्चे) कोश के कीड़े (रेशम आदि के) अपने ही जाल में आप मरते हैं। इसी तरह संसार मिथ्या अनित्य है, उन को (ईश्वर को) जानकर संसार किया जाय, तो अनित्य नहीं है। (अर्थात् ज्ञानी तथा प्रभु के सच्चे भक्त के लिए संसार अनित्य अर्थात् बन्धनों में फँसानेवाला नहीं है।)

१५—संसार में आसक्त बद्ध जीवों को होश नहीं रहता। वे जाल में फँसे हुए ही हैं, पर उन को यह ज्ञान नहीं कि वे जाल में बद्ध हुए हैं। हरिकथा (ईश्वरीय प्रसंग) इन के सामने होने से, वे वहाँ से (उठ) चले जाते हैं। वे कहते हैं—"हरिभजन मरने के समय होगा, अभी क्यों?" (अर्थात् भगवद्भजन बुढ़ापे में किया जायगा, अभी तो सांसारिक कर्म करना ही श्रेष्ठ कर्तव्य है।) फिर और बाल बच्चों की याद कर के रोते और कहते हैं—, "हाय! मेरे मरने से इन का क्या हाल होगा?" जिस (कर्म) से इतने दुःख भोगते हैं, फिर वे वही करते रहते हैं। जैसे ऊँट के मुँह में से कटीली घास खाते खाते रगड़ खाकर खून गिरता है, फिर भी वह कटीली घास नहीं छोड़ता। बद्ध जीव अपने तथा परिवार के पेट के लिए दासत्व करते हैं, और मिथ्या कहना, प्रवञ्चना (ठगपना), खुशामद कर धन की कमाई करते हैं। जो ईश्वरचिन्तन करते हैं, ईश्वरीय ध्यान में मग्न रहते हैं, बद्ध जीव उन्हें पागल कहकर उन की हँसी करते हैं। संसार में बद्ध जीव मृत्यु के समय भी संसार की बात ही कहते हैं। बाहरी माला जपने से, गङ्गास्नान करने से या तीर्थों में जाने से क्या होगा? संसार की आसक्ति अन्दर रहने से मृत्युकाल में वही दीख पड़ती है। शुकपक्षी (तोता) साधारण समय में तो 'राधाकृष्ण' कहते हैं, बिल्ली के पकड़ने पर उन के मुख से अपनी ही बोली निकलती है—टेंटें करते हैं। गीता में कहा है—'मृत्युकाल में जो सोचोगे, परलोक में वही होगे।' भरत राजा ने 'हिरन' 'हिरन' स्मरण कर देहत्याग किया था, इस लिए हिरन होकर पैदा हुए। ईश्वर का चिन्तन कर देहत्याग करने से ईश्वर का लाभ होता है, फिर इस संसार में नहीं आना होता।

१६—लज्जा, घृणा और भय इन तीनों के रहने तक (ईश्वरलाभ) नहीं होता है। लज्जा, घृणा, भय तथा जाति और अभिमान ये सभी जीव के लिए पाश (फँसानेवाली वस्तुएँ) हैं। इन सब के छूटने से ही उस को संसार से मुक्ति होती है।

२७—नहीं; तुम लोगों को सब त्याग करना क्यों होगा ?······तुम लोग संसार कर रहे हो, इस में दोष नहीं है; पर ईश्वर की ओर मन रखना होगा। नहीं, तो नहीं होगा। एक हाथ से कर्म करो और एक हाथ से ईश्वर को पकड़े रहो। कर्म पूरे होने से, दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ोगे।

२८—साथ ही साथ विचार करना खूब आवश्यक है। कामिनी काञ्चन अनित्य हैं। ईश्वर ही एकमात्र नित्य वस्तु है। रुपये से क्या होता है?—भात होता है (मिलता है), दाल होती है, कपड़े होते हैं, रहने की जगह होती है बस; इतने तक। परंतु इस में भगवान् का लाभ नहीं होता है। इस लिए रुपया (धन) कभी जीवन का उद्देश्य (रूप) नहीं हो सकता। इसी का नाम विचार है। और सुन्दर देह में ही क्या है?—विचार करो।

२९—जो 'संसार में धर्म, संसार में धर्म' ही श्रेष्ठ कहा करते हैं, वे यदि एक बार भगवान् का आनन्द पावें, तो उन को और कुछ अच्छा नहीं लगता, काम काज की सब ऐंठ कम हो जाती है, क्रमशः ज्यों ज्यों आनन्द बढ़ता जाता है, त्यों त्यों कर्म और नहीं कर सकते,—केवल उसी आनन्द को ढूँढ़ते रहते हैं। भगवदानन्द के पास विषयानन्द क्या चीज है! एक बार भगवदानन्द का स्वाद मिलने से, उसी आनन्द के लिए वे भाग दौड़ते हैं, तब संसार चाहे रहे चाहे जाय।

३०—जो उन को पकड़े रहते हों, (अर्थात् जो ईश्वर की शरण में रहते हों) वे इस विषम शोक में भी एकदम से डूब नहीं जाते; जरा सा झोंका खाकर ही सँभल जाते हैं। गङ्गाजी में जहाजों के जाने से धीवरों की डोंगियाँ क्या करती हैं? ख्याल होता है कि मानो वे एकबारगी डूब गई और सँभल नहीं सकतीं; कोई कोई तो उलट ही गई। फिर बड़ी बड़ी हजारों मन ढोनेवाली किश्तियाँ दो चार बार हिल डोलकर जैसी की तैसी स्थिर हो गई; किन्तु दो चार बार उन्हें भी झोंका खाना ही होगा। कितने दिन के लिए ही संसार के पुत्र आदि के साथ संबन्ध है? मनुष्य सुख की आशा से संसार करने जाते हैं,—शादी की, लड़के हुए, वे लड़के बड़े हुए, तो उन की भी शादी करवाई—कुछ दिन तो अच्छे बीतें। बाद को एक बीमार पड़ा, दूसरा मर गया या कोई बह गया (कुमार्गी हुआ), तो (इस की) भावना-चिन्ता में से मनुष्य एकदम व्यतिव्यस्त (व्याकुल) हो जाया करते हैं।

३१—साधुसंग सर्वदा करना आवश्यक है; साधु ईश्वर के साथ आलाप करा दे सकते हैं। जरा कष्ट कर सत्संग करना चाहिए। घर में सिर्फ विषयों की बात होती है। रोग तो लगा हुआ ही है। पक्षी ठौर पर बैठकर तब 'राम राम' बोलते हैं; वन में उड़ जाने पर फिर टें टें करते हैं।

३२—संसार में होगा क्यों नहीं? सर्वदा ही गुरु का संग, गुरु की सेवा और साधुसंग आवश्यक है। एकान्त में रात दिन उन का चिन्तन; नहीं तो साधुसंग चाहिए। मन अकेले रहने से ही क्रमशः शुष्क हो जाया करता है। एक घड़े में जल यदि अलहदा रख छोड़ो, तो क्रमशः सूख जायगा। किंतु गङ्गाजी में यदि उस घड़े को डुबा रखोगे, तो वह (घड़े का जल) नहीं सूखेगा। लोहार का लोहा आग में खूब लाल हो गया, फिर (आग से) अलाहदा कर रखो, तो लोहा ज्यों का त्यों काला ही हो जाता है। इस लिए लोहा को बीच बीच में (कभी कभी) आग में देना चाहिए। (अर्थात् लोहे के आग के संग की तरह संसारियों को कभी कभी साधुसंग अवश्य करना चाहिए।)

३३—लोगों के साथ निवास करना हो, तो दुष्ट लोगों के हाथ से अपनी रक्षा करने के लिए कुछ तमोगुण दिखाना जरूरी है। पर दूसरा अनिष्ट (बुराई) कर बैठेगा, तो बदले में उस का अनिष्ट (बुराई) करना उचित नहीं है।

(क्रमशः)

युद्ध का समय है

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी संन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

कैसा समय आ गया, कहीं भी शान्ति संतोष की बातें नहीं सुनाई देती। जहाँ जाते हैं, जिस से बातें करते हैं वहाँ बजाय आनन्दप्राप्ति के यह प्रतीत होता है कि कोई हमारे ऊपर गरम तेल छिड़क रहा है। आजकल जिस वस्तु को छू दो उसी से लड़ाई झगड़े की गन्ध आने लगती है। जिस वस्तु को चाहो, चाहे वह हमारे जीवन के लिए कितनी ही आवश्यक क्यों न हो, ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती। मिलती भी है तो बड़ी महँगता से, तथापि विकृताकृति में। चीनी, घी, तेल के भाव पर आने चाहते हैं, क्योंकि ये असली रूप में देखने को भी नहीं मिलते। सुवर्ण, चाँदी तो शायद रत्तियों के हिसाब से हस्तगत हों तो हों। सुनते हैं वस्त्र, नमक, कागज तो मानो देश-निकाले के नियम में आ गये। अन्न का रोना तो सभी को रोते, सुनते, देखते हैं, जब इन सब का कारण पूछा जाता है तो उत्तर मिलता है कि 'लड़ाई का समय है।'

पहले प्रवास के लिए हमें बड़े बड़े भड़कीले, चमकीले, रंगीन, संगीन, विज्ञापनों से प्रोत्साहन किया जाता था, अब वह सब सामग्री हमें घर से पाँव धरने की रोक में प्रयुक्त हो रही है। जो वस्तु यहाँ पड़ी सड़ रही है वह बाहर नहीं जा सकती, और जिस के बिना यहाँ के लोगों का काम चौपट हो रहा है वह चीज बाहर से यहाँ नहीं आ रही है। हमारी बगल में बड़ी से बड़ी घटना घट जाती है, कई महत्त्वपूर्ण कार्य हो जाते हैं, पर हमें उस का कुछ भी समाचार नहीं मिलता। न विदेश गये आप्तजनों के संदेसे वक्त पर पहुँचते हैं। जब इस की वजह का सवाल किया जाता है तो जवाब मिलता है कि 'युद्ध का मौका है।'

जो हो रहा है, जिसे सब भोग रहे हैं, उस का पृष्टपेषण करके अधिक कहना सुनना बेकार है। हम सुनते हैं, युद्ध हो रहा है। पहले सुना था हजारों कोस की दूरी के परदेश में वीर लोग अपने खून की पिचकारी से फाग खेल रहे हैं। किंतु अब सुनते हैं हमारे देश के दरवाजे पर रण के बाजे बजने शुरू हो गये हैं। बस, हमें और अन्य लोगों को यही युद्ध का स्वरूप मालूम है। एक सिद्धाश्रमस्थ संन्यासी ने बताया कि तुम लोग बाहरी युद्ध क्या देख रहे हो, यह तो तुम्हारे घरों में तुम्हारे शरीर में भी हो रहा है, पर लोग समझ नहीं रहे हैं, यद्यपि उस की आँच में सब जले जा रहे हैं।

जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च।
जिताश्चौरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषाः कलौ॥

अर्थात्—इस कलिकाल में याने इस काले जमाने में अधर्म धर्म से लड़ रहा है, जीत अधर्म की हो रही है। चोरों, उपद्रवियों तथा चालाकों के मुकाबले में राजा की—शासक की सारी शक्ति व्यय हो रही है, फिर भी लड़ाई में जीत तस्करों की हो रही है। स्त्रियाँ पुरुषों से झगड़कर आजाद हो तितली की तरह हवा में उड़ने पर उतारू हैं। इस भयानक उत्ताल तरङ्गों के थपेड़े से भारत का पोत समुद्र में डूबकर गारत होने जा रहा है। इसी लिए सर्वगुणसंपन्न सर्वोपरि विराजमान श्रीमान् भारतदेश नितान्त आर्त

हो रहा है। इसी से इस की परोपकारवृत्ति पर स्वार्थपरता ने अपना अधिकार जमा लिया है। धैर्य को आलस्य ने न मालूम कहाँ भगा दिया। सावधानी और असंशय के स्थान को वहम तथा संदेह ने अपने अधिकार में कर लिया है। विद्वत्ता तथा सरलता को मूर्खता तथा चालाकी समाप्त किये जा रही है। न्यायनिपुणता को निर्दयता चूस रही है। वाञ्छनीय स्वतन्त्रता को गुलामी की जंजीरों ने जकड़ रखा है। वीरता को अकर्मण्यता ग्रास किये जाती है। क्षमा को भीरुता ने खदेड़ दिया है। चतुराई को कुटिलता भ्रष्ट किये डालती है। स्वाभिमान को चापलूसी नष्ट कर रही है। साधुता को वञ्चकता कष्ट दे रही है। अब भारत 'अकुतोभयः' नहीं रह गया है। न यहाँ अब 'साधवः सन्तु निर्भयाः' के ही दौरदौरे देखने में आते हैं। 'शान्तं शिवं सुन्दरं' के भाव स्वप्न में भी नहीं दिखाई देते। अब ईख की छाया में बैठकर धान की रखवाली करनेवाले सरल ग्रामीण 'सजला सफला शस्यश्यामला' आदि गीत गाना ही भूल गये। इस कार्तिक मास तत्रापि पूर्णिमा को ब्राह्मणों की आज्ञा से हजारों लोग गङ्गास्नान किया करते थे। क्षत्रिय प्रजा को ऐसे मौके पर संकटों से बचाया करते थे। देश के बाजारों और खजानों को वैश्य लोग ऐसे समय धन धान्यपूर्ण कर देते थे। और शूद्र सेवा-भावप्रेरित हो मौका आने पर कुछ भी कसर उठा नहीं रखते थे। इन सब के सहयोग से जनता का दुःख क्लेशकर नहीं होता था।

पहले देश में युद्ध की फसिल बारहमासी नहीं होती थी। कभी युद्ध होते थे तो वे वीर योद्धाओं तक ही सीमित रहते थे। साधारण प्रजा से उन का कोई संबन्ध न होता था। बाजे मौकों पर तो प्रजा घमासचीनों की तरह अछूती बची रहती थी। कभी हुआ भी तो विजेता द्वारा लूटपाट हो गई। तैमूरलङ्ग जैसे कसले आम की मूर्खता तो कभी कभी हो जाती थी। कभी युद्ध होता था तो वह कुछ ही दिन में अपना निर्णय करके ऐसे बीत जाता था जैसे तुफान एक तरफ से आकर दूसरी ओर को निकल जाता है। पहले के युद्ध हार जीतमात्र से संबन्ध रखते थे। उस में बहुत से धर्मयुद्ध हुए हैं। किंतु आजकल की लड़ाई जीवन मरण का प्रश्न हल करने के लिए लड़ी जाती है। आजकल के लड़ाके छल, कपट, अन्याय आदि खोटे उपायों से एक दूसरे को जगत् पृष्ठ पर से अशुद्ध अक्षर की तरह सदा के लिए मिटा देने को किये जाते हैं। एक जाति जो प्रबल होगी दूसरी को मिटा सकती है। उस का सर्वस्व स्वतन्त्रताहरण करके उसे पाँवों तले कुचल सकती है। इसी तरह कई जातियाँ मिट गई हैं और बहुतों ने अपने पाँव कबर में लटका रखे हैं। और कुछ के 'रामनाम सत्य है' की तैयारी हो रही है। हूण, शक, हबसी, आदिद्रविड़, लाल इण्डियन आदि जातियाँ कहाँ हैं?। हैं, तो उन का क्या हाल है? किंतु मिटानेवाले को यह न भूल जाना चाहिए कि यह किसी के विनाश का कार्य या मनोरथ प्रकृति को अप्रसन्न करने का हेतु है। जो किसी को मिटाना चाहता है वह खुद मिटकर रहेगा। पाण्डवों ने चुन चुनकर कौरवों को परलोक भेज दिया, पर अपने आप उन पर जो बीती उसे जगत् जानता है। कहाँ हैं आज उन के वंशधर जो भारतदेह में होनेवाले युद्ध के दर्द पर मेल के तेल की मालिश करें।

यदि अभी भी भारत अपनी भूल सुधार लेता तो गनीमत थी। अभी इतना काम नहीं बिगड़ा है जो सँभालने पर साध्य न हो सके। पर है काम कठिन, किंतु कठिनता के हल करने से ही

सुस्वादु फल मिलता है। कठिनता यह है कि महाभारतयुद्ध के बाद से आज तक देश में युद्ध की बाढ़ सी आ गई है। लड़ाई की परम्परा का अन्त ही नहीं आ रहा है। अर्जुन ने श्री कृष्णचन्द्र के सामने युद्धजन्य वे अड़चनें उपस्थित की थीं जिन का गीता के पहले अध्याय में उल्लेख है। पर श्री कृष्णजी ने उन पर ध्यान नहीं दिया, जिस से वह सर्वनाशी अवाञ्छनीय युद्धमहण टल जाता। पर परिस्थिति के कारण वे ऐसा कर नहीं सकते थे। वे वैद्यराज थे, वे भारत की नाड़ी पहचानते थे। उस समय के भारतीय समाज में अनैतिकता, स्वार्थ और बुद्धिमान्द्य ऐसा रोग लग गया था कि उस की औषधि सिवाय 'युद्ध' के और कोई हो नहीं सकती थी। दर असल भगवान् को गन्दी समाज पसंद नहीं थी। वे जानते थे कि प्रकृति चरित्रहीनों को जीने नहीं देती। उस समय के बड़े बड़े महापुरुषों, योद्धाओं तथा वृद्धों के सामने भरी सभा में एक युवती स्त्री को नग्न करने का वीभत्सकाण्ड बहुत भारी दुश्चरित्रता का द्योतक है। उस समय भाइयों को 'सूच्यग्रं न दास्यामि विना युद्धेन केशव!' की घोषणा के साथ वृत्ति प्रदान न करने की दुर्नीति, कितनी बुरी बात है! जूआ खेलने के बहाने धोखा देना तो और भी बुरा उदाहरण उपस्थित करता है। उस समय यदि ऐसा हुआ तो उन घटनाओं के सूत्रधारों को युद्ध के जलसे में मृत्यु का पारितोषिक दिया जाना ठीक ही हुआ, पर उस समय तो जो हो गया, वह अवाञ्छनीय हुआ। किंतु आजकल युद्ध का सिलसिला पहाड़ी नदी की तरह निरन्तर क्यों जारी है? प्रतीत होता है आज भी हम स्त्रीजाति की प्रतिष्ठा को कायम रखने के योग्य नहीं हैं। भाइयों के हक को ठुकरा देना आज भी हमारे लिए साधारण सी बात है। दलितों की आहें आज भी हमें बेअसर अथच दरद मालूम देती है। हालाँ कि एक आह में सौ भट्टियों से अधिक आँच है। और विधवाओं की हाय तथा अनाथों की चीख मानो आकाश में चिड़िया चुहँक 'गई सी प्रतीत होती है' यद्यपि उन में बड़े बड़े राजप्रासादों के धराशायी करनेवाले बम गोलों से भी अधिक भयानकता है।

रावण ने किसी समय सीता का अपहरण किया था। उस घटना को लाखों वर्षों का जमाना बीत गया। पर आज भी लोग पुस्तकों में उस की निन्दा का वह कारनामा बड़े चाव से पढ़ते सुनते हैं। यहीं तक नहीं, प्रतिवर्ष रामलीला का स्वाग या नाटक रचकर लोग रावण और राम की लड़ाई कराकर दशहरे के दिन मृत्युदण्ड दे, परलोक में पहुँचाने का अभिनय किया करते हैं और खुद तमासबीन के रूप में जज बनकर यह कहते हुए फैसला देते हैं कि "ऐसे को यह दण्ड मिलना उपयुक्त ही हुआ है क्योंकि इस ने एक सती स्त्री का अपमान किया था देवता तथा ऋषियों को पीड़ा पहुँचाई थी।" किंतु वे अभिनेता लोग अपने कर्तव्यों की ओर ध्यान नहीं देते। क्या वे स्त्रीजाति का सम्मान करते हैं? क्या वे 'विद्वांसो वै देवा' याने देवतास्वरूप विद्वानों की व्यवस्था का उल्लंघन नहीं करते? क्या वे ब्रह्मनिष्ठ सन्यासियों के उपदेशानुसार चलते हैं? यदि यह सब कुछ नहीं होता तो फिर लोगों का क्या हक हासिल है कि वे दूसरे के छिद्रों का मशाल की रोशनी में अन्वेषण करें? और किसी प्रतिष्ठित पुरुष की भूल का तिल से ताड़ बना देने पर हररोज तुले रहें।

हम युद्ध की बात कह रहे थे, हम ने यहाँ तक यह कहा है कि हमारे प्रत्येक कार्य युद्धस्थल हो रहे हैं। जाति और व्यक्तियों की तो लड़ाई होती है।

पर हमारे शरीर में द्वन्द्वयुद्ध मचा हुआ है। जिस ने जीवन तो बहुत दिन से धारण कर रखा है, पर किया कुछ भी नहीं। जिस ने मनुष्यजीवन में शक्ति तथा बुद्धि पाकर यों ही बरबाद कर दिये, जैसे कोई अनभिज्ञजन दूध से नापदान धो दे। जो उस के शरीर के कुरुक्षेत्र को देखो तो मालूम होता है इस की देही में बुद्धि, बल, ओज, विचार और आचार आदि के साथ मूर्खता, आलस्य, निस्तेज, नासमझी और दुर्गुण प्रभृति पाण्डव तथा कौरवों का युद्ध हो रहा है। जब कि लड़ाई की दशा है तो फिर उसे शान्ति कहाँ? फिर तो 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' बना ही बनाया है। ये सब युद्ध के प्रसंग टालने ही नहीं, प्रत्युत मिटाने होंगे। इन लड़ाइयों के विषवृक्ष का मूलोच्छेद ऐसे उपाय से करना होगा जैसा गीता में कहे—"अश्वत्थमेनं सुविरुढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा" इस उपाय से श्री कृष्ण ने अर्जुन का किया था।

वस्तुतः युद्ध एक प्रकार की पशुता है। इस का उद्गमस्थान वही प्रवृत्ति या भावना है जो एक कुत्ते को; किसी दूसरे कुत्ते को देखकर उस के साथ लड़ने के लिए उत्तेजित करता है। युद्ध करनेवाले उस की चाहे जितनी प्रशंसा के सीठने सीठ लें। पर है यह उस ज्वालामुखी आग की लपट जो ईश्वरीय मानव उपवन को झुलसकर रख देती है। युद्ध चाहे जिन का हो, उसे चाहे जंगली करें या सभ्य लोग करें, पर उस की भीषणता समान ही होती है। झूठ बोलनेवाले जंगली और मिथ्या प्रचार करनेवाले सभ्यों में क्या अन्तर है? छल और पाखण्ड से दोनों काम लेते हैं। हाँ, यह भेद अवश्य है कि जंगली लोगों का झूठ तथा कपट सीधा याने सब की समझ में आने लायक होता है। और सभ्यताभिमानियों का अस्पष्ट, दुर्बोध और जटिल होता है। सभ्य कहानेवाले लोग अपने भावों को छिपाने की योग्यता रखते हैं, और ऊपर से उस असत्य आदि पर आदर्शवाद का पर्दा डालकर बड़े बड़े विद्वानों की आँखों में धूल झोंक देते हैं। जैसा कि आजकल हो रहा है। आजकल किसी के झूठ सच का पता ही नहीं लगता। यदि कोई जिम्मेदार मनुष्य उन झूठ के ठेकेदारों से यह पूछता है कि क्या तुम्हारी सभ्यता का तकाजा यही है कि तुम मैदान के ऊँचे किनारे पर खुले आम झूठ बोलो तो वे बिला तकल्लुफ यह उत्तर दे देते हैं कि क्या किया जाय 'लड़ाई का समय है।'

जो क्रीडा, विनोद या खिलवाड़ थोड़ी देर होवा या थोड़े दिनों होता है, वह अच्छा लगता है। वैसा होने से समय स्वास्थ्य बचाकर मनुष्य फिर भी उसे देखने सुनने के लिए प्रवृत्ति करता है। यदि कोई सिनेमा, सरकस या नाटक रात दिन लगातार महीनों या हफ्तों होता रहे तो सब दर्शकों के रसभंग का कारण हो जाता है। देखने और दिखानेवाले के समय तथा स्वास्थ्य की बरबादी के कारण से वह रसाधायक नहीं रह जाता। जब कि विनोद कौतुक का यह हाल है तो अवाञ्छनीय युद्ध के लिए तो कहना ही क्या है? यदि युद्ध भी कभी कभी हो, और जब हो तब जल्दी समाप्त हो जाया करे तो ठीक हो। पर जो यह खूँटा गाड़कर दुनियाँ में डेरा ही डाल दे, याने बहुत काल तक होता रहे तो सभी खिन्न अव्यवस्थित तथा हतोत्साह हो जाँयगे। पहले समय के युद्ध जल्दी समाप्त हो जाते थे। यद्यपि नैपोलियन, तातारियों और यवनों के हमले तत् तत् देशों पर बहुत दिन होते रहे, पर वे उसी देश तक सीमित रहते थे जिन पर आक्रमण होता था। वे होते भी कभी कभी थे। वे खण्डयुद्ध थे। पहला यूरोपीय युद्ध भी अधिक दिन तक चलता रहा, पर

वह भी सीमित था। किंतु वर्तमान युद्ध इतना भयानक है कि इस की लपटें सभी देशों को झपट में ले रही हैं। जो लड़ रहे हैं वे तो मरते ही हैं, उन का अपरिमित सामग्रीसभार जो मान की रक्षा तथा सुख के लिए प्रयुक्त होना चाहिए था उस से नरसहार का काम लिया जा रहा है। किंतु दुःख तो यह है कि वे भी मर रहे हैं जो लड़ाई की चहारदीवारी के बाहर खाली हाथ खड़े हैं। जब लड़ाकों से पूछते हैं कि इन निरीह निहत्थे नर नारी तथा बाल वृद्धों का भाड़ में दाने की तरह क्यों भूना जा रहा है तो यह जवाब देकर पीछा छुड़ा लिया जाता है कि 'हम नहीं चाहते किसी भी असैनिक नागरिक का बाल बाँका हो, इतने पर भी जो कुछ हो रहा है, हम उस के लिए लाचार हैं, क्या करें 'युद्ध का समय है।'

जब मैं चित्तौड़ का किला देख रहा था तो वहाँ "जौहर का मैदान" निरीक्षण करते हुए मुझे पास के एक खण्डहर से पक्षीरूपधारी एक देवता ने कहा कि "यहाँ रानी पद्मिनी के साथ हजारों असूर्यपश्या राजदाराएँ जलकर भस्म हो गईं, इस का कारण युद्ध था।" मुझे आज भी वहाँ अपनी मा बहनों के अरुणवरण चरणचिन्ह दिखाई दिये। वे भावना-जगत् में आज भी अमर हैं। युद्ध की बदौलत चित्तौड़गढ़ आज खण्डहरों के ढेर में परिणत दिखाई देता है। क्योंकि सैनिकसमाज, जब मनुष्यों की जान तक की परवाह नहीं करता तब उन के माल, असबाब, तथा घर द्वार की चिन्ता क्यों करने लगा है?

मैं घूमते हुए एक समय पंजाब देश के उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ गुरु गोविन्दसिंहजी के दो पुत्र जिन्दा ही दीवार में चुनवा दिये गये थे। मैं उस दीवार को पकड़कर बैठ गया। मुझे तन्द्रासमाधि में उस में से हँसने की आवाज आई। और यह सुनाई दिया कि—'हे मनुष्य! इस दीवार को मत पकड़, हम देश, जाति तथा धर्म के लिए इस दीवार के सिंहासन पर सदा के लिए अभिषिक्त हुए हैं। इस को वही स्पर्श कर सकता है जो धर्मदेवता के मन्दिर में अपने मस्तक के श्रीफल को (नारियल को) अपने ही हाथ में लेकर भेंट अर्पण करने आवे। जिस समय हमें यहाँ राजतिलक देकर हिंदुजाति के हृदय का सम्राट् बनाया गया था, वह युद्ध का समय था।' जब मैं ने उस दीवार के पीछे अँधेरे पार्श्व में देखा तो वहाँ काला मुख किये लौहशृङ्खलित एक भयानक सा आदमी रोकर कह रहा था कि 'मैं एक सम्राट् का सूबा था' बच्चों की हत्या करके "बालकों, स्त्रियों और वृद्धों के साथ अन्याय नहीं करना चाहिए" इस सर्वसाधारणसमत नियम की घोर अवहेलना की है। मैं अधिकार के स्वार्थमद में मनुष्यता का मूल गया था। युद्ध के नशे ने मेरा बुद्धि-विभ्रम कर दिया था, मुझे यही सूझा कि इस समय सर्वथा अनुचित भी उचित ही है, उस समय जिस काम को करके मैं हँसा था, आज उसे याद करके रो रहा हूँ। मैं ने यह निश्चय दृढ कर लिया था कि इस वक्त जो चाहे किया जाना मुहब्बत में दाखिल है, क्योंकि 'लड़ाई का समय है।'

प्रकृति धन, जन, विद्या और पराक्रम आदि का पसंद नहीं करती, वह सदाचार से जो सामाजिक जीवन की पूँजी है अधिक प्यार करती है। जिन धन, विद्या और पराक्रम में सदाचार का सम्मिश्रण नहीं है उन से शान्ति के वातावरण की आशा नहीं करनी चाहिए। मानव सामाजिक प्राणी है, बिना समाज के वह न जी सकता है, न जीवन को पूर्ण तथा विकासी बना सकता है। इसे समझ लेना चाहिए कि उन्नत अवस्था की सफलता का साधन

युद्ध नहीं, किंतु सदाचार है। यह जीवनभवन का आधारस्तम्भ है। युद्ध में पहले सदाचार याने सच्चरित्रता को जलाञ्जलि देनी पड़ती है। सदाचार बाहर की वस्तु नहीं है, वह अन्तःकरण की चीज है। सदाचार का यह मूल सिद्धान्त है कि वह सारे संसार के लोगों को अपनी ही तरह का प्राणी मान लेता है। जब यह निश्चय कर लिया जायगा कि जिस कार्य या जिस प्रकार के व्यवहार से हमें कष्ट होता है यदि हम भी उसी प्रकार का व्यवहार किसी दूसरे के प्रति करते हैं, तो उसे भी उस से कष्ट पहुँच सकता है और वह कष्ट उसी प्रकार का होगा जैसे हमारे प्रति किये गये किसी के असत्य व्यवहार के कारण हमें दुःख उठाना पड़ता है तो हम भी कभी झूठ बोलने का व्यवहार करके किसी को उसी प्रकार की दुःखपूर्ण परिस्थिति में डालने का यत्न न करेंगे। यदि मनुष्य लोगों से 'आत्मौपम्येन' का व्यवहार कराना, करना प्रारम्भ कर दे तो उसे सदा सदाचार से रहने का अभ्यास हो सकता है। फिर उसे दुराचार करने की प्रवृत्ति ही नहीं होगी। सत्य भाषण, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और मादक द्रव्यनिषेध की आदत स्वाभाविक हो जायगी। क्योंकि इन के पालन करने के स्वाभाविक अभ्यास का नाम सदाचार है। सदाचारी महात्मा के सत्यादि गुण प्रकृतिसिद्ध हो जाते हैं, याने आदत में शामिल हो जाते हैं। यदि सब नहीं तो अधिकांश लोग सदाचार के परिपालक हो जाँय तो किसी तरह का भी चाहे वह व्यक्तियुद्ध हो अथवा स्वार्थयुद्ध, वर्गयुद्ध, श्रेणियुद्ध, धर्मयुद्ध और जातियुद्ध हो—युद्ध होना ही बन्द हो जाय। सदाचार से मनुष्य उन्नत होता है, उस मे प्राकृत पदार्थों का बेरोक टोक अपनी बुद्धि और पराक्रम के अनुसार यथेच्छ उपभोग करनेयोग्य बन जाता है। उस से जीवन की अशान्ति मिट जाती है। फिर इस से सुख मिलता है। बस, इसी की प्राप्ति सब का ध्येय है। किंतु युद्ध का दैत्य इस महल को किसी के याने न अपने न दूसरे के काम में आनेलायक छोड़ता है। युद्ध सभी प्रकार की सामाजिक अवस्था को अस्तव्यस्त कर देता है। यदि आज तक 'युद्ध' में मरे हुए मनुष्यों की हड्डियाँ एकत्र करके ढेर लगाया जाय तो वह हिमालय की सब से ऊँची चोटी से भी ऊँचा निकल जायगा। युद्ध की यन्त्रणा के सामने नरक की यातना फीकी है। यह लोगों के सुख शान्ति को हराम कर देता है और उन के चित्तों को स्मशान बना देता है। जहाँ रोने के सिवाय और कोई काम ही नहीं हुआ करता। युद्ध ने सदा ज्ञान का रास्ता रोका है। और उन्नति के अभिलाषी मनुष्य के साथ खुली शत्रुता की है। युद्ध और ज्ञान का तेजस्तिमिरवत् एक स्थान में रहना असंभव है। ज्ञान की जिज्ञासा उन के हृदयस्थल में उत्पन्न होगी जो शान्ति की अनुभूति कर रहे होंगे। युद्ध के आकाश में तो क्रोध, द्वेष, तथा ईर्ष्या के मेघ उदय हुआ करते हैं। मनुष्य की पशुता को ज्ञान ही कम कर सकता है, युद्ध उसे बढ़ाता है। स्वतन्त्रता, जो मनुष्य की परम प्रिय वस्तु है युद्ध उसे हटाकर उस की जगह गुलामी का अभिषेक करता है और जो विजयी होकर विजयश्री का अधिकारी बनता है उस के सामने बड़े भारी भावी महाभारत का पहाड़ खड़ा करने का बीज वपन कर देता है, जैसे पहले यूरोपीय युद्ध ने इस युद्ध का बीज बो दिया था।

आज जिन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता छिन गई है, उन से पूछो कि संसार स्वर्गमय है कि नरकमय ? । वे उत्तर देंगे स्वतन्त्र ही स्वर्ग है और उस की अनुभूति करनेवाले उस स्वर्ग के देवता हैं। जो देश प्रेम के लिए युद्ध में प्राणत्याग करते हैं उन की पुस्तकों और लोक में भी बड़ी प्रशंसा होती है। हम भी उन का आदर करते हैं। यदि युद्ध का दैत्य ऐसे त्यागियों को खा न जाता तो वे देश की श्रीवृद्धि के कारण होते।

जिन का स्वातन्त्र्य अपहरण हो गया है ऐसे राष्ट्रों को यह कहकर सान्त्वना नहीं दी जा सकती कि जीना है, जीते रहो। स्वातन्त्र्य तथा पारतन्त्र्य में क्या अन्तर है। चिन्ता न करो, फिर सुदिन आवेंगे, अब तो यह समझकर सब कुछ सहन कर लो, क्योंकि 'युद्ध का समय है।'



दीपावली

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

तमसो ज्योतिर्गमय ! *

जैसे यह 'दीपावली' बीत गई, वैसे ही असंख्य दिवालियाँ बीत चुकीं, और प्रत्येक, मनुष्य के जीवन में सैकड़ों व्यतीत हो जायँगी। किंतु मनुष्य इस के सत्त्व की ओर ध्यान दे तो उसे अधिक लाभान्वित होने का सौकर्य प्राप्त हो सकता है। आर्यधर्म में अनेक पर्व हैं। किंतु यह दीपावली का पर्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस में 'धनत्रयोदशी' 'नरकचतुर्दशी' 'महालक्ष्मीपूजन' (दीपावली) 'गोवर्द्धनपूजा (अन्नकूट) 'यमद्वितीया' (भैयादोज) ये पाँच पर्व परम्परानिहित हैं।

दीपावली से नवीन वर्षारम्भ होता है। गुजरात आदि देशों में इसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। वहाँ के लोग एक दूसरे के पास शुभसंदेशपूर्ण पत्र भेजकर सम्वत्सर के प्रारम्भ में मङ्गलकामना किया करते हैं।

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्॥

इत्यादि अनेक वचनों में सैकड़ों शरद् ऋतुओं तक पूर्ण और स्वतन्त्र जीवन का उपयोग करते हुए जीवित रहने का शिवसंकल्प किया गया है। इस से प्रतीत होता है कि शरीर में स्वस्थ और दीर्घजीवी रखने के लिए शरद् ऋतु सब से महत्त्वपूर्ण समय है। इस ऋतु में दीपावली पर्वमहोत्सव मनाने का अभिप्राय यह है कि हम अपने जीवन को प्रकाश में देखें और अन्धकार से बचें।

शुद्ध पर्व की दृष्टि से 'दीपावली' का उज्ज्वल आलोक संसार के सब उत्सवों से विशिष्ट प्रतीत होगा। यह भौतिक आनन्द की अनुभूति बहुत ही स्पृहणीय वस्तु है। किंतु इस से भी अधिक इस में स्थायी आध्यात्मिक कल्याण की भावना है। ऋषियों ने दीपावली में सांसारिक अभ्युदय की सिद्धि के साथ साथ आत्मिक कल्याण की साधना को अधिक महत्त्व दिया है। सब मनुष्यों के लिए एक प्रकाश का और दूसरा अन्धकार का ये दो मार्ग हैं। एक का नाम 'देवयान, है' और दूसरे का 'पितृयान'। पहले में सत्य, श्री तथा ज्योति का साम्राज्य है। और दूसरे में अनृत, पाप तथा अज्ञान का बोलबाला है। भौतिक सृष्टि में सूर्योदय और सूर्यास्तमूलक ज्योति तथा अन्धकार का जो सम्बन्ध है, वही अध्यात्म जगत् में ज्ञान और अज्ञान का है। सूर्य, अग्नि तथा विद्युत् आदि को को प्रकाशित करनेवाली ज्ञानस्वरूप महाज्योति ही महादीपक है, और उस शाश्वत के अंश जीव, अविद्या माया के आवरण से आवृत हो अज्ञानान्धकार में निमग्न हैं। अन्धकार में ही प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि हम जीवकोटी-प्रविष्ट प्राणी हैं, हमें प्रकाश चाहिए। अतः अध्यात्म-प्रकाश की तीव्र अभिलाषा को व्यक्त करने के उद्देश्य से हमारे पूर्व महापुरुषों ने 'दीपावली' को केन्द्रबिन्दु बनाकर घर घर में प्रकाश करने की व्यवस्था की है। इस दिन सब ,आयतन 'तमसो ज्योतिर्गमय' हमें

* हे प्रकाश के मङ्गलमय धाम ! हमें अँधेरे से उजाले की ओर ले चल।

अँधेरे से प्रकाश मिले इस भावना को चरितार्थ करनेवाले पुरुषार्थ को उत्तेजन देने का यत्न करते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर हिंदुओं के यहाँ आकाशदीप जलाने की प्रवृत्ति देखने में आती है।

आर्यजनता ही नहीं, किंतु पृथ्वीमण्डल के सभी देशों, धर्मों, संप्रदायों और मतों के लोग किसी न किसी रूप में दीपोत्सवप्रणाली का आश्रयण करके अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते देखे गये हैं। उन में किसी समय या ऋतु का नियम नहीं है, जब चाहा तब राजनीति या सामाजिक कारणों से इसे मना लेते हैं। हमारा देश धर्मप्रधान देश है, इस में जो भी कुछ सामाजिक, सामयिक, दैविक, भौतिक, व्यावहारिक और नैतिक आदि कार्य किये जाते हैं सभी धर्म की सीमा में मान लिये जाते हैं।

पद्मपुराण में महादेवजी ने अपने पुत्र कार्तिकेय से कहा है कि पितृगण सदा यह इच्छा करते रहते हैं कि हमारे वंश में कार्तिक मास में दीपदान करके विष्णु भगवान् को प्रसन्न करनेवाला कोई सुपुत्र उत्पन्न हो। घी तथा तिल के तेल से जो दीपक जलाता है उसे अश्वमेध यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

शृणु दीपस्य माहात्म्यं कार्तिके शिखिवाहन।
पितरश्चैव वाञ्छन्ति सदा पितृगणैर्वृताः॥
भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तः सुपुत्रकः।
कार्तिके दीपदानेन यस्तोष्यति केशवम्॥
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः।
ज्वलते यस्य सेनानीरश्वमेधेन तस्य किम्॥

वहाँ पर यहाँ तक लिखा है कि उस ने सब नित्य नैमित्तिक यज्ञ कर लिये, और सब तीर्थों में स्नान कर लिया जो कार्तिक मास में विष्णु के आगे दिया जलाता है। उस के पाप तभी तक गर्जना करते हैं जब तक वह कार्तिक में दीया नहीं जलाता। स्वर्ग, मर्त्य और रसातल में उस के पुण्य तब तक सिंहगर्जन करते रहते हैं जब तक कार्तिक में उस का दीपक जलता रहता है। लिखा है दीपक चुरानेवाला अन्धा और उस के बुझानेवाला काना होता है।

दीपावली के दिन महालक्ष्मीरूपा शक्ति की उपासना की जाती है। इस पर्व की वैश्यवर्ग के लिए विशेषतया विधि है, पर अन्य वर्णों के लिए निषेध नहीं है। लक्ष्मी की सब को आवश्यकता पड़ती है, इस से उस की उपासना भी सब को करनी चाहिए। वैश्य लोग स्वार्थ के लिए, अर्थात् अपने भण्डार परिपूर्ण करने के लिए लक्ष्मीपूजन करते हैं। किंतु इतर वर्ण स्वार्थ परार्थ के लिए उस की आराधना करते हैं। जैसे ब्राह्मणवर्ण लक्ष्मीप्राप्ति के साधनभूत विज्ञान की उन्नति के लिए, क्षत्री लक्ष्मीसंरक्षिका शान्तिकामना से और शूद्र लक्ष्मी के व्यवस्थापक श्रम की सिद्धि के निमित्त दीपावली के दिन महालक्ष्मी की आराधना करते हैं।

जिन लोगों को समुचित रूप से पूजाविधि नहीं मालूम है या समय पर पूजासामग्री नहीं उपलब्ध है, उन्हें 'ॐ सिद्धि श्री महालक्ष्म्यै नमः' इस मन्त्र से जो भी पूजोपकरण समय पर प्राप्त हो सके उस से पञ्चोपचार या षोडशोपचार या साधारण ही प्रदोषकाल में लक्ष्मीपूजा कर लेनी उचित है।

पूजन के बाद यह स्तुति करनी चाहिए—

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती,
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अङ्गीकृताऽखिलविभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः॥

जो उक्त शास्त्रवचन का उच्चारण सुगमता से नहीं कर सकते वे—

विश्वरूपस्य भार्य्याऽसि
पद्मे ! पद्मालये !!! शुभे !!!
महालक्ष्मि ! नमस्तुभ्यं
सुखरात्रिं कुरुष्व मे ॥

इस वचन से लक्ष्मीस्तवन कर सकते हैं। जो विद्वान् पुरुष हैं उन के लिए तो 'श्रीसूक्त' की वैदिक स्तुति है ही। तान्त्रिकों के लिए 'श्रीयन्त्र' पूजन की विधि सब से अच्छा प्रकार है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में लक्ष्मी के रहने के स्थान बताये गये हैं, वहाँ उस के न रहने की जगह भी बताई है। जैसे—

यः संविभागी, प्रियवाक्यभाषी,
वृद्धोपसेवी प्रियदर्शनश्च।
अल्पप्रलापी, न च दीर्घसूत्री
तस्मिन् सदाहं पुरुषे वसामि ॥

जो सब को बराबर हिस्सा देनेवाला, प्रियभाषी, वृद्धसेवी, सुन्दर, मितभाषी है और आलसी नहीं है, उस पुरुष में सदा मेरा वास रहता है।

यो न पश्येत् स्त्रियं नग्नां, नियतं स च मे प्रियः।
इत्यादि

जो वस्त्ररहित स्त्री को नहीं देखता, जिस में त्याग, सत्य और शौच के गुण विद्यमान हों वह पुरुष लक्ष्मी का प्यारा है। यथा—

यथोपदिष्टा गुरुभक्तियुक्ता
पत्युर्वचो नाक्रमते च नित्यम्।
नित्यञ्च भुङ्क्ते पतिभुक्तशेषं
तस्याः शरीरे नियतं वसामि ॥

उस स्त्री में लक्ष्मीवास करती है जो आज्ञाकारिणी, गुरुजनभक्ता, पति के कथन को न टालनेवाली और जो पति के भुक्तशेष का भोजन करनेवाली हो।

इत्यादि विशिष्ट महागुण जिस स्त्री, पुरुष, व्यक्ति में होंगे उसे त्यागकर लक्ष्मी देवी अन्यत्र नहीं जा सकती। ऐसे पवित्र लोगों को ही दीपावली के दिन महालक्ष्मीपूजन का यथार्थ अधिकार है।

मन्त्रैरयुक्तः परदारसेवी
आचारहीनः परवादसेवी।
संकीर्णचारी परिवादशील-
स्तं निष्ठुरं दम्भमयं त्यजामि ॥

जो मनुष्य मन्त्ररहित, परस्त्रीगामी, आचारहीन, दास और संकीर्ण स्वभाव का होगा मैं उस कठोर दम्भी का घर त्याग देती हूँ। यथा—

कुचैलिनं दन्तमलप्रधारिणं
विमुञ्चति श्री रविचक्रपाणिम् ॥
इत्यादि

लक्ष्मी फिर कहती हैं कि जिस के विचार अच्छे नहीं हैं, जो मैले कपड़े पहनता है और जिस के दाँत मैले हों, वह मेरे अभाव में कँगला ही बना रहता है।

जो माता पिता, पत्नी, गुरुपत्नी, अनाथ, असहाय, दीन बन्धुओं का कृपणता के कारण पालन नहीं करता, कुछ ही दिनों में उस के घर से लक्ष्मी ऐसे निकल जाती है, जैसे फूटे घड़े से पानी बह जाता है। फिर वह चाहे विष्णु ही क्यों न हो।

ऐसे ही जो स्त्री पापप्रिया, निष्ठुरस्वभावा, पति को अपनी आज्ञा पर नचानेवाली, अपमानिता, तथा कामवासना को न सहनेवाली होगी, मैं उस के पास तक नहीं फटकती। ऐसों को दीपावली पर लक्ष्मी-पूजा का अधिकार नहीं है। लक्ष्मी जैसे पवित्र तथा स्वच्छ देवता की आराधना वे ही यथार्थ सम्पादन करने में समर्थ हो सकते हैं जिन के अन्तःकरण सर्वभूतहितभावना से पवित्र हो गये हों।

दीपावली के विषय में पुराणों में कई तरह के इतिहास मिलते हैं। यद्यपि सब का अन्तिम उद्देश्य एक ही है—समान ही है। पर इस महोत्सव मनाने के अनुष्ठानों की विधि विधानों में कुछ भेद सा है। हमें सब से अच्छा आजकल के उपदेशोपयोगी यह इतिवृत्ति मालूम पड़ा कि—"जब राजा बलि ने राजलक्ष्मी को छीनकर अपने वश में करके कैद कर दिया तब जनता लक्ष्मीहीन हो गई। श्रीहत देवगण दैत्यराज बली के बन्दी हो गये। देश में दारिद्र्य और दुःख का अवाञ्छनीय दौरदौरा हो गया। भगवान् विष्णु ने इन्हीं तीन दिनों में लक्ष्मी का देवताओं-सहित उद्धार किया था। जिस दिन लक्ष्मी बन्धन से छूटी थी उस दिन यही कार्तिक की अमावास्या थी। इस लिए लोगों ने लक्ष्मी की छूटने की खुशी में आकर घर घर दीपावली का आनन्दोत्सव मनाया था। आज भी ऐतिहासिक विजय की दृष्टि से यह दीपावली फिर हमें उस गई हुई भारतलक्ष्मी के उद्धार की याद दिलाती है। जिस का उद्धार विष्णु भगवान् ने किया था। आज भी हमारी लक्ष्मी बलपूर्वक बलिलोक में याने बलवानों के देश में प्रतिदिन चली जा रही है। आज हमारी लक्ष्मी और हमारे देवता हम से जुदे हो गये हैं। हम फिर उन के संपर्क में आने का मार्ग ढूँढ रहे हैं, पर अज्ञानान्धकार में रास्ता नहीं सूझता। इसी से हम सब लोग एकत्र हो, एकभावना से प्रेरित हो दीपावली का प्रकाश कर रहे हैं कि इस वर्षारम्भ में हम अपने गन्तव्य मार्ग को अन्वेषण करके उस पर चलें।"

आज हम 'नमः शान्ताय तेजसे' वचन से प्रभु का स्मरण करते हुए, इस वर्ष—

'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥'

इस भगवद्वाक्य का उपदेश देते हुए यह मङ्गलकामना करते हैं कि—

(१) यह वर्ष साङ्ग सपरिवार आप के हृदय-मन्दिर को दीपावली के दीपसमूह के प्रकाश की तरह विज्ञान, आनन्द, सत्य, त्याग और प्रेम के दीपकों से प्रकाशित करे।

(२) इस वर्ष आप लोगों का अन्तःकरणसरोवर विश्व के प्राणिमात्र के प्रति अखण्ड स्नेहभावना के अमृतरस से परिपूर्ण हो।

(३) यह संवत् आप को बुद्धि, लक्ष्मी और शक्ति का उपासक बनावे।

(४) इस वर्ष जो कुछ खाया पहना जाय उस से निष्पन्न वीर्य, स्वास्थ्य से वर्द्धित यह आप लोगों का भौतिक देह सब की सेवा के उपयोग में आने के योग्य हो।

(५) इस वर्ष हमारे सब काम मिल जुलकर एकदिल से हो सकें जिस से मतभेदमूलक कार्यभेद से हमारा समय और शक्ति व्यर्थ व्यय न हो।

(६) इस साल हमारे रक्षक राजा की पूरी शक्ति हमारी रक्षणावेक्षण के उपयोग में सङ्गोपाङ्ग आ सके और प्रजा तथा राजा में यत्किञ्चित् कटुता सर्वथा न रहने पावे।

(७) इस वर्ष सब का ईश्वर, वेद, धर्म पर विश्वास और भी अधिक दृढ हो जावे और मातृभूमि, जाति, तीर्थ, मन्दिरों मठों पर श्रद्धा अधिकाधिक बढ़े।

(८) इस वर्ष चोरी, हिंसा, व्यभिचार, असत्य और मादक द्रव्यों के सेवन का हृदय से परित्याग करके सब लोग, 'रामराज्य' के सुख का अनुभव करने में समर्थ हों।

(९) "इस वर्ष सर्वशक्तिमान् प्रभु अपनी विनाशलीलाताण्डव बन्द करा दें, जिस से प्रभुप्रदत्त विभूतियों का दुर्बल, प्रबल सबल लोग यथेच्छ यथाशक्ति उपयोग कर सकें।"

(१०) इस वर्ष सब लोग अपने अपने वर्णाश्रम-धर्मानुष्ठानपुःसर भगवान् से इस संकटकाल से त्राण पाने की इच्छा से यह प्रार्थना करें कि—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथ्वी शस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितः साधवः सन्तु निर्भयाः ॥

कार्यसिद्धि क्यों नहीं होती?

(ले०—विभूति देवी अध्यापिका)

'जिह्वा दग्धा परान्नेन'—

संसार के सब काम कहने, सोचने और करने से होते हैं, पर सब कामों में कहने का नम्बर पहला है। जैसे किसी पाठशाला में कुछ लोग पढ़ाने और बहुत से पढ़ने जाते हैं। वहाँ पहले कहा जाता है फिर उसे सुना सोचा जाता है। कह वह सकता है जिसे कहना आता हो, याने जिस ने कहना सीखा हो। कथन करना वाणी का विषय है, याने जीभ का काम है। जिह्वा खराब न होगी, याने दग्ध न होगी तभी कहा जा सकता है। सभी नहीं कह सकते, कथन करने की सामर्थ्य संपादन करने के लिए तपश्चर्या करनी पड़ती है, गुरु के चरणों में रहकर तपोमय जीवन बिताना पड़ता है। जिसे कहना आता है वह चाहे तो संसार में आग लगा दे तथा लगी अग्नि को सहज में बुझा दे। पहले समय में जो जिस को भला बुरा कुछ भी कह देता था, वह कथन सफल हो जाता था। पुराणादि ग्रन्थों में शाप देने की बातें आती हैं। उन का प्रयोजन यह है कि प्राचीन पुरुषों की वाणी सफल होती थी। यदि यह बात है तो आजकल ऐसा क्यों नहीं होता? इस प्रश्न का उत्तर है कि—'जिह्वा दग्धा परान्नेन' याने दूसरे का मुफ्त का माल उड़ाने से जीभ जल गई। मतलब यह है कि दूसरे का दिया हुआ भोजन करनेवाला की वाणी में कुछ भी सामर्थ्य नहीं रह जाता, अतः वे अपनी वाक्शक्ति की अभिवृद्धि नहीं कर सकते। मनुष्य का स्वभाव है कि जब उस का काम बैठे बैठे चल जाता है तो वह मेहनत नहीं करना चाहता। भला दूसरों के दिये भोजन से जिन का निर्वाह हो जाता हो वे 'गुरुगृह' में जाकर क्यों पढ़ने की खटपट में पड़ने लगे हैं?

'जिह्वा दग्धा परान्नेन' इस वाक्य में 'पर' शब्द से अपने से दूसरे सभी का समावेश मानना चाहिए। वह 'पर' चाहे कोई अपने कुटुम्ब, जाति या देश का हो या अपना पिता, दादा, भाई आदि हो। कहने का प्रयोजन यह है कि पराई कमाई पर (चाहे वह अपने बाप, दादा ही की क्यों न हो?) मौज मारनेवालों की वाणी जलकर खाक हो जाती है। इसी कारण अमीरों के लड़के अपने बाप दादों का धन पानी की तरह बहाकर भी याने साधनों के होते हुए भी ऐसे बड़े विद्वान नहीं होते जैसा एक गरीब का लड़का हो जाता है, क्योंकि दूसरों की कमाई पर पलनेवाले जबान के धनी नहीं हो सकते। देश की वे ही जातियाँ विदेशों में जाकर व्यापार द्वारा धन-कुबेर हो सकी हैं जिन्हें अपने बाप दादों की कमाई का सहारा या भरोसा नहीं था।

फिर बात यह भी है कि दूसरे का दिया अन्न खानेवाला अन्नदाता को नेकसलाह नहीं दे सकता। क्योंकि वह उस के सामने दबता है। यदि अन्नगृहीता दबीजबान से कुछ कहेगा भी तो उस का असर अन्नदाता पर नहीं पड़ सकता। दग्धजिह्व का प्रभाव किसी पर ऐसे ही नहीं पड़ता जैसे भुना हुआ अन्न का दाना अंकुरित नहीं हो सकता। भीष्म पितामह जैसा महापुरुष, भरी सभा में अपने कुटुम्ब की रजस्वला युवति की को नंगी करने का बीभत्स दृश्य

देखता रह गया, परंतु चूँ तक नहीं कर सका। मौका आने पर "अर्थस्य पुरुषो दासः" इत्यादि वचनों से अपनी दुर्बलता को खुद स्वीकार किया है। कारण स्पष्ट है कि परान्न से उस की जिव्हा जल चुकी थी। अन्न का प्रभाव शरीर पर अवश्य ही पड़े बिना नहीं रहता। सुना करते हैं कि अनिष्ट अन्न खाने से किसी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा ने एक रानी का हार चुरा लिया था। परान्नदोष से बचने के लिए ही संन्यासियों को भिक्षाचर्या का विधान किया गया है। वे अनग्न अनिकेत होते हैं, अतः घूम घूमकर भिक्षा से माधुकरी लाने के परिश्रम के कारण उन के आहार का 'परान्नता' दोष दूर हो जाता है। और वे प्रणवजप और प्राणायाम द्वारा अपने भोजन में परान्नत्व दोष नहीं आने देते। जो दूसरे से प्राप्त अन्न खाकर उस का कार्य कर देगा उस को दोष कहाँ रह गया? इसी से संन्यासी लोग प्रणवजप, प्राणायाम, कथा, उपदेश आदि द्वारा जो लोकोपकार साधन कर देते हैं उन की जिव्हा सफल रहती है, दग्ध नहीं होने पाती।

यह अनुभव की बात है कि जो लोग दूसरों की रोटियों के मोहताज हैं, वे सदा हतश्री देखे गये हैं। धर्म का खानेवाले छाया में रहते हैं, परिश्रम से बचे रहते हैं, अच्छे अच्छे माल खाते हैं, चाहे जहाँ जा आ सकते हैं इत्यादि बहुत से सुभीते की जिन्दगी व्यतीत करते हुए भी वे तेजहीन से प्रतीत होते हैं। इन की बातें सुननेमात्र से प्रतीत हो जाता है कि इन को संतोष भी नहीं है। नित्य अच्छे अच्छे पदार्थ खाते रहने पर भी तृप्त जैसे नहीं मालूम पड़ते। कोई खास वस्तु मिलने पर अंदाज से अधिक खाकर दिन भर परेशान बने रहते हैं, जब देखो खाने ही की बातें करते रहेंगे। सब से बड़ी दुःख की बात तो यह है कि इन के पास पहाड़ जैसा विपुल समय रहता है, इन्हें रात दिन फुरसत ही फुरसत रहती है, खाने पीने की चिन्ता नहीं रहती है। फिर भी ये विद्या नहीं पढ़ते, न भजन ही करते हैं, क्योंकि उन की वाणी परान्नभक्षण से निकम्मी हो जाती है।

सौ आदमी ऐसे एकत्र किये जाँय जिन का जीवन धर्मादाय पर निर्भर हो, याने जो धर्म के नाम पर पराया अन्न खाते हों और सौ आदमी उसी स्थिति के वे एकट्ठे किये जाँय जो कमाकर खाते हों। दोनों समूहों का मुकाबला करके देखा जाय तो परान्नभक्षी समुदाय ही हतश्री प्रतीत होगा, उन के विचार भी संकुचित होंगे। क्योंकि मँगनी के भोजन में वह दम नहीं है जिस से ओजस्विता प्राप्त हुआ करती है।

जब कि मनुष्य समर्थ है, अविकलेन्द्रिय है फिर अपनी जीविका के लिए अपने ही जैसे साङ्गोपाङ्ग मनुष्य पर क्यों निर्भर रहता है? मनुष्य को चाहिए कि वह किसी से लेने की इच्छा न करे। बिना काम किये किसी की वस्तु की तरफ देखे भी नहीं। राजा, धनी आदि ऋषि, मुनि, साधु संतों, भक्तों को श्रद्धापूर्वक देना चाहते थे, मगर वे न लेकर वन्य कन्द मूल फलों से अपनी जीविकानिर्वाह करते थे। उन्हें यह मालूम था कि—'जिव्हा दग्धा परान्नेन।'

'करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्'—

अर्थात् जब दान लेने से हाथ दग्ध हो जाते हैं तो उन में कुछ भी करने का दम बाकी नहीं रह जाता। मनुष्य की कार्य सिद्धि का सर्वोपरि साधन हाथ उस दशा में निकम्मा हो जाता है जब कि वह दान लेने के लिए किसी के हाथ से नीचा हो जाता है। आजकल के लोगों की मनोवृत्ति जितनी ले लेने में तेज है उस की शतांश भी देने में नहीं है। लोग लेने में सहस्रबाहु को भी मात कर देते हैं और देने में जगन्नाथजी की तरह

दूँठा होने का कमाल कर देते हैं। अब कि राजा दिलीप आवश्यकता से अधिक देना चाहता था और वरतन्तु जरूरत से ज्याद' लेना अङ्गीकार नहीं करता था वह भी एक समय था। और आज भी यह जमाना है कि गृहीता दाता के कपड़े तक उतारने पर आमादा हो जाता है। जिन हाथों में अपनी जाति, देश तथा दुर्बलों की रक्षा के लिए और आततायियों को दण्ड देने के वास्ते, अकृपण कृपाण होनी चाहिए थी, दान लेने से उन हाथों को माना लकवा सा मार जाता है। आजकल जिसे देखो चाहे समर्थ ही हो, सभी दान लेने के अधिकारी बनते हैं। पहले राजा राज्य करते थे, पर अपनी जीविका के लिए कोई खास काम किया करते थे। आजकल की मनोवृत्तियाँ अजब हो गई हैं। वर्तमान काल में वे चतुर कहाते हैं जो दूसरों की कमाई पर मौज उड़ा रहे हों। हाथ पर हाथधरे बैठे रहना आजकल की अमीरी में दाखिल है। पहले की अमीरी अधिक से अधिक संख्या में गरीबपरवरी में थी। जिन हाथों से कोई कमा नहीं सकता जो हाथ दान लेने से आग में लकड़ी की तरह जल चुके हैं उन हाथों से सोने की थाली में हलवा खाने की इच्छा करने का किसी को कोई अधिकार नहीं है। न्याय तो यह है कि जितना करो उतना खाओ।

दूसरे देश के लोग स्वावलम्बन से जीवन बिताना उत्तम समझते हैं। स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक कहते थे कि अमेरिका में मेरे साथ जो विद्यार्थी पढ़ते थे, वे कालेज के अतिरिक्त समय में कहीं न कहीं मजदूरी करते थे और उसी से वे अपनी पढ़ाई का खर्च चलाते थे। एक दिन स्वामीजी ने अपने मित्र सहपाठी को बाजार में इक्का हाँकते देखा, स्वामीजी बड़े तपाक से उस के पास हँसते हुए गये और कुछ बात करनी चाही। मगर उस ने स्वामीजी की तरफ देखा तक नहीं। बात तो क्या करनी थी और अपने पैसेंजरों से बोलता रहा ? अपने घनिष्ठ मित्र का यह व्यवहार स्वामीजी को बहुत बुरा लगा। अगले दिन जब वह विद्यार्थी स्वामीजी से कालेज में मिला तो स्वामीजी ने कहा 'तुम बड़े असभ्य हो' ऐसी सोता-चश्मी, वह विद्यार्थी स्वामीजी के कथन की उपेक्षा सी करते हुए मुस्कराकर बोला—'भाई! उस समय मैं ड्यूटी पर था यदि मैं आप से बातें करने लगता तो मेरी सवारी (पैसेंजर) हाथ से निकल जाती, मैं पेशेवर मजदूर तो हूँ नहीं, जो दिन भर खटूँ, मेरे पास सिर्फ दो घंटे का समय रहता है। शहर में मेरे बहुत से परिचित हैं। यदि सब से ५-५ मिनट भी बातें करने में गुजार दूँगा तो मेरा सारा समय व्यर्थ बरबाद हो जायगा, फिर एक काम करते समय उस का न समाप्त करके उस से असम्बद्ध काम करने लग जाने की आदत डालकर अपना स्वभाव न बिगाड़ना चाहिए। छात्रजीवन में स्वभाव अच्छा न बनाया गया तो पढ़ना बेकार है, क्योंकि यही स्वभाव जन्म भर काम आता है, इस में आप व्यर्थ बुरा मानते हैं, आशा है अब आप नाराजी दूर कर देंगे।' स्वामीजी कहते थे कि यह बात सुनकर मुझे बड़ी शरम आई। हमारे देश में तो समय का कोई मूल्य नहीं है। और मेहनत मजदूरी तो बड़प्पन को धूल में मिला देनेवाली मानी जाती है। और हमारे देश में बाप दादों की कमाई पर दिन व्यतीत करनेवाले, भाग्यशाली और मौज मारनेवाले समझे जाते हैं। एक रईसजादे अपने पूर्वजों की कीर्ति की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। मेरी समझ से बुजुर्गों की बड़ाई भर करके अपना कर्तव्य पूरा कर लेना समझनेवाले कुछ नहीं कर सकते। किसी प्राचीन सम्माननीय महा-

पुरुष की प्रशंसा करने से कुछ लाभ नहीं, जब तक उन के प्रदर्शित मार्ग पर न चला जाय। हम कहाँ तक कहें, सब को यह याद रखना चाहिए कि— 'करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।'

'मनो दग्धं परस्त्रीभिः'—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' अर्थात् मनुष्य का जब कि मन ठीक है, उस में किसी प्रकार के पाप की कालिमा नहीं पुती है तो फिर आदमी जहाँ रहे, जहाँ जाय और जिस स्थिति में रहे उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, उसे कोई नहीं बाँध सकता। डाक्टर किसी रोगी का अंगच्छेद कर देता है, मगर उसे कोई दोषी नहीं ठहरा सकता, क्योंकि उस का दिल साफ है। और जो अपने मन में बुगज भरे फिरते हैं, जो कपट से लिपट रहे हैं और जिन के मन द्वेष से भरे हैं, उन्हें सब जगह बेचैनी है, भय है तथा बन्धन है।

फिर जिन का मन ठीक नहीं, जिन का मन स्थिर नहीं, वे कोई कार्य यथार्थतः नहीं कर सकते। यद्यपि मन का स्वरूप ही 'संकल्प विकल्पात्मक' है, पर वह अभ्यास करने से सदा नहीं तो उतने समय के लिए उस काम में एकाग्र होकर लग सकता है, जो कार्य मनुष्य करना चाहता है। क्योंकि सब काम मनोयोग-पूर्वक हो सकते हैं। चिन्ता, चञ्चलता, आलस्य, भ्रम, प्रमाद प्रभृति दोषों से मन अधिक डाँवाडोल हो जाता है, पर इन दोषों की निवृत्ति के उपाय इतने कठिन नहीं हैं जितना 'मनो दग्धं परस्त्रीभिः।' यह कठिन है। अर्थात् दूसरे की स्त्रीविषयक चिन्ता से मन जलकर राख हो जाता है। रामचन्द्र से परास्त होने के कारण रावण की निन्दा नहीं है, क्योंकि वीरों की हार से निन्दा नहीं होती। उस प्रतापी राजा की अपकीर्ति दूसरे की स्त्री पर कुदृष्टि डालने के कारण हुई। परस्त्री पर दृष्टि डालनेवाले अपना यश, धन और बल सौन्दर्य आदि नाश कर बैठते हैं, क्योंकि उन का मन जल जाता है। जब कि मन का मटिया-मेट हो गया, फिर कुछ भी पास नहीं रह जाता, पर-स्त्री के कारण सुन्दोपसुन्द जैसे किसी से परास्त न होनेवाले दो प्यारे भाई परस्पर लड़कर मर गये। नहुष राजा स्वर्ग के ऊँचे स्थान से गिर गया, चन्द्रमा कलङ्की हो गया। वाली मारा गया। शिशुपाल की भी यही दशा हुई। कीचक भी इसी हालत को पहुँचा। परस्त्री के पीछे यवन नृपतियों ने राजस्थान के महल स्मशान में परिणत कर दिये। विश्वामित्र की दुर्दशा का हाल सब जानते हैं। जिन्होंने 'मातृवत् परदारेषु' की शिक्षा नहीं मानी, उन्होंने अपना सब कुछ गवाँ दिया।

कहाँ तक कहें—परस्त्रीविषयक दूषित भावों से जिन का मन दुष्ट हो गया है, वह क्या अपनी भलाई सोच सकता है? और क्या दूसरे की? प्रत्येक अभ्युदयाकाङ्क्षी पुरुष को—

**'जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनो दग्धं परस्त्रीभिः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्॥'**

इस कुलार्णव तन्त्र के वचन पर सदा ध्यान रखकर वाणी, हाथ और मन को दूषित होने से बचाने का सदा यत्न करना चाहिए। ये तीन संसार की कार्य-सिद्धि के प्रधान साधन हैं।

एक संत कहा करते थे कि जब कि संयमी पुरुषों के सब कार्य सुचारु रूप से संपन्न हो जाते हैं, फिर और लोग यह विचार क्यों नहीं करते कि हमारी "कार्यसिद्धि क्यों नहीं होती?"

सुखी जीवन

(ले०—पौ० श्री वासुदेवशास्त्री तैलङ्ग, शु० द्वै० वे० विशारद)

शिष्य—प्रभो, आज सुखी जीवन के अन्तर्गत धर्म का मर्म समझाने की कृपा कीजिए।

गुरु—वत्स, प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के सहारे चलना पड़ता है और अधर्म से बचना पड़ता है, अथच मरणसमय पर भी प्रिय मित्र धर्म का सहारा लेकर जाना पड़ता है। मरणसमय न भाई, न बन्धु, न पुत्र, न स्त्री, न घर, न धन कोई भी दुःख से विमुक्त नहीं कर सकते और दुर्दान्त, भीषण यमदूतों के कराळ पाश से तिळमात्र भी अभय नहीं दिला सकते। यदि विश्वासी, परमप्रिय मित्र कोई है तो वह धर्म ही है, शास्त्रों में कहा है 'धर्मोनुगा गच्छति जीव एक' भागवत महापुराण के माहात्म्य अध्याय ४ में भी तो गोकर्ण ने अपने पिता से कहा है कि—

'धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्'

हमारे धर्म की पुष्टि में 'वेदप्रणिहितो धर्मः अधर्मस्तद्विपर्ययः।' वेद से कहा हुआ धर्म और वेद से जो नहीं कहा गया उसी को अधर्म कहते हैं। यह तो सर्वसिद्ध है कि वेद ईश्वर के श्वासरूप हैं और उन में से इस धर्म की उत्पत्ति है, अतः अनायास ही इस धर्म की ईश्वर के साथ ही अनादिता सिद्ध हो जाती है और इस धर्म की संसारप्रियता का कारण यही है, तभी तो समय समय पर ईश्वर का अवतार लेना पड़ता है और स्वकीय धर्म की रक्षा करनी पड़ती है। इसी को गीता में कहा है—'परित्राणाय साधूनां ··· ···धर्मसंस्थापनार्थाय च।' भगवद् ज्ञानशक्ति के अंशावतार वेदव्यासजी का मत है कि 'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः' धारण करने से धर्म कहते हैं और वह धर्म प्रजाओं का धारण करता है।

शिष्य—ऐसा सुना गया है कि धर्मानुसार न चलकर प्रत्युत जो अधर्म से मित्रता करता है वह पशुवत् है। यह कथन कहाँ तक संगत है।

गुरु—मनुष्य और पशु बराबर हैं, जो कार्य मनुष्य करता है उसी को पशु भी करते हैं, खाना, पीना, सोना, घूमना, स्त्रीसेवन आदि सभी समान हैं। यदि हम शास्त्ररीति से देखते हैं तो मनुष्य में जो विशेष गुण रहता है वह धर्म है। नीति पुकार पुकारकर कहती है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

शिष्य—भगवन्, प्रायः देखा जाता है कि अनेक मनुष्य कभी किसी एक धर्म का और कभी किसी दूसरे का स्वीकार कर लेते हैं। जैसे—'अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।' यह ठीक है या नहीं?

गुरु—गीता में कहा है—'श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः।' 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।' अन्यत्र भी कहा है—'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।' जो धर्म की रक्षा करता है उस की धर्म भी रक्षा करता है। जो धर्मनाश करता है उस का धर्म नाश कर देता है।

शिष्य—पूर्वकाल में थी आजकल जैसी अदालतें

नहीं थीं और कानून भी ऐसे नहीं थे, तो फिर अराजकता खूब मची रहती होगी।

गुरु—वेदव्यासजी कहते हैं—

न वै राज्यं न राजासीन्न दण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्तिस्म परस्परम्॥

प्राचीन काल में न कोई राज्य था, न राजा था, न दण्ड था और न कोई दण्ड देनेवाला ही था। किंतु परस्पर प्रजा की रक्षा धर्म से ही होती थी। इसी बात को तो वेद भी कहता है—"सत्यं वद, धर्मं चर" सत्य बोलो, धर्माचरण करो। जब से अधर्म का प्रभाव अधिक हुआ है तभी से राजा और राज्य तथा कानून आदि बने हैं, इस के पहले तो न्याय से ही धर्म पर तत्पर रहकर प्रजा सुखी रहती थी।

शिष्य—गुरुवर्य, धर्म और समाज का कुछ संबन्ध है या नहीं ?

गुरु—धर्म समाज का वस्तुतत्त्व आधारस्तम्भ है, इसी से धर्म को समाज से पृथक् नहीं कर सकते। वस्त्र से सूतों को जिस प्रकार अलग नहीं कर सकते, इसी प्रकार धर्म को समाज से पृथक् नहीं कर सकते। ऐसा होने से समाज निःसार तत्त्वरहित हो जाता है। उस समाज से हम अपने आप को उन्नत नहीं कर सकते। अतएव सुखी जीवन के लिए 'धर्मान्न प्रमदितव्यम्' धर्म से विमुख मत बनो।

शिष्य—गुरुदेव धर्म के कितने, कौन से लक्षण हैं ये भी बताइए।

गुरु—नारदजी युधिष्टर को तीस लक्षण बताये हैं और कहते हैं कि—

'वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम्।
सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः॥
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥'

अर्थात् तीस लक्षण ये हैं—सत्य बोलना, दया रखना, तप करना, पवित्रता रखना, सहन करना, ज्ञान, मन को रोकना, इंद्रियदमन, किसी को दुःख न देना, ब्रह्मचर्य, त्याग, पढ़ना, सरलता, सेवा, नमस्कार, दास्य, सख्य, आत्मसमर्पण इत्यादि तीस हैं। ये मनुष्य को, प्रत्येक समाज को पालनीय हैं। इन नियमों का खण्डन कभी हो ही नहीं सकता।

शिष्य—किंतु यह विषय बड़ा जटिल है क्या आप दृष्टान्तरूप से मुझे समझाने की कृपा करेंगे, यह बात मुझे एवं संसार के प्रत्येक मनुष्य को हितकर होगी।

गुरु—अच्छा, प्रश्न तो तुम्हारा बड़ा गम्भीर है और लोकहितार्थ दृष्टि से पूछा है तो अवश्य हमें अब विशद विवेचन सहित कहना चाहिए। क्या तुम्हें मालूम है कि सनातनधर्म की प्रत्येक बातें और प्रत्येक शब्द, अक्षर समाज का क्षेम कुशल करनेवाले हैं। इन से मूर्ख से मूर्ख निरे जड़ मनुष्य भी लाभ उठाते रहते हैं और फिर आजन्म सनातनधर्म के कृतज्ञ बने रहते हैं। पहले इसी को दृष्टान्त से समझने की चेष्टा करो। एक अधम पापी जीव डाँकू था, जो सर्वदा अच्छी बातों से कोसों दूर रहता था और कभी अपने उद्धार का मार्ग सोचने का कष्ट भी नहीं करता था। एक दिन किसी कार्यवश डाँकू जा रहा था, रास्ते में श्रीमद्भागवत की सप्ताह हो रही थी। उस ने सोचा कि ये कहाँ की आफत है यहाँ से तो कान बन्द करके चले जाना चाहिए। जिस समय वह जाने लगा, न जाने उसे ये शब्द कैसे

सुनाई पड़े कि "देवताओं के पैर पृथ्वी पर नहीं टिकते और वे बोलते भी नहीं हैं।" अस्तु ये शब्द उस के हृदय में जम गये। जिस समय वह अपनी देवी के पास जाता है तो वहाँ पहले ही से कुछ जासूसी सिपाहियों ने डाँकू को पकड़ने के लिए देवी को तोड़कर गिरा दिया और एक सिपाही खड़ा कर दिया। जिस समय वह डाँकू चोरी करने के लिए देवी से, अमुक स्थान का नाम निर्देशकर लाभविषयक प्रश्न पूछता है कि मुझे आज कितना रुपया मिलेगा, उसी समय वह सिपाही बोल देता है कि इतनी संख्या में आज तुझे रुपया मिलेगा और तेरा मार्ग निष्कण्टक होगा। इन शब्दों के सुनते ही उसे भ्रम होने लगा और उस के मस्तिष्क में "देवों के पैर नहीं टिकते और वे बोलते नहीं हैं" ये शब्द दौड़ने लगे। फिर क्या था उस ने तलवार से सिपाही के दो टुकड़े कर दिये, उसी समय से वह डाँकू सनातनधर्म पर श्रद्धा करने लगा और उस ने निषिद्ध कर्म छोड़ दिया, क्योंकि जब मुझे एक धर्मवाक्य ने मृत्युमुख से बचा दिया तो अच्छी प्रकार बारबार मनन, चिन्तन, निदिध्यासन करने पर लाभप्रद वस्तु क्यों न हितैषी होगी। वत्स, इसी से तो मैं ने कहा है कि इन *नियमों का* पालन करनेवाला कभी कुपथ में नहीं फँसेगा। अच्छा अब अन्य लक्षणों को सुनो। सब से पहले धर्म का लक्षण है सत्य। आज यदि संपूर्ण भारतवर्ष में देखा जाय तो हमें कोई विरले ही सत्यवक्ता मिल सकते हैं। आजकल जहाँ देखते हैं वहीं धोखे की टट्टी और असत्य का साम्राज्य दृष्टिगत होता है, सभी ढोंगी, कपटी, धूर्त, आडम्बरी, 'हृदि हालाहल विषम्' की उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं, कलिदेव! तेरी बलिहारी है, तूँ सबों में समाया हुआ है, जहाँ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का पाठ भारतीय सदैव पढ़ा करते थे, वहाँ आज 'सर्वत्र कलि' का पाठ सत्य दिखाई दे रहा है, चाहे अन्त परिणाम भयंकर हो।

शिष्य—गुरुवर, इस से पहले तो अवश्य सत्य का पालन होता होगा।

गुरु—हाँ, यदि हम रामचन्द्रजी के समय का वातावरण इतिहास में देखते हैं तो हमें स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उस समय सत्य ही सब कुछ था और उसी से सब सुखी जीवन व्यतीत करते थे। जिस समय श्री रामचन्द्र शरणागत विभीषण को लंकेश बना देते हैं तो सुग्रीवादिक वानरों को खलबली मच जाती है और वे कहते हैं कि, नाथ विचारके काम करें। 'राम विनती सुनिए जगतारन।' अर्थात् आप ने जो विभीषण को लंकेश बना दिया है इस में हमें सन्देह है, शायद रावण आकर आप से संधी कर ले तो फिर क्या होगा। तब भी राम कहते हैं कि यदि ऐसा होगा तो मैं भरत को अपने साथ रखूँगा और अवध का राज्य रावण को दिला दूँगा। किंतु मेरी प्रतिज्ञा कभी असत्य नहीं हो सकती। 'द्विशरो नाभि संधत्ते रामो द्विर्नाभिभाषते' राम एक शत्रु को एक बाण ही छोड़ते हैं और एक बात को दूसरे रूप में नहीं बदलते।

शिष्य—गुरुदेव, यह आप ने अत्यन्त रोचक ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक उपाख्यान अच्छा सुनाया। आज के समय में ऐसे ही उपाख्यान कुछ असर कर सकते हैं।

गुरु—इसी का एक दृष्टान्त और भी सुनो जो थोड़े समय का ही है। जिस समय शंकराचार्य, दिग्विजयार्थ भ्रमण कर रहे थे उस समय प्रयाग में उन्होंने एक जलती चिता देखी, पूछने पर मालूम हुआ कि ये कुमारिल भट्ट थे, जिन्होंने आजन्म सत्य बोलते बोलते ही समय व्यतीत किया था। एक समय

के असत्य से प्रायश्चित्तरूप अपना मरना ही निश्चय किया, शिष्य, ये सत्यप्रतिज्ञ के लक्षण हैं। ये सब हमारे भारत ही में तो हुए थे, अन्यत्र नहीं।

शिष्य—अब दया पर भी समझाइए। सत्य का अब मैं आज से आचरण करूँगा।

गुरु—यदि प्रत्येक मनुष्य सत्य, दया पर दृढ़ रहे, तो वह अपने देश की, अपनी जाति की रक्षा कर सकता है अन्यथा संदेह है। इस को छोटे से दृष्टान्त से ही तुम समझ सकते हो। समुद्रमन्थन के समय विष को पीने का किसी को साहस नहीं हुआ, किंतु शिव ने दया करके उस विष को पी लिया, तभी से नीलकण्ठ नाम हो गया है। इस के सिवाय कुछ दिन पूर्व शिवि राजा ने अपने शरीर का मांस काटकर ही तो कबूतर के बदले में दिया था, क्या तुम्हें मालूम नहीं। इसी से तो कहा है कि—

"बड़े दीन को दुःख सुनि, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सो कबहुति, कहु रहीम पहिचानि॥"

शिष्य—ठीक है इस को भी अच्छी प्रकार से समझ गया हूँ, सत्य दया तो हो चुके। अब तप पर भी कुछ दया होनी चाहिए। मेरी धृष्टता को क्षमा करें।

गुरु—तीसरा लक्षण तप है। एकादशी आदि व्रत को तप कहते हैं। वैसे तो निष्काम ईश्वर का मनन, चिन्तन ही तप कहा जाता है। किंतु विशेष में मन और इन्द्रियों का वशीकरण ही तप है। अब तुम्हें सूक्ष्म रूप से सभी लक्षणों का विवेचन कर देता हूँ, क्योंकि मुझे समय बहुत कम है। इसी में पढ़ाना और अणुभाष्य का हिंदी भी लिखना, इस की भी बहुत माँग है। अस्तु, चतुर्थ लक्षण है शौच अर्थात् पवित्रता। यह दो प्रकार की होती है। अभ्यन्तर और बाह्य। सात्विक अन्न खाने से सात्विक मन बनेगा और तामस अन्न से तामस मन बनेगा, राजस से राजस 'यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी' मनुष्य जैसा अन्न खाता है उसी प्रकार की उस की बुद्धि बन जाती है।

शिष्य—गुरुवर्य, यह तो आप को स्पष्ट करके समझाना होगा।

गुरु—जिस समय भीष्म शरशय्या पर पड़े थे और धर्मोपदेश दे रहे थे उस समय द्रौपदी हँसी। भीष्म ने पूछा, द्रौपदी क्यों हँसी। तब द्रौपदी ने कहा कि जिस समय मैं सभा के बीच नङ्गी की जा रही थी उस समय आप ने न्याय अन्याय, धर्म अधर्म नहीं कहा और आज बड़े गहन विषय का तत्त्व सुना रहे हैं। भीष्म ने कहा द्रौपदी ठीक है। उस समय अधर्मी दुर्योधन का अन्न खा रहा था, इस से मन भी अधर्मी हो गया था, अब अर्जुन के बाण से पापमय अन्न का खून निकल गया और मन शुद्ध हो गया। यही अन्तर है। इसी लिए तो हमारे पूर्वजों ने पवित्र अपवित्र की सीमा बाँध दी है और कहा है कि नीच जाति के अन्न नहीं खाना। पाँचवाँ लक्षण है तितिक्षा, सहनशीलता को कहते हैं। इस का उदाहरण भी बहुत कम मिलता है। क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इस का प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हैं। जिन्होंने, बंगाली बाबू का सामान उठाकर घर तक पहुँचा दिया और चूँ तक नहीं किया, क्या ऐसा आज भी कोई है। ऐसा करने से कोई छोटे थोड़े ही हो जाते हैं, किंतु आज तो इस विदेशी सभ्यता से स्वयं घर के कार्य करने में भी लज्जा आती है, क्योंकि अपटूडेट मैन फिर कहाँ से हो सकते हैं, फिर तो कुली हो गये। धन्य है नवीन शिक्षा! तुझे धन्य है!! किंतु स्मरण रहे कि फिर वही प्राचीन सभ्यता

का प्रवाह बहनेवाला है। थोड़ा थोड़ा तो प्राचीन रंग अब जमने लगा है। ईश्वर रक्षक है।

छठा लक्षण है अहिंसा। किसी को दुःख नहीं देना, मारना नहीं यही अहिंसा कहलाती है। शास्त्रों में कहा है कि 'अहिंसा परमो धर्मः' अन्य सब लक्षणों का अर्थ तो स्पष्ट ही है। किंतु सत्य और आत्म-समर्पण कुछ विशेषता रखते हैं। सत्य, सत्रों से मित्रता का व्यवहार ही सत्य कहलाता है। देखिए हमारे ऋषियों ने धर्म का कितना सुन्दर लक्षण बनाया है। आज यदि हम सभी सत्य धर्म का पालन करें तो समाजसंगठन, सुधार, उन्नति, कला कौशल, व्यवसाय सभी का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है। धन्य हो ऋषि महर्षियों! आप धन्य हो!! आप की ये सन्तानें कितने गहन गर्त में पड़ी हुई हैं। इन्हें कुछ सुमति प्रदान करिए और भारत, समाज, जगत् का उद्धार कराइए तभी भारतसपूत का दावा हो सकता है।

शिष्य—आत्मसमर्पण क्या है। य शब्द तो कई बार सुना है।

गुरु—आत्मसमर्पण भी एक बड़ा भारी यज्ञ है। भोग्यसामग्री ईश्वरार्पण कर, अपने उपयोग में लेना और सम्पूर्ण इन्द्रियों को ईश्वराधीन कर देना ही आत्मसमर्पण कहाता है। इस का विवेचन अन्यत्र 'मङ्गलसन्त्य में' किया जायगा।

शिष्य—जो इन लक्षणों का छोड़कर प्रत्युत इस के विरुद्ध आचरण करते हैं उन्हें क्या होता है।

गुरु—उन का सर्वनाश हो जाता है। और यहीं दुःख भोगना पड़ता है। उन का मन यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ घूमा करता है। उन्हें घर की स्त्री, पुत्र, माता, पिता कुछ अच्छे नहीं लगते, वे स्त्री को भी अनुचित शिक्षा देते रहते हैं और उन का रूप ही अन्य हो जाता है। जिस प्रकार एक गङ्गा है वह स्वर्ग में गङ्गा ही रहती है। किंतु नीचे गिरने पर रूप बदल देती है।

'शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं।
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्''''''
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

अत जो धर्मानुसार आचरण करते हैं वे धन्य, मान्य, आदरणीय एवं वन्दनीय हैं।

गीतागौरव-गभस्ति

(आगामी विशेषाङ्क—गीतागौरवाङ्क, पाचवें भाग के एक सन्दर्भ की झलक)

तत्रैवं सति कर्तार-
मात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वा-
न्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

ऐसी दशा में जो मनुष्य असंस्कृतबुद्धि होने के कारण केवल अपने को ही सब कर्मों का कर्ता समझता है, वह दुर्बुद्धि वस्तुतः कुछ नहीं समझता।

गी० गौ०—हे अर्जुन, जब वास्तविक स्थिति ऐसी है कि आत्मा साक्षीरूप केवल आभासकमात्र कर्ता है, कार्य करने का अपने में साक्षात् अनुभव करनेवाले दूसरे ही चार हैं, तब जो मन्दबुद्धि इस बात को समझने के लिए सत्संग, विवेक, विचार आदि का सहारा नहीं लेता और असंग आत्मा को कर्मों के

साथ जोड़कर कर्ता मान बैठता है वह अभिमानिक पुरुष आत्मा के अकर्तृत्व का रहस्य नहीं समझता है। आत्मतत्त्व तो निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सूक्ष्म, परिपूर्ण सदानन्द चिन्मात्र है। जो उस को कलाओंवाला, क्रियावान्, चञ्चल, बदलनेवाला, दूसरे के साथ विकारवान्, अज्ञ, फँसा हुआ, मोटा पतला, अतृप्त, दुखी सुखी और जड़वत् समझता है वह महामूर्ख है।

क० प्र०—प्रभुप्रेमी सज्जनो, कर्तृत्वाभिमानी जीवगण पूर्वोक्त पाँच हेतुओं को अपने ऊपर आरोपित करके अपने को ही कर्ता भोक्ता मानते हैं, यही उन का काल्पनिक बन्धन है। विचारपूर्वक देखा जाय तो इन पाँचों में आत्मा कहाँ दिखाई देता है? वास्तविकता यह है कि सूर्य जैसे विषयरूप न होकर नेत्रों के विषय को प्रकाशित करता है वैसे ही आत्मा कर्मरूप न होकर कर्मों को प्रकट करता है। जैसे तरह दर्पण देखनेवाला प्रतिबिम्ब या दर्पण दोनों से पृथक् है, पर प्रतिबिम्ब का प्रकाशक वह है, उसी तरह आत्मा कर्म या कर्तारूप न होकर उन दोनों को प्रकट करता है। परंतु जिस की बुद्धि को यह भान होता है कि मैं कर्ता भोक्ता हूँ, वह अपने चैतन्य का अपलाप कर अपने को जड़ बनाता है, वह आत्मा के विषय में मध्य रात्रि के अन्धकार में डूबा हुआ है। इस पर उसे विश्वास नहीं होता कि आत्मा कर्मों से परे, और साक्षीरूप है। कर्मलिप्त संसारी जन जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब की तरह आत्मा को भी समझता है, उस के विचार से जल सूख गया तो मानो सूर्य भी नष्ट हो गया, जल में लहरें उठती हैं तो वह सूर्य को भी हिलता हुआ कल्पना कर लेता है। निद्रित मनुष्य को जब तक चेत नहीं होता तब तक स्वप्न सत्य ही मालूम देता है, जब तक आँखों में पीलिया रोग है तब तक सब ओर पीलापन ही नजर आता है, व्यामोहवश मृग भी मृगतृष्णा को सच मानने लगता है; यही हाल अज्ञान व अभिमान से आच्छन्न पुरुष का है। वह सज्जन, महानुभाव या गुरुओं के सामीप्य को तथा शास्त्रविचार की छाया भी अपने पर नहीं पड़ने देना चाहता, लोग जैसे बादलों के गतिवेग को चन्द्र पर आरोपित करते हैं वैसे ही वह देहात्मबुद्धि के कारण आत्मा पर देहरूपी जाल के बन्धन को मजबूत करता है। और फिर वह उस भूल के कारण देहरूपी कैदखाने में कर्म की दृढ़ गाँठ से बँध जाता है। अतएव जो निर्मल आत्मस्वरूप पर प्रकृति के किये हुए कर्म आरोपित करता है वह कोटि कल्पों तक संसार से मुक्त नहीं होता है।

यहाँ संदेह हो सकता है—जो पुरुष अकर्ता आत्मा को कर्ता समझता है वह क्या गलती करता है? नित्यप्रति का अनुभव तो यही कहता है कि देह आदि जड़ अधिष्ठानों में यह कार्यानुभवकर्तृत्व कभी नहीं देखने में आया जो चेतन आत्मा में अनुभूत है। इस लिए प्रत्यक्ष प्रमाण के बल पर आत्मा में ही कर्तृधर्म सिद्ध होता है, यदि ऐसा नहीं है तो मृत शरीर में कोई चेष्टा देखने में क्यों नहीं आती? अतः यही सिद्धान्त मानना चाहिए कि जैसे वायु चलने पर वृक्ष हिलता है वैसे ही आत्मा के चेष्टा करने पर शरीर चलता फिरता है। इस शङ्का पर कह सकते हैं कि यह बात ठीक है कि कर्तृत्व आत्मा में है, क्योंकि वह मृत देह आदि जड़ वस्तुओं में नहीं देखा जाता। परंतु श्रुतिवचन और युक्तिबल पर विचार करने से आत्मा की कर्तृता सिद्ध नहीं होती। आत्मा आकाश की तरह अक्रिय निरवयव है इस से उस में चलनक्रिया संभव नहीं। क्रिया को आत्मा का निजी धर्म मानें तो कोई रुकावट न होने पर धर्म धर्मी में अवश्य रहना चाहिए, पर सुषुप्ति अवस्था में पूर्ण निष्कण्टक एकाग्रता रहने पर भी आत्मा में कोई चेष्टा नहीं होती; इस से सिद्ध होता है कि आत्मा का कर्तृत्व धर्म नहीं है। यह शरीर का धर्म है, पर आत्मा के सहकार से प्रकट होता है, जैसे कि किसी अश्मकान्त (चुम्बक) के समीप साधारण लोहे के टुकड़े नाचने लगते हैं। सुषुप्तिकाल का यह भान सर्वजन विदित है कि 'मैं ऐसा सुख से सोया कि कुछ भी न जान सका;' "सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषम्।" और उस काल में आत्मा तो रहता ही है, जैसे स्वप्न का अनुभव होता है वैसे ही सुषुप्ति का भी आभास होता है। वहाँ आत्मा सुख का अनुभव करता है, पर उस में कर्तृत्व नहीं रहता, क्योंकि उस समय देह के सब व्यापार शान्त रहते हैं। यदि कहो कि सुषुप्ति में भी सुख से सोनारूप क्रिया तो आत्मा में है ही, तो यह कहना भी संगत नहीं, क्योंकि 'है' 'पड़ा है' आदि क्रिया सामान्य से निरवयव वस्तु की सत्तामात्र प्रतीति होती है न कि किसी विशेष क्रिया की, इस लिए सुषुप्ति में सोना तो ऊपरी बात है, असल में वहाँ सुखी रहना ही

मालता है। जैसे 'आकाश लाल है' ऐसा कहने से निरवय आकाश को किसी भेद या परिवर्तन का बोध नहीं होता, उस में बड़ा होना व्यवहारमात्र है वैसे ही आत्मा को समझो, पर आत्मा तो उस से भी सूक्ष्म है।

तब प्रश्न होता है कि कर्ता कौन है, पूर्वोक्त पाँच कारणों में जो एक कर्ता है उस का क्या स्वरूप है? इस विषय में यह समझना चाहिए कि वास्तव में आत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध, निर्विकार और असंग है प्रकृति से प्रकृतिजन्य पदार्थों से या कर्मों से उस का कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु जीवों के संस्कारवश अनादिसिद्ध अविद्या के कारण असंग आत्मा का ही इस प्रकृति के साथ संग सा हो रहा है। अतः वह प्रकृति द्वारा संचालित क्रियाओं में मिथ्या अभिमान करके स्वयं उन कर्मों का कर्ता बन जाता है। इस प्रकार कर्ता बना हुआ जीव ही 'अभिमानी आत्मा या ईश्वर साक्षी कहा जाता है। यद्यपि प्रकृति जड़ है पर आत्मा के संसर्ग से वह चेतन धर्म से अनुरक्त होकर अहमभावश उस चैतन्य के स्पन्दन को क्रियारूप से प्रकाशित करती है, उस आत्मा का साक्षीपन और प्रकृति के संसर्ग से आत्मा ही कर्तृत्व कहा जाता है। पूर्वोक्त पाँच कारणों में जो एक कर्ता है वह इसी ढंग का है और यहाँ पर आत्मा को केवल, समाहित, अकर्ता बतलाकर उस का यथार्थ स्वरूप कहा गया है। जब आत्मा इतना उदासीन और परे का पदार्थ है तो इस को कर्म करने जैसे अस्वाभाविक काम में लगाने के लिए ऐसी जोरों कोशिश क्यों की जा रही है? इस प्रश्न पर कह सकते हैं कि उस शुद्धस्वरूप, देहादि बन्धन से असंस्पृष्ट आत्मा के लिए कर्म करने की रत्ती भर भी कोशिश नहीं की जा रही है। *जो संसार में आ फँसे उन के लिए कहना है कि उन* का बिना कर्म किये छुटकारा नहीं। वे लोग कर्म करके अपना छुटकारा कर लें, ऐसा सामान्य *नियम के लिए ज्ञानियों* को भी कर्म करने की आवश्यकता है, इस के लिए वे जब तक जीवित रहें तब तक कर्म करें और शरीरपात के बाद भी आवश्यकता समझें तो संसार में फिर भी जन्म लेवें यही आदर्श भगवान् ने दिखलाया है। इसी से वे कहते हैं— "*नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।*" जैसे एक स्वच्छन्द बन्दर बाजीगर के फंदे में फँस जाता है वैसे ही यह जीवात्मा प्रकृति के त्रिगुणित फंदे में फँस गया है। बाजीगर बंदर से ही अपना पेट पालता और डंडे के जोर से नचाता भी है वैसे ही प्रकृति आत्मा के सहारे से कर्तृत्वप्रकाश करती और उन सब कर्मों को *जीवात्मा पर थोप देती है।* अब उस बंदर की छुट्टी नाचते नाचते बेदम होने पर ही हो सकती है, यदि वह बीच में नाचना बंद कर दे या कुछ गड़बड़ करे तो उस पर बेतहाशा डंडा की मार पड़ती है यही हाल संसार में कर्मविमुखों का समझ लो प्रकृति खूब कसर *निकालती है।* इन नैमित्तिक कर्मों के त्याग का कुफल योगीन्द्र भर्तृहरिजी ने यह दिखलाया है—

ये मूढा प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः।
ते नैरेव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिता॥
केचित् पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे।

जो मूर्ख अयथार्थ सब इष्टार्थसाधक स्वभाव कर्मों को त्यागकर किसी अज्ञात, कल्पित वस्तु की खोज में दूर निकल जाते हैं, कर्मदेव उन पर कुपित होकर कड़ा दण्ड देते हैं। वे निर्दयतापूर्वक दुर्दशा करके किसी को नंगा करके निकाल देते हैं, किसी का सिर मुँड़ा देते हैं किसी को पाँच हिस्सों में बाल चोटियों से कलंकित कर छोड़ देते हैं और किसी के सिर पर जूड़े का भार बाँधकर निकाल बाहर करते हैं। कर्मदेव अपने मुजरिमों को ऐसा दण्ड देते हैं फिर आगे पता नहीं कि उन की तरफदार वह अनिर्वचनीय वस्तु उन के आँसू भी पोंछती है या नहीं। अस्तु यह तो कवियों की उड़ान हुई, पर बहुत से अंश में देहगृहाभिमानियों के लिए यह बात सच है। वस्तुतः परमात्मतत्त्व बड़ा सूक्ष्म, विलक्षण और दुर्ज्ञेय है, उस की प्राप्ति में बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं, किन्तु हमारा उद्देश्य तो उस को पाना है। अपनी उस प्रिय तत्त्वप्राप्ति की आराधना में हम कैसे भी बेहाल, विकृत हो जायँ, यह हमारा दूषण नहीं भूषण कहलायेगा। हाँ, इतना हो सकता है कि प्रकृति के राज्य में बसते हैं, इस लिए उस के साथ बिगाड़ न करने के लिए उस के दिखावे ऊपरी तौर पर अलग होकर कुछ कर्म भी कर लिया करें। जब हम इस के चक्र में आवर्तित हो गये हैं तो मजबूरन उस में घूमते हुए ही छूट सकते हैं।

सार ? इस ईश्वर और जीवतत्त्व समझने के लिए विद्युत् (बिजली) का दृष्टान्त उपयोग करना होगा। हमारे देखने में पदार्थों की स्थूलता आकाश में जाकर सूक्ष्मता की सीमा को पहुँच जाती है, पर सम्पूर्णता का आधार वह है इस से

मालूम होता है कि उस में भी कुछ परमसूक्ष्म अटकाव है। इसी से उस का अनुमान हो जाता है, पर विद्युत् तत्त्व इतना महासूक्ष्म है कि इन्द्रियों से उस का अनुमान भी नहीं हो सकता। अब अर्थापत्ति प्रमाण के बल से जानकर लोगों ने नये साधनों द्वारा उस को विकसित कर लिया है, पर यह आकाश से भी अधिक विभु सर्वव्यापक है। ऐसे ही प्रमाणों के बल पर साधक लोग परमात्मा का अन्दाज लगाकर उस की टोह लेते रहते हैं और उपासना द्वारा उस को प्रकट भी कर लेते हैं। उस की सूक्ष्मता इसी से समझ लो कि पृथ्वी, तेज, बाष्प (जल) वायु और आकाश की अपेक्षा विद्युत् अतिपरम सूक्ष्म है, उस से भी कितना ही गुना परमात्मा १०८ परमसूक्ष्म है। अब जिस प्रकार परमस्वतन्त्र विद्युत् तत्त्व को मशीनों द्वारा पुञ्जीभूत कर, तरह तरह से प्रवाहित करके काम में लिया जाता है वैसे ही निर्लेप, निराकार, ईश्वर, प्रकृति (माया) के सान्निध्य से कर्ता, भोक्ता बद्ध जीव बन जाता है। उस विद्युत् में प्रकाश और जलन नहीं होती, क्योंकि वह आकाश से ज्यादा निर्गुण है, तो भी विविध पदार्थों के संयोग से उस में प्रकाश और ताप भी आ जाता है, वैसे ही जीव में कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि धर्म न होते हुए भी प्रकृतिवश आरोपित हो जाते हैं। अब उस कार्यबद्ध विद्युत् की मुक्ति हो कब ? जब जलन, ताप, आकर्षण करते करते ठंडे तार द्वारा जमीन में चली जाय तब ! नहीं तो बहुत दिन तक उस को 'पावरहाउस' में कैद रहना पड़ेगा। एवमेव यह जीवात्मा कर्मों में व्यापृत रहकर ही अपने को खपा डाले तब उस की मुक्ति हो, प्रकृति ने उस को इसी लिए कैद किया है।

यहाँ देखना चाहिए कि विद्युद् तत्त्व कितना अधिक सूक्ष्म, तीक्ष्ण, असंग, निर्लेप, निर्विकार और नीरूप है तथा अपरोक्षरूप से हमारे पृथ्वीलोक का धारण, पोषण, आकर्षण और अघमर्षण कर रहा है। इस महत्त्वपूर्ण पदार्थ को मनुष्य ने बुद्धि के बल पर आबद्ध करके क्रियावान् कार्यक्षम बना डाला, वस्तुतः क्रियाकारिता विद्युत् में नहीं, पदार्थों में होती है, परंतु वह विद्युत् प्रभाव से ही है। हम कहते हैं कि पंखे को बिजली चला रही है, पर असलियत यह है कि बिजली के धर्म का असर पड़ने से पंखा अपने स्वभावश स्वयं घूमता है और हम घुमानेवाले का आरोप बिजली पर कर देते हैं। यही न्याय पूरी तौर से परमात्मा पर लागू है। वह स्वयं अकर्ता होकर प्रकृति के साथ कर्ता मालूम पड़ता है। एवं विद्युत्स्वरूप के ज्ञाता वैज्ञानिक की अपेक्षा इतर लोग जैसे मूर्ख हैं, फिर भी उस के काम में अपने विचारानुसार टाँग अड़ाकर अनधिकारचेष्टा का कुफल भोगते हैं वैसे ही आत्मतत्त्वज्ञ सज्जनों की बात न मानते हुए अपने को ही कर्ता, भोक्ता मानकर संसार के स्वभावनियत कर्मों में हस्तक्षेप करते हैं वे दुर्मति हैं।

इस रीति से भगवान् ने यह बतलाया कि केवल अपने को कर्ता मानना अहंकारभरी दोषयुक्त बुद्धि का द्योतक है, जैसा नहीं है वैसा अपने को मानना, यह निराधार अहंता का लक्षण है। कर्म का कर्तृत्व अपने पास कितना है कितना नहीं, इस का विचार करने से स्पष्ट होगा कि मनुष्य के पास अहंकार करनेयोग्य कर्तृत्व नहीं, जो कुछ कर्तृत्व मनुष्य के पास आ सकता है वह अधिक से अधिक पाँचवाँ हिस्सा है और वह भी दूसरों की अनुकूलता होने पर ही मिलनेवाला है, कोई अपने बल पर नहीं। इस लिए जो कर्तृत्व का घमंड करता है उस का घमंड अयोग्य, असत्य और त्याज्य है।

शङ्का

(प्रे०—एक जिज्ञासु)

"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ।"

इस पातञ्जलसूत्र का जो अर्थ गताङ्क में दिया गया है वह संतोषजनक नहीं मालूम पड़ता। विशेषतः "कथन्ता" पद का विवरण बहुत ही अस्पष्ट है। अहिंसा, सत्य इत्यादि चार यमों का फल जैसा वर्तमान काल से संबन्ध रखता है वैसा ही इस यम का भी होना उचित है। सो मेरा जिज्ञास्य यह है कि अर्जुन को अपने इस जन्म संबन्धी कार्यकारणभाव के विषय में कौन सा सत्य ज्ञात हुआ।

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥
—गी० ४।५

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥
—गी० ११।३१

इन वचनों से मालूम पड़ता है कि कृष्ण वस्तुतः कौन है और मेरा कर्तव्य क्या है इस बात में अर्जुन की बुद्धि चकरा गई थी।

११ वें अध्याय के ३२,३३ और ३४ वें श्लोकों में भगवान् ने इस का खुलासा किया है।

तुम्हारी आत्मा जन्ममरणरहित होने पर भी तुम्हारा जन्म "निमित्तमात्र" है। तुम्हारे द्वारा मैं लोकसंहार कराना चाहता हूँ। कारण, महारूप से मैं अरूपी हूँ।

यही तुम्हारी जन्मकथनता है। और यह तुम्हारे अपरिमेय यम में स्थैर्य का फल है। जैसा कि अर्जुन आगे कहता है—

"स्मृतिर्लब्धा"
—गी० १८।७३

ॐ तत्सत्

गीताजयन्तीपर्व

गीताजयन्ती महोत्सवपर्व—यह महापर्व—इतना रूढ़ हो गया है कि पञ्चाङ्गघोषित मङ्गलदिनों में भी इस को आदर का स्थान प्राप्त है। तथापि वार्षिक प्रथानुसार हम अपने पाठक पाठिकाओं तथा अन्यान्य हितचिन्तकों को इस का शुभ स्मरण कराते हैं।

१८ दिसम्बर को सब गीताप्रेमियों का कर्तव्य होना चाहिए कि गीता देवी की यथाशक्य पूजा करें, जिस का गीतापाठ प्रवचनादि एक प्रधान अङ्ग रहे।

मनःस्थैर्य के लिए स्थूल रूप की कल्पना करने की शास्त्र स्वयं व्यवस्था देता है, जिस का महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विद्यानन्दजी ने बड़ोदा, अहमदाबाद इत्यादि स्थानों में गीता देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करके केवल लोकसंग्रह के उद्देश्य से अनुमोदन किया है।

हमारे गी० ध० प्रे०, कार्यालय में गीताजयन्ती का कार्यक्रम तो यथाविधि संपन्न होगा ही।

व्यवस्थापक—
गीताधर्म, काशी।

ગીતા જયન્તી પર્વ

ગીતા જયન્તી મહોત્સવ પર્વ—આ મહાપર્વ—એટલું રૂઢ થઈ ગયું છે કે પંચાંગોમાં પણ એની તહેવારના દિવસોમાં ગણના ગણાવા લાગી છે. છતાં પણ વાર્ષિક પ્રથાનુસાર અમે અમારાં વાંચક ભાઈ બ્હેનોને તથા અન્યાન્ય હિતચિન્તકોને એનું શુભ સ્મરણ કરાવીએ છીએ.

તા. ૧૮ મી ડીસેમ્બરે સર્વ ગીતા પ્રેમીઓનું એ કર્તવ્ય ગણાવું જોઇએ કે તેઓ તે દિવસે ગીતાદેવીની યથાસાંગ પૂજા કરે, જેના અંગે ગીતા પાઠ, પ્રવચન આદિ ખાસ કરવા કરાવવામાં આવે.

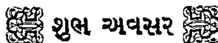
મનની એકાગ્રતા માટે સ્થૂલ રૂપની કલ્પના કરવાની શાસ્ત્ર પણ આજ્ઞા આપે છે, જેને મહામંડલેશ્વર શ્રી સ્વામી વિદ્યાનન્દજીએ વડોદરા, અમદાવાદ, ઇત્યાદિ સ્થાનોમાં ગીતાદેવીની પ્રતિમાઓ પ્રતિષ્ઠાપિત કરીને કેવળ લોકસંગ્રહના ઉદ્દેશથી અનુમોદન આપ્યું છે.

અમારા ગી૦ ધ૦ પ્રે૦ કાર્યાલયમાં ગીતાજયન્તીનો કાર્યક્રમ તો યથાવિધિ સંપન્ન થશેજ.

વ્યવસ્થાપક—

ગીતાધર્મ, કાશી.

શ્રી મદ્ભગવદ્ગીતા આલ્બમ

મુલ્ય માં રૂ. ૧) કમી. 

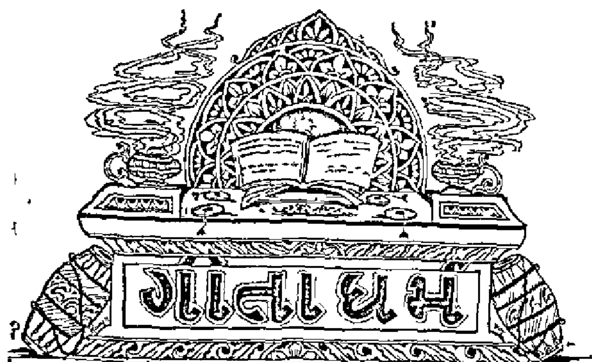
 મુલ્ય માં રૂ. ૧) કમી.

આ આલ્બમમાં શ્રીમત્. ૫૦ ૫૦ પ્ર૦ લો૦ ગી૦ જગદ્‌ગુરૂ, મહામંડલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી વિદ્યાનંદજી મહારાજની ગીતા પ્રવૃત્તિને અંગે ભારતવર્ષના જુદા જુદા પ્રાન્તો અને નગરોમાં ગીતાનો ઉપદેશ તથા ગીતા પ્રવચનોના સમયનાં ચિત્રો બહુરંગી તથા એકરંગી મળીને કુલ ૭૨ છે. અને ગીતા સંસ્કૃત શ્લોક તથા તેના અર્થ ગુજરાતીમાં રંગીન બોર્ડરમાં છાપેલા છે, તેની કીંમત. પ્રથમ. રૂ. ૨) બે રાખેલી હતી. પણ એક ગીતાપ્રેમી ગૃહસ્થ તરફથી એક હજાર રૂપીયા ગીતા આલ્બમના પ્રચાર વાસ્તે અમને મળેલા છે. જેથી હાલ કીંમત રૂ. ૧) એક રાખેલો છે. શાખાઓમાંથી પારસલ ખર્ચ છ આના વધુ લઈ અપાશે. અને અત્રેથી ટપાલ મારફતે મંગાવનારે પોસ્ટ ખર્ચ બાર આના આપવા પડશે. માટે જેમ બને તેમ મેળવી લેવા ઉતાવળ કરવી. એક હજાર કોપી આ કીમતમાં આપવાની છે. તે પછી તેની અસલ કીંમતેજ વેચાશે.

વ્યવસ્થાપક—

ગીતાધર્મ, કાશી.

સંસ્થાપક:—શ્રીમત્પરમહંસ, પરિવ્રાજકાચાર્ય, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકપ્રસિદ્ધ, ગીતાવ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી, મહારાજ.



સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ ; અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચઃ.

વર્ષ: ૭ મું } કાશી ડીસેમ્બર ૧૯૪૨ : { અંક ૧૨ મો

શ્રી ગીતાદેવીની આરતી.

હે માત દેવી ગીતે! સંતાન સૌ તમારાં;
કરીએ મળીને વંદન, સ્વીકારજો અમારાં. હે–
હિન્દુ અને મુસલમીન, વિશ્વાસી, પારસી, જિન;
દેવી! સમાન રીતે સંતાન સૌ તમારાં. હે–
રોગી અને નિરોગી, નિર્ધન અને તવંગર;
જ્ઞાની અને નિરક્ષર, સંતાન સૌ તમારાં. હે–
વાલ્મીકિ, વ્યાસ, નાનક, મીરાં, કબીર, તુલસી;
અકબર, શિવાજી, માતા! સંતાન સૌ તમારાં. હે–
સૌની સમાન માતા, સૌએ સમાન તેથી;
ના ઉચ્ચ નીચ તારે, સંતાન સૌ તમારાં. હે–
ચાહો બધા પરસ્પર, ચાહો બધા પરસ્પર;
એ પ્રાર્થના કરે આ, સંતાન સૌ તમારાં. હે–

હું કોણ ?

(લે૦—ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

ઘણાએ મનુષ્ય પોતાના જીવનમાં ઘણીએ વાર વિચાર કરે છે કે હું કોણ છું ? પરંતુ માયામાં લીન થએલો મનુષ્ય પછી આગળ વિચાર કરતો નથી. પરંતુ પુર્વ જન્મનો સંસ્કાર હોય તેવો મનુષ્ય આ બાબત પૂર્ણ વિચાર કરીને તેની શોધમાં રહે છે, પરમાત્માની કૃપા હોય તો પરમાત્માના ચિન્તવનમાં પોતે પોતાનો વખત ગાળે છે અને કોઇ બ્રહ્મનિષ્ઠ મહાત્માની શોધમાં રહે છે. બ્રહ્મનિષ્ઠ મહાપુરૂષનો ઉપદેશ અને વચનામૃત ગ્રહણ કરી મોહ, લોભ, માયાનો ત્યાગ કરવાની વૃત્તી ધારણ કરી, આ સંસારમાંથી ચિત્ત મનોવૃતીઓ એકાગ્ર કરી શ્રી ભગવદ્ વિચારમાં લીન રહે છે.

મનુષ્ય વિચાર કરે છે કે હું એટલે ? આ શરીર છે કે તે સીવાય બીજી વસ્તુ છે ? જો શરીર હું છું તો શરીરમાંથીચેતન વસ્તુ જતી રહે છે. એટલે મૃત દેહ કાંઇ બોલતો નથી, ચાલતો નથી, કોઇ પ્રકારની ક્રિયા તે કરી શક્તો નથી. માટે આ શરીર તે હું નથી. બાકી જે ચેતન વસ્તુ હું છું, એજ વસ્તુ તે આત્મા, બ્રહ્મ, માટેજ તત્વજ્ઞાની પુરૂષો આત્મવિચાર એટલે હું આત્મા છું. હું બ્રહ્મ છું, હું ચેતન છું, એમાં મગ્ન રહી આ સંસારની અસત્ય વસ્તુઓનો ત્યાગ કરી માયાથી પર રહી સુખદુઃખ રહિત આ સંસારમાં વિચરતો છતાં નિસ્પૃહી રહી પરમ આનંદ અનુભવે છે અને છેવટે જીવન મુક્તી મેળવે છે, આ વિષે એક દ્દષ્ટાંત જરૂરી છે.

એક ઓરડામાં કેટલાંક માણસો બેઠેલા છે તે ઓરડામાં વિજળીની બત્તીઓ છે અને બીલકુલ અંધારૂ છે. હવે બેઠલા માણસે ને પ્રકાશ તો જોઇએ છે. પરંતુ કેટલાએક તેમાં એવા છે કે પ્રકાશ લાવવા માટે પ્રયાસ કરવા તૈયાર નથી અને કેટલાક એવા છે કે આ ઓરડામાં પ્રકાશ તો આવવોજ જોઇએ અને પ્રયાસ કરવોજ જોઇએ, તેથી કોઇ વીજળીના નિષ્ણાત પુરૂષને બોલાવી લાવી સ્વીચો દબાવી, પ્રકાશ થયો અને ઓરડામાં પોતે ખુબ આનંદ લીધો. એટલે સંસારરૂપી ઓરડામાં માયારૂપી અંધકારને દૂર કરવા અને પ્રકાશ લાવવા બ્રહ્મનિષ્ઠ મહાપુરૂષની જરૂર રહે છે. અને બ્રહ્મનિષ્ઠ તત્વજ્ઞાની પુરૂષ પોતાના જ્ઞાનના અનુભવથી જ્ઞાનનો ઉપદેશ આપે છે તેથી મનુષ્ય તત્વજ્ઞાન, આત્મજ્ઞાન મેળવે છે અને હું કોણ છું ? તેનું જ્ઞાન, મેળવી પરમાનંદની પ્રાપ્તી મેળવે છે ?

પરંતુ આ વસ્તુ બને ક્યારે ?

અંતઃકરણની શુદ્ધી થાય ત્યારે. (ૐ ઇતિ)

ગણપતિ અને ગીતા

(લે૦—શ્રીમત્પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય પ્રસિદ્ધ લોકસંગ્રહી ગીતાવ્યાસ શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ મહામંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ)

(ગયા ગણેશોત્સવના અવસર ઉપર વડોદરા નરેશના 'લક્ષ્મીવિલાસ' રાજમહેલમાં સરકારી ગણપતિ પૂજાના ઉપલક્ષ્યમાં મહારાણી સાહેબ, રાજબાળકો, સરદારો અને આમન્ત્રીત સદ્‌ગૃહસ્થો સમક્ષ પૂજ્ય સ્વામીજીનું જે પ્રવચન થયું હતું તેનો સારાંશ.)

अन्तरायतिमिरोपशान्तये
शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम्।
तमरं वपुषि कुञ्जरं मुखे
मन्महे किमपि तुन्दिलं महः॥

વિઘ્નરૂપી અંધકારની નિવૃત્તિને માટે અમે આવા કોઈ અનિર્વચનીય (અવર્ણીત) તેજનું ધ્યાન કરીએ છીએ કે જે શાંતીની મૂર્તિ તો છેજ સાથે સાથે પાવન પણ છે, જેના વૈભવનો પ્રકાશ બુદ્ધિની કલ્પનાની બહાર છે, જે મોઢેથી હાથીના આકારના અને બીજાનું શરીર નરાકાર તથા લંબોદર (મોટા પેટવાળા) છે. તે ગણપતિ અનાદિ અને અનન્ય છે. તેમને શંકરપુત્ર કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જેમ શંકરજીના આદિ અંત અને જન્મ વિગેરેનો નિશ્ચય નથી તેવીજ રીતે તેમના પણ આદિ અંતનો નિર્ણય થઈ શક્યો નથી. શંકરજી અષ્ટમૂર્તિ કહેવાય છે, અર્થાત પૃથ્વી, જલ, અગ્નિ, વાયુ, આકાશ, સૂર્ય, ચંદ્ર, અને યજ્ઞકર્તા એ સર્વ તેમના સ્વરૂપ છે. ગીતાના શબ્દોમાં કહીએ તો એ ભગવાનની પરા અને અપરા પ્રકૃતિ છે. પરંતુ, આ સામગ્રી એકઠી કરવાવાળા તો શંકરજી કર્યાં એટલા માટે તેઓ પિતા કહેવાય છે, તથા એ સામગ્રીથી યજ્ઞ (કર્મ) કરવાવાળા જીવોને સિદ્ધિદાતા ગણેશજી છે, એટલા માટે તે તેમના પુત્ર કહેવાય છે. તેમની અનાદિતા એનાથી સિદ્ધ છે કે શિવ પાર્વતીના વિવાહમાં પહેલી પૂજા તેમની થઈ અને પ્રત્યેક પૂજામાં તેમનું આસન આગળ છેજ, વળી એમ પણ કહેવામાં આવે છે—

"कलौ चण्डी विनायकौ"

કલીયુગમાં દુર્ગા અને ગણપતિજ પ્રત્યક્ષ ફલ આપનાર જાગતા દેવતા છે. કહેવામાં તો રીદ્ધિ સિદ્ધિ તેમની બે પત્નિયો છે પણ તે એટલું નિષ્કામ વ્રતનું આચરણ કરે છે કે તેમને તેઓ પોતાના ભક્તોનાં કાર્યોને સફલ બનાવવામાંજ પ્રયત્નશીલ રાખે છે. તેથીજ કદાચ વૃદ્ધ શંકરજીને પૌત્રનું મુખ જોવાનું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત ન થયું. કેમકે આજસુધી એવું સાંભળવામાં આવ્યું નથી કે ગણપતિજીનો અમુક પુત્ર છે. તુલસીદાસજી તો તેઓમાં ઘણા ઘણા ગુણ જુએ છે— 1

सिद्धिसदन गजवदन विनायक।
कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक॥
मोदकप्रिय मुद मङ्गलदाता।
विद्यावारिधि बुद्धिविधाता॥

તે તેમના બુદ્ધિવિધાતાપણાને લીધે (ગણેશજી પાસેથી) એમ માગે છે કે 'બસહુ રામસિય માનસ મોરે.' અર્થાત તે બુદ્ધિના દેવતા પણ છે, જે મનુષ્યમાં જેટલી બુદ્ધિ હોય છે, તે તેટલોજ વધારે બહાદુર, પણ હોય છે. તેમના માથાને હાથીનું

મસ્તક કહેવાનો એજ ભાવ છે, કેમકે ગજરાજ ઘણાજ ગંભીર અને સમજદાર હોય છે—

गजपुङ्गवस्तु धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते।

—भर्तृहरि

ઉંદર ઉપર તેમની સ્વારી છે. તેનો એવો અભિપ્રાય છે કે ઉંદરોનો સ્વભાવ બીજાઓની વસ્તુઓને નિરર્થક કાપી કાતરીને નષ્ટ ભ્રષ્ટ કરી નાખવાનો હોય છે. આ એવા આદમીઓનું રૂપક છે કે જેઓ વ્યર્થજ પારકાના હિતનું હનન કરે છે અને નિંદા બુરાઈ કે નકામો બકવાદ કર્યાં કરે છે. ગણેશજી જ્યારે કૃપા કરે છે ત્યારે તેમની ઉંદરના જેવી કુપ્રવૃત્તિ ઉપર સુબુદ્ધિસ્વરૂપ સ્વયં પોતે આવીને બેસાજે છે. અને એ પ્રકારે લોકોને સન્માર્ગ ઉપર ચલાવીને તેઓ ઉંદરની સ્વારી કરે છે.

ગીતાધર્મીયોની દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો તેઓ તેમને પરબ્રહ્મ ૐકાર સ્વરૂપ વિજ્ઞાનમયજ માને છે. ગણેશજીની લાંબી સૂંઢાકૃતિ, જે 'ૐ' કારની સાથે સુસાદૃશ્ય રાખે છે. તેનું એજ તત્વ છે, ગીતામાં ભગવાને તો તેમની સાથે એટલી તાદાત્મ્યતા બતાવી કે (ભાગવતમાં શ્રી રાધાજીની માફક) નામ ન લેતાં ઈસારાથી એટલુંજ કહ્યું કે—'પ્રણવઃ સર્વ વેદેષુ' તથા 'બુદ્ધિર્બુદ્ધિમતામસ્મિ' અને ગીતામાં યમ, કુબેર, વરૂણ, સૂર્ય, ચંદ્ર, શુક્ર, કંદર્પ, જેવા નાના નાના દેવતાઓની સાથે રૂદ્ર અને ગણેશજીના પ્રસિદ્ધ ભાઈ સ્કંદનું નામ આવ્યું છે, પણ એટલા પ્રસિદ્ધ, અગ્રપૂજ્ય, રીદ્ધિસિદ્ધિદાતા ગણેશજીનું નામ ન આવ્યું તેનું એ પણ કારણ છે કે ગીતાના અસલી મૂળ લેખક તો ગણેશજીજ છે. પોતાની વિભૂતિયો દર્શાવતાં ભગવાને તેમનું નામ તો અવશ્ય લીધું હશે. પણ ગણેશજીને પોતાનું નામ પ્રગટ કરવાનું ઠીક ન લાગવાથી તે કાઢી નાખ્યું હશે. કેમકે પ્રસિદ્ધ ગ્રંથકર્તાઓના નિબંધોમાં પોતાનું નામ પ્રગટ નહિં કરવાની પદ્ધતિ પહેલાના લોકોમાં કેટલાક સમય પહેલાં સુધી ચાલતી આવી છે. એટલે કદાચ ગણેશજીએ આ સંકેતોમાંજ પોતાનો પરિચય રહેવા દીધો હશે. જ્ઞાનેશ્વરજીના શબ્દોમાં તેમના સ્વરૂપની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણેની છે—હે વેદોથી વર્ણનીય આદિ રૂપ ૐકાર, આપને નમસ્કાર છે. આપજ સકલ અર્થ અને બુદ્ધિને પ્રકાશિત કરનારા ગણેશ છો, જે આ સઘળા વેદ છે તેજ આપની સુંદર મૂર્તિ છે, વેદોના અક્ષર આપનું નિર્દોષ શરીર છે, સ્મૃતિઓ આપના અવયવ છે, શરીરનો ભાવ જોઇએ તો અર્થની સુંદરતા આપના લાવણ્યની દ્યુતિ છે. અઢાર પુરાણ મણિભૂષણ છે, પ્રમેય રત્ન છે, પદ રચના તેમનું કુન્દન છે. ઉત્તમ પદલાલિત્ય રંગાયેલું વસ્ત્ર છે, જેમાં સાહિત્યશાસ્ત્રજ ઉત્તમ તાનાવાના (આડા ઉભા તાર) છે અને કાવ્ય નાટક રૂમઝુમ કરવાવાળી ક્ષુદ્ર ઘંટડીયો છે, કાવ્ય નાટકોનો અર્થજ તે ઘંટડીયોનો ધ્વનિ છે. વ્યાસ આદિ રૂષિયોની બુદ્ધિ મેખલા સરખી સુંદર ભાસે છે. જે ષડદર્શન કહેવાય છે તેજ આપના હાથ છે અને જે ભિન્ન ભિન્ન મત છે તેજ આપના હાથોમાં શસ્ત્રો છે. તર્કશાસ્ત્ર ફરસી છે, ન્યાયશાસ્ત્ર અંકુશ છે અને વેદાંત અત્યંત સુરસમય મોદક છે. એક હાથમાં જે આપોઆપ તૂટી ગયેલો દાંત છે તે વાર્તિકકારોના વ્યાખ્યાનથી ખંડીત કરેલા બૌદ્ધમતનો સૂચક છે. વરદાયક કરકમલ સત્કાર્યવાદનું સૂચક છે, ધર્મની પ્રતિષ્ઠા આપના અભય હાથ છે. જેમાં મહાસુખનો આનંદ છે તે અત્યંત નિર્મલ વિવેક આપની લાંબી સૂંઢ છે. ઉત્તમ સંવાદ આપના સફેદ દાંત છે, જ્ઞાનદૃષ્ટિ આપનાં સૂક્ષ્મ નેત્ર

છે, બન્ને મીમાસાઓ આપના દીર્ઘ કાનોના સ્થાનમા જોવામા આવે છે, જ્ઞાનામૃત મદ છે અને વિવેકી મુની તેમનુ સેવન કરનાર ભમરા હોય એમ માલમ પડે છે તત્વાર્થ જ પ્રકાશમાન વાળ છે, દ્વૈત અને અદ્વૈત નિકુંભ છે અને બન્ને દ્વૈતાદ્વૈતોનુ જ્યા મીલન થાય છે તેજ આપનુ શોભિત કપાળ છે વેદાત અને ઉપનિષદ જે ઉત્તમ જ્ઞાનામૃતથી ખુલ્લા છે તે મસ્તકસ્થિત મુગટમા પુષ્પની સમાન છે' અકાર આપના બન્ને ચરણ છે, ઉકાર વિશાલ પેટ છે અને મકાર મસ્તકાકાર મહામડલ છે, એ ત્રણે જ્યા એકઠા થાય છે ત્યા વેદ સમાવિષ્ટ છે તે આદિબીજ ૐકારરૂપ ગણેશજીની ઉપાસના યોગીજન કર્યા કરે છે.

આ તો ગણેશજીની આધ્યાત્મિક વ્યાખ્યા થઈ તેમની દૈવિક મૂર્તિની સફલ ચરિતાર્થતા મહાભારતના લેખકરૂપથી સર્વ વિદિત છેજ ભાર તાન્તર્ગત ગીતામા જે ઉત્તમ બુદ્ધિયોગનુ પ્રતિપાદન છે, તેના સુબોદ્ધા લેખક તેમનાથી વધીને બીજો કોણ હોઈ શકતો હતો ? જ્યા એ બુદ્ધિયોગના જ્ઞાતા એ લોકોને બતાવવામા આવ્યા છે—

अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा ।

એ વચનમા ગણેશજીને પણ અગ્રસ્થાન આપવુ જોઇએ, કેમકે વ્યાસજીએ કરાર કર્યો હતો કે તમે વગર સમજે કઈ પણ લખશો નહિ અસ્તુ, જેવી રીતે આ ગીતાનુ પ્રતિપાદ્ય તત્વ રાજવિદ્યા (રાજા, ક્ષત્રિયોની વિદ્યા) કહેવાય છે અને ઉપનિષદોમા અનેક ક્ષત્રિય રાજા આ વિદ્યાના પ્રવક્તા કહેવામાં આવેલા છે (ભક્તા રાજર્ષયસ્તથા— ગી० ૯।૩૩) તે ન્યાયે ગણેશજીએ પોતાના સેનાપતિ ભાઈ સ્કદને તેનુ તત્વ અવશ્ય સમજાવ્યુ હશે. એટલા માટે અત્યારના રાજા, પ્રજા, સૈનિક સૌએ આ ગીતાને અપનાવવી જોઇએ. તેના ઉપર ક્ષત્રિયોએ તો પોતાનો વિશેષાધિકાર સમજવો જોઇએ, કેમકે ગીતાના વક્તા ભગવાન ક્ષત્રિય અને શ્રોતા અર્જુન ક્ષત્રિયજ હતા, જોકે એક શોધક કોઈ તત્વનો આવીષ્કાર કરે છે તો તેના પર વિશેષાધિકાર તો તેનો જ રહે છે, પણ તેનો લાભ સર્વ કોઈ ઉઠાવે છે, તેવીજ રીતે ક્ષત્રિયોનો ગ્રથ હોવા છતા પણ એ સર્વનો ગ્રથ છે અવિષ્કારક તો એક વ્યક્તિ હોય છે, પણ ગીતા તો રાજાઓનો એક સાપ્રદાયીક ગ્રથ છે, ઘણા લાબા કાલથી તેમનો તેમા પ્રવેશ છે, જેમ કે ભગવાન કહે છે—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥

—ગી० ૪।૧, ૨

'મે આ તત્વ સૂર્યનારાયણને કહ્યુ, તેમણે રાજા મનુને સભળાવ્યુ, મનુએ ઇક્ષ્વાકુને, આ રીતે તેને ઘણાય રાજર્ષિ કુલપરપરાથી શીખતા ચાલ્યા આવ્યા છે ' પરતુ 'યથા રાજા તથા પ્રજા' અનુસાર સર્વ સાધારણને પણ આ ઉત્તમ ગીતા ગ્રથથી પોતાનુ ગૌરવ વધારવુ જોઇએ તેના અભ્યાસિયોને અગર જો ભગવાન પ્રસન્ન થઇને શ્રી વિજય, ભૂતિ અને નીતિ આપે છે તો ગીતા ગણેશજીનુ પ્રિય આલેખન હોવાથી, તેઓ પણ તેની સાથે રિદ્ધિ અને સિદ્ધિયોને અવશ્ય ભેટ કરી આપશે, એમા કોઈ સદેહ નથી

ૐ તત્સત્

મૃત્યુ

(લે૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી શર્મા)

મૃત્યુનો ભય જીવમાત્રને હોય છે, તેને શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં અભિનિવેશ કહે છે. કે જે પાંચ ક્લેશોમાંનો એક છે. દરેક જીવને જે કાંઇ દુખ ઉઠાવવાં પડે છે તેમાંથી મોતનું દુખ સૌથી વધારે હશે એમ માલુમ પડે છે. કેમકે આ વાત કેવલ અનુમાન ઉપર નિર્ભર છે, મુમૂર્ષુ, મ્રિયમાણુ અથવા મરનાર વ્યક્તિનો ચહેરો જોઇને અનુમાન કરી શકાય છે કે મૃત્યુ કોઇ ભયાનક બનાવ છે. ખરેખર તો તે શું ચીજ છે એ મરનાર વ્યક્તિજ જાણી શકે છે અથવા તે નથી પણ જાણી શકતો, કેમકે કહેવાય છે કે મૃત્યુની અવ્યવહિત પૂર્વ ક્ષણમાં તે વ્યક્તિને મુર્છા ઘેરી લે છે. એવી દશામાં તે પણ મોતનું સ્વરૂપ નથી જાણી શકતો. એ ગમે તેમ હોય, પણ મૃત્યુના ડરનો અપલાપ કરી શકાતો નથી.

આ વાત સર્વજીવસંમત હોવા છતાં પણ દાર્શનિક પણ્ડિતોનો મત તેનાથી વિપરીત છે. તેનું મુખ્ય કારણ એ છે કે—પંડિતોનો મત એવો છે કે મૃત્યુ પછી બીજું જીવન પ્રાપ્ત થાય છે, મૃત્યુ થવાથીજ જીવનનો અન્ત આવ્યો ન સમજી લેવો જોઇએ. જેના વિષયમા પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ નથી મળતું તેના માટે મતભેદ થાય તે તો સ્વભાવિકજ છે. આવા મતામતના ઝગડા તો અનંત છે એટલા માટે ભગવાનનાં વચનોને આપ્તવાકય માનીને એ સમજવું જોઇએ કે આગળ પુનર્જન્મ અવશ્ય છે અને એમ માની લેવાથી સુદીર્ઘ કાલથી ચાલી આવતી જન્માન્તરવાદની પરંપરા સિદ્ધ થઇ ગઇ. કેટલાક લોકો એવા પણ છે કે જેમની એવી માન્યતા છે કે આ શરીરજ સર્વ કાંઇ છે. તેમની વિચારશૈલી એવી છે કે મૃત્યુ પામીને જ્યારે સર્વ શરીર નષ્ટ થઈ ગયું એટલે પછી આત્મા વિગેરે કશુંજ બાકી રહેતું નથી. એ લોકો પણ એક પ્રકારના દાર્શનિક કહેવાય છે. આ મત પણ સર્વ દેશો અને સર્વ કાલમાં રહ્યો છે. ભારતવર્ષમાં તેના પ્રધાન અર્થાત્ પ્રાચીનતમ આચાર્ય ચાર્વાક નામના કોઈ મહાપંડીત હતા. આ દલના લોક આજકાલ નાસ્તિક કહેવાય છે. તેના અનુયાયિઓને છોડીને બીજા સભ્ય, અસભ્ય ઘણે ભાગે સર્વ લોકોનો એ વિશ્વાસ છે કે આ દેહ જીવનનું અધિષ્ઠાન માત્ર છે. જન્મ અને મરણ એ જીવાત્માની સાથે શરીરનો યોગ થવો અને વિયોગ થવો તેનેજ કહેવાય છે. એક શરીર નષ્ટ થયા પછી જીવાત્માનો અત્યન્ત નાશ થઈ જતો નથી, એક દેહ નષ્ટ થઈ જવાથી જીવ બીજા દેહમાં પ્રવેશ કરે છે. વર્તમાન સમયમાં આજ મત સર્વને ગ્રાહ્ય થઈ ગયો છે, એટલે સુધી કે પાશ્ચાત્ય દેશોમાં પણ લોકો પ્રકૃતિવાદને ધીરે ધીરે છોડીને વિશ્વાસ કરવા લાગ્યા છે કે મૃત્યુ પછી પણ જીવન છે. તે લોકો પોતાના અધ્યવસાય દ્વારા મૃત વ્યક્તિનાં દર્શન સુધાંત કરી લે છે. તથા વાતચીતનો સંબંધ પણ સ્થાપીત થયેલો સાંભળવામાં આવ્યો છે. કયાં સુધી કહીએ, ત્યાંના પંડિતોએ આ બાબતની અધિક ગવેષણા કરવાને માટે એક વૈજ્ઞાનિક મંડળ સ્થાપિત કર્યું છે જેનું મુખ્ય કામ એ છે કે મૃત્યુ પછી થનારી ઘટનાઓનું અનુસંધાન આ જીવનમાંજ કરી લેવામાં આવે. આ વિષયમાં ગીતાકારનો શું મત છે તે બતાવી દેવો અનુચિત નહિં ગણાય—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गी॰ २।२२

જેવી રીતે કોઈ મનુષ્ય જુના કપડાં ફેંકી દઈને નવાં ધારણ કરે છે તેવીજ રીતે શરીરનો સ્વામિ આત્મા જૂના શરીરનો ત્યાગ કરી બીજા નવા શરીરને ધારણ કરી લે છે.

પરંતુ આ વિષય સમજાવવો એટલો બધો સ્હેલો નથી કે જેટલો તે માલુમ પડે છે. તેની વિશેષ મીમાંસા કપિલમુનીજીના સાંખ્ય દર્શનમાં કરવામાં આવી છે, તેમનો સિદ્ધાન્ત અને વેદાન્તનો સિદ્ધાન્ત એકજ છે. કહેવું અનાવશ્યક છે કે તેમાં ગીતાકારની પણ સંમતિ છે.

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

—गी॰ २।२०

અર્થાત્ જન્મ મૃત્યુ મિથ્યાજ છે. એવાજ હેતુથી અવિદ્યમાન વસ્તુનો ડર પણ અલીક અથી ક્તિક છે. મતલબ એ છે કે મૃત્યુ એ ડરાવનારી વસ્તુ નથી, આ વિષયમાં યોગવાસિષ્ઠનો થોડો ઉલ્લેખ કરીએ છીએ—

વસિષ્ઠજીનું કહેવું છે કે મૃત્યુથી ડરવું તે બિલકુલ મૂર્ખતા છે, કેમકે મોતનો અર્થ તો આ બે માંથી એકજ થઈ શકે છે કે યા તો મરવાથી મનુષ્યનો સર્વથા અન્ત આવી જવો કે પછી મૃત્યુ પછી તેને બીજું જીવન મળવું. આ બન્ને વાતોમાંથી કોઈ પણ હોય બન્નેય સારીજ છે. અન્તજ થઈ ગયો તો પછી ડર કઈ વાતનો? સર્વ આફતો અને મુસીબતોમાંથી સદાને માટે રાહત મળી, જીવન કે જેમાં નાના પ્રકારના ક્લેશ સહન કરવા પડે છે તે ટળી ગયા બધી ઝંઝટ મટી ગઈ, આમ થવાથી અફસોસ કઈ વાતનો કરવાનો અને ડર કઈ વાતનો માનવાનો? મૃત્યુથી જીવનનો અંત આવતો નથી, પરંતુ એક શરીરને છોડીને બીજામાં પ્રવેશ થાય છે, તો પછી તેમાં ડર અને અફસોસ શા માટે કરવામાં આવે? જુના અને રોગી શરીરને છોડી દેવું અને નવાને ધારણ કરવું એમાં કોને ખોટું લાગે? આ તો એવુંજ છે કે જેમ ફાટેલાં જુના કપડાં ફેંકીને નવા કપડાં પહેરવા અથવા જુના ભાંગ્યા તુટ્યા મકાનને છોડી નવામાં પ્રવેશ કરવો. આવું થાય તો તો દુઃખને બદલે સુખજ માનવું જોઈએ, અગર મોતથી પ્રાણીનો સર્વથા નાશ થઈ જતો હોય અને મર્યા પછી કોઈ પણ પ્રકારનું જીવન ન રહેતું હોય તો તેનાથી વધારે બીજો લાભ કયો? કેમકે ત્યારે તો સંસારના સર્વ દુઃખોથી છુટકારો મળી ગયો, કરવા ન કરવાના અને આપવા લેવાના તાપનીજ નિવૃત્તિ થઈ ગઈ. એવું મોત તો સાચું જીવન છે. કેમકે તેના પછી ન સુખ છે ન દુઃખ. અને મૃત્યુ પછી જો જીવને બીજા નવા શરીરની પ્રાપ્તિ થાય છે તો ઘણોજ હર્ષનો અવસર છે, કેમકે ત્યારે તો મોતનો અર્થ શરીરનોજ નાશ છે, એવું થાય તો તો દુઃખી ન થવું જોઈએ, એક શરીરને છોડીને વળી બીજું શરીર મળતું હોય તો ઘણાજ આનંદની વાત છે. એવા મરવા માટે તો આનંદજ થવો જોઈએ, નહિ કે અફસોસ. જો કે આત્માના અસ્તિત્વનો કદી નાશ થતો નથી, તથાપિ તેનું જન્મ મરણ અવશ્ય થાય છે, એ માનીને ઉપરની વાતો કહેવામાં આવેલી છે.

વાસ્તવમાં જન્મ મરણનો અનુભવ થવો એ

આત્માને અજ્ઞાનમુલક છે; ગીતાના મતથી આત્મા અશોચ્ય છે; કારણ, પ્રાણમય કોષનું આવવું અને જવું એને જન્મ મૃત્યુ કહેવાય છે. પાઠકોને એ કહેવું અનાવશ્યક છે કે ઉપર્યુક્ત ઉદાહરણમાં શ્લોકો આમ તેમથી ચૂંટી લીધા છે, હવે ઉપસંહારમાં તેવાજ શ્લોક લઇને બતાવવામાં આવે છે કે આત્માને માટે જીવન અને મરણ બન્ને મિથ્યા છે.

ચેતન પુરૂષ (આત્મા) નથી જન્મ લેતો અને નથી મરતો, ભ્રમને લીધે સ્વપ્નની પેઠે આ સર્વ વાતોનો અનુભવ થયા કરે છે. પુરૂષ તો ચેતના માત્ર છે, તે કયારે અને કયાં નષ્ટ થાય છે ? ચેતનાના સિવાય પુરૂષમાં બીજું શું છે ? લાખો શરીરોનો નાશ થતો રહે છે, પરંતુ ચેતનાત્માં તો અક્ષય સ્થિર રહે છે. કોણ એવો જીવ આજ સુધી મર્યો છે કે જેની ચેતના કોઇ પ્રકારે નષ્ટ થઈ ગઈ હોય? વાસનાઓની અનેક રૂપે થતી બદલા બદલીનું નામજ જીવન અને મરણ છે, નથી કોઇ મરતો અને નથી કોઈ ઉત્પન્ન થતો, કેવલ પોતાની વાસનાઓના આડામાં પડીને લોટ પોટ થતો રહે છે.

અગર જો આત્માનું જન્મ મરણ મિથ્યા સિદ્ધ થાય તો બન્ધ મોક્ષ પણ લઇન તેવુંજ છે. આત્માના બંધનનો અભાવ ઘણીજ સુંદર રીતે કપીલજીએ પોતાના સાંખ્ય દર્શનમાં બતાવ્યો છે. કોઈ આગામી અંકમાં તેનો વિચાર પાઠકોની સામે મુકીશું.

શંકા

(પ્રે૦—એક ગીતાપ્રેમી)

યોગદર્શનના સાધનપાદમાં એવી સિદ્ધિયોનો ઉલ્લેખ છે કે જે પાંચ યમોમાં પ્રતિષ્ઠિત થવાથી પ્રાપ્ત થાય છે. તે સૂત્ર ક્રમશઃ આ છે—૩૫, ૩૬, ૩૭, ૩૮, ૩૯, ૪૦, અર્જુનને શાસ્ત્ર શ્રવણનો યોગ્ય અધિકારી જો ભગવાન માને છે તો શું તેનામાં આ આવશ્યકીય ગુણ હતા ? તેનો કોઈ ઉલ્લેખ ગીતામાં છે કે નથી, અગર છે તો કૃપા કરીને શ્લોકોના સ્વરૂપનિર્દેશપૂર્વક વિવરણ આપવાની કૃપા કરો.

સમાધાન

(લે૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી શર્મા)

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય, અપરિગ્રહ આ પાંચ યમ છે. એ પ્રત્યેકમાં સુપ્રતિષ્ઠિત થવાનું ફલ શંકામાં નિર્દિષ્ટ સૂત્રોમાં અપાઇજ ગયું છે, યથા—

१—अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।

અહિંસામાં પ્રતિષ્ઠિત હોવાને કારણે સાધક પ્રત્યે સર્વ કોઈ વેર ત્યાગ કરી દે છે અથવા વેરી તરફ વેરભાવ રહેતો નથી, અર્જુનમાં આ અહિંસાની પ્રતિષ્ઠા કયાં સુધી થઈ હતી તેનું પ્રમાણ ગીતા પ્રકરણના પૂર્વવર્તી મહાભારતના સંદર્ભમાં તે સમયે મલી આવે છે કે જયારે યુદ્ધનો પ્રારંભ કરતા પહેલાં અર્જુન આદિ પાંડવ નિરસ્ત્ર થઈને વિનીત વેષમાં શત્રુસૈન્યની અંદર પિતામહ ભીષ્મની પાસે યુદ્ધ વિજયાર્થ આશીર્વાદ લેવા ગય

હતા તે વખતે કોઈ શત્રુએ તેમને તો મારવાની વાત બાજુએ રહી પણ તેમને કોઇએ બાંધી પણ નહિં બનાવ્યા ગીતા દ્વારાજ તેના સમાધાનનો આગ્રહ હોય તો તેને માટે આ શ્લોક છે—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

અહિં ભીષ્મ અને દ્રોણના હુમલાનો જવાબ બાણોથી આપવામાં અર્જુન પોતાની અસમર્થતા બતાવી રહ્યો છે. તેનાથી સૂચિત થાય છે કે તેનામાં અહિંસાની પ્રતિષ્ઠા થઈ ગઈ હતી.

૨—सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

સત્યમાં પ્રતિષ્ઠિત હોવાથી ક્રિયા ફળની પ્રાપ્તિ અવશ્ય થાય છે. અર્જુનમાં તે હોવાની સૂચના ગીતાના ૨।૫ માં આ વાક્યથી મળી આવે છે.

गुरूनहत्वा हि ····· रुधिरप्रदिग्धान्॥

આ શ્લોકના ગુરૂઓને મારી પાપપૂર્ણ રાજ્ય ભોગ કરવા કરતાં ગુરૂઓને ન મારીને ભિક્ષાના અન્નથી નિર્વાહ કરવો અને તેને સુખકર માનવો એ અર્જુનની સત્યનિષ્ઠા નેજ સૂચિત કરે છે.

૩—अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

બીજાની વસ્તુને આત્મસાત્ ન કરવી એ અસ્તેય છે, તેની પ્રતિષ્ઠાથી સર્વ રત્ન ઉપસ્થિત થઈ જાય છે અર્જુનમાં તેની પ્રતિષ્ઠા માટે આ શ્લોક વાક્ય બતાવી શકાય છે —

'येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।'

આ શ્લોક અનુસાર અર્જુન રાજ્યને કુટુંબ અથવા બીજાની વસ્તુ માનતો હતો, પોતાને માટે તેની જરૂર તેને ન હતી. 'પ્રતિષ્ઠા' માત્ર બહાર દેખાડવાની નહિં પરંતુ તેના ઉપર ટકી રહેવાનો હૃદયથી સાચો ઇરાદો રહેવો જોઇએ, એમ નહિં કે 'મનમાં આવે અને બુદ્ધિ હલાવે' એ પ્રતિષ્ઠાની સાથે આ શ્લોક પણ સંબંધ રાખે છે—

'अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।'

અહિં પૃથ્વી અને સ્વર્ગનું એશ્વર્ય નિષ્કંટક રાજ્ય પણ પોતાને માટે તુચ્છ બતાવ્યું છે.

૪—ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

બ્રહ્મચર્યમાં પ્રતિષ્ઠિત થવાથી વીર્યલાભ થાય છે. અહિં બ્રહ્મચર્ય શબ્દનો અર્થ છે, ગુરૂની પાસે જઇને શિષ્ય ભાવથી રહેવું. તે તો અર્જુન કહી જ રહ્યો છે—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'

હું શિષ્ય થઇને તમારા શરણમાં પડ્યો છું, મને આદેશ આપો, આ બ્રહ્મચર્યવ્રતથી અર્જુનને વીર્યલાભને માટે ભગવાનની એ આજ્ઞા છે—

"युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।"

૫—अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः।

અપરિગ્રહ એટલે અલોભ, તેના આધાર રૂપ ગીતાના ૧૮।૫૩ માં આવું વચન છે—

'अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।'

અહિં ક્રમથી છ રિપુઓનો ઉલ્લેખ હોવાથી પરિગ્રહનો અર્થ લોભ થયો, કે જે પાંચનો મુકાબૂત છે એટલે સુજ્ઞનો અર્થ એ થયો—યોગી લોક નિર્લોભ હોવાથી એમ જાણી લે છે કે અમારો આગામી જન્મ કેવો થશે આ ફલ અર્જુનને હાથોહાથ મળી ચુકયું હતું, કેમકે તે કહે છે—

'अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।'

આ વિવેચનથી અર્જુનમાં પાંચે સિદ્ધિઓની સત્તા સુસ્પષ્ટ જણાઇ આવે છે.



જ્ઞાન, ભક્તિ, કર્મ.

(શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનંદજી સરસ્વતીના ઉપદેશ)

(અનુવાદક અને પ્રેષકઃ—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ.)

सदेव सौम्य इदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम् ।
तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत ॥

(છાં૰ ઉ૰)

હે સૌમ્ય ? (પ્રિયદર્શન ?) આ વિશ્વની ઉત્પત્તિ પહેલાં એક માત્ર અદ્વિતીય સત્ સ્વરૂપ આત્માજ હતો. તે આત્માએ ઇક્ષણ વા બોધ કર્યો કે "હું બ્રહ્મ છું" અને બહુ થવાની ઇચ્છા કરીને તેજ ઉત્પન્ન કર્યું.

अन्नमयं हि सौम्य मनः आपोमयः प्राणः तेजोमयी वाक् ।

(છાં૰ ઉ૰)

હે સૌમ્ય ? મન અન્નમય છે, પ્રાણ જલમય છે, અને વાક્ય તેજોમય છે. અર્થાત્ તેજથી વાક્ય, જલથી પ્રાણ અને અન્નથી મન ઉત્પન્ન થયું છે.

નિષ્કલ, નિરંજન, કેવળ સત્સ્વરૂપ, અદ્વૈત પરમાત્માએ એક રસથી બહુ રસનો આસ્વાદ કરવા માટે બહુ થવાની ઇચ્છા કરીને બધા પહેલાં ઇક્ષણ વા બોધ કરીને તેજ ઉત્પન્ન કર્યું. એટલે કે તુરીય વા નિર્ગુણ અવસ્થામાં "હું છું" એ પ્રકારનું જ્ઞાન રહેતું નથી. પ્રથમ ઇક્ષણમાં अहं ब्रह्मास्मि અર્થાત્ "હું જ બ્રહ્મ છું" આ પ્રકારનું જ્ઞાન થયું. બીજા ઇક્ષણમાં रसो वै सः અર્થાત્ આત્મા રસસ્વરૂપ વા આનન્દ સ્વરૂપ છે એ પ્રકારનું જ્ઞાન થયું અને ત્રીજા ઇક્ષણમાં सर्वं खल्विदं ब्रह्म "નક્કી બધું બ્રહ્મ છે" એ પ્રકારનું જ્ઞાન થયું. આ વિશ્વબ્રહ્માંડ તેજ, જલ અને અન્ન સ્વરૂપ બ્રહ્મના સ્થૂલ પ્રકાશ સિવાય અન્ય કોઈ નથી. તેથીજ બ્રહ્મ તેજોમય, વાક્યમય—જ્ઞાનમય છે. જલમય, પ્રાણમય—ભક્તિમય છે. અને અન્નમય, મનોમય—કર્મમય છે. હવે જુઓ; બ્રહ્મનું મુળ ધન તેજ, જલ અને અન્ન અથવા વાક્ય, પ્રાણ અને મન છે. આ ત્રણ કારણો દ્વારા બ્રહ્મ બહુ થયેલ છે. હવે કયા ઉપાયનું અવલમ્બન કરીને ખંડ ખંડ અથવા બહુ થયેલ છે, તે સમજવાની ચેષ્ટા કરો.

બ્રહ્મે મનમાં સંકલ્પ કરી, પ્રાણમાં વેદનમય વા ભક્તિમય થઈ અને જ્ઞાનમાં સંકલ્પાનુસાર રૂપ ધારણ કર્યું. બ્રહ્મને કોઈ વસ્તુને આધીન થઈ સંકલ્પ કરવો પડતો નથી કારણકે આ વિશ્વ બ્રહ્માંડ જે કાંઇ છે અને નથી તે બધુંજ બ્રહ્મના જ્ઞાનમાં છે અથવા આ વિશ્વ બ્રહ્મબોધ માત્રજ છે. બ્રહ્મે બોધ કરીને આ વિશ્વરૂપ લીધુ છે. तदैक्षत तत्सर्वमभवत् (बृ૰ ઉ૰) બ્રહ્મે ઇક્ષણ વા બોધ કરી વિશ્વરૂપ ધારણ કર્યું છે બ્રહ્મે સંકલ્પ કર્યો કે "હું આકાશ છું" અને સંકલ્પના આકારમાં વેદનમય વા આર્દ્રભાવ યુક્ત થઈ, તદાકાર અનુભવ કરી આકાશરૂપ લીધું. તેજ રીતે સંકલ્પ કર્યો કે "હું સૂર્ય છું" અને સૂર્યમાં વેદનમય થઈ "હું સૂર્ય" આ જ્ઞાન દ્વારા સૂર્યરૂપ ધારણ કર્યું. તેજ રીતે હું દેવતા, હું મનુષ્ય, હું પશુ,જીવ જગત્ ઇત્યાદિ બોધ કરીને આ વિશ્વરૂપ ગ્રહણ કરેલ છે.

જુઓ; જ્ઞાન, પ્રાણ અને મન દ્વારાજ બ્રહ્મે વિશ્વરૂપ લીધુ છે. બ્રહ્મે જગત્ બોધ કરી જગત્‌રૂપ લીધુ છે, તમારે બ્રહ્મબોધ કરીને બ્રહ્મસ્વરૂપ

પ્રાપ્ત કરવું પડશે અન્ય ઉપાય નથી. જે રસ્તેથી આવ્યા છો તે રસ્તેજ પાછું જવું પડશે. બ્રહ્મમાં મિથ્યા, સંશય, અને ફીકર નથી, તેથીજ બ્રહ્મે સંકલ્પની સાથોસાથ વેદનમય થઈ વિશ્વરૂપ લીધું છે. તમારામાં મિથ્યા, મલિનતા, ચાલાકી, ફીકર, સંશય અને અવિશ્વાસ પૂર્ણ છે તેથી પોતે બ્રહ્મ હોવા છતાં પણ બ્રહ્મને જાણી શકતા નથી સત્ય-નો આશ્રય લઈ, ચાલાકી ફીકર અને અવિશ્વાસને ત્યાગી બ્રહ્મનો મનમાં સંકલ્પ કરો, પ્રાણમાં વેદનમય વા ભક્તિમય અથવા ગદ્ગદ થઈ જાઓ અને જ્ઞાનમાં બ્રહ્માકાર થઈને તમેજ બ્રહ્મ છો, આ પ્રમાણે જાણીને, માનીને, બ્રહ્મજ થઇ જાઓ આનું જ નામ ઈશ્વર પ્રાપ્તિ અથવા સંપ્રજ્ઞાત યોગ છે. મનનો પ્રાણમાં લય કરો કારણ કે વેદનમય વા ગદ્ગદ થવાથી સંકલ્પ વિકલ્પ રહેતો નથી પ્રાણનો જ્ઞાનમાં લય કરો જ્ઞાનજ ભગવાન છે આત્મ-જ્ઞાન પ્રાપ્ત થવાથી પ્રાણની ચંચલતાનો સંપૂર્ણ અભાવ થાય છે શાન્ત થવાથીજ આત્માનું અનુસન્ધાન મળી શકે છે કારણ કે બધાં વિજ્ઞાન શાસ્ત્રો એક મતે સ્વીકારે છે કે જે વસ્તુને મેળવવી હશે તે વસ્તુનું સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કર્યા સિવાય તને મેળવવાનો અન્ય ઉપાય નથી બ્રહ્મ જો સત્યસ્વરૂપ છે, તો સત્યાશ્રય કરવો એજ બ્રહ્મ પ્રાપ્તિનું એક માત્ર સાધન છે આ વાત ભૂલીને પથભ્રાન્ત ન થાઓ

જે તેજ, જલ, અન્ન તેજ વાઙ્મય, પ્રાણ અને મન છે અને તેજ જ્ઞાન, ભક્તિ, કર્મ છે પુરાણ ભાષામાં તે જ્ઞાનને શંકર, પ્રાણને વિષ્ણુ અને મનને બ્રહ્મા કહેલ છે મન અથવા બ્રહ્મા સંકલ્પ કરીને આ વિશ્વ ઉત્પન્ન કરે છે. પ્રાણ વા વિષ્ણુ વિશ્વની રક્ષા અને પાલન કરે છે. તેમજ જ્ઞાન વા શંકર તેનો નાશ કરે છે. અર્થાત્ જ્ઞાન થવાથી જગત્ રહેતું નથી. જગત્ બ્રહ્મ બની જાય છે. ब्रह्ममयेदम्. જગત્ બ્રહ્મ બની જાય છે

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।

—गी०

તેથી હિરણ્યગર્ભ વા બ્રહ્માની ઉપાસના કર્મ-પ્રધાન છે વિષ્ણુની ઉપાસનાઃ ભક્તિ પ્રધાન છે અને શિવ ઉપાસના જ્ઞાન પ્રધાન છે કેવળ કર્મ દ્વારા અર્થાત્ જ્ઞાન ભક્તિશૂન્ય કર્મ દ્વારા, કેવળ ભક્તિ અર્થાત્ જ્ઞાન કર્મશૂન્ય ભક્તિ દ્વારા અને કેવળ જ્ઞાન અર્થાત્ ભક્તિ, કર્મશૂન્ય કેવળ વાચિક જ્ઞાન દ્વારા આત્મલાભ કરી શકશો નહિ જ્ઞાન ભક્તિ કર્મ સમન્વય એ ઈશાવાસ્ય ઉપનિષદ્ અને ગીતાનો ઉપદેશ સિદ્ધાન્ત છે ભગવાન બાદરાયણે પોતાના બ્રહ્મસૂત્રમાં નિર્દેશ કર્યો છે કે—જે કેન્દ્રમાં સમસ્ત તત્ત્વ સમન્વિત થાય છે, તે કેન્દ્રજ બ્રહ્મ છે तत्तु समन्वयात् ॥ જ્ઞાન કર્મ સમન્વય કરવાની અસમર્થતા એજ અજ્ઞાન છે જ્ઞાન કર્મમાં વિરોધ નથી જ્ઞાનની સ્થૂલ મૂર્તિજ કર્મ છે ભગવાન્ શ્રી કૃષ્ણે ગીતામાં સ્પષ્ટ કહ્યું છે કે જ્ઞાન કર્મમાં જુદાપણાને બાળકજ જુએ છે सांख्ययोगौ पृथग् बालाः । તેથીજ આત્મજ્ઞાનપ્રાપ્તિ અથવા ભગવાનને પ્રાપ્ત કરવા માટે જ્ઞાન ભક્તિ કર્મ સમન્વય કરવો એજ એક માત્ર પ્રશસ્ત પથ છે

સાધક ? બધા સાંસારિક સાધારણ કર્મોથી આરંભીને યજ્ઞાદિક મહાન્ કર્મો સત્યાશ્રય કરીને, જ્ઞાન વા આત્મલક્ષ કરીને, ગદ્ગદ વા ભક્તિમય થઈને કરી શકશો તો કર્મફલ તમારૂં આશ્રિત થશે અર્થાત્ કર્મફલ તમોને હાથોહાથ મળશે

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥

पा० यो० दर्शन ।

કર્મમાં સત્ય પ્રતિષ્ઠા થવાથી અર્થાત્ સત્ય

બોધમાં કર્મ કરવાથી કર્મનું ફલ આશ્રિત થાય છે. અથવા કર્મ ફલ કર્મ કરનારને આધીન થાય છે.

સાંભળો; આટલા દિવસ જગત્ બોધમાં કર્મમય રહીને નાના પ્રકારના શોક દુઃખાદિમાં પીડિત થયા છો. આજથી માંડીને આત્મબોધમાં કર્મ કરવા અભ્યાસ પરાયણ થાઓ તો સુખ દુઃખાદિ તમોને વ્યથિત કરી શકશે નહિ બધાં કર્મો સત્ય, પ્રાણ અને જ્ઞાન વા સચ્ચિદાનંદ લક્ષ કરીને કરી શકશો તો પરમ કલ્યાણ પ્રાપ્ત કરશો.

नहि सत्यात् पराशक्तिर्नहि प्राणात् परः प्रियः ।
नहि ज्ञानात् परं किञ्चित् तदेतत् त्रयमाश्रय ॥

ॐ तत् सत्

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(લે૦—વકીલ બાલાભાઈ નારણજી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન પૃ૦ ૧૧૭૬ થી આગળ]

આપણને માસ્તર એકડા ઘુંટાવે છે તે ધીમેધીમે કઠામાંથી દશકો, તેમાંથી સૈકો પછી ।) ॥) ॥।) ગેરે સુધી જતાં અક્ષર વાંચન, તેમાંથી વીશેષ ચન, વીગેરે વધારતાં વધારતાં છેવટ લક્ષ્ય આવું શાસ્ત્રો વેદાને આપણે વાંચીએ તે છે. પણ તે લક્ષ્ય સુધી જઇને એકડોજ ઘુંટતા આખો જન્મ પડ્યા રહીએ તો તેનાથી આપણું શ્રેય તો થાય નહી, ઉલટું વીદ્વાનો તથા ઇતર સર્વ આપણને મુર્ખા કહે. તેજ સ્થીતિ આપણી એકજ મુર્તીને વળગી રહી બીજી શક્તી પ્રતિ આદરમાન ન કરવામાં ન ઓળખવામાં આવી ગઇ છે. અને તે પણ વળી એક મુર્તીનું રહસ્ય પણ આપણે સંપૂર્ણ જાણવા પ્રયત્ન કરતા નથી, જાણતા નથી. અને ખરી રીતે તો આપણે ઉપલક દર્શન કરીને આપણા આત્માને પણ ઠગીએ છીએ કે મેં ઇશ્વરનાં કે ઇશ્વરની મુર્તીનાં દર્શન કર્યાં.

દર્શન કરવાનો ખરો અર્થ કદાચ તે મુર્તીના પુજારી પણ નહીં જાણતા હોય. અગર જાણતા હોય, તો વળી જે મૂર્તી, જે ઇશ્વરી શક્તીની તે ઉપાસના પુજા—દર્શન કરતો હોય તે શક્તીનો આવીર્ભાવ તેવા પુજારી કે દર્શન કરનારમાં થવોજ જોઇએ.

દાખલા તરીકે એક શેઠને ત્યાં એક નોકર છે, તે નોકરનું કામ શેઠની ખાસ તેહનાતમાં રહેવાનું છે. અને શેઠના હરેક કાર્ય વખતે શેઠને શી શી બાબતોની જરૂર પડે છે, શેઠને કયો પોશાક—કયું શાક—કઈ વસ્તુ પસંદ છે, શેઠનો સ્વભાવ કેવો છે, તે બધાથી ખરો સેવક-ખરો નોકર જાણકાર થઈ જાય છે, અને પછી અમુક પ્રસંગે શેઠને કયો પોશાક—વસ્તુ-વીગેરેની જરૂર છે તે શેઠના હુકમ કર્યાં વગરજ ખરો નોકર તૈયાર રાખે છે અને તેવા નોકર પર તેના શેઠ માયા મમતા રાખી—

अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां सततयुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

તેવા નોકરના યોગક્ષેમ—તેવા નોકરના સંસારની જરૂરીયાતો પુરી પાડે છે.

મને બરાબર યાદ છે કે આવા નોકરો મુંબઇમાં વાડીઓ અને કલકત્તામાં પણ છે.

જ્યારે સાસારીક મનુષ્યમા શેઠની શક્તીને પારખી જઈ સમય અનુસાર નોકરી આપનાર નોકરો છે અને તેને ન્યાય કરનાર શેઠો છે તો પછી ઈશ્વરની એક શક્તી-મુર્તીની ઉપાસના સમજીને ખરા દીલથી ઉપાસના અને સેવા ખાતર સેવા કરે પૈસા કે બીજા લોભથી નહીં, તો તે શક્તી જરૂર તેવા પુજારી અગર દર્શન કરનાર પર પ્રસન્ન થાય એમા શકાજ નથી. તે બાબત ઉપરનું ભગવદ્ વાક્ય—વીચારવા જેવું છે

પણ આપણા જન સમાજે એકડો ઘુંટ્યો છે, તેમાથી કોઈ બગડો ઘુંટવા કહે તો સામે લડવા ઉઠવું છે, પછી તે સમજને મેક્ષની ગંધ પણ શેની આવે—

આવી ભાવના, આવા વીચારો, ભગવાને દશમા અધ્યાયમાં પોતાની વીભુતીઓના વર્ણનમાં વ્યક્ત કર્યા છે

ખરી રીતે નીરંજન નીરાકાર ઈશ્વરનું ધ્યાન તો ઉત્તમમા ઉત્તમ છે ને તેજ ધ્યાન સહજ યાને કુદરતી છે માટેજ—

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा ।

વીગેરે લખાયલું છે.

આ દશમાં અધ્યાયમા ભગવાને એક વાત ઘણીજ મહત્વની દર્શાવી છે અને તે એ કે—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित ॥

(અ૦ ૧૦ શ્લો૦ ૨૦)

તેમા ભગવાન્ કહે છે કે—હે અર્જુન, સર્વ ભુત પ્રાણી માત્રના હૃદયમા રહેનારો જે આત્મા તેજ ભગવાન દરેક વસ્તુના અંદરનું સારભૂત તત્વ તેજ ભગવાન અર્થાત્ દરેક મનુષ્યને જો એમ ખાત્રી થાય કે ભગવાન તો પોતાના હૃદયમાજ છે, પોતાનોજ આત્મા એ ભગવાન છે, તો તેવી માન્યતાથી મનુષ્યનું કલ્યાણ થઈજ જાય છે કારણ, પછી પોતાના હૃદયનો પોતાના આત્માનો મનુષ્ય દુરૂપયોગ કરશે નહી, તેના પર ખરાબ સંસ્કાર ચડાવશે નહી, અનીતીમા ચાલશે નહી અને તે રીતે પોતાના હૃદયને પોતાના આત્માને શુદ્ધ બનાવી ચીત્તશુદ્ધી થતા પરમ પદને પામશે અને સહેજે જ જનક વીદેહી જેમ, મુક્ત સ્થીતિમા વીચરશે

આ દશમા અધ્યાયને છેવટે ભગવાન અર્જુનને કહે છે કે હે અર્જુન, મારી વિભૂતિયોના આટલા વર્ણનથી, અતી વિસ્તારથી કહેવાની શું જરૂર છે, હેન હું તને ચોખ્ખુ કહી દઉં કે આ સમસ્ત જગત મારો એક અંશ (ભાગ) માત્ર છે અને જગત જ્યારે કેવળ મારો એક અંશ છે તો હું પરમાત્મા કેવડો મોટો હોઈશ તેનો હે અર્જુન, તુંજ વીચાર કર, તુંજ અનુમાન કર તુંજ ગણત્રી માંડ

આ દશમા અધ્યાયના છેવટના ભાગમાં ભગવાને સર્વ રહસ્ય જણાવી દીધુ છે, એમ કહેવામાં કંઈ વાંધો નથી

" अहमात्मा "

એ તો આ પ્રસ્તુત ગીતા માંહેલું એક મહાવાક્ય જ છે અને સર્વ હું જ છું એ પણ દશમા અધ્યાયના અંતમા જણાવીને ભગવાને દશમો અધ્યાય પૂરો કર્યો

અને અગ્યારમા અધ્યાયનો આરંભ થયો, પણ આ અગ્યારમા અધ્યાયના પહેલાજ શ્લોકમા અર્જુનથી એમ બોલી જવાયું છે અને બોલે છે કે—

मोहोऽयं विगतो मम ।

(અ૦ ૧૧ શ્લો૦ ૧)

અર્જુન કહે છે કે હે ભગવન મને જે પ્રત્યક્ષ મોહ હતો તે હવે તદ્દન ગયો, નષ્ટ થયો છે અને

રો મોહ કઇ રીતે ગયો, કયા કારણથી ગયો,
મ જો ભગવાન પૂછતા હોય તો અર્જુન, તેજ
હેલા શ્લોકમાં કહે છે કે હે ભગવન, આપે મારા
ર કૃપા કરીને મારા કલ્યાણ માટે–અધ્યાત્મ
ંજ્ઞાવાળું જે પરમ ગુહ્ય વચન કહ્યું, તેથી મારો
ોહ દુર થયો.

અહી વીચારવા જેવી વાત એ છે કે અર્જુનનો મોહ અધ્યાત્મ સંબંધી વીચારથી ગયો છે, ને તે પરથી આપણે સમજી શકીશું કે અર્જુનને હવે આત્મા સંબંધીનો વીચાર બરાબર સમજવામાં આવી ગયો છે. છતાં અર્જુનનો યુદ્ધ ન કરવું એવો જે મોહ છે તે હજી ગયો નથી, એવો ્વની તેમાંથી ઉઠે છે. જો કે અર્જુનને હવે એમ તો લાગવા માંડયું છે કે, યુદ્ધ ન કરવું એવો મારો જે નીશ્ચય છે તે પણ જો ભગવાનના ઉપદેશથી તુટી જાય તો ઠીક. એટલે અગાઉ ગીતાની શરૂઆતમાં અર્જુનમાં જે હઠ, જે રોષ, જે ઉદ્ધતાઈ આપણને દેખાતી હતી,ત હઠ–તે રોષ–તે ઉધ્ધતાઈ હવે નરમ પડેલી જણાય છે, છતાં અર્જુને મનમાં ગાંઠ વાળી મુકી છે, યુદ્ધ કરવાના વીષયમાં ભગવાન પોતાની મેળે ઉપદેશ આપશે, આપણે હવે તે સંબંધમાં કંઈ પણ બોલવું નહી. પણ ભગવાન પાસેથી બીજો કંઇ મોટો લાભ મળી જાય તો સારૂ, એ હેતુ મનમાં રાખીને અર્જુને વીશ્વરૂપ દર્શનની માગણી ભગવાન પાસે કરી. અને જેવી માગણી અર્જુને કરી કે તુરત ભગવાને તેને વીશ્વરૂપનું દર્શન કરાવ્યું. આ વીશ્વરૂપનું વર્ણન મૂળ ગીતાજીના સંસ્કૃત શ્લોકોમાંથી વાંચવું ને જોવું એ અતીશય જરૂરનું છે. તેમજ તેવી રીતે જોવાથીજ તેમાં ઘણો સ્વાદ આવશે, ઘણી સમજ પડશે, ઘણો આનંદ આવશે, માટે મારી સર્વે મુમુક્ષુઓને વીનંતી છે કે વીશ્વરૂપ વર્ણન માટે મુળ ગીતામાંજ જોવું, તેના ગુજરાતી ભાષાંતર કે બીજા ભાષાંતરમાં મૂળ જેવી મઝા નથી.

પણ આ વીશ્વરૂપ દર્શનના સંબંધમાં પણ એક ગમ્મત ભગવાને કરી છે અને ભગવાને આવે પ્રસંગે પણ અર્જુનને ઇશારો કર્યો છે કે હે અર્જુન, તું ઉઠ–યશ મેળવ અને શત્રુને જીતી ઐશ્વર્યયુક્ત રાજ્યનો ઉપભોગ લે. અરે ! મેં જ, આ તારા શત્રુઓને પહેલાંથીજ ઠાર કરેલા છે, એમ તું જાણ અને યુદ્ધ કર તથા શત્રુઓને ઠાર કર. તારીજ વીજય થશે, દુખ લગાડજે મા, ચીંતા કરજે મા.

આ ઉપરથી પ્રસ્તુત કર્મયોગ વીષે અર્જુનની ગાંસડી ભગવાન કેવી રીતે વાળે છે, એ જરૂર સર્વેના લક્ષમાં આવશે.

પરંતુ અર્જુન તો પાકો શઠ છે, પાકો મૂર્ખ છે, તેથી ઉપરનો ઉપદેશ ભગવાને કર્યો છતાં પણ અર્જુન કંઇ પણ જવાબ આપતો નથી કે હું યુધ્ધ માટે તેયાર છું, એટલે પછી થાકીને ભગવાને તે વીશ્વરૂપનું દર્શન બંધ કર્યું, પૂર્વવત્ મનુષ્ય સ્વરૂપ દેખાડયું. અને અંતે ભગવાનેજ પોતે પોતાની મેળે તે વીશ્વરૂપ દર્શનની ખુબ પ્રશંસા કરી. પણ અર્જુન તે સંબંધે કંઇ બોલ્યો નહીં, તેથી ભગવાને અગ્યારમો અધ્યાય સમાપ્ત કર્યો.

જો કે અર્જુન, વીશ્વરૂપ દર્શન કરીને કંઇ બોલ્યો નહીં છતાં પણ આપણને એમ લાગે છે કે અર્જુનને આત્મજ્ઞાન-બ્રહ્મજ્ઞાન વીગેરે પારમાર્થિક વિષયો હવે બરાબર સમજવા લાગ્યા છે છતાં પણ યુદ્ધનો કર્મયોગ અર્જુને કરવો જોઇએ અને એકલા બ્રહ્મજ્ઞાનથી હાલના સંજોગોમાં સરે તેમ નથી એમ માનીને ભગવાન તો અર્જુન યુદ્ધ કરે તેવો કર્મયોગ અર્જુન પાસે કરાવવા પ્રવૃત્ત થયા છે.

પણ જ્યારે અર્જુન તે તે યુદ્ધ કરવા સબંધી કર્મ યોગ માટે કંઇ પણ બોલતો નથી એમ ભગવાને જોયું, ત્યારે ભગવાન પણ તે સબંધે એક શબ્દ પણ આ તબક્કે ઉચ્ચારતા નથી

ઉપર જણાવેલી વાત છઠ્ઠા—અધ્યાયથી અગીઆરમા અધ્યાય સુધીનાં,કથનોનો સ્પષ્ટ વીચાર કરતા આપણને દીવા જેવી દેખાશે. અને પછી બારમા અધ્યાયથી ૧૮મા અધ્યાયના ૫૬મા શ્લોક સુધી તો ભગવાન પણ કર્મયોગ સબંધી કંઇ બોલતા નથી કારણ ભગવાનને નીરાશા થઈ છે કે અર્જુન જેવા મુર્ખ અને કુટીલ બુદ્ધીના માણસને આટલો આટલો ઉપદેશ કર્યો પણ બધું પથ્થર પર પાણી સમાન અને મહીષી આગળ મીમાંસા સમાન થયું, તો પછી હવે ક્યાં સુધી અર્જુન પાસે માથાકુટ કરવી

એમ ધારીને ભગવાન ૧૮ મા અધ્યાયના ૫૭-મા શ્લોકમાં ચીડાઈ જઇને આ કરા શબ્દો અર્જુનને કહે છે કે હે અર્જુન, "નયોત્સ્યે" "મારે યુદ્ધ કરવું નથી" એમ તું વારંવાર બોલે છે, તે તું અહંકારને વળગીને મૂઢ થઇને બોલે છે અને તે તારા અહંકારના જોર ઉપર તું મારૂં કહેવું માનતો નથી તો હું તને હવે છેવટનો ફેંસલો સભળાવું છું કે જો હજુ પણ તું અહંકારને વળગી રહીને મારૂં કહેવું નહીં માને તો તારો નાશ થશે અને તેં જે નીશ્ચય કર્યો છે કે મારે લડવું નથી તે તારો નીશ્ચય ખોટો છે કારણ તારી પ્રકૃતી, તારો સ્વભાવજ તને યુદ્ધ કરવામા પ્રેરશે, કારણ, જે સ્વાભાવીક કર્મનું તારૂં શરીર બનેલું છે, તે ક્ષાત્ર સ્વભાવ—શરીર સ્વભાવ ક્યાં જશે ? માટે તને કહું છું કે મોહના જુસ્સામાં જે તું હુમલો કરવા ઇચ્છતો નથી તેજ યુદ્ધ તું તારા ક્ષાત્ર સ્વભાવને વશ થઈને અવશ્ય કરવા બોજ અસ્તુ

પરંતુ હે અર્જુન, હવે હું એટલુંજ કહું છું કે સર્વભાવે પરમેશ્વરને શરણે રહેવું એ સારૂં છે કારણ, જીવાત્માનો અહંભાવ એજ માયા છે. એ અહંભાવનું આવરણ તારી આસપાસ આવી રહેલું છે માટે જો ઇશ્વરને શરણે જઈ "હું કર્તા નથી" એવી દૃઢ પ્રતિજ્ઞા કરીશ, તો તુરતજ તું જીવન્મુક્ત થઈ જઈશ પછી તને કશાનો ભય, મોહ-કંઈ રહેશે નહી. પણ જો તું અહંકારમાજ પડયો રહીશ, તો અહંકારવાળા મનુષ્યના હૃદયમા જ્ઞાનનો સંચાર થશે નહી નીચાણ તરફજ પાણી વહી શકે અને ત્યાજ અંકુર ફુટે, વૃક્ષ ઉગે, ફળફુલ ઉત્પન્ન થાય પણ અહંકાર એ ઉંચાણવાળી જગા છે ત્યાં જ્ઞાનનું પાણી આવી શકે નહી માટે તું ઇશ્વરને શરણે જા જે મનુષ્ય ઇશ્વરને વળગીને ચાલે છે તેને કદાચ પડી જવાનો ભય રહે છે, પણ ઇશ્વર જેને પકડી રાખે તેને પડી જવાનો ભય રહેતો નથી જેમ કોઇ છોકરો પોતાના બાપનો હાથ પકડીને ખેતરની પાળ પર ખેતરના શેઢા પર ચાલતો હોય તો તે છોકરો કદાચ પોતાની ગફલતથી ખાડામા પડી જાય ખરો, પણ બાપે જો છોકરાનો હાથ પકડયો હોય તો તે છોકરો કદી પણ પડેજ નહી, તે રીતે ઇશ્વરને શરણે જા, તો ઇશ્વર તારો હાથ પકડશે. ઉપરનું ભગવાનનું વાક્ય (અ૦ ૧૮ શ્લો૦ ૬૨) અવશ્ય ધ્યાનમાં રાખી પરમેશ્વરને શરણે રહેવું. અને આ તત્વ સર્વને માન્ય છે આ તત્વમા કોઇ પણ હુજ્જત કરે તેમ નથી

છતા આપણે આ સ્થળે વીચાર તો કરવો પડશેજ કે જ્યારે અર્જુન ભગવાનની કોઇ પણ દલીલ માનતો નથી અને "ગોત વડી રામ દુહાઇ પણ એક મવડો ઉઠું" એવુ કરીને બેઠો છે, તેવે પ્રસંગે ભગવાને ઉપર પ્રમાણે ઉદ્ગાર કહાડયા છે

તો તેવા ઉદગાર શા કારણથી કાઢવા પડ્યા તેનો વીચાર કેટલો મહત્વનો—કેટલો ઉંડો, કેટલો ઇષ્ટ છે તે સંબંધી બુદ્ધિમાનોએ પોતપોતાની બુદ્ધીને કસવાની જરૂર છે.

પ્રસ્તુત ૧૮ મા અધ્યાયના ૫૭ થી ૬૬ સુધીના જે ૧૦ શ્લોકો છે તેમાં બુદ્ધિમાન અને વીદ્વાનોએ પોતાની અકકલ અને બુદ્ધિ ચલાવવાની જરૂર છે. અને અમે પણ તે સંબંધે યથા બુદ્ધી વીચાર દર્શાવીએ.

યુદ્ધ કરવું નથી, એમ જે અર્જુને દૃઢ પ્રતિજ્ઞા કરી મનને વાળી બેઠો છે તે જો કે ભગવાન કહે છે કે અર્જુન અહંકારથી તેમ કરે છે. પરંતુ ભગવાનનો ખરો આશય તેમ કહેવાનો નથી. ખરેખર રીતે અર્જુન યુદ્ધ કરવું નથી, એમ અહંકારને લઇને કહેતોજ નથી. ખરી રીતે તો યુદ્ધ શા માટે કરવું, તે બાબતમાં અર્જુનને ગમજ પડી નથી, તે બાબત અર્જુનને સમજાણીજ નથી, તેને ગળે ઉતરી નથી. જો કે ભગવાન તો એમજ ધારે છે કે મેં અર્જુનને જુદી જુદી રીતે સમજાવીને યુદ્ધ કરવાની જરૂરીઆતની વાત અર્જુનને ગળે ઉતારી છે અને છતાં અર્જુન યુદ્ધ કરવા કબુલ થતો નથી. અને આવી માન્યતાથી ભગવાનને આશ્ચર્ય પણ થયું છે કે આટલી આટલી રીતે સમજાવવા છતાં યુદ્ધ કરવાની વાત અર્જુનને ગળે કેમ ન ઉતરે, ઉતરવીજ જોઇએ. છતાં જ્યારે અર્જુન ના પાડે છે, ત્યારે ભગવાન એમ માને છે કે અર્જુન મૂર્ખ છે, અહંકારી છે, માટે સમજ્યા છતાં પોતાનો કકો ખરો કરવા માનતો નથી. અને તેથી ભગવાનને નીરાશા થાય છે અને ખેદ પણ થાય છે. અને હવે અર્જુનને સમજાવવો એ પોતાના સ્વાધીનમાં નથી, એમ ભગવાન માને છે અને અદષ્ટની પ્રબળતા આગળ પોતે ભગવાન છતાં આ વખતે ભગવાન પણ લાચાર બની ગયા જણાય છે અને પોતે જે અનંત શક્તીમાન પરમેશ્વરના અવતાર તરીકે ભૂલોકે આવ્યા છે તે વાત ભગવાનને ત્યારે યાદ આવી ગઇ. અને અત્યારે અર્જુનને કરેલો પોતાનો સર્વ ઉપદેશ વ્યર્થ છે એમ પણ શ્રી કૃષ્ણ ભગવાનને આ પ્રસંગે લાગેલું હોવું જોઇએ. અને તે કારણથીજ "તે પરમેશ્વર અર્જુનને કંઇ બુદ્ધીઆપશે, કંઈ પ્રેરણા કરશે, તેનું અદષ્ટ કયા પ્રકારે ચલાવતું હશે, એમ વીચારી, હવે તો અર્જુન અર્જુનનું જાણે, આપણે તો થાકયા. એમ માની છેવટના ભાગે અર્જુનને કહે છે કે હે અર્જુન, તું—ભગવાનને શરણેજા, આવા ઉદગાર પોતે ભગવાન છતાં પણ કહાડવા પડ્યા.

આ પ્રમાણે અમારી બુદ્ધી કહે છે. તેમ બીજી રીતે બીજાની બુદ્ધીથી બીજો ભાવાર્થ પણ આમાંથી નીકળી શકે.

ભગવાનને અંતે એમ જણાયું કે હવે નિરૂપણ ભાષણ-ઉપદેશ ઘણો થયો, હવે બસ છે, એમ ધારીને ભગવાને અર્જુનને કહ્યું કે હે અર્જુન—મેં તને મારો જ્ઞાન વીચાર, જ્ઞાન સંબંધી મારી માન્યતા, જે ઘણીજ ગુહ્ય અને ન સમજાવી શકાય તેવી છે છતાં પણ તે સર્વ મેં તને જણાવ્યું. અને મારાથી બને તે પ્રમાણે સારી રીતે સરળતાથી મેં તને સમજાવ્યો, તેથી હવે મારે તને એટલુંજ કહેવું છે કે "તને ઠીક લાગે તેમ કર" અર્થાત્ જેને જેવું લાગે તેવું તેણે કરવું. ભગવાન એકલા અર્જુનનેજ નહીં પણ આપણને સર્વને ઉદ્દેશીને કહે છે.

ભગવાનનું તે કહેવું ઠીક છે. પરંતુ તેવું બોલવું તો નીરાશ થઇ ગએલા મનુષ્યને, ઉદાસ થઇ ગએલા મનુષ્યને શોભે. પરંતુ ભગવાન જેવા, કે જે પાંડવ વત્સલ છે તેમના પોતાના આવા ઉદ્ગાર!

(અપૂર્ણ)

પંડિત અને મૂર્ખ

(લે૦—સ્વામી શ્રી જ્ઞાનાનંદજી સંન્યાસી, દર્શનશાસ્ત્રી, વ્યાકરણાચાર્ય)

ઘણાખરા લોકોને બીજાઓનું અનાવશ્યક અનુસરણ કરવાની ટેવ પડી ગયેલી હોય છે. તે પોતે કંઈ કરતા નથી અને કરવાવાળાના કામમાં કાંટા લગાડ્યા કરે છે. તેમની કાતર જેવી વાણી બીજાઓના કીર્તિરૂપી વસ્ત્રોને કાતરવાનું છોડતી નથી. તેઓ પોતે તો આળસમાં નકામું જીવન વ્યતીત કરેજ છે, પરંતુ બીજાઓને પણ હતોત્સાહ (ઉત્સાહ વગરના) કરવાનો તેમનો ધર્મ બની જાય છે. તેઓ એવો ખ્યાલ કરવાનું ભૂલી જાય છે કે વાદ વિવાદથી એટલું કામ નથી થઈ શકતું કે જેટલું તેને ક્રિયાત્મક (કરીને બતાવવાથી) રૂપ આપવાથી થાય છે. 'वादे वादे जायते तत्त्व बोध' એ વાત ઠીક છે, પરંતુ તેનાથી આ 'वादे वादे जायते कार्यसिद्धि' એ પણ મિથ્યા થઈ શકતું નથી.

સર્વ સંસાર પંડિત અને મૂર્ખ એ બે શ્રેણિઓમાં વિભક્ત છે. કોણ પંડિત છે તથા કોણ મૂર્ખ છે? તેનું વિવેચન કરવું ઘણુંજ કઠીન છે, પણ પ્રયત્ન કરવાથી એ વાત અસંભવ નથી. જે લોકો પોતે પોતાને પંડિત માને છે અથવા જેમને દુનિયાદારોએ પંડિતનો ઈલકાબ આપી રાખ્યો છે, તેમની જવાબદારી સમાજ પ્રત્યે તથા તેમના પ્રત્યે કે જેઓ તેમનાથી અનભિજ્ઞ છે, મૂર્ખ છે, ઘણીજ વધારે બની જાય છે. પંડિતો માટે ઉચિત તો એ છે કે તેઓ, અનભિજ્ઞોને, અજાણ્યાઓને, મૂર્ખાઓને ઉપદેશ માત્રજ ન આપતા રહે પણ તેમની પાસે તેવા કામ પણ કરાવતા રહે. અગર કોઈ બુદ્ધિમાન અજ્ઞાનીની સાથે કોઈ વિષય પર વાદવિવાદ કરે તો તેણે પોતાની આબરૂની દરકાર છોડી દેવી જોઈએ. અગર કોઈ મૂર્ખ એમ સમજી લે કે મેં કોઈ એક વિદ્વાનને પરાસ્ત કર્યો છે, તો તેમાં આશ્ચર્ય ન કરવું જોઈએ. કેમકે મામુલી પત્થર પણ મૂલ્યવાન મોતીને તોડી શકે છે. બહુજ થોડી કીમતની લોઢાની હથોડી સોનાને ટીપી શકે છે. જ્યારે કાગડા કાંવ કાંવ કરવા લાગે છે ત્યારે કોયલ ગાવાનું છોડી દે છે અને જ્યારે જનતા શોરબકોર કરીને પોતાની મૂર્ખતાનો પરિચય કરાવવા તત્પર થાય છે ત્યારે વિદ્વાન વ્યાખ્યાતા પોતાના ઉપદેશપૂર્ણ વાક્યોની ધારા બંધ કરી દે છે. અતઃ પંડિત જનોએ મૂર્ખાઓ સાથે વિવાદ કરવો જોઈએ નહીં, પ્રત્યુત તેઓને કામમાં લગાડતા રહેવું જોઈએ. ભાવ એ છે કે મૂર્ખના અન્યાય તથા અશિષ્ટતાપૂર્ણ વ્યવહારથી બુદ્ધિમાન પુરુષ કોપિત કે શોકાર્ત થતા નથી. અગર એક નકામો પત્થર બહુ મૂલ્ય સોનાના પાત્રને ભાંગી તોડી નાખે તો તેથી પત્થર બહુમૂલ્ય અને સુવર્ણ થોડી કીમતનું ન ઠરી જાય. કેમકે—

इभतुरगरथैः प्रयान्ति मूढा
धनरहितविबुधाः प्रयान्ति पद्भ्याम्।
गिरिशिखरगतापि काकपङ्क्तिः
पुलिनगतैर्न समत्वमेति हंसैः॥

જગતમાં સર્વત્ર જોવામાં આવે છે કે—મૂર્ખ લોકો હાથી, ઘોડા, તથા રથ વિગેરે ઉપર બેસીને ઘણા ઠાઠમાઠની સાથે અક્કડ થઈને મહાલતા હોય છે અને પંડિતો નિર્ધન હોવાને કારણે

જ્ઞાની પુરૂષ તો તેને પંડિત કહે છે કે—જેના સર્વ સમારંભ અર્થાત ઉદ્યોગ ફલની ઇચ્છાથી વિરહિત હોય છે અને જેનાં કર્મ જ્ઞાનાગ્નિથી ભસ્મ થઈ ગયાં હોય છે, અર્થાત જે ફલની ઇચ્છા છોડીને કર્મ કરે છે તેજ પંડિત છે, જે વિચારપૂર્વક કામ કરતા નથી તેમની આપત્તિનું કાંઈ ઠેકાણું નથી. અતઃ જે બહુજ વિચારપૂર્વક સમજીને કામ કરે છે તેજ પંડિત છે. જે બીજાની સ્ત્રીને માતા બરાબર, પારકાના ધનને પત્થર બરાબર, તથા સર્વ જીવોને પોતાનાજ આત્મા બરાબર માને છે તેજ પંડિત છે.

પંડિત લોકો રાજા મહારાજાઓની મિત્રતાનો ભરોસો રાખતા નથી, તેમ નથી બાળકોની મીઠીમીઠી વાતો પર વિશ્વાસ રાખતા, કેમકે રાજાઓની દોસ્તી જરા સરખો સંદેહ થતાં તુટી જાય છે, અને બાળકોની વાતો નિત્ય પ્રતિ બદલાતી જાય છે. જે પંડિત થઇને એમ કરે છે તે વિદ્યાને ભારરૂપ બનાવે છે, જ્યારે કે વિદ્યાથી વિચારપૂર્વક કામ ન કરી શકાય તો તેવી વિદ્યા ભારરૂપજ છે. વિદ્યા એક દીવો છે જે મનુષ્યને ખાડામાં પડતો બચાવી લે છે, તથા પત્થર સાથે તેનું માથું કુટાવા દેતી નથી. એક વખત મનુષ્ય, રાક્ષસ અને દેવતા એ ત્રણેએ મળીને બ્રહ્માની પાસે ગયા અને ઉપદેશ આપવાની પ્રાર્થના કરવા લાગ્યા, બ્રહ્માજીએ ત્રણેને 'દ' એ એક અક્ષરનો મંત્રોપદેશ આપ્યો. એ સાંભળીને મનુષ્યે 'દ' નો અર્થ દાન કરવું એવો કર્યો, રાક્ષસો 'દ' નું પ્રયોજન 'દયા' સમજ્યા, અને દેવતાઓએ 'દ' નો અભિપ્રાય 'દમન' ઇન્દ્રિય નિગ્રહ કરવો એ માન્યો. આ 'दत्त, दास्यत, दयध्वम्' ના ઉપદેશનો ત્રણેએ સિદ્ધાન્તરૂપથી અંગીકાર કરી લીધો. કેમકે બ્રહ્માજી વિદ્વાન હતા, અતઃ તેમને ત્રણેનો ઉપકાર એક ઇશારાથી તથા સંક્ષેપમાં કરી દીધો. કહ્યું પણ છે—

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च
विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च ।
एतानि यो धारयते स विद्वान्
न केवलं यः पठते स विद्वान् ॥

જે સત્ય, તપ, જ્ઞાન, અહિંસા, વિદ્વાનોને નમન અને સુશીલતાને ધારણ કરે છે તે પંડિત છે, કેવલ પુસ્તક વાંચવાવાળાજ પંડિત નથી કહેવાતા.

એવી રીતે—

मूर्खचिन्हानि षडिति गर्वो दुर्वचनं मुखे ।
विरोधी विषवादी च कृत्याकृत्यं न मन्यते ॥

જે ગર્વ, દુર્વચન, વિરોધ, કટુભાષણ, કૃત્યાકૃત્ય વિચારથી રહિત હોય છે તેને મૂર્ખ સમજવો જોઇએ. કોઇ કવિએ બહુજ ઠીક કહ્યું છે—

मूर्खत्वं सुलभं भजस्व कुमते मूर्खस्य चाष्टौ गुणाः ।
निश्चिन्तो बहुभोजनोऽतिमुखरो रात्रिन्दिवा स्वप्नभाक् ॥
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमाने समः ।
प्रायेणाऽऽमयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥

હે કુબુદ્ધિ મનુષ્ય ! તું મૂર્ખ બન્યો રહે. કેમકે તેની પ્રાપ્તિમાં કોઇ મુશ્કેલી નથી. મૂર્ખતામાં આઠ ગુણ રહે છે, એક તો નિશ્ચિન્તતા, બીજું વધારે ખાવાની આદત, ત્રીજું બકવાદી હોવું, ચોથું રાત દિવસ સુઈ રહેવું, પાંચમું શું કરવું ઉચિત છે અને શું કરવું અનુચિત તેના વિચારમાં આંધળા રહેવું અને બહેરાની માફક શૂન્ય રહેવું, છઠ્ઠું માન અને અપમાનમાં બરાબર સરખા રહેવું, સાતમું ઘણે ભાગે રોગરહિત રહેવું અને આઠમું મોટા તાજા બન્યા રહેવું.

અહિ સુધી પંડિત અને મૂર્ખના વિષયમાં વિચાર થયો. આ કથનને કોઇ બુરૂ ન માને, મનુષ્ય બુરો નથી, પરંતુ તેની બુરાઈ માત્ર અમને પ્રતિત થાય છે. જે વ્યક્તિ બ્રહ્મચારીના સ્થાનને

પ્રાપ્ત કરીને પોતાની મુર્ખતાનો ત્યાગ કરતો નથી તે આવી ફરિયાદ કરવાને યોગ્ય છે જ

જે શેઠ થઈને મજુરોને પોતાના કુટુંબી નથી સમજતો, જમીનદાર થઈને ખેડુતોની સાથે આદમીયતાનો વ્યવહાર કરવા નથી ઈચ્છતો, અમારા મનથી તો તે પણ મુર્ખ છે જે મહંતના પદને તો પ્રાપ્ત થઈ ગયો, પણ કોઈને કંઇ ધર્મ આપી શકતો નથી, મંદીરના પુજારી થઈને હાથ કરીને જે પૂજા અર્ચાના સાધારણ મંત્ર અને કામ કરવાની રીતથી એકદમ શૂન્ય છે, તે અવશ્ય મુર્ખ છે કોઈ વ્યક્તિએ ધર્મગુરૂના સ્થાનને એટલા માટે કબજે કરી રાખવુ કે તે ભૂતપૂર્વ ધર્માચાર્યનો શિષ્ય યા પુત્ર છે, તો તે આર્ય જાતિને માટે સર્વથા એક ઘણાજ દુર્ભાગ્યની વાત છે જે આસનથી મોટી શંકાઓના સમાધાનની આશા હોય, જે ગાદીઓ સદાચારની શિક્ષા આપવાને માટે સ્થાપિત થયેલી હોય, તેને કદાચ કોઇ મુર્ખ અધિકૃત કરી લે તો તે કેટલા દુ:ખની વાત છે ?

અમને માલુમ છે કે અમારી આ સાચી વાતોને શક્તિશાળી મુર્ખ અને તેમનો પોષ્ય વર્ગ આક્ષેપ ગણી કાઢશે અથવા તેઓ અમને પંડિતાઈનો ગર્વ કરનારા અભિમાની પણ બતાવી શકે છે કોઇ ચાહે તે કેમ ન કહે, અમે તો અમારૂં કર્તવ્ય પાલન કરવા ઇચ્છીએ છીએ અમારો ઉપદેશરૂપી ચંદ્રમા પોતાની ચન્દ્રિકાને સર્વત્ર ફેલાવશેજ, કોઈ પણ જગ્યા તેનાથી બચી જઈ શકતી નથી, એટલા માટે ચાતકની પ્રસન્નતા અને ચોરોના રોષની અમને જરા પણ પરવાહ નથી સારા બુરા, સત્ય અસત્ય, પાપ પુણ્ય, સુખ દુ:ખ વિગેરેનું સદૈવ સાથે રહેવુ એ સંસારિક નિયમ છે એટલા માટે વિધાતાની સૃષ્ટિમાં રહીને અમે પ્રસન્નતા અને રોષને કદી પણ અલગ અલગ કરી શકતા નથી જ્યાં એક છે ત્યાં બીજુ રહેશેજ. બન્નેની તરફ ધ્યાન રાખતા પોતાનું કામ કરવાજ રહેવુ પડશે અમારા કથનથી પ્રમાણિત સજ્જનોને કષ્ટ ન થવુ જોઇએ, કેમકે અમે તેમની ગાદીઓ હાથ કરવાની મરજથી આવી તીવ્ર સમાલોચના કરવા માટે પ્રવૃત્ત થયા નથી જે પોતાના સ્વરૂપને અનુરૂપ અને પોતાના પદ પ્રતિષ્ઠને અનુકુળ પોતાના કર્તવ્યનું પાલન કરવામાં પ્રવૃત છે તેમનું કોઈ કંઇ કરી શકતા નથી તેઓ સદા સર્વદા અને સર્વત્ર નિર્ભય જ છે

સંન્યાસી ધર્મ પ્રધાન છે, તેને ધર્મના વિષયમાં વિચાર અને પ્રચાર કરવાનો અધિકાર આચાર્ય ચરણ શ્રી શંકર ભગવાન દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલો છે વૈદિક કાલના સંન્યાસી ભલેને 'જડવત્ મુકવત્ ચરેત્' હોય પણ શ્રી શંકરાચાર્યના સંન્યાસી યોગ અને ઉપદેશને માટેજ અવતરિત થયા છે એટલે તે કોઈ સ્થાનના અધિષ્ઠાતાને દુરાચારી અને મૂર્ખ જોઇ તેને સહન કરી શકતા નથી, યા તો તે પોતાની સ્થિતિ સુધારે કે જે યત્ન કરવાથી સંભવિત છે અન્યથા તે પદ અથવા સ્થાનને ખાલી કરી દે કે જે તેની અયોગ્યતાથી અનુપયોગી બની રહ્યું છે

રણભૂમિમાં ગીતા ઉપદેશ-સંભવે છે

(લે૦—સ્વામી શ્રી શિવાનંદજી યોગિરાજ, વૈદ્ય, ધન્વન્તરિ ગુરૂ)

ગીતાનો ઉપદેશ ઘણોજ ગહન છે, તેનું પ્રતિપાદન કોઈ શાન્ત વાતાવરણવાળા પ્રદેશમાંજ થયેલ હોવાનો અધિક સંભવ છે, એમ સમજીને આજકાલ ઘણાએ લોકો એવો પ્રશ્ન કર્યા કરે છે કે—"શું આ પ્રકારનો ગીતા જેવો લાંબો પહોળો ગંભીર ઉપદેશ બરાબર યુદ્ધના સમયે થઈ શકે છે ?" અર્થાત્—જ્યાં લાખો મનુષ્યો એકઠા થયેલા હોય, જ્યાંનાં શસ્રાઓની ચમક ઝમકથી અખો અંજાઈ જતી હોય, જ્યાં એકઠા થએલા લોકોના હૃદયમાં જીવ આપવા લેવાની, લોહી વહેવરાવવાની તથા મરી મટવાની ભાવનાઓ ઓતપ્રોત થઈ રહી હોય અને જ્યાંના વિર પુરૂષોની આંખોમાંથી લોહી જેવી લાલ લાલ ચીનગારીઓ નીકળી રહી હોય તેવા સ્થાન ઉપર 'ગીતા' જેવા ઉંચા વિજ્ઞાન અને ગહન વિષયના સંવાદનું કહેવું સાંભળવું કેવી રીતે સંભવી શકે છે ?" આ પ્રકારની શંકા અમે ખાસ કરીને રોજ સાંભળતા આવીએ છીએ. આજ અમે મહાભારત મીમાંસા અનુસાર એનો ઉત્તર 'ગીતાધર્મ'ના વાંચકો સમક્ષ ઉપસ્થિત કરવા ચાહીએ છીએ.

અમે એમ ધરીએ છીએ કે પ્રાચીન ભારતીય આર્યોની સામાજીક પરિસ્થિતિનો વિચાર કરવાથી યુદ્ધની શરૂઆતમાં બન્ને સેનાઓની વચ્ચે આ પ્રકારનો સંવાદ અસંભવિત જણાતો નથી. મહાભારતના યુદ્ધને સમયે બન્ને પક્ષોની એકઠી અને સામસામે ઉભી રહેલી સેનાઓના વિષયમાં મનમાં જરા જો વાસ્તવિક કલ્પના કરવામાં આવે, તો એ કોઈ પણ રીતે અસંભવિત જણાતું નથી કે બન્ને સેનાઓના મધ્ય ભાગમાં શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુન રથ ઉપર બેઠા બેઠા વિચાર કરી રહ્યા હતા કે 'યુદ્ધ કરવું વ્યાજબી ગણાશે કે ગેરવ્યાજબી ?' એ તો બરાબરજ છે કે બન્ને સેનાઓમાં અઢાર અક્ષૌહિણી સેના (અધિકાંશ ઐતિહાસિકોના મત પ્રમાણે બાવન લાખ મનુષ્યોની) હતી. એ સેનાઓ લંબાઈમાં યુદ્ધ ભૂમિ ઉપર કેટલાય માઈલો સુધી ફેલાએલી હશે, બન્ને સેનાઓ એક બીજીથી આશરે એક માઈલ કે અરધા માઈલના અંતર ઉપર ઉભેલી હશે. મહાભારતના સમયે ધર્મયુદ્ધની નીતિ પ્રચલિત હતી. એ સંભવ નહોતો કે કોઈ કોઈના ઉપર અસાવધાનીની અવસ્થામાં શસ્રાસ્રનો પ્રયોગ કરે, એમ કરવું એ તે સમયમાં કાયરતા ગણાતી હતી. અગર અર્જુનનો રથ કંઈક આગળ વધીને બરાબર મધ્યમાં કોઈ એવા સ્થાન ઉપર ઉભો રાખવામાં આવ્યો હોય કે જ્યાંથી બન્ને સેનાઓ નજરે પડી શકે, તો એ વાતમાં કોઈને નવાઈ પામવા જેવી શું વસ્તુ હોઈ શકે છે ? શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનો સંવાદ એક કલાક કે સવા કલાકથી અધિક સમય પર્યંત નહિ ચાલ્યો હોય, એ વાત તો અનુભવસિદ્ધ છે કે જે લોકો વર્તમાન સમયમાં પ્રતિદિન ગીતાનો પૂરો પાઠ કર્યા કરે છે તેમને એથી વધારે સમય લાગતો નથી. જ્યાં સુધી શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનું શંકા સમાધાન થતું રહ્યું, ત્યાં સુધી બન્ને સેનાઓના પ્રબંધો એક બીજાની સૈનિક સ્થિતિનું અધ્યયન કરી રહ્યા

હોય, એમ પણ માનવાની આવશ્યકતા નથી કે બન્ને સેનાઓના સેનાપતિઓ અર્જુન અને શ્રી કૃષ્ણના સ ભાષણની રાહ જોતા ઉભા રહ્યા હોય, કેમ કે એટલા મોટા લશ્કરની યોજના કરી લેવી એ કાઈ એક બે મિનિટોનુ કામ નથી. એ સિવાય ઐતિહાસિક લડાઇઓથી એ પણ જણાઈ આવે છે કે સેનાના સેનાપતિઓ પોતપોતાના સૈન્યોની રચના કરતી વેળાએ એક બીજાના સૈન્યની ઘણીજ બારિક તપાસ કરવામા કેટલાય કલાકો વિતાવી દેતા હતા શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનની વાતચીત બીજા યોદ્ધાઓના સાભળવામા આવતી નહોતી અર્થાત્—કહેવુ પડશે કે તે લોકોનુ ધ્યાન એમના તરફ નહોતુ સૌ એવાજ વિચારમા મગ્ન હતા કે અમારૂ આ જીવન સ કટ કેવી રીતે દૂર થાય, મતલબ એ કે યુદ્ધ ભૂમિનો વિસ્તાર, પોતપોતાના સૈન્યોની રચના, તેમનુ નિરિક્ષણ અને ધર્મયુદ્ધના નિયમ ઇત્યાદિ વાતોનો વિચાર કરતા એજ સિદ્ધ થાય છે કે ભારતીય યુદ્ધને પ્રથમ દિવસે યુદ્ધ શરૂ થતા પહેલાજ શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુને તત્વજ્ઞાન વિષયક ચર્ચામાં કલાક કે સવા કલાક વ્યતિત કરી દીધો તો તેમાં કાંઈ અસભવ જેવું નથી, અને એ રીતે રણભૂમિમા ગીતાનો ઉપદેશ કહેવાવો એ સ ભવિતજ છે

વારૂ, અમે માની લઇએ કે ગીતા જેવા આટલા મોટા સ વાદનું યુદ્ધ ભૂમિ ઉપર કહેવાવું સ ભવિત હતું, તો પણ આ તત્વજ્ઞાન પ્રધાન દાર્શનિક સ ભા પણ મહાભારતનું યુદ્ધ શરૂ થવાના બરાબર અણીના સમય ઉપર થવાનું કેટલે દરજ્જે વ્યાજબી માની શકાય છે, અર્થાત્ હવે અહિં એ પ્રસ ગ મહત્વનો અને વિચારવા જેવો છે કે ભગવદ્ ગીતા એટલે કે તેમાં પ્રતિપાદિત વાદવિવાદ યુદ્ધને સમયે પ્રાસગિક છે કે નહિ ?'

આ વિષયમા અમારૂ કહેવું એમ છે કે વ્યાસજીએ આ તત્વજ્ઞાનને મહાભારતમા ઘણીજ કુશળતા પૂર્વક યુદ્ધના પ્રાર ભમાજ સ્થાન આપ્યુ છે જ્યા લાખો મનુષ્યો મરવા મારવાને તૈયાર થયેલા હોય, ત્યાં સ ભવ છે કે ધાર્મિક હૃદયના મનુષ્યોને ખરે ખરજ મોહ થઇ જાય, તેથી એમા આશ્ચર્ય ન થાય—જો તેને એવો સદેહ થઈ જાય કે હુ જે કાઈ કરી રહ્યો છું તે ઉચિત છે કે અનુચિત ? જ્યાં સિવિલ વૉરની માફક આપસમા એક બીજાનું ગળુ કાપવાનો પ્રસગ આવી જાય, જ્યા ભિષ્મ અને દ્રોણ જેવા પૂજ્ય પિતામહ અને ગુરૂના તથા શલ્ય જેવા સદ્ભાવ્યોના માર્યા જવાનો પ્રસ ગ ઉપસ્થિત થઇ જાય, ત્યા સ્વજનોના નાશ થવાને કારણે, 'ધર્મશીલ' કહેવાવાને કારણે, અર્જુનના મનમા આવા પ્રકારનો મોહ થઈ જવો અત્યંત સ્વાભાવિક છે કે 'જો લોભથી અને હઠાથકી દુર્યોધનના ધ્યાનમા એ વાત નથી આવતી તો કઈ હરકત નહિ, પર તુ—અમારે તો એ વાત જરૂર સમજી લેવી જોઇએ, કેમકે અમે ધર્મશીલ છીએ'

જ્યારે બરાબર યુદ્ધને સમયે અર્જુનના આવા ભાવ થઇ ગયા ત્યારે તે સમયે ભગવાનનું એ જરૂરી કર્તવ્ય હતું કે તેઓ અર્જુનને અસામયિક વ્યામોહમા પડીને કર્તવ્યચ્યુત થતો બચાવે, એવા પ્રસગેજ તત્વજ્ઞાનની ચર્ચાને મહત્વ છે, જ્યારે રોગનો પ્રકોપ હોય ત્યારેજ એ ઔષધોપચાર કરવો યોગ્ય ગણાય નિરોગ અવસ્થામા આરામ ખુરસી ઉપર લાબા પગ કરીને પડી રહેલા મનુષ્યની સામે ઔષધિઓના ગુણોનું વર્ણન, તેની તે વિષયની જ્ઞાન વૃદ્ધિનું કારણ ભલે બની શકે પણ તેનો સફળ પ્રયોગ તો રુગ્ણાવસ્થામાંજ કહેવાથી થઇ શકે છે

એવીજ રીતે અર્જુનને યુદ્ધના પ્રારભમા

હવે જરા સાવધાન થઈને નાવ ચલાવ અને શીઘ્ર કિનારે પહોંચાડી દે, હું તને યથેષ્ટ ઈનામ આપીશ. આ પ્રમાણે જ્યારે તે નદીના ઉછળતા તરંગો જોઈને ઘણો ગભરાઈ જાય છે ત્યારે નાવિક કહે છે—મહાશય, આપ શા માટે આટલા વ્યાકુળ થાઓ છો, આ પવન તો આપણને અનુકૂળ છે તેથી આપણે ધાર્યા કરતાં ઘણા વહેલા ગંતવ્ય સ્થળે પહોંચી જઈશું, દેવતા આપણા ઉપર પ્રસન્ન છે, તેથીજ આવો અનુકૂળ વાયુ મળી રહ્યો છે, જો તેમ ન હોત તો પાર જવું મુશ્કેલ હતું. હવે આપ નિશ્ચિત રહો, બ્હીક લાગતી હોય તો સુઈ જાઓ. નાવિકની સલાહ માનીને તે ચુપચાપ સુઈ જાય છે, અને સપાટાબંધ ગંતવ્ય સ્થળે પહોંચી જાય છે. તમે લોકો એજ પ્રમાણે અજ્ઞાનવશ દુઃખથી ડરતા રહો છો, તમે નથી જાણતા કે એ દુઃખ, નાવને અનુકૂળ વાયુ સમાન તમારૂં સહાયક છે. કારણ કે પૂર્વ પ્રારબ્ધ જો આજ જન્મમાં ભોગવી લેવાય તો પછી આગળ કાંઈ બાકી ન રહે. આ પ્રકારથી દુઃખ, સંસાર સમુદ્રને ઉત્તીર્ણ કરવામાં સહાયતાજ કરે છે. જો એ દુઃખ ઉપસ્થિત ન હોય તો ગંતવ્ય સ્થળે પહોંચવામાં કેટલાએ જન્મોનું અંતર પડી જાય.

તેથી ભગવાન કહે છે કે—સત્વ સમાવિષ્ટ ત્યાગી એ છે કે જે અકુશળ કર્મનો દ્વેષ કરતો નથી. જે પ્રમાણે સકામ અને નિષિદ્ધ કર્મ બંધનકારક હોવાથી અકુશળ કર્મ છે, તેજ પ્રમાણે પૂર્વ જન્મનાં સંચય કરેલા-પ્રારબ્ધનાં સુખ દુઃખ પણ અકુશળ કર્મ છે. તેથી એવાં કર્મોને ખોટી ભાવનાથી નહી પણ અનાયાસ નિર્વિકાર ચિત્તથી ત્યાગી દો અને પૂર્વનાં કર્મ ફળને ભોગવવામાં કોઈ દુર્ભાવ કે હર્ષ વિષાદ ન માનો. અગર તમે એવા ત્યાગી બનો તો મૃત્યુને પણ જીતી લેશો. હનુમાનજી, કૃપાચાર્ય અને વિભીષણ આદિ તેથીજ 'ચિરંજીવ' પ્રસિદ્ધ છે કે સુખ દુઃખમાં સમાન રહીને નિષ્કામ કર્મ કરતા પ્રભુના અહૈતુક કૃપાભિલાષી થઈ ગયા, તેથી તેમને મૃત્યુએ બક્ષીસ આપેલી છે. એજ પ્રમાણે વાસના રહિત નિષ્કામ કર્મોના બળ ઉપર એ બ્રાહ્મણનાથી મૃત્યુને પણ હારીને બેસી રહેવું પડ્યું, તેણે ઘણાએ માથાં પટક્યાં, પણ કાંઈ વળ્યું નહી. એ મૃત્યુને પણ હરાવનારનો ઇતિહાસ આ પ્રકારનો છે.

એક સત્યપુર નામના નગરમાં પરમ ધર્માત્મા આકાશજ નામનો બ્રાહ્મણ રહેતો હતો. સદાએ ધ્યાન ભજનમાં તત્પર રહેવું અને બાકીના સમયમાં પ્રજાઓના હિતમાં લાગેલા રહેવું, એ તેનું સ્વભાવસિદ્ધ કામ હતું. એવી જીવનચર્યા વિતાવતાં ઘણો સમય નિકળી ગયો. તેની આગળ પાછળ કોઈ નહોતું. તે એકલોજ નૈષ્ઠિક વર્ણી અગર વાનપ્રસ્થ રૂપથી પોતાના નિષ્કામ વાસના-રહિત અનુષ્ઠાનમાં દ્દઢતાથી લાગ્યો રહેતો હતો. આ પ્રકારે રહેતા રહેતાં યુગ પૂરો થવા આવ્યો પણ તેનો વાળ પણ વાંકો થયો નહી. એ દેખીને મૃત્યુને ઈર્ષા તો ઘણીએ આવતી હતી. પણ એને એટલો વખત નહોતો કે આ બ્રાહ્મણને સારૂ તે પ્રયત્ન કરી શકે. મૃત્યુને એ ઘણું ખટકવા લાગ્યું કે, એ બ્રાહ્મણ પોતાના જેવા મૃત્યુ સુરક્ષિત લોકોનો સંપ્રદાય વધારીને પોતાના કામમાં વખતે ખલેલ ઉભું કરશે. મૃત્યુથી એ બ્રાહ્મણ પોતાની પકડ બહાર રહે, એ વાત સહન થઈ શકી નહી. એટલે તે ખિન્ન થઈને વિચારવા લાગ્યું—હું અક્ષય છું, કમથી સર્વ પ્રાણીઓનો સંહાર કરવાને શક્તિમાન છું. તો પછી હું આ આકાશજ બ્રાહ્મણનો પણ કેમ કોળીઓ ન કરૂં? જેમ પત્થર ઉપર તલવારની ધાર કુંઠિત થઈ જાય છે; તેમજ મારી શક્તિ તેના ઉપર કુંઠિત થઈ જાય છે. તો પણ આખરે તે મર્ત્યલોકનો મનુષ્ય તો છેજ, તેથી મારો ગ્રાસ બનવાનો ધર્મ તો તેનામાં હોવોજ જોઈએ, એવો વિચાર કરીને મૃત્યુ, નિરમંત્ર અને નિષ્કામ કર્મ રૂપ ગિરિ દુર્ગોથી વેષ્ટિત તેના સત્યપુર નામક નગરમાં જઈ પહોંચ્યું. કારણ કે કોઈ પણ અભિ-

જ્ઞાની પુરુષ પોતાના કર્મ કરવાના ઉદ્યોગનો ત્યાગ કરતો નથી. તે પછી મૃત્યુ જ્યાં આકાશજ વિપ્રના નગરમાં પેસવાનો પ્રયત્ન કરવા લાગ્યું કે તરતજ સમાધિમાં ઉપસ્થિત બનનારાં વિઘ્નોને ટાળવાને માટે દિગ્બન્ધ રૂપથી સ્થાપિત પ્રલયાગ્નિ મૃત્યુનો ભક્ષ કરવાને ભભૂકી ઉઠ્યો. તો પણ હિંમત કરીને મૃત્યુ, અગ્નિ જ્વાળાઓની પરંપરાને ભેદીને જેમ તેમ કરીને અંદર પેસી ગયું અને આકાશજને દેખીને બલપૂર્વક વિકરાળ હાથે પકડવાની ચેષ્ટા કરવા લાગ્યું. પણ જ્ઞાનશીલ આદમી ગમે તેટલો બળવાન હોય તો પણ સંકલ્પથી કલ્પિત ભૂતથી કરીને તેને પકડી શકતો નથી, તેવીજ રીતે સામે વિદ્યમાન એ આકાશજને મૃત્યુ પોતાના અસંખ્ય હાથથી પણ પકડી શક્યું નહિ. તેથી હતાશ થઈને તે પાછું ફર્યું. અને સંશયને દૂર કરનારા પોતાના પ્રભુ યમરાજને શરણે આવીને પૂછ્યું કે—હે વિભો, હું આકાશજ બ્રાહ્મણને ખાવાને કયા કારણથી સમર્થ નથી?

યમરાજે કહ્યું—હે મૃત્યુ, તું એકલો પોતાના બળથી કોઈને પણ મારવાને સમર્થ નથી. જેને તું મારે છે, તેને વાસ્તવમાં તેનાં કર્મજ મારે છે. તારી શક્તિનું બીજું કોઈ કારણ નથી. તેથી તેને જો તું મારવાનું આવશ્યક સમજતું હોય તો બલપૂર્વક તેનાં કર્મોની ખોળ કર. તેમની મદદથી તું તેને સહેલાઈથી મારી શકીશ. પછી મૃત્યુ તેનાં કર્મોની ખોજમાં તત્પર થઈને સમસ્ત દેશ દેશાંતર, દિગ દિગંતર, તળાવ, નદીઓ, વન, જંગલ પર્વત, સમુદ્ર તીર, દ્વીપ દ્વીપાંતર, નગર, કસ્બા, ગામ, રાષ્ટ્ર અને સર્વ રહેઠાણોમાં ફરું ભાઈ રહ્યું. તે ભૂદ જુદા પ્રદેશ જોવાને નહીં પરંતુ એ જાણવા તે પહેલાં ક્યા દેશમાં કેવાં કેવાં કર્મ કરેલાં છે તે જોવાને સારુ. આ કામ કરવામાં પોતાનું આવશ્યક કૃત્ય મારણ કર્મમાં સંકોચ પડવાથી તેને ઘણી તકલીફ વેઠવી પડી, તો પણ સંપૂર્ણ ભૂમંડળમાં ભમતાં પણ ઉક્ત મૃત્યુને આકાશજ વિપ્રનું કોઈ પણ મારક કર્મ હાથ લાગ્યું નહીં.

પછી સર્વ જાતિને જાણનારા યમરાજ પાસે આવીને મૃત્યુએ પૂછ્યું (કારણ કે સંકટ આવવાથી બાળકને માતા સમાન, મૃત્યુને પોતાના પ્રભુનોજ આશ્રય હોય છે) કે—પ્રભો, આકાશજ વિપ્રનાં કર્મ ક્યાં છે તે મને બતાવો આ પ્રશ્નનો ઘણો કાળ વિચાર કર્યા પછી યમરાજે જવાબ દીધો—હે મૃત્યુ, આકાશજનાં પોતાનાં કાંઈ કર્મ છેજ નહીં એ પોતાને માટે કોઈ પણ કર્મ કરતોજ નથી તેમજ કોઈનું સારું કે કોઈનું ખોટું ઇચ્છતો પણ નથી જાણે કે તે શુદ્ધ આકાશમાંથીજ ઉત્પન્ન થએલો હોય એમ લાગે છે. તે એટલો તો નિર્મળ છે કે તેના મરણને માટે મૃત્યુને મદદ કરનાર અભિમાન, રાગ, દ્વેષ આદિ કોઈ આયતન કર્મ પણ નથી, અને તેનાં સંચિતનો, જ્ઞાનથી તથા આધ્યાત્મિકોના બીજના અભાવથી ક્ષય થઈ ગયેલ છે અને તેનો પરાર્થ (પરમાર્થ) શુભ પ્રારબ્ધ, તેને મારવામાં મદદ નથી કરી શકતું. તેથી હે મૃત્યો, તું તેના ઉપર આક્રમણ કરવાનો પ્રયત્ન છોડી દે, જેવી રીતે કોઈ પણ વ્યક્તિ આકાશને પકડી શકતી નથી, તેવીજ રીતે તું કર્મોથી અલિપ્ત આ આકાશજને મારી શકીશ નહીં. યમરાજનાં વચન સાંભળીને મૃત્યુને ઘણી નવાઈ લાગી અને તે ઉદાસ થઈને પોતાને ઘેર પાછું ગયું આ ઉપાખ્યાનનું એ તાત્પર્ય છે કે, સુખ દુઃખને પોતાનો ધર્મ સમજનારા અજ્ઞાનીજ મૃત્યુનો ગ્રાસ બને છે, તત્વજ્ઞાની નહીં, તેઓ તો આકાશજ દ્વીજની પેઠે ચિન્માત્ર સ્વરૂપમાંજ સ્થિત રહે છે એવાનેજ સાચા જ્ઞાની પુરુષો કહે છે કે તેઓ પોતાની કુશળ બુદ્ધિથી કર્તવ્યાકર્તવ્યનો બરાબર નિશ્ચય કરી લે છે. કર્મ કરવાની રીતના સંબંધમાં તેમને કોઈ પણ વાતનો સંદેહ રહેતો નથી. જે કરે છે તે આત્મ વિશ્વાસથી કરે છે, કર્તવ્ય બુદ્ધિથી કરે છે, નિ શંક થઈને ઉત્તમ રીતિથી કરે છે. એથી, છિન્ન સંશય અને સત્વ સમાવિષ્ટ એ બન્ને

ગીતાધર્મ મેળવવાનું ઠેકાણું.

૧ મુંબઈ, ગીતાધર્મ, ઑફીસ શેઠ છગનલાલ નાગરદાસ, મુલજીભાઈ બીલ્ડીંગ. સી૦ પી૦ ટેંક.
૨ મુંબઈ, શ્રી નગીનદાસ ફુલચંદ ચિનાઈ, ચીનાઈ બીલ્ડીંગ, મસજીદ બંદર રોડ.
૩ મુંબઈ, આર૦ મદનલાલ ની, કંપની ઈશ્વરનીવાસ ખેતવાડી મેઈ નં૦૫ સેંડહર્સ્ટ રોડ.
૪ મુંબઈ, શાહ સુંદરજી ભગવાનજી, પ્રૉ૦ મગનલાલ, સુંદરજી, માધવબાગ દરવાજા સામે લાલબાગ.
૫ અમદાવાદ, ગીતામંદિર, આસ્ટોડિયા દરવાજા બહાર. ગીતા મદીર, રોડ.
૬ અમદાવાદ, ડૉ૦ નવનીતરાય પુરૂષોત્તમદાસ વ્યાસ, ગીતા નિવાસ, સારંગપુર, તલીયાની પોળ.
૭ અમદાવાદ, પારી લાલભાઈ, નરસીભાઈ, ત્રોંક બજાર, માણેક ચોક.
૮ વડોદરા, મણીભાઈ જસભાઈ દેસાઈ, સુલતાનપુરા,
૯ વડોદરા, સ્વામી આત્માનંદજી મહારાજ, ગીતામંદિર, ગેઆગેટ રોડ.
૧૦ વડોદરા, જગજીવનદાસ હરગોવિંદદાસ બુકસેલર, રાવપુરા રોડ, લીમડાપોલને નાકે.
૧૧ ખંભાત, રા, મંગલદાસ. મગનલાલ માસ્તર, વડા વાસુદેવની પોલ.
૧૨ સુરત, ભાનુશંકર હરજીવનશર્મા વિઠ્ઠલવાડી નાણાવટ.
૧૩ આણંદ, પટેલ ગોરધનભાઈ શામલદાસ માસ્તર
૧૪ ભરૂચ, મહેતા, નાથાલાલ કાલીદાસ. મદમદપુરા.
૧૫ ભરૂચ, હીરાલાલ ઠાકોરલાલ, મેનેજર, જ્ઞાનોદય પ્રેસ.
૧૬ નડીયાદ, અંબાલાલ ડાહ્યાભાઈ, માસ્તર, લખાવાડ.
૧૭ દાહોદ, ભટ્ટ સોમેશ્વરભાઈ રાજારામ.
૧૮ નવસારી, શેઠ હરગોવિંદદાસ, કે. મોટાબજાર.
૧૯ ડભોઈ, શેઠ ચુનીલાલ ગિરધરલાલ જીનવાલા.
૨૦ મહેમદાવાદ, જોશી, ગટોરલાલ છગનલાલ, ઘીવાડ
૨૧ પેટલાદ, કાછિયા મોતીલાલ જેઠાલાલ, વડકુવા પ
૨૨ પાદરા, પરસોતમદાસ, મનસુખદાસ, બજારમાં
૨૩ ગોધરા, આશાભાઈ, શ્રીરામકૃષ્ણ ઑઈલ મિલ્સ
૨૪ સંખેડા, બક્ષી જેઠાલાલ કેશવલાલ, બજારમાં.
૨૫ કોયલી, અમૃતલાલ કાલીદાસ ઠક્કર.
૨૬ રાજકોટ, એમ. જી. કોટેચા, ટાઉનહૉલ પાસે, રમેશ સ્ટુડીયો.
૨૭ રાજપીપલા, ભગવાનજી રામદાસ, સ્ટેશન રોડ.
૨૮ ઉમરેઠ, ભટ્ટ સોમેશ્વરભાઈ રાજારામ, ચોકસીની પોળને નાકે.
૨૯ ભુજ, ડૉ૦ બી. એન. છાયા, છાયા હોમિયોપેથિક ડિસ્પેંસરી.
૩૦ બાજવા, શેઠ હીમતભાઈ રણછોડદાસ ઠક્કર.
૩૧ અમરેલી, મુલશંકરભાઈ જગજીવનદાસ, ત્રિવેદ નાગનાથ દરવાજા.
૩૨ કલોલ, ચીમનલાલ ત્રીકમલાલ શાહ, સ્ટોરકીપ ધી છોટાલાલ મિલ્સ, લીમીટેડ.
૩૩ ભાવનગર, શેઠ મગનલાલ નાનાભાઈ, મોતીબાગપાસે
૩૪ ધર્મજ, મણીભાઈ, જી. પટેલ. ગિરધર ભુવન.
૩૫ માંડવી(કચ્છ) શેઠ મથુરાદાસ પુરૂષોત્તમદાસ કચરાણી
૩૬ ધોલકા, ત્રીકમલાલ એ૦ વકીલ.
37 Mombasa.—Chunibhai Magganbhai. Amin C/o The Bombay. Trading Stores. P. o. Box. No. 354.
38 Johannesburg—Raojeebhai. Chunibhai. P. o. Box. No. 4838.
39 Johannesburg—Ashabhai Gordhanbhai. patel. P. o. Box. No 6220.

ઉપર લખેલાં સ્થળોએ સેવાભાવી ગીતાપ્રેમી ભાઇઓ કામ કરે છે જેથી ગ્રાહક ભાઇઓને હમારી ખાસ વીનન્તી છે કે આપ લવાજમ તેમને ત્યાં ભરી દઈ જાન્યુઆરીનો પહેલો અંક (ગી૦ ગો૦ ભાગ, ૫, નું પુસ્તક) તેમને ત્યાંથી મેળવી લેશો જેથી આપના તેમ કાર્યાલયના ખર્ચમાં બચાવ કરશો અને આપને સારી હાલતમાં ત્યાંથી પુસ્તક મળશે.

વ્યવસ્થાપક—
ગીતાધર્મ, કાશી.

ગીતાના યોગ

શ્રીમદ્‌ભગવદ્‌ગીતામાં જ્ઞાનયોગ અને કર્મયોગ પ્રધાન છે મનુષ્યશરીર સ્વભાવથીજ કર્મશીલ છે એટલા માટે કર્મયોગીયોને માટે ગીતાજ ગુરૂ છે, પણ એ કહેવામા આવે કે ગીતા જ્ઞાનિયોની ચીજ છે, તો પણ અનુચિત નથી.

જે મહર્ષિ વ્યાસજીએ ગીતા દ્વારા જ્ઞાનયોગ, કર્મયોગ અને ભક્તિયોગનો ક્રમશ સત્ય શિવ, સુંદર માર્ગ બતાવ્યો છે, તેજ પ્રાત સ્મરણીય વ્યાસજીએ શ્રીમદ્‌ભાગવત દ્વારા ભક્તિયોગને અતિમ રૂપથી વધારે પરિપુષ્ટ કરતા તેનો નિર્ગુણ માર્ગ બતલાવ્યો છે જ્ઞાનયોગ, કર્મયોગ અને ભક્તિયોગના ઉપદેશક એકજ આચાર્ય છે, એટલા માટે આ ત્રણે યોગોનું એકજ લક્ષ્ય છે—જુદા જુદા માર્ગો દ્વારા શ્રી ભગવાનની આજ્ઞાનું પાલન કરવું

અગર એમ કહેવામાં આવે કે ગીતા વાચનાર અને સાંભળનાર સજ્જન અર્જુન બની રહે છે, તો એ કથન અનુચિત થશે ખરેખર તો ગીતા વાંચી સાંભળીને જે કર્મબંધનથી છુટી જાય છે, તેઓનું વાચવું સાંભળવું સાર્થક છે

આજે ઘોર કલિયુગનું ચક્ર ચાલી રહ્યું છે અન્ય યુગોથી એ એટલા માટે શ્રેષ્ઠ છે કે એમા કર્મયોગની પ્રધાનતા છે આજકાલ જે કર્મની કસોટી પર પૂરા ઉતરે છે તેજ ધન્ય છે

—સ્વામી વિદ્યાનંદ.

શ્રીમત્ પ૦ પ૦ શ્રી૦ ૧૦૮ જગદ્‌ગુરૂ મહામંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજનું ઠેકાણું૦ કરણપરા સ્ટ્રીટ ન૦ ૨ મુ૦ રાજકોટ (કાઠિયાવાડ)

ત્યાર પછી કદાચ ગીતાજયન્તીના અવસર ઊપર—

અમદાવાદ—ગીતા મંદીર આસ્ટોડીયા દરવાજા બહાર (ગુજરાત)

વડોદરા—ગીતામંદિર, ગોયાગેટ રોડ (ગુજરાત) માં રહેશે

REGISTERED NO. A15

गीता के योग

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग और कर्मयोग प्रधान हैं। मनुष्यशरीर स्वभाव से ही कर्मशील है इस लिए कर्मयोगियों के लिए गीता ही गुरु है, पर यह कहा जाय कि गीता ज्ञानियों की चीज है, तो भी अनुचित न होगा।

जिन महर्षि व्यासजी ने गीता द्वारा ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का क्रमशः सत्य, शिव, सुन्दर मार्ग दिखलाया है, उन्हीं प्रातःस्मरणीय व्यासजी ने श्रीमद्भागवत द्वारा भक्तियोग को अन्तिम रूप से और भी परिपुष्ट करते हुए उस का निर्गुण मार्ग दिखलाया है। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के उपदेशक एक ही आचार्य हैं, इस लिए इन तीनों योगों का एक ही लक्ष्य है—भिन्न भिन्न मार्गों द्वारा श्री भगवान् की आज्ञा का पालन करना।

यदि यह कहा जाय कि गीता पढ़ने और सुननेवाले सज्जन अर्जुन बन रहे हैं तो यह कथन अनुचित होगा। वास्तव में गीता पढ़ सुनकर जो कर्मबन्धन से छूट जाते हैं, उन्हीं का पढ़ना सुनना सार्थक है।

आज घोर कलियुग का चक्र चल रहा है। अन्य युगों से यह इसी लिए श्रेष्ठ है कि इस में कर्मयोग की प्रधानता है। आजकल जो कर्म की कसौटी पर खरा उतरता है वही धन्य है।

—स्वामी विद्यानन्द

श्रीमत् प. प. ब्र. लो. गी. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज

का पता ठे० करणपरा स्ट्रीट नं० ७, मु० राजकोट (काठियावाड)

इस के बाद गीताजयन्ती के अवसर पर—

अहमदाबाद—गीतामन्दिर आस्टोडिया दरवाजा बहार (गुजरात)

बड़ौदा—गीतामन्दिर, गोयागेट रोड, (गुजरात) शायद रहेंगे।